दर्शन-दिग्दर्शन

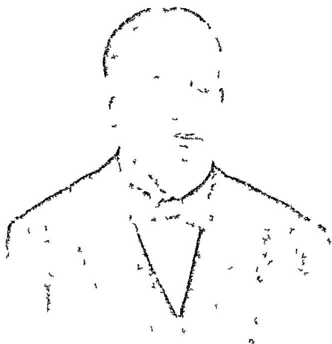
राहुल साकृत्यायन

किताब-महल
इलाहाबाद
१९४४

प्रकाशक—किताब महल
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
मूल्य १२ रु०

मुद्रक—जे० के० शर्मा
इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस, इलाहाबाद



डा काशी प्रसाद जायसवाल

समर्पण

का० प्र० जायसवालकी स्नेह-पूर्ण स्मृतिमें
जिनके शब्द पुस्तक लिखते वक्त
बराबर कानोंमें गूँजते थे, और
जिन्हें सुनानेकी उत्कंठा-
में कितनी ही बार मैं
भूल जाता था, कि
सुनने वाला
चिर-निद्रा-
विलीन
है।

भूमिका

मानवका अस्तित्व पृथ्वीपर यद्यपि लाखों वर्षोंसे है, किन्तु उसके दिमागकी उठानका समय भव्य-युग ५०००-३००० ई० पू० है, जब कि उसने खेती, नहर, सौर-पंचांग आदि आदि कितने ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा समाजको कायापलट करनेवाले आविष्कार किए। इस तरहकी मानव मस्तिष्ककी तीव्रता हम फिर १७६० ई० के बादसे पाते हैं, जब कि आधुनिक आविष्कारोंका सिलसिला शुरू होता है। किन्तु दर्शनका अस्तित्व तो पहिले युगमें था ही नहीं, और दूसरे युगमें वह एक बूढ़ा बुजुर्ग है जो अपने दिन बिता चुका है, बूढ़ा होनेसे उसकी इज्जत की जाती जरूर है, किन्तु उसकी बातकी ओर लोगोंका ध्यान तभी खिंचता है, जब कि वह प्रयोग-आश्रित चिन्तन—साइंस—का पल्ला पकड़ता है। यद्यपि इस बातको सर राधाकृष्णन् जैसे पुराने ढर्रेके 'धर्म प्रचारक' माननेके लिए तयार नहीं हैं, उनका कहना है—

"प्राचीन भारतमें दर्शन किसी भी दूसरी साइंस या कलाका लग्गू भग्गू न हो, सदा एक स्वतंत्र स्थान रखता रहा है।"[1] भारतीय दर्शन साइंस या कलाका लग्गू भग्गू न रहा हो, किन्तु धर्मका लग्गू भग्गू तो वह सदासे चला आता है, और धर्मकी गुलामीसे बदतर गुलामी और क्या हो सकती है?

३०००-२६०० ई० पू० मानव-जातिके बौद्धिक जीवनके उत्कर्ष नहीं अपकर्षका समय है, इन सदियोंमें मानवने बहुत कम नए आविष्कार किए। पहिलेकी दो सहस्राब्दियोंके कड़े मानसिक श्रमके बाद १०००-७०० ई० पू० में, जान पड़ता है, मानव-मस्तिष्क पूर्ण विश्राम लेना चाहता

---

[1] Indian Philosophy, vol I, p 22

था और इसी स्वप्नावस्थाका उसने ज्ञान है और इस तरहका प्रारंभ निश्चय ही हमारे दिमागमें उसकी स्पष्ट या धुंधली नहीं पड़ता है। लेकिन दर्शनका प्रभात है यह। उसका मध्याह्न नहीं है। दर्शनका सुवर्णयुग ७०० ई० पू० से मानी सात और चार शताब्दियाँ हैं। इस समय आरम्भ उपनिषद्का समय बढ़ रहा है और यूनानमें थलेस पास अपना सार्व जनीका निर्माण होता है। यह दोनों देशोंकी धाराएँ आरम्भ मिलकर कि यहाँ आगे चलकर धाराओंका उद्गम बनता है—सिकन्दरके बाद सिग नलसे ये दोनों धाराएँ मिलती हैं और एक दूसरी धाराओंका प्रतिबिम्बि नव प्रस्थानका स्थान आगे प्रगति करता है इसे पाठक आगे पढ़ेंगे।

दर्शनका यह सुवर्णयुग यद्यपि प्रथम और अन्तिम आदिकालयुगका समानता नहीं कर सकता किन्तु साथ ही यह मानव मस्तिष्कका विकास समय नहीं था। उसका नाहिए इस समयका विकासका स्थान अलग अलग नहीं बल्कि एक दूसरेके प्रगतिका स्थान है। मानव-समाजका[1] प्रगतिके बारेमें हम अवश्य कहता आये हैं कि सभी स्थानोंमें इस प्रगतिके साथ साथ ज्ञानका स्वाद भिन्न नहीं है। ६०० ई० पू० का समय है जब कि मिश्र मसोपोतामिया और सिंध उपत्यकाके पुराने मानव भाग्य आसमानी उड़ानसे आगे थककर बैठ गए थे, लेकिन इसी समय नवागन्तुकोंमें सिर्फ दो नयी जातियाँ—हिन्दू और यूनानी—अपना दिमाग ऊपर काम करती हैं। दर्शन-क्षेत्रमें यूनानी ६०० ई० पू० तक आगे बढ़ते रहे हैं किन्तु हिन्दू ४०० ई० पू०के आसपास थककर बैठ जाते हैं। यूरोपमें ३०० ई० पू० में ही अंधकार छा जाता है और १५०० ई० में १९ शताब्दियोंके बाद नया प्रकाश (पुनर्जागरण) आने लगता है, यद्यपि इसमें भारत तथा इस लम्बे कालकी तीन शताब्दियों—९०० १२०० ई०—में इस्लामी दर्शन बिल्कुल सुप्त नहीं बल्कि इस्लामिक शासनोंने कायम रखकर आरम्भ जलता रहता है और बाद उसके आधुनिक युगमें अपने स्थानपर प्रगतिका

[1] मानव-समाज ।

जलानेमें सफल होता है। उधर दर्शनकी भारतीय शाखा ४०० ई० पू०की बादकी चार शताब्दियोंमें राखकी ढेरमें चिंगारी बनी पड़ी रहती है। किन्तु ईसाकी पहिलीसे छठी शताब्दी तक—विशेषकर पिछली तीन शताब्दियोंमें—वह अपना कमाल दिखलाती है। यह वह समय है, जब कि पश्चिममें दर्शनकी अवस्था अब्तर रही है। नवींसे बारहवीं सदी तक भारतीय दर्शन इस्लामिक दर्शनका समकालीन ही नहीं समकक्ष रहता है, किन्तु उसके बाद वह ऐसी चिर समाधि लेता है, कि आजतक भी उसकी समाधि खुली नहीं है। इस्लामिक दर्शनके अवसानके बाद यूरोपीय दर्शनकी भी यही हालत हुई होती, यदि उसने सोलहवीं सदीमें[1] धर्मसे अपनेको मुक्त न किया होता।—सोलहवीं सदी यूरोपमें स्कोलास्तिक—धर्मपोषक—दर्शनका अन्त करती है, किन्तु भारतमें एकके बाद स्कोलास्तिक दोक्तर पैदा होते रहे हैं और दर्शनकी इस दासताको वह गर्वकी बात समझते हैं। यह उनकी समझमें नहीं आता, कि साइंस और कलाका सहयोगी बननेका मतलब है जीवित प्रकृति—प्रयोग—का जबर्दस्त आश्रय ग्रहण कर अपनी सृजनशक्तिको बढ़ाना, जो दर्शन उससे आजादी चाहता है, वह बुद्धि जीवन और खुद आजादीसे भी आजादी चाहता है।

विश्वव्यापी दर्शनकी धाराको देखनेसे मालूम होगा, कि वह राष्ट्रीयकी अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय ज्यादा है। दार्शनिक विचारोंके ग्रहण करनेमें उसने कहीं ज्यादा उदारता दिखलाई, जितना कि धर्मने एक दूसरे देशके धर्मोंको स्वीकार करनेमें। यह कहना गलत होगा, कि दर्शनके विचारोंके पीछे आर्थिक प्रश्नोंका कोई लगाव नहीं था, तो भी धर्मोंकी अपेक्षा वह बहुत कम एक राष्ट्रके स्वार्थको दूसरेपर लादना चाहता रहा, इसीलिए हम जितना गंगा, आमू-दजला और नालंदा-बुखारा-बगदाद-कार्दोवाका स्वतंत्र स्नेहपूर्ण समागम दर्शनोंमें पाते हैं, उतना साइंसके क्षेत्रमें अन्यत्र कहीं नहीं पाते। हमें अफसोस है, समय और साधनके अभावसे हम चीन-जापानकी दार्शनिक

---

[1] देखिए परिशिष्ट "दार्शनिकोंका काल क्रम"।

धाराका नहा है सके किंतु वैसा होनेपर भी इस निष्कपम ता वर्ह अन्तर नहीं पड़ता कि दर्शनक्षेत्रमें राष्ट्रीयताकी तान छेड़नेवाला गुट घातेमें है और दूसरोंको धासमें डालना चाहता है।

मैंने यहाँ दर्शनका विस्तृत भूगोलके मानचित्रपर एक पीढ़ीके बाद दूसरी पीढ़ीको सामने रखते हुए देखनेकी कोशिश की है, मैं इसमें कितना सफल हुआ हूँ इसे कहनेका अधिकारी मैं नहीं हूँ। किन्तु मैं इतना जरूर समझता हूँ कि दर्शनके समझनेका यही ठीक तरीका है और मुझे अफसोस है कि अभी तक किसी भाषामें दर्शनका इस तरह अध्ययन करनेका प्रयत्न नहीं किया गया है।—लेकिन इस तरीकेकी उपेक्षा ज्यादा समय तक नहीं की जा सकेगी यह निश्चित है।

पुस्तक लिखनेमें जिन ग्रंथोंसे मुझे सहायता मिली है उनकी तथा उनके लेखकोंकी नामावली मैंने पुस्तकके अन्तमें दे दी है। उनके ग्रंथोंका मैं जितना ऋणी हूँ उससे कृतज्ञता प्रकाशन द्वारा मैं अपनेको उऋण नहीं समझता—और वस्तुतः उस ऋणसे उऋण होनेका तो एक ही रास्ता है कि हिन्दीमें दर्शनपर ऐसी पुस्तकें निकलने लगें जिससे दर्शन-निर्माण की कोई बात भी न करे। प्रत्येक ग्रंथकारको, मैं समझता हूँ, अपने ग्रंथके प्रति यही भाव रखना चाहिए।—अमरता? बहुत भारी भ्रमके सिवा और कुछ नहीं है।

पुस्तक लिखनेमें पुस्तकों तथा आवश्यक सामग्री सुलभ करनेमें भदन्त आनंद कौसल्यायन और पंडित उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, साहित्यरत्नने सहायता की है शिष्टाचारके नाते ऐसे आत्मीयोंको भी धन्यवाद देता हूँ।

सेंट्रल जेल हजारीबाग
२५-३-१९४२

राहुल सांकृत्यायन

दर्शन-दिग्दर्शन

विषय-सूची

१. यूनानी दर्शन

प्रथम अध्याय

२. इस्लामिक दर्शन

द्वितीय अध्याय

पंचम अध्याय

एकादश अध्याय

द्वादश अध्याय

षोडश अध्याय

अनीश्वरवादी दर्शन

एकोनविंश अध्याय

गौडपाद और शंकर

पूर्वार्ध

१–यूनानी दर्शन

दर्शन-दिग्दर्शन

प्रथम अध्याय

१—यूनानी दर्शन

यूनान या यवन एक प्रदेशके कारण पड़ा सारे देशका नाम है, जिस तरह कि सिंधुसे हिन्दुस्तान और पारससे पारस्य (ईरान)। वस्तुतः यवन या यवन उन पुरियों (अथेन्स आदि)का नाम था, जो कि क्षुद्र-एसिया (आधुनिक एसियाई तुर्की) और यूरोपके बीचके समुद्रमें पड़ती थी। इन पुरियोंके नागरिक नाविक-जीवन और व्यापारमें बहुत कुशल थे और इसके लिये वे दूर-दूर तककी सामुद्रिक और स्थलीय यात्रायें करते रहते थे। ईसापूर्व छठी-सातवीं शताब्दियोंमें इन यवनी पुरियोंकी यह सरगर्मी ही थी, जिससे बाहरी दुनियाको इनका पता लगा और उन्हींके नामपर सारा देश यवन या यूनान कहा जाने लगा।

यूनान उस वक्त व्यापारके लिये ही नहीं, शिल्प और कलाके लिये भी विख्यात था और उसके दक्ष कारीगरोंके हाथोंकी बनी चीजोंकी बहुत माँग थी। यवन व्यापारी दूसरे देशोंमें जाकर, सिर्फ सौदेका ही परिवर्तन नहीं करते थे, बल्कि विचारोंका भी दान आदान करते थे जो कि ईसा पूर्वकी तीसरी-दूसरी सदियोंके कार्लो आदि गुफाओंमें अंकित उनके बौद्ध मठोंके लिये दिये दानोंसे सिद्ध है। किन्तु यह पीछेकी बात है जिस समयकी बात हम कह रहे हैं, उस समय मिश्र, बाबुलकी सभ्यतायें बहुत पुरानी और सम्माननीय समझी जाती थी। यवन सौदागरोंने इन पुरानी

इन पुराने युनिक दार्शनिकोंमें हम एक बात जो यह देखते हैं कि वह यह प्रश्न नहीं उठाते, कि इन तत्त्वोंको किसने बनाया? उनका प्रश्न है "ये कैसे बने?" भारतमें इनके समकालीन चार्वाक और बुद्धको भी किसी बनानेवाले विधाताके प्रश्नको नहीं छेड़ते देखते हैं। इन युनिक दार्शनिकोंके लिए जीवन महाभूतसे अलग चीज न थी, जिसके लिए कि एक पृथक् चालक चेतनशक्तिकी जरूरत हो। गर्जते-बादल, चलती-नदी, तरंगित-समुद्र, हिलता-वृक्ष, काँपती-पृथ्वी उनकी निर्जीवता नहीं, सजीवताको साबित करता है। इसीलिए भूतोंपर किसी अंतर्यामीके जाननेका सवाल उन्होंने नहीं उठाया।

ये थे युनिक दार्शनिक जिन्होंने पाश्चात्य दर्शनके विकासमें पहिला प्रयास किया।

§ २–बुद्धिवाद

पिथागोर (५७०-५०० ई० पू०)—युनिक दार्शनिकोंके बाद अगले विकासमें हम विचारधाराको और सूक्ष्म तथा विकासकी ओर लगे देखते हैं। युनिक दार्शनिक महाभूतोंके किनारे किनारे आगे बढ़ते हुए मूल-तत्त्वकी खोज कर रहे थे। अब हम पिथागोर जैसे दार्शनिकोंको किनारेसे छलाँग मारकर आगे बढ़ते देखते हैं। पिथागोर भी केवल दार्शनिक न था, वह अपने समयका श्रेष्ठ गणितज्ञ था। कहते हैं वह भारत आया—या यहाँके विचारोंसे प्रभावित हुआ था और यहींसे उसने पुनर्जन्मका सिद्धान्त (और शायद शारीरक ब्रह्मको भी) लिया था। जो भी हो उपनिषद्के ऋषियोंकी भाँति वह भी ठोस विश्वको छोड़कर कल्पना-जगतमें उड़ना चाहता था, यह उसके दर्शनमें स्पष्ट है। इस प्रकारके दर्शनको भारतीय परम्परामें विज्ञानवाद कहते हैं। पिथागोर मूलतत्त्वको ढूँढते हुए स्थूल व्यक्तियोंको छोड़ **आकृतिकी** ओर दौड़ता है। उसका कहना था महाभूत मूलतत्त्व नहीं हैं, न उनके सूक्ष्म रूप ही। मूलतत्त्व—पदार्थ—है आकृति या आकार। वीणाके तारकी लम्बाई और उसके स्वरका खास सम्बन्ध है।

एलियाके विचारक शुद्ध दार्शनिक पहलूपर ज्यादा जोर देते थे। इनका दर्शन **स्थिरवाद था,** अर्थात् परिवर्तन केवल स्थूल-दृष्टिसे दीखता है, सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर हम स्थिर-तत्त्वों या तत्त्वोंपर ही पहुँचते हैं।

(१) क्सेनोफेन् (५७०-४८० ई० पू०)—एलियाके दार्शनिकोंमें क्सेनोफेनका देवताओंके विरुद्ध यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है— मर्त्य (मनुष्य) विश्वास करते हैं कि देवता उसी तरह अस्तित्वमें आये जैसे कि हम और देवताओंके पास भी इंद्रियाँ वाणी काया है किन्तु यदि बैलों या घोड़ोंके पास हाथ होते, तो वह देवताओंकी बैलकी शकलके बनाते घोड़े, घोड़ेकी तरह बनाते। इथोपिया (अबीसीनिया) वाले अपने देवताओंको काले और चिपटी नाकवाले बनाते हैं और थ्रेसवाले अपने देवताओंको रक्तकेश नील नेत्र वाले।' क्सेनोफेन ईश्वरको साकार मनुष्य जैसा माननेके बिल्कुल विरुद्ध था, तथा बहुदेववादको भी नहीं चाहता था, वह मानता था, कि 'एक महान् ईश्वर है, जो काया और चिन्तन दोनोंमें मर्त्य जैसा नहीं है। वह उपनिषदके ऋषियोंकी भाँति कहता था—"सब एकम् है और एक ईश्वर है। इस वाक्यके प्रथम भागमें एकेश्वरवाद आया है और दूसरेमें ब्रह्म अद्वैत। वह अपने ब्रह्म-वादके बारेमें स्पष्ट कहता है— ईश्वर जगत् है वह शुद्ध (केवल) आत्मा नहीं है, बल्कि सारी प्राणयुक्त प्रकृति (वही) है।" अर्थात् वह रामानुजसे भी ज्यादा स्पष्ट शब्दोंमें ईश्वर और जगत्‌की अभिन्नताको मानता था साथ ही शंकरकी भाँति प्रकृतिसे इन्कार नहीं करता था।

(२) परमेनिद् (५४०-४८० ई० पू०)—एलियाके दार्शनिकोंमें दूसरा प्रसिद्ध पुरुष परमेनिद् हुआ। न सत्से असत् हो सकता है और न असत्से सत्‌की उत्पत्ति कभी हो सकती, गोया इसी वाक्यकी प्रतिध्वनि हमें वैशेषिक[1] और भगवद्गीता[2]में मिलती है। इस तरह वह इस परिणामपर पहुँचा, कि जगत् एक, अ-कृत, अ-विनाशी सत्य वस्तु है।

---

[1] "नासदः सदुत्पत्तिः"। [2] "नासतो विद्यते भावः" (गीता २।१६)

गति या दूसरे जो परिवर्तन हमें जगत्‌में दिखलाई देते हैं, वह भ्रम है।

(३) ज़ेनो (४९० -० ई० पू०)—एलियाका एक राजनीतिक दार्शनिक था। अपने एलियातिक सम्प्रदायकी भाँति यह स्थिर अद्वैतवादी था। वह सम्भवतः पहिला दार्शनिक था जिसने द्वन्द्वात्मक प्रयोग पहिले-पहिल प्रदर्शित किया था (यद्यपि उसका प्रयोग करना स्थिरवादकी सिद्धिके लिए था क्षणिक-वादके लिए नहीं) इसलिए उसको द्वन्द्ववादका पिता कहते हैं।

सारे एलियातिक दार्शनिक इन्द्रिय-प्रत्यक्षको वास्तविक ज्ञानका साधन नहीं मानते थे, उनका कहना था कि सत्यका साक्षात्कार चिन्तन—विचार—से होता है, इन्द्रियाँ केवल भ्रम उत्पन्न करती हैं। वास्तविकता एक अद्वैत है, जिसका साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा नहीं, चिन्तन-द्वारा ही किया जा सकता है।

एलियातिकोंका दर्शन स्थिर विज्ञान अद्वैतवाद है।

२–द्वैतवाद

अन्तमें एलियातिक चाहे स्वतः इस परिणामपर पहुँचे हों, अथवा बाहरी (भारतीय) रहस्यवादी प्रभावके कारण, किन्तु आरम्भमें हेराक्लितु, थलेस आदि आयोनियाकी स्वतन्त्र धारासे यह बहुत भिन्नता रखते थे, इसमें सन्देह नहीं। इन अद्वैतवादियोंके विरुद्ध एक दूसरी भी विचारधारा थी, जो स्थिरवादी होते हुए भी परिवर्तनकी व्याख्या अनेक द्वैतवादसे करती थी—अर्थात् मूलतत्त्व अनेक, स्थिर, नित्य हैं, किन्तु उनमें संयोग-वियोग होता रहता है, जिसके कारण हमें परिवर्तन दिखलाई पड़ता है।

(१) हेराक्लितु (५३५-४७५ ई० पू०)—हेराक्लितुका वही समय है जो कि गौतम बुद्धका। हेराक्लितु भी बुद्धकी भाँति ही परिवर्तनवाद, क्षणिक-वादको मानता था। हेराक्लितुके ख्यालके अनुसार जगत्‌की सृष्टि और प्रलयके युग होते हैं। हर बार सृष्टि बनकर अन्तमें आग द्वारा उसका नाश होता है। भारतीय परम्परामें भी जल और अग्नि प्रलयका

जिक्र आता है। यद्यपि उपनिषद् और उससे पहिलेके साहित्यमें उसका नाम नहीं है। बुद्धके उपदेशोंमें इसका कुछ इशारा मिलता है और पीछे वसुबन्धु आदि तो 'अग्नि-सन्तति'[1] का ज्यादा आगे जिक्र करते हैं।

यूनिक दार्शनिकोंकी भाँति ही हेराक्लितु भी एक अन्तिम तत्त्व अग्निकी बात करता है, लेकिन उसका जोर परिवर्तन या परिणामवाद पर बहुत ज्यादा है। दुनिया निरन्तर बदल रही है, हर एक चीज दीपशिखाकी भाँति हर वक्त नष्ट और उत्पन्न हो रही है। चीजोंमें किसी तरहकी वास्तविक स्थिरता नहीं। स्थिरता केवल भ्रम है जो परिवर्तनकी शीघ्रता तथा सदृश-उत्पत्ति (उत्पन्न होनेवाली चीज अपनेमें पहिलेके समान होती है) के कारण होता है। परिवर्तन विश्वका जीवन है। इस प्रकार हेराक्लितु एलियातिकोंसे बिल्कुल उलटा मत रखता था। वह अद्वैती नहीं द्वैती, स्थिरतावादी नहीं परिवर्तनवादी था।

हेराक्लितुका जन्म एफेसु[2]के एक रईस घरानेमें हुआ था, लेकिन वह समय ऐसा था, जब कि पुराने रईसोंकी प्रभुताको हटाकर यूनानी व्यापारी वहाँके शासक बन चुके थे। हेराक्लितुके मनमें 'ते हि नो दिवसा गताः'[3] की आग लगी हुई थी और वह इस स्थितिको सहन नहीं कर सकता था और समयके परिवर्तनकी जबर्दस्त हवाने उसे एक जबरदस्त परिवर्तनवादी दार्शनिक बना दिया। शायद, यदि रईसोंका राज्य होता, तो हेराक्लितु परिवर्तनके सत्यका स्वप्न भी न पाता। हेराक्लितुने एक क्रान्तिकारी दर्शनकी सृष्टि की किन्तु व्यवहारमें उसकी क्रान्ति व्यापारियोंके राज्यको उलटना भर चाहती थी। वह आजीवन रईसमिजाज रहा और जनताको अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखता था। आखिर इसी जनताने तो उसके अपने वर्गको सिंहासनसे खींचकर धूलिमें ला पटका था।

---

[1] अभिधर्म-कोश (वसुबन्धु)। [2] Ephesus [3] हाय! वे हमारे दिन चले गये।

रहा था। माक्‌मने उसे इस सासतमे बचाया, और दोनों परोंके बल, ठोस पृथ्वीपर ला रखा—भौतिकतत्त्व, 'आसमानी' विज्ञान (मन)के विकास नहीं है, बल्कि विज्ञान ही भौतिक-तत्त्वोंका चरम विकास है, ऊपरसे नीचे आनेकी जरूरत नहीं, बल्कि नीचेसे ऊपर जानेमें बात ज्यादा दुरुस्त उतरती है।

(२) **अनक्सागोर्** (५०० ४२८ ई० पू०) अनक्सागोरने द्वैतवाद का और विकास किया। उसने कहा कि हेराक्लितुकी भाँति, आग जैसे किसी एक तत्त्वको मूलतत्त्व या **प्रधान** माननेकी जरूरत नहीं। ये **बीज** (मूल कारण) अनेक प्रकारके हो सकते हैं और उनके मिलनसे ही सारी चीजें बनती हैं।

(३) **एम्पेदोकल्** (४८३ ३० ई० पू०) अनक्सागोरके समकालीन एम्पेदोक्लने मूल-तत्त्वोंकी संख्या अनिश्चित नहीं रखनी चाही, और युनिक दार्शनिकोंकी शिक्षासे फायदा उठाकर अग्नि वायु, जल, पृथ्वी—ये चार "बीज" निश्चित कर दिये। यही चारों तरहके बीज एक दूसरेके संयोग और वियोगसे विश्व और उसकी सभी चीजोंको बनाते और बिगाड़ते रहते हैं। संयोग, वियोग कैसे संभव है, इसके लिये एम्पेदोक्लने एक और कल्पना की—'जैसे शरीरमें राग, द्वेष मिलन और हटनेके कारण होते हैं उसी तरह इन बीजोंमें राग और द्वेष मौजूद हैं। एम्पेदोक्लके ख्याली उड़ानने इस सिलसिलेमें और आगे बढ़कर कहा कि—'मूल बीज ही नहीं खुद शरीरके अंग भी पहिले अलग अलग थे, और फिर एक दूसरेसे मिलकर एक शरीर बन गए। उसने यह भी कहा कि—'भिन्न भिन्न अंगोंसे मिलकर जितने प्रकारके शरीर बनते हैं उनमें सबसे योग्यतम ही बच रहते हैं बाकी नष्ट हो जाते हैं—' ये विचार सेल और विकासके सिद्धान्तोंकी पूर्व झलक हैं।

(४) **देमोक्रितु** (४६०-३७० ई० पू०)—देमोक्रितु यूनानी द्वैतवादी दार्शनिकोंमें ही प्रधान स्थान नहीं रखता बल्कि अपने **परमाणुवादके** कारण पौरस्त्य पाश्चात्त्य दोनों दर्शनोंमें उसका बहुत ऊँचा स्थान है। भारतीय दर्शन में परमाणुवादका प्रवेश यूनानियोंके संपर्कसे ही हुआ

परिमाण—अर्थात् एक लंबाई, चौड़ाई, मुटाई—के नहीं रखते। परमाणुओंसे बने पिंडोंके आकारमें भेद है। परमाणुओंके आकार उनके स्थान और क्रमके कारण है। परमाणु-जगत्‌की आरम्भिक इकाइयाँ, ईंट या अक्षर हैं। जैसे २, ३ का भेद आकारमें है, ३ ६ का भेद स्थितिके कारण है—अगर ३का मुँह दूसरी ओर कर दें तो वही ६ हो जायगा। ३६, ६३ का अन्तर अवयवोंके क्रमभेदके कारण है। परमाणु गतिशून्य तत्त्व नहीं हैं, बल्कि उनमें स्वाभाविक गति होती है। परमाणु निरन्तर हरकत करते रहते हैं। इस तरह हरकत करते रहनेसे उनका दूसरोंके साथ संयोग होता है और इस तरह जगत् और उसके सारे पिंड बनते हैं। किसी किसी वक्त ये पिंड आपसमें टकराते हैं, फिर कितने ही परमाणु उनसे टूट निकलते हैं। इस तरह देमाक्रितुका परमाणु सिद्धान्त पिछली शताब्दीके यांत्रिक भौतिकवादसे बहुत समानता रखता है, और विश्वकी अग्नि-जैसी व्याख्या भौतिकतत्त्वों और गतिके द्वारा करता है। देमाक्रितु शब्द, वर्ण, रस, गंधकी सत्ताको व्यवहारके लिये ही मानता है, नहीं तो वस्तुतः न मीठा है न कड़ुवा, न ठंडा है न गरम। वस्तुतः यहाँ हैं परमाणु और शून्य।' इस तरह परमाणुवादी दार्शनिक बाह्य जगत और उसकी वस्तुओंको एक भ्रम या इन्द्रजालसे बढ़कर नहीं मानते।

३–सोफीवाद

कम्बिस और दारयोशके समय युनिक नगर जब ईरानियोंके हाथमें चला गया, तो कितने ही विचारक लोग इधर-उधर चले गये यह हम बतला आये हैं। जिस तरह इस वक्त पिथागोरसके अनुयायियोंने भागकर इतालियामें अपना केन्द्र बनाया, उसी तरह और विचारक भी भगे, मगर उन्होंने एक जगह रहनेके बदले घुमक्कड़ या परिव्राजक होकर रहना पसन्द किया। इन्हें सोफी[1] या ज्ञानी कहते हैं। यद्यपि इस्लामी परिभाषामें प्रसिद्ध सूफी

---

[1] Sophist

§ ३—यूनानी दर्शनका मध्याह्न

ईसा-पूर्व चौथी सदी यूनानी दर्शनका सुवर्ण-युग है। यों तो पहिले यूनान अपने मौलिक उपायों द्वारा प्रयत्नकर तथ्योंमें तत्त्वका पचारा था, किन्तु उसके पूर्ण रूप सुकरात, उसके शिष्य अफलातूँ और प्रशिष्य अरस्तू ने पूरा किया। इस दर्शनको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है, पहिला सुकरात गुरु-शिष्यका यथार्थवाद और दूसरा अरस्तूका प्रयोगवाद।

१—यथार्थवादी सुकरात (४६९–३९९ ई० पू०)

सोफियोंके विरुद्ध का विचार सुकरात मानता था। सोफियोंकी भाँति मौलिक शिक्षा और आचार द्वारा उपदेश देना उसे भी पसन्द थे।

वस्तुतः उसके समसामयिक भी सुकरातको एक सोफी समझते थे। सोफियोंकी भाँति साधारण शिक्षा तथा मानव सदाचारपर वह जोर देता था और इन्हींकी तरह पुरानी रूढ़ियोंपर प्रहार करता था। लेकिन उसका प्रहार सिर्फ अभावात्मक नहीं था। वह कहता था, सच्चा ज्ञान सम्भव है बशर्ते कि उसके लिये ठीक तौरपर प्रयत्न किया जाय, जो बातें हमारी समझमें आती हैं या हमारे सामने आई हैं, उन्हें तत्सम्बन्धी घटनाओंपर हम परखें, इस तरह अनेक परखोंके बाद हम एक सच्चाईपर पहुँच सकते हैं। "ज्ञानके समान पवित्रतम कोई चीज नहीं है"[1] वाक्यमें गीताने सुकरातकी ही बातको दुहराया है। 'ठीक करनेके लिये ठीक सोचना जरूर है' सुकरातका कथन था।

बुद्धकी भाँति सुकरातने कोई ग्रंथ नहीं लिखा, किन्तु बुद्धके शिष्योंने उनके जीवनके समयमें कंठस्थ करना शुरू किया था, जिससे हम उनके उपदेशोंको बहुत कुछ सीधे तौरपर जान सकते हैं, किन्तु सुकरातके उपदेशोंके बारेमें यह भी सुभीता नहीं। सुकरातका क्या जीवन-दर्शन था यह उसके आचरणसे ही मालूम हो सकता है, लेकिन उसकी व्याख्या भिन्न भिन्न लेखक भिन्न भिन्न ढंगसे करते हैं। कुछ लेखक सुकरातकी प्रसन्नमुखता और मर्यादित जीवन-उपभोगको दिखलाकर बतलाते हैं कि वह भोगवादी[2] था। अन्तिस्थेन और दूसरे लेखक उसकी शारीरिक कष्टोंकी ओरसे बेपर्वाही तथा आवश्यकता पड़नेपर जीवन-सुखको भी छोड़नेके लिये तैयार रहनेको दिखलाकर उसे सादा जीवनका पक्षपाती बतलाते हैं।

सुकरातको हवाई बहस पसन्द न थी। 'विश्वका स्वभाव क्या है, सृष्टि कैसे अस्तित्वमें आई या नक्षत्र जगतके भिन्न भिन्न प्राकट्य किन शक्तियोंके कारण होते हैं,' इत्यादि प्रश्नोंपर बहस करनेको वह मूर्ख-क्रीड़ा कहता था।

---

[1] "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" (गीता ४।३८)

[2] Hedonist

अफलातूँका दर्शन—इसमें अफलातूँ प्रसिद्ध इस पद्धतिके परस्पर विरोधी दार्शनिक विचारोंके समन्वयकी ओर जाते हैं। वह सुक्रातकी इस बातसे सहमत था कि ठीकतौरसे अर्थात् वस्तुपरक ज्ञान (या तत्त्व ज्ञान) सम्भव है। साथ ही वह हेराक्लितुके साथ भी सहमत था कि साधारण तौरसे जिन पदार्थोंका साक्षात्कार हम करते हैं वे सभी सदा बदलते रहनेवाली धारा है और उनके बारेमें किसी महासत्यपर नहीं पहुँचा जा सकता। वह एलियातिकोंकी भाँति एक परिवर्तनशील जगत् (विज्ञान-जगत्)को मानता था, परमाणुवादियोंके बहुत्व (द्वैत) वादका समर्थन करते हुए कहता था कि महासत्य—विज्ञान—बहुत है। इस तरह वह इस परिणामपर पहुँचा कि—ज्ञानका यथार्थ विषय सदा—परिवर्तनशील ज्ञान—प्रवाह और उसकी चीजें नहीं हैं बल्कि उसका विषय है लोकातीत अचल एक रस, इन्द्रिय अगोचर पदार्थ, विज्ञान (= मन) जो कि पिथागोरकी आकृतिसे मिलता-जुलता था। इस तरह पिथागोर हेराक्लितु और सुक्रात तीनोंके दार्शनिक विचारोंका समन्वय अफलातूँने स्थापित करना चाहा।

अफलातूँके लिए इंद्रिय प्रत्यक्षका ज्ञानमें बहुत कम महत्त्व था। इंद्रिय प्रत्यक्ष वस्तुओंकी वास्तविकताको नहीं प्रकट करता, वह हमें सिर्फ उनकी बाहरी झाँकी कराता है—राय सच्ची भी हो सकती है झूठी भी, इसलिए सिर्फ रायका कोई महत्त्व नहीं रखता। वास्तविक ज्ञान बुद्धि या चिन्तनसे होता है। इंद्रियोंकी दुनिया एक घटिया-दर्जेकी नकली वास्तविकता है, वह वास्तविकताका मोटा सा अटकल भर है।

ज्ञानकी प्राप्ति दो प्रकारके चिन्तनपर निर्भर है—(१) विज्ञान[1] (=मन) में बिखरे हुए विशेषों[2]का ख्यालमें लाना (२) विज्ञानको जाति[3] या सामान्यके रूपमें वर्गीकरण करना। यह सामान्य विशेष भारतीय न्याय वैशेषिक दर्शनमें बहुत आता है। वैशेषिक सूत्रोंके छ

[1] Idea [2] Particular [3] Archtype

पदार्थोंमे सामान्य, विशेष चार-पाँचवें पदार्थ है और उनका उद्‌गम इसी यूनानी दार्शनिक अफ्लातूँसे हुआ था। अफलातूँ यह भी मानता था कि जो चिंतन ज्ञानका साधन है, उसे विज्ञानके रूपमें होना चाहिए बाह्यजगत्‌के जो प्रतिबिंब या वेदना जिसको इंद्रियाँ लाती है उसपर चिन्तन करके हम सत्य तक नहीं पहुँच सकते।

अफ्लातूँ कुछ पदार्थोंको स्वतःसिद्ध[1] कहता था, इनमें गणित संबंधी ज्ञान—संख्या तथा तत्संबंधी पदार्थ—भाव अभाव, सादृश्य, भेद, एकता, अनेकता—शामिल है। इनमेंसे कितने ही पदार्थोंका वर्णन वैशेषिकमें भी आता है।

ज्ञानकी परिभाषा करते हुए अफ्लातूँ कहता है—'विज्ञान और वास्तविकताका सामंजस्य ज्ञान है, वास्तविकता निर्विषय नहीं हो सकती, उसका अवश्य कोई विषय होना चाहिए और वही विषय एक-रस विज्ञान है।

भाव पदार्थके बारेमें वह कहता है—सच्चा भाव स्थिर अपरिवर्तनशील, अनादि है इसलिए वास्तविक ज्ञानके लिए हम वस्तुमात्रके इसी स्थिर अपरिवर्तनशील सारको जानना चाहिए।

सामान्य, विशेष—जब हम इंद्रियोसे प्राप्त प्रतिबिंबों या वेदनाओंसे नहीं, बल्कि उनसे परे शुद्ध विज्ञानसे ज्ञानको प्राप्त करते है, तो वस्तुओंमें हमें सार्वत्रिक (सामान्य) अपरिवर्तनशील सारतत्त्वका ज्ञान होता है, और यही सच्चा ज्ञान (=तत्त्वज्ञान) है। भारतमें सामान्यके जबर्दस्त दुश्मन बौद्ध रहे हैं क्योंकि इसमें उन्हें नित्यतावादकी स्थापनाकी छिपी कोशिश मालूम होती थी। नैयायिक व्यक्ति, आकृति जाति तीनोंको पदार्थ[2] मानते थे। प्रत्यक्षवादी कहते थे कि सत्ता व्यक्तियोंकी ही है, दिमागसे बाहर विज्ञान या जातिकी तरहकी किसी चीजका अस्तित्व नहीं पाया जाता, अन्तस्थनेस कहा था—'मै एक अश्व (=घोड़ा) तो देखता

[1] A priory　[2] व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थाः—न्यायसूत्र २।२।६७

आन्तरिक विरोध था। उसे विरोधको मानिक व्याख्याकी व्याख्या द्वारा अफलातून दूर ही नहीं करना चाहता था बल्कि उसमें कुछ सदियों पहिले नागरिक ऋषियाने भी उसी अभिप्रायसे पुरुषसूक्त बनाकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्रको सिर, बाहु, जाँघ, पैरसे उपमा दे सामाजिक शान्ति कायम करनी चाही थी। दर्शन-क्षेत्रमें इस तरहकी उपमासे अफलातून विज्ञानोंके ऊँचे-नीचे दर्जे कायम करना चाहता है। सबसे श्रेष्ठ (=उच्चतम) विज्ञान, ईश्वर विज्ञान है जो कि बाकी सभी विज्ञानोंका स्रोत है। यह विज्ञान महान् है, इससे पर और कोई दूसरा महान विज्ञान नहीं है।

दो संसार—संसारमें दो प्रकारके तत्त्व हैं, एक विज्ञान (=मन) दूसरा भौतिक तत्त्व। किन्तु उनमें विज्ञान ही वास्तविक तत्त्व है वही असलतम पदार्थ है, हर एक चीजका रूप और सार अन्तमें जाकर इसी तत्त्व (=विज्ञान) पर निर्भर है। विश्वमें वही नियमन और नियंत्रण करता है। दूसरे भौतिक तत्त्व, मूल नहीं कार्य, चमत्कारक नहीं सुप्त चेतन नहीं जड़, स्वेच्छा-गति नहीं अनिश्चित-गतिकी शक्तियाँ हैं, वे इच्छा बिना ही विज्ञानके दास हैं विज्ञानकी आज्ञापर नाचते हैं और किसी तरह भी हो, विज्ञानकी छाप उनपर लगती है। यही मूल स्वरूप (विज्ञान) सक्रिय कारण है भौतिक तत्त्व सहयोगी कारण है।

ईश्वर—उच्चतम विज्ञान ईश्वर (विधाता=दमीउग) है यह वह ध्येय है। अफलातून विधाताकी उपमा मूर्तिकारसे देता है। विधाता मानव मूर्तिकारकी भाँति विज्ञान-जगत् (मानसिक दुनिया)में मौजूद नमूने (मूल स्वरूप, सामान्य)के अनुसार भौतिक विश्वको बनाता है। विज्ञानके अनुसार जहाँ तक ईश्वर उसके लिए सम्भव है वह एक पूर्ण विश्व बनाता है, इतनेपर भी यदि विश्वमें कुछ अपूर्णता दिखाई पड़ती है तो मूर्तिकारको दोष न देना चाहिए, क्योंकि आखिर उसे भौतिक तत्त्वोंपर काम करना है और भौतिक तत्त्व विज्ञानकी कृतिमें बाधा डालते हैं। पीछे आनेवाले हमारे नैयायिकोंकी भाँति विधाता (=दमीउग) जनक नहीं इंजीनियर (वास्तुशास्त्री) है। वह स्वयं उच्चतम विज्ञान है, किन्तु साथ ही भौतिक

तत्त्व भी परिचित मालूम हैं—भौतिक-जगत् और विज्ञान जगत्—यह दो दुनियाएँ परिचित मौजूद हैं। इन दोनोंमें संबंध जोड़ा—विज्ञानके रूपमें मौजूद मूल-स्वरूपों (=सामान्यों)के अनुसार भौतिक सत्ताओंको गढ़नेके लिए एक स्रष्टाको उत्पन्न भी विधाता वही करता है। यही बाह्य और अन्तर जगतकी संगति कराता है। अफलातूँका विधाता 'शिव' (=अच्छा) रूप। वह सबसे उत्तम रूप है—मूल वस्तुओंके उद्भव (उत्पत्ति)का भी स्थान है और उस प्रकाशका भी जिससे उनका ज्ञान होता है। इसी तरह शिव सभी वस्तु—सत्ता और उसकी हमारे ज्ञानका भी स्रोत है।

दर्शनकी विशेषता—अफलातूँका दर्शन बुद्धिवादी है, क्योंकि वह ज्ञानके लिए इन्द्रिय-प्रत्यक्षपर नहीं, बुद्धिपर ज़ोर देता है। प्रत्यक्ष जगत्से अलग बुद्धिगम्य विज्ञान-जगत् उसका वास्तविक जगत् है। विज्ञानवादी तो अफलातूँ है ही, क्योंकि विज्ञान रूप (=मूलस्वरूप)—ही उसके लिए एकमात्र सार है। बाह्यार्थवादी भी उसे कह सकते हैं, क्योंकि बाहरी दुनियाको वह निराधार नहीं, एक वास्तविक जगत् (=विज्ञान जगत्)का बाह्य प्रकाश कहता है। सारी दुनियाका विज्ञानवाला महाविज्ञान (=ईश्वर)की सत्ताको स्वीकार कर वह ब्रह्मवादी भी है, किन्तु वह भौतिकवादी बिलकुल नहीं है, क्योंकि भौतिक तत्त्व और उससे बनी दुनियाको वह प्रधान नहीं गौण मानता है।

अफलातूँके सामाजिक राजनीतिक विचारोंके बारेमें 'मानव-समाज'में कहा जा चुका है। वह समाजमें परिवर्तन चाहता था, किन्तु परिवर्तन ठोस मौजूदा समाजको लेकर नहीं बल्कि मूल-स्वरूपके आधारपर।

३—वस्तुवादी अरस्तू[1] (३८४-३२२ ई० पू०)

अरस्तू बुद्ध (५६३-४८३ ई० पू०)से एक सदी पीछे स्तागिरामें पैदा हुआ था। उसका पिता निकोमाचु[2] सिकन्दरके बाप तथा मकदूनियाके

[1] कृतियाँ दे० पृष्ठ ११५, २२१-३, २७०-१ [2] Nicomachus

राजा फिलिपका राजवैद्य था। उसके बाल्य कालमें अफलातूकी ख्याति खूब फैली हुई थी। १७ वर्षकी उम्रमें (३६७ ई० पू०) अरस्तू अफलातूकी पाठशालामें दाखिल हुआ और तबतक अपने गुरुके साथ रहा, जब तक कि (बीस वर्ष बाद) अफलातू (३४७ ई० पू० में) मर नहीं गया। फिलिपको अपने लड़के सिकन्दर (३५६-३२३ ई० पू०)की शिक्षाके लिये एक योग्य शिक्षककी जरूरत थी। उसकी दृष्टि अरस्तूपर पड़ी। विश्व-विजयी सिकन्दरके निर्माणमें अरस्तूका खास हाथ था और इसका बीज ढूँढ़नेके लिये हमें उसके गुरु अफलातू तथा परमगुरु सुक्रात तक जाना पड़ेगा। सुक्रात अपने स्वतंत्र विचारोंके लिये एथन्सके जननिर्वाचित शासकोंके कोपका भाजन बना। अफलातू अपने समयके समाजसे असन्तुष्ट था, इसलिए उसमें परिवर्तन करके एक साम्यवादी समाज कायम करना चाहता था, लेकिन इस समाजकी बुनियाद वह धरतीपर नहीं डालना चाहता था। वह उसे 'विज्ञान-जगत' मे लाना चाहता था, और उसका शासन लौकिक-पुरुषोंके हाथमें नहीं बल्कि लोकसे परे ख्याली दुनियामें उड़नेवाले दार्शनिकोंके हाथमें देना चाहता था। यदि अफलातूको पता होता कि उसके साम्यवादी समाजकी स्थापनामें एक विश्व विजेता सहायक हो सकता है तो १८वीं १९वीं सदीके युरोपियन समाजवादियों—प्रूधों (१८०९-६५) आदिकी भाँति वह भी साम्यवादी राजाकी तलाश करता। अरस्तू बीस साल तक अपने गुरुके विचारोंको सुनता रहा, इस लिए उनका असर उसपर होना जरूरी था। कोई ताज्जुब नहीं यदि अफलातूका साम्यवादी राज्य अरस्तू द्वारा होकर सिकन्दरके पास विश्व राज्य या चक्रवर्ती राज्यके रूपमें पहुँचा। बुद्ध अपने साधुओंके संघमें पूरा आर्थिक साम्यवाद—जहाँ तक उपभोग सामग्रीका सम्बन्ध है—कायम करना चाहते थे, यदि वह सभव समझते तो शायद विस्तृत समाजमें भी उसका प्रयोग करते किन्तु बुद्धकी वस्तु-वादिता उन्हें इस तरहके तजर्बे से रोकती थी। ऐसे विचारोंको रखते भी बुद्ध, चक्रवर्तीवाद—सारे विश्वका एक धर्मराजा होना—के बड़े प्रशंसक थे। हो सकता

(विज्ञान-जगत्)की सत्ताको वह स्वीकार करता था। युनिक दार्शनिक सिर्फ भौतिक पहलूपर जोर देते थे पिथागोर और अफलातूं मूलस्वरूप या विज्ञान ('आकृति या मूलस्वरूप')पर जोर देते थे किन्तु अरस्तू दोनोंको अभिन्न अंग मानता था—'मूलस्वरूप (विज्ञान) भौतिक तत्त्वों में मौजूद है और भौतिक तत्त्व मूलस्वरूपों (विज्ञानों)में सामान्य (=जाति) व्यक्तियोंमें मौजूद है, इन दोनोंको अलग समझा जा सकता है किंतु अलग नहीं किया जा सकता। अफलातूं दार्शनिकके अतिरिक्त गणितशास्त्री भी था और गणितकी काल्पनिक बिंदु रेखा संख्या आदिकी छाप उसके दर्शनपर भी मिलती है। अरस्तू प्राणिशास्त्री भी था इसलिए विज्ञानों और भौतिक-तत्त्वोंको अलग करके नहीं देख सकता था। विज्ञान और भौतिक-तत्त्व, स्थिरता (एलियातिक) और परिवर्तनशीलता (हेरा-क्लितु)का वह समन्वय करना चाहता था। वह सभी चीजोंमें विज्ञान (=मूलस्वरूप) और भौतिक तत्त्वोंको देखता था। मूर्तिमें संगमर्मर भौतिक तत्त्व है और उसके ऊपर जो आकृति लायी गई है वह विज्ञान है जो कि मूर्तिकारके दिमागसे निकला है। वनस्पति, पशु या मनुष्यमें शरीर भौतिक तत्त्व है और पाचन, वेदना आदि विज्ञान-तत्त्व। आकृतिके बिना कोई चीज नहीं है, पृथ्वी, जल, आग और हवा भी बिना आकृतिके नहीं हैं ये भी मूल गुण—रूक्षता नमी, उष्णता सर्दी—के भिन्न भिन्न योगोंसे बने हैं। सांख्यके विद्यमान संस्करणमें इन्हीं मूलगुणोंको तन्मात्रा कहकर उन्हें भूतोंका कारण कहा गया और वह अरस्तूके इसी ख्यालसे लिया गया मालूम होता है। भौतिक तत्त्व वह है जिनमें वृद्धि या विकास हो सकता है, यद्यपि यह वृद्धि या विकास एक सीमा रखता है। पत्थरको खोद किसी तरहकी मूर्ति बन सकती है किन्तु वृक्ष नहीं बन सकता। एक पौधा या अमोला बढ़कर पीपल बन सकता है किन्तु पशु नहीं बन सकता। इस विचार धारासे अरस्तूको जाति स्थिरताके सिद्धान्तपर पहुँचा दिया और वह समझने लगा कि जातियोंमें परिवर्तन नहीं होता। इस धारणा ने अरस्तूको प्राणिशास्त्रमें और आगे नहीं बढ़ने दिया और वह उसी-

सका सबसे महान प्राणिशास्त्रीय आविष्कार जाति-परिवर्तन[1] तक नहीं पहुँच सका। ऐसा होते हुए भी एक जातिमें न रही अलग अलग पीढ़ियोंमें रूप विकास और उनके साम्यकी ओर ध्यान दिये बिना वह नहीं रह सकता था। छोटी-छोटी प्राणि-जातियोंकी पीढ़ीमें क्रमशः आगे बढ़ती प्राणि जातियाँ उच्च उच्चतर विकासको उगल देंगी। विज्ञान (=मूलस्वरूप) रहित भौतिक तत्त्वोंका विकास उतना गहरा नहीं है, जितना कि विज्ञान-युक्त तत्त्वोंका। इस विकासका उच्चतम रूप वह है जिससे आगे विकासकी गुंजाइश नहीं। अतएव जो भौतिक तत्त्वकी परिभाषामें आ नहीं सकता वह ईश्वर है। वह अफलातूँका अपरिवर्तनशील विज्ञान सिर्फ यही ईश्वर है जो कि अरस्तूके विचारसे विधाता (कर्ता) नहीं है क्योंकि विज्ञान और भौतिक तत्त्व हमेशासे मौजूद थे। तो भी जब भी हो सभी वस्तुओंका खिंचाव ईश्वरकी ओर है। दुनियाकी चाह वह है और उसकी उपस्थिति मात्रसे वस्तुएँ ऊँचे विकासकी ओर अग्रसर होती हैं। वह निश्चल अचल चालक है यह उसका प्रेम ही है जो जगतको चला रहा है।

अरस्तू चार प्रकारके कारण मानता है—(१) उपादान कारण—जैसे घड़ेके लिए मिट्टी; (२) मूल-स्वरूप या विज्ञान कारण—जिन नियमोंके अनुसार कार्य (=घड़ा) बनता है; (३) निमित्त कारण[3]—जिसके द्वारा उपादान कारण कार्यकी शकल लेता है, जैसे कुम्हार आदि; (४) अंतिम कारण या प्रयोजन—जिसके लिए कि कारण बना। पहिले और तीसरे कारणोंको भारतीय नैयायिकोंने भी लिया है। अरस्तूका यह भी कहना है कि हर कार्यको चारों तरहके कारणोंकी जरूरत नहीं, कितनोंके लिए उपादान और निमित्त कारण ही काफी होते हैं।

---

[1] देखो 'विश्वकी रूपरेखा'।

[2] यह कल्पना सांख्यके पुरुषसे मिलती जुलती है, यद्यपि अनीश्वरवादी सांख्य एककी जगह अनेक पुरुष मानता है। [3] Efficient cause

(२) **ज्ञान**—अरस्तूका कहना था—ज्ञानकी प्राप्तिके लिये यह जरूरी है कि हम अपनी बुद्धिसे ज्यादा अपनी इन्द्रियोंपर विश्वास रक्खें और अपनी बुद्धिपर उसी वक्त विश्वास करें जब कि उसका समर्थन घटनायें करती हों। सच्चा ज्ञान सिर्फ घटनाओंका परिचय ही नहीं बल्कि यह भी जानना है कि किन वजहों किन कारणों या स्थितियोंमें वैसा होता है। जो विद्या या दर्शन आन्तिम या चरम कारणपर विचार करता है, उसे अरस्तू **प्रथम दर्शन** कहता है, आज-कल उसे ही अध्यात्मशास्त्र कहते हैं। अरस्तू तर्कशास्त्रके प्रथम आचार्योंमें है। उसके अनुसार तर्कका काम वह तरीका बतलाना है, जिससे हम ज्ञान तक पहुँच सकें। इस तरह तर्क, दर्शन तक पहुँचनेके लिये सोपान (=सीढ़ी) है। चिन्तन या जिस प्रक्रियासे हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसका विश्लेषण तर्कका मुख्य विषय है। तर्क वस्तुतः शुद्ध चिन्तनकी विद्या है। हमारे चिन्तनका आरम्भ सदा इन्द्रिय-प्रत्यक्षसे होता है। हम पहिले विशेषको जानते हैं, फिर उससे सामान्यपर पहुँचते हैं—अर्थात् पहिले अधिक ज्ञातको जानते हैं, फिर उससे और अधिक ज्ञात और अधिक निश्चितको। हम पहिले अलग-अलग जगह रसोईघरमें, श्मशानमें (दूजनमें भी) धुएँके साथ आगको देखते हैं फिर हमारी सामान्य धारणा बनती है—जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ वहाँ आग होती है।

अरस्तूने अपने तर्कशास्त्रके लिये दस और कहीं आठ प्रमेय[1] (ज्ञानके विषय) माने हैं—(१) वह क्या है, यानी द्रव्य (मनुष्य) (२) किनसे बना है यानी **गुण**, (३) वह कितना बड़ा है यानी **परिमाण** (३॥ हाथ) (४) क्या संबन्ध रखता है यानी सम्बन्ध (बृहत्तर दुगना), (५) वह कहाँ है दिशा या देश (सड़क पर) (६) कब होता है यानी **काल**, (७) किस तरह है यानी **आसन** (लेटा या बैठा), (८) किस तरह है यानी **स्थिति** (कपड़े पहिने या हथियार-बन्द)

---

[1] Category

(९) [illegible] पाना धम (गड़ना [illegible]), (१०) [illegible] [illegible] निष्क्रियता (क[illegible] [illegible] जाना)। इनमें द्रव्य गुण कर्म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उनमें जो द्रव्योंमें है, [illegible] [illegible] विनाशी [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। इसपर [illegible] [illegible] [illegible]।

अरस्तू व्यक्तिको विनाशी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मानता था, [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] हम मालूम [illegible] [illegible] [illegible] परिवर्तनशील होता [illegible]। भूत या विनाश [illegible] [illegible] [illegible] होते हैं और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अनुसार [illegible] [illegible] मूलतत्त्व है। परिवर्तन या वृद्धि शून्यमें नहीं हो सकती। इनका कोई आश्रय या आधार होना चाहिए। यही परिवर्तनशील मूलस्थ आधार मूल भौतिक (भूतमात्र) है। भूत और विकार मिलकर हैं, परिवर्तन और गति ([illegible]) होता है। प्रत्येक गति चार प्रकारकी होती है—(१) द्रव्य-सम्बन्धी गति—उत्पत्ति विनाश (२) परिमाण-सम्बन्धी गति—बढ़ना घटना [illegible] परिमाणमें परिवर्तन (३) गुण-सम्बन्धी गति—एक चीजका दूसरी चीजमें परिवर्तन—दूधका दही, पानीका बर्फ बनना (४) देश-सम्बन्धी गति—एक जगहसे दूसरी जगह जाना।

अरस्तू दार्शनिक होनेके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा प्राणि-शास्त्री भी था यह पहले कह आये हैं। उसका पिता स्वयं वैद्य था और वैद्यको प्राणि-शास्त्रसे परिचय होना जरूरी है। हिप्पोक्रातु[1] और उसके अनुयायि[illegible] प्राणिशास्त्र-सम्बन्धी गवेषणायें ई० पू० पाँचवीं सदीमें आरम्भ किया था। अरस्तूने उन्हें बहुत आगे बढ़ाया और एक तरह जीव-विकास सिद्धान्तका उसे प्रवर्तक कहना चाहिए। अरस्तूके प्राणिशास्त्रीय

[1] Hippocrates

वायका उसके शिष्य थ्योफ्रास्तु[1] (६० २८८ ई० पू०) ने जारी रखा, किन्तु आगे फिर दो सहस्र शताब्दियों तक वह रुक गया। डार्विनने अरस्तूकी प्राणिशास्त्रीय गवेषणाओंकी बहुत दाद दी है।

यूनानी दार्शनिकोंका ऋणी होना हमारे यहाँके कितने ही विद्वानोंको बहुत खटकता है। वह साबित करना चाहते हैं कि भारतने बिना दूसरी जातियोंकी सहायताके ही अपने सारे ज्ञान विज्ञानको विकसित कर लिया और इसीलिए जिन सिद्धान्तोंके विकासके प्रवाहको हमारे तथा यूनानियोंके सम्पर्कमें पहिले लिखे गये भारतीय साहित्यमें गन्ध तक नहीं मिलती उसके लिये भी जबर्दस्त खींचा-तानी करते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि जब सिकन्दर भारतमें (३२३ ई० पू०) आया था तब यूनानी दर्शन कला, साहित्य आदिमें उन्नतिके शिखरपर पहुँचा हुआ था। उस समय और बादमें भी लाखों यूनानी हमारे देशमें आकर सदाके लिये यहीं रह गये और आज वह हमारे रक्त मांसमें इस तरह घुल मिल गये हैं कि उसका पता आँखसे नहीं इतिहासके ज्ञानसे ही मिलता है। जिस तरह चुपचाप यूनानियोंका रुधिर मांस हमारा अभिन्न अंग बन गया, उसी तरह उनके ज्ञानका बहुत सा हिस्सा भी हमारे ज्ञानमें समा गया। गंधार मूर्तिकलामें जिस तरह यवन कलाकी स्पष्ट और गुप्त मूर्ति-कलामें अस्पष्ट छाप देखते हैं, उसी तरह हमें यह स्वीकार करनेमें इन्कार नहीं करना चाहिए कि हमारे मठोंमें साधु भिक्षु और हमारी पाठशालाओंमें अध्यापक बनकर बड़े शिक्षित सभ्य यूनानी हमारे लिए अपने विद्वानोंका भी कोई तोहफा लाये थे।

§ ४–यूनानी दर्शनका अन्त

नागरिकोंके युद्ध (३३८ ई० पू०)में यूनानने मकदूनियोंसे हार खाकर अपनी स्वतन्त्रता गँवाई। इसने यूनानकी आत्माको इतना चूर कर दिया

[1] Theophrastus

[illegible] गया। [illegible] ० पू० तक यूनान में [illegible] और [illegible] सम्पूर्ण भौतिक [illegible] पठित हो रहे थे। [illegible] अधिकांश मनुष्यके [illegible] है। प्रश्न यह रहता था—मनुष्यके साथ [illegible]। यद्यपि [illegible] था [illegible] प्रभावित [illegible] किन्तु [illegible] का [illegible] था। [illegible] या आचार सम्बन्धी [illegible] है। [illegible] में लीजिए या भौतिकवादी एपीकुरीयोंको [illegible] सभी जीवनकी आचार और धर्म-[illegible] उत्पन्न हुए हैं, और उनका मकसद चित्तकी शान्ति या [illegible] इसलिये उपाय आचारके साथ होता है।

१—एपीकुरीय भौतिकवाद

एपीकुरीयोंके अनुसार [illegible] मनुष्यको सुखी जीवनकी ओर ले जाना है। इनका दर्शन देमोक्रितुके यांत्रिक परमाणुवादपर आधारित था—जिसके अनुसार भौतिक परमाणुओंकी पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रियाका परिणाम है। उसके पीछे कोई प्रयोजन या आत्मशक्ति काम नहीं कर रही है। हर वस्तु [illegible] एक दूसरेसे मिलकर अलग होते इन्हीं परमाणुओंसे मानव मनुष्य भी बना है, जो सदा परिवर्तित होता एवं प्रवाह है। [illegible] बाद ये परमाणु फिर बिखर जायेंगे, इसलिए मनुष्यको सुख या आनन्द प्राप्त करनेका अवकाश इस जीवनके पर नहीं मिलेगा, जिसके लिए कि उसे इस जीवनको भुला देना चाहिए। अतएव मनुष्य को आनन्द प्राप्त करनेकी कोशिश यहीं करना चाहिए और जो तरीके, नियम संयम उसके जीवनको सुखमय बना सकते हैं, उन्हें स्वीकार करना चाहिए। एपीकुरीय दार्शनिक, इस प्रकार भोगवादी थे, किन्तु उनका भोगवाद सिर्फ व्यक्तिके लिए ही न था। समाजके लिए भी था, इसलिए उसे सर्वांश व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं कहा जा सकता। यदि दूसरोंके

सुखवाद और इनके सुखवादमें फर्क था तो यही कि जहाँ दूसरे परलोक—पुनर्जन्ममें अर्थच्छिन्न सुखके चाहक थे, वहाँ एपीकुरीय इसी लोक इसी जन्ममें मनुष्य—व्यक्ति और समाज दोनों—को सुखी देखना चाहते थे।

एपीकुरु (३४१-२७० ई० पू०)—यूनानी भोगवादकी संस्था पर एपीकुरु सामोस द्वीपमें अथेन्स प्रवासी माँ-बापके घरमें पैदा हुआ था। अध्ययनकालमें उसका परिचय दमोक्रितुके दर्शन—परमाणुवादसे हुआ, जिसके आधारपर उसने अपने दर्शनका निर्माण किया और उसके प्रचारके लिये ३०६ ई० पू०में (बुद्धके निर्वाणसे पौने दो सौ वर्ष बाद) अथेन्समें अपना विद्यालय कायम कर मृत्यु (२७० ई० पू०) तक अध्ययन अध्यापन करता रहा। अपने जीवनमें ही उसके बहुतसे मित्र और अनुयायी थे, और पीछे तो उनकी संख्या और बढ़ी। उनमें अपने सुखसे सुख माननेवाले भी हो सकते हैं, जिनके कि उदाहरणको लेकर दूसरोंने एपीकुरीयवादको भी चार्वाककी भाँति ऋण कृत्वा घृत पिबेत माननेवाला कहकर बदनाम करना शुरू किया।

एपीकुरुका कहना था कि, यदि अपनी इन्द्रियोंपर विश्वास न करें, तो हम किसी ज्ञानको नहीं प्राप्त कर सकते। इन्द्रियाँ कभी-कभी गलत खबर देती हैं, किंतु उन गलतियोंको पुनः-पुनः प्रयोग करके अथवा दूसरोंके तजर्बेसे दूर किया जा सकता है। इस प्रकार एपीकुरु हमारे यहाँके चार्वाक-दर्शनकी भाँति प्रत्यक्ष प्रमाणपर बहुत अधिक जोर देता था।

२—स्तोइकोंका शारीरिक(ब्रह्म)वाद

स्तोइकोंका दर्शन क्सेनोफन (५७० ४८० ई० पू०)के जगत शारीरिक-ब्रह्मवादकी ही एक शाखा थी। हम कह आये हैं कि पिथागोर स्वयं भारतीय दर्शनसे प्रभावित हुआ था और क्सेनोफन उसीका उत्तराधिकारी था, इस प्रकार स्तोइकोंकी शिक्षामें भारतीय दर्शनकी छाप हो, यह कोई अचरजकी बात नहीं। ३३२ ई० पू०में सिकन्दरने मिस्रमें सिकन्दरिया नगर बसाया था, जो पीछे तीनों महाद्वीपोंका जबर्दस्त व्यापारिक

स्तोइक एपीक्युरीयोंके इस बातमें एकमत थे कि हमारे सभी ज्ञानका आधार इन्द्रिय प्रत्यक्ष है।—हमारा ज्ञान या तो प्रत्यक्षसे आता है या उससे प्राप्त साधारण विचार या ज्ञानसे। किसी बातको सच तभी मानना चाहिए, जब कि वस्तुएँ उसकी पुष्टि करती हैं। साइंस (=विद्या) सच्चे निर्णयोंका एक ऐसा सुसंगठित ज्ञान है जो एक सिद्धान्तको दूसरे सिद्धान्तसे सिद्ध होना जरूरी कर देता है।

स्तोइक उसी वस्तुको सच्ची मानते हैं, जो क्रिया करती है या जिसपर क्रिया होती है। जो क्रिया-शून्य है उसकी सत्ताको वह स्वीकार नहीं करते। इसीलिए शुद्ध विज्ञान (=ईश्वर)को वह अरस्तूकी भाँति निष्क्रिय नहीं मानते। ईश्वर और जगत जब शरीर और शरीरीके तौर पर अभिन्न हैं तो शरीर (=जगत्)की क्रिया शरीरी (=ईश्वर)की अपनी ही क्रिया है। भौतिक तत्त्वोंके बिना शक्ति नहीं और शक्तिके बिना भौतिक तत्त्व नहीं मिल सकते, इसलिए भौतिक-तत्त्वको सर्वत्र शक्ति (=ईश्वर)से व्याप्त मानना चाहिए। यह ख्याल उपनिषदके 'अन्तर्यामीवाद'से कितना मिलता है, इसे हम आगे देखेंगे। स्तोइकोंका यह अंग अंगी अवयव अवयवी वाला सिद्धान्त वेदान्तके सूत्रों, उसकी बोधायन वृत्ति तथा रामानुज भाष्यमें भी पाया जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि शरीर शरीरी भाव उपनिषदमें है ही नहीं। यह भाव वहाँ था, किन्तु उसे स्तोइकोंने और तर्क-सम्मत बनानेके लिये जो युक्तियाँ दीं, उनसे बादरायण बौधायन आदिने फायदा उठाया—ऐसा मालूम होता है।

क्षुद्रसे क्षुद्र वस्तुएँ भी भगवान्के अंग हैं, वह एक और सब है। प्रकृति, ईश्वर भाग्य भवितव्यता एक ही हैं। जब प्रकृति ईश्वरसे अभिन्न है तो हमारे जीवनके लिये सबसे अच्छा आदर्श प्रकृति ही हो सकती है, इसीलिए स्तोइक प्राकृतिक जीवनके पक्षपाती थे। सभी प्राणी चूँकि ईश्वर प्रकृति-अद्वैतकी ही सन्तानें या अंग हैं इसलिए स्तोइक विश्व भ्रातृभावके माननेवाले थे— सभी मनुष्य भाई भाई हैं और ईश्वर सबका पिता है। —एपिक्तेतुसने कहा था।

जैन दोनों अपने धर्म-संस्थापकको जिन (=विजेता) कहते हैं। लेकिन जहाँ तक पिर्होके विचारोंका सम्बन्ध है, वह बौद्ध सिद्धान्तोंका एकांगीन विकास मालूम होता है, जिसे कि हम ईसाकी दूसरी सदीके नागार्जुनमें पाते हैं। नागार्जुनका शून्यवाद पुराने वैपुल्यवादियोंसे निकला हुआ है और वैपुल्यवादियोंके होनेका पता अशोकके समय तक लगता है। अशोक पिर्होकी मृत्यु (२७० ई० पू०)से एक साल बाद (२६९ ई० पू०) गद्दीपर बैठा था। इस तरह पिर्होके भारत आनेके समय वैपुल्यवादी मौजूद थे। भारतसे पिर्हो एलिस् लौट गया। उसका विचार था—वस्तुओंका अपना स्वभाव क्या है, इसे जानना असम्भव है। कोई भी सिद्धान्त पेश किया जाये, उतनी ही मजबूत युक्ति (=प्रमाण)के साथ ठीक उससे उल्टी बात कही जा सकती है, इसलिए अच्छा यही है कि अपना अन्तिम बौद्धिक निर्णय ही न दिया जाये, जीवनको इसी स्थितिमें रखना ठीक है। नागार्जुनके वर्णनमें हम इसकी समानताको देखेंगे, किन्तु इसमें नागार्जुनको पिर्होका ऋणी न मानकर यही मानना अच्छा होगा कि दोनोंका ही उद्गम वही वैपुल्यवाद, हेतुवाद या उत्तरापथकवाद थे।

पिर्हो ज्ञानको असाध्य साबित करनेके लिए कहता है—किन्तु किसी चीजको ठीक साबित करनेके लिए या तो उसे स्वतः प्रमाण मान लेना होगा जो कि गलत तर्क है, या दूसरी चीजको प्रमाण मानकर चलना होगा, जिसके लिए कि फिर प्रमाणकी जरूरत होगी। नागार्जुनने "विग्रह-व्यावर्तनी"में ठीक इन्हीं युक्तियों द्वारा प्रमाणकी प्रामाणिकताका खंडन किया है।

ईश्वर-खंडन—पिर्होके अनुयायी स्तोइकोंके ब्रह्म (=ईश्वर)वादका खंडन करते थे। स्तोइक कहते थे—'जगतकी सृष्टिमें खास प्रयोजन मालूम होता है और वह प्रयोजन तभी हो सकता है, जब कि कोई चेतनशक्ति उसे सामने रखकर संसारकी सृष्टि करे। इस तरह प्रयोजनवाद ईश्वरकी हस्तीको सिद्ध करता है।' संदेहवादियोंका कहना था—'जगत्में कोई ऐसा प्रयोजन नहीं दीख पड़ता, वहाँ न बुद्धिपूर्वकता दिखाई पड़ती है, और न वह शिव सुन्दर ही है। बुद्धिपूर्वकता होती तो गलती पर पर

थे—हजारों लोगोंका नाश कर करा—जब मनुष्योंका सम्बन्ध। इसीलिए मानना जरूरी है। ऐसा, और दुनियाको जिसे सुन्दर तो यहाँ यह सकते हैं तो मानो स्वयंको दुनियामें विचरण करता है। यदि दुनियामें यह बात भी हो जाती तो भी उसमें ईश्वर नहीं स्वाभाविकता ही सिद्ध होती। स्तोइक (और वेदान्ती भी) ईश्वरको विश्वात्मा मानते हैं। विरोधी अनकादमी कहते थे कि जिन उसका मतलब है, कि यह वस्तु या अनुभव करता है। जो अपना या अनुभव करता है वह परिवर्तनशील है, जो परिवर्तनशील है वह किसी दिन नष्ट हो सकता। यदि वह अपरिवर्तनशील एकरस है तो वह एक जड़ निर्जीव पदार्थ है। और विश्वात्माको शरीरधारी माननेपर मनुष्यकी भाँति उसे परिवर्तनशील-ताका भी मानना ही होगा। यदि ईश्वर (अल्ला) है तो वह मनुष्यकी भाँति आचारके बन्धनमें आ जाता है और यदि निर नहीं है और मनुष्यसे निम्नश्रेणीका है। इस प्रकार ईश्वरका विचार परस्पर विरोधी स्थापनाओंसे भरा हुआ है। हमारी बुद्धि उसे ग्रहण नहीं कर सकती इसलिए उसका ज्ञान असम्भव है।'

विरोधी बादमें उसके दार्शनिक सम्प्रदायके कितने ही आचार्य हुए, जिनमें मुख्य थे—अर्कसिलो[1] (३१५-२४१ ई० पू०) कर्नीद[2] (२१३-१२६ ई० पू०) अस्कालानका अन्तियोक[3] (६८ ई०) लारिस्साका फिलो[4] (८० ई०) क्लितामाख[5] (११० ई०)।

मदहवाले अनुयायी कितने ही अच्छे-अच्छे दार्शनिक विद्वान् होते रहे किन्तु सभी स्तोइकोंकी भाँति आकाशविहारी थे, इनका काम ज्यादातर निषेधात्मक या ध्वंसात्मक था और सामने कोई रचनात्मक प्रोग्राम नहीं था। इसलिए ईसवीसन् स्तोइकोंके साथ इन कार फिलासफरोंका भी खात्मा कर दिया।

---

[1] Arcosilaus [2] Carneodes [3] Antiochus of Ascalon [4] Philo of Larissa [5] Clitomachus

४—नवीन-अफलातूनी दर्शन

पश्चिममें यूनानी दर्शनने अपने अन्तिम दिन नव अफलातूनी दर्शनके रूपमें देखे। यह पाश्चात्य दर्शन और पौरस्त्य योग रहस्यवाद, अध्यात्म शास्त्रका एक अजीब मिश्रण था और यवन रोमन सभ्यताके पतन और ह्रासको प्रकट करता था। यूनानी दर्शनोंमें हम देख चुके हैं कि अफलातूका लोकोत्तर विज्ञानवाद धर्म और अध्यात्मविद्याके सबसे अधिक नजदीक था।

ईसा-पूर्व पहिली सदीमें रोम-साम्राज्यमें दो बड़े शहर थे एक तो राजधानी विजन्तिउम या आधुनिक इस्तांबोल (कुस्तुन्तुनिया) और दूसरा मिश्रका सिकन्दरिया। दोनों पूर्व और पश्चिमके वाणिज्य ही नहीं सस्कृति, धर्म, दर्शन, कला सबके विनिमयके स्थान थे। विजन्तिउम था यूरोपकी भूमिपर किन्तु उसपर पश्चिमकी अपेक्षा पूरबकी छाप ज्यादा थी। सिकन्दरियाके बारेमें कह चुके हैं कि वह व्यापारका केन्द्र ही नहीं था बल्कि विद्याके लिये पश्चिमकी नालन्दा था। ईसा पूर्व पहिली सदीमें लंकाके रत्नमालय चैत्य (रुवनवेलि स्तूप, अनुराधपुर)के उद्घाटन समय सिकन्दरियाके बौद्ध भिक्षु धर्मरक्षितके आनेका जिक्र[1] आता है यह यही सिकन्दरिया हो सकती है और इससे मालूम होता है कि ईसापूर्व तीसरी सदीमें अशोककी सहायतासे जो भिक्षु विदेशों और यवनलोक (यूनानी साम्राज्य)में भेज गये थे उन्होंने सिकन्दरियामें भी अपना मठ कायम किया था। धर्म व्यापारका अनुगमन करता है यह कहावत उस वक्त भी चरितार्थ थी। जहाँ-तहाँ विदेशोंमें भारतीय व्यापारी बस गये थे जिनसे उनके धर्म प्रचारकोंको उस देशके विचार तथा समाजके बारेमें जाननेका ही अधिक सुभीता न होता था, बल्कि ये व्यापारी उनके मठोंके बनाने और शरीर निर्वाहके लिये मदद देते थे। यूनानके राष्ट्रीय अधःपतन और

---

[1] महावंश २९।३९ (भदंत आनंद कौसल्यायनका हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १३९)।

सिकन्दरके समय पूर्वीय साधुओं योगियोंकी यश-गाथा, मसानकी भस्म रमा परलोकवादी और लोगोंका ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक था, और हम देखते हैं कि हजारों शिक्षित संस्कृत ग्रामक और यवन 'सत्य और निर्वाण'के मार्गोपलम्भके लिए सिकन्दरियाके गिरिगुहाओंमें बसा रहे थे। वहाँ वे दरिद्रता उपवास योग और भजनमें अपने दिन गुजारते थे। दरिया हजार भागनेवाले इस समुदायमें साहिब व्यापारी, दार्शनिक महात्मा सभी शामिल थे। यद्यपि सिकन्दरियामें अफलातूँ ही नहीं, अरस्तूका यथार्थवादी दर्शन भी पढ़ा-पढ़ाया जाता था, किन्तु जो दुनियासे ऊब गये थे और जिन्हें सुधारका कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था, वे अफलातूनके विज्ञानवादको ही अधिक पसन्द करते।

पश्चिमी एशियाको इस समय भारतका ही नहीं ईरानकी भी पुरानी संस्कृतिका सम्पर्क था बल्कि पारसी पड़ोसी होनेसे ईरानका सम्पर्क ज्यादा नजदीकका था। ईरान दर्शनके उत्थानमें हमेशा भारतसे पीछे रहा। पिथागोर (५७०-५०० ई० पू०) और सिकन्दर (३५६-३२३ ई० पू०)के समयमें भी भारत अपनी सम्पत्तिके लिए ही नहीं, दार्शनिकों और योगियोंके लिए भी मशहूर था। इसीलिए यूनानी दर्शनको नवीन अफलातूनीय दर्शनके रूपमें परिणत करनेका श्रेय भारतीय दर्शनको ही है। निराशावाद, रहस्यवाद, दुःखवाद, लोकोत्तरवाद वहीं उठते हैं, जहाँकी भूमि वहाँके समाजके नायकोंको असंतुष्ट कर देती है—या तो बराबरके युद्ध या अशान्ति और उनके कारण होनेवाले दुर्भिक्ष, महामारी जीवनको कड़वा बना देते हैं, अथवा समाजके भीतरकी विषमता—गरीबी, समृद्धि भोगोंको 'चंचला लक्ष्मी' बना असन्तोषप्रद बना देती है। सातवीं-छठवीं सदी ई० पू०में भारतमें उपनिषदका निराशावाद रहस्यवाद, इन्हीं परिस्थितियोंमें पैदा हुआ था और समाजकी चंचलताकी जगह स्थिरता प्रदान कर भारतने इन विचार धाराओंको भी स्थिरता प्रदान की। पीछे आनेवाले बौद्ध-जैन तथा दूसरे दर्शन उसी निराशावाद और रहस्यवादके नये संस्करण हैं। आखिर सामाजिक विकासके रुक जानेपर भी बौद्धिक विकास

तो भारतीयोंका कुछ होता ही रहा जिसकी वजहसे निराशावाद और रहस्यवादको भी नये रूप धारनेकी जरूरत पड़ी। भारतने समाजका नया कलम तो सिर लगाना नहीं चाहा क्योंकि सदियां बीतती गई और गन्दगियाँ जमा होती रहीं—बढ़ते बजनसे मुलम्मेकी वरदानवाले प्राणीकी भाँति उनका सफाया करना और मुश्किल हो गया। ऐसी विषम परिस्थितिमें बिल्लीके सामने कबूतरके आँख मूँदने या शतुर्मुर्गके बालूमें मुँह छिपानेकी नीति आदमीको ज्यादा पसन्द आती है। भारतने निराशावाद रहस्यवादको अपनाकर उसके उपनिषद् जैन बौद्ध योग वेदान्त, शैव, पांचरात्र महायान, तंत्र-यान भक्तिमार्ग, निर्गुणमार्ग कबीरपंथ, नानक पंथ, सखी-समाज, ब्रह्म-समाज प्रार्थनासमाज आर्यसमाज राधा वल्लभीय, राधास्वामी आदि नये संस्करणोंको करके उसी बिल्ली कबूतर-नीतिका अनुसरण किया।

भारतकी तरहकी परिस्थितिमें जब दूसरे देश और समाज भी आ पड़ते हैं, उस समय यही आजमूदा नुस्खा वहाँ भी काम आता है। आज युरोप, अमेरिकामें जो बौद्ध वेदान्त थ्यासोफी प्रेतविद्याकी चर्चा है, वह भी वही शुतुर्मुर्गी नीति है—समाजके परिवर्तनकी जगह मोक्ष मांगने का प्रयत्न है।

ईसापूर्व पहिली सदीका यवन रोमका नायक-शासक समाज भोग समृद्धिमें नाक तक डूबा, सामाजिक विषमता और गंदगीके कारण अनिश्चित भविष्य तथा अजीर्णका शिकार था। वह भी इस परिस्थितिसे जान छुड़ाना चाहता था इसके लिये उसको स्वदेशीय नुस्खा अफलातूँका दर्शन काफी न था उसके लिए और कड़ी बोतल जरूरी थी जिसके लिए उन्होंने भारतीय रहस्यवाद निराशावादको अफलातूनी दर्शनमें मिला लिया। इंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष सारी दुनिया माया भ्रम, इन्द्र-जाल है मानस (विज्ञान) जगत ही सच्चा है। सत्य और मानसिक शान्ति तभी मिल सकती है जब कि मनुष्य जीवनसे अलग हो। एक लम्बे संयम-यम नियम-के साथ, इसी जन्मकी नहीं अनेक जन्मकी संसिद्धिके साथ उस अकथ

कहते हैं और जो विश्वका सृष्टिकर्ता है। शंकरके वेदान्तमें भी ईश्वर (परमात्मा)को परमतत्त्व मानते हैं। यह ईश्वर या दिव्य विज्ञान ध्यान करके[1] अपने शरीरसे विश्व आत्माको पैदा करता है, जो कि विश्वकी भी आत्मा है, दुनियाके अनगिनत जीवात्माओंकी भी। दुनिया अब तयार हो गई। किन्तु दिव्य विज्ञानका काम इतनेसे समाप्त नहीं होता, वह लगातार आत्माओंको प्रकटकर इस दर्शनकी दुनियामें भेज रहा है और जिन्होंने अपने सांसारिक कर्तव्यका पालन कर लिया है उन्हें अपनी गोदमें वापस ले रहा है।

अफलातूने प्रयोग या अनुभवके ऊपर बुद्धिको माना था किन्तु नवीन अफलातूनी समाधिके साक्षात्कार आत्मानुभूति[2]को बुद्धिसे भी ऊपर मानते थे। प्लोतिनुने कहा—'उस सब महान् (परमतत्त्व)का बुद्धिके चिन्तनसे नहीं बल्कि अचिन्तनसे बुद्धिसे परे जाकर जाना जा सकता है।

इस रहस्यवादने ईसाई धर्म और खासकर ईसाई संत अगस्तिन (३५४-४३० ई०) पर बहुत प्रभाव डाला। आज भी पूर्वीय ईसाई मत (स्लावदेशोंकी ईसाइयत)पर भारतीय नवीन अफलातूनीय दर्शनकी जबर्दस्त छाप है याग, ध्यान, वैराग्यका दौर दौरा है। पश्चिमी रोमन कैथलिक चर्चको संत तामस् अक्विना (१२२५-७४ ई०)ने जमीनपर लानेकी कुछ कोशिश की मगर रहस्यवादसे उसका पिंड छूट ही कैसे सकता है?

८७ ई० पू०में रोमनोंने मिस्र-सिरियापर अधिकार किया। उसके बाद उसका वैभव क्षीण होने लगा। आमतौरसे दर्शनकी ओर उनकी विशेष रुचि न थी तो भी कुछ रोमनोंने यूनानी दर्शनके अध्ययन अध्यापनमें सहायता की। सिसरो (१०६-४३ ई० पू०)का नाम इस बारेमें विशेषत उल्लेखनीय है इसके गद्योंने पीछे भी यूनानी दर्शनको जीवित रखनेमें बहुत काम किया। लुक्रेतियो (९८-५५ ई० पू०)ने दमोक्रितुके परमाणुवादको हम तक पहुचानेमें बड़ी सहायता की। स्तोइक दार्शनिक सम्राट

[1] "सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात्"—मनु० १।८　　[2] Intuition

है। जिस समय (३६०) नाट पार्स्री थवफिन सिकन्दरियाके पुस्तकालयाको जला रहा था, उस समय आरोगिया अगस्तिन ^७ वर्षका था और यद्यपि वह अब ईसाई साव था किंतु पहिनव पन्दर्शनको वह भूल नहीं सकता था, इसीलिये उसने दर्शनको ईसाई धमकी खिदमतमें लगाना चाहा।

अगस्तिन तगस्तेर (उत्तरी अफ्रीका)में ईसाई माँ (मोनिका) और काफिर बापसे पैदा हुआ था। साधु होनेके बाद तीन साल (३८४-८६) तक वह मिलन (इताली)में पादरी रहा। उसने यूनानी दार्शनिकोकी भाँति युक्तिद्वारा ईसाई धर्मका मडन करना चाहा—ईश्वरने दुनियाको असत् से नहीं पैदा किया। अपने विश्वासके वास्ते यह बात उसके लिए जरूरी नहीं है। ईश्वर लगातार सृष्टि करता रहता है। ऐसा न हो तो ससार छिन्न भिन्न हो जाय। ससार बिलकुल ही ईश्वरके अवलंबनपर है। ससार काल और देशमें बनाया गया—यह हम नहीं कह सकते क्योंकि जब ईश्वरने ससार बनाया उसमें पहिले देश-काल नहीं थे। ससार को बनाते हुए उसने देश-कालको बनाया। तो भी ईश्वरकी सृष्टि सदा रहनेवाली सृष्टि नहीं है। ससारका आदि है, सृष्टि सान्त, परिवर्तनशील और नाशमान है। ईश्वर सब शक्तिमान है उसने भौतिक तत्त्वोंको भी पैदा किया।

२—इस्लामिक दर्शन

द्वितीय अध्याय

२–इस्लामिक दर्शन

पैगंबर मुहम्मद और इस्लामकी सफलता

§ १–इस्लाम

ईसावी छठी सदी वह समय है, जब कि भारतमें एक बहुत शक्ति शाला राज्य—गुप्त साम्राज्य—खतम होकर छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा लगा था, तो भी अन्तिम विराटगवके लिए अभी एक सदीकी देर थी। गुप्तोंके बाद उत्तरी भारतके एक विशाल केंद्रीकृत राज्यको पहिले मौखरियान और फिर अन्तमें काफी सफलताके साथ हर्षवर्द्धनने हस्ताव लम्ब दिया था। जिस वक्त इस्लामके संस्थापक पैगंबर मुहम्मद अपने धर्मका प्रचार कर रहे थे, उस वक्त भारतमें हर्षवर्द्धनका राज्य था, और ज्ञान-नभमें धर्मकीर्ति जैसा एक महान नक्षत्र चमक रहा था।

छठी सदीका अरब हाल तकके अरबकी भाँति ही छोटे-छोटे स्वतंत्र कबीलोंमें बँटा हुआ था। आजकी भाँति ही उस वक्त भी भेड़-ऊँटको पालना और एक दूसरेको लूटना अरबोंकी जीविकाके 'वध' साधन थे। हाँ, इतना अन्तर कमसे कम पिछले महायुद्ध (१९१४-१८ ई०)के बाद्में जरूर है, कि इब्न-सऊदके शासनमें कुछ हद तक कबीलोंकी निरंकुशताको अरबके बहुतसे भागोंमें कम किया गया। पैगंबर मुहम्मदके समय अरबके कुछ भाग तथा लाल-सागरके उस पार अबीसीनियाका ईसाई राज्य था। उसके ऊपर मिश्र शासनोंके हायम था। उत्तरमें सिरिया

(दमिश्क) और गाजा नगर (राजधानी जिलोतयम् वस्तु तुनिया, वर्तमान इस्लामपुर)के शासनमें था। उधर समोराजानिया (इराक) और आगे ईरान सासानी (पारसी) शाहंशाह शासन कर रहे थे। अरब अब (शनाबन्दान) कबायली संगिलानी हालतमें था। उसके पश्चिमी भागमें मक्का (बक्का) और यस्रिब (मदीना)के शहर वाणिज्य-मार्गपर होनेसे कुछ महत्व रखते थे। कबीलोंका महत्व तो उनकी जिजारत और बस्ती गोपालन कारण था किन्तु सबका भाग्य अरब जातिका महान् लोभ था जहांपर सालमें चार बार लड़ाकू अरब भी हथियार हाथसे रख रोजा रख शान्तिपूर्वक ताश करते थे और इसी वक्त एक महीनेके लिए वहां व्यापारिक मेला भी लग जाता था।

१—पैगंबर मुहम्मद

(१) जीवनी—अरबोंका मन अच्छे तौर पैनेके कारण मक्केके काबा मन्दिरके पुजारियों (कुरैश)का उसमें काफी आमदनी तो होती थी, बल्कि वह कुल और सम्पत्तिमें अरबोंमें ऊंचा स्थान रखते थे। पैगंबर मुहम्मदका जन्म ५७० ई०में मक्काके एक पुजारी वंश—कुरैश—में हुआ। उनके माता पिता बचपनहीमें मर गये और बच्चेकी परवरिशका भार दादा और चाचापर पड़ा।

मक्काके पुजारी पूजा-सम्पादनके अतिरिक्त व्यापार भी किया करते थे। एक बार उनके चाचा अबूतालिब जब व्यापारके लिए शामको जा रहे थे तो बालक मुहम्मदने ऊंटकी नकेल पकड़कर ले चलनेका इतना जबर्दस्त आग्रह किया कि उन्हें साथ ले जाना पड़ा। इस तरह होश सम्भालनेसे पहिले ही इस्लामके भावी पैगंबरने शाम-शामके ग्राम उनके उधर और मरु-भूमियों वालोंके भिन्न भिन्न धार्मिक रीति रवाजोंको देखा था। जवान होनेपर व्यापार-निपुणताकी बात सुनकर उनकी भावी पत्नी तथा मक्काकी एक धनाढ्य विधवा खदीजाने उन्हें अपने कारवांकी मुखिया बनाकर व्यापार करनेके लिए भेजा। पैगंबर मुहम्मद आजन्म

अनपढ़ (उम्मी) रहे, यह बात विवादास्पद है। —सौदागर एक बड़े व्यापारी कार्योंके संचालकके लिए तो भारी नुकसानकी बात हो सकती है। यदि ऐसा हो तो भी अनपढ़ होना अबुद्धि नहीं होता। वस्तुतः मुहम्मद एक तीव्र प्रतिभाके धनी थे, इसमें सन्देह नहीं और ऐसी प्रतिभाके साथ पुस्तकों भी ज्यादा वह देश-देशान्तरके यातायात तथा तरह-तरहके लोगोंका समुचित फायदा उठा सकते थे, और उन्होंने फायदा उठाया भी।

पैगंबर मुहम्मदके अपने देशका धर्म अरबोंका ... मूर्तिपूजा थी, और काबाके मन्दिरमें लात उज्ज़ा जैसे ३६० देवता और देवियाँ थीं। किसी टूटे तारेका अंग भाग एक कृष्ण-पाषाण (हज्र अस्वद्) पूजा जाता था। पत्थरके देवता अरबोंका सब श्रेष्ठ ... मानते थे, मन्दिरोंमें ... उपासना कर रहे थे, किन्तु पुरोहित-वर्ग अपने स्वार्थके लिए इस तरहकी बुद्धि-शून्य चीजोंमें जन-जीवनको रखना चाहता था। मुहम्मद साहेब उन आदमियोंमें थे, जो समाजमें रूढ़िवश माना जाता हो उस बातको बिना ननु-नच मानना नहीं पसन्द करते। ... अपनी वाणिज्य यात्राओंमें वह एक धर्मवालोंसे मिले हुए थे, जिनके धर्म अरबोंकी मूर्ति-पूजाकी अपेक्षा ज्यादा प्रशस्त मालूम होते थे। खासकर ईसाई साधुओं और उनके मठोंकी शान्ति तथा बौद्धिक वातावरण और यहूदियोंकी मूर्ति-रहित एकेश्वरवादने उन्हें बहुत पसन्द आई थी। यह तो इससे साबित है कि कुरानमें यहूदी पैगंबरों और ईसाइयोंके भी नबियोंका आदर ... (मूसा) और ... तौरात (पुरानी बाइबल) और इंजीलको ईश्वरीय पुस्तक माना गया है। उनका महिमा-कीर्तन ... और बार-बार इस बातको साबित करनेका प्रयत्न किया गया है, कि इनमें एक ईश्वरके आनेकी भविष्यवाणी है जो कि ... मुहम्मद ... हैं। ... और ... थे, किन्तु ... ईसाई तथा ... समाजमें ... यह बात ... थे कि ... और ... (... ...) है।

कहा जा सकता कि इस आन्दोलनपर बहुत दिनोंसे चली आती और जिनका रूप गुप्तचारी—अनि तथा नाम नाड़। मूर्तिपूजा और सब भाग जाना स्वागत योग्य बात न थ अथवा ऐतिहा—शायद बराबरी इमामों (जिनकी संख्या कि उस समय नाम मात्र दिमागमें अधिक थी)—ने निराकार-ख़ुदा मिलित भावना फैलाया करते। हाँ जब इस पहलेसे सम्पन्न नगर मक्का एशिया (स्मूना) और रिवाजोंका नहीं मान थे—अथवा वह स्थायी स्मूना और रिवाजोंकी जगह शुद्ध इस्लाम लिए फिर पर स्थना न ध्यान बाद थाना—मक्काका स्तूप और उनके भक्तोंका मान्यानी रिवाजोंका स्थान ऐन थ। ऐसा मानके 'स्मूना और रिवाजोंके स्थान थी ? और नमाज़ भी, किन्तु यह तो साफ है कि मक्काके दनानोंका विचार था कहीं प्रश्न भी या शीया-शोभाका मिनाकर एक बड़ा धार्मिक सल्तनत कायम करनेके लिए था—मगर जब रसूल और उनके इमाम बहुत विचार न ध्याना थे। मुहम्मद साहेबने व्यापारी जातामें ऐसा होना कि परस्पर कबीलोंके इनाम परस्पर रुक मार नया बग। इन्होंने पापकार भाग व्यापारी करना था यदि एक कबीलेके व्यक्तिने अपना माना मानकर किसी तरह जान-माल बचाकर निकल भागे तो आगे ही दूसरा कबीला चुंगी या भेंट उगाहने तथा मौका पानेपर छापा मारनेके लिए तैयार दिखाई पड़ता था। इसके विरुद्ध जहाँ वह सामने बसरा या ईरानके शाहके राज्यमें प्रवेश करते वहाँ एक बार केन्द्रीय सरकार द्वारा चुंगी-अधिकारियोंको महसूल चुकाते ही रात दिन भयसे मार-काट जाने उनके निवास एवं भागे जाम बनाये हुए जाता दिखाई पड़ता था। इस तरहके विचारों तथा सबके निवारण हजरत मुहम्मद यदि सभी कबीलोंको मिलाकर एक राज्य और छापा—लूटमार एवं जगतके कानून—जिसकी लाठी उसकी भैंस—की जगह इस्लाम (=शान्ति)का विधान चाहते हों, तो आश्चर्य ही क्या है। एक नाम और शान्ति (=इस्लाम) स्थापनको अपना लक्ष्य बनाते हुए भी मुहम्मद साहब जैसा मानव प्रकृतिका गंभीर परख रखनेवाला व्यक्ति

निक और मूदकर स्वप्न देखनेवाला नहीं हो सकता था। वह भलीभाँति समझते थे कि जिस शान्ति, व्यापार और धर्म प्रचारमें सशस्त्र बाधाको रखना वह चाहते ह, वह निश्चेष्ट ईश्वर, प्रार्थना तथा हथियार रख निहत्थे बन जानेसे स्थापित नहीं हो सकती। उसके लिए एक उद्देश्यको लेकर आदमियोंकी सुसंगठित सशस्त्र गिरोहकी जरूरत है, जो कि अपने दृढ़ संकल्प और सुव्यवस्थित सम्मिलित इस्लाम (=शान्ति)-स्थापनामें बाधा देनेवालोंको नष्ट या पराजित करनेमें सफल हो।

हाँ, तो मुहम्मद साहेबके जिहाद जवेंत उन्हें बतला दिया था, कि कबीलाको एक विस्तृत राज्य बनाने, उस विस्तृत राज्यकी अपनी सीमा तथा शक्ति बढ़ानेके लिए किन किन बातोंकी आवश्यकता है। पुरोहितोंके मारे मक्काके समाजमें उनके धर्मका विरोध करते हुए एक नये धर्मका पगंबर बनना आसान काम न था। मुहम्मद साहब काफी आत्मसंयमी व्यक्ति थे, ईसाई साधुओंकी भाँति हराकी गुफाओंमें भी उन्होंने कितनी ही बार एकान्तवास किया था।

(२) नई आर्थिक व्याख्या—चाहे वह तिब्बतकी हो, अरब या हमारे सीमा प्रान्तकी सभी कबीला प्रथा रखने वाली जातियोंमें पशुपालन कृषि या वाणिज्यके अतिरिक्त लूटकी आमदनी (=माल-गनीमत) भी वैध जीविका मानी जाती रही है। माले-गनीमतको बिलकुल हराम कर देनेका मतलब था, अरबोंके पुराने भावपर ही नहीं, उनके आर्थिक आयके जरियेपर हमला करना—चाहे इस तरहकी आयसे सारे अरब-परिवारों का फायदा न पहुँचता हो, किन्तु जूयेके पासेकी भाँति कभी अपना किस्मत के पलटा खानेकी आशाको तो वह छोड़ नहीं सकते थे। हजरत मुहम्मद-ने 'माल-गनीमत' नाम रखते हुए भी उसे ईरान और रोमके देशविजय का "भेटो जैसे किन्तु उससे विस्तृत अर्थमें कल्पना चाहा तो भी मालूम होता है, अरब प्रायद्वीपमें यह प्रयत्न कभी सफल नहीं हुआ। वहाँके लोगोंने माले-गनीमतका वही पुराना अर्थ समझा और ऊपरसे उसे अल्लाह के आदेशके एन मुताबिक समझ लिया, जिसका ही परिणाम यह था कि

अरबस बाहर अन अरबी लोग जहाँ लूट छापोंसे धमका हटाकर शान्ति (स्लाम) स्थापन कराने वहाँ हो उस समय हुए वहाँ अरबी कबाल तरह भी वह पहिलेके पुरान दस्तूरपर आज भी करीब-करीब कायम मालूम होते हैं। जो युद्ध भी गए माल-गनीमतकी नई व्याख्या—विजयसे प्राप्त होने वाली आमदनी जिसमें ⅕ सरकारी खजाने (बैत उल माल) को मिलना चाहिए और बाकी योद्धाओंमें बराबर-बराबर बाँटना चाहिए—विजित राज्य-स्थापन करनेकी इच्छावाले एक व्यवहार कुशल दूरदर्शी शासककी सूझ था जिसने भाविक नामकी इच्छाको जागृत करके पहिले अरबी रगिस्तानके कठोर जीवन-व्यापन उद्द तरगा और पीछे हर मुल्कमें इस्लाम लाने वाले समाजमें प्रचारित तथा कठोर नीची लोगोंको इस्लामी मनाम भरता होनेका भारी आवपग पैदा किया और साथ ही उठते हुए बैत-उल-माल एक ताकतवर संगठित शासनकी बुनियाद रक्खा। माल-गनीमतके बाँटनेमें समानता तथा सब अरबी कबील वाले व्यक्तियोंके भीतर भाईचारे बराबरीके स्थापन इस्लामी समानता का जो नमूना लोगोंके सामने रखा यह बहुत अंशोंमें कुछ समय तक और पिछले अंशोंमें कुछ गलत एक भारी संगठन पैदा करनेमें सफल हुआ है।

माल-गनीमतकी इस व्याख्याने आर्थिक वितरणमें एक नये जबदस्त क्रान्तिकारी रूपको पैदा किया जिसने कि अल्लाहके स्वर्गीय इनाम तथा अनन्त जीवनके ख्यालसे उत्पन्न होने वाली निर्भीकताके मिलकर दुनियामें वह उथल-पुथल की जिसे कि हम इस्लामका सजीव इतिहास कहते हैं। यह सच है कि माल-गनीमतकी यह व्याख्या कितने ही अंशोंमें दारयावुश (दारा) सिकन्दर चन्द्रगुप्त मौर्य ही नहीं दूसरे साधारण राजाओं के विजयोंमें भी मानी जाती थी किन्तु वह उतनी दूर तक न जाती थी। वहाँ साधारण योद्धाओंमें वितरण करते वक्त उनकी समानताका ख्याल नहीं रखा जाता था, और सबसे बढ़कर कमी तो यह थी, कि विजित जातिके साधारण निम्न लोगोंको इसमें भागीदार बनाकर कोई

मौका न था। इस्लामने विजित जातियोंके अधिकांश भूमि और प्रभु-वर्गको जहाँ पामाल किया, वहाँ अपनी संगठित सेनाके बल—शासकके पीड़ित—वर्गको विजय-लाभमें साझीदार बनानेका रास्ता बिल्कुल खुला रखा। स्मरण रखना चाहिए, इस्लामको जिससे मुकाबिला था, वह सामन्ती पुरोहितोंका शासन था, जो कि सामन्तशाही शोषण और दासताके आर्थिक ढाँचेपर आश्रित था। यह सही है कि इस्लामने इस सामन्ती आर्थिक ढाँचेको बदलना अपना उद्देश्य कभी नहीं घोषित किया, किन्तु उसके मुकाबिलेमें अरबमें अभ्यस्त कबीला जाने भ्रातृत्व और समानताका खूब इस्तेमाल किया, जिससे कि उसने सीमित शासक वर्गके नीचेकी साधारण जनताके कितने ही भागको आकर्षित और मुक्त करनेमें सफलता पाई। यद्यपि इस्लामने वर्गविरुद्ध छिड़े हुए सामाजिक संघर्षका यह ज्ञान नहीं था, किन्तु परिणामतः उसने इस प्रथम एक प्रगतिशील शक्तिका काम किया और सदियोंसे चले आते पुराने सामन्त-परिवारों और उनके स्वार्थोंको नष्टकर हर जगह नई शक्तियोंको सामने आनेका मौका दिया। यह ठीक है कि यह शक्तियाँ भी आगे चलकर सामन्त-व्यवस्थाको अख्तियार करनेवाली थीं। शत्रु-भागियोंकी मालिकी सम्पत्ति तथा युद्धमें लूटका माल बनानेके लिए प्रथम इस्लामको दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि उस समयकी सारी सभ्य संसार—यूनान, भारत, ईरान—उसे अनुचित नहीं समझता था।

यहूदी और ईसाई धर्म-ग्रन्थोंका [illegible] गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया था—यदि वह [illegible] थे तो उन्होंने ध्यानसे उन्हें सुना था। और फिर [illegible] आगा-पीछा सोचकर [illegible] (रसूल) घोषित किया। [illegible] 'कुरान-शरीफ' [illegible] [illegible] चाहता न था [illegible] 'धर्म [illegible]' [illegible] किया, और [illegible]

पहिले उनकी स्त्री खदीजाने उनके धर्मको स्वीकार किया। विरोधी विरोध ही करते थे किन्तु उनके अनुयायी—जिनमें उनका इष्ट भाँति मक्कार व्यापारी-श्रेणी थे। इनमें थे—वह भी थे। मक्काके कुरैशी—सरदार—इससे उनका जीवन संकटमें पड़ गया और मुहम्मद उन्हें मक्का छोड़ मदीनाको भागकर ६१८ ई० हिजरा (प्रयाण) कर जाना पड़ा। इसी धर्म-प्रचार आरम्भ किया मन आरम्भ किया और मदीनात्-उन्-नबी (नबीका नगर) उनके कारण यह उनके नामका मदीना पड़ गया। मक्का के पहले इस्लाम एक धार्मिक सुधारक या प्रचारक थे, किन्तु इस्लाम उनका अपने अनुयायियोंका धार्मिक सामाजिक विचारक व्यवस्थापक एक शासक बना था। उनका पक्ष जिसका परिणाम यह हुआ कि उनकी मृत्युके समय (६२२ ई०) पश्चिमी अरबके जितने ही प्रमुख कबीलोंने इस्लामको नहीं स्वीकार किया बल्कि उन्होंने अपनी निरंकुशताको छोड़कर एक शासनको अपना स्वीकार किया और सारे अरब भाषा भाषी लोगोंमें भी उसके लिए आकांक्षा पैदा कर दी।

२–पैगंबरके उत्तराधिकारी

हजरत मुहम्मद स्वयं राजनीतिक सिद्धान्त न थे क्योंकि पहिले उन्होंने अपने पड़ोसी राजाओं—ईरानके ख़ुसरो शाह और रोमक केसर—को इस्लाम कबूल करनेका पैगाम भेजा था और यह उनके राजपदको छीनकर इस्लामकी स्थापना करके नहीं किया गया था तो भी उन्होंने अरब और उनके द्वारा इस्लामी जगत्के सामने जिस राजनीतिक ढाँचेकी कल्पना रखी उसमें निरंकुश राजतंत्र क्या, सभी मानवों राजतंत्र भी गुंजाइश न होकर, छोटे-छोटे कबीलोंकी जगह अन्तर्राष्ट्रव्यापी एक विशाल कबीलेका स्थान काम कर रहा था—इस्लाम अरब और अरब भिन्न मुल्कोंके सभी अरबी तथा ग़ैर अरबी मुसल्मान अपनेको एक कबीला समझें। पैगंबरके जीवन भर यह खुदा ईश्वरका आदेश भेजा हुआ उनका मदीर है, किन्तु पैगंबरकी मृत्युके बाद

सर्दारको इस यह इस्लामी कबीलेका विश्वास भाजन होना चाहिए। विश्वास-भाजन होनेकी कसौटी क्या है इसके बारेमें पैगंबरने कोई साफ व्यवस्था नहीं बनाई, अथवा कबीलेके नमूनेपर जिस व्यवस्थाको बनाया जा सकता था, वही बनी-उमया (६६१-७५० ई०)के सिन्धसे स्पेन तक फैले राज्यमें व्यवहृत नहीं की जा सकती थी। ज्यादासे ज्यादा यही कहा जा सकता है, कि उनके निर्माणमें अपने उत्तराधिकारी शासक (=खलीफा)के लिए यही ख्याल हो सकता था कि वह कबीलेके सर्दारकी भाँति कबीलेके सामने अपनेको जवाबदेह माने और कसरा तथा शाहंशाहोंकी भाँति अपनेको निरंकुश न समझे। लेकिन यह व्यवस्था जो एक छोटे कबीलेमें सफलतापूर्वक भले ही चल सकती हो अनेक प्रकारकी भाषाओं-संस्कृतियों-देशोंसे मिलकर बने इस्लामी राज्यमें चल न सकती थी और पैगंबरके निःस्वार्थ आदर्शवादी सहकारियों—अबूबकर (६३२-४२ ई०), उमर (६४२-४४ ई०) उस्मान (६४४-५६ ई०) तथा अली (६५६-६१ ई०)की खिलाफत (उत्तराधिकारी शासन)के बीतते बीतते बिलकुल बेकार साबित हो गई। पैगंबरके आँख मूँदनेके ३६ वर्ष बाद अमीर म्वाविया (६६१-८० ई०)के हाथ में शासनकी बागडोर गई और तबसे उसके मारे उत्तराधिकारी चाहे वह उसके अपने खानदान—बनी उमय्या[1] (६६१-७४७ ई०)—के हों या बनी अब्बास (७४८-१०३७ ई०[2]) के शाहों और कसराकी भाँति ही स्वेच्छाचारी शासक थे।

३—अनुयायियोंमें पहिली फूट

हर एक कबीलेके अलग अलग इलाह (=देवताओं)को हटाना

---

[1] म्वाविया (६६१-८० ई०), मजीद प्रथम (६८०-७१७), उमर द्वितीय (७१७-२० ई०), मजीद द्वि० (७२०-२४ ई०), हिशाम (७२४-४३ ई०), वलीद (७४३ ई०), मजीद तृतीय (७४३-४४), इब्न म्वाविया (७४४-४७ ई०)　[2] अब्बुल्-अब्बास (७४९-५४ ई०) और उसकी सन्तान।

थी कि उसमें कहीं अच्छा यह है कि रोमन सामन्ती ढाँचेको रहने दिया जाय और लोगोंको अपने शासन मानने तथा अधिकसे अधिक आदमियोंको इस्लाममें दाखिलकर उसे मजबूत करनेका प्रयत्न किया जाय। म्वावियाने रोम राज्यप्रणालीको स्वीकार किया।

इस्लामको जो लोग अरबियतका अभिन्न अंग समझते थे उन्हें यह बुरा लगा। जिन्होंने पैगंबरके सादे जीवनको देखा था, जिन्होंने कबीलोंकी विलासशून्य, भ्रातृत्वपूर्ण समानतावाले जीवनको देखा था, उन्हें म्वावियाकी हरकत बुरी लगी। शायद गाढ़ेकी चादर ओढ़ मसजिदके नीचे सोनेवाला अथवा दासको ऊँटपर चढ़ाये यरुशलममें दाखिल होनेवाला उमर अब भी खलीफा होता, तो म्वाविया ऐसा न कर सकता, किन्तु समय बदल रहा था। पैगंबरके दामाद और परम विश्वासी अनुयायी अलीको जब मालूम हुआ, तो उन्होंने इसकी सख्त निंदाकी, इसे इस्लामपर भारी प्रहार समझ उसके खिलाफ आवाज उठाई। उनका मत था कि हमारी सल्तनत चाहे रोमपर हो या ईरानपर, वह अरबी कबीलोंकी सादगी समानताके लिये होनी चाहिए। अलीकी आवाज अरण्य रोदन थी। सफल शासक म्वावियाको खलीफा उस्मानसे नाराज होनेकी जरूरत न थी। म्वाविया और अलीमें स्थायी वैमनस्य हो गया, किन्तु यह वैमनस्य सिर्फ दो व्यक्तियोंका वैमनस्य नहीं था, बल्कि इसके पीछे पहिले तो विकासमें आगे बढ़ी तथा पिछड़ी दो सामाजिक व्यवस्थाओं—सामन्तशाही एवं कबीलाशाही—का होड़का प्रश्न था, दूसरे दो सभ्यताओंकी टक्करके वक्त समझा था "दोमेंसे केवल एक" का सवाल था।

अली (६५६-६१) पैगंबरके सगे चचेरे भाई तथा एक मात्र दामाद थे। अपने गुणोंसे भी वह उनके स्नेहपात्र थे, इसलिए कुछ लोगोंका ख्याल था कि पैगंबरके बाद खिलाफत उन्हींको मिलनी चाहिए थी, किन्तु दूसरी शक्तियाँ और जबर्दस्त थीं, जिनके कारण अबूबकर, उमर और उस्मानके मरनेके बाद अलीको खिलाफत मिली। दमिश्कके जबर्दस्त गवर्नर म्वावियाकी उनसे अनबन थी, किन्तु कबीलोंकी बगावट मदीनामें

कर नेताओंका इजलास किया गया था, कि अली म्वावियाको गवर्नरी से हटाकर बनी-उमय्या खानदानको अपना दुश्मन बना गृहयुद्ध शुरू कर दें। अलीका शासन म्वावियाको अपभ्रष्ट बगावत तथा बाहरी शत्रुताओंसे इस्लामके प्रसारित होनेका समय था। यद्यपि अली म्वाविया का कुछ नहीं बिगाड़ सके, किन्तु म्वावियाको अली और उनकी सन्तानसे सदा डर था। अलीके मरनेके बाद म्वावियाने खिलाफतको अपने हाथमें करनेमें सफलता जरूर पाई, किन्तु पैगम्बरकी एकलौती पुत्री फातिमा तथा अलीके दोनों पुत्र—हसन और हुसेन—के जीवित रहते वह अपनेको मुश्किलसे मान सकता था। आखिर सीधे-सादे अलीके तो खलीफाके शानो ठाट-बाट और अपनी मक्कारीका मुकाबिला करके म्वावियाके विरुद्ध आसानीसे सफल हो सकते थे। उसने हसनको तो उनकी बीबी द्वारा जहर दिलाकर अपने रास्तेसे हटाया और हुसेनको रास्तेसे हटाने के लिए म्वावियाके बेटे यजीदने षड्यन्त्र किया। यजीदने अधीनता स्वीकारकर झगड़ेको मिटा देनेके लिए हुसेनको बड़े आग्रहपूर्वक कूफा (जो उस वक्त सूबेदार यजीदकी उस वक्त राजधानी थी) बुलाया। रास्तेमें करबलाके रेगिस्तानमें किस निर्दयताके साथ सपरिवार हुसेनको मारा गया वह दिल हिला देनेवाली घटना इतिहासके हर एक विद्यार्थीको मालूम है।

हुसेनकी शहादत दर्दनाक है। हर एक सहृदय व्यक्तिकी सहानुभूति हुसेन तथा उनके ७६ साथियोंके प्रति होना जरूरी है। यजीदके सरकारी स्वत्वके द्वार भी जब बदनसीब लाशोंके सात सिर कूफामें यजीदके सामने रखे गये और जालिम यजीदने हुसेनके सिरका कपड़ा हटाया तो एक बच्चेके मुँहसे एकाएक आवाज निकल आई—'अरे! धीरे धीरे! यह पैगम्बरकी नाती है। अल्लाहकी कसम मैंने खुद इन्हीं होठोंको हजरतके मुँहसे चुम्बित होते देखा था।' मानवताके न्यायालयमें हम यजीदको भारी अपराधी ठहरा सकते हैं, किन्तु प्रकृति ऐसी मानवता की कायल नहीं है, उसका हर अगला कदम पिछलेके अनुसार बढ़ता है। आखिर अली हुसेन या उसके अनुयायी विकासको सामन्तशाहीसे आगकी ओर नहीं

बल्कि पीछे खींचकर सल्तनतशाहीकी ओर ले जाना चाहते थे, जिसमें यदि सफलता होती तो इस्लाम उस कला, साहित्य, दर्शनका निर्माण न कर सकता, जिसे हमने भारत, ईरान, मसोपोतामिया, तुर्की और स्पेनमें देखा, और यूनानी दर्शन द्वारा फिरसे वह युरोपमें उस पुनर्जागरणको न करा पाता, जिसने आगे चलकर वैज्ञानिक युगका अस्तित्वमें ला दुनिया की कायापलट करनेका जबर्दस्त आयोजन कराया।

४–इस्लामी सिद्धान्त

कुरानी इस्लामके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त हैं—ईश्वर एक है, वह बहुत कुछ साकार सा है, और उसका मुख्य निवास इस दुनियामें बहुत दूर छः आसमानोंको पारकर सातवें आसमानपर है। वह दुनियाको सिर्फ "कुन" (हो) कहकर अभावसे बनाता है। प्राणियोंमें आगसे बने फरिश्ते (देवता) और मिट्टीसे बने मनुष्य सर्वश्रेष्ठ हैं। फरिश्तोंमेंसे कुछ गुमराह होकर अल्लाहके सदाके लिए दुश्मन बन गए हैं और वे मनुष्योंको गुमराह करनेकी कोशिश करते हैं, इन्हें ही शैतान कहते हैं। इनका सरदार इब्लीस है, जिसका फरिश्ता होनेके वक्तका नाम अजाजील था। मनुष्य दुनियामें केवल एक बार जन्म लेता है। और ईश्वर-वचन (कुरान)के द्वारा विहित (पुण्य) निषिद्ध (पाप) कर्म करके उसके फलस्वरूप अनंतकालके लिए स्वर्ग या नर्क पाता है। स्वर्गमें सुंदर प्रासाद, अंगूरके बाग, शहद, शराबकी नहरें, एकसे अधिक सुन्दरियाँ (हूरें) तथा बहुतसे तरुण चाकर (गिल्मान) होते हैं। दया, सत्य भाषण, चोरी न करना आदि सर्वधर्म साधारण भले कामोंके अतिरिक्त नमाज, रोजा (उपवास), दान (जकात) और हज (जीवनमें एक बार काबा-दर्शन) ये चार मुख्य हैं। निषिद्ध कर्मोंमें अनेक देवताओं और उनकी मूर्तियोंका पूजन, शराब पीना, हराम मांस (सुअर तथा कलमा बिना पढ़े मारे गये जानवरका मांस) खाना आदि हैं।[1]

---

[1] विस्तारके लिये देखो मेरा "कुरानसार"।

तृतीय अध्याय

यूनानी दर्शनका प्रवास और उसके अरबी अनुवाद

§१–अरस्तूके ग्रन्थोंका पुनः प्रचार

इस्लामिक दर्शन ज्यादातर—खासकर अरस्तूके दर्शन तथा उस नव अफलातूनी (पिथागोर अफलातून सम्मीय दर्शन) दर्शनका पुटका विवरण और नई व्याख्या है यह हमें आगे मालूम होगा। यद्यपि अफ्ल (लातो) तथा दूसरे यूनानी दार्शनिकोंके ग्रंथोंके भी भाषान्तर अरबीमें हुए, किन्तु इस्लामिक दार्शनिक सदा अरस्तूका अनुसरण करते रहे। इसलिए एक बार फिर हम उस तूफानी कृतियोंकी जीवनयात्रापर नजर डालेंगे पड़ेगा क्योंकि उसी यात्राका एक महत्त्वपूर्ण भाग इस्लामिक दर्शनका निर्माण है।

१–अरस्तूके ग्रन्थोंकी गति

अरस्तूके मरने (३२२ ई० पू०)के बाद उसकी पुस्तकें (स्वरचित तथा संगृहीत) उसके शिष्य तथा सम्बन्धी थ्योफ्रास्तु (देवप्रात)के हाथमें आईं। थ्योफ्रास्तु स्वयं दार्शनिक और दर्शन अध्यापनमें अरस्तूका उत्तराधिकारी था इसलिए वह इन पुस्तकोंकी कदर जानता था। लगभग २८७ ई० पू०में जब उसकी मृत्यु हुई, तो यह सारा पुस्तक उसके शिष्य नेलुसको मिला और फिर १३३ ई० पू०के करीब तक उसीके खानदानमें रही। इसके बीचहीमें यह खानदान क्षुद्र एसियामें प्रवास कर

गया, और साथ ही इस ग्रंथराशिका भी लता गया। लेकिन इस समय इन किताबोंका बहुत ही छिपा रखनेकी—धरतीमें गाडकर रखनेकी कोशिश की गई कारण यह था कि ईसा पूर्व तीसरी दूसरी सदीके यूनानी राज बड़े ही विद्याप्रेमी थे (इसकी बानगी हम भारतके यवन-राजा मिनान्दरमें मिलती) और पुस्तक सग्रहका उन्हें बहुत शौक था। १३३ ई० पू०में रोमनाने यूनान-शासित देशों (क्षुद्र एसिया आदि) पर अधिकार किया। इसी समय नलुमके परिवारवाले अरस्तूके ग्रन्थोंमें पुड़िया तो नहीं बाँधने लगे थे क्योंकि वह कागजपर नहीं लिखे हुए थे, और वैसा करनेमें उतना नफा भी न था, बल्कि उन्होंने उन्हें तहखानेसे निकालकर बाजारमें बेंचना शुरू किया। सयोगवश यह सारी ग्रंथ राशि अथेन्स (यूनान) के एक विद्या प्रेमी अमीर अपेलिकनने खरीद लिया, और काफी समय तक वह उसके पास रही। ८६ ई० पू० में रोमन सेनापति सुलरसुलाने जब एथेन्स विजय किया तो उसे उस एतिहासिक नगरके साथ उसका महान देन अरस्तूका यह ग्रंथ-राशि भी हाथ लगा जिसे कि वह रोममें उठा ले गया, और उसे अंधकारपूर्ण तहखानेमें रखनेकी जगह एक सार्वजनिक पुस्तकालयमें रख दिया। इस प्रकार दो शताब्दियोंके बाद अरस्तूकी कृतियोंको समझदार दिमागोंपर अपना असर डालनेका मौका मिला। अन्द्रोनिकुस अरस्तूके बिखरे लेखोंको नियमानुसार क्रम-बद्ध किया।

अरस्तूकी कृतियोंकी जो तीन पुरानी सूचियाँ आजकल उपलब्ध हैं उनमें दियोजनि लारितुकी सूचीमें १४६ अनानिमुसकी सूचीमें भी पुस्तकोंकी सख्या करीब-करीब उतनी ही है। किन्तु अन्द्रोनिकुस जो सूची स्वयं अरस्तूके संग्रहको देखकर बनाई उसमें उपरोक्त दोनों सूचियोंसे कम पुस्तकें हैं। पहिले दो सूचीकारोंने अरस्तू-संवाद और लेख, कथा-पुस्तकें प्राणि वनस्पति-सम्बन्धी साधारण लेखों एतिहासिक, किस्सों धर्म-सम्बन्धी मामूली पुस्तकोंको भी अरस्तूकी कृतियोंमें शामिल कर दिया है, जिन्हें कि अन्द्रोनिकुस अरस्तूके ग्रंथ नहीं समझता। वस्तुतः हमारे यहाँ जैसे व्यास बुद्ध, शकर

जन्म २३३ ई०में शाम (सिरिया)के नायर नगरमें हुआ था, किन्तु इसने शिक्षा सिकन्दरियामें प्लातिनुके पास पाई, और यहीं पीछे अध्यापन करने लगा। इसने अरस्तूकी पुस्तकोंपर विवरण और भाष्य लिखे। तर्कशास्त्रके विद्यार्थियोंके लिए इसने एक प्रकरण ग्रंथ ईसागोजी लिखा, जिसे अरबोंने अरस्तूकी कृति समझा। यह ग्रंथ आज भी अरबी मदरसोंमें उसी तरह पढ़ाया जाता है, जैसे संस्कृत विद्यालयोंमें तर्क-संग्रह और मुक्तावलि।

ईसाई धर्म दूसरे सामीय एकेश्वरवादी धर्मोंकी भाँति दर्शनका विरोधी था। भक्तिवाद और दर्शन (बुद्धिवाद)में सभी जगह ऐसा विरोध देखा जाता है। जब ईसाइयोंके हाथमें राज शासन आया, तो उसने इस खतरेको दूर करना चाहा। किस तरह पादरी थवफिलस ३०० ई०में सिकन्दरियाके सारे पुस्तकालयोंको जला दिया और किस तरह ४१५ ई०में ईसाइयोंने सिकन्दरियामें गणितके आचार्य हिपाशियाको बड़ी निर्दयताके साथ वध किया, इसका जिक्र हो चुका है। अन्तमें ईसाई राजा जस्तीनियनने ५२९ ई०में राजाज्ञा निकाल दर्शनका पठन-पाठन बिलकुल बन्द कर दिया।

§ २–यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास और दर्शनानुवाद

१–यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास

दर्शनद्रोही जस्तीनियनके शासनके बखाहीसे रोमन साम्राज्यके पड़ोसमें उसका प्रतिद्वंद्वी ईरानी साम्राज्य था, जिसने अभी किसी ईसाई या दूसरे असहिष्णु सामी धर्मको स्वीकार न किया था, उस समय ईरानका शाह शाह कवाद (४८७-९८ ई०) था।

मज्दक—कवादके समय ईरानका विख्यात दार्शनिक मज्दक मौजूद था। दर्शनमें उसके विचार भौतिकवादी थे। वह साम्यवाद और मघवाद का प्रचारक था। उसकी शिक्षा थी—सम्पत्ति वयक्तिक नहीं सामिक होनी चाहिए सारे मनुष्य समान और एक परिवार-सम्मिलित होने चाहिए। संयम, श्रद्धा जीव-दया रखना मनुष्य होनेकी जवाबदेही है। मज्दककी शिक्षाका ईरानियोंमें बड़ी तेजीसे प्रसार हुआ, और खुद कवाद भी जब

नामसे दूसरोंके बनाये ग्रंथ आकर उनके मत्थे मढ़ दिये गये, वही बात अरस्तूके साथ भी है।

अरस्तूने दुनियाके विषय-क्रमको लगाकर जितने भागोंमें बाँटा था, उनमें मुख्य यह हैं—(१) तर्क-शास्त्र (२) भौतिक-शास्त्र, (३) अति-भौतिक (अध्यात्म)-शास्त्र (४) आचार (५) राजनीति। तर्कशास्त्रमें ही अलंकार, आचार तथा प्राणि-शास्त्र सम्बन्धी ग्रंथ भी शामिल हैं।

२—अरस्तूका पुन: पठन-पाठन

अरस्तूके ग्रंथोंके पठन-पाठनमें आसानी पैदा करनेके लिए सिकन्दर अफ्रोदिसियसने विवरण लिखे। विवरण लिखते वक्त उसने अरस्तूकी असली किताबोंपर लिखनेका खूब ख्याल रखा और इसमें अन्द्रानिकूकी सूचीसे उसे मदद मिली।

सिकन्दरके साम्राज्यके जब टुकड़े-टुकड़े हुए तो मिश्र सेनापति तालमी (अरबी लेखोंमें तुल्माय)के हाथ आया, जिसने ४७ ई० पू० तक तालमी-वंशने उसपर शासन किया और धीरे धीरे मिश्रकी राजधानी सिकन्दरिया (अलिक्सुन्दरिया, अलसन्दा) व्यापार-केन्द्रके अतिरिक्त विद्या-केन्द्र होनेमें दूसरा एथेन्स बन गई। ईसाई धर्मका प्रचार जब रोममें बढ़ने लगा था उस वक्त यूनानी-दर्शनके पठन-पाठनका जबर्दस्त केन्द्र सिकन्दरिया थी। इस वक्त नव-अफलातूनी दर्शनका प्रचार रहा, यह हम पहिले बतला चुके हैं। फिलो यूदियो (ई० पू० २५-४० ई०) सिकन्दरियाका एक भारी दर्शन-अध्यापक था। ईसाकी तीसरी सदीमें प्लोतिनु (२०५-७१ ई०) सिकन्दरियामें दर्शन पढ़ाता था। ये सभी दार्शनिक रहस्यवादी नव-अफलातूनी दर्शनके अनुयायी थे, किन्तु इनके पठन-पाठनमें अरस्तूके ग्रन्थ भी शामिल थे। फोर्फुर[2] (फोर्फोरियोस) भी यद्यपि दर्शनमें नव-अफलातूनी था, किन्तु उसने अरस्तूके ग्रंथोंको समझनेकी पूरी कोशिश की। इसकी

---

[1] देखो फाराबी, पृष्ठ ११४ ५ [2] Porphyry

जन्म २३३ ई०में शाम (सिरिया)के तायर नगरमें हुआ था किन्तु इसने शिक्षा सिकन्दरियामें प्लोतिनुसके पास पाई और यहीं पीछे अध्यापन करने लगा। इसने अरस्तूकी पुस्तकोंपर निबन्ध और भाष्य लिखे। तर्कशास्त्रके विद्यार्थियोंके लिए इसने एक प्रकरण ग्रन्थ ईसागोजी लिखा, जिससे अरबोंने अरस्तूकी कृति समझा। यह ग्रंथ आज भी अरबी मदरसामें उसी तरह पढ़ाया जाता है, जैसे संस्कृत विद्यालयोंमें तर्क-संग्रह और मुक्तावलि।

ईसाई धर्म दूसरे सामीय एकेश्वरवादी धर्मोंकी भाँति दर्शनका विरोधी था भक्तिवाद और दर्शन (बुद्धिवाद)में सभी जगह ऐसा विरोध देखा जाता है। जब ईसाइयोंके हाथमें राज शासन आया, तो उसने इस खतरेको दूर करना चाहा। किस तरह पादरी थवफिलन ३०० ई०में सिकन्दरियाके सारे पुस्तकालयको जला दिया और किस तरह ४१५ ई०में ईसाइयोंने सिकन्दरियामें गणितके आचार्य हिपाशियाका बड़ी निर्दयताके साथ वध किया, इसका जिक्र हो चुका है। अन्तमें ईसाई राजा जस्तीनियनने ५२९ ई०में राजाज्ञा निकाल दर्शनका पठन-पाठन बिलकुल बन्द कर दिया।

§ २–यूनानी दार्शनिकोंका प्रवास और दर्शनानुवाद

१–यूनानी दार्शनिकोका प्रवास

दर्शनद्रोही जस्तीनियनके शासनके वक्तहीसे रोमन साम्राज्यके पड़ोसमें उसका प्रतिद्वंद्वी ईरानी साम्राज्य था, जिसने अभी किसी ईसाई या दूसरे असहिष्णु सामी धर्मको स्वीकार न किया था उस समय ईरानका शाहंशाह कवद (४८७ ९८ ई०) था।

मज्दक—कवदके समय ईरानका विख्यात दार्शनिक मज्दक मौजूद था। दर्शनमें उसके विचार भौतिकवादी थे। वह साम्यवाद और संघवादका प्रचारक था। उसकी शिक्षा थी—सम्पत्ति वैयक्तिक नहीं सांघिक होनी चाहिए सारे मनुष्य समान और एक परिवार-सम्मिलित होने चाहिए। संयम श्रद्धा, जीवदया रखना मनुष्य होनेकी जवाबदेही है। मज्दककी शिक्षाका ईरानियोंमें बड़ी तेजीसे प्रसार हुआ, और खुद कवद भी जब

मजबूर हुए, इनमें सिम्प्लु और देमासिपु भी थे। ईरान नौशेरवांके राज्यमें शरण ली। शरण देनेमें नौशेरवांकी उदार हृदयताका उतना हाथ न था, जितना कि अपने प्रतिद्वंद्वी रोमन राजाके विरोधियोंको शरण देनेकी भावना। अपने पूर्वजोंकी भाँति नौशेरवांका भी रोमन कैसरसे अक्सर युद्ध होता रहता था। एक युद्धके अनिर्णयात्मक तौरपर खतम कर ५४९ ई०में उसने रोमको पराजितकर अपनी शर्तोंपर सुलह करानेमें सफलता पाई। सुलहकी शर्तोंमें एक यह भी थी कि रोमन कैसर अपने राज्यमें धार्मिक (दार्शनिक) विचारोंकी स्वतंत्रता रहने देगा। इस संधिके अनुसार कुछ विद्वान् स्वदेश लौटनेमें सफल हुए किन्तु सिम्पल और दमासियुको लौटनेकी इजाजत न मिल सकी।

(१) ईरानी (पहलवी) भाषामें अनुवाद—नौशेरवांने जन्दशापुरमें एक विद्यापीठ कायम किया था जिसमें दर्शन और वैद्यककी शिक्षा खास तौरसे दी जाती थी। इस विद्यापीठमें इस समय पठन-पाठनके अतिरिक्त कितने ही यूनानी दर्शन तथा दूसरे ग्रंथों (जिनमें पौलस पर्सा द्वारा अनुवादित अरस्तूके तर्कशास्त्रका अनुवाद भी है)का पहलवीमें अनुवाद हुआ। अनुवादकोंमें कितने ही नस्तोरीय सम्प्रदायके ईसाई भी थे जो कि खुद कैसर-स्वीकृत ईसाई सम्प्रदायके कोपभाजन थे।

ज्वानवाद (ईरानी नास्तिकवाद)—यहाँ पर यह भी याद रखना चाहिए कि ईरानमें स्वतंत्र विचारकी धारा पहिलेसे भी चली आती थी। नौशेरवांसे पहिले यज्दगिर्द द्वितीय (४३९-५७ ई०)के समय एक नास्तिकवाद प्रचलित था, जिसे ज्वानवाद कहते हैं। ज्वान पहलवी भाषा में काल (अरबी—दह्र) को कहते हैं। ये लोग कालको ही मूल कारण मानते थे, इसीलिए इन्हें ज्वानवादी कालवादी (अरबी—दह्रिया) कहते थे। नास्तिक होते भी यह भाग्यवाद के विश्वासी थे।

(२) सुरियानी (सिरियाकी) भाषामें अनुवाद—ईसवी सनकी पहिली सदियोंमें दुनियाके व्यापारक्षेत्रमें सिरिया (शामी) लोगोंका एक खास स्थान था। जिस तरह वे ईरानी रोम भारत और चीनके व्यापारमें

प्रधानता रखते थे उसी तरह, पश्चिमी एसिया, अफ्रीका और यूरप—तीनोंमें फैले हुए—का व्यापार सिरियनोंके हाथमें था। बल्कि मद्रासके सिरियन ईसाई इस बातके सबूत हैं, कि सिरियन सौदागर दक्षिण भारत तक दौड़ लगाते थे। व्यापारके साथ धर्म, संस्कृतिका आदान-प्रदान होना स्वाभाविक है, और सिरियावाले यहीं यूनानी दर्शनके वाहक साबित हुए। सिरियन विद्वानोंने यूनानी सभ्यताके साथ उसके दर्शनको भी सिकन्दरिया (मिश्र), अन्तियोक (क्षुद्र-एसियाका यूनानी नगर)से लेकर ईरान (जुन्दीशापुर) और मसोपोतामिया निसिबिन (ईराकी सरहद्द) तक फैलाया। पश्चिमी और पूर्वी (ईरानी) दोनों ईसाई सम्प्रदायोंकी धर्म भाषा सुरियानी (सिरियानी भाषा) थी किन्तु उसके साथ उनके मठोंमें यूनानी भाषा भी पढ़ाई जाती थी। एदेसा (मसोपोतामिया) भी ईसाइयोंका एक विद्याकेन्द्र था जिसकी बदौलत एदेसाकी भाषा (सुरियानीकी एक शाखा) साहित्यिक भाषाके रूपमें तक पहुँच गई। उसके अध्यापकोंके नस्तोरीय विचार रखनेके कारण ४८९ ई०में सम्राट्ने मठ-विद्यालयको बन्द कर दिया गया जिसके बाद उसे निसिबी (सिरिया)में लाया गया।

(क) निसिबी (सिरिया)—निसिबी नगर ईसाइयोंके अधिकृत प्रदेशमें था, और सासानी शाहोंकी सरहद्द उसके ऊपर था। नस्तोरीय ईसाई सम्प्रदायोंके धर्मकी शिक्षाके साथ-साथ यहाँ दर्शन और वैद्यकका भी पठन-पाठन होता था। इतना ज्यादा विद्यार्थियों और अध्यापकोंका झुकाव देखकर अधिक दर धर्मनेताओंको फिक्र पड़ी, और ५९० ई०में उन्होंने नियम बनाया कि जिस कमरेमें धर्म-पाठ हो वहाँ लौकिक विद्याका पाठ नहीं होना चाहिए।

मसोपोतामियाके इस भागमें जिसमें निसिबी, एदेसा तथा हरानके शहर थे, उस समय सुरियानी भाषा भाषी था। पिछले महायुद्ध (१९१४-१८ ई०)के बाद मसोपोतामियाके सुरियानी ईसाइयोंको किस तरह निर्दयतापूर्वक कत्ल-आम किया गया था इसे अभी बहुतसे पाठक भूले

न हुआ। आज मसोपोतामिया (इराक) सिरिया (क्षुद्र एसियाका एक भाग) मिस्र, मराक्रोम जो अरबी भाषा देखी जाती है वह इस्लाम और अरबोंके प्रसारके कारण हुआ। इस तरह ईसाकी प्राथमिक शताब्दियोंमें एदस्सा और उसका पड़ोसी नगर ईरान भी सुरियानी भाषा-भाषी था।

मसोपोतामियाके इन विद्यापीठोंमें चौथीसे आठवीं सदी तक बहुतसे यूनानी-दर्शन तथा शास्त्रीय-ग्रंथोंका तर्जुमा होता रहा, जिनमें सर्जियस (४६६ ५३६ ई०)के अनुवाद विषय और परिमाण दोनोंके ख्यालसे बहुत पूर्ण थे। जब मसोपोतामियापर इस्लामका अधिकार हो गया, तब भी सुरियानी अनुवादका काम जारी रहा, एदस्साके याकूब (६४० ७०८ ई०) ने अपने अनुवाद इसी समय किये थे। इन अनुवादोंमें सब जगह मूलके अनुकरण करनेकी कोशिश की गई है किन्तु यूनानी देवी-देवताओं तथा महापुरुषोंके स्थानपर ईसाई महापुरुषोंको रखा गया है। इस बातमें अरब अनुवादक और भी आगे बढ़ गये। सुरियानी अनुवादोंमें अरस्तूके तर्कशास्त्रका ही अनुवाद ज्यादा देखा जाता है, और उस वक्तके सुरियानी विद्वान् अरस्तूको सिर्फ तर्कशास्त्री समझते थे।

इन सिरियन (सुरियानी) लोगोंने पीछे आठवीं दसवीं सदीमें बगदादके खलीफोंके शासनमें यूनानी ग्रंथोंका सुरियानी अनुवादोंकी मददसे या स्वतन्त्र रूपसे अरबी भाषामें तर्जुमा किया। सुरियानियोंका सबसे बड़ा महत्त्व यह है, कि यूनानी अपने दर्शनको जहाँ लाकर छोड़ देते हैं वहाँसे वह उस आग—विचारमें नहीं कालमें—ले जाते हैं, और अरबोंको आगकी जिम्मेवारी देकर अपने कार्यको समाप्त करते हैं।

(ख) हरानके साबी—जब यूनान तथा दूसरे पश्चिमी देशोंमें ईसाई धर्मके जबर्दस्त प्रचारसे यूनानी तथा दूसरे देवी-देवता भूल जा चुके थे, तब भी मसोपोतामियाके हरान नगरमें सभ्य मूर्तिपूजक मौजूद थे। जो यूनानके दार्शनिक विचारोंके साथ-साथ देवी-देवतोंमें श्रद्धा रखते थे, किन्तु सातवीं सदीके मध्यमें इस्लामिक विजयके साथ उनके देवताओं और

देवताओंके मन्दिर थे। ये तारोंकी ही इसलिए उनकी पूजा-अर्चा नहीं थी; किन्तु इनके ग्रहादि विचारोंको नष्ट करना उतना आसान न था। वास्तवमें साबियोंके इस्लाममें आनेपर ग्रहादिक विचारोंका इसपर भारी असर पड़ा था, जिसके लिए कि कट्टर मुसलमान उन्हें बराबर कोसते रहे। इनकी अपनी भाषाकी पुरानी [illegible] अच्छा सजुमा वगैरह भी [illegible] था।

३—यूनानी दर्शन-ग्रन्थोंके अरबी अनुवाद (७०४—१००० ई०)

प्रथम चार अरब खलीफाओंके बाद अमीर म्वाविया (६६१-८० ई०) ने सर्वप्रथम अरब बनी-उमय्या (अरबी) वंश सामन्तशाही व्यवस्थाके रूप और हुकूमत स्थापनाके साथ बनी-उमय्याके वंशज शासनकी नींव दृढ़ कर चुके। म्वावियाके वंश (बनी-उमय्या)की खिलाफतके दिनों (६६१-७५० ई०)में इस्लाम धर्मका अरबसे हर तरफ बाहरी प्रसार शुरू हो चला। फतह करती जा रही थी, किन्तु जहाँ तक राज्य व्यवस्था तथा दूसरे सांस्कृतिक जीवन-व्यवस्थाका सम्बन्ध था, अरबोंने उन देशोंकी सभ्य जातियोंसे कितनी ही बातें सीखनेकी कोशिश की। जिनके सम्पर्कमें वह पहुँच आये। विशेषकर दरबारी ठाट-बाट गाना-बजानेमें तो उन्होंने बहुत कुछ ईरानी बादशाहोंकी नकल की। उमय्या अरबोंकी पुरानी आदतों तथा रिवाजोंसे अलग रखनेके लिए अमीर म्वावियाने पश्चिमकी चारदीवारी राजधानीको मदीनासे दमिश्कमें बदल लिया था, और इस प्रकार मदीनाका महत्त्व सिर्फ एक तीर्थका रह गया।

बनी उमय्याके शासनकालमें ही इस्लामी सल्तनत मध्य एसियासे उत्तरी अफ्रीका और स्पेन तक फैल गई थी, जैसा कि बतला आये हैं, और इस प्रकार जहाँ तक अरब तलवारका सम्बन्ध था, यह उनकी सल्तनतकी चरम सीमा थी। इसके बाद इस्लाम पूर्वी एसिया, भारतीय सागरके बहुतसे भागोंपर फैला जरूर, किन्तु उसके फैलानेवाले अरब नहीं बल्कि अरब मुसलमान थे।

पहिली स्वागम अरबी मुसलमानोंने कबीलाशाहीके सवालको तो छोड़ दिया, किन्तु समझौता इतनेहीपर होने वाला नहीं था। जो अन-अरब ईरानी या शामी जातियाँ इस्लामको कबूल कर चुकी थीं, वह असभ्य बद्दू नहीं बल्कि अरबोंसे बहुत ऊँचे दर्जेकी सभ्यताकी धनी थीं, इसलिए वह अरबकी तलवार तथा धर्म (इस्लाम)के सामने सर झुका सकती थीं किन्तु अपनी मानसिक तथा बौद्धिक संस्कृतिको तिलांजलि देना उनके वशकी बात न थी, क्योंकि उसका मतलब था सारी जातिमेंसे बौद्धिक योग्यताको हटाकर अज्ञता—तारुण्यसे लौटकर शैशव—में जाना। यही वजह हुई, जो बनी-उमय्याके बाद हम इस्लामी शासकोंको समझौतेमें और आगे बढ़ते देखते हैं।

म्वाविया यज़ीद उमर (२) कुशल शासक थे किन्तु जैसे-जैसे राजवंश पुराना होता गया, खलीफ़ा अधिक शक्तिहीन होते गये, यहाँ तक कि म्वावियाके आठवें उत्तराधिकारी इब्न-म्वाविया (७४४-४७ ई०)को तख्तसे हाथ धोना पड़ा। जिस कूफ़ाको शराब रहते वक्त यज़ीदने हुसेनके खूनसे अपने हाथोंको रँगा था वहींके एक अरब-सर्दार अब्दुल् अब्बास (७४९-५४ ई०)ने अपने खिलाफ़तकी घोषणा की। खलीफ़ाको कबीलेका विश्वासपात्र होना चाहिए यह बात तो बनी-उमय्याने ही खतम कर दी थी, और दुनियाके दूसरे राजाओंकी भाँति तलवारको अन्तिम निर्णायक मान लिया था इसलिए अब्बासकी इस हरकतकी शिकायत वह क्या कर सकते थे? अब्बासने बनी-उमय्याके शाहज़ादोंमेंसे जिन्हें पाया उन्हें कत्ल किया, यद्यपि यह कत्ल उतना खूनी नहीं था, जैसा कि कर्बलाके मैदानका, किन्तु इतिहासके पुराने पाठको कुछ अंशोंमें दुहराया ज़रूर। इन्हीं शाहज़ादोंमेंसे एक—अब्दुर्रहमान दाख़िल पश्चिमकी ओर भाग गया और स्पेन तथा मराकोमें अपने वंशके शासनको कुछ समय तक और बचा रखनेमें समर्थ हुआ।

अब्बासने सारे एसियाई इस्लामी राज्यपर अधिकार जमाया। आरम्भिक समयमें अब्बासी राजवंश (अब्बासियों)ने भी अपनी राजधानी

दमिश्क रहा किन्तु अब्बासियोंके वक्त खलीफा मंसूर (७५४-७५ ई०)ने ७६२ में बगदाद नगरको बसाया, और पीछे राजधानी भी वहीं बदल दी गई। अब खिलाफत एक तरहसे अरबी वातावरणसे हटकर आर्य—ईरानी तथा सुरियानी—वातावरणमें आई, इसलिए अब्बासी खलीफाओंपर बाहरी प्रभाव ज्यादा पड़ने लगा। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आरम्भमें भी मुसलमानोंमें अरबी खूनकी शुद्धताका ख्याल न था। फिर माताओंका तो प्रश्न ही क्या। पैगम्बरके नाती हुसैनकी स्त्री ईरानी शाह यज्दगिर्द तृतीय (६३४-५२ ई०)की पुत्री शहरबानू[1] थी। खलीफा-वंशमें भी दासी-पुत्र और ईरानी थे। अरब नाम अब्बासियोंके नाममें था। इस तरह मालूम है कि जिन खलीफाओंको अब भी अरब समझा जाता था उनमें भी अब अरब खून न रहा था। यह और वातावरण मिलकर उनपर कितना प्रभाव डाल सकते थे यह जानना आसान है।

(१) अनुवाद-कार्य—उपरोक्त कारणोंसे बगदादके खलीफोंको पहिले खलीफोंसे विचारके सम्बन्धमें ज्यादा उदार होना पड़ा। उनके संरक्षणमें उनकी राजधानी बगदाद तथा दमिश्क आदिमें बड़े बड़े विद्यापीठ कायम हुए, जिनमें यद्यपि कुरान और इस्लामकी ही शिक्षा दी जाती थी, किन्तु समयके साथ उन्हें दूसरी विद्याओंकी ओर भी ध्यान देना पड़ा। मंसूर (७५४-७५), हारून (७८६-८०९ ई०) और मामून (८११-३३ ई०) अरबी शाहिंशाह और विद्वान् थे, जिनके दरबारमें सब विषयके विद्वानोंका बड़ा सम्मान होता था। वे स्वयं विद्वान् थे और इनके शाहजादोंकी शिक्षा कुरान, उसकी व्याख्याओं और परम्पराओं तक ही सीमित न थी, बल्कि उनकी शिक्षामें यूनानी दर्शन, भारतीय ज्योतिष और गणित भी शामिल थे। जब इस प्रकार अब्बासी खलीफाओंमें अरबके साथ-साथ बन्धुओंको यदि कोई चीज बाकी

[1] यह नाम भी पारसी है, जिसका संस्कृत रूप होगा भग(वद)दत्त=भगवानकी दी हुई।

रह गई थीं, तो वह अरबी भाषा थी जो कि उस वक्त सारे इस्लामी सल्तनतकी राजकाज तथा सांस्कृतिक भाषा थी।

यजीद प्रथम (६८०-७१७ ई०)के पुत्र खालिद (म० ७०४ ई०) को कीमिया (रसायन)का बहुत शौक था। कहा है उसीने पहिले-पहिल एक ईसाई साधु द्वारा कीमियाकी एक पुस्तकको यूनानीसे अरबी भाषामें अनुवाद कराया। मंसूर (७५४-७५ ई०)के शासनमें वैद्यक नक्षत्रशास्त्र भौतिक विज्ञानके ग्रन्थ पहलवी या सुरियानी भाषासे अरबीमें अनुवादित हुए। इस समयके अनुवादकोंमें इब्न-अल-मुकफ्फाका नाम खास तौरसे मशहूर है। मुकफ्फा स्वयं ईरानी जातिका ही नहीं बल्कि ईरानी धर्मका भी अनुयायी था। इसने किनने ही यूनानी दर्शन-ग्रन्थोंके भी अनुवाद किये थे, किन्तु बहुतसे दूसरे प्राचीन अरबी अनुवादोंकी भाँति वह काल-कवलित हो गये, और हम तक नहीं पहुँच सके किन्तु उन्होंने प्रथम दार्शनिक विचारधारा प्रवर्तित करनेमें बड़ा काम किया था इसमें तो शक ही नहीं।

हारून और मामूनके अनुवादकोंमें कुछ संस्कृत पंडित भी थे जिन्होंने वैद्यक और ज्योतिषके कितने ही ग्रन्थोंके अरबी अनुवाद करनेमें सहायता की। इस समयके कुछ दर्शन-अनुवादक और उनके अनुवादित ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं—

अनुवादक	काल	अनुवादित ग्रंथ	मूलकार
याह्न (याह्या) बिन बित्रिक	नवीं सदी	तमाउस	अफ्लातूं
	,,	प्राणिशास्त्र	अरस्तू
,,		मनोविज्ञान	
,,	,,	तर्कशास्त्रके अंश	,,
अब्दुल्ला नइमन	८३५ ई०	सोफिस्तिक	अफ्लातूं

अब्दुल्ला इब्नुल हिम्सी	८.. ई०	भौतिक शास्त्र गीया¹	फिलासफी
अस्ता इब्न-लूका अल-बलबकी			"
			सिकन्दर अफ्रोदिसियस्

मामून (८११-३३ ई०) के बाद भी अनुवादका काम जारी रहा, और उस वक्तके प्रसिद्ध अनुवादकोंमें थे—हुनैन इब्न इस्हाक (९१० ई०) साबित इब्न-कुर्रा-हर्रानी, अबूबिश्र मत्ता इब्न-यूनुस् अल-कन्नाई (९४० ई०) अबू जकरिया इब्न अदी मन्तिकी (९७४ ई०), अबू अली ईसा जुरा (१००८ ई०) अबुल् खैर अल-हसन खम्मार (जन्म ९४२ ई०)।

(२) समकालीन बौद्ध तिब्बती अनुवाद—अनुवाद द्वारा अपनी भाषाको समृद्ध तथा अपनी जातिको सुशिक्षित बनाना हर एक उन्नतिशील सभ्य या असभ्य जातिका काम होता है। चीनने ईसाकी पहिली सदीसे सातवीं सदी तक हजारों भारतीय ग्रन्थोंका चीनीमें अनुवाद बड़े भारी आयास और परिश्रमके साथ इसीलिए कराया था। तिब्बती लोग भी अरबके बद्दुओंकी भाँति पशुपालक अक्षर-संस्कृति रहित असभ्य जाति थे। उन्हीकी भाँति तथा उसी समयमें स्रोङ्-चन् गम्पो (६३०-९८ ई०) जैसे नेताके नेतृत्वमें उठकर उन्होंने हिमालय, मध्य एसिया तथा चीनके पश्चिमी तीन सूबोंको जीतकर एक विशाल साम्राज्य कायम किया। और एक बार तो तिब्बती घोड़ोंने गंगा गढ़के गंगासागरका पानी पिया था। अरबोंकी भाँति ही तिब्बतियोंको भी एक विस्तृत राज्य कायम करके उस पर शासन करनेके तरीकेका ज्ञान, सामन्तशाही राजनीति और संस्कृतिका निर्माण करना पड़ा जिसमें राजनीति तो काम की। पैगंबर मुहम्मदकी तरह स्वयं धर्मचिन्तक न होनेसे सामने पड़ने चीन, भारत, मध्य एसियासे

---

¹ अरस्तूकी पुस्तक।

प्रचलित बौद्ध धर्मको अपनाया जिसने उसे सभ्यता कला धर्म, साहित्य आदिकी शिक्षा सर्जीसे तथा बहुत महानुभूतिपूर्वक तो दी जरूर किन्तु साथ ही अपने दुःखवाद तथा आदर्शवादी अहिंसावादकी इतनी गहरी घूट पिलाई कि स्रोड चनके वंश (६३० ९१२ ई०) के साथ ही तिब्बती जातिका जीवन-स्रोत सूख गया। तिब्बती अरबी दोनों जातियोंने एक ही साथ दिग्विजय प्रारंभ किया था एक ही साथ दोनोंने विजित जातियोंसे सभ्यताकी शिक्षा प्राप्त की। यद्यपि अतिशीत प्रधान भूमिके वासी होनेसे तिब्बती बहुत दूर तक तो नहीं बढ़, किन्तु साम्राज्य विस्तारके साथ वह पश्चिममें बल्तिस्तान (कश्मीर) लदाख लाहुल स्पिती तक दक्खिनमें हिमालयके बहुतेरे भागो, भूटान और बर्मा तक वह जरूर पहुँचे। सबसे बड़ी समानता दोनोंमें हम यह पाते है, कि मसूर हारून-मामूनका समय (७५४ ६३३ ई०) करीब-करीब वही है जो कि ठि-स्रोङ्-लदे-चन और ठि-स्रोङ्-ल्दे-चन, ठि-रल्-चन्का (७४० ८७८ ई०)का है और इसी समय अरबकी भाँति तिब्बतने भी हजारों संस्कृत ग्रन्थोंका अपनी भाषामें अनुवाद कराया, इसका अधिकांश भाग अब भी सुरक्षित है। यह दोनों जातियाँ आपसमें अपरिचित न थी, पूर्वी मध्य एसिया (वर्तमान सिन्क्याङ्) तथा गिलगितके पास दोनों राज्योंकी सीमा मिलती थी और दोनों राज्यशक्तियोंमें मित्रतापूर्ण संधि भी हुई थी यद्यपि इस सन्धिके कारण सीमान्त जातियाँ—विशेषकर ताजिकों—का भारी अनर्थ हुआ था।

(३) अरबी अनुवाद—यदि हम अनुवादकोंके धर्मपर विचार करते है तो तिब्बती और अरबी अनुवादोंमें बहुत अन्तर पाते हैं। तिब्बती भाषाके अनुवादक चाहे भारतीय हों अथवा तिब्बती सभी बौद्ध थे। यह जरूरी भी था, क्योंकि वैद्यक छन्द काव्यके कुछ ग्रन्थोंको छोड़ जिन ग्रन्थोंका अनुवाद उन्हें करना था वह बौद्ध धर्म या दर्शनपरक थे। तिब्बती अनुवाद कितने शुद्ध है उसका उदाहरण और भाषामें मिलना मुश्किल हैं। अरबी अनुवादकोंमें कुछके नाम यहाँ है इनमें प्राय सभी यहूदी ईसाई या साबी धर्मके माननेवाले थे।

ताज बिन बित्रील	ईसा बिन्-यूनस्	इब्राहीम हरारी
कुस्ता बिन-लूका	साबित बिन् कर्र	याकूब बिन् इस्हाक किन्दी
मा-सर्जियस	जकरिया हम्मा	हनन इब्न इस्हाक[1]
ईसा बिन-मासियस्	फामान मजिम	अयूब रहावी
हज्जाज बिन मत्र	हमीन मनरान	यूसुफ तबीब
बज्जा हाना	हरान	अबू-यसुफ योहन्ना
अब्द यसूअ बिन-बहलज	नदरन	बिनगोव
गर शाप्र बिन्-इब्न	मनान बिन साबित्	यह्या बिन बितरीक
साम्या अन्नफ		

अ-मुस्लिम अनुवादक अपने धर्मको बदलना नहीं चाहते थे, और उनके मरणपर इस्लामी शासकोंकी इस बारेमें क्या नीति थी इसका अच्छा उदाहरण इन जिब्रासका है। खलीफा मंसूर (७५४-७५ ई०)ने एक बार जिब्रालसे पूछा कि तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते, उसने उत्तर दिया—अपने बाप-दादोंके धर्ममें ही मैं मरूँगा। चाहे वह जन्नत (स्वर्ग)में हो, या दोजख (नर्क)में मैं भी वहीं उन्हींके साथ रहना चाहता हूँ। इसपर खलीफाने उसे पसन्द और अनुवादकको भारी इनाम दिया।

[1] ये अरबी मुसलमान थे।

चतुर्थ अध्याय

दर्शनका प्रभाव और इस्लाममें मतभेद

§ १–इस्लाममें मतभेद

कुरानकी भाषा सीधी-सादी थी। किसी बालक कहनका उसका ढंगका वही था, जिसे कि हर एक बद्दू अनपढ़ समझ सकता था। इसमें शक नहीं उसमें कितनी ही जगह तुक अनुप्रास जैसे काव्यके शब्दालंकारों का ही नहीं बल्कि उपमा आदिका भी प्रयोग हुआ है, किन्तु ये प्रयोग भी उतनी ही मात्रामें हैं, जिसे कि साधारण अरबी भाषाभाषी अनपढ़ व्यक्ति समझ सकते हैं। इस तरह जब तक पैगंबर-कालीन अरबोंके बौद्धिक तल तक बात रही, तथा इस्लामी राजनीतिमें उसीका प्रभाव रहा, तब तक काम ठीकसे चलता रहा, किन्तु जैसे ही इस्लामिक दुनिया अरबके प्रायद्वीपसे बाहर फैलने लगी और उससे वे विचार टकराने लगे जिनका जिक्र पिछले अध्यायोंमें हो आया है, तब तो इस्लाममें मतभेद होना जरूरी था।

१–फिका या धर्ममीमांसकोंका जोर

पैगंबरके जीते-जी कुरान और पैगंबरकी बात हर एक प्रश्नके हल करनेके लिए काफी थी। पैगंबरके देहान्त (६३२ ई०)के बाद कुरान और पैगंबरका आचार (सुन्नत या सदाचार) प्रमाण माना जाने लगा। यद्यपि सभी हदीसों (पैगंबर-वाक्यों स्मृतियों)के संग्रह करनेकी कोशिश शुरू हुई थी, तो भी पैगंबरकी मृत्युके बाद एक सदी बीतते-बीतते अक्ल (बुद्धि)ने

इस्लामका निर्माण किया और सुन्नत (=बुद्ध युक्ति) और कुरान (=ईश्वरीय धर्मग्रंथ) को आधार उन्होंने माना। इस्लाम धर्मके मीमांसकोंकी भांति इनका फिर मीमांसकों—फिकावाले फकीहों—का भी इसपर जोर था, कि कुरान स्वतः प्रमाण है, उसके बाद पैगंबर वचन तथा सदाचार प्रमाण हैं। मीमांसकोंके नित्य[1] नैमित्तिक[2] काम्य कर्मोंकी भांति फिकाने कर्मोंका भेद निम्न प्रकार किया है—

(१) नित्य या अवश्यकरणीय कर्म जिसके न करनेपर पाप होता है जैसे नमाज।

(२) नैमित्तिक (वाजिब) कर्म जिसे धर्मने विहित किया है, और जिसके करनेपर पुण्य होता है, किन्तु न करनेसे पाप नहीं होता।

(३) अनुमोदित कर्म जिसपर धर्म कुछ जोर नहीं देता।

(४) असम्मत कर्म जिसके करनेमें धर्म सम्मति नहीं देता, किन्तु करनेपर कर्ताको दण्डनीय नहीं ठहराता।

(५) निषिद्ध कर्म जिसे धर्मशास्त्र मना ही करता है और करने पर हर हालतमें कर्ताको दडनीय ठहराता है।

फिकाके आचार्योंमें चार बहुत मशहूर हैं—

१ इमाम अबू हनीफा (७६७ ई०) कूफा (मेसोपोतामिया)के रहनेवाले थे। इनके अनुयायियोंको हनफी कहा जाता है। इनका भारतमें बहुत जोर है।

२ इमाम मालिक (७१५-९८ ई०) मदीनाके निवासी थे। इनके अनुयायी मालिकी कहे जाते हैं। स्पेन और मराकोके मुसलमान पहिले सारे मालिकी थे। इमाम मालिकने पैगंबर-वचन (हदीस)को धर्मनिर्णयमें

---

[1] जिसके न करनेसे पाप होता है, अतः अवश्यकरणीय है।

[2] नैमित्तिक (अर्थ आवश्यक) कर्म पापादिके दूर करनेके लिए किया जाता है। [3] काम्यकर्म किसी कामनाकी पूर्तिके लिये किया जाता है, और न करनेसे कोई हर्ज नहीं।

बहुत जोरके साथ इस्तमाल किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि विद्वानोंने हदीसोंका जमा करना शुरू किया, और हदीसवालों (अहल-हदीस)का एक प्रभावशाली गिरोह बन गया।

३ इमाम शाफई (७६७-८२० ई०)ने शाफई नामक तीसरे फिका सम्प्रदायकी नींव डाली। यह सुन्नत (सदाचार)पर ज्यादा जोर देते थे।

४ इमाम अहमद इब्न-हंबलने हंबलिया नामक चौथे फिका सम्प्रदायकी नींव डाली। यह ईश्वरको साकार मानते हैं।

हनफी और शाफई दोनों मतोंमें कयास—दृष्टान्त द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचना—पर ज्यादा जोर रहा है और यह साफ है कि इमाम हनीफा का इस विचारपर पहुँचनेमें (कूफा)के बौद्धिक वायुमंडलने बहुत मदद दी। शाफईने इस बातमें हनफियोंसे बहुत कुछ लिया।

कुरान, सुन्नत (पैगंबरी सदाचार) कयासके अतिरिक्त चौथा प्रमाण बहुमत (इज्माअ)का भी माना जाने लगा। इनमें पूर्व-पूर्वका उत्तरोत्तर प्रमाण समझा गया है।

२—मतभेदों (=फितनों)का प्रारम्भ

(१) हलूल—मुस्लिम इतिहासके इस्लाममें पहिले मतभेदको इब्न-सबा (सबा-पुत्र)के नामसे सम्बद्ध करते हैं जो कि सातवीं सदीमें हुआ था। इब्न-सबा यहूदीसे मुसलमान हुआ था और विरोधियोंके मुकाबिलेमें हजरत अली (पैगंबरके दामाद)में भारी श्रद्धा रखता था। इसीने हलूल (अर्थात् जीव अल्लाहमें समा जाता है)का सिद्धान्त निकाला था।

(पुराने शीआ)—इब्न-सबाके बाद शीआ और दूसरे सम्प्रदाय पैदा हुए। किन्तु उस वक्त तक इनके मतभेद दार्शनिक रूप न लेकर ज्यादातर कुरान और पैगंबर-सन्तानके प्रति श्रद्धा और अश्रद्धापर निर्भर थे। शीआ लोगोंका कहना था कि पैगंबरके उत्तराधिकारी होनेका अधिकार उनकी पुत्री फातमा तथा अलीकी सन्तानको है। हाँ आगे चलकर दार्श-

[illegible] [illegible] । [illegible] उनके और मातहत [illegible] बुनियादें [illegible] था । [illegible] और [illegible] ईरानियों [illegible] [illegible] प्राप्त [illegible] [illegible] [illegible] अब [illegible] (१४८६ [illegible] ०) [illegible] [illegible] [illegible] गजनी [illegible] [illegible] [illegible] ।

(२) जीव कर्म करने में स्वतंत्र—अबू [illegible] हसनी (मर्दी) [illegible] (मातरद) [illegible] । [illegible] सिद्धांत [illegible] जीव [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिद्धान्त [illegible] [illegible] [illegible] था । [illegible] [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किया [illegible] [illegible] उन्होंने [illegible] सिद्धान्तों [illegible] [illegible] प्रचार [illegible] । ५ ।

(३) ईश्वर निर्गुण (विशेषण रहित)—[illegible] [illegible] था कि [illegible] [illegible] [illegible] रहित है, [illegible] गुण [illegible] जायें [illegible] उनके साथ [illegible] वस्तुओं [illegible] मानना पड़ेगा । [illegible] (नाम-रूपवाला) मानें [illegible] भी मानना पड़ेगा कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । फिर ऐसी [illegible] ईश्वर [illegible] (शोर्क) [illegible] [illegible] जायगा । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कुछ नहीं है । यह विचार [illegible] निर्विकार विभाव (विशेषण रहित मानना [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] हम [illegible] [illegible] [illegible] (७८८ ८२० ई०) [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] बौद्धों [illegible] [illegible] मौजूद था ।

(४) [illegible] (यातिनी)—ईरानियों (=मजमिया) [illegible]

यातिनी ।

एक और सिद्धान्त पैदा किया जिसके अनुसार कुरानमें जो कुछ भी कहा गया है उसके अर्थ दो प्रकारके होते हैं—एक ज़ाहरी (ज़ाहिरा) दूसरा बातिनी (आन्तरिक या अभ्यन्तर)। इस सिद्धान्तके अनुसार कुरानके हर वाक्यका अर्थ उसके शब्दसे भिन्न किया जा सकता है और इस प्रकार सारी इस्लामिक परंपराको उलटा जा सकता है। इस सिद्धान्तके माननेवाले ज़िन्दीक कहे जाते हैं, जिनके ही तालीमिया (शिक्षार्थी) मुलह्दि, बातिनी, इस्माइली आदि भिन्न भिन्न नाम हैं। आगाख़ानी मुसलमान इसी मतके अनुयायी हैं।

§ २–इस्लामके दार्शनिक सम्प्रदाय

आदिम इस्लाम सीधे-सादे रेगिस्तानी लोगोंका भोलाभाला विश्वास था, किन्तु आगेकी ऐतिहासिक प्रगतिने उसमें गड़बड़ी शुरू की इसका ज़िक्र कुछ हो चुका है। मसोपोतामियाके बसरा जैसे नगर इस तरहके मतभेदोंके लिए उर्वर स्थान थे यह बात भी पीछेके पृष्ठोंको पढ़नेवाले आसानीसे समझ सकते हैं।

१–मोतजला सम्प्रदाय

बसरा मोतज़लाकी जन्म और कर्म भूमि थी। मोतज़ला इस्लामका पहिला सम्प्रदाय था जिसने यूनानके प्रभावको अपने विचारों द्वारा व्यक्त किया। उनके विचार इस प्रकार थे—

(१) **जीव कर्ममें स्वतंत्र**—जीवको परतंत्र माननेपर उसे बुरे कर्मोंका दंड देना अन्याय है, इसीलिए अबू यूनुसकी तरह मोतज़ली कहते थे, कि जीव कर्म करनेमें स्वतंत्र है।

(२) **ईश्वर सिर्फ भलाइयोंका स्रोत**—इस्लामके सीधे-सादे विश्वासमें ईश्वर सर्वशक्तिमान् और अद्वितीय है उसके अतिरिक्त कोई सर्वोपरि शक्ति नहीं है। मोतज़लाकी तर्कप्रणाली थी—दुनियामें हम भलाइयाँ ही नहीं बुराइयाँ भी देखते हैं, किन्तु इन बुराइयोंका स्रोत भगवान् नहीं हो सकते क्योंकि वह केवल भलाइयोंके ही स्रोत (शिव)

है। मनुष्योंको स्वतन्त्र माननेका कारण ईश्वर उनके कर्मोंके हद नहीं है सकता।

(३) ईश्वर निर्गुण—इस्लाम जिन-सम्प्रदायोंकी तरह मोताज़ली ईश्वरको निर्गुण मानते थे—दया आदि गुणोंका स्वामी होनेपर ईश्वरके अतिरिक्त उन वस्तुओंके सनातन अस्तित्वको स्वीकार करना पड़ेगा, जिनसे कि ईश्वर द्वारा दया आदि गुण प्रदर्शित होता है, जिसका अर्थ होगा ईश्वरके अतिरिक्त दूसरे भी कितने ही सनातन पदार्थ हैं।

(४) ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता सीमित—इस्लाममें आम विश्वास था कि ईश्वरकी शक्ति अपार है। मोताज़ली पूछते थे—क्या ईश्वर अन्याय कर सकता है? यदि नहीं, तो इसका अर्थ है ईश्वरकी शक्तिमत्ता इतनी विस्तृत नहीं है कि वह बुराइयोंको भी करने लगे। पुराने मोतज़ला कहते थे कि ईश्वर बुरा करनेमें समर्थ होते भी शिव होनेके कारण बुरा नहीं कर सकता। पीछेवाले मोतज़ला ईश्वरमें ऐसी शक्तिका ही साफ़-साफ़ अभाव मानते थे।

(५) ईश्वरीय चमत्कार (=मोजज़ा) ग़लत—और धर्मोंकी भाँति इस्लाममें—और ख़ासकर कुरानमें भी—ईश्वर और पैग़म्बरोंकी इच्छानुसार अप्राकृतिक घटनाओंका घटना माना जाता है। मोतज़ला चिन्तकोंका कहना था कि हर एक पदार्थके अपने स्वाभाविक गुण होते हैं, जो कभी बदल नहीं सकते, जैसे आगका स्वाभाविक गुण गर्मी है, जो कि आगके रहते कभी नहीं बदल सकती। पैग़म्बरोंकी जीवनियोंमें जिन्हें हम मोजज़ा समझते हैं, उनका या तो कोई दूसरा अर्थ है, अथवा वह प्रकृतिके उन नियमोंके अनुसार घटित हुए हैं, जिनका हमें ज्ञान नहीं है और हम उन्हें अप्राकृतिक घटना कह डालते हैं।

(६) जगत् अनादि नहीं सादि—दूसरे मुसलमानोंकी भाँति मोतज़ला पश्चात् भी जगतको ईश्वरकी कृति मानते थे, उन्हींकी तरह ये भी जगतको अभावसे भावमें आया मानते थे। इस प्रकार इस बातमें वह अरस्तूके जगत् अनादिवादके विरोधी थे।

(७) कुरान भी अनादि नहीं सादि—सनातनी मुसलमान मोतजलियोंके जगत् सादिवादसे खुश नहीं हो सकते थे, क्योंकि जिस तरह ईश्वरकृत होनेसे वह जगत्को सादि मानते थे, उसी तरह ईश्वरकृत होनेके कारण वह कुरानको भी सादि मानते थे। अल्लाहकी भाँति कुरानको अनादि माननेको मोतजली द्वैतवाद तथा मूर्ति-पूजा जैसा दुष्कर्म बतलाते थे। हम यह कह चुके हैं कि कर्म-स्वातन्त्र्य जैसे सिद्धान्तको लेकर जह्मीने उमय्या खलीफोंके खिलाफ आन्दोलन खड़ा कर दिया था। उन्हीं उमैय्योंको खतमकर जब अब्बासीय खलीफा बन गये तो उनकी सहानुभूति कर्म-स्वातन्त्र्य-वादियों तथा उनके उत्तराधिकारियों—मोतजलियों—के विचारोंके प्रति होनी जरूरी थी। बगदादके मोतजली खलीफा कुरानके अनादि होनेके सिद्धान्तको कुफ्र (नास्तिकता) मानते थे और इसके लिए सख्त राजदंड दिया जाता था। कुरानको सादि बतला मोतजली अल्लाहके प्रति अपनी भारी श्रद्धा दिखाते हों यह बात न थी, इसमें उनका अभिप्राय यह था कि कुरान भी अनित्य ग्रन्थ है, इसलिए उसकी व्याख्या करनेमें काफी स्वतन्त्रताकी गुंजाइश है और इस प्रकार पुस्तककी अपेक्षा बुद्धिका महत्त्व बढ़ाया जा सकता है। उनका मत था—ईश्वरने जब जगत् और मानव को पैदा किया तो साथ ही मनुष्यमें भलाई बुराई, सच्चाई झुठाईके परखने तथा भगवान्को जाननेके लिए बुद्धि भी प्रदान की। इस प्रकार वह ग्रन्थोक्त धर्मकी अपेक्षा निसर्ग(बुद्धि) सिद्ध धर्मपर ज्यादा जोर देना चाहते थे। यह ऐसी बात थी जिसके लिए सनातनी मुसलमान मोतजलियों को क्षमा नहीं कर सकते थे और वस्तुतः काफिर, मोतजली तथा दहरिया (जड़वादी नास्तिक) उनकी भाषामें अब भी पर्यायवाची शब्द हैं।

(८) इस्लामिक वाद-शास्त्रके प्रवर्त्तक—मोतजला यद्यपि ग्रंथ वादके पक्षपाती न थे, किन्तु साथ ही वह ग्रंथको प्रमाणकोटिसे उठाना भी नहीं चाहते थे। बुद्धिवादी दुनियामें वह अच्छी तरह समझते थे कि, अरबोंकी भोला श्रद्धासे काम नहीं चल सकता, इसलिए उन्होंने ग्रन्थ (कुरान) और बुद्धिमें समन्वय करना चाहा, लेकिन इसका आवश्यक

परिणाम यह हुआ कि उन्हें जिनकी ही पुरानी किताबोंसे इन्कार करना पड़ा और कुरानकी व्याख्या करनेवालोंकी व्याख्याकी जरूरत महसूस हुई। इसी द्वारा समन्वय करनेके लिए उन्हें इस्लामी अध्यात्म (इल्म कलाम)की नींव डालनी पड़ी। जो कालान्तरमें आरम्भिक मोतजलों की शक्ति तथा आगेके समय पानेवाले भी बिल्कुल एक हो किन्तु पीछे वह समाप्त। मजाहब आदि पुरानोंकी आपत्तियोंकी अन्तिम पुरी चीज मालूम हुई।

मोतजलियोंकी इस्लामके प्रति तर्कशील भावोंमें तो सन्देह करनेका यह भारी प्रमाण है कि वह यूनानी दर्शन तथा अरस्तूके ग्रन्थोंके भक्त हुए थे किन्तु इस इस्लामी तर्कबुद्धिके पक्षपाती थे। इस्लाम पर संकट थे जिनके कारण उन्हें विरोधी ही और इस्लाममें 'तीसरा रास्ता' (मंजिलत मुरतकाम)में भटक जाना पड़ता था।

(१) मोतजली आचार्य—वासिल बिन अता (६९९-७४९ ई०) हसनकी मजलिसमें धर्मशास्त्र पढ़ाया करनेका गुनहगार शागिर्द था। इस आचार्यके तर्कको चोटिल नव-आगति हुई और उसके कारण इस्लामके बारेमें जो नागवार सन्देह पैदा लगा उसीके मदनके लिए मोतजला सम्प्रदाय पैदा हुआ था। मोतजलाके भीतरे नीचे लिखे अन्तर जिन विद्वानोंने इस सम्प्रदाय रचा था उनमें मुख्य थे हैं—

(क) अल्लाफ अबुल् हुजैल अल्-अल्लाफ—यह मोतजलियोंका सबसे बड़ा विद्वान है। इसका जन्म नवीं सदी के मध्यमें हुआ था, और इस प्रकार नज्जामका समकालीन था। नज्जामकी ही भाँति अल्लाफ भी एक जबर्दस्त वाक्चतुर विवादी तथा पूर्णरूपेण अपने मतलबके लिए दर्शनको इस्तेमाल करनेकी कोशिश करता था। ईश्वर अल्लाको निर्गुण सिद्ध करनेमें उसकी भी कितनी ही युक्तियाँ अपने सम-सामयिक शंकरके निर्विशेषचिन्मात्र—अल्लाह—ब्रह्मके तर्ककी भाँति थीं। अल्लाह (ईश्वर या ब्रह्म)में कोई गुण (=विशेषण) नहीं हो सकता, क्योंकि गुण दो ही तरहसे रह सकता है या तो वह गुणसे अलग हो या गुणी

गुण, घटनाएँ, जाति (=सामान्य) में मान शामिल हैं। सभी नामोंमें सत्त्व होना जरूरी है।

२—करामी संप्रदाय

मोतजिलियोंकी कुरानकी व्याख्यामें स्वच्छन्दतासे बहुतसे श्रद्धालु मुसलमान मनकी चीज समझते थे। नवीं सदी इसवीमें मोतजिलियोंके विरुद्ध जिन लोगोंने आवाज उठाई थी, उनमें करामी सम्प्रदाय भी था। इसके प्रवर्तक मुहम्मद बिन-कराम सीस्तान (ईरान)के रहनेवाले थे। मोतजलाने ईश्वरको साकार (सशरीर) तथा सगुण माननेसे भी इन्कार कर दिया था, इब्न करामने उसे बिलकुल एक मनुष्य—राजा—की तरहका घोषित किया। इब्न-करामियाकी मानि उसका तर्क था—जो वस्तु साकार नहीं, वह मौजूद ही नहीं हो सकती।

३—अश्अरी सम्प्रदाय

जिस वक्त मोतजलियों और करामियोंके एक दूसरेके पूर्णतया विरोधी निर्गुणवाद और साकारवाद चल रहे थे, उसी वक्त एक मोतजली परिवारमें अबुल हसन अश्अरी (८७३-९३५ ई०) पैदा हुआ। उसने देखा कि मोतजला जिस तरहके प्रहारोंसे इस्लामको बचाना चाहते हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, इसलिए कुछ हद तक हमें मोतजलाके बुद्धिमूलक विचारोंके साथ जाना चाहिए, किन्तु कोरा बुद्धिवाद इस्लाम के लिए खतरेकी चीज है, इसका भी ध्यान रखना होगा। इसी तरह करामियोंकी अक्लमन्दीसे इस्लाम पर जो अविश्वास आदिका खतरा हो सकता है, उसकी ओर भी देखना जरूरी है, किन्तु साथ ही बुद्धिवादके तकाज़ेको बिलकुल उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना भी खतरनाक होगा, क्योंकि इसका अर्थ होगा इस्लामके प्रति शिक्षित प्रतिभाओंका तिरस्कार। इसीलिए अश्अरीने कहा कि ईश्वर राजा या मनुष्य-जैसा साकार व्यक्ति नहीं है। अश्अरी और उसके सम्प्रदायके मुख्य-मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार थे—

" वह सारे शरीरमें व्याप्त है। शरीर उसका साधन (करण) है। कल्पना और भावना आत्माकी गतिका वहन है। दीन और धर्ममें किसको प्रमाण माना जाय इसमें नज्जामका उत्तर शीआ जैसा है—फिक्रा वो तार्किकोंके इसका निर्णय नहीं कर सकते, यथार्थवक्ता (=आप्त) इमाम ही इसके लिए प्रमाण हो सकता है। मुसलमानोंके बहुमतको वह प्रमाण नहीं मानता। उसका कहना है—सारी जमात गलत धारणा रख सकती है, जैसा कि उनका यह कहना कि दूसरे पैगंबरोंकी अपेक्षा मुहम्मद खासकर यह विशेषता थी कि वह सारी दुनियाके लिए पैगंबर बनाकर भेजे गये थे, जो कि गलत है; हर एक पैगंबरको सारी दुनियाके लिए भेजता है।

(ग) जहीज (८६९ ई०)—नज्जामका शिष्य जहीज एक सिद्ध हस्त लेखक तथा गंभीर चिन्तक था। वह धर्म और प्रकृति नियमके समन्वयको सत्यके लिए सबसे जरूरी समझता था। हर चीजमें प्रकृतिका नियम काम कर रहा है और इन हर कामों कर्ता ईश्वरकी झलक है। मानवबुद्धि कर्त्ताका ज्ञान कर सकती है।

(घ) मुअम्मर—मुअम्मरका समय ९०० ई०के आसपास है। अपने पहिलेके मातुज़िलियोंसे भी ज्यादा निर्गुणवाद पर उसका जोर है। ईश्वर सभी तरहके द्वन्द्वसे सर्वथा मुक्त है, इसलिए किसी गुण विशेषण की उसमें संभावना नहीं हो सकती। ईश्वर न अपनेको जानता है और न अपनेसे भिन्न किसी वस्तु या गुणको जानता है, क्योंकि जानना स्वीकार करने पर ज्ञाता ज्ञेय आदि अनगिनत द्वन्द्व आ पहुँचेंगे। मुअम्मरके मतसे गति स्थिति समानता असमानता आदि केवल काल्पनिक धारणायें हैं, इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। मनुष्यकी इच्छा कोई बंधन नहीं रखती। इच्छा ही एक मात्र मनुष्यकी क्रिया है, बाकी क्रियाएँ तो शरीरसे संबंध रखती हैं।

(ङ) अबू हाशिम बसी (९३३ ई०)—अबू हाशिमका मत था कि सत्ता और अ-सत्ताके बीचकी कितनी ही स्थितियाँ हैं, जिनमें ईश्वरके,

सम्बन्धके ज्ञानको भी आदमीकी आत्मामें पैदा करता है।

(२) भगवद्वाणी क़ुरान (=शब्द) एकमात्र प्रमाण—हिंदू मीमांसकोंकी भाँति अश्अरी सम्प्रदायवाले भी मानते हैं कि सच्चा (=निर्भ्रान्त) ज्ञान सिर्फ शब्द प्रमाण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, हाँ, अन्तर इतना जरूर है कि अश्अरी मीमांसकोंकी भाँति किसी अपौरुषेय शब्द प्रमाण (=वेद)को न मानकर अल्लाहके कलाम (=भगवद्वाणी) कुरानको सर्वोपरि प्रमाण मानता है। कुरानका सहारा लिये बिना अलौकिक स्वर्ग नर्क, फरिश्ता आदि वस्तुओंको नहीं जाना जा सकता। इन्द्रियाँ आमतौरमें भ्रान्ति नहीं पैदा करतीं किन्तु बुद्धि हमें गलत रास्तेपर ले जा सकती है।

(३) ईश्वर सर्वनियम-मुक्त—ईश्वर सर्वशक्तिमान कर्त्ता है। वह किसी उपादान कारणके बिना हर चीजको हर क्षण बिलकुल नई पैदा करता है, इस प्रकार वह जगत्में देखे जानेवाले सारे नियमोंसे मुक्त है और नैतिक नियमोंकी जिम्मेवारियोंसे वह मुक्त है। शरह मुवाफिक्में इस सिद्धान्तकी व्याख्या करते हुए लिखा है—"अल्लाहके लिए यह ठीक है, कि वह मनुष्यको इतना कष्ट दे, जो कि उसकी शक्तिसे बाहर है। अल्लाहके लिए यह ठीक है कि वह अपनी प्रजा (=सृष्टि)को सुफल या दंड दे चाहे उसने कोई अपराध किया हो या न किया हो। (अल्लाह) चाहे अपने सेवकोंके साथ जो चाहे करे, अल्लाहको अपने बंदोंके भावकी ख्याल करनेकी कोई जरूरत नहीं। अल्लाहको भगवद्वाणी (=कुरान) द्वारा ही पहिचाना जा सकता है, बुद्धिके द्वारा नहीं।'

इस सिद्धान्तके समर्थनमें अश्अरी कुरानके वाक्योंको प्रमाणके तौरपर पेश करता है। जैसा कि—

"हुवल-काहिरो फौक-इबादिही' (वह अपने बन्दोंपर सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है)।

"कुल्लुन मिन इन्दे ल्लाहे' (वह सब अल्लाहकी ओरसे है)।

"व मा तशाऊन इल्ला अन्यशाअ ल्लाह' (तुम किसी बातको न चाहोगे जब तक कि अल्लाह नहीं चाहे)।

(१) कार्य-कारण नियम (=हेतुवाद)से इन्कार—मोतजलोंका मत था कि वस्तुमें नैसर्गिक गुण नहीं रहते, इसलिए मोजिज़ा या अप्राकृतिक चमत्कार गलत है। अशअरी कहता था कि कार्य-कारणका नियम अटूट है, बिना कारणके कार्य नहीं हो सकता, इसलिए ईश्वरको कर्ता मानने पर भी उसे कारण (=उपादान-कारण)की जरूरत होगी, और जगत्के उपादान कारण—प्रकृति—को मान लेनेपर ईश्वर अद्वैत तथा जगत्का सादि होना—ये दोनों इस्लामी सिद्धान्त गलत हो जायेंगे। इन दोनों दिक्कतोंसे बचनेके लिए अश्अरीने कार्य-कारणके नियमको ही मानने-से इन्कार कर दिया। कोई चीज़ बिना कारणके नहीं पैदा होती, सुदान कायदा भी उसी तरह बिलकुल उड़ा दिया, जैसे कि उसने पहिलेवाली चीज़को पैदा किया था जिसे कि हम गलतीसे कारण कहते हैं। हर वस्तु परमाणुमय है और हर परमाणु क्षणभरका मेहमान है। पहिले तथा दूसरे क्षणके परमाणुओंका आपसमें कोई संबंध नहीं, दोनोंको उनके पैदा होनेके समय भगवान बिना किसी कारणके (=अभाव-से) पैदा करते हैं। अश्अरीके मतानुसार न सूरजकी गर्मी जलको भाप बनाती है, न भापसे बादल बनता है, न हवा बादलको उड़ाती है, न पानी बादलसे बरसता है। बल्कि अल्लाह एक एक बूँदको अभावसे भावके रूपमें टपकाता है, अल्लाह बिना उपादान-कारण (=भाप)के सीधे बादल बनाता है। अशअरी सर्वशक्तिमान ईश्वरके हर क्षण कार्यकारण-संबंधहीन बिलकुल नये निर्माणका उदाहरण एक नमूनेके रूपमें उपस्थित करता है। ईश्वर आदमीको बनाता है, फिर इच्छाको बनाता है, फिर लेखन शक्तिको, फिर हाथमें गति पैदा करता है, अन्तमें कलममें गति पैदा करता है। यहाँ हर क्रियाको ईश्वर अलग अलग सीधे तौरसे बिना किसी कार्य-कारणके सम्बन्धके करता है। कार्य-कारणके नियमके बिना ज्ञान भी संभव नहीं हो सकता, इसके उत्तरमें अश्अरी कहता है—अल्लाह हर चीज़को जानता है, वह सिर्फ दुनियाकी चीज़ों तथा जैसी वह दिखाई पड़ती हैं, उन्हींको नहीं पैदा करता, बल्कि उनके

सम्बन्धके ज्ञानको भी आदमीकी आत्मामें पैदा करता है।

(२) भगवद्वाणी क़ुरान (=शब्द) एकमात्र प्रमाण—हिन्दू मीमांसकोंकी भाँति अशअरी सम्प्रदायवाले भी मानते हैं कि सच्चा (=निर्भ्रान्त) ज्ञान सिर्फ़ शब्द प्रमाण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, हाँ, अन्तर इतना जरूर है कि अशअरी मीमांसकोंकी भाँति किसी अपौरुषेय शब्द प्रमाण (=वेद)को न मानकर अल्लाहके कलाम (=भगवद्वाणी) कुरानको सर्वोपरि प्रमाण मानता है। कुरानका सहारा लिये बिना अलौकिक स्वर्ग, नर्क, फरिश्ता आदि वस्तुओंको नहीं जाना जा सकता। इन्द्रियाँ आमतौरसे भ्रान्ति नहीं पैदा करतीं, किन्तु बुद्धि हमें गलत रास्तेपर ले जा सकती है।

(३) ईश्वर सर्वनियम-मुक्त—ईश्वर सर्वशक्तिमान् कर्त्ता है। वह किसी उपादान कारणके बिना हर चीजको हर क्षण बिलकुल नई पैदा करता है, इस प्रकार वह जगतमें देखे जानेवाले सारे नियमोंसे मुक्त है, सारे नैतिक नियमोंकी जिम्मेवारियोंसे वह मुक्त है। शरह मुवाफ़िक़में इस सिद्धान्तकी व्याख्या करते हुए लिखा है—"अल्लाहके लिए यह ठीक है, कि वह मनुष्यको इतना कष्ट दे जो कि उसकी शक्तिसे बाहर है। अल्लाहके लिए यह ठीक है कि वह अपनी प्रजा (=सृष्टि)को सुफ़त या दंड दे चाहे उसने कोई अपराध किया हो या न किया हो। (अल्लाह-) ताला अपने सेवकोंके साथ जो चाहे करे अल्लाहको अपने बंदोंके भावोंके ख्याल करनेकी कोई जरूरत नहीं। अल्लाहका भगवद्वाणी (=कुरान) द्वारा ही पहिचाना जा सकता है, बुद्धिके द्वारा नहीं।

इस सिद्धान्तके समर्थनमें अशअरी कुरानके वाक्योंको प्रमाणके तौरपर पेश करता है। जैसा कि—

'हुवल-काहिरो फ़ौक इबादिही' (वह अपने बंदोंपर सबसे स्वतंत्र है)।

'कुल् कुल्लुन मिन इन्दे ल्लाहे' (कह 'सब अल्लाहकी ओरसे है')।

"व मा तशाऊन इल्ला अनैंय्यशाअ ल्लाह' (तुम किसी बातको न चाहोगे जब तक कि अल्लाह नहीं चाहे)।

इस तरह ईश्वरकी सत्ता रहित सर्वशक्तिमत्ता अशअरियोंके प्रधान सिद्धान्तोंमें एक है।

(४) देश, काल और गतिमें विच्छिन्न-बिन्दुवाद—हेतुवादके खंडनात्मक प्रकरणमें बतला चुके हैं कि अशअरी न जगतमें कार्यकारण नियम को मानता और न जगतकी वस्तुओंको देश, काल या गतिमें किसी तरहके अविच्छिन्न प्रवाहके तौरपर मानता है। अब—एक, दो तीन में हम किसी तरहका अविच्छिन्न क्रम नहीं मानते। एककी संख्या समाप्त होती दोकी संख्या अस्तित्वमें आती है—पूछा जाय एकसे दोमें संख्याज्ञान सर्पकी भाँति सरकता हुआ पहुँचता है या मेंढककी तरह कूदता, उत्तर मिलेगा—कूदता। गति देश या स्थानमें वस्तुमें होती है। हम वाणको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँचते देखते हैं। सवाल है यदि वाण हर वक्त किसी स्थानमें स्थित है तो वह स्थिति—गति-शून्यता—रखता है, फिर उसे गति कहना गलत होगा। अब यदि आप दृष्ट गतिको सिद्ध करना चाहते हैं, तो एक ही रास्ता है, वह यही है कि यहाँ भी साँपकी भाँति सरक नेकी जगह संख्याकी भाँति गतिको भिन्न भिन्न कुदान मानें। अकारण परमाणु एक क्षणके लिए पैदा होकर नष्ट हो जाता है, दूसरा नया अकारण परमाणु अपने देश अपने कालके लिए पैदा होता है और नष्ट होता है। पहिले परमाणु और दूसरे परमाणुके बीच शून्यता—गति शून्यता, देश शून्यता है। यही नहीं हर पहिले क्षण ('अब") और दूसरे क्षण (अब)के बीच किसी प्रकारका संबंध न होनेसे यहाँ कालिक शून्यता है—काल जो है वह 'अब' है जो 'अब' नहीं वह काल नहीं—और यहाँ दो 'अब'के बीच हम कुछ नहीं पाते जो ही कालिक शून्यता है। अशअरी मेंढक-कुदान (प्लुति)के सिद्धान्तसे ईश्वरकी सर्वशक्तिमत्ता, हेतुवाद निषेध तथा वस्तु-गति-देश-कालकी परमाणु रूपता सभीको इस प्रकार सिद्ध करता है। यहाँ यह ध्यान रखनेकी बात है कि अशअरियोंने इस मेंढक-कुदान विच्छिन्न प्रवाह, 'बिंदु घटना' विच्छिन्न परमाणु संतति को वस्तु स्थितिसे उत्पन्न होनेवाली किसी गुत्थीको सुलझानेके लिए

नहीं स्वीकार किया, जो कि हम आजके सापेक्षतावाद क्षणतम सिद्धान्त अथवा बौद्धोंके क्षणिक अनात्मवाद और मार्क्सीय भौतिकवादमें पाते हैं। अशअरी इससे मोजजा (=दिव्य चमत्कार) ईश्वरकी निरंकुशता आदिको सिद्ध करना चाहता है। ऐसे सिद्धान्तोंसे स्वेच्छाचारी मुसलमान शासकों को अल्लाहकी निरंकुशताके पर्देमें अपनी निरंकुशताको छिपानेका बहुत अच्छा मौका मिलता है, इसमें सन्देह नहीं।

(५) पैगंबरका लक्षण—पैगंबर (=खुदाका भेजा) कौन है इसके बारेमें मवाफिक़'ने कहा है—"(पैगंबर वह है) जिसे अल्लाहने कहा—मैंने तुझे भेजा, या लोगोंको मेरी ओरसे (सदेश) पहुँचा या इस तरहके (दूसरे) शब्द। इस (पैगंबर होने)में न कोई शर्त है और न योग्यता (का ख्याल) है, बल्कि अल्लाह अपने बन्दोंमेंसे जिसको चाहता है उसे अपनी कृपासे खास (पात्र) बनाता है।

(६) दिव्य चमत्कार (=मोजज़ा)—ऐसा तो कोई भी दावा कर सकता है कि मुझे खुदाने यह कह कर भेजा है, इसीके लिए अशअरी लोग ईश्वरी प्रमाणकी भाँति दिव्य चमत्कार या मोजज़ाको पैगंबरीके सबूतके लिए ज़रूरी समझते हैं। मोजज़ाको सिद्ध करनेकी धुनमें इन्होंने किस तरह हेतुवादसे इन्कार किया, और खुदाके हर क्षण नये परमाणुओंके पैदा करनेकी कल्पना की इसे हम बतला चुके हैं।

[1] "मन क़ाला लहू असल्तोका औ बल्लग़हुम् अन्नी, व नहूहा मिन'ल अल्फाज़। व ला यश्तरेतो फीहे शर्तुन, व ला एस्तेअदादुन बलि'ल्लाहो यख़्तस्सो बेरह्मतेही मनॅय्यशाओ मिन एबादेही।"

पंचम अध्याय

पूर्वी इस्लामी दार्शनिक (१)

(शारीरक ब्रह्मवादी)

§ १–अजीजुद्दीन राजी (९२३ या ९३२ ई०)

शारीरक ब्रह्मवाद या पिथागोरी प्राकृतिक दर्शनके इस्लामिक समर्थकोंमें इमाम राजी और पवित्र-संघ मुख्य हैं। पवित्र-संघ कई कारणोंसे बदनाम हो गया जिससे मुसलमानोंपर उसका प्रभाव उतना नहीं पड़ सका किंतु राजी इस बातमें ज्यादा सौभाग्यशाली था, इसका कारण उसकी नरम दर्शनशैली थी जिसके बारेमें हम आगे कहनेवाले हैं।

(१) जीवनी—अजीजुद्दीन राजीका जन्म पश्चिमी ईरानके रै शहरमें हुआ था। दूसरी धार्मिक शिक्षाओंके अतिरिक्त गणित, वैद्यक और पिथागोरीय दर्शनका अध्ययन उसने विशेष तौरसे किया था। वैद्यकमें तो इतना ही कहना काफी है कि वह अपने समयका सिद्धहस्त हकीम था। वाग्विचारके प्रति उसकी अश्रद्धा थी और तर्कशास्त्रमें शायद उसने अरस्तूकी एक पुस्तकसे अधिक पढ़ा न था। सरकारी हकीमके तौरपर वह पहिले रैमें और पीछे बगदादके अस्पतालका प्रधान रहा। पीछे उसका मन उचट गया और देशाटनकी धुन सवार हुई। इस यात्राकालमें वह कई सामन्तोंका कृपा-पात्र रहा जिनमें ईरानी सामानी वंशी (९०० ९९९ ई०) शासक मंसूर इब्न इस्हाक भी था जिसको कि उसने अपना एक वैद्यक ग्रन्थ समर्पित किया है।

(साधारण विचार)—राज़ीके दिलमें वद्यक विद्याके प्रति भारी श्रद्धा थी। वद्यकशास्त्र हजारों वर्षोंके अनुभवसे तयार हुआ, और राज़ीका कहना था कि एक छोटेसे जीवनमें किसी व्यक्तिके तजर्बेसे मर लिए हजारों वर्षोंके तजर्बे द्वारा मन्दित ज्ञान ज्यादा मूल्यवान है।

(२) दार्शनिक विचार

(क) जीव और शरीर—शरीर और जीवमें राज़ी जीवको प्रधा नता देता है। जीवन (=आत्मा)-संबंधी अस्वास्थ्य शरीरपर भी बुरा प्रभाव डालता है, इसीलिए राज़ी वैद्यके लिए आत्मा (=जीव)का चिकित्सक होना भी जरूरी समझता था। तो भी वह चिकित्सा बहुतसे धार्मिक रोगोंमें असफल रहती है जिसके कारण राज़ीका झुकाव निराशावादकी ओर ज्यादा था।—दुनियामें भलाईसे बुराईका पल्ला भारी है।

कीमिया (=रसायन) शास्त्रपर राज़ीकी बहुत आस्था थी। भौतिक जगत्के मूलतत्त्वोंके एक होनेमें उसको विश्वास था, कि उनके भिन्न प्रकार के मिश्रणसे धातुमें परिवर्तन हो सकता है। रसायनके विभिन्न योगोंसे विचित्र गुणोंको उत्पन्न होते देख वह यह भी अनुमान करने लगा था कि शरीरमें स्वतः गति करनेकी शक्ति है, यह विचार महत्त्वपूर्ण जरूर था, किन्तु उसे प्रयोग द्वारा उसने और विकसित नहीं कर पाया।

(ख) पाँच नित्य तत्त्व—राज़ी पाच तत्त्वोंको नित्य मानता था—(१) कर्त्ता (=पुरुष या ईश्वर) (२) विश्व-जीव, (३) मूल भौतिक तत्त्व (४) परमार्थ दिशा और (५) परमार्थ काल। यह पाँचो तत्त्व राज़ीके मतसे नित्य सदा एक साथ रहनेवाले हैं। यह पाँचो तत्त्व विश्वके निर्माणके लिए आवश्यक सामग्री हैं, इनके बिना विश्व बन नहीं सकता।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष हमें बतलाता है कि बाहरी पदार्थ—भौतिक-तत्त्व—मौजूद हैं उनके बिना इन्द्रिय किस चीजका प्रत्यक्ष करती? भिन्न भिन्न वस्तुओं (=विषयों)की स्थिति उनके स्थान या दिशाको बतलाती है।

वस्तुभाव है। परिच्छिन्नता जो जो इन्कार होता है—जहाँ पहला था, अब पता है—यह हमें मानव प्रतिभाका साक्षात है। प्राणियोंमें अधिक तथा ऊँची प्रवृत्तियोंमें विचार ऐसा लगता है कि जीव भी एक प्राण है। जावोंमें जितना इसमें बुद्धि—वह प्राणियों पूर्णतर नियमपर पर्यालोचना क्षमता—है जिससे पता लगता है कि इस बुद्धिका इतना बाद मधुर फल है।

(ग) निश्वका विकास—यद्यपि राजी अपनी पाँचों सत्ताओंको नित्य, सदा एक साथ रहनेवाला मानता है, तो भी जब वह उनमेंसे जगतका बनना मानता है तो इसका मतलब है कि इस विश्वनाशको वह कुछ नहीं के साथ मानता है। सृष्टिकी कथाको वह कुछ इस तरहसे वर्णित करता है—पहिले एक भारी युद्ध आध्यात्मिक ज्योति जलाई गई, यही जीव (=रूह) का प्रकाश कारण था जीव प्रकाश स्वभाववाले शोध सार आध्यात्मिक तत्त्व है। ज्योतिस्तत्त्व या ऊर्ध्वलोक—जिससे कि जीव पैदा होता है—जो बुद्धि (=नफ्स) या ईश्वरीय ज्योतिका प्रकाश कहा जाता है। जिसका अनुभव जैसे रात करता है उसी तरह प्रकाशका अनुगमन अंधकार (=जम) करता है इसी तरह पशुओंके जीव पैदा होते हैं जिनका विकास है बुद्धियुक्त जीव (=मानव)के उपयोगमें आता।

जिस तरह सारा सारा आध्यात्मिक ज्योति अस्तित्वमें आई, उसके साथ ही सारे गतिशील वस्तु भी मौजूद रही यही विराट शरीर है। इसी विराट शरीरका प्रधान चार स्वभाव—गर्मी, सर्दी, रूखता और नमी उत्पन्न होता है। इन्हीं चार स्वभावोंसे अन्तमें सभी आकाश और पथ्वार पिंड—शरीर—बने हैं। इस तरह उनकी सृष्टि होनेपर भी पाँच तत्त्वोंका नित्य क्या कहा? इसका उत्तर राजी देता है—क्योंकि यह सृष्टि लगातार होती चली आई है, कोई समय ऐसा न था जब कि ईश्वर निष्क्रिय था। इस तरह राजी जगतका नित्यताको स्वीकार कर इस्लामके सारे वास्तव सिद्धान्तके खिलाफ गया था तो भी राजीके नामके साथ इमाम नाम लगाना बतलाता है कि उसके लिए लोगोंके दिलोंमें नरम स्थान था।

(घ) मध्यमार्गी दर्शन—राज़ीके समयसे पहिलेम ऐसे नास्तिक भौतिकवादी दार्शनिक चल आते थे, जो जगतका कोई कर्त्ता नहीं मानते थे। उनके विचारसे जगत् स्वत निर्मित होनेकी अपनेमें क्षमता रखता है। दूसरी ओर ईश्वर-अद्वैत (=तौहीद) वादी मुल्ला थे, जो किसी अनादि जीव, भौतिक तत्त्व—दिशा, काल जैसे तत्त्वके अस्तित्वका अनादिकी शानमें बट्टा लगनेकी बात समझते थे। राज़ी न भौतिकवादियोंके मतको ठीक समझता था, न मुल्लोंके मतको। इसीलिए उसने बीचका रास्ता स्वीकार किया—विचारको बुद्धिसंगत बनानेके लिए ईश्वरके अतिरिक्त जीव, प्रकृति, दिशा कालकी भी जरूरत है और बुद्धियुक्त मानव जैसे जीवको प्रकट करनेके लिए कर्त्ताकी।

§ २–पवित्र-संघ (=अखवानुस्सफा)

मानजला करामी, अशअरी तीनों दर्शन द्रोही थे। किंतु इसी समय बसरामें एक और सम्प्रदाय निकला जो कि दर्शन—विशेषकर पिथागोर-के दर्शन—के भक्त थे, और इस्लामको दर्शनके रंगमें रंगना चाहते थे। इस सम्प्रदायका नाम था अखवानुस्सफा (पवित्र-संघ पवित्र मित्र मंडली या पवित्र बिरादरी)। अखवानुस्सफा केवल धार्मिक या दार्शनिक सम्प्रदाय ही नहीं था बल्कि इसका अपना राजनीतिक प्रोग्राम था। ये लोग दर्शनको आत्मिक आनंदकी ही चीज नहीं समझते थे, बल्कि उसके द्वारा एक नये समाजका निर्माण करना चाहते थे। इसके लिए कुरानमें खींचातानी करके अपने मतलबका अर्थ निकालते थे। वह दुनियामें एक उटोपियन[1] धर्मराज्य कायम करना चाहते थे।

१ पूर्वगामी इब्न-मैमून (८५० ई०)—मोतजली सम्प्रदायके प्रवर्त्तक अताके देहान्त बाद शताब्दी मध्यम हुआ था, इसी समयके आस-पास अब्दुल्ला इब्न मैमून पैदा हुआ था। इस्लामने ईरानियों (=अजमियों)का

[1] Utopean

मुसलमान होकर रहना पड़ता था। इस्लाममें ज़िमन (=ज़िम्न) पर रह मतभेद उनसे अधिकतर बातिनी (=प्रच्छन्न) यही मजूसी लोग थे। इख्वान-उस्सफ़ा भी इन्हीं 'फ़िदा' पताकाओंमेंसे था। उमय्यदवंशके स्वाधिकार-कर्ता (=बनी-उमय्या)ने पश्चिमी एशियाको अपना करके बाहरी सभ्य स्वाधीन जातियोंके निरन्तर विरोधको कम किया था। बगदादके अब्बासी वंशने इस दिशामें और गति दी तथा अपने आप अरब शासकोंको बहुत कुछ ईरानी रंगमें रंग दिया—उनका भारी विद्वानोंका दरबार ही नहीं थी बल्कि बरामका जैसे ईरानी राजनीतिज्ञोंको महामंत्री बनाकर शासनमें सहभागी भी बनाया। किन्तु मालूम होता है, इससे वे सन्तुष्ट नहीं थे। करमती राजनीतिक दल जिसका कि इब्न सबूह नेता था अब्बासी शासनको हटाकर एक नया शासन स्थापित करना चाहता था। कैसा शासन, यह हम आगे कहेंगे। उनके प्रति द्वेषी इब्न सबूहको भारी षड्यन्त्री सिद्धान्तहीन व्यक्ति समझते थे, किन्तु दूसरे लोग थे जो कि उसे महात्मा और ऊँचे दर्जेका दार्शनिक समझते थे। इसकी मण्डलीने सफल रूपसे अपना साम्प्रदायिक रंग चुना था क्योंकि वह अपने धर्मको परिशुद्ध उज्ज्वल समझते थे और इसी उज्ज्वलताको प्राप्त करना आत्माका चरम लक्ष्य मानते थे।

(शिक्षा)—करमती लोगोंकी शिक्षा था—कर्तव्यके सामने दरार और धनकी कोई पर्वाह मत करो। अपने संघके भाइयोंकी भलाईका सदा ध्यानमें रखो। संघके लिए आत्म-समर्पण, अपने नेताओंके प्रति पूर्णश्रद्धा तथा आज्ञापालनमें पूर्ण तत्परता—हर करमतीके लिए जरूरी फर्ज है। संघकी भलाई और नेताके आज्ञापालनमें मृत्युकी पर्वाह नहीं करनी चाहिए।

२—पवित्र संघ

(१) **पवित्र संघकी स्थापना**—बसरा और कूफा करमतियोंके गढ़ थे। दसवीं सदीके उत्तरार्द्धमें बसरामें एक छोटा-सा संघ (पवित्र-संघ) स्थापित हुआ। इस संघने अपने भीतर चार श्रेणियाँ रखी थीं।

पहिली श्रेणीमें १५ से ३० वर्षके तरुण सम्मिलित थे। अपने आत्मिक विकास के लिए अपने गुरुओं (शिक्षकों) का पूर्णतया आज्ञापालन इनके लिए जरूरी था। दूसरी श्रेणीमें ३०-४० वर्षके सदस्य शामिल थे, इन्हें आध्यात्मिक शिक्षाके बाहरकी विद्याओंको भी सीखना पड़ता था। तीसरी श्रेणीमें ४०-५० वर्षके भाई थे, यह दुनियाके दिव्य कानूनके जाननेकी योग्यता पैदा करते थे, इनका दर्जा पैगंबरोंका था। चौथी और सर्वोच्च श्रेणीमें वह लोग थे, जिनकी उम्र ५० से अधिक थी। वे सत्यका साक्षात्कार करते थे, और उनकी गणना फरिश्ता—देवताओं—दर्जेमें था, उनका स्थान प्रकृति सिद्धान्त, धर्म सबके ऊपर था। अपने इस श्रेणी विभाजनमें पवित्र-संघ इब्न मैमूनके करमती दल तथा अफलातूनके 'प्रजा-तंत्र' से प्रभावित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इसमें सन्देह है, कि वह अपने इस श्रेणी विभाजनको काफी अंशमें भी कायरूपमें परिणत कर सका हो।

(२) पवित्र-संघकी ग्रन्थावली और नेता—पवित्र संघने अपने समयके ज्ञानको पुस्तकरूपमें लेखबद्ध किया था, इसे 'रसायल अख्वानुस्सफा" (पवित्र-संघ-ग्रन्थावली) कहते हैं। इस ग्रन्थावलीमें ५१ (शायद शुरूमें ५० थे) ग्रन्थ हैं। ग्रन्थोंकी वर्णन शैलीसे पता लगता है, कि इनके लेखक अलग अलग थे और उनमें सम्पादन द्वारा भी एकता लानेकी कोशिश नहीं की गई। ग्रन्थावलीमें राजनीतिक पुटके साथ प्राकृतिक विज्ञानके आधारपर ज्ञानवादकी विवेचना की गई है। संघके नेताओं और ग्रन्थावलीके लेखकोंके बारेमें—पीछेकी पुस्तकोंमें जो कुछ मिलता है उससे उनके नाम यह हैं—

(१) मुक्द्सी या अबू-सुलमान मुहम्मद इब्न-मुशीर अल-बस्ती,
(२) जजानी या अबुल-हसन् अली इब्न-हारून अल् जजानी,
(३) नह्राजूरी या मुहम्मद इब्न-अहमद अल्-नह्राजूरी,
(४) औफी या अल-औफी, और
(५) रिफाअ या जैद इब्न रिफाअ।

पवित्र-संघ जिस वक्त (दसवीं सदीके उत्तरार्धमें) बसरामें उठा उस वक्त तक इस्लामके खलीफ़ा अपनी प्रधानता खो बैठे थे और नाम मात्रके स्वामी शासक बने हुए थे। बगदादकी भाँति बहुत बड़े धर्म समन्वयक मुस्लिम सुल्तान भी धर्म-निरपेक्षी दबदबा रखते तथा उनके पास भी भिन्न भिन्न देशोंके पण्डित पहुँचा करते थे। गुरु मुल्लाओंके द्वारा तथा स्वतंत्र पश्चिमी भागमें बुवायही वंशका शासन था। इस वंशके सुल्तानोंने शीआ-सम्प्रदायको अपनाया था। पवित्र संघ-वालोंने आलिमों, शासकों तथा जनताकी नजरपर असर डालनेके तैयार किये थे जिनके लिए यह समय कितना अनुकूल था, यह समझा जा सकता है।

(२) पवित्र-संघके सिद्धान्त—पवित्र-संघ अपने समयकी धार्मिक कट्टरताको भलीभाँति परिचित था और जानता था कि लोग इस्लाम मूसा, ईसा, मुहम्मद जैसे अपने अपने भगवानके दूत—पैगंबर—मानते हैं। धर्मको बल्कि सभी दर्शनोंको स्वीकार किया था जिन्होंने दिव्यागार, सुकरात अफलातूनको या अरस्तूको और पैगंबरोंकी श्रेणीमें रक्खा था। वह कुरान, ईसा तथा इस्लामी शरीअतको भी इलहामोंकी भाँति ही पवित्र मानता था।

(क) दर्शन प्रधान—पवित्र संघका कहना था कि मज़हबसे विश्वास, आचार नियम साधारण बुद्धिवाले आदमियोंके लिए ठीक हैं, किन्तु अधिक उन्नत मस्तिष्कवाले पुरुषोंके लिए सभी दार्शनिक अन्तर्दृष्टि ही अनुकूल हो सकती है।

(ख) जगत्‌की उत्पत्ति या नित्यता सम्बन्धी प्रश्न गलत—बुद्धकी भाँति पवित्र संघवाले विचारक जगत्‌की उत्पत्तिके सवालको

---

(१) अली बिन-बुवायही मृ० ९३२ ई०। (२) अहमद (मुईजुद्दौला) ९३२-९६७ ई०। (३) अहमद (आजादुद्दौला) ९६७- (४) मरदुद्दौला

बेकार समझते थे। हम क्या हैं, यह हमारे लिए आवश्यक और लाभदायक है। 'मानव-बुद्धि जब इससे आगे बढ़ना चाहती है तो वह अपनी सीमाको पार करती है। अपनेको उन्नत करते हुए क्रमशः सब महान (तत्त्व, ब्रह्म)के शुद्ध ज्ञान तक पहुँचना आत्माका ध्येय है जिसे कि वह सदाचार-त्याग और सदाचरणसे ही प्राप्त कर सकता है।'

(ग) आठ (नौ) पदार्थ—पविश्र-मयने यूनानी तथा भारतीय दार्शनिकोंकी भाँति तत्त्वोंका वर्गीकरण किया है। सबसे पहिला तत्त्व ईश्वर परमात्मा या अद्वैत तत्त्व है जिससे क्रमशः निम्न आठ तत्त्वोंका विकास हुआ है।

१ नफ़स[1] फ़ाल=कर्ता विज्ञान
२ नफ़स मफ़ऊल=अधिकरण-विज्ञान या सब विज्ञान
३ हयूला=मूल प्रकृति या मूल भौतिक तत्त्व
४ नफ़्स आलम=जग-जीवन (मानव जीवोंका समूह)
५ जिस्म मुतलक=परम शरीर महत्तत्त्व
६ आलम अफ़लाक=फ़रिश्ते या देवलोक
७ अनासर अरबअ=(पृथ्वी जल वायु आग) ये चार भूत
८ मवालीद-सलासा=भूतोंसे उत्पन्न (धातु वनस्पति प्राणी) ये तीन प्रकारके पदार्थ

कर्ता विज्ञान, अधिकरण विज्ञान मूल प्रकृति और जग-जीवन—यह अमिश्र पदार्थ हैं। परम शरीरको लेकर आगेके चार पदार्थ मिश्रित हैं। यह मिश्रण द्रव्य और गुण (=घटना)के रूपमें होता है।

प्रथम द्रव्य है—मूल प्रकृति और आकृति। प्रथम गुण (=घटनायें) हैं—दिशा (देश) काल गति जिसमें प्रकाश और मात्राको भी शामिल कर लिया जा सकता है।

---

[1] नफ़स—यह यूनानी शब्द नोवसका अरबी रूपान्तर है, जिसका अर्थ विज्ञान या बुद्धि है।

मूल पदार्थ [illegible] और [illegible] नहीं, [illegible] इसकी [illegible] [illegible] आ विज्ञता तथा [illegible] पाई जाती [illegible] आकृति — [illegible] भी [illegible] है। प्रकृति और आकृति द्वारा [illegible] बीज — [illegible] [illegible] अन्तर्स्थित भी।

मूल प्रकृतिमें भी [illegible] समान [illegible] सबमें समान [illegible] अनन्त [illegible] मूल उपादान-कारण है।

(घ) मानव-जीव—मानव जीव (=मन) [illegible] (अधि[illegible]करण विज्ञान)से पैदा हुआ है। [illegible] मानव-जीवोंकी समष्टिको [illegible] द्रव्य माना गया [illegible] मानव [illegible] 'मानव-[illegible]' कहा [illegible] है। प्रथम मानव-जीव [illegible] विकसित [illegible] है, किन्तु [illegible] विकास करते-करते [illegible] हो जाता है। बच्चेका जीव (=मन) सफेद कागजकी भाँति [illegible] होता है। [illegible] इन्द्रियाँ बाहर जगतमें जिस विषयको ग्रहण करती हैं [illegible] मस्तिष्कके अगले भागमें पहिले उपस्थित किया जाता है, फिर बिचले भागमें उसका निश्चय (निरूपण) किया जाता है और अन्तमें मस्तिष्कके पिछले भागमें संस्कारके तौरपर [illegible] संचित किया जाता है। [illegible] [illegible] मनुष्य और [illegible] समान हैं। मनुष्यकी विशेषता है—विचार (=निश्चय [illegible]) [illegible] और क्रिया।

(ङ) ईश्वर (=ब्रह्म)—कर्त्ता [illegible] (नफ्स-फआल) ईश्वर है। [illegible] [illegible] यह बनता आया है। इन छओं तत्त्वोंमें ऊपर ईश्वर या परम अद्वैत (तत्त्व) है। यह परम अद्वैत (ब्रह्म) [illegible] है और सब कुछ है।

(च) कुरानका स्थान—कुरानको पवित्र-ग्रंथ [illegible] [illegible] था यह उनके इस वाक्यसे मालूम होता है— हमारे पैगम्बर मुहम्मद एक ऐसी असभ्य रेगिस्तानी जातिके पास भेजे गये थे, जिनको न इस लोकके सौंदर्यका ज्ञान था और न परलोकके आध्यात्मिक स्वरूपका पता। ऐसे लोगोंके लिए दिये गये कुरानकी मोटी भाषाको यथा अधिक सभ्य

गाना आध्यात्मिक पथमें जाना चाहिए। इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि पवित्र-संघ जादूगरी, ईसाई आदि धर्मोंको ज्यादा महत्त्व देना था। इसके साथ तनासिख यातना आदि बातें मूल विश्वास है। उनके मतमें मूढ पापी जीव इसी जीवनमें जन्म लिए हुए हैं। कयामत (=प्रलय)से वह सब प्रयोंमें और दूसरी तरहसे मानते हैं।—गरीरसे जीवका अलग होना छोटी कयामत है, दूसरी महाकयामत है जिसमें कि सब आत्मायें ब्रह्म (अद्वैत तत्त्व)में लीन हो जाती हैं।

(छ) पवित्र संघकी धर्म-चर्या—त्याग, तपस्या आत्म-संयम के ऊपर पवित्र-संघका सबसे ज्यादा जोर था। बिना किसी स्वार्थके स्वेच्छापूर्वक तथा बुद्धिसे ठीक समझकर जो कर्म किया जाता है वही आत्मीय कर्म है। निश्चय विश्व नियमका अनुसरण करना सबसे बड़ा धर्माचरण है। इन सबसे ऊपर प्रेमका स्थान है। प्रेम जीवको ईश्वरमें मिलनेके लिए बेकरारी है। इसी प्रेमका एक भाग वह प्रेम है, जो कि इस जीवनमें प्राणिमात्रके प्रति क्षमा, सहानुभूति और स्नेह द्वारा प्रकाशित किया जाता है। प्रेम इस लोकमें मानसिक सान्त्वना हृदयकी स्वतन्त्रता देता तथा प्राणिमात्रके साथ शांति स्थापित करता है, और पर लोकमें उस नित्य ज्योतिका समागम कराता है।

यद्यपि पवित्र-संघ आत्मिक जीवनपर ही ज्यादा जोर देता है, और शरीरकी ओर उतना ख्याल नहीं करता, तो भी वह काय़ाको बिलकुल अवहेलना करनेकी सलाह नहीं देता।—"शरीरकी ठीकसे देखभाल करनी चाहिए जिसमें जीवको अपनेको पूर्णतया विकसित करनेके लिए काफी समय मिले।"

आदर्श मनुष्यको होना चाहिए—'पूर्वी ईरानियों जैसा सुजात, अरबों जैसा श्रद्धालु, ईराकियों (=मसोपोतामियनों) जैसा शिक्षाप्राप्त, यहूदियों जैसा गंभीर, ईसाके शिष्यों जैसा सदाचारी, सुरियानी साधु जैसा पवित्र भाववाला, यूनानियों जैसा अलग अलग विज्ञानों (साइंसों) में निपुण, हिन्दुओं जैसा रहस्योंकी व्याख्या करनेवाला और सूफी जैसा संत।"

परि-नचर स्वतन्त्र सिद्धान्त पानिना इस्माइली दर्शन और इस्लामी सम्प्रदायोंमें भी मिलते हैं, जिनसे मालूम होता है कि यह सब दूसरे तथा सम्मिलित विचारधाराके प्रभावित हुए थे।

§ ३–सूफी सम्प्रदाय

अरबके निवासी इस्लाम और उनके प्रचारक धर्म था। ईसाई और यहूदीधर्म भी भक्ति प्रधान थे। यूनानी दर्शन तर्क प्रधान था, वह भक्ति-प्रधान धर्म बुद्धिको सन्तुष्ट नहीं कर सकता, और तर्क-प्रधान दर्शन श्रद्धालु भक्तको सन्तुष्ट नहीं कर सकता। समस्याको सुलझाने प्रयत्न करनेके लिए श्रद्धालुओंमें जन्म ले श्रद्धालुओंकी श्रद्धाको बिगाड़े बिना नये नये ढङ्गकी भाँति स्वच्छन्द भागने वाली बुद्धिको पकड़ना जरूरी था।—ईसाइयोंने इसी तरह यूनानियोंके पीछे भारतीय रहस्यवादसे मिश्रित नव अफलातूनी दर्शनको अपनाया था। अब इस्लामके ऊपर भी वही सङ्कट आया तो उसने भी उसी प्रकार रहस्यवादका इस्तेमाल किया। इसाई भारत तथा हिन्द बौद्ध योगी उस समय भी मौजूद थे। इस्लामिक विचारक यह भी देख रहे थे कि ये योगी-साधक किसी सफलताके साथ भक्तों और ज्ञानियोंके श्रद्धाभाजन हैं। इसीलिए इस्लाममें भी सूफीवाद (=तसव्वुफ़)के नामसे रहस्यवादी त्यागी फकीरोंकी एक जमात तैयार की।

१ सूफी शब्द—सोफी (=साफिया) शब्द यूनानी भाषाका है। यूनानी दर्शनके प्रकरणमें इन परिव्राजक दार्शनिकोंके बारेमें हम कह चुके हैं। आठवीं सदीमें जब यूनानी ग्रन्थोंके तर्जुमे अरबी भाषामें होने लगे, तो उसी समय सोफ़ या सोफी शब्द भी दर्शनके अर्थमें अरबीमें आया, फिर वर्णमालाके भेदसे सोफी सूफी हो गया।

सबसे पहिले सूफीकी उपाधि अबू हाशिम सूफीको मिली, जिनका देहान्त ७७० ई० के आसपास (१५० हिजरी)में हुआ था। पैगम्बरके जीवनकालमें उनके धर्मात्मा पुरुषोंको सहाबा (साथी) कहा जाता था।

पगंबरके समसामयिक इन पुरुषोंको पीछे भी इसी नामसे याद किया जाता था। पीछे पैदा होनेवाले महात्माओंको पहिले तावईन (=अनुचर) और फिर तवअ-तावइन (=अनु-अनुचर) कहा जाने लगा। इसके बाद ज़ाहिद (=ब्रह्मचारी) और आबिद (=भक्त) और उसके भी पीछे सूफीका शब्द आया। मुसलमान लेखकोंने सूफी शब्दको निम्न अर्थोंमें प्रयुक्त किया है—

"सूफी वह लोग हैं, जिन्होंने सब कुछ छोड़ ईश्वरको अपनाया है —(ज़नून मिश्री)

जिनका जीवन-मरण सिर्फ ईश्वरपर है —(जनीद बग़दादी)

"सम्पूर्ण शुभाचरणोंसे पूर्ण सम्पूर्ण दुराचरणोंसे मुक्त"—(अबूबक्र हरीरी)

"जिस व्यक्तिको न दूसरा कोई पसन्द करे, न वह किसीको पसन्द करे —(मंसूर हल्लाज)

जो अपने आपको बिलकुल ईश्वरके हाथमें सौंप दे —(रायम)

"पवित्र जीवन, त्याग और शुभगुण जहाँ इकट्ठा हों —(शहाबुद्दीन सुहरावर्दी)

ग़ज़ाली (१०५६-११११ई०)ने सूफी शब्दकी व्याख्या करते हुए कहा है कि सूफी पथ (=तसव्वुफ) ज्ञान और आचरण (=कर्म)के मिश्रणका नाम है। शरीअत (=कुरानोक्त)के भक्तिमार्ग और सूफी मार्गमें यही अन्तर है कि शरीअतमें ज्ञानके बाद आचरण (=कर्म) आता है, सूफी मार्गके अनुसार आचरणके बाद ज्ञान।

२ सूफी पन्थके नेता—इस्लामिक सूफीवाद नव-अफलातूनी रहस्यवादी दर्शन तथा भारतीय योगका समिश्रण है, यह हम बतला चुके हैं, इस तरहका पथ शाम, ईरान, मिश्र सभी देशोंमें मौजूद था, ऐसी हालतमें इस्लामके भीतर उसका चुपकेसे चला जाना मुश्किल नहीं है। कितने ही लोग पैगंबरके दामाद अलीको सूफी ज्ञानका प्रथम प्रवर्त्तक बतलाते हैं, किन्तु मुआवियाके झगड़ेके समय हम देख चुके हैं कि अली इस्लाममें

[illegible] कर [illegible] पर्दा [illegible] लिया जिसमें कि [illegible] एक दूसरा [illegible] न [illegible] मार। [illegible] लिया [illegible] भिजवाया। [illegible] निवास किया कि हमारा काम [illegible] हो गया। [illegible] यहां कि हमारा काम [illegible] हो गया। [illegible] (दारागीर [illegible])में [illegible] नहीं फर्क न था। मालूम हुआ कि [illegible] शियारको [illegible] कर [illegible] लिया था और [illegible] उठा, [illegible] शियारके तमाम [illegible] आये।

[illegible] ([illegible])की पूर्व [illegible] विजयों का [illegible] होना [illegible] यह समय धीरे धीरे उन्नती हुई [illegible] जाता है।

'अह्याउल्-उलूम [illegible] और तुलना करो—
नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकाशनीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे।'
—श्वेताश्वतर-उपनिषद २।११

षष्ठ अध्याय

पूर्वी इस्लामी दार्शनिक (२)

क. रहस्यवाद-वस्तुवाद

चीनके एक राजाने बुद्धको स्वप्नमें देखा था फिर उसने बुद्धके धर्म और बौद्ध पुस्तकोंकी खोज तथा अनुवादका काम शुरू कराया। खलीफा मामून ८११-३३ ई० के बारेमें भी कहा जाता है, कि उसने स्वप्नमें एक दिन अरस्तूको देखा, स्वप्न हीमें अरस्तूने अपने दर्शनके सम्बन्धमें कुछ बातें बतलाई जिससे मामून इतना प्रभावित हुआ कि दूसरे ही दिन उसने क्षुद्र एसियामें कई आदमी इसलिए भेजे कि अरस्तूकी पुस्तकोंको ढूँढकर बगदाद लाया जाये और वहाँ उनका अरबीमें अनुवाद किया जाये। मामूनके दर्बारमें अरस्तूकी तारीफ अक्सर होती रही होगी, और उससे प्रभावित हो मामून जैसा विद्वान तथा विद्याप्रेमी पुरुष अरस्तूको स्वप्नमें देखे तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यूनानी दर्शन ग्रन्थोंका अरबी भाषामें किस तरह अनुवाद हुआ इसके बारेमें हम पहिले बतला चुके हैं। उस अनुवाद और दर्शन चर्चामें कैसे इस्लाममें दार्शनिक पैदा हुए और उन्होंने क्या विचार प्रकट किये अब इसके बारेमें कहना है। बगदाद दर्शन अनुवाद तथा दर्शन चर्चा दोनोंका केन्द्र था इसलिए पहिले इस्लामी दार्शनिकोंका पूर्वमें ही पैदा होना स्वाभाविक था। इन दार्शनिकोंमें सबसे पहिला किन्दी था इसलिए उसीसे हम अपने वर्णनको आरम्भ करते हैं।

१ अबू याकूब किन्दी (८७० ई०)

१ जीवनी—[illegible] अबू [illegible]—(किन्दा [illegible] [illegible] [illegible]) [illegible] नाम [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] था किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था [illegible] (मामूनरशीद) [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मामून [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उठाकर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था । किन्दी [illegible] [illegible] और फिर [illegible] [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] हुई थी । प्रथम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किन्तु [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जा [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वह [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्राचीन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । यूनानी [illegible] [illegible] प्रभावित हुआ था कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] (जिस [illegible] [illegible] [illegible] था) [illegible] पूर्वज [illegible] यूनान (यूनानियों [illegible] प्रथम पुरुष) [illegible] [illegible] था । [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] यूनानी [illegible] [illegible] सम्मिश्रण हुआ था, कि वहाँ [illegible] नामपर असहिष्णुता [illegible] नहीं [illegible] था ।

किन्दी [illegible] [illegible] [illegible] समय तक रहा, [illegible] पता नहीं । [illegible] [illegible] [illegible] उसका नाम आता है । उसने [illegible] [illegible] [illegible]

वा नहीं किय उनके द्वारा मनुष्यादाना सम्पादन और सम्पादन भी किया था। वह ज्योतिषी और वैद्य भी था, इसलिए यह भी सम्भव है, कि वह दरबार में इस सबबसे भी रहा हो। कुछ भी हो, यह तो साफ मालूम है, कि पीछे वह मुत्तासी दर्बारका कृपापात्र नहीं रहा। खलीफा मुतवक्किल (८४७ ६१ ई०)ने अपने पूर्वके मतवादी धार्मिक उदारताको छोड़ सनातनी मुसलमानोंका पक्ष समर्थन किया, जिससे विचार-स्वातन्त्र्यपर प्रहार होना शुरू हुआ। किन्दी भी उसका शिकार हुए बिना नहीं रह सका और बहुत समय तक उसका पुस्तकालय जब्त रहा।

किन्दीकी प्रतिभा बहुमुखी थी अपने समयका संस्कृति तथा विद्याओंका वह भंडार विद्यार्थी था।—भूगोल इतिहास ज्योतिष गणित वैद्यक, दर्शन—सब पर उसका अधिकार था। उसके ग्रंथ ज्योतिष गणित दर्शन ज्योतिष, भूगोल, वैद्यक और दर्शनपर हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि एक ओर तो किन्दी कीमियाको गलत कहकर उसके विश्वासियोंको निर्बुद्धि कहना, दूसरी ओर ग्रहोंके हाथ मनुष्यके भाग्यको देना उसके लिए सहज था।

७ **धार्मिक विचार**—किन्दीके समय फिर कमालनावाद बढ़ चला था और अपने विचारोंको खुल्लमखुल्ला प्रकट करना खतरेसे खाली न था इसलिए जिन धार्मिक विचारोंका किन्दीने समर्थन किया है उनमें वस्तुतः उसके अपने कितने हैं इसके बारेमें सावधानीसे राय कायम करने की जरूरत है। जान पडता है वह मानजतांके कितने ही धार्मिक विचारोंसे सहमत था। नेकी और ईश्वर ऐकतापर उसका खास जोर था। उस समयके इस्लामिक विचारकोंमें यह बात भारतीय सिद्धान्तके तौरपर प्रख्यात था कि बुद्धि (प्रत्यक्ष अनुमान) ज्ञानके लिए काफी प्रमाण है आप्त या शब्दप्रमाणकी उतनी आवश्यकता नहीं। किन्दीने मजहबियोंका पक्ष लेकर कहा कि पैगम्बरी (=आप्त वाक्य) भी प्रमाण है और फिर बुद्धिवाद तथा शब्दवादके समन्वयकी कोशिश की। भिन्न भिन्न धर्मोंमेंसे एक बात जो कि सबमें उसने पाई वह था नित्य अद्वैत मूल कारण का

किया । । मत कारणका सिद्ध करनेमें हमारा बुद्धिवादिता और पूरी तरह साथ ... है । जिसमें मनुष्य ... कारण प्रधान ईश्वरका ठाठ ... सब ... गाढ़ ... आन ।

(दार्शनिक विचार—... समय तक विचारोंमें भारतीय ... प्रतिवाद बहुतसी बातें हैं) के विचार मौजूद थे। ... उसी ... बातमें ... किया है। इस प्रकार ... दार्शनिक विचारके निर्माणमें उपनिषद् विचारकोंका ... ।

(१) बुद्धिवाद—... करना जरूरी है किन्तु आप्तवाद (=भगवद्वाद)ध ... ।

(२) तत्त्व विचार—(क) ईश्वर—... पहिले कहा जा चुका है ... मूलकारण माना है । ... नियम या अनुशासका समझना । ... नियम ... उत्पन्न ... यह ... है ... —जैसे कि हम ... ज्योतिष ... (गणित ज्योतिष प्रोक्त) ... भविष्यवाणी कर सकते । ... मूलकारण है ... किन्तु ... अपने ... भाव ... मध्यवर्ती कारणों ... उपरका कारण अपने ... करना ... किन्तु बाद ... कारणपर कोई प्रभाव नहीं रखता । उदाहरणार्थ—मिट्टी ... (कारण)का करता (...) ... किन्तु घड़ा ... मिट्टीका कुछ ... कर सकता।

(ख) जगत्—ईश्वरका ... प्रकृति जगत और शरीर जगत । शरीर या ... सारा जगत प्रकृति जगत है ।

(ग) जगत्-जीवन—ईश्वर (मूलकारण) और जगतके बीच जगत चलन या जग-जीवन है । इसी जग जीवन (=... आत्म)से ... या देव फिर मानवजीव उत्पन्न हो ... ।

(घ) मानव-जीव और उसका ध्येय—जग-जीवनसे भिन्न मानव-जीव अपनी प्राप्ति और कामके लिए शरीर (=काया)में बंधा हुआ है, किंतु अपने निजी स्वरूपमें वह शरीरसे बिलकुल स्वतंत्र है और इसीलिए जहाँ तक जीवके स्वरूपका संबंध है उसपर शरीरका प्रभाव नहीं पड़ता। जीव प्रकृत, अ-नश्वर पदार्थ है। वह विशाल (=आलम)-लोकसे इंद्रिय लोकमें उतरा है तो भी उसमें अपनी पूर्वस्थितिके संस्कार मौजूद रहते हैं। इस लोकमें उसे चैन नहीं मिलता क्योंकि उसकी बहुतसी आकांक्षाएं अपूर्ण रहती हैं, जिसके लिए उसे मानसिक अशान्ति सहनी पड़ती है। इस चलाचलकी दुनियामें कोई चीज स्थिर नहीं है इसलिए नहीं मालूम किस वक्त हमें उनका वियोग सहना पड़े जिन्हें कि हम प्रिय समझते हैं। विधाता (ईश्वर) ही ऐसा है जिसमें स्थिरता है। इसलिए यदि हम अपनी आकांक्षाओंकी पूर्ति और प्रियोंसे अविछोह चाहते हैं, तो हमें विधाताकी सनातन कृपा स्वरूप भय प्रवृत्ति विनाश और सुखकी ओर मन और शरीरको लाना होगा।

(३) नफ़्स (=विज्ञान)—नफ्स यूनानी शब्द है जिसका अर्थ विज्ञान या आत्मा (=नित्य विज्ञान) है। वह यूनानी दर्शनमें एक विचारणीय विषय है। नफ्स (=अक्ल विज्ञान)के सिद्धान्तपर किन्दीने जो पहिले-पहिल बहस छेड़ी तो सारे इस्लामी दार्शनिक साहित्यमें उसकी चर्चाका रास्ता खुल गया। किन्दीने नफ्सके चार भेद किये हैं—

(क) प्रथम विज्ञान (=ईश्वर)—जगतमें जो कुछ सनातन सत्य आध्यात्मिक (=अभौतिक) है उसका कारण और सार परम आत्मा ईश्वर है।

(ख) जीवकी अन्तर्हित (क्षमता)—दूसरी नफ्स (=बुद्धि) है, मानव-जीवकी समझनेकी योग्यता या जीवकी वह क्षमता जहां तक कि जीव विकसित हो सकता है।

(ग) जीवकी कार्य क्षमता (=आदत)—मानव-जीवकी वह गुण या आदत जिसे कि इच्छा होनेपर वह किसी वक्त इस्तेमाल कर सकता है।

जग कि पर नाशवान जिनकी क्षमता निष्क्रियता क्रिया-क्षमता।

(घ) जीवकी क्रिया—जिस तरह शरीर आकार क्रिया और वार्तमानता ना ... प्रकट ...। —निराकार क्षमता जिसने शरीर आकार का धारण करता ... वाचिक, कायिक मानसिक नाना ... किया शामिल ...।

(४) ज्ञानका ... —(क) ईश्वर—जिसे चौथा ... ग ... त ... किन्तु दूसरा ... (... क्षमता ... प्रथम ... = ईश्वर) ... माता, यदि उसपर ... (...) ... प्रथम ... बतला ... प्रथम ... माता। इस तरह सारी ... —काय-क्षमता— ... प्रति ... हुई चाह है। —... यह हुआ कि ... (= सोत) जीव नहीं रहित प्रथम ... (ईश्वर) है। ... ईश्वर ... ... विचार ... प्रक्रियों ... दिखाई पड़ता है। पुराना ... ना आत्मा ... मानता था ... ... रहता ... उत्पत्ति ... नास्तिक कठिनाइयाँ ... उस तो—ईश्वर ... ध्यान ... सामने ... —ने सिद्धान्त दूर कर दिया किन्तु ... —या कि ... नास ... —या मोक्ष ईश्वरकी ... सिद्धान्तकी पूर्ति होती पुष्टि था।

... (विज्ञान) का ... अरस्तू ... मिलाकर ... किया गया मालूम होता है किन्तु ... अपनी पुस्तक ... कि अरस्तू ... (=विज्ञान) ... प्रकारका ... । ... चार प्रकारके ... और अरस्तूके मतपर आधारित मानता है। वस्तुतः यह नव-... अफलातूनी ... आधारित ... मत है।

(ख) इन्द्रिय और मन—... सिद्धान्त ... मानता

यद्यपि किन्दी जीवमें नाहर मानता है, तो भी नय वह रहस्यवादमें नीच उतरता है ना वस्तु स्थितिकी भी रद्द करना चाहता है और कहता है—हमारा ज्ञान या तो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है या चिन्तन (=मनकी क्रिया कल्पना) शक्ति द्वारा। वह स्वीकार करता है कि इन्द्रियाँ केवल व्यक्ति या भौतिक स्वरूप (=स्वलक्षण) का ही ग्रहण करती है सामान्य या अभौतिक आकृति उनका विषय नहीं है। यही है दिग्नाग धर्मकीर्तिका प्रत्यक्ष ज्ञान— प्रत्यक्ष कल्पनापोढ (इन्द्रियसे प्राप्त कल्पना रहित)। दिग्नाग धर्मकीर्ति सामान्य जातिको कल्पनामूलक कहकर उन्हें वस्तु सत मानने से इन्कार कर दिया यद्यपि उन्हें व्यवहारसत माननेमें उज्र नहीं है, किन्तु मानवी जीवके पास आई परोक्ष थानी स्वतन्त्र किन्दी कल्पना (=चिंतन)-शक्तिसे प्राप्त मानवी वस्तु-सत मानता है।

(ग) **विज्ञानवाद**—जो कुछ भी हो अन्तमें दोनों ही आकर भूल गये जगह मिल जाते हैं और वह जगह वस्तु-जगतसे दूर है।—वह विज्ञानवादकी भूल भुलैया। किन्दी और मजबूरियोंके कारण या अनजान योगाचारके विज्ञानवादको खुल्लमखुल्ला स्वीकार करना न चाहा हो किन्तु है वह वस्तुतः विज्ञानवादी। उसका विज्ञानवाद क्षणिक है या नित्य—इस बहसमें वह नहीं गया है किन्तु प्रथम विज्ञान (=आलय विज्ञान) के बारे भले जो उसने कहा है और एवं दूसरेमें परिवर्तन बतलाया है उससे साफ है कि वह विज्ञानको नित्य कूटस्थ नहीं मानता। बौद्ध विज्ञानवादियों (योगाचार दर्शन) की भाँति किन्दीके रूपसवादको भी आलय विज्ञान (=विज्ञान-स्रोत विज्ञान-समुद्र) और प्रवृत्ति विज्ञान (=क्रिया परायण) विज्ञानसे समझना होगा। हाँ तो दोनों ही आखिर भूल, सब कुछ विज्ञान है विज्ञानके अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं इस विज्ञानवादमें मिलते हैं और किन्दी धर्मकीर्तिसे हाथ मिलाता हुआ कहता है—इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान और नय (विषय) एक ही है और इसी तरह मन (=कल्पना) द्वारा ज्ञात पदार्थ (धर्म) भी प्रथम विज्ञान (आलय विज्ञान) है। दोनोंमें इतना अन्तर जरूर है कि जहाँ दारुल महधर्मियों (=मुसलमानों) के

रहे मन ही मन किताबी भाषाका एक महत्त्व स्थापित कर महान् संस्कृतिसे नहीं अधिक प्रकाश उल्लास हो रहा था, यहाँ तुर्कोंमें (—योद्धा) के रूपमें और स्वतंत्र भी तिन मन वस्तुओंके साथ फिरदौसी प्रधानता भी अवानक स्थापित करनेवाले साथ ही दाम नहीं स्थापित न रहा था।—और आश्चर्य नहीं कि फिर मानव चिन्तन और प्रथम नगर की ओरसे यहाँ पर अनुवादित कर लिया था—मन ही नार ! जान-बूझकर अभागे मानव चिन्ताका वातावरण किया—क्योंकि वह नियमोंसे बाहर स्वभाव (मतानिरपेक्ष) और ईश्वरवादको भीतर रखता है। विचारोंका ज्ञान सब प्रकारकी पुष्ट साथ वस्तुका दान है।

२–फाराबी (८७०?-९५० ई०)

१–जीवनी

किन्दीके बाद इस्लामिक दर्शनके विकासकी दूसरी कड़ी है अबू-नस्र इब्न मुहम्मद इब्न तर्खान इब्न उजलग अबू फाराबी (फाराबका रहनेवाला उजलगका पुत्र तर्खानका पुत्र मुहम्मदका बेटा अबू-नस्र)। अबू-नस्रका जन्म वक्षु (आमू) नदी-तटवर्ती फाराब जिलेके वसिज नामक स्थानमें हुआ था। वसिजमें एक छोटासा किला था जिसका सेनापति अबू-नस्रका बाप मुहम्मद था। यह नाम देखनेसे पता लगता है कि अबू-नस्रके बापका ही नाम मुसलमानी है नहीं तो उसके बापका नाम और परदादा उजलगके नाम गैर मुसलमानी—शुद्ध तुर्की—हैं जिससे अब यह भी मुसलमान नहीं थे और अबू-नस्र सिर्फ दो पुश्तका मुसलमान तुर्क था। फाराबीके पिताको ईरानी सेनापति कहा गया है जिससे अब यह भी भ्रम हो सकता है कि वह ताहिरी (८२१-९०० ई०) या किसी दूसरे ईरानी शासकवंशका नौकर था। फाराबीके बचपनसे यह भी पता लगता है कि यद्यपि मध्य एसियामें इस्लामी शासन स्थापित हुए इससे पहले ऊपर तीन पुश्त थे

किन्तु अभी वहाके सारे लोग—कमसे कम तुर्क—मुसलमान नही हुए थे। फाराबीकी दार्शनिक प्रतिभा और बुद्धिस्वातन्त्र्यपर विचार करते हुए हमें ढाई सौ साल पहिले उधरसे गुजरे ह्वेन चाङके वर्णनका भी ख्याल रखना होगा, जिसमें इस प्रदेशमें सैकडो बडे-बडे बौद्ध शिक्षणालयो (सघारामो) और हजारो शिक्षित भिक्षुओका जिक्र आता है। दो पीढीके नव-मुस्लिमके होनेका मतलब है फाराबीकी जन्मभूमिमे अभी बौद्ध (दार्शनिक) परम्परा कुछ न कुछ बची हुई थी। वक्षु-तटवर्ती ये तुर्क विद्या और सस्कृतिमें समुन्नत थे, इसमें तो सन्देह ही नही।

फाराबीकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताके घरपर ही हुई होगी, उसके बाद वह बुखारा या समरकन्द जैसे अपने देशके उस समय भी ख्यातनामा विद्याके द्रोमे पढने गया या नही इसका पता नही लगता। यह भी नही मालूम कि किस उम्रमे वह इस्लामकी नालन्दा—बगदाद—की ओर विद्याध्ययनके लिए रवाना हुआ। किन्दी तो जरूर उस समय तक मर चुका होगा, किन्तु राजी जिन्दा था। जन्म भूमिमें बुद्धि-स्वातन्त्र्यकी कुछ हवाकी हवा तो उसे लगी ही होगी बगदादमें आकर उसने योहन्ना इब्न हैलान-की शिष्यता स्वीकार की। योहन्ना जैसे गैरमुस्लिम (ईसाई) विद्वान्को अध्यापक चुनना भी फाराबीके मानसिक झुकावको बतलाता है। बगदादमें कैसा विचार-स्वातन्त्र्यका वातावरण—कमसे कम मुसलमानोकी सनातनी जमातके बाहर—था, इसका परिचय पहिले मिल चुका है। फाराबीने दर्शनके अतिरिक्त साहित्य गणित ज्योतिष, वैद्यककी शिक्षा पाई थी। उसने सगीतपर भी कलम चलाई है। फाराबीको सत्तर भाषाओका पडित कहा जाता है। तुर्की तो उसकी मातृभाषा ही थी, फारसी उसकी जन्म-भूमिकी हवामें पली हुई थी अरबी इस्लामकी जबान ही थी, इस प्रकार इन तीन भाषाओपर फाराबीका अधिकार था, इसमें तो सन्देह ही नही हो सकता सुरियानी इब्रानी यूनानी भाषाओको भी वह जानता होगा।

शिक्षा समाप्त करनेके बाद भी फाराबी बहुत समय तक बगदादमे रहा। नवी सदीका अन्त होते होते बगदादके खलीफाकी राजनीतिक शक्तिका

भारा [illegible] [illegible] रहा था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी पढ़ता था। [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] फाराबीने [illegible] [illegible] [illegible] (मदरसा)में [illegible]
[illegible] किया। [illegible] [illegible] [illegible] फाराबी [illegible] ही [illegible]—
[illegible] [illegible] [illegible] था। फाराबीका [illegible] भी [illegible]
[illegible] था।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और यह [illegible] और [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] करता था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था
जो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रखता था [illegible] फाराबी [illegible]
[illegible] [illegible] करता था। उसका [illegible] ना दूसरा इस्लामिक [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] या बौद्ध भिक्षुओंके जीवनसे [illegible] [illegible] था।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गया हुआ था जब कि दिसम्बर ९५०
ई०में [illegible] [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था। मृत्युके समय फाराबीकी उम्र [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] १० [illegible] [illegible] उसके [illegible]
([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], था। उसके शिष्य
[illegible] [illegible] [illegible] ९७१ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसमें
शरीर [illegible]।

७-फाराबीकी कृतियाँ

फाराबीने [illegible] [illegible] [illegible] छोटी [illegible] पुस्तकें [illegible], जिनमें उसने
वादविवाद और [illegible] [illegible] ([illegible]) प्राकृतिक दर्शनको
[illegible] किया [illegible]। किन्तु [illegible] [illegible] ज्ञानका परिचय उसने अरस्तूके
ग्रन्थोंके अध्ययन और व्याख्यामें किया है जिसके ही लिए उसे द्वितीय
अरस्तू या [illegible] सानी (दूसरा आचार्य) कहा गया। अरस्तूके
गंभीर दर्शन और वस्तुवादी [illegible] ([illegible])का यूरोपमें पुनर्जागरण और

उसके द्वारा आधुनिक साइंस-युगके प्रवर्तनमें कितना हाथ है, इसे यहाँ कहनेकी जरूरत नहीं, और इसमें तो शक नहीं कि अरस्तूके पुनर्जीवित करनेमें फाराबीकी सेवाएँ अमूल्य है। फाराबीने अरस्तूके ग्रंथोंकी जो संख्या और क्रम निश्चित किया था, वह आज भी प्रमाण है। इसमें शक नहीं कि इनमेंसे कुछ—"अरस्तूका धर्मशास्त्र"—अरस्तूके नामपर दूसरोंकी बनाई पुस्तकें भी फाराबीने शामिल करली थीं। फाराबीने अरस्तूके तर्कशास्त्र आठ[1] साइंसके आठ[2], अतिभौतिक (अध्यात्म) शास्त्र[3] आचार शास्त्र[4] राजनीति[5] आदि ग्रंथोंपर टीका और विवरण लिखे।

फाराबीने वैद्यकका भी अध्ययन किया था किन्तु उसका सारा ध्यान तर्कशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र और साइंस (भौतिकशास्त्र) पर केंद्रित था।

३–दार्शनिक विचार

ऊपरकी पंक्तियोंके पढ़नेसे मालूम है कि फाराबीको स्थानको ऊहम पहुँचनेका जितना अवसर मिला था उतना उससे पहिले तथा उसकी

---

[1] Logic—मंतिक
1 The Categories
2 The Hermeneutics
3 The first Analytics
4 The Second Analytics
5 The Topics
6 The Sophistics
7 The Rhetoric
8 The Poetics

[2] Physics—तबीआत
1 Auscultatis Physica
2 De Coelo et mundo
3 De Generatione et Corruptione
4 The Meterology
5 The Psychology
6 De Sensu et Sensato
7 The Book of Plant
8 The Book of Animals

[3] Metaphysics [4] Ethics [5] Politics

सहायताका छोटानपर पीछे भी किसी इस्लामिक दार्शनिकको नहीं मिला था। वस्तुतः सब बगदाद इनके निमित्त सभी दर्शनकी भूमियाँ थीं, और फाराबीने उसका पूरा फायदा उठाया था।

(१) अफलातूँ अरस्तू समन्वय—अफलातूनका दर्शन अ-वस्तुवादी विज्ञानवादी है और अरस्तू अपने सारे ग्रन्थोंमें वस्तुवादी तथा विज्ञान (नफ्स) के साथ भी सबसे ज्यादा वस्तुवादी है। फाराबी इस फर्कको समझ रहा था, और यदि निष्पक्ष सोचा भक्त होता तो वह दोनोंके समन्वयकी कोशिश न करता किन्तु फाराबीने अपने दिलको सब अफलातूनी रहस्यवादी दर्शनको दे रखा था जब कि उसका सबल मस्तिष्क अरस्तूको छोड़नेके लिए तैयार न था। ऐसा होनेमें दोनोंके समन्वय करनेके सिवा दूसरा कोई चारा न था। यही नहीं इस समन्वय द्वारा वह इस्लामके लिए भी गुंजाइश रख सका जिसमें वह अफलातूनकी गति भागनेमें भी बच सका। फाराबीके अनुसार अफलातून और अरस्तूका मतभेद बाहरी दर्शनशैलीका है दोनोंका भाव एक है दोनों उच्चतम स्थान पानेके इमाम (ऋषि) हैं। इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं कि फाराबीके हृदयमें जो सम्मान इन दो यूनानी दार्शनिकोंका था वह किसी दूसरेके लिए नहीं हो सकता था।

(२) तर्क—फाराबीके अनुसार तर्क सिर्फ प्रयोग (=दृष्टान्त) सिद्ध निरूपण या उक्ति मात्र नहीं है। ज्ञानकी प्रामाणिकता तथा व्याकरणकी कितनी ही बातें भी तर्कके अन्तर्गत आती हैं। ज्ञात और सिद्ध वस्तुसे अज्ञात वस्तुका जानना—प्रमाण सिद्धान्त—तर्क है।

(३) सामान्य (=जाति)—यूनानी दर्शन और उसमें ही लेकर पीछे भारतीय न्याय वैशेषिक शास्त्रमें सामान्यको एक स्वतंत्र वस्तुसत् पदार्थ सिद्ध करनेकी बहुत चेष्टा की गई है। फाराबीने 'ईसागोजी'[1] पर लिखते वक्त एक जगह सामान्यके बारेमें अपनी सम्मति दी है—सिर्फ वस्तु

---

[1] पोर्फिरी (फोर्फोरियस)की पुस्तक जो गलतीसे अरस्तूकी कृति मानी गयी।

और इन्द्रिय प्रत्यक्षमें ही नहीं, बल्कि विचारमें भी हम विशेष प्राप्त होता है। इसी तरह सामान्य भी वस्तु-व्यक्तियोंमें केवल घटनावश ही नहीं रहता बल्कि मनमें भी वह एक द्रव्यके तौरपर अवस्थित है। यह ठीक है कि मन वस्तुओंमेंसे लेकर सामान्य (गायपन)को कल्पित करता है तो भी सामान्य उन वस्तु-व्यक्तियों (गाय पिंडो) के अस्तित्वमें आनेसे पहिले भी सत्ता रखता है, इसमें शक नहीं।

(४) सत्ता—सत्ता क्या है इसका उत्तर फाराबी देता है—वस्तु की सत्ता वस्तु अपने (स्वय) ही है।

(५) ईश्वर अद्वैत-तत्त्व—ईश्वरके अस्तित्वको सिद्ध करनेके लिए फाराबी सत्ताको इस्तेमाल करता है। सत्ता दो ही तरहकी हो सकती है—वह या तो आवश्यक है अथवा संभव (विद्यमान) है। जिस किसी वस्तु की सत्ता संभव (विद्यमान) है वह संभव तभी हो सकती है यदि उसका कोई कारण हो। इस तरह हर एक संभव सत्ता कारणपूर्वक होती है। किंतु कारणकी शृंखलाको अनन्त तक नहीं बढ़ा सकते क्योंकि आखिर शृंखलाको बनानेवाली कड़ियाँ अनन्त नहीं सान्त है। और इस प्रकार हमारे लिए आवश्यक हो जाता है एक ऐसी सत्ताको मानना जो स्वय कारण रहित रहते सबका कारण है जो कि अत्यन्त पूर्ण अपरिवर्तनशील, आत्मतृप्त परमशिव चेतन, परम मन (विज्ञान) है। वह प्रकृतिके सभी शिव-सुन्दर रूपोंको—जो कि उसके अपने ही रूप है—प्यार करता है। इस (ईश्वरकी) सत्ताके अस्तित्वको प्रमाण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह स्वय प्रमाण तथा सत्य—वास्तविकताको अपने भीतर रखते हुए स्वय भी वस्तुओंका मूल कारण है। जैसे ऐसी सत्ताका होना आवश्यक है, वैसे ही उसका एक—अद्वैत—ही होना भी आवश्यक है। दो होनेपर उसमें समानताएँ, और असमानताएँ दोनो होगी, जिसके कारण एक दूसरे की टक्करसे प्रत्ययकी सरलता नष्ट हो जायेगा। परिपूर्ण सत्ताका एक होना आवश्यक है।

प्रथम सत्ता केवल एक तथा वस्तुसत् है इसीको ईश्वर कहा जाता

। सब, [illegible] सभी [illegible] हो जाता है, [illegible] रहता [illegible] इसीलिए [illegible] बनाता कोई [illegible] [illegible] उसी [illegible] गुण [illegible] प्रयोग करता [illegible]। [illegible] गुण का विकास [illegible] सकता है, आत्मा [illegible]। [illegible] प्रकारका [illegible] नियम [illegible] (=बुद्धि) [illegible] —[illegible] करना है।

(६) अद्वैत तत्त्वसे विश्वका विकास—[illegible] विकासका [illegible] है, [illegible] और [illegible] जिनमें [illegible] है—

१ सब [illegible] घरमें [illegible] है और [illegible] (पिंडाकाश) आकृतियाँ [illegible] करता है।

२ [illegible] (आत्म [illegible]) [illegible] इनमें [illegible] और यह (हिरण्यगर्भ आदि) दूर तक ब्रह्मांडका [illegible] करती है। [illegible] अभिमानी [illegible] है।

यह [illegible] है।

तीसरा क्षणमें क्रिया-परायण [illegible] (तत्त्व) है, जिस [illegible] आत्मा भी [illegible] है। यही क्रिया-परायण [illegible] (=बुद्धि) स्वर्ग (=आकाश) और पृथ्वीको मिलाता है।

४ चौथा क्षण जीवनी है।

बुद्धि और ज्ञान यह [illegible] शक्तियाँ एकरस अपने स्वरूपमें न रहकर मनुष्योंकी [illegible] अनुसार बहुरूपमय होता है।

५ आकृति—क्रियाशक्ति आकृति जो भौतिक तत्त्व मिलकर भिन्न भिन्न [illegible] वस्तुओंके बनानेमें सहायक होता है।

१ [illegible]-काल—[illegible] वर्जित।
२ मनुष्य-काल—शरीरधारी मानव।
३ पशु (तिर्यक्)-काल—पशु पक्षी आदि [illegible]।
४ वनस्पति-काल—वृक्ष वनस्पति आदि साकार पदार्थ।
५ धातु-काल—सोना चाँदी आदि साकार पदार्थ।
६ महाभूत-काल—पृथिवी, जल आग हवा साकार पदार्थ।

(७) ज्ञानका उद्गम—[illegible] भी [illegible] मानव प्रयत्न-साध्य वस्तु न मानकर उपरसे—ईश्वर द्वारा—प्रदान की गई वस्तु मानता है। जीवको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कल्पना है—वह जो [illegible] (= [illegible])के [illegible] [illegible] [illegible] प्रदान करता है किन्तु जीवको जो [illegible] प्रदान करता है वह विज्ञान ([illegible] या [illegible]) है यही विज्ञान वास्तविक मानव है। यह विज्ञान ([illegible]) [illegible] जन्मसे मौजूद है, किन्तु [illegible] वह गुप्त [illegible] उसकी [illegible] अन्तर्हित होती है। [illegible] और [illegible] [illegible] जब काम करने लगती है तो [illegible] साकार वस्तुओंका ज्ञान होने लगता है और इस प्रकार सुप्त विज्ञान जागृत होने लगता है। किन्तु यह विज्ञान सुप्तावस्थासे जागृत अवस्थामें आना मनुष्यके अपने प्रयत्नका फल नहीं है, [illegible] यह [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible]—से प्रकट होता है। [illegible] स्वयंभू नहीं है बल्कि वह अपनी सत्ताके लिए मूल विज्ञान (ईश्वर) पर अवलम्बित है।

(८) जीवका ईश्वरसे समागम—मूल विज्ञान (=ईश्वर)में [illegible] यही मानवका लक्ष्य है। [illegible] [illegible] सम्भव रहता है—[illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible] नवजीवन अन्तिम [illegible] ([illegible]) [illegible], जिसमें [illegible] नहीं है और [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] और [illegible] ।

यह [illegible] लिए [illegible] —[illegible] आ [illegible] भी आ सकता है [illegible] बुद्धिमान् [illegible]। किन्तु जब आदमी मर जाता है [illegible] पूर्ण [illegible] प्राप्त होता है [illegible] ([illegible]) में ही [illegible] । [illegible] अवस्था—[illegible]—[illegible] पूर्ण [illegible] को भी [illegible] मौजूद रहता है। [illegible]—[illegible] उत्तर [illegible] और [illegible]।—[illegible] सूक्ष्म [illegible] दूसरा [illegible] । [illegible] प्रकार [illegible] जितना है—[illegible] दूसरी [illegible] बुद्धि [illegible] अलग है। [illegible] विचार [illegible] सीमा [illegible] परिमित [illegible] नहीं। [illegible] और [illegible] इसका ध्यान [illegible] है। जितना [illegible] ध्यान करता है, उतना ही [illegible] अनुभव करता है।

(९) फलित ज्योतिष और कीमियामें अविश्वास—[illegible] [illegible] उतना [illegible] था जितना कि [illegible] दार्शनिकोंके विचारोंका [illegible] ([illegible]) इसलिये [illegible] बहुत [illegible] रखनी चाहिए। फाराबी यद्यपि [illegible] (सूफी) [illegible] था तो भी [illegible] और [illegible] ने असर किया था [illegible] कि वह फलित ज्योतिष और कीमिया (उस वक्तकी कीमिया जिसके द्वारा [illegible] धातुओं—तांबे [illegible] बहुमूल्य धातु—सोने—में [illegible] धना [illegible] लोगोंमें पाई जाती थी) को मिथ्या [illegible] समझता था।

४–आचार-शास्त्र

फाराबी ज्ञानका उद्गम जीवसे बाहर मूल विज्ञान (=ईश्वर)में मानता है, इसे बतला चुके हैं। ऐसी अवस्थामें ऐसी भी संभावना थी कि फाराबी आचार—भलाई-बुराई, पुण्य-पाप—के विचारको भी ऊपरसे ही आया बतलाता, किन्तु यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि फाराबी मूल विज्ञानसे विश्वकी उत्पत्तिको इस्लामिक कुरान की भाँति अभावसे भावकी उत्पत्तिकी तरह नहीं मानता, बल्कि उसके मतसे विकास कार्य-कारण संबंधके साथ हुआ है, यद्यपि विज्ञानसे भौतिक तत्त्वोंका विकास आरोह नहीं अवरोह क्रमसे है, तो भी यह अफलातूनी ढंगका वस्तुवाद है इसमें सन्देह नहीं। कुछ भी हो, ज्ञानके उद्गमके सिद्धान्तकी अपेक्षा आचारके उद्गमका सिद्धान्त ज्यादा बुद्धिपूर्वक है। ईश्वरवादी लोग ज्ञानको किसी वक्त मानव बुद्धिकी उपज माननेके लिए तैयार भी हो सकते हैं, किन्तु आचार—पुण्य-पाप—के विचारका स्रोत वह हमेशा ईश्वरको ही मानते हैं। फाराबी इस बारेमें बिलकुल उलटा मत रखता है, वह ज्ञानका स्रोत तो अमानुषिक मानता है, किन्तु आचार विवेकको वह मानव-बुद्धि-का चमत्कार है—भले-बुरेकी तमीज़ करना मानव बुद्धिमें है। ज्ञानको फाराबी धर्म (=आचार)से ऊपर मानता है, इसलिए भी वह उसका उद्गम मनुष्यसे ऊँचा रखना चाहता है।

शुद्ध ज्ञानको फाराबी स्वातन्त्र्यकी भूमि बतलाता है, लेकिन यह शुद्ध ज्ञान ईश्वरपर निर्भर होनेसे उसीके अनुसार निश्चित है, जिसका अर्थ हुआ मानव स्वतन्त्रता भी ईश्वराधीन है—यह फाराबीका सीधा-सादा भाग्यवाद है— उसके हुक्मके बिना पत्ता तक हिलता नहीं।

५–राजनीतिक विचार

फाराबीने अफलातूँके "प्रजातंत्र"को पढ़ा था, और उसका उसपर कुछ असर जरूर हुआ था, किन्तु वह अफलातूनी जगत—अथेन्स और उसके

प्रजातंत्र—जो अपने शासन निर्मित कर सकता था। उसका अंतिम राज्य [illegible] दूसरे प्रकारका शासन संभव [illegible]—[illegible] ईश्वरप्रदत्त [illegible] मानवभावोंके लिए [illegible] (राजाज्ञ)-[illegible] ऊपर उठना [illegible] [illegible] । [illegible] फाराबी [illegible] [illegible] [illegible] प्रजा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सर्वोच्च [illegible] बनाता है। मनुष्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दूसरेपर [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राजाके [illegible] [illegible] [illegible] है। यदि राजा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] या दुराचारी है [illegible] राज्य [illegible] होगा। [illegible] राज्य [illegible] हो [illegible] है [illegible] राजा (अफलातूँ जैसा) [illegible] है। [illegible] ([illegible]) राजा दूसरे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महत्त्व बनाता है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राजाके [illegible]—[illegible] प्रभु है तो [illegible] [illegible]—[illegible] अधिकारको कायम रखना चाहता है किन्तु साथ ही एक [illegible] [illegible] [illegible] कारण वह उसपर [illegible] भी [illegible] है। [illegible] [illegible]—जिम्मेदारियों—का [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राजापर निर्भर है। [illegible] [illegible] प्रजा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पहुँच जाती है। [illegible] सारी जिम्मेदारी राजापर पड़ती है जिसके लिए [illegible] उसे यातना भोगनेके लिए तयार रहना पड़ेगा। यह [illegible] कुछ [illegible] [illegible] [illegible]—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥ —तुलसीदास

फाराबीके राजनीतिक विचार [illegible] बिलकुल [illegible] हैं [illegible] [illegible] कारण भी थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] व्यवहारके गुण का बिलकुल [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं हो सकता यही कहा जा सकता

, कि वह व्यवहारके जावाम दार्शनिक (व्यवहारशून्य मानसिक उड़ान के) जीवनको ज्यादा पसन्द करता था। जब हम उसके जीवनको ध्यान देते हैं तो यह बात और साफ़ हो जाती है। उसका जीवन एक विचारमग्न सूफी या बौद्ध भिक्षुका जीवन था। उसके पास संपत्ति नहीं थी किन्तु मन उसका किसी राजासे कम न था। दर्शनमें उसे अफलातून अरस्तूका समागम, और तज्जन्य आनंद प्राप्त होता था। अपने बाग़के फूल और चिड़ियाँ के कलरव उसके कमाको पूरा कर देते थे। यद्यपि सनातनी मुसलमान फ़ाराबीको सदा काफ़िर कहते थे किन्तु वह उनके ज्ञानके तलको बहुत नीचा समझता उनकी रायकी कोई कदर नहीं करता था। उसके लिए यह काफ़ी सन्तोषकी बात थी कि पारखी व्यक्ति—चाहे वह कितने ही थोड़े हों—उसकी कदर करते थे। वह उनके लिए महान् तत्त्वज्ञानी था। फ़ाराबीका शुद्ध और सादा जीवन दूसरा तरहके मजहबी पक्षपातसे शून्य व्यक्तियोंपर भी प्रभाव डाल बिना नहीं रह सकता था।

यह सब इसी बातको बतलाता है कि इस्लामसे दूर हट होनेपर भी फ़ाराबीस तत्कालीन समाज या शासनको कोई डर न था।

६—फ़ाराबीके उत्तराधिकारी

फ़ाराबी जैसे एकान्तप्रिय प्रकृतिवाले विद्वानके पास शिष्योंकी भारी भीड़ जमा नहीं हो सकती थी इसीलिए उसके शिष्योंकी संख्या बहुत कम थी। अरस्तूके कितने ही ग्रन्थोंका अनुवादक अबू-जकरिया यह्या इब्न-आदी—याकूबी पक्षका ईसाई—उसका शिष्य था। अनुवादक होनेके सिवा आदीमें स्वयं कोई खास बात न थी किन्तु उसका ईरानी शिष्य अबू सुलेमान मुहम्मद (इब्न-ताहिर इब्न-बहराम अल) सजिस्तानी एक ख्यात नामा पंडित था। इसकी सदीके उत्तरार्धमें सजिस्तानीकी शिष्य-मंडली में बग़दादके बड़े बड़े विद्वान शामिल थे। सजिस्तानी-गुरु शिष्य मंडली के दार्शनिक पाठ और सवादके कितने ही भाग अब भी सुरक्षित हैं, जिसमें

[illegible] कि [illegible] गम्भीर [illegible] कितनी थी। [illegible] हमारे [illegible] भाँति [illegible] और [illegible] वे [illegible] अपने [illegible] और [illegible] लिए [illegible] समझते थे। उनमें जो [illegible] और [illegible] जिसकी भूल [illegible] भी [illegible] थे। [illegible] (जैसे कि उसके शिष्य [illegible] १००६ [illegible]) [illegible] अध्यात्ममें [illegible] [illegible] [illegible]—सभी [illegible] जानते [illegible]—जो [illegible] जैसा थी उतना [illegible] नहीं। [illegible] धर्मके [illegible] प्रभाव था [illegible] कि यह [illegible] [illegible]।

§ ३-[illegible] मस्यनिया ([illegible] १०३० ई०)

फ़ाराबीके समयसे चलकर अब हम फ़िर्दौसी (९४ [illegible] १०२० ई०) (अबू रैहाँ [illegible]) बेरूनी (९७३ [illegible] १०४८) और महमूद गजनवी (म० १०३० ई०)के समयमें आते हैं। अब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भिन्न मुसलमान जातियाँ [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] समानता और भाईचारेके भावसे प्रभावित [illegible] [illegible] [illegible]—जिनमें कितने ही गुलामीकी [illegible] धर्म चुके थे, या [illegible] [illegible] गुलामी उनको भूला न थी—वे [illegible] संगठित कर इस्लाम की अपूर्ण विजयको अलग अलग पूरा करना चाहती हैं। यह समय है जब कि इस्लामी तलवारको सीधा हिन्द तलवारसे मुकाबिला करना है और

हिन्दूरुशन पवतमाना हिन्दूकुशका नाम धारण करता है।—महमूद गजनवी काबुलके हिन्दूराज्यके विजयसे ही सन्तोष नहीं करता, बल्कि इस्लामके 'झन्डे'को बुलन्द करनेके लिए भारतपर हमलेपर हमला करता है। ऊपरी दृष्टिसे देखनेपर यही शकल हमारे सामने आती है जैसा कि हमारे विद्यालयोंके इतिहासलेखक हमारे सामने उसे पेश करते हैं, किन्तु गहराईसे भीतर जानेपर यह हिन्दू और इस्लामके झडोंके झगड़ेका सवाल नहीं रह जाता—यद्यपि यह ठीक है कि उस समय उसे भी ऐसा ही समझा गया था।

प्रारंभिक इस्लामपर अरब कबीलाशाहीकी जबर्दस्त छाप थी, इसका जिक्र पहले हो चुका है साथ ही हम यह भी बतला चुके हैं कि दमिश्ककी खिलाफतने उस कबीलाशाहीको पहिला शिकस्त दी और बगदादकी खिलाफतने उसे खतम कर दिया।—यह बात जहाँ तक ऊपरके शासक-वर्गका संबंध है बिलकुल ठीक है। किन्तु कबीलाशाही कुरान अब भी मुसलमानोंका मुख्य धर्मग्रंथ था। उसकी पढ़ाईका हर मस्जिद हर मदरसेमें उसी तरह रवाज था। अरबी कबीलोंके भीतर सरदार और साधारण व्यक्तियोंकी जो समानता है उसका न कुरानमें उतना स्पष्ट चित्रण था, और न उसका उदाहरण लोगोंके सामने था—बल्कि खलीफों और धनी मुसलमानोंका जो उदाहरण सामने था वह बिलकुल उलटा रूप पेश करता था। हाँ भाई-चारेकी बात कुरानमें साफ और बार बार दुहराई गई थी मस्जिदमें जुमाकी नमाजके वक्त सुल्तानोंको भी इसे दिखलाना पड़ता था। जिन शक्तियोंसे मुसलमानोंका विरोध था, उनमें इस भाईचारेका ख्याल इतना खतम हो चुका था उनका सामाजिक संगठन सदियोंसे इस तरह विशृंखलित हो चुका था कि हिन्दू झंडे या किसी दूसरे नामपर उसे जाननेकी बात उस परिस्थितिमें कभी भी संभव न थी। इस्लामी झंडा यद्यपि अब विश्वव्यापी (अन्तर्राष्ट्रीय) इस्लामी कबीलेका झंडा नहीं था, तो भी वह ऐसे विचारोंको लेकर हमला कर रहा था जिससे शत्रुदेशके राजनीतिक ही नहीं सामाजिक ढाँचेको भी चोट पहुँच

रहा है और [illegible] मस्कवियाके [illegible] आत्मावादी
इस्लामका [illegible] रहा था।

मस्कवियाका जन्म इस समय में हुआ था।

१—जीवनी

मस्कवियाके जीवनके बारेमें हमें बहुत मालूम नहीं है। वह सुल्तान अदुदौला (दैलमी?) का कोषाध्यक्ष था और १०३० ई० में, जब उसकी मृत्यु हुई तो उम्र बहुत बड़ी हो चुकी थी।

मस्कविया वैद्य था, इसलिए इतिहास, आचारशास्त्र उसके प्रिय विषय थे। किन्तु जिस कृतिके कारण उसे प्रसिद्धि मिली, वह है उसकी पुस्तक 'तहज़ीब-अल्-अख़लाक़' (आचार-सम्बन्धी)। उसने इसमें अफ़लातूँ, अरस्तू, जालीनूस (गैलन) के सिद्धान्तोंको इस्लामिक धर्मशास्त्रके साथ मिलाकर एक समन्वय स्थापित किया। वह ज्ञान विचारमें अरस्तूका अनुयायी मालूम होता है। मस्कवियाकी यही तहज़ीबुल्-इख़लाक़ है जिसके आचारशास्त्र-सम्बन्धी सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ होनेसे उसे तूसीने [illegible] किया। मस्कवियाके आचार-शास्त्रकी शिक्षा (=दुराचार) का नाश करना तथा आदि श्रेष्ठ गुणोंका प्रचार था। इन दोषोंको दूर करनेके लिए वह दो मार्ग बतलाता है—(१) इन का गहरा उनकी औषधि इस्तेमाल की जाय, बहुतसे इलाज किये गये हैं, उनका उसी प्रकार इस्तेमाल किया जाय। (२) दूसरे, चूँकि सभी आत्मिक रोगोंके कारण [illegible] और [illegible] हैं, इसलिए उनके दूर करनेके उपाय इस्तेमाल किये जायें।

२—दार्शनिक विचार

(मानव जाति)—मस्कविया मानव जाति और पशु जातिमें भेद करता है, जिसमें ईश्वरका और मनुष्यकी बौद्धिक उन्नतिकी ऐसी खास बात बतलाता है, जिससे कि पशु-जातिको मानव-जातिकी श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता।

मानव जीव एक ऐसा अमिश्रित निराकार द्रव्य है जो कि अपनी सत्ता ज्ञान और क्रियाका अनुभव करता है। वह अभौतिक आत्मिक स्वभाव रखता है यह तो इसीसे सिद्ध है कि जहाँ भौतिक शरीर एक दूसरेसे अत्यन्त विरोधी आकारों—काल सफेद के ज्ञानों—मेंसे सिर्फ एकका ग्रहण कर सकता है, वहाँ जीव (आत्मा) एक ही समय सभी आकारों का ग्रहण करता है। यही नहीं वह इन्द्रिय-ग्राह्य तथा इन्द्रिय अग्राह्य दोनों प्रकारके आकारों को अभौतिक स्वरूपमें ग्रहण करता है—इन्द्रियसे हम कलमकी लंबाई देखते हैं, किन्तु उसका आकार सा स्मृतिमें मुरक्षित होता है वह वहाँ भौतिक लंबाई नहीं है। इसीसे सिद्ध है कि जीव भौतिक सीमासे बद्ध नहीं है। अतएव जीवके ज्ञान और प्रयत्न शरीरकी सीमासे बाहर तककी पहुँच रखते हैं, और इसलिए वह इन्द्रिय-गोचर जगतकी सीमासे भी पार पहुँचते हैं। सच और झूठका ज्ञान जीवमें सहज होता है इन्द्रियाँ इस ज्ञानको नहीं प्रदान करतीं। इन्द्रियाँ अपने प्रत्यक्षके द्वारा जिन विषयोंको उपस्थित करती हैं, उनकी विवेचना और निर्धारणा करने वक्त वह अपनी उसी सहज शक्तिसे काम लेती है। 'मैं जानता हूँ' इसको जानना— आत्म चेतना —इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है कि जीव एक अभौतिक तत्त्व है।

३—आचार-शास्त्र

(१) पाप पुण्य—जैसा कि पहले कहा जा चुका है मस्कवियाज्यादा प्रसिद्ध है एक आचारशास्त्रीके तौरपर। आचारशास्त्रमें पहिला प्रश्न आता है—शुभ (=भलाई, नेकी) क्या है? मस्कवियाका उत्तर है—जिसके द्वारा एक इच्छावान व्यक्ति (=प्राणी) अपने उद्देश्य या स्वभावकी पूर्णताको प्राप्त करता है। नेक (=शुभ) होनेके लिए एक खास तरहकी भावना या स्वभाव दोनों जरूरी है। लेकिन हम जानते हैं, हर मनुष्यमें भावना एकसी नहीं है। स्वभावतः नेक मनुष्य बहुत कम होते हैं। जो स्वभावतः नेक हैं, वह बुरे नहीं हो सकते, क्योंकि स्वभाव उसीको कहते हैं

जो रखता है। जितने ही स्वभावतः दुष्ट भी अच्छे होने वाले मनुष्य भी हैं। ज्यादा मनुष्य पहिले-पहिल न नेक होते हैं न बद, वह सामाजिक वातावरण (समाज) या शिक्षा-दीक्षाके कारण नेक या बद बन जाते हैं।

शुभ (=नेकी) दो तरहकी होती है—साधारण शुभ और विशेष शुभ। इनके अतिरिक्त एक परम शुभ है, जो कि सर्व महान् सत् (=ईश्वर) और सर्व महान् ज्ञानकी पहुँच है। सभी शुभ मिलकर इसी परम शुभ तक पहुँचना चाहते हैं। हर व्यक्तिको किसी विशेष शुभके करनेसे उसके भीतर आनन्द या प्रसन्नता प्रकट होती है। यह आनन्द और कुछ नहीं। अपने ही मुख्य स्वभावका पूर्ण और निजी रूपमें प्राकट्य है, अपने ही अन्तस्तम अस्तित्वका पूर्ण अनुभव है।

(२) समाजका महत्त्व—मनुष्य उसी वक्त शुभ(नेक) और सुखी है, जब कि वह मनुष्यकी तरह आचरण करता है—सदाचार मानव महनीयता है। मानव समाजके सभी व्यक्ति एक समान नहीं हैं, इसीलिए शुभ, और आनन्द (=सुख)का तल सबके लिए एकसा नहीं है। यदि मनुष्य अकेला छोड़ दिया जाय तो स्वभावतः जो मनुष्य न नेक है न बद उसे नेक बननेका अवसर नहीं मिलेगा, इसीलिए बहुतसे मनुष्योंका इकट्ठा (=समाजमें) रहना जरूरी है, और इसके लिए पहिला कर्तव्य तथा सभी शुभाचरणोंकी नींव है मानव जातिके लिए साधारण प्रेम, जिसके बिना कोई समाज कायम नहीं रह सकता। दूसरे मनुष्योंके साथ और उनके बीच ही मनुष्य अपनी कमियोंको दूर कर पूर्णता प्राप्त कर सकता है, इसीलिए आचार वही हो सकता है जो कि सामाजिक आचार है। इस तरह मित्रता आत्म प्रेम (=अपने भीतर केन्द्रित प्रेम)का सीमा विस्तार नहीं बल्कि आत्म प्रेमका संकोच है, यह अपनेपनकी सीमाके बाहर अपने पड़ोसी का प्रेम है। इस तरहका प्रेम या मित्रता संसार-त्यागी एकान्तवासी साधुमें संभव नहीं है, यह संभव है केवल समाज या सामूहिक जीवन होनेमें। जो एकान्तवासी योगी समझता है कि वह शुभ (=सदाचारी) जीवन बिता रहा है, वह अपनेको धोखा देता है। वह धार्मिक हो सकता

है किन्तु आचारवान् हर्गिज नहीं, क्योंकि आचारवान् होनेके लिए समाज चाहिए।

(३) धर्म (=मजहब)—धर्म या मजहब मस्कवियाके विचारमें लोगोंको आचारकी शिक्षा देनेका तरीका है, उदाहरणार्थ नमाज (=भगवान्की उपासना), और हज (=मक्काकी तीर्थयात्रा) पड़ोसी या शहर-प्रेमको बड़े पैमानेपर पैदा करनेका सुन्दर अवसर है।

साम्प्रदायिक संकीर्णताका अभाव और मानव-जीवनमें समाजका बहुत ऊँचा स्थान बतलाता है कि मस्कवियाकी दृष्टि कितनी व्यापक और गंभीर थी।

§ ४—बू-अली सीना (९८०-१०३७ ई०)

फाराबी अपने शान्त अतएव निष्क्रिय स्वभावके कारण चाहे दर्शनक्षेत्रमें उतना काम न कर सका हो, जितना कि वह अपने गंभीर अध्ययन और प्रतिभाके कारण कर सकता था, किन्तु वह एक महान विद्वान था इसमें सन्देह नहीं। बू अली सीनाके बारेमें तो हम कह सकते हैं कि उसके रूपमें पूर्वी इस्लामिक दर्शन उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँचा। बू अली सीना मस्कविया (मृत्यु १०३० ई०) फिर्दौसी (९४० १०२० ई०) अलबरूनी (९७३ १०४८)का समकालीन था, मस्कवियासे भेंट और अलबरूनीसे उसका पत्र-व्यवहार भी हुआ था।

१—जीवनी

अबू अली अल-हुसेन (इब्न अब्दुल्ला इब्न)सीनाका जन्म ९८० ई० में बुखाराके पास अफ्शनामें हुआ था। सीनाके परिवारके लोग पीढ़ियोंसे सरकारी कर्मचारी रहते चले आए थे। उसने प्रारम्भिक शिक्षा घरपर पाई। यद्यपि मध्य-एसियाके इस भागमें इस्लामको प्रभुत्व जमाए प्राय तीन सदियाँ हो गई थीं, किन्तु मालूम होता है, यहाँकी सभ्य जातियोंके लिए जितना अरबी तलवारके सामने सिर झुकाना आसान था

[illegible]ना अपने ज्ञानका दर्शनके (गार्हीय सम्पत्ति)का बुखारा [illegible] था। बगदादको इस [illegible] चुके थे [illegible] समानी [illegible] शासकों [illegible] न करता था [illegible] गीताका [illegible] था। [illegible] पारसी और सीनाकी मातृभूमि—वर्तमान उज्बकिस्तान [illegible] प्रजातन्त्र—के [illegible] आसपासके [illegible] और [illegible] धर्म और [illegible] और आज [illegible] मध्य-एसियाके। [illegible] हुआ मान [illegible] लगता है कि [illegible] मध्यम [illegible] जाति [illegible] नष्ट [illegible] इस सामाजिक [illegible] विचारों [illegible] कितना प्रभाव [illegible]। [illegible] किया [illegible] नगरमें [illegible] नामसे सिद्धान्तोंको [illegible] जिसमें यह ध्यान युक्त करता।

प्रारम्भिक शिक्षाके समाप्त होनेपर बू अली [illegible] मध्य-एसियाके इस्लामिक [illegible] बुखारामें [illegible] लिया गया। वहाँ उसने [illegible] और वैद्यकका विशेष तौरसे अध्ययन किया। [illegible] चिकित्साके द्वारा [illegible] — [illegible] अनुसार जिस समय वह अभी सिर्फ १८ [illegible] तरुण था, उसी समय उसने स्थानीय राजा नूह इब्न-मन्सूरको अपनी चिकित्सासे रोग मुक्त किया। इस [illegible] सबसे ज्यादा फायदा जो हुआ वह यह था कि नूह के पुस्तकालयका दरवाजा उसके लिए खुल गया। तबसे नाना [illegible] अध्ययन या चिकित्सा प्रयासमें अपना [illegible]

बुखारा वस्तुतः विहार शब्दका विकृत रूप है। नालन्दाके साथ महाविहारकी भाँति यहाँ भी "नवविहार" नामक एक जबर्दस्त बौद्ध शिक्षणालय था जिस तरह नालन्दा जैसे विहारोंने एक प्रान्तको विहार नाम दिया उसी तरह इस "नव विहार" ने नगरको विहार या बुखार नाम दिया।

हुआ यह आगे पृष्ठ बतलायेंगे। एक बात तो निश्चित है कि अब तक चलते आए ढर्रेकी पाबंदीसे इतनी कम मात्रामें मुक्त हो। जिससे वह दर्शनमें टीकाकार और गतानुगतिक न बने, इस्लाम-पूर्व यूनानी दर्शनोंके तुलनात्मक अध्ययनसे अपनी निजी शैलीको विकसित कर सका।

किसी महत्त्वाकांक्षी विद्वान्के लिए अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उस वक्त जरूरी था कि वह किसी शासकका आश्रय ले। सीनाको भी ऐसा ही करना पड़ा। सीना हो सकता है अपनी प्रतिभा और विद्वत्ताके कारण किसी बड़े दरबारमें रसूख हासिल कर सकता, किन्तु उसमें आत्मसम्मान और स्वतंत्रताका भाव इतना अधिक था कि वह बड़े दरबारमें टिक न सकता था। छोटे दरबारोंमें वह बहुत कुछ समानताके साथ निर्वाह कर सकता था, इसलिए उसने अपनी दौड़को वहीं तक सीमित रक्खा। वहाँ भी, एक दरबारमें यदि कोई तबियतके विरुद्ध बात हुई तो दूसरा घर देखा। उसने काम भी भिन्न भिन्न दरबारोंमें भिन्न भिन्न किया—कहीं वह शासनका कोई अधिकारी बना कहीं अध्यापक और कहीं लेखक। अन्तमें चक्कर काटते काटते हमदान (पश्चिमी ईरान)के शासक शम्सुद्दौलाका वजीर बना। शम्सुद्दौलाके मरनेके बाद उसके पुत्रने कुछ महीनोंके लिए सीनाको जेलमें डाल दिया—सीनाने राजनीतिमें भाग तो क्या उत्तराधिकारी तक? [illegible] नहीं सीखा थी। जेलसे छूटनेपर वह इस्फहानके शासक अलाउद्दौलाके दरबारमें पहुँचा। अलाउद्दौलाने जब हमदानको जीत लिया, तो अबीसीना फिर यहाँ लौट गया। यहीं १०३७ ई० में ५७ वर्षकी उम्रमें उसका देहान्त हुआ, हमदानमें आज भी उसकी समाधि मौजूद है।—*हगमताना (इक्बताना) ईरानके प्रथम राजवंश (मद्रवंश)के प्रथम राजा देयक (...मृत्यु ६५५ ई० पू०)की राजधानी थी।

कृतियाँ

सीनाने कुल कितनी पुस्तकें लिखीं, इसका ठीक ठीक विवरण नहीं मिला। उसकी [illegible] पुस्तकोंके नाम और विवरण अब भी मौजूद हैं,

[illegible] उत्तर विचार कर स्वयं [illegible] पहुँचना । यह जिस [illegible] पहुँचा उसे ध्यान [illegible] [illegible] किया । उसके [illegible] [illegible] —

(१) [illegible] ([illegible]) ([illegible] आत्मज्ञानी [illegible] पहले [illegible] [illegible])। (२) [illegible] ([illegible])। ( ) [illegible] (=मुक्ति)।

[illegible] [illegible] के कारण उसके [illegible] [illegible] [illegible] यही परम्पूर [illegible] [illegible] किया । [illegible] यह [illegible] [illegible], कि उसमें [illegible] अपनी आग [illegible] दिखाई । यहाँ [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] कि उसके परम्पूर [illegible] [illegible] नहीं है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible])की उत्पत्ति, भावना [illegible] अभाव [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] जो [illegible], उसका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] ([illegible] ६८ ६०) [illegible] [illegible] [illegible] था [illegible] जगह-जगह उदाहरण देकर बतलाया है कि [illegible] [illegible] [illegible] जगह परम्पूर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसने परम्पूर [illegible] [illegible] [illegible] किया और [illegible] [illegible] जगह परम्पूर [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] था ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] था । १७ से ४७ उसकी उम्र [illegible] ४० वर्षों [illegible] [illegible] उसने पूरा उपयोग किया । [illegible] यह [illegible] [illegible] कर्तव्य पूरा करना या विद्यार्थियोंको [illegible] [illegible] [illegible] या [illegible] [illegible] किन्तु [illegible] वह हाथमें [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का प्याला [illegible] [illegible] रहता था । समय और [illegible] अनुसार उसके ग्रन्थोंका विषय होता था । जब पर्याप्त समय तथा पासमें पुस्तकालय रहता तो [illegible] (=[illegible]) या [illegible] कोई बड़ा [illegible] लिखने लग जाता । जब यात्रामें रहता तो छोटी छोटी पुस्तकें लिखता । [illegible] उसने कवितायें तथा ध्यान (=[illegible])पर [illegible] [illegible] । उसकी कविताओं और

सूफी निबंधोंमें बहुत ही प्रसाद गुण पाया जाता है। पद्य रचनापर उसका इतना अधिकार था कि इच्छा होनेपर उसने साइंस ज्यक और तर्कको पुस्तकोंको भी पद्यमें लिखा। फारसी और अरबी दोनों भाषाओंपर उसका पूर्ण अधिकार था।

३—दार्शनिक विचार

सीना दार्शनिक और वैद्य (=हकीम) दोनों था। दर्शन-क्षेत्र-में उसकी कीर्तिछटाको मंद कर दिया, तो भी वैद्यकमें आचार्यके तौर बहुत पीछे तक युरोप उसका सम्मान करता रहा।

(१) मिथ्याविश्वास विरोध—सीना अपने पहिलेके इस्लामिक दार्शनिकोंसे कहीं ज्यादा फलित-ज्योतिष और कीमिया—उस वक्तके दो जबर्दस्त मिथ्या विश्वासों—का सख्त विरोधी था। वह इन्हें निरी मूढ़ता समझता था, यद्यपि दूसरा अर्थ यह नहीं कि आँख मूँदनेके साथ ही लोग उसके नामसे इन विषयोंपर ग्रन्थ लिखनेसे बाज आये हों।

हाँ उसका बुद्धिवाद साइंसका आधार। बुद्धिवाद—प्रयोगसिद्ध सिद्धान्त की सत्य—नहीं बल्कि दार्शनिकोंका बुद्धिवाद था, जिसमें कि इन्द्रियोंका गलत रास्तेपर न जानेसे बचानेके लिए बुद्धिका तर्कके अस्त्रको चतुराईसे उपमानोंपर जोर दिया गया है। तर्क बुद्धिके लिए अनिवार्यतया आवश्यक है तर्ककी आवश्यकता सिर्फ उन्हींको नहीं है, जिनको दिव्यप्रेरणा मिला है। जैसे अनपढ़ बद्दूको अरबी व्याकरणकी आवश्यकता नहीं।

(२) जीव-प्रकृति-ईश्वरवाद—फाराबीकी भाँति सीना प्रकृति (मूल भौतिक तत्त्व)को ईश्वरसे उत्पन्न हुआ नहीं मानता था उसके विचारमें ईश्वर एक ऊँची हस्ती है जिसे प्रकृतिके रूपमें परिणत हुआ मानना उसे नीचेकर लाने जाना है, उसी तरह वह जीवको भी ईश्वरसे नीच किन्तु प्रकृतिसे उपर तत्त्व मानता है। उसके मतसे ईश्वर जो सृष्टि करता है उसका अर्थ यही है, कि कर्त्ता (=भगवान्) अनादि (अकृत) प्रकृतिको साकार रूप देता है। अरस्तू और सीनाके मतमें यही थोड़ा अन्तर है।

अरस्तू प्रकृतिके अतिरिक्त आकृतियोंको भी अनादि (=अकृत) मानता है। और साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि वर्तमान प्रकृति और आकृति-को मिलाकर साकार जगत् और उसकी वस्तुएँ बनाई। सीना प्रकृतिको तो अनादि मानता है और आकृतिको अकृत नहीं कृत (=बनाई हुई) मानता है। निश्चय ही यह सिद्धान्त सनातनी मुसलमानोंके लिए कुफ्र कम न था और यही समझकर ११५० ई० में बगदादमें सनातनी मुस्लिमोंने उसे जलाकर अवांछा आगम जलाया था।

(३) ईश्वर—अकृत (अनादि) प्रकृति निराकार है उस अवस्थामें जगत् तथा उसकी साकार वस्तुओंका अस्तित्व नहीं हो सकता। इस नास्तित्वकी अवस्थामें जगतको साकार अस्तित्वमें परिणत करनेके लिए एक सत्ताकी जरूरत है और वही ईश्वर है। ईश्वरकी सिद्धिके लिए सीनाकी यह युक्ति अरस्तूसे भिन्न है। अरस्तूका कहना है कि प्रकृति और आकृति दोनों ही अनादि (अकृत) वस्तुएँ हैं उनके ही मिलनसे साकार जगत् पैदा होता है। इस मिलनके लिए गतिकी जरूरत है जो गति कि चिरकालसे जगतमें होती जाती है इस गतिका कोई चालक (=गतिकारक) होना चाहिए जिसको ही ईश्वर कहते हैं।

ईश्वर एक (अद्वितीय) है। उसमें बहुतसे विशेषण माने जा सकते हैं किन्तु ऐसा मानते वक्त यह ख्याल रखना चाहिए कि उनका बजूद से ईश्वर एकतामें बाधा न पड़े।

(४) जीव और शरीर—यूनानी दार्शनिकों तथा उनके अनुयायी इस्लामी दार्शनिकोंकी भाँति सीनाने भी ईश्वरसे प्रथम विज्ञान (=नफ्स) उसमें द्वितीय विज्ञान आदिकी उत्पत्तिको वर्णन किया है जिसको बहुत कुछ रूखी पुनरावृत्ति समझकर हम यहाँ छोड़ देते हैं। सीनाने जीवको स्थान प्रकृतिसे ऊपर रक्खा है जो कि भारतीय दर्शन (सेश्वर सांख्य) से समानता रखता है। उस समय जब कि काबुलमें अभी ही अभी महमूदने हिन्दू शासन हटाकर अपना शासन स्थापित किया था, किसी घुमन्तू फिरते योग (सेश्वर-सांख्य) के अनुयायीसे सीनाकी मुलाकात

असमर्थ न थी, अथवा अन्योंके अनुसार स्वयं उसके पास कोई आत्मीय स्मृति ऐसा पुरुष ही मालूम हो सकती है। मन कि स्मरण का विचार न लिया गया। यह बात तो साफ है कि मानव-शरीर, मरण उसका बाद जीव (आत्मा) पर छोड़ गया है जिसकी भी मानसिक विकासके बाद उसकी बुद्धि वस्तु मात्र आकार रहती है। यह आत्मा स्वतंत्र रहनेवाला है ... अन्तःकरण ... नाम शक्ति (= चिन्तन) रूपा है, जिसका भाव न ... हो सकता।

सीना स्थूल और चेतना का मिश्रण सिद्ध करता मानता है। सभी सिद्ध भौतिक तत्त्वोंके मिश्रणसे बना है मानव शरीर भी, उसी तरह भौतिक तत्त्वोंसे बना है, हाँ, यहाँ मात्राका अधिकतमके ज्यादा बारीकीसे काम लिया गया है। इस मिश्रण द्वारा मानव जातिकी सृष्टि या विकास यथायोग्य किया जा सकता है। किन्तु जीव इस तरह भौतिक तत्त्वोंके मिश्रणका नहीं बना है। जीव शरीरका अभिन्न अंग नहीं है, यद्यपि उसका शरीरके साथ घनिष्ठ संबंध हुआ है। हरएक शरीरको अपना अपना जीव उपलब्ध मिलता है। प्रारम्भमें ही प्रत्येक जीव एक अलग वस्तु है, शरीरमें रहते हुए सारे जीवन भर अपने अपने व्यक्तित्व विकासको जारी रखता है।

मनन करना जीवकी सबसे बड़ी शक्ति है। पाँच बाहरी और पाँच भीतरी इन्द्रियाँ (अन्तःकरण)[1] जगत्का ज्ञान विज्ञानमय जीव तक पहुँचाता है, जिसका अन्तिम तात्त्विक निर्णय या बोध जीव करता है।

---

[1] वेदान्तियोंके चार मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारकी भाँति सीनाने भी अन्तःकरणको पाँच भागोंमें बाँटा है, जो कि मस्तिष्कके आगे, बिचले और पिछले हिस्सोंमें हैं, और यह हैं—(१) हिस्स मुश्तरक (सम्मिलित अन्तःकरण), (२) हिफ्ज़ सम्मुई (ज्ञानमय) प्रतिबिंबोंकी सामूहिक स्मृति, (३) इद्राक लाशऊरा (अंशोंका होनेके बिना परिचय), (४) इद्राक शऊरा (होनेके साथ संपूर्णतर परिचय), (५) हिफ्ज़ मआनी (उच्च परिचयोंकी स्मृति)।

मान पवित्र या बद्धि जीनकी शक्तियोंकी परमसीमा है। पहिले बुद्धिके भीतर कितनी छिपी क्षमता रहती है, किन्तु बाहरी भीतरी इन्द्रिया द्वारा स्थूल ज्ञानसामग्री उसकी छिपी क्षमताको प्रगट—कार्यक्षमताके रूपमें परिणत करती है लेकिन ऊपर आकृतिज्ञान (द्वितीय तत्त्व)का ग्रहण भी शामिल रहता है बनी बुद्धिका विचार प्रदान करता है। मानव जाता स्मृति शुद्ध निराकार रखा है। होती, क्योंकि स्मृतिके हानके लिए पहिले साकार आधार जरूरी है।

विज्ञानमय (मानव) जीव अपनेसे नीच (भौतिक वस्तुओं)का स्वामी है किन्तु ऊपरकी वस्तुओंका ज्ञान उस जगत्का (=द्वितीय तत्त्व) द्वारा मिलता है। इस तरह ऊपर नीचे नानाको पाकर मनुष्य वास्तविक मनुष्य बनता है तो भी सारूपण वह (मानव जीव) एक अमिश्रित अनश्वर अमर वस्तु है। जबतक मानव-जीव शरीर और जगतमें रहता है तबतक उसे उसके द्वारा अधिक शिक्षित अधिक विकसित होनेका अवसर पाता है किन्तु जब शरीर मर जाता तो जीव जगत्का मानो समाप्त-सा हो गया रहता है। यह जगत्आत्माकी समानता—समान नहीं—तक नाना जीवोंका स्वभाव है। दूसरे जीवोंको यह अवस्था नहीं प्राप्त होती उनका जीवन अनन्त दुःखका जीवन है। जैसे शारीरिक विकार रोगको पैदा करता है उसी तरह जीवका विकृत अवस्थाके लिए दंड होना जरूरी है। स्वर्ग फल भी मानव-जीवको उसी परिमाणमें मिलता है जिस परिमाणमें कि उसने अपने आत्मिक स्वास्थ्य—ज्ञान—को इस शरीरमें प्राप्त किया है। हाँ उच्चतम पदपर पहुँचनेवाले थोड़े ही होते हैं, क्योंकि सत्यके शिखरपर पहुँचनेके लिए स्थान नहीं है।

(५) हईकी कथा[1]—हमारे यहाँ जैसे संकल्प सूर्योदय जैसे नाटक या कथाएं वेदान्त या दूसरे आध्यात्मिक विषयोंको समझानेके लिए लिखी गई हैं सानान भी हइ-इब्न-यकजान या प्रबुद्ध-पुत्र जीवककी कथाको

---

[1] एक हईकी कथा तुफैल (देखो पृष्ठ २०४)ने भी लिखी है।

लिखकर उसी गानाका अनुसरण किया है। जीवक अपनी बाहरी और भीतरी इंद्रियोंकी सहायतासे पृथिवी और स्वर्गकी बातोंको जाननेकी कोशिश करता भटक रहा है। उसे उत्साहसे तरुणोंका मान करनेवाला एक वृद्ध मिलता है। यह वृद्ध और कोई नहीं, एक नाना गुर—दानिश—है, जो कि पथ प्रदर्शककी भाँति भटकेको रास्ता बतलाना चाहता है। वृद्धका नाम है हई, और यह जागृत (=प्रबुद्ध)का पुत्र है। भटकते मुसाफिरके सामने दो मार्ग हैं—(१) एक पश्चिमका रास्ता है जो कि सांसारिक वस्तुओं और पापकी ओर ले जाता है (२) दूसरा उगते सूर्यकी ओर ले जाता है यह है सच्चा शुद्ध आकृतियों और आत्माओंका मार्ग। हई मुसाफिरको उगते सूर्यकी ओर ले जानेवाले मार्गपर चलानेको कहता है। दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हुए उस दिव्य ज्ञान-वापीपर पहुँचते हैं जो चिरतारुण्यका स्रोत है जहाँ सौंदर्यकी यवनिका सौंदर्य ज्योतिका घूघट ज्योति है जहाँ कि वह **अनन्त रहस्य** वास करता है।

(६) उपदेशमें अधिकारिभेद—जीव और प्रकृतिको भी ईश्वरकी भाँति ही सनातन मानना कुरानकी बातोंकी मनमानी व्याख्या करना जैसी बहुतसी बात सीनाकी ऐसी थीं कि वह कुफ्रके फतवेके साथ जिन्दा दफना दिया जा सकता था इस खतरेको सीना समझता था। इसीलिए उसने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि सभी तरहका ज्ञान सब उपदेश सबको नहीं देना चाहिए। ज्ञान प्रदान करते वक्त गुरुका काम है, कि वह अपने शिष्यकी योग्यताको देखे और जो जिस ज्ञानका अधिकारी हो उसको वही ज्ञान दे। पैगंबर मुहम्मदने अरबके खानाबदोश बद्दुओंको सभ्य बनाना चाहते थे उन्होंने देखा कि बद्दुओंको आत्मिक आनन्द आदिकी बात बतलाना भैंसके सामने बीन बजाना होगा, इसलिए उन्होंने उनसे कहा "कयामत (=अन्तिम निर्णय)के दिन मुर्दे जिन्दा हो उठेंगे।" बद्दुओंने समझा हमारा यह प्रिय शरीर सदाके लिए बिछुड़नेवाला नहीं, बल्कि वह हमें फिर मिलनेवाला है और यह उनके लिए आशा और प्रसन्नताकी बात थी। इसी तरह बहिश्त (=स्वर्ग)की दूध शहदकी नहर, अंगूरोंके बाग, हूर

(-[illegible]) गुप्तरूपसे जिसका प्रचार कर रहा था। मगर इन बातोंको यदि किसी [illegible] शासकोंके सामने प्रकट किया जाय तो [illegible] खतरेसे खाली नहीं [illegible] रहता। [illegible] भावोंकी उपासना किया [illegible] अन्तरगता [illegible] नहीं [illegible] उसका [illegible] अनन्त प्रेमका आनन्द और [illegible] निर्वाण (-[illegible] आत्माओं)की प्राप्ति।

(अल् बैरूनी ९७३-१०४८ ई०)

महमूद गजनवीके समकालीन पण्डित अल् बैरूनीका नाम भारत में प्रसिद्ध है। यद्यपि अरब दर्शन—[illegible] पर इसने [illegible] लिखा किन्तु उसका सम्बन्ध [illegible] ज्योतिष, भूगोल, मानवशास्त्र से था। उसके [illegible] ([illegible])से अनुयायियोंके मतको उद्धृत करते कहा है—

सूर्यकी किरण जो [illegible] हमारे लिए प्रकाश है। [illegible] जो [illegible] और वह [illegible] दूर तक फैला हो सकता है लेकिन उसका हम प्रयोग नहीं कर सकते। जहाँ सूर्यकी किरणें नहीं पहुँचतीं, वहाँ इन्द्रियोंकी गति नहीं और जहाँ इन्द्रियोंकी गति नहीं उसे हम जान नहीं सकते।

ख धर्मवादी दार्शनिक

§ ५—गजाली १०५९–११११ ई०

अब हम उस युगमें आ रहे हैं जब कि बगदादके खलीफाका सम्मान शासकके तौरपर उतना नहीं था जितना कि धर्मशासक तौरपर। विशाल इस्लामिक राज्य छिन्न भिन्न होकर अलग अलग सल्तनतोंके रूपमें परिणत

हो गया था। इन सल्तनतोंमें सबसे बड़ी सल्तनत जो कि एसियामें थी वह थी सल्जूकी तुर्कोंकी सल्तनत। इस सल्तनतके बानी तोग्रल बेग (१०३७-६२ ई०) ने ४२९ हिज्री (१०३६ ई०) में सीस्तानकी राजधानी तूसपर अधिकार कर लिया और धीरे धीरे सारे ईरानका विजय करते ४४७ हिज्री (१०५४ ई०) में ईरान (बगदाद वाले देश) का भी स्वामी बन गया। तोग्रलके बाद अल्प अर्सलन (१०६२-७२ ई०), फिर बाद मलिकशाह प्रथम (१०७२-९२ ई०) शासक बना। मलिकशाहके शासनमें सल्जूकी-सल्तनतका भाग्य-सूर्य मध्याह्नपर पहुँचा हुआ था। मलिकशाहके राज्यकी पूर्वी सीमा जहाँ काशगरके पास चीनसे मिलती वहाँ पश्चिममें वह यरूशिलम और कुस्तुन्तुनिया तक फैली हुई थी। यही तुर्कोंके शासनका प्रारम्भ है जो कि अन्तमें तुर्कोंके तुर्कोंके शासन और खिलाफतका अग्रदूत बना।

इस्लामके इन चिरशासित मुल्कोंमें अब इस्लामकी प्रगतिशीलता खतम हो चुकी थी, अब वह दीन-दरिद्रोंका बन्धु तथा पुराने सामन्तवर्गों तथा धनी पुरोहितोंका संहारक नहीं रह गया था। अब उसने खुद सामन्त और पुरोहित पैदा किये थे जो पहिलेसे कम खर्चीले न थे बल्कि खास कर नये सामन्त तो शौर्य और विलासप्रियतामें कसरा और नौशेरवाँ के कान काटते थे। (गजालीके समकालीन सुल्तान संजर सल्जूकी-ने एक गुलामके नाचको अप्राकृतिक प्रेमसे पागल हो उसे लाखोंकी जागीर तथा सात लाख अशर्फियाँ दी थीं)। साधारण जाँगर चलानेवाली जनताके ऊपर इससे क्या बीत रही थी यह गजालीके उस वाक्यसे पता लगता है जिसे कि उसने सुल्तान संजर (१११८-५७ ई०) से कहा था—
अफसोस मुसलमानों (=मेहनत करनेवाली साधारण जनता) की गर्दन मुसीबत और तकलीफसे टूटी जाती है और तेरे घोड़ोंकी गर्दन सोनेके हंसेकी बोझसे दबी जा रही है। धर्म-पुरोहितों (=मौलवियों) के बारेमें गजाली भी कहता है— ये (मुल्ला) लोग इन्सानी सूरतमें शैतान (शया-तीन उल्-इन्स) हैं, जो कि स्वयं पथभ्रष्ट हैं और दूसरोंको पथभ्रष्ट करते

—। आरम्भमें ताज धर्मोपदेशक एक शब्द भी नहीं शायद किसी कालमें ताज इनका प्रभाव था। किन्तु मुझको कोई ऐसा आदमी मालूम नहीं।[1]

सल्जूक-बगावत (— —) सुल्तानों और अमीरोंके धनभोगी बन गए थे। जिससे उनकी प्रजापर जुल्म भी थी। वह प्रजापर होने वाले प्रत्येक प्रकारके अत्याचारको अपनी आँखों देखते और जीभ तक नहीं हिलाते थे। सुल्तान और अमीर इनसे ज्यादा विलासी और कामुक होते जाते थे। किन्तु [illegible] कर सकते थे।

१—जीवनी

मुहम्मद (इब्न मुहम्मद इब्न मुहम्मद इब्न-मुहम्मद) ग़ज़ालीका जन्म ४५० हिजरी (१०५९ ई०) में तूस (ख़ुरासान) शहरके एक भाग ताहिरानमें हुआ था। इनके घरवालोंका खानदानी पेशा सूत कातना (=ग़ज़्ज़ाल या कतवा) रहा था, जिस सम्बन्धसे ग़ज़ाल कहा है, [illegible] नामक [illegible] साथ ग़ज़ालीका लगाया। ग़ज़ाली छोटे ही थे तभी उनके बापका देहान्त हो गया। ग़ज़ालीका बाप स्वयं अनपढ़ था, किन्तु उसे विद्यासे बहुत प्रेम था और चाहता था कि उसका लड़का विद्वान बने, इसीलिए मरते वक्त उसने मुहम्मदको उसके छोटे भाई अहमदके साथ एक दोस्तके हाथमें सौंपते हुए उनकी शिक्षाके लिए ताकीद की थी। ग़ज़ालीका घर ग़रीब था। इनके बापका दोस्त भी धनी न था। इसलिए बापकी छोड़ी सम्पत्तिके ख़तम होने पर दोनों भाइयोंको मदरसोंकी रोटीपर गुज़ारा करके अपनी पढ़ाई जारी रखनी पड़ी। शहरकी पढ़ाई ख़तम कर ग़ज़ालीको आगे पढ़नेकी इच्छा हुई और उसने जर्जानमें जाकर एक बड़े विद्वान अबू-नस्र इस्माईलीकी शिष्यता स्वीकार की। उस समय पढ़ानेकी यह शैली थी कि अध्यापक पाठ्य विषयपर जो बोलता जाता था विद्यार्थी उसे लिखते

[1] "अहयाउल उलूम्"।

[2] अल-ग़ज़ाली—शिब्ली नोमानी (१९२८ ई०), पृष्ठ १९४

जाते थे। सौभाग्यसे मालकी भरीन हो जाने कि अरबान समरकन्दपर अधिकार किया इस्लामिक स्पेन कागजका रवाज हो गया था यद्यपि अभी तक नालेकी विद्यार्थी तालपत्र और नकशिका पट्टीपर आम नहीं रह थे। गजालीने इस्माइलीके नोट उस जब कागजपर लिखने गये थे। कुछ समय बाद जब वह अपने घरको लौट रहे थे तो रास्तेमें डाका पड़ा और गजालीके और सामानके वह नोटें भी लुट गए। गजालीसे रहा न गया, और उसने डाकुओंके सरदारके पास उस कागजको देनेके लिए प्रार्थना की। डाकू सरदारने हँसकर कहा— तुमने क्या खाक पढ़ा है? जब तुम्हारा यह हाल है कि एक कागज न रहा तो तुम कोरे रह गए। किन्तु कागज उसने लौटा दिए।

गजालीकी पढ़ाई काफी आगे तक बढ़ चुकी थी और अब छोटे-मोटे विद्वान उसे सन्तुष्ट न कर सकते थे। उस वक्त नैशापोर (ईरान) और बगदाद (इराक) दो शहर विद्याके महान केन्द्र समझे जाते थे जिनमें नैशापोरमें इमाम अब्दुल्मलिक हरमैन और बगदादमें अबू इस्हाक शीराजी विद्याके दो सूर्य माने जाते थे। नैशापोर गजालीके ही प्रान्त (खुरासान)में था, इसलिए गजालीने नैशापोर जाकर हरमैनकी शागिर्दी स्वीकार की।

अरबोंने ईरानपर जब (६४२ ई०) अधिकार किया था, उस वक्त भी नैशापोर एक प्रसिद्ध नगर तथा शिक्षा-संस्कृतिका केन्द्र था इसीलिए वहाँ बहकियाके नामसे जो मदरसा खोला गया था वह बहुत शीघ्रतासे उन्नति करके एक महान विद्यापीठके रूपमें परिणत हो गया और इस्लामके सबसे पुराने मदरसे निजामिया (बगदाद)का मुकाबिला कर रहा था। हरमैन बहकिया तथा निजामिया (बगदाद)के विद्यार्थी रह चुके थे। अबुल-मलिक हरमैन (मक्का-मदीना)में जाकर कुछ दिनों अध्यापन करते थे, इसीलिए हरमैन उनके नामके साथ लग गया था। सुल्तान अलप असलन सलजूकी (१०६२-७२ ई०)का महामंत्री पीछे निजामुल-मुल्क बना। वह स्वयं विद्वान—हसन बिन-सब्बाह (किले उल्-मौतके संस्थापक) और (उमर खय्यामका सहपाठी)-तथा विद्वानोंकी इज्जत करता था।

[illegible] खिलाफत [illegible] था [illegible] । [illegible] प्रधान नाम-
धर [illegible] —बुखरा [illegible]— [illegible] कहीं
[illegible] लिख [illegible] ।

[illegible] बहुत प्रतिभाशाली [illegible] थे । [illegible]
[illegible] थी ।
[illegible] बड़े [illegible] प्रधान [illegible]
[illegible] ४३८ हिजरी (१०४६ या १०४७ ई०) में [illegible]
[illegible] । [illegible] उस [illegible] थी ।

[illegible] और महत्त्वाकांक्षा [illegible]
[illegible] हो [illegible] हिजरी
[illegible] । निजामुल्मुल्क [illegible]
[illegible] और [illegible] । [illegible]
[illegible] था । निजामुल्मुल्क [illegible] बड़ा
[illegible] और [illegible]
[illegible] विजयी हुए और ४५ वर्ष
उम्रमें [illegible]
[illegible] । [illegible] ४८४ हिजरी (१०९१
या १० [illegible]) [illegible] हुए [illegible]
[illegible] । [illegible] थी,
और [illegible] गया
था [illegible] भी [illegible] थी ।

४८५ हिजरी (१०९ [illegible] ई०) में [illegible] उस
वक्त उसकी प्रभावशाली बेगम तर्कान खातून [illegible] और [illegible]
को इस बातपर राजी कर लिया कि [illegible] बड़ा
[illegible] (१०९ [illegible] ९४ ई०) थे, [illegible] भी
माँग [illegible] (=[illegible] नमाज [illegible]
पाठ) भी उसके नामसे पढ़ा जाय । [illegible] मुक्तदिर

एक बार मान लिया, किन्तु दूसरी बातको मानना बहुत मुश्किल था इसके लिए ख़लीफ़ाने ग़ज़ालीको तुर्कान ख़ातूनके दरबारमें भेजा, और ग़ज़ालीके व्यक्तित्व और समझाने-बुझानेका यह असर हुआ कि तुर्कान ख़ातूनने अपने आग्रहको छोड़ दिया।

१०९४ ई०में मुक्तदीके बाद मुस्तज़हिर ख़लीफ़ा बना। ग़ज़ालीपर मुस्तज़हिरकी ख़ास कृपा थी। उस वक्त बातनी (=इस्माईली) पंथका ज़ोर फिर बढ़ने लगा था, बग़दाद हीमें नहीं बाहर शामपर भी। ग्यारहवीं सदीमें मिश्रपर फ़ातमी ख़लीफ़ाका शासन था, वह भी बातनी थे। काहिराका गणितज्ञ दार्शनिक अबू अली मुहम्मद (इब्नुल-हसन) इब्नुल हैसम (मृत्यु १०३८ ई०) बातनी था। ईरानमें इस्माईली बातनियोंका नेता हसन बिन-सब्बा (जो कि निज़ामुल्-मुल्कका सहपाठी था)ने एक स्वर्ग (किल-अल्-मौत) क़ायम किया था, और उसका प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। ग़ज़ालीने बातनियोंके प्रभावको कम करनेके लिए एक पुस्तक लिखी, जिसका नाम ख़लीफ़ाके नामपर 'मुस्तज़हरी' रखा।

बग़दादकी परम्परा उसकी स्थापनाके समय (७६२ ई०)से ही ऐसी बन चुकी थी, कि वहाँ स्वतंत्र विचारकी लहरको दबाया नहीं जा सकता था। तीन सदियोंसे वहाँ ईसाई, यहूदी, पारसी, मोतज़ली, बातनी, सुन्नी सभी शान्तिपूर्वक साधारण ही नहीं बौद्धिक जीवन बिताते आ रहे थे, यद्यपि ख़िलाफ़तके इस गए-गुज़रे ज़मानेमें सीना और हमीमकी पुस्तकोंकी होली भले ही कभी जला दी जाये, किन्तु अब उस विचार-स्वातंत्र्यकी लहरको दबाना उतना आसान न था। सनातनी इस्लामके ज़बरदस्त समर्थक अश्अरीके अनुयायी ग़ज़ाली पहिले जोशमें आकर भले ही 'मुस्तज़हरी' लिख डालें अथवा मजालिस ग़ज़ालिया में विरोधियोंपर बड़े-बड़े वाग्-बाण बरसा जायें, किन्तु यह अवस्था देर तक नहीं रह सकती थी। ग़ज़ालीने ख़ुद लिखा है[1]—

[1] "मुनक़िज़ मिनल-ज़लाल"।

[illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] और उनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुआ कि [illegible] [illegible] । जो (धर्मिक) [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible]—[illegible] [illegible] (धार्मिक) [illegible] [illegible] (धर्म) [illegible] [illegible] [illegible] । फिर [illegible] [illegible] किन्तु भिन्न भिन्न धार्मिक विश्वासोंके प्रति [illegible] । इस प्रकार [illegible]—[illegible] ([illegible]) और [illegible] । [illegible] [illegible] प्राप्त करना [illegible] ।

[illegible] ध्यान दिया । [illegible], [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था । [illegible] लिए [illegible] और [illegible] । (मन बोलता) [illegible] आया, कि [illegible] और [illegible] हूँ । (किन्तु) [illegible] किसी तरह [illegible] न था कि [illegible] और [illegible] हूँ । [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] करना छोड़ दिया ।

[illegible] अपना [illegible] पुराने [illegible] [illegible], जो कि बिलकुल श्रद्धापर निर्भर था । यह श्रद्धामय [illegible] [illegible] थी । इसपर बुद्धिवादने प्रहार करना शुरू किया जिसका असर जो हुआ वह बतला चुके हैं । अब गजालीके सामने दो रास्ते थे एक तो बुद्धिका [illegible] [illegible] पहिलेके विश्वासपर कायम रहना दूसरा

रास्ता था, बुद्धि जहाँ न जाय वहाँ जाना। गजालीने बगदादके सुख ऐश्वर्यके जीवनको छोड़कर अपनी शारीरिक कष्ट-सहिष्णुता और त्यागका परिचय दिया, किन्तु बुद्धि अपने रास्तेपर ले जानेके लिए जो मांग कर रही थी, वह इस त्याग और शारीरिक कष्टसे कहीं कठिन थी। उसमें नास्तिक बनकर 'पंडित', मूर्ख सबकी गालियाँ सहनी पड़तीं उसके नाम पर थू-थू होती। मत-वादिकोंपर विश्वास न होनेसे वह यह भी ख्याल कर सकता था कि हमारे लिए दुनियाके सामने उसके मुँहपर कालिख पुत जायगी और निजामियाके प्रधानाध्यापककी मुख-सम्पत्ति ही नहीं छिनेगी बल्कि शरीरको सरबाजार नाक रगड़नेके लिए भी तैयार होना पड़ेगा। यदि बुद्धिके रास्तेपर पूरे दिलसे जानेका संकल्प करते तो गजालीको इन सबके लिए तैयार रहना पड़ता। गजाली न पूर्ण मूढ़ विश्वासको अपना सकते थे और न केवल बुद्धिपर ही चल सकते थे, इसलिए उन्होंने सूफियोंके रास्तेका पकड़ा, जिसमें यदि दिखावेके लिए कुछ त्याग करना पड़ता है तो उसमें कई गुना मानसिक सन्तोष, सम्मान प्रभावका ऐश्वर्य मिलता है। दिक्कत यही थी, कि बुद्धिके प्रखर तेजको रोका कैसे जाय इसके लिए आत्म-सम्मोहन[1] की जरूरत थी जो एक बुद्धिप्रधान व्यक्तिके लिए कड़वी गोली जरूर था किन्तु आ पड़नेपर आदमी आत्महत्या भी कर डालता है।

आखिर चार सालके प्रगाढ़ जीवनको आखिरी सलाम कह ४८८ हिजरी (१०९५ ई०)में ३८ सालकी उम्रमें इसकी कथपर रख गजालीने दमिश्कका रास्ता लिया। दमिश्कमें दो साल रहनेके बाद वह यरूशलम आदि घूमते घामते हजके लिए मक्का मदीना गये। मक्कामें बहुत समय तक रहे। इसी यात्रामें उन्होंने सिकन्दरिया और काहिराको भी देखा। ४९९ हिजरी (११०६ ई०)में जब वह पैगंबर इब्राहीमके जन्मस्थान खलीलमें थे तो उसी वक्त उन्होंने तीन बातोंकी प्रतिज्ञा की थी—

(१) किसी बादशाहके दरबारमें न जाऊँगा।

---

[1] Selfhypnotisation

( ) किसी भी वस्तु सत्ता स्वीकार न करेगा।

( ) किसी भी विद्या (=शास्त्र) में न करेगा।

फ़लसफ़ियों भारी कमज़ोरी (ग़ज़ाली पर जहाँ ईसा पैग़म्बर, मूसा और यूसुफ़ शास्त्री इस्लाम पैग़म्बर, मुहम्मद इब्न रुश्द, यूनानियों से ... लग रहा था उसी वक़्त ग़ज़ालीके मुँह एक [illegible] किताब लिखकर उसकी समाधि बना गई, जिसमें महान भारी ग्रन्थ एक भौंग बरबाद महान ग़ज़ाली (=उपनिषद् भोर) फाड़ डाले।

इसी बीचमें ग़ज़ालीने अपना सबसे पुस्तक प्रकाशित किया।

हज करके बाद घरबार भारत (ग़ज़ालीने) उन्हें फिर लौटाया। और फिर भर एक मौलिक ध्यान मारकर हाथर फिर पवित्र ध्यानस्थ ग़ज़ालीने फिर वही [illegible] चारदीवारी फिर भरा वही एकान्त न। साथ भोर वहीं रहा। बहुत दिन उसुक रहकर बाद [illegible] स्वयंभ महान [illegible] मर दास्तानी भाँति ध्यानक उस घुसते लगा एसा पता नहीं लगता। आख़िर सूफ़ीवादमें इस्लाम भाँति धर्म लगाना था कि जब चाहे किसी बालका बंधन दिया है और इस बाद उस मुक्त कर दे।

ग़ज़ाली अब घर-बारवाले थे। ४९९ हिजरी (११०५ ई०) के ग्यारहवें महीनेमें फिर उन्होंने नसालोरके निज़ामिया विद्यालयमें अध्यापन शुरू किया किन्तु वहाँ ज्यादा दिन तक न रह सके। निज़ामुल-मुल्क

फिहृतक सौ लत् हुश्य कुत्तो फिहृत-नी।
व-लाकिन वे-सहरन्-मुक्लतीन सब्बत-नी॥
अतफ़्श लमा जाफ़ सद्री अनिल् हवा।
य लौ कुन्तो तद्री कफ़ा नीक़ी अतत-नी॥"

—मक़ाउल् उलूमकी टीका।

[1] मनक़्क़ज़ मिनल-ज़लाल"।

था बड़ा बेटा फख्रुल-मुल्क सञ्जर सलजूकीका महामन्त्री बना था। उस वक्त एक बातनियों (इस्माइलिया आगाखाँके पूर्वज हसन बिन सब्बाहके अनुयायियों)का जोर बढ़ रहा था यह बतला चुके हैं। उनके खिलाफ कलम ही नहीं बल्कि दुश्मनकी तलवार भी इस्तेमाल हुई जिसपर बातनियोंने भी अपना जबर्दस्त गुप्त संगठन (=असेसिन) बनाया और ५०० हिजरी (११०७ ई०)में फख्रुल-मुल्क उनकी तलवारका शिकार हुआ। सब्बाहका क़त्ल-उल-मौत ही नहीं नशापार भी असेसिनोंका गुप्त गढ़ बनता जा रहा था इसलिए ग़ज़ालीने उसे छोड़ना ही पसन्द किया।

ग़ज़ाली अब एकान्त जीवन पसन्द करते थे किन्तु उनसे ईर्ष्या रखने वालोंकी भी कमी न थी। उन्होंने ग़ज़ालीकी किताबोंको उलट-पलटकर यह कहना शुरू किया कि ग़ज़ाली जिन्दीक़ों-मुल्हिदों (दो नास्तिक मतों) की शिक्षा देता है। चाहे सुल्तान सञ्जर खुद अप्राकृतिक अपराधका अपराधी हो, किन्तु वह अपना यह कर्तव्य समझता था कि इस्लामकी रक्षाके लिए ग़ज़ाली जैसोंकी खबर ले। सञ्जरने ग़ज़ालीको दरबारमें हाज़िर होनेके लिए हुक्म दिया। ग़ज़ाली मशहद रज़ा (=वर्तमान मशहद शहर) तक गया, और वहाँसे सुल्तानके पास पत्र लिखा—[1]

बिस्त साल दर अय्याम सुल्तान शहीद (=मलिकशाह) रोज़गार गुज़ाश्त। व अज़् ओ ब इस्फहान व बग़दाद इक़बालहा दीद व चंद बार मियाने-सुल्तान व अमीरुल्मोमिनीन रसूल बूद दर-कारहाय-बुज़ुर्ग। व दर-उलूमे-दीन नज़्दीक हफ़्ताद् किताब तस्नीफ़ कर्द। पस् दुनियारा चुनाँकि बवद बदीद व ब-जुम्लगी ब-यन्दाख़्त। व मुद्दते दर-बैतुल् मुक़द्दस व मक्का क़याम कर्द। व बर्-सर मशहदे-इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अहद कर्द कि हर्गिज़ पेश-हच् सुल्तान न रवद् व माले-हच्-सुल्तान न गीरद, व मुनाज़िरा व तअस्सुब न कुनद्। दवाज़्दह साल बदीं वफ़ा कर्द। व

[1] "मकातिबात ग़ज़ाली"।

अमारत मामिनीन व यमा सुल्तानाँ दुअगामरा मअजूर दाश्तन्द । इक्नू गुलीन्म कि अज़ मज्लिमे आली इशारत रफ्ता अस्त बन्हाज़िर आम्दान । फर्मां ब-मश्हद आम्दम् व निगन्दाश्त अहद-व्वलीलरा बनाकरगाह न याम्दम ।

जिसका भाव यह है कि आपके पिता मलिकशाहके शासनमें मन बास सात गुजार अम्फहान (सलजूकी राजधानी) और बगदादमें (शाही) अवजाल रहा । कितना ही बार सुल्तान (सलजूकी) और खलीफा (अमीर मोअमनीन)के बीच बड़-बड़ कामोंमें बिच रत कर काम किया । धमका विद्याओंका सतरके नज्दीक पुस्तक लिखी मुद्दता अस्तिताम और मक्कामें वत्म किया । इब्राहीम अलाहके दोस्तके मज़ार-स्थानपर प्रतिज्ञा की (१) कभी किसी सुल्तानके सामने न जाना (२) किसी सुल्तानके धनको नहीं ग्रहण करना (३) शास्त्रार्थ और हठधर्मी नहीं करनी । बारह साल तक इस (प्रतिज्ञा)को पूरा किया । खलीफा तथा सारे सुल्तानों (ने) इसका करनाल (फकार)को माफ किया । अब सुना है कि सरकारने सामने आनेके लिए हुक्म निकाला है । हुक्म मानकर मशहद तक आया हूं । खलील (स्थान)पर ली हुई प्रतिज्ञाके ख्याल नश्करगाह नहीं आया ।

किन्तु गजालीकी सारी प्रार्थना व्यर्थ गई प्रतिज्ञाको तोड़कर उसे नश्करगाह हो न होकर मजरके दरबारमें जाना पड़ा । गजालीके जनतापर प्रभाव विद्वत्ता तथा पाण्डित्यके कामोंको देखकर सजरने उनका सम्मान किया । सनरके दरबारके दबदबेको कहते ... [illegible] छाया

हा है। ग़ज़ालीने अपनी सफ़ाई देते हुए कहा— मैंने (अपनी) किताब अहयाउल्-उलूममें लिखा है, कि मैं उन (ख़लीफ़ा)को फ़िक़ (= इस्मी इमाम-शास्त्र)में दुनियामें अनूठा (अद्वितीय) मानता हूँ।' —र। ग़ज़ालीने जवानीके जोशमें विरोधी खिलाफ़ चाहे कुछ भी लिखा हो, किन्तु अब वह वैसी तबियत नहीं रखते थे। बस—सारा मामला शान्त हो गया।

बग़दादमें जब ग़ज़ालीने छोड़ा था, तबसे उनकी विद्वत्ताकी कीर्ति बहुत बढ़ गई थी और ख़लीफ़ा तथा बग़दादके दूसरे विद्याप्रेमी हाकिम और अमीर इस बातकी बहुत ज़रूरत महसूस करते थे कि ग़ज़ाली फिर मद्रसा निज़ामियाकी प्रधानाध्यापकी स्वीकार करें। इसके लिए ख़लीफ़ाके सारे दरबारियोंके हस्ताक्षरसे ग़ज़ालीके पास पत्र आया। सजरने महाप्रवीन बनके ज़ोर शाहकी सिफ़ारिश की, किन्तु ग़ज़ाली तैयार न हुए और निम्न कारण बतलाते हुए माफ़ी माँगी—(१) मेरे डेढ़ सौ विद्यार्थियोंका तमस वहाँ जाना मुश्किल है, (२) मैं पहिलेकी भाँति अब अकेलेचला नहीं हूँ, वहाँ जानेपर घरवालोंको कष्ट होगा, (३) मैंने शास्त्रार्थ तथा वाद विवाद न करनेकी प्रतिज्ञा की है, जिससे बग़दादमें बँचा नहीं जा सकता।

ग़ज़ालीकी अन्तिम पुस्तक 'मुस्तसफ़ा' है, जिसे उन्होंने मरनेसे एक साल पहिले ५०४ हिजरी (११११ ई०)में लिखा था। १४ जमादी द्वितीय बृहस्पतिवार ५०५ हिजरी (१९ दिसम्बर ११११ ई०)को तूसमें उनका देहान्त हुआ।

२—कृतियाँ

५०० हिजरी (११०८ ई०)के आसपास जब कि ग़ज़ालीने सजरको अपना प्रसिद्ध पत्र लिखा था, उस वक़्त तक वह सत्तरके क़रीब पुस्तकें लिख चुके थे, यह उनके ही लेखसे मालूम होता है। उसके बादके चार सालोंमें उनका लिखना बन्द नहीं हुआ। एक तरह बीस वर्षकी आयुसे अपने ५४वें ५५वें वर्ष तक (जब कि वह मरे)—लगातार ३४-३५ वर्ष— उनकी लेखनी चलती रही। अल्लामा शिब्ली नअमानीने अपनी पुस्तक

अल्जारीमें उनकी ७८ पुस्तकोंकी सूची दी है जिनमें कुछ तो कई-कई जिल्दोंमें हैं। उनके ग्रंथ मुख्यतः फिका (=धर्म मीमांसा) तर्कशास्त्र दर्शन वाद शास्त्र (=कलाम) सूफीवाद (=अन्त ब्रह्मवाद) और आचार शास्त्रसे संबंध रखते हैं।

ग़ज़ालीकी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं—

१ अह्याउल् उलूम (सूफी आचार)
जवाहरुल-कुरान (सूफी आचार)
मकासिदुल् फिलासफा (=दर्शनाभिप्राय) (दर्शन)
४ मयारुल् इल्म (तर्क)
५ तोहाफतुल् फिलासफा (=दर्शन-खंडन) (वाद)
६ मुस्तस्फी (फिका धर्ममीमांसा)

अह्याउल उलूम (=विद्या-संजीवनी) और तोहाफतुल् फिलासफा (=दर्शन-खंडन) ग़ज़ालीकी दो सर्वश्रेष्ठ किताबें हैं जिनमें अह्याउल् उलूमको दूसरा कुरान समझा जाता है।

(१) अह्याउल् उलूम् (=विद्या संजीवनी)—ग़ज़ालीके अह्याउल उलूमके कुछ प्रशंसापत्र सुन लीजिए—

(क) प्रशंसापत्र—ग़ज़ालीके समकालीन तथा हरमके पास साथ पढ़े अब्दुल-ग़ाफिर फ़ारसीका कहना है—अह्याउल-उलूम जैसी कोई किताब उससे पहिले नहीं लिखी गई।

इमाम नूवी 'मुस्लिम' (हदीस)के टीकाकारका उद्गार है—अह्याउल उलूम कुरानके लगभग है।

शेख अबू-मुहम्मद कारज़रूनीने कहा है—यदि दुनियाकी सारी विद्याएँ (=उलूम) मिटा दी जायँ तो अह्याउल उलूमसे सबको जिन्दा कर दूँगा।

प्रसिद्ध सूफ़ी शेख अब्दुल्ला ऐदरूसको अह्याउल उलूम कंठस्थ सी था।

शेख अली दूसरे सूफ़ीने पचीस बार अह्याउल-उलूमका अखंड पाठ

किया, और हर बार पाठकी समाप्तिपर फकीरों और विद्यार्थियोंको भोज दिया।

कुतुब शाजली बहुत पहुँचे हुए सूफी समझे जाते थे। एक दिन अह्याउल उलूमको हाथमें लिए "जानते हो यह क्या किताब है?" यह कहकर बाज़ारी मारका दाग दिखला कर बोले— "पहिले मैं इस किताबसे इन्कार करता था। आज रातको मुझे इमाम गज़ालीने आ-हजरत (=पैगंबर मुहम्मद)के दरबारमें पेश किया और इस अपराधकी सजामें मुझे कोड़े लगाए गए।'

शेख मुईउद्दीन अकबर जगद्विख्यात सूफी गुज़रे हैं। वह अह्याउल उलूमको काबा (मक्का)के सामने बैठकर पढ़ा करते थे।

यह तो खैर, 'घरवाला'के मुँहसे अतिरंजित प्रशंसा होनेके कारण उतनी कीमत नहीं रखता, किन्तु पिछली सदीके प्रसिद्ध दर्शन इतिहास के लेखक जार्ज हेनरी लिविसका कहना है—

"अगर देकार्त (१५९६-१६५० ई०)के समयमें अह्याउल-उलूमका अनुवाद फ्रेंच भाषामें हो चुका होता, तो लोग यही कहते कि देकार्तने अह्याउल उलूमसे चुराया है।[1]

(ग) आधार ग्रन्थ—अह्याउल उलूम या विद्याओंका संजीवित करनेवाली विद्या संजीवनी वहिए—में यद्यपि दर्शन आचार और सूफी अद्वैतवाद सब मिले हुए हैं, किन्तु मुख्यतः वह आचार शास्त्रका ग्रंथ है। आचारशास्त्रमें गज़ालीके वक्त यूनानी ग्रंथोंके अनुवाद तथा स्वतंत्र ग्रंथ मौजूद थे, जिनमें दार्शनिक मस्कविया (मृ० १०३० ई०)की पुस्तक 'तहज़ीबुल इखलाक' (आचार-सभ्यता)का जिक्र भी हो चुका है। सबसे पहिले अरस्तूने इस विषयपर एक पुस्तक (आचार शास्त्र) लिखी जिसपर पोर्फीरि (फार्फोरियस)ने टीका लिखी थी। हुनैन इब्न इस्हाकने अरस्तूकी

[1] History of Philosophy (G. H. Lewis, 4th edition) p. 50

[illegible] कहते थे कोई-कोई [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) और [illegible] ।

[illegible] —

[illegible] ([illegible])

[illegible] ([illegible])

[illegible] ([illegible]) ([illegible])

४ [illegible] ([illegible])

५ [illegible] ([illegible]) ([illegible])

[illegible] ([illegible])

अह्साउल् उलूम ([illegible]) और [illegible] ([illegible]) [illegible] जिसमें [illegible] ।

(१) अहसाउल् उलूम (=विद्या संख्या)—[illegible] —

(क) प्रशंसापत्र—[illegible] —[illegible] उलूम [illegible] नहीं [illegible] ।

इमाम [illegible] ([illegible]) [illegible] —'अह्साउल् उलूम [illegible] ।

[illegible] —यदि दुनिया [illegible] ([illegible]) [illegible] तो अह्साउल्-उलूम [illegible] ।

प्रसिद्ध [illegible] अह्साउल् उलूम [illegible] था ।

[illegible]

किया और हर बार पाठकी समाप्तिपर फकीरों और विद्यार्थियोंको भोज दिया।

कुतुब शाज़ली बहुत पहुँचे हुए सूफी समझे जाते थे। एक दिन अह्याउल उलूमको हाथमें लिए "जानते हो यह क्या किताब है ?" कह बदनपर कोड़ेकी मारका दाग दिखला कर बोले— "पहिले मैं इस किताबसे इन्कार करता था। आज रातको मुझे इमाम गज़ालीने आ हज़रत (=पैगंबर मुहम्मद)के दरबारमें पेश किया और इस अपराधकी सजामें मुझे कोड़े लगाए गए।"

शेख मुहीउद्दीन अकबर जगद्विख्यात सूफी गुज़रे हैं। वह अह्याउल उलूमको काबा (मक्का)के सामने बैठकर पढ़ा करते थे।

यह तो खैर 'घरवालों के मुँहसे अतिरंजित प्रशंसा होनेके कारण उतनी कीमत नहीं रखेगा किन्तु पिछली सदीके प्रसिद्ध दर्शन इतिहास के लेखक जार्ज हेनरी लेविस्का कहना है'[1]—

"अगर दे-कार्त (१५९६-१६५० ई०)के समयमें अह्याउल-उलूमका अनुवाद फ्रेंच भाषामें हो चुका होता तो लोग यही कहते कि दे-कार्तने अह्याउल-उलूमसे चुराया है।

(ख) आधार ग्रन्थ—अह्याउल्-उलूम् या विद्याओंको सजीवित करनेवाली विद्या सजीवनी बूटि—में यद्यपि दर्शन आचार और सूफी अद्वैतवाद सब मिले हुए हैं किन्तु मुख्यत वह आचार शास्त्रका ग्रंथ है। आचारशास्त्रमें गज़ालीके वक्त यूनानी ग्रंथोंके अनुवाद तथा स्वतंत्र ग्रंथ मौजूद थे, जिनमें दार्शनिक मस्कविया (मृ० १०३० ई०)की पुस्तक तहज़ीबुल इख़लाक (आचार-सभ्यता)का ज़िक्र भी हो चुका है। सबसे पहिले अरस्तूने इस विषयपर दो पुस्तकें (आचार-शास्त्र) लिखीं जिनपर पोर्फिरि (फार्फोरियस)ने टीका लिखी थी। हुनैन इब्न इस्हाकने अरस्तूकी

[1] History of Philosophy (G F Lewis 4th edition), p 50

मन देखा कि राग सारी दुनियापर छा गया है, और चरम (आत्मिक पारलौकिक) सदाचारके रास्ते बंद हो गए हैं। जो विद्वान् मार्ग समझाने वाले थे उनसे दुनिया खाली होती जा रही है। जो रह गए हैं वह नामके विद्वान् हैं, निजी स्वार्थोंमें फँसे हुए हैं और उन्होंने सारी दुनियाको यह विश्वास दिला रखा है कि विद्या सिर्फ तीन चीजोंका नाम है, शास्त्रार्थ, कथा-उपदेश और फतवा (व्यवस्था)। रही आखिरत (=परलोक)की विद्या वह तो समाजसे उठ गई है और लोग उसको भूल भुला चुके हैं।

इसी रोगको दूर करने या भूल भुलाई (मृत) विद्याओंको सजीवन देनेके लिए गजालीने 'विद्यासजीवनी' लिखनेके लिए लेखनी उठाई।

(घ) ग्रन्थकी विशेषता—गजालीने 'विद्यासजीवनी' की कई विशेषतायें विस्तारपूर्वक लिखी हैं, उनके बारेमें संक्षेपमें कहा जा सकता है—(१) ग्रंथकारने विद्वानों और साधारण पाठकों दोनोंकी समझके ख्यालसे बहुत सीधी-सादी भाषा (अरबी)का प्रयोग किया है साथ ही उसके दार्शनिक महत्त्वको कम नहीं होने दिया है। मस्कवियाकी किताब 'अत्-तहारत्'को पढ़नेके लिए पहिले भाषाकी दुरारोह दीवारको फाँदना पड़ेगा तब अर्थपर पहुँचनेके लिए मगज-पच्ची करनी होगी—वह नारियलके भीतर बंद सूखी गरी है किन्तु गजालीकी पुस्तक पतले छिलकेवाला लँगड़ा आम है। (२) इसमें अविवाहित—गृहस्थ और गृहत्यागी (=अविवाहित रहनेवाले ऋषी) आदि—का पूरा ख्याल रखकर उनके योग्य आचार नियमोंकी शिक्षा दी गई है। (३) उठने बैठने खाने पीने जैसे साधारण आचारोंपर भी व्यापक रूपसे लिखा गया है। (४) सब आकांक्षा आदिको सर्वथा त्यागने उपदेशोंसे मनुष्यकी उपयोगी शक्तियोंको कमजोर कर जो निराशावाद अकर्मण्यता फैलाई जाती है, उसके खिलाफ काफी युक्तियुक्त बहस की गई है। यहाँ हम पिछली दो बातोंके कुछ नमूने पेश करते हैं—

१ **(साधारण सदाचार)**—मेजपर खाना खाना, छलनी(से आटा छानना), उश्नान (=साबुनका काम देनेवाला घास) और पेट भर खाना—

उन नार चीजों गारम पुराणकी मुझामान जिनमें यह असर नार
भी मिलते थ कि अब पगनरके ज्ञान पता हम वर स्वस्ताव है। इसपर
गजानान लिखा— अस्मखान (—शास्त्र विद्या वाश्व)पर माना प्रत्या
है रोकि पाता यद स्थ रहा कि मन्दी (— मक्ष)पर मारात टरा या हगाम
स्याकि इस तरहका नाई हम शरीयत (—धार्मिक पुस्तका)में नहा आया
है। मजहर यानम (कायदी) यह था कि घरा जमीनम
जरा ऊचा हा जाता है और गानम आगाना गाता है। अन्नाज
(— घास)रा साथ धाना तो मन्डी बात है क्योंकि इसम सफाई और शुद्धता
(रहता) है। माना बाधक याद हाथ धानका हुक्म (जा शरीयतम है,
वह) सफाईका ध्यानम हा है और अन्नाजम धानमें और ज्यादा सफाई
है। पुरान जमानमें (पगम्बर समय) यदि इसका उपयोग नहीं किया जाता
या ना इसका यह वजह नहीं कि उस जमानम उसका रवाज न था
या वह मिलता न था। या (मिथ्याविश्वासके कारण) वह हाथ भी
नहीं धात थ और दस्तरमें हाथ पाछ लिया करत थ लेकिन इसस यह
निष्कर्ष नहीं निकलता कि हाथ धाना शक नहीं।

मानव नगानम किनी हा बात परिशिष्ट करते हुए लिखा है—
खाना किसी ऊचा चाजपर रखकर खाना चाहिए। चान थारी-थारी
म आन चाहिएँ। जूमशाला (सूप आदि) खाना पहिले आना चाहिए।
यदि अधिक महमान आ चुक है और सिफ एक-दो बाकी हों तो खाना
शुरू कर देना चाहिए। खानेके बाद मेवा या मिठाई आनी चाहिए।
अनुकरणीय उदाहरणक तौरपर पेश करते हुए लिखते है— आज
तागोंके यहा यह तरीका था कि सारे खानोंके नाम पर्चेपर लिखकर
मेहमानोंके सामने पेश किये जाते थ।

२ उद्योगपरायणता और कर्मण्यतापर जोर—बच्चोंकी
प्रारम्भिक शिक्षामें सर शारीरिक व्यायाम मर्दाना खलोको जगह
दिलाना जरूरी समझते है। उन्होंन गानका मनबहलावका बात वह उसक
आदमियोंको यह कहकर साबित किया है कि पगम्बरने खुद हब्शियोंके खलका

ऐसा था। इसके अतिरिक्त मैं कहता हूँ कि खेलकूद या मनोविनोद दिलको ताजगी देता है, उससे दिमागी थकावट दूर हो जाती है। मन का यह स्वभाव है कि जब वह किसी काममें थक जाता है तो अंधा हो जाता है, इसलिए उसको आराम देना उसे कामके लिए तयार करना है कि वह फिर कामके योग्य बन जाये। जो आदमी रात दिन पढ़ा करता है उसको चाहिए कि किसी किसी समय खाली बैठे, क्योंकि काम करनेके बाद खाली बैठना और खेल-कूद करना आदमीको गंभीर काम करनेके लिए फिर तयार कर देता है।

इस तरह ग़ज़ाली शरीरको कर्मण्य रखनेके लिए खाना कसरत खेलकूदकी सिफारिश करते हुए फिर उसके वास्ते मानसिक शक्तियोंके इस्तेमालके लिए इस प्रकार जोर देते हैं—'आपकी शक्तिको नष्ट करना आचारकी शिक्षा नहीं है। आचार शिक्षाका अभिप्राय यह है कि आदमीमें आत्मसम्मान और सच्चा शौर्य पैदा हो यानी न डरपोकपन आये न गुंडापन। क्रोधको बिलकुल नष्ट करना कैसे अभिप्रेत हो सकता है जब कि खुद वंदनीय पैग़म्बर लोग गुस्सेसे खाली न थे। आँ-हज़रत (=पैगंबर मुहम्मद)ने स्वयं फरमाया है—मैं आदमी हूँ और मुझको भी उसी तरह गुस्सा आता है जिस तरह और आदमियोंको। आँ-हज़रतकी यह हालत थी कि जब आपके सामने कोई अनुचित बात की जाती तो आपके गाल लाल हो जाते थे, हाँ यह अन्तर ज़रूर था कि गुस्सेकी हालतमें भी आपके मुखारविन्दसे कोई बेजा बात नहीं निकलती थी।

'सन्तोष परम सुख' पर लाठी प्रहार करते हुए ग़ज़ाली कहते हैं—जानना चाहिए कि ज्ञान एक अवस्था पैदा करता है और उस अवस्थासे काम लिया जाता है। कोई-कोई समझते हैं कि सन्तोषके यह मानी हैं कि जीविका उपार्जनके लिए न हाथ पैर हिलाए जायँ न कोई उपाय सोचा जाय, बल्कि आदमी इस तरह बेकार पड़ा रहे जिस तरह चीथड़ा जमीन पर पड़ा रहता है या मांस पटरेपर रखा रहता है। लेकिन यह मूर्खोंका

विचार ग़ज़ाली ऐसा कहता (~ इस भाग)में प्रयास है। यदि तुम इस बातको स्वीकार करो कि गुण तमाम रागोंके बिना नष्ट हो... तो रागोंका यह नाश... क्या कि यह स्वयं तुम हो चला जाय, तो फिर कल्पितकी सूरत पर क्या कि यह रागोंका नाश— तुम्हारे स्वभावके ... तो तुम सूफ़ी स्वभावके बिलकुल मालिक हो।

यद्यपि ग़ज़ाली साधु-फकीरोंके आश्रममें गया था फिर भी— मठोंमें प्रधानकी पालकीपर असर करना अनावश्यक बतला देता है। हाँ यदि भागा न जाय और मठ-आश्रमपर मलाल किया जाय तो यह ग़ज़ालीकी महिमा लोकों जब (मठ)का धर्मिष्ठ ... ना मठ ... भाँति है और उनमें रहना आवश्यक ... । जो आदमी (इस तरहके) बाजारमें आता-जाता हो यह सलाना नहीं रहा जा सकता ।

इस तरह ग़ज़ालीके सूफ़ी होते हुए भी उसे पथका ... प्रश्न नहीं थे।

(ङ) आचार व्याख्या—अहयाउल्-उलूम (विद्या-संजीवनी)में ग़ज़ालीने आचारकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि मनुष्यके दो चीजोंका नाम है। शरीर और जीव। जिस तरह शरीरकी एक खास सूरत-शकल (बनावट) होती भी है। फिर जिस तरह शरीरकी सूरत अच्छी या बुरी होती है जीवकी भी होती है। जिस तरह बाहरी सूरतके ख्यालसे आदमीको सुन्दर या कुरूप कहते हैं जीवकी (आत्मिक) सूरतके ख्यालसे उसे सदाचारी या दुराचारी कहते हैं। ग़ज़ालीने आचारका संबंध सिर्फ शारीरिक क्रियाओं तक ही सीमित नहीं रखा है बल्कि उसके लिए यह भी शर्त लगाई है कि उसके करनेके लिए आत्मामें क्षमता तथा स्थायी झुकाव हो। ग़ज़ालीने आचारके चार मुख्य स्तंभ माने हैं। ज्ञान, क्रोध, काम-इच्छा और न्यायकी शक्तियोंको संयमपूर्वक साम्य (=बीचकी) अवस्थामें रखना। यदि यह चारों शक्तियाँ साम्य-अवस्थामें हों तो आत्मा पूरा सदाचारी होगा, यदि सिर्फ दो या एक हों तो अपूर्ण।

ग़लत (=जानबूझ) आदमियोंके सदाचारी या दुराचारी होनेके

बारेमें समझना है कि कुछ आदमी स्वभावतः सदाचारी, कुछ स्वभावतः दुराचारी होते हैं, और कुछ ऐसे हैं जो न स्वभावतः सदाचारी होते न दुराचारी, इसी तीसरी श्रेणीके आदमियोंके सुधार होनेकी संभावना है। मस्कवियाने गलनके इसी मतको स्वीकार किया यह हम कह चुके हैं। अरस्तूका मत इससे उलटा है—सदाचारी या दुराचारी होना मनुष्यमें स्वभावतः नहीं है, इसमें कारण शिक्षा और वातावरण है। हाँ शिक्षा और वातावरणका प्रभाव सबपर समान नहीं पड़ता। गज़ालीने अरस्तूके मतको स्वीकार किया है। इसीलिए उन्होंने शिक्षापर उन्होंने खास जोर दिया है जिसके कुछ नमूने लीजिए—

(१) **बच्चोंका निर्माण**—'बच्चेमें जैसे ही विवेचनाशक्ति प्रकट होने लगे उसी वक्तसे उसकी देखभाल रखनी चाहिए। बच्चेको सबसे पहिले खानेकी इच्छा होती है, इसलिए शिक्षाको आरंभ यहींसे करना चाहिए। उसको सिखलाना चाहिए कि खानेसे पहिले बिसमिल्लाह पढ़ लिया करे। दस्तरखानपर जो खाना सामने और समीप हो उसीकी ओर हाथ बढ़ाए, साथ खानेवालोंसे आगे बढ़नेकी कोशिश न करे, खाने या खानेवालोंकी तरफ नजर न जमाए। जल्द-जल्द न खाए। कौरको अच्छी तरह चबाए। हाथ और कपड़ेको खानेसे लथपथ न करे। उसको समझा दिया जाये कि ज्यादा खाना बुरा है। कम खाना, मामूली खानेपर सन्तोष करने, (अपना खाना) दूसरोंको खिला देनेकी बड़ाईको उसके मनमें बिठला देना चाहिए।

"(बच्चोंको) सफेद कपड़ा पहननेका शौक दिलाया जाय, और समझाया जाय कि रंगीन, रेशमी जर्दोजी कपड़े पहनना औरतों और हिजड़ोंका काम है। जो लड़के इस तरहके कपड़ोंको पहिना करते हैं, उनके संगसे बचाया जाय। आरामतलबी और नाज-सुकुमारतासे घृणा दिलाई जाय।

जब बच्चा कोई अच्छा काम करे, तो प्रशंसा करके उसके दिलको बढ़ाया जाय और उसे भेंट इनाम दिया जाय। यदि बुरी बात करते देखा

जाय तो बतावना देना चाहिए जिसम बुरे आमावे उनमें मिल न हो जाय। किन्तु बार-बार जनवाना नहीं चाहिए बार-बार कहना बातोंका असर कम हो जाता है।

(और उसे सिखलाना चाहिए कि) सोना मना नहीं चाहिए। बिछौना कम मजा तथा ज्यादा नरम नहीं होना चाहिए हर रोज कुछ न कुछ परिश्रम करना और कसरत करनी चाहिए जिसमें कि इसमें असमर्थता और सुस्ती न आने पावे। हाथ-पाँव खुले न रखे बहुत जल्द जल्द न चले धन-दौलत कपड़ा खाना कलम-दावात किसी चीजपर अभिमान न प्रकट करे।

सभामें थूकना जम्हाई अँगड़ाई लेना लोगोंकी तरफ पीठ करके बैठना पाँवपर पाँव रखना ठोढ़ीके नीचे हथेली रखकर बैठना—इन बातोंसे मना करना चाहिए।

कसम खानेसे—चाहे वह सच्ची भी हो—रोकना चाहिए। बात खुद न शुरू करना चाहिए कोई पूछे तो जवाब दे। पाठशालामें पढ़कर निकले तो उसे मौका देना चाहिए कि कोई खेल खेले क्योंकि हर वक्त पढ़ने लिखनेमें लगे रहनेसे दिल तंग आ जाता है समझ मन्द हो जाती है तबियत उचाट होती है।

यह शिक्षायें मस्कवियाने अपने तहजीबुल् इखलाकमें यूनानी ग्रन्थोंसे लेकर दी है।

(२) प्रसिद्धिके लिए दान पुण्य गलत—नाम और प्रसिद्धिकी लालचमें अमीर लोग दान धर्म करते हैं उनके बारेमें गजाली कहता है—

इन (धनिया अमीरों बादशाहों)में बहुतसे लोग मस्जिदें मदरसे और मठ (=खानकाह) बनवाते है, और समझते है कि यह बड़े पुण्यका काम है यद्यपि जिस आमदनीसे उन्हें बनवाया जाता है वह बिल्कुल नाजायज तरीकेसे हुई है। यदि आमदनी जायज भी हो तो भी उनका अभिप्राय वस्तुतः पुण्य नहीं बल्कि प्रसिद्धि और नामवरी होता है। उसी शहरमें ऐसे दुर्गतिमें पड़े आदमी हैं जिनकी सहायता करना मस्जिद बनानेसे

ज़्यादा सवाबका काम है, लेकिन उससे अपेक्षा इमारत बनवानेको बेहतर समझते हैं, जिसकी वजह सिर्फ यह होता है कि इमारतसे जो चिरस्थायी प्रसिद्धि मिलती है, वह गरीबोंको देनेसे नहीं हो सकती।

३—तोहाफतुल्-फिलासफा (=दर्शन-खंडन)

(क) लिखनेका प्रयोजन—कितने ही मुसलमान इस पुस्तकके नाम और गज़ालीकी सर्वप्रियताको देखकर यह समझनेकी गलती करते हैं कि गज़ालीने सचमुच दर्शनका विध्वंस (=खंडन) कर दिया। गज़ालीके अपने ही विचार दर्शन छोड़ और है क्या? उन्होंने कभी उद्दुआके सीधे सादे इस्लामकी ओर लौटनेका नारा नहीं लगाया, यद्यपि उनकी कुछ सामाजिक बातों—कबीलाशाही, भाईचारा, समानता—को वह जरूर अनुकरणीय बनाना चाहते थे। शिक्षित संस्कृत-नागरिक श्रेणीमें उस वक्त यूनानी दर्शनका बहुत सम्मान था, खुद इस्लामके भीतर पवित्र-संघ (अखवानुस्सफा) मानती आदि सम्प्रदाय पैदा हो गये थे जो कि अफलातूँ-अरस्तूको सूक्ष्म ज्ञानमें रसूल अरबीसे भी बड़ा समझते थे, इसलिए इस्लामके जबर्दस्त वकील गज़ालीको ऐसी पुस्तक लिखना जरूरी था, जैसा कि उन्होंने स्वयं पुस्तककी भूमिकामें लिखा है—

हमारे ज़मानेमें ऐसे लोग पैदा हो गये हैं, जिनको यह अभिमान है कि उनका दिल-दिमाग साधारण आदमियोंसे श्रेष्ठ है। यह लोग मज़हबी आज्ञाओं और नियमोंको घृणाकी निगाहसे देखते हैं। इनका ख्याल है कि अफलातूँ, अरस्तू आदि पुराने हकीम (=मुनि या आचार्य) मज़हबको झूठा समझते थे। चूँकि ये हकीम ज्ञान विज्ञानके प्रवर्तक और प्रतिष्ठापक थे, और बुद्धि तथा प्रतिभामें उनके जैसा कोई नहीं हुआ, इसलिए उनका धर्मको न मानना इस बातका प्रमाण है कि मज़हब (=धर्म) वस्तुतः झूठ और फजूल है, उसके नियम तथा सिद्धान्त मनगढ़न्त और बनावटी हैं, जो सिर्फ देखनेहीमें सुन्दर और चित्ताकर्षक मालूम होते हैं। इसी वजहसे मैंने निश्चय किया कि (यूनानी) आचार्योंने आध्यात्मिक विषयपर

इसपर हमारे हम-वतन अल्लामा शिब्ली फर्माते हैं —

"इस भूमिकाके बाद इमाम (ग़ज़ाली) साहबने दर्शनके २० सिद्धान्तोंको लिया है, और उनका खंडन किया है। लेकिन अफसोस है कि इमाम साहबकी यह मेहनत बहुत लाभदायक नहीं हुई क्योंकि जिन सिद्धान्तोंको (उन्होंने) इस्लामके खिलाफ समझा है, उनमेंसे १७के बारेमें उन्होंने खुद पुस्तकके अन्तमें व्याख्या की है कि उनकी वजहसे किसीको काफ़िर नहीं बनाया जा सकता।[1]

(ग) बीस दर्शन-सिद्धान्त ग़लत— दर्शन-खंडनमें ग़ज़ाली कितना सफल हुआ, इसपर अल्लामा शिब्लीकी राय आप पढ़ चुके, यहाँ हम यूनानी दर्शनके उन बीस सिद्धान्तोंको देते हैं (इनमेंसे बहुतमें हिन्दू दर्शनमें भी पाये जाते हैं, इसके कहनेकी ज़रूरत नहीं)—

यूनानी दर्शन	ग़ज़ाली
१ जगत् अनादि	ग़लत
२ जगत् अनंत (=नित्य)	ग़लत
३ ईश्वरका जगत्-कर्त्ता होना भ्रम मात्र	ग़लत
४ ईश्वरका अस्तित्व	सिद्ध नहीं कर सकते
५ ईश्वर एक	सिद्ध नहीं कर सकते
६ ईश्वरमें गुण नहीं	ग़लत
७ ईश्वरमें सामान्य और विशेष नहीं	ग़लत
८ ईश्वर लक्षण-रहित (=अलक्ष) सर्व व्यापक मात्र है	सिद्ध नहीं कर सकते
९ ईश्वर शरीर-रहित	सिद्ध नहीं कर सकते
१० दार्शनिक	को नास्तिक होना पड़ता है
११ ईश्वर अपने सिवा औरको जानता है	साबित नहीं कर सकते
१२ ईश्वर अपनेको जानता है	साबित नहीं कर सकते

[1] "अल्-ग़ज़ाली", पृष्ठ १०१

५ जगत ईश्वरकी बनाई मानना गलत
आत्मा (=जीव) और ईश्वर ब्रह्मलोक
 गलत
प्राणीके अंदर जिज्ञासा का कारण गलत
ज्ञानका सार (जगत्) अदृश्य शक्ति मानना गलत
७ अदृष्ट शक्ति द्वारा सही होता। गलत
८ कारण द्रव्य ज्ञान गुण न शरीर—आनिन्द्र। सद्गुण
१० जीव नित्य है गलत। सद्गुण
क्यामत (=प्रलय) और मरणोत्तर जीवन है। होना गलत

५–दार्शनिक विचार

गज़ाली सभी आचार्यों विरोधी थे यह पहले कहा लगभग साफ़ हो गया अब हम यहाँ उनके कुछ सिद्धान्तोंको देते हैं:—

(१) जगत् अनादि नहीं—यूनानी दार्शनिकोंके जगत् नित्यतावाद खण्डनके लिए सबकी बात थी — इस्लामके जबर्दस्त प्रहार (=ठोकर) पर हो सकता हमेशा न था बल्कि अनावश्यकताको भारी दीन्दारोंका जबर्दस्त हथियार था जैसा कि गज़ालीने दार्शनिकोंका नास्तिक होना पड़ता है अपना प्रतिपाद्य विषय के आरम्भ लिखते हुए प्रकट किया है। दार्शनिक कहते थे कि जगत् एक सान्त भाग किन्तु आरम्भ अनन्त—सदा रहनेवाला— गज़ाली यह इन्कार नित्यता और क्योंकि कि जैसे कि उस दिन कार्य (घड़ा) अपने कारण(मिट्टी)से।

गज़ालीका कहना है कि जो आरम्भ रखता माना है उस दशामें भी मानना पड़ेगा। यह कहना कि हम ऐसा इसलिए मानते हैं क्योंकि हम बाहरी इन्द्रियोंका विषय है किन्तु काल आन्तरिक इन्द्रिय (=अन्तःकरण)का विषय बाहरी अन्तर नहीं पड़ता आखिर इन्द्रिय-ग्राह्य (विषय) को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। फिर जैसे इसका पिंड (=विषय) के साथ एक साथ है इसी तरह कालका सदा पिंड (=विषय)

की गतिमें बराबर बना रहता है। बाद और पैश दोनों ही वस्तुओंकी आपसी सबधमात्र हैं—पैश वस्तुओंकी उस स्थितिको प्रकट करता है जो उनके साथ साथ रहनेपर होती है, बाद वस्तुओंकी उस स्थितिको बतलाता है, जो उनके एक साथ न रहनेपर (आगे-पीछे होनेसे) होती है। ये दोनों ही जगतकी वस्तुओं (=पिण्डों इन्द्रिय विषयों) के भीतर और उनके साथ बने हैं, अथवा कहना चाहिए कि दर्शन-काल हमारे मानस प्रतिबिम्ब (मनके भीतर जिन स्थान वस्तुएँ ज्ञात या याद होती हैं) के पारस्परिक सबध हैं जिन्हें कि ईश्वरने बनाया है। इस प्रकार देश और कालमें एककी सान्तताको स्वीकार करना दूसरेकी सान्तताको नहीं करना, गलत है। दोनों ही वस्तुत कृत और सादि हैं। और फिर सादि (देश कालमें अवस्थित) जगत् भी सादि होगा। अतएव ईश्वरके सर्जन (=जगत उत्पादन) में किसी जगत अनादिता आदिकी बात नहीं वह जगत उत्पादनमें सबस्र-स्वतन्त्र है।

(२) **कार्यकारणवाद और ईश्वर**—गजालीके जगतके आदि अनादि होनेके बारेमें क्या ख्याल है यह बतला चुके किन्तु सवाल यहीं खतम नहीं हो जाता। यदि ईश्वरको सवतन्त्र-स्वतन्त्र—बिना कारण (मिट्टी) के कार्य (घडा) बनानेवाला—मानते हैं तब तो कार्य कारणका सवाल ही नहीं उठता, ईश्वर खुद हर वक्त वैसा ही बना रहता है फिर तो इस्लामी अशअरीका कार्य-कारण रहित परमाणुवाद ठीक है। गजालीके सामने यही मुसीबत थी। कार्यकारणवाद माननेपर यूनानी दार्शनिकोंकी भांति जगत्को (प्रवाह या स्वरूपसे) अनादि मानना होगा यदि कार्य-कारण वादको न मानें तो अशअरीके 'परमाणुवाद में फँसना पड़ेगा। तहाफ़तुल्-फ़िलासफ़ा में उनके शब्दोंमें इस बहसको देखें—

(यूनानी) दार्शनिकोंका ख्याल है कि कार्य और कारणका जो सबध दिखाई पडता है वह एक नित्य (=समवाय) सबध है, जिसकी वजहसे यह सभव नहीं कि कारण (मिट्टी) के बिना कार्य (घड़ा) पाया जाये। सारे साइन्स (=प्रयोग सिद्ध ज्ञान) का आधार इसी (कार्य कारण) वादपर है।

लेकिन मैं (गज्जाली) जो इस (बात)के विरुद्ध हूँ उसकी वजह यह है कि ऐसा माननेसे पैगम्बरोंकी करामात (=दिव्य चमत्कार) गलत हो जाती है, क्योंकि यदि यह स्वीकार कर लिया जाय, कि दुनियाकी हर चीजमें नित्य-संबंध पाया जाता है तो ऐसी अवस्थामें अ-प्राकृतिक घटनाएँ (=करामात) असंभव हो जायेंगी और मजहबका आधार अप्राकृतिक घटनाओं (करामात या कारण बिना ईश्वरके सृष्टि करनेके सिद्धान्त) पर है। (इसलिए हम मानते हैं कि) आग और रुईमें सूर्योदय और प्रकाशमें कोई नित्य संबंध नहीं पाया जाता बल्कि ये सारे कार्य-कारण ईश्वरकी इच्छासे (हर क्षण नये) पैदा होते हैं।[1]

दार्शनिक ऐसा क्यों मानते हैं? इसलिए कि जलानेवाली चीज अर्थात् आग इच्छासे कपड़ेको नहीं जलाती, बल्कि वह अपने स्वभावसे मजबूर है कि कपड़ेको जलाये अतएव यह कैसे संभव है कि आग कपड़ेको जलावे किन्तु (किसी सिद्ध पुरुषकी आत्मा भी अपनी इच्छाके जोर) मस्जिदको न जलावे।"[2]

अब सवाल होता है कि आगके स्वभाव और उसकी मजबूरीका ज्ञान कैसे हुआ—

साफ है कि इस प्रश्नका उत्तर सिवाय इसके और कुछ नहीं हो सकता कि आग जब कपड़ेमें लगाई जाती है तो हम सदा देखते हैं कि वह जला देती है लेकिन हम बार-बारके देखनेसे यदि कुछ मालूम होता है तो वह यह है कि आगने कपड़ेको जलाया। (इससे) यह कैसे मालूम हुआ कि आग ही जलानेका कारण है। उदाहरणार्थ ऐसे—सभी जानते हैं कि विवाह क्रियासे मानव-वंशकी वृद्धि होती है, किन्तु यह तो कोई नहीं कहता कि यह क्रिया बच्चेकी उत्पत्तिका (—नित्य संबंध होनेसे अवश्य ही—) कारण है?[3]

---

[1] तोहाफ़ुल फिलासफ़ा पृष्ठ ६४ [2] वही पृष्ठ ६५

[3] वही, पृष्ठ ६६

[4] वही, पृष्ठ ६६

इन सारी बहसमें गज़ाली कार्य-कारणवादके किलेमें शीतारम एक छोटा सा सूराख करना चाहते हैं जिससे सृष्टिकी सादि, ईश्वरकी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र तथा पैगंबरोंकी करामातकी सच्ची साबित कर सकें।

गज़ाली यहाँ अणभंगीय 'परमाणुवाद' के बहुत पास पहुँच गए हैं। किन्तु अब फिर उनको होश आता है, और कहते हैं[1]—

कारणोंके कारण (ईश्वर)ने अपना कौशल दिखलानेके लिए यह ढंग स्वीकार किया है उसने कार्योंको कारणोंसे बाँध दिया है, कार्य अवश्य कारणके बाद अस्तित्वमें आयेगा, यदि कारणकी सारी शर्तें पाई जायें। यह इस तरहके कारण हैं जिनमें कार्योंका अस्तित्व बँधा हुआ है—वह कभी उनसे अलग नहीं होता, और यह भी ईश्वरकी प्रभुता और इच्छा है। जो कुछ आसमान और जमीनमें है, वह आवश्यक क्रम और अनिवार्य नियम (=हक)के अनुसार पैदा हुआ है। जिस तरह वह पैदा हुआ और जिस क्रमसे पैदा हुआ, इसके विरुद्ध और कुछ हो ही नहीं सकता। जो चीज किसी चीजके बाद पैदा हुई वह इसी वजहसे हुई कि उसका पैदा होना इसी शर्तपर निर्भर था। जो कुछ दुनियामें है उससे बहतर या उससे पूर्णतर संभव ही नहीं था। यदि संभव था और तब भी ईश्वरने उसको रख छोड़ा, और उसको पैदा करके अपने अनुग्रहको प्रकट नहीं किया तो यह कृपासे उलटी कृपणता (=कंजूसी) है, उलटा जुल्म है। यदि वैसा संभव होनेपर भी ईश्वर वैसा करनेमें समर्थ नहीं है तो इससे ईश्वरकी बेचारगी साबित होती है, जो कि ईश्वरताके विरुद्ध है।'[2]

(३) **ईश्वरवाद**—गज़ालीका दार्शनिकोंसे जिन बीस बातोंमें मतभेद है उनमें तीन मुख्य हैं, एक "जगतकी अनादिता" जिसके बारेमें कहा जा चुका। दूसरा मतभेद स्वयं ईश्वरके अस्तित्वके संबंधमें है।

---

[1] "मुसब्बबुल-असबाब इज्रा सनतत बे रब्तिल मुसब्बबाते बिल असबाबे इज्हारन लिल हिकमते।"   [2] अह्याउल उलूम"।

आक्षेप आता है। सजा (दण्ड) सिर्फ दो ही मतलबसे दी जा सकती है या तो बदला लेनेके लिए, जो कि ईश्वरके लिए शोभा नहीं देता अथवा सुधारनेके लिए किन्तु वह भी ठीक नहीं क्योंकि मरनेके बाद मनुष्यको फिर कार्यक्षेत्रमें उतरने (जगतमें पुनः जन्म)का मौका कहाँ मिलता है? ईश्वरका ऐसा करना अपने लिए कोई लाभकी इच्छासे हो यदि ऐसा माना तो ईश्वरकी ईश्वरतापर भारी धब्बा होगा। इस शंकाका उत्तर गजालीने अपनी पुस्तक मज़नूनमें अलंकाररूपमें दिया है।—जिसका भाव यह है—स्थूल जगत्में कार्यकारणका जो क्रम देखा जाता है उससे किसीको इन्कार नहीं हो सकता। संखिया घातक है गुलाब खुशबू पैदा करता है। यह चीजें जब इस्तेमाल की जायगी तो अपना असर जरूर प्रकट होंगी। अब यदि कोई आदमी संखिया खाए और मर जाए तो यह आक्षेप नहीं किया जा सकता, कि ईश्वरने क्यों उसको मार डाला या ईश्वरका उसके मार डालनेसे क्या मतलब था। मरना संखिया खानेका एक अनिवार्य परिणाम है। उसने संखिया अपनी खुशीसे खाई और जब खाई तो उसके परिणामका प्रकट होना अवश्यभावी था। यही बात आत्मिक जगतमें भी है। भले बुरे जितने कर्म हैं उनका अच्छा-बुरा प्रभाव जीवपर लगातार होता है। अच्छे कामसे जीवमें दृढ़ता आती है बुरे कामसे गन्दगी। यह परिणाम किसी तरह रुक नहीं सकते। जो आदमी किसी बुरे कामको करता है उसी समय उसके जीवपर एक खास प्रभाव पड़ जाता है इसीका नाम सजा (दण्ड) है। मान लो एक आदमी चोरी करता है, इस कामके करने के साथ ही उसपर भय सवार हो जाता है। वह चाहे पकड़ा जाय या नहीं जाहिर हो या नहीं उसके दिलपर दाग लग चुका और यह दाग मिटाए नहीं मिट सकता। जिस तरह ईश्वरपर यह आक्षेप नहीं हो सकता कि संखिया खानेपर ईश्वरने अमुक आदमीको क्यों मार डाला उसी तरह यह आक्षेप भी नहीं हो सकता कि बुरा काम करनेके लिए, ईश्वरने दंड क्यों दिया? क्योंकि उस बुरे कामका यह अवश्यभावी परिणाम था, इस लिए वह हुए बिना नहीं रह सकता था। गजालीके अपने शब्द हैं—

भगवानके ग्रंथमें विधि-निषेधोंके अनुसार न चलनेपर जो फल (=अजाब) होगा वह साथ या बदला लेना नहीं है। उदाहरणार्थ जो आत्मा कामोंके प्रसंग नहीं करेगा ईश्वर उसे सन्तान नहीं देगा, जो आत्मा खाना-पीना छोड़ देगा ईश्वर उसे भूख-प्यासकी तकलीफ देगा। पापी पुण्यात्मा कयामत (=ईश्वरीय न्यायके दिन) की यातनाओं और मुक्तिके साथ यही संबंध है। पापोंकी क्यों यातना दी जायगी—यह ऐसी तरह कहना है कि प्राणी विषसे क्यों मर जाता है और विष क्यों मृत्युका कारण है?

ईश्वरने अपने धार्मिक विधि-निषेधोंको अहमतम आदमियोंको क्यों डाला, इसके उत्तरमें गजाली कहते हैं—

जिस तरह शारीरिक रोगोंके लिए चिकित्सा-शास्त्र (वैद्यक) है, उसी तरह जीवके लिये भी एक चिकित्सा-शास्त्र है और दर्शनीय पैगंबर लोग उसके वैद्य हैं। कहनेका ढंग है कि बीमार इसलिए अच्छा नहीं हुआ कि वह वैद्य(की आज्ञा)के विरुद्ध गया, इस वजहसे अच्छा हुआ कि वैद्यकी आज्ञाका पालन किया। यद्यपि रोगका बढ़ना इसलिए नहीं हुआ कि रोगी वैद्य(की आज्ञा)के विरुद्ध गया बल्कि (असली) वजह यह था, कि उसने स्वास्थ्यके उन नियमोंका अनुसरण नहीं किया जो कि वैद्यने उसे बताए थे।

(५) जीव (=रूह)—पैगंबर मुहम्मदको भी लोगोंने जीवके बारेमें सवाल करके तंग किया था, जिसपर अल्लाहने अपने पैगंबरको यह जवाब देनेके लिये कहा—"रूह जीव मेरे रबके हुक्मसे है"[2]। जब कुरान और पैगंबर तकको इससे ज्यादा कहनेकी हिम्मत नहीं है, तो गजालीको आगे कहना खतरेसे खाली नहीं होता, इसलिए बेचारेने 'अह्याउल् उलूम'[1] में यह कहकर जान छुड़ानी चाही, कि यह उन रहस्योंमें है, जिनको

---

[1] 'मजनून ब अला-गैरे अह्ले ही'' पृष्ठ १०

[2] 'कुल् अ'र्-रूहो मिन् अम्रे रब्बी''—कुरान

प्रकट करना ठीक नहीं समझा; किन्तु मजनून-सगीर में उन्होंने इस कुर्आनकी ताड़ना ज़रूरी समझा—आखिर स्वयं ज्ञानका ज्ञाता होना पहुँचा-का सन्तोष भले ही दे सकता था, किन्तु फाराबी और सीनाके शागिर्दोंको उससे चुप नहीं किया जा सकता था। इसलिए गज़ाली ज्ञानकी भाषामें कहते हैं— वह (जीव) द्रव्य है, शरीर नहीं। उसका सबंध इन्में है किन्तु इस तरह कि न शरीरसे मिला न अलग न भीतर न बाहर न आधार न आधेय।

द्रव्य है—क्योंकि जीव वस्तुओंको पहिचानता है, पहिचानना या पहिचान एक गुण है। गुण बिना द्रव्यके रह नहीं सकता, अतएव जीवको ज़रूर द्रव्य होना चाहिए, अन्यथा उसमें गुण नहीं रह सकता।

शरीर नहीं है, क्योंकि शरीर होनेपर उसमें लंबाई चौड़ाई होगी फिर उसके अंश हो सकेंगे, अंश होनेपर यह हो सकता है कि एक अंशमें एक बात पाई जाय और दूसरे अंशमें उसकी विरुद्ध बात जैसे लकड़ीके फट्ठेमें आधा रंग सफेद आधा काला। और फिर यह भी संभव है कि जीवके एक भागमें राम (जिसका कि वह जीव है)का ज्ञान हो, और दूसरे भागमें उसी रामकी बेवकूफ़ी। ऐसी अवस्थामें जीव एक ही समयमें एक वस्तुका जानकार भी हो सकता है और गरजानकार भी। और यह असंभव है।

न मिला न अलग न भीतर न बाहर है, क्योंकि यह गुण शरीर (=पिंड)के हैं, जब जीव शरीर ही नहीं है तो वह मिला अलग भीतर बाहर कैसे हो सकता है।

कुरान और आप्त पुरुषोंने जीव क्या है, इसे बतानेसे इन्कार क्या किया, इसका उत्तर गज़ाली देते हैं—दुनियामें साधारण और असाधारण दो तरहके लोग हैं। साधारण लोगोंकी तो बुद्धिमें ही जीव जैसी चीज नहीं आयगी, इसीलिए तो हंबलिया और कर्रामिया सम्प्रदायवाले ईश्वर-को साकार मानते हैं, क्योंकि उनके ख्यालमें जो चीज साकार नहीं उसका अस्तित्व नहीं हो सकता। जो व्यक्ति साधारण लोगोंकी अपेक्षा कुछ

व्यक्तिका शासन निरंकुश नहीं हो नहीं हो सकता।

गजालीका मत है कि खलीफाके मुँहसे निकला हो उसका यह ठीक है शासन निरंकुश वही पुराना शासन यह जरूरी नहीं।

(७) **सूफीवाद**—गजालीका लम्बडा पर सूफीवादका गहरा असर था इसके बारेमें पहिले भी कहा जा चुका है और उसके समकालीन किसी महाविद्वानकी सम्मति चाहते हो तो अबुल्-वलीद रश्दीके शब्द सुनिए—

मैंने गजालीको देखा। निश्चय वह अत्यन्त प्रतिभाशाली, पंडित शास्त्रज्ञ है। बहुत समय तक वह अध्ययन अध्यापनमें लगा रहा किन्तु अन्तमें सब छोड़-छाड़कर सूफियोंमें जा मिला और दार्शनिकोंके विचारों तथा मन्सूर-हल्लाज (सूफी)के रहस्य (वचनों)को मजहबमें मिला दिया। फकीहों (=इस्लामिक मीमांसकों) तथा वाद शास्त्रियों (=मुतकल्लमीन्) को उसने बुरा कहना शुरू किया, और मजहबकी मीमांसे निकलनेवाला भी था। उसने अह्याउल्-उलूम लिखा तो चूँकि पूरी जानकारी नहीं थी इसलिए मुँहके बल गिरा, और सारी किताबमें निर्बल प्रमाणवाला (मौजूअ) पैगंबर-वचनों(=परंपरा)को उद्धृत किया।

तनूगा बचार रश्द पार थ इसलिए वह गजालीकी दुर्बलता, और विचार-गाम्भीर्यको क्यों समझने लगे उन्होंने तो इतना ही देखा कि वह उनके जैसे फकीहों और मुतकल्लमीनों (=मुर्तगा)के हृदय मार्गपर भारी हमला कर रहा है।

सूफीवादपर गजालीकी कितनी आस्था थी इसका पता उनके इन शब्दोंसे मालूम होता है—

जिसने तसव्वुफ (=सूफीवाद)का मजा नहीं चखा है वह पैगंबरी क्या है, इसे नहीं जान सकता पैगंबरीका नाम भले ही जान ले। सूफियोंके तरीकेके अभ्याससे मुझको पैगंबरीकी असलियत और विशेषता प्रत्यक्षकी तरह मालूम हो गई।

"मुनक्कज मिन'ल-जलाल"।

ग़ज़ालीके पहिले ही से इस्लामके भीतर सूफी-मत फैल चुका था यह हम बतला चुके हैं किन्तु ग़ज़ालीने ही उसको एक सुव्यवस्थित शास्त्रका रूप दिया। ग़ज़ालीके पहिले सूफीवादपर दो पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं—

(१) कूवतुल्-कुलूब   अबूतालिब मक्की।

(२) रिसाला कुशैरिया   इमाम कशैरी।

पहिलेके कुछ लोग कर्म-योग (शौच-सन्ताप आदि)पर जोर देते थे, और कितने ही समाधि-योग (=मुकाशफा)पर। ग़ज़ाली पहिले शख्स थे जिन्होंने दोनोंको बडी खूबीके साथ मिलाया, जैसा कि इतिहासका दार्शनिक इब्न-खलदून कहता है[1]—

'ग़ज़ालीने अह्याउल उलूम दोनों तरीकोंको इकट्ठा कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि सूफीवाद (=तसव्वुफ) भी एक बाकायदा शास्त्र बन गया, जो कि पहिले उपासनाका ढंग मात्र था।

सूफियोंका 'अहं ब्रह्मवाद' (अनल्-हक़), शंकरके ब्रह्मवाद जैसा है। सूफी बहस नहीं करना चाहते वह जानते हैं बुद्धिका वह दर्शनसे खंडित नहीं कर सकते इसीलिए रहस्यवादकी शरण लेते हैं।

"ज़ौक़ इं बादा न दानी ब-ख़ुदा ता न चशी।

(ख़ुदाकी कसम! जब तक नहीं पीता तब तक वह इस प्यालेका स्वाद नहीं जान सकता।)

ग़ज़ालीका सूफीवाद क्या था इसे हम पहिले सूफीवादके प्रकरणमें कह आए हैं, इसलिए यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं।

(८) **पैग़म्बरवाद**—दार्शनिकोंका इस्लाम और सभी सामीय धर्मोंपर एक यह भी आक्षेप था कि वह इस तरहकी भोली भाली बातोंपर विश्वास करते हैं—ख़ुदा अपनी ओरसे ख़ास तरहके आदमियों (=पैग़म्बरों) को तथा उनके पास अपनी शिक्षा-पुस्तक भेजता है। ग़ज़ाली पैग़म्बरीको ठीक साबित करते हुए कहते हैं—[2]

---

[1] "मुक़द्दमये-तारीख़"।   [2] "मुनक़्क़ज़ मिनल्-ज़लाल"।

कयामतको ठीक सिद्ध करनेके लिए गजालीको क्या करना पड़ा, यह बात कारणवादके प्रकरणमें बतलाया जा चुका है।

(९) कुरानकी लाक्षणिक व्याख्या—मानजनों और पवित्र संघ (=अखवानुस्सफा)के वर्णनमें बतलाया जा चुका है कि वह कुरानके कितने ही वाक्योंका शब्दार्थ छोड़ लाक्षणिक अर्थ ले अपने मतकी पुष्टि करते थे। इमाम अहमद बिन हम्बल लाक्षणिक अर्थका सबसे जबर्दस्त दुश्मन था। वह समझता था, कि यदि इस तरह लाक्षणिक अर्थ करनेकी आजादी दी जायगी तो अरबी इस्लामको सिर्फ कुरानके लफ्जोंसे हाथ धोना पड़ेगा, लेकिन निम्नांकित पैगंबर-वाक्यों (=हदीसों)में उसे भी मुख्यार्थकी जगह लाक्षणिक अर्थ स्वीकार करना पड़ा—

'(काबाका) कृष्ण-पाषाण (=संग असवद) खुदाका हाथ है।' 'मुसलमानोंका दिल खुदाकी अँगुलियोंमें है।' 'मुझको यमनसे खुदाकी खुशबू आती है।'

सूफियोंका तो लाक्षणिक अर्थके बिना काम ही नहीं चल सकता और गजाली किस तरह बहिश्त दोजख हूरों गिल्मोंका लाक्षणिक अर्थ करते हैं, इसका वर्णन किया जा चुका है।

(१०) धर्ममें अधिकारिभेद—हर एक मजहबके लिए मुल्लाओंकी चोटसे बचनेके लिए बाहरसे शरीअतका पालना भी जरूरी है, साथ ही तसव्वुफ (=सूफीवाद)के प्रति सच्चा ईमान रखनेमें उस [illegible] शरीअतकी पाबन्दियों और विचारोंका भीतरसे विरोध करना पड़ता है। इस भीतर कुछ बाहर कुछ की चालसे लोगोंके मनमें सन्देह हो सकता है, इसलिए अधिकारि-भेदके सिद्धान्तकी रचना की गई। इसका कुछ जिक्र साधारण और असाधारण लोगोंके तौरपर 'कयामतमें पुनर्जीवन' के प्रकरणमें आ चुका है। इस अधिकारिभेदवाले सिद्धान्तकी पुष्टिमें पैगंबरके दामाद तथा चौथे खलीफा (शीआके सबस्व) अलीका वचन उद्धृत किया जाता है[1]—

[1] 'सहीह्-बुखारी'।

[1] 'मह्याउल-उलूम"। [2] 'कस्नास् मुन्तश्शीम'।

[3] 'अदऊ इला'सबील रब्बि-क बि'ल हिक्मते व'ल मोअ्अज़ति'ल हस्नते व जादल् हुम बि'ल्-लती हिया अह्-सनो।

धम (=मजहर) और बुद्धिका झगडा खडा हुआ, और तर्तूशीके शब्दोंमें यह 'मजहबसे निकलनेवाला ही था।' किन्तु उन्होंने अपने भीतर बुद्धि और धर्ममें समन्वय (=समझौता) करनेमें सफलता पाई, उनके सूफीवाद, अधिकारिभेदवाद लाक्षणिकव्याख्यावाद, इसी तरफ किये हुए प्रयत्न हैं। गज़ालीका यह प्रयत्न खतरेसे खाली न था, इसका उदाहरण तो सजरके सामने उसकी तलवीके बयानमें देख चुके हैं। गज़ालीके जीवनहीमें उनकी कीर्ति इस्लामिक जगतमें दूर दूरतक फैल गई थी। किस तरह उनके शिष्य मुहम्मद (इब्न अब्दुल्लाह) तोमरतने स्पेन-मराकोके मुसलमानोंमें "गज़ाली सम्प्रदाय" फैलाने तथा एक नये मोहिदीन राजवंशकी स्थापनामें सफलता पाई, इसे हम आगे बतलानेवाले हैं, किन्तु तोमरतकी सफलताके पहिले गज़ालीके जीवनहीमें ५०० हिजरी (११०७ ई०) में ऐसा मौका आया, जब कि स्पेनमें खलीफा अली (इब्न-यूसुफ) बिन्-ताशफीनके हुक्मसे मरियामें गज़ालीकी पुस्तकों—खासकर 'अह्याउल्-उलूम्'—को बड़े मजमेके सामने जलाया गया।

विरोधको देखते हुए भी गज़ालीने तै कर लिया था, कि बुद्धि और धर्मके झगड़ेमें उनकी क्या स्थिति होनी चाहिए—

"कुछ लोगोंका ख्याल है, कि बौद्धिक विद्याओं तथा धार्मिक विद्याओंमें (अटल) विरोध है, और दोनोंका मेल कराना असंभव है, किन्तु यह विचार कमसमझीके कारण पैदा होता है।"[1]

"जो आदमी बुद्धिको तिलांजलि दे सिर्फ (अंध)अनुगमनकी ओर लोगोंको बुलाता है, वह मूर्ख (=जाहिल) है, और जो आदमी केवल बुद्धि-पर भरोसा करके कुरान और हदीस (=पैगंबर-वचन)की पर्वा नहीं करता वह घमंडी है। खबरदार! तुम इनमें एक पक्षके न बनना। तुमको दोनोंका समन्वय (=जामेअ) होना चाहिए, क्योंकि बौद्धिक विद्याएं आहारकी तरह हैं, और धार्मिक विद्याएं दवाकी तरह।"[2]

[1] "अह्याउल-उलूम"। [2] वही।

धीमान् दिमागोंके प्रति उसके क्या विचार थे, जिन्होंने गजालीको लिखनेके लिए मजबूर किया कि इनके संपर्कसे इस्लामके नादान दोस्त

'कुछ ऐसे लोग हैं जो दिमागवाला धर्म का हैं समझते हैं कि दर्शनके सभी सिद्धान्तोंका धर्मके विरुद्ध खण्डन किया जाय। लेकिन चूँकि दर्शनके बहुतसे सिद्धान्त ऐसे हैं, जो पक्के प्रमाणोंसे सिद्ध हैं, इसलिए जो आदमी उन प्रमाणोंसे परिचित है, वह उन सिद्धान्तोंको पक्का समझता है। इसके साथ जब उसे यह विश्वास दिलाया जाता है, कि ये सिद्धान्त इस्लामके विरुद्ध हैं, तो उन सिद्धान्तोंमें सन्देह होनेकी जगह, उसे स्वयं इस्लाममें सन्देह पैदा हो जाता है। इसी कारण इन नादान दोस्तोंने इस्लामको बहुत नुकसान पहुँचाया है।'

गजालीके ये विचार पहलेके विचारकों मुसलमानों तथा उनकी हर बात ठुकरानेके लिए तैयार मुल्लोंको कितना विरोधी मालूम होते थे, इसे फिरसे कहनेकी जरूरत नहीं। तो भी गजालीका प्रयत्न सफल हुआ, इसे उसके विरोधी इब्न-तैमियाके ये शब्द बतला रहे हैं —

'मुसलमान और धार्मिक (मुल्ला?) तर्क शास्त्र (=मन्तिकियों)के बराबर खण्डन करते थे। इस (तर्क)के प्रयोगका रवाज अबू-हामिद (गजाली)के समयसे हुआ, उसने यूनानी तर्क शास्त्रके शब्दोंको अपनी पुस्तक—मुस्तस्फी—में मिला लिया।'[1]

५—सामाजिक विचार

हो नहीं सकता था, कि गजालीके जैसा उर्वर मस्तिष्क अपने विचारोंको दर्शन और धर्म तक ही सीमित रखता। यहाँ उसके समाज-सम्बन्धी विचारोंपर भी कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

(१) राजतन्त्र संघर्ष—गजालीने इस्लामी साहित्यमें खलीफोंके भीतरकी सादगी, भाईचारा आदिके बहुतसे उदाहरण पढ़े थे, जब वह उनसे

[1] "अर् रद्द अलल्-मन्तिकी"।

करते समकालीन राजाओंके आचरण देखा था। उनके दिलमें इस्लामकी शान भंग की जा रही थी। इसीलिए ग़ज़ालीने अपने समयके राजतंत्रपर कितनी ही चोट की हैं। जैसे—

"हमारे समयमें सुलतानोंकी जितनी आमदनी है, कुल या बहुत अधिक हराम है और क्या हराम न हो? हलाल आमदनी तो सदका (=एच्छिक कर) और लड़ाई-लूट (=गनीमतके माल)का पाँचवाँ हिस्सा (यही दो) है। सो इन चीजोंका इस समयमें कोई अस्तित्व नहीं। सिर्फ जजिया (अनिवार्य कर) रह गया है जिसे इस जालिमाना ढंगसे वसूल किया जाता है कि वह उचित और हलाल नहीं रहता।[1]"

ग़ज़ालीने सुल्तानोंके पास न जानेकी शपथ ली थी, जिसे यद्यपि संजरकी जबर्दस्तीके सामने झुककर एक बार तोड़नेकी नौबत आई, तो भी ग़ज़ाली इन सुल्तानोंके सहवास न रखनेको अपने ही तक सीमित न कर दूसरोंको भी वैसा ही करनेकी शिक्षा देते थे[2]—

"आदमीको सुल्तानके दरबारमें पग-पगपर गुनाह (=पाप) करना पड़ता है। पहिली ही बात यह है, कि शाही मकान बिलकुल जबर्दस्तीके जरिए बने होते हैं, और ऐसी भूमिपर पैर रखना पाप है। दरबारमें पहुँचकर सिर झुकाना, हाथको बोसा (=चुम्बन) देना, और जालिमका सम्मान करना पाप है। दरबारमें जरदोजीके पर्दे, रेशमी लिबास, सोनेके बर्तन आदि जितनी चीजें आती हैं सभी हराम हैं और इनको देखकर चुप रहना पाप है। आखिरमें बादशाहके तन धनकी कुशल-क्षेमके लिए दुआ माँगनी पड़ती है और यह पाप है।'

इसलिए ग़ज़ालीकी सलाह है—

'आदमी इन सुल्तानों(=राजाओं)से इस तरह अलग-अलग रहे कि कभी उनका सामना न होने पाये। यही करना उचित है, क्योंकि इसीमें मंगल है। आदमीको यह विश्वास रखना फर्ज है, कि इन (=सुल्तानों)के

---

[1] "अहयाउल्-उलूम"।   [2] वही।

सम्राटोंके और रूप रहा। आत्माको चाहिए कि न वह उनकी कृपा का इच्छुक हो और न उनकी प्रशंसा करे, न उनसे हाल चाल पूछे और न उनके सम्बन्धियोंसे जान-पहचान रखे।[1]

एक जगह गज़ालीके निन्दित सम्बन्धका भाव इन्हीं शब्दोंमें परिहासके रूपमें ही लिया जाता है—

सुल्तानों (=राजाओं)का विरोध करना यदि इसमें फ़ितना (=खून-खराबा) होनेका डर न हो (बगावत करना) अनुचित है। किन्तु अगर सिर्फ अपनी जान-मालका खतरा हो, तो उचित ही नहीं बल्कि यह बहुत ही प्रशंसनीय है। पुराने बुजुर्ग हमेशा अपना जानको खतरेमें डालकर स्वतंत्रताका परिचय देते थे और सुल्तानों तथा अमीरोंको हर बात टोकते रहते थे। इस कामके लिए यदि कोई आत्मा जानसे मारा जाता था, उसे सौभाग्यशाली माना जाता था, क्योंकि वह शहीदका दर्जा पाता था।"[2]

यही तक नहीं उनके दिलमें यह भी ख्याल काम कर रहा था, कि ऐसे राज्योंको हटाकर एक आदर्श राज्य कायम किया जाये जिसके शासनमें जहाँ एक ओर मुहम्मद खलीफ़ोंके सरदारोंकी सादगी तथा आचरण हो, वहाँ दूसरी ओर उसमें अफ़लातूनी प्रजातन्त्रके नज़ा दार्शनिक अथवा गज़ाली जैसे सूफ़ीके गुण हों। इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेमें गज़ाली स्वयं तो असमर्थ रहे, किन्तु उनकी सलाहसे उनके शिष्य तामरतन उसे कार्यरूपमें परिणत किया यह हम अभी बतलानेवाले हैं।

(२) फ़कीराशाही आदर्श—गज़ाली न व्यवहार-कुशल विचारक थे न उनकी प्रकृतिमें साहस और जोखिम उठानेकी प्रवृत्ति थी। सुल्तानों-अमीरोंके दर्बारसे वह तंग थे, एक ओर सलजूकी सुल्तान या बगदादके खलीफ़ाके यहाँ जानेपर झुककर दोहरे तरीकेसे सलाम फिर हाथपर चुम्बन देना दूसरी ओर अरबोंका पगम्बर मुहम्मदके आनेपर भी सम्मानार्थ

---

[1]"अह्याउल्-उलूम"। [2]"अह्याउल-उलूम्"।

खड़ा न होना, ग़ज़ालीके दिमागको सोचनेपर मजबूर करता था। शायद ग़ज़ाली स्वयं अमीरज़ादा या शाहज़ादा होते तो दूसरी तरहकी व्याख्या कर लिए होते, किंतु उन्हें अपने बचपनके दिन याद थे, जब कि भर्तृहरिके[1] शब्दोंमें—

"भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किंचित् फलं,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत्।"

अनाथ ग़ज़ालीने कितने ही दिन भूखा और कितनी ही जाड़ेकी रातें ठिठुरते हुए बिताई होंगी। दूसरोंके दिए टुकड़ोंको खाते वक्त उन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया होगा, कि उनमें कितना तिरस्कार भरा हुआ है। *यद्यपि ३४ वर्षकी उम्रमें पहुँचनेपर उन्हें वह सभी साधन सुलभ थे, जिनसे* कि वह भी एक अच्छे अमीरकी जिंदगी बिता सकते थे किन्तु यहाँ वह उसी तरह मानसिक समझौता करनेमें सफल नहीं हुए जैसे धर्मवाद और बुद्धिवादके झगड़ेमें। उन्होंने पैग़म्बर और उनके साथियों (सहाबा)के जीवनको पढ़ा था, उनकी सादगी, समानता उन्हें बहुत पसंद आई, और वह उसीको आदर्श मानते थे। उन्हें क्या पता था, प्रकृतिने लाखों सालके विकासके बाद मानवको कबीलेके रूपमें परिणत होनेका अवसर दिया था। अपनी बढ़ती आवश्यकता, संख्या बुद्धि और जीवन-साधनोंने जमा होकर उसे अगली सीढ़ी सामन्तवादपर जानेके लिए मजबूर किया था। कबीलाशाही प्रभुत्वको हटाकर सामन्तशाही प्रभुत्व स्थापित करने-में हजारों वर्षों तक जो नर-संहार होता रहा, म्वाविया और अली अथवा कर्बलाका झगड़ा भी उसीका एक अंश था, किन्तु बहुत छोटा नगण्यसा अंश। इतने संघर्षके बाद आगे बढ़े इतिहासके पहिएको पीछे हटाना प्रकृतिके लिए कितना असंभव काम था, यह ग़ज़ालीकी समझमें नहीं आ सकते थे, इसीलिए वह असंभवके संभव होनेकी (करनेकी नहीं) लालसा रखता था।

---

[1] "वैराग्यशतक"।

उनके प्रमाण जगह-जगह उद्धृत बन्दू ममाजकी निम्न घटनाएं ग्रब्बालि वे राजनीति आदर्शका परिचय देती हैं—

१ 'एक बार अमार म्नाविया (६६१ ८० ई०)ने लागोकी वृत्तियाँ बन्द कर दी थी। इसपर अबू-मुस्लिम खौलानीने भर दरबारमें उठकर कहा—ए म्आविया ! यह आमदनी तेरी या तेरे बापकी कमाई नहीं है'।'

२ 'अबू-मूसाकी रीति थी, कि खुत्बा (=उपदेश)के वक्त खलीफा उमर (६४२ ४४ ई०)का नाम लेकर उनके लिए दुआ करते थे। जब्बाने ठीक खुत्बा देते वक्त ही खड़े होकर कहा—'तुम अबू-बकरका नाम क्यों नहीं लेते, क्या उमर अबू-बकरसे बडा है ?' (उमरने इस बातको सुनकर) जब्बाको मदीना बुलवाया। जब्बाने उमरसे पूछा—तुमको क्या हक था, कि मुझे यहाँ बुलवाते ?' फिर उसने (अबू मूसाकी खुशामद वाली) सब बात ठीक-ठीक बतलाई। उमर रोने लगे, और बोले—'तुम सचपर हो, मुझसे कसूर हुआ, माफ करना'।

३ 'हारून और सफियान सोरीमें बचपनकी दोस्ती थी। जब हारून बगदादमें खलीफा (७८६ ८०९ ई०) बना तो सब लोग उसको बधाई देने आए किन्तु सफियान नहीं आया। हारूनने स्वयं सफियानसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की लेकिन उसने पर्वा न की, अन्तमें हारूनने सफियानको पत्र लिखा—

'मेरे भाई सफियान, तुमको मालूम है कि भगवान्‌ने सभी मुसलमानोंमें भाईका संबंध कायम किया है। अब भी मेरे और तुम्हारे बीच पहिलेके संबंध वैसे ही है, मेरे सारे दोस्त मेरी खिलाफतके लिए बधाई देने मेरे पास आए और मैंने उन्हें बहुमूल्य इनाम दिये। अफसोस है कि, आप अब तक नहीं आए। मैं खुद आता लेकिन यह खलीफाकी शानके खिलाफ है। कुछ भी हो अब अवश्य तशरीफ लाइए।'

सफियानने पत्रको न पढ़कर फेंक दिया और कहा कि मैं इसे हाथ नहीं लगाना चाहता, जिसे कि जालिम (=राजा)ने छुआ है। फिर उसी पत्रकी पीठपर यह जवाब दूसरेसे लिखवाया—

"बंदा निर्बल सफियानकी ओरसे धनपर लट्टू हारूनके नाम। मैंने पहिले ही तुझे सूचित कर दिया था, कि मेरा तुझसे कोई संबंध नहीं। तूने अपने पत्रमें स्वयं स्वीकार किया है, कि तूने मुसलमानोंके कोषागार (=बैतु'ल्-माल)के रुपयेको जरूरतके बिना अनुचित तौरसे खर्च किया। इसपर भी तुझको सन्तोष नहीं हुआ, और चाहता है, कि मैं कयामतमें (=अन्तिम न्यायके दिन) तेरी फ़ज़ूलखर्चीकी गवाही दूँ। हारून[1] तुझको कल खुदाके सामने जवाब देनेके लिए तैयार रहना चाहिए। तू तख्तपर (बैठकर) इजलास करता है, रेशमी लिबास पहिनता है। तेरे दर्वाजे-पर चौकी-पहरा रहता है। तेरे अफसर स्वयं शराब पीते हैं, और दूसरोंको शराब पीनेकी सजा देते हैं, खुद व्यभिचार करते हैं, और व्यभिचारियों पर रोब जारी करते हैं। खुद चोरी करते हैं, और चोरोंका हाथ काटते हैं। पहिले इन अपराधोंके लिए तुझको और तेरे अफ्सरोंको सजा मिलनी चाहिए, फिर औरोंको। अब फिर कभी मुझको पत्र न लिखना।"

"यह पत्र जब हारूनके पास पहुँचा, तो वह (आत्मग्लानिके मारे) चीख उठा, और देर तक रोता रहा।"

ग़ज़ाली एक ओर दार्शनिक उड़ानकी आजादी चाहता था, दूसरी ओर कबीलाशाहीकी सादगी और समानता—कहाँ कबीलाशाही और कहाँ ख्यालकी आजादी!

(३) इस्लामिक पंथोंका समन्वय—इस्लामके भीतरी सम्प्रदायों-के झगड़ोंको दूर करना ग़ज़ालीके अपने उद्देश्यमें था। दर्शनमें उनके जबर्दस्त विरोधी रोश्द का कहना है[1]—

"ग़ज़ालीने अपनी किताबोंमें सम्प्रदायोंमेंसे किसी खास सम्प्रदायको नहीं दूषा है। बल्कि (यह कहना चाहिए कि) वह अश्‌अरियोंके साथ अशअरी, सूफियोंके साथ सूफी और दार्शनिकोंके साथ दार्शनिक है।"

ग़ज़ालीके वक्त इस्लाम सिंध और काशगरसे लेकर मराको और

---

[1] "फ़स्लु'ल-मकाल"।

और हर एक (आदमी) मुसलमान है जो कहता ('अल्लाहके सिवा दूसरा ईश्वर नहीं, मुहम्मद अल्लाहका भेजा हुआ है)'[1] पढ़ता है और मुसलमान होनेके नाते सभी भाई भाई हैं। इन सम्प्रदायोंके जो मतभेद हैं उनका मूल इस्लामसे कोई सम्बन्ध नहीं, वह गौण और बाहरी बातें हैं।

गज़ालीने अपनी इस उदारताको मुसलमानों तकही सीमित नहीं रखा बल्कि उन्होंने लिखा है—

'बल्कि मैं कहता हूँ कि हमारे समयके बहुतसे तुर्क तथा ईसाई रोमन लोग भी भगवान्के कृपापात्र होंगे।'[2]

इस प्रयत्नका फल गज़ालीको अपने जीवनमें ही देखनेको मिला। अश्अरियों और हनफियोंके झगड़े बहुत कुछ बंद हो गए। बगदादकी गलियों और मुहल्लोंमें ५०२ हिजरी (११०६ ई०)में सुलह हो गई, और वह आपसी मार-काट बन्द हो गई जिससे राजधानीके मुहल्लेके मुहल्ले बर्बाद हो गए थे।

६—गज़ालीके उत्तराधिकारी

अपनी पुस्तकोंकी भाँति गज़ालीके शिष्योंकी भी भारी संख्या थी, जिनमें कितनेही इस्लामके धार्मिक इतिहासमें खास स्थान रखते हैं, पाठकोंके लिए अनावश्यक समझकर हम उनके नामोंकी सूची देना नहीं चाहते। गज़ालीकी शिक्षाका महत्त्व इसीसे समझिए कि मुसलमानोंकी भारी संख्या आज भी उन्हींको अपना नेता मानती है। हाँ, उनके एक शिष्य तूमरतके बारेमें हम आगे लिखनेवाले हैं, क्योंकि उसने अपने गुरुके धर्म मिश्रित राजनीतिक स्वप्नको साकार करनेमें कुछ हद तक सफलता पाई।

---

[1] "ला इलाह इल्'ल्लाह मुहम्मदुर् रसूलल्लाह"।

[2] "तफ़क़ा बैनुल-इस्लाम व'ज़ जिन्दका"।

सप्तम अध्याय

स्पेनके इस्लामी दार्शनिक

§ १–स्पेनकी धार्मिक और सामाजिक अवस्था

१–उमैय्या शासक

जिस वक्त इस्लामिक अरबोंने पूर्वमें अपनी विजय-यात्रा शुरू की थी, उसी समय पश्चिमकी ओर—खासकर पड़ोसी मिश्रपर—भी उनकी नजर जानी जरूर थी। मिश्रके बाद पश्चिमकी ओर आगे बढ़ते हुए वह ट्यूनिस और मराको (=मराक्श) तक पहुँच गए। पैगंबरके देहान्त हुए एक सौ वर्ष भी नहीं हुए थे, जब कि ९२ हिजरी (७०६ ई०) में तारिक (इब्न जियाद) लसीन १२ हजार बर्बरी (=मराका निवासी) सेनाके साथ स्पेनपर हमला किया। स्पेनपर उस वक्त एक गॉथिक वंशका राज्य था, जो दो हजार वर्षसे शासन करता आ रहा था—जिसका अर्थ है, वह समयके अनुसार नया होनेकी क्षमता नहीं रखता था। किसानोंकी अवस्था दयनीय थी, जमींदारोंके जुल्मोंका ठिकाना न था। दासता प्रथाके कारण लोगोंकी दशा और असह्य हो रही थी—किसानों और दासोंके बच्चे पैदा होते ही जमींदारों और फौजी अफसरोंमें बाँट दिये जाते थे। जनता इस जुल्मसे त्राहि त्राहि कर रही थी, जब कि तारिककी सेना अफ्रीकाके तटसे चलकर समुद्रके दूसरे तटपर उस पहाड़ीके पास उतरी जिसका नाम पीछे जबुल-तारिक (=तारिककी पहाड़ी) पड़ा, और जो बिगड़कर आज जिब्रालटर बन गया है। राजा रोद्रिकने तारिकका सामना करना चाहा,

किन्तु पहिली ही मुठभेड़में उसकी ऐसी हार हुई, कि निराश हो रोडरिक नदीमें डूब मरा। दूसरे साल अफ्रीकाके मुसलमान गवर्नर मूसा बिन-नसीर ने स्वयं एक बड़ी फौज लेकर स्पेनपर चढ़ाई की, स्पेनमें किसीकी मजाल नहीं थी, कि इस नई ताकतको रोकता। तो भी मुल्कमें थोड़ी बहुत अशान्ति धर्म और जातिके नामपर कुछ दिनों तक और जारी रही। किन्तु तीन चार सालके बाद प्रायः सारा स्पेन मुसलमानोंके हाथमें आ गया—"जायदादें मालिकोंको वापस की गई, मजहबी स्वतन्त्रताकी घोषणा की गई। दूसरी जातियोंको अपने धार्मिक कानूनके अनुसार जातीय मुकदमोंके फैसलेकी इजाजत दी गई।" मूसाका बेटा अब्दुल् अजीज स्पेनका पहिला गवर्नर बनाया गया।

इसके कुछ ही समय बाद बनी उमय्याके शासनपर प्रहार हुआ। उसकी जगह अब्बुल अब्बासने अपनी सल्तनत कायम की, और उमय्या खान्दानके राजकुमारोंको चुन-चुनकर मौतके घाट उतारा। उसी समय (७५० ई०?) एक उमय्या राजकुमार अब्दुर्रहमान दाखिल भागकर स्पेन आया और उसने स्पेनको उमय्यावंशके हाथसे जानेसे रोक दिया। अब्दुर्रहमान दमिश्कके सांस्कृतिक वायुमंडलमें पला था, इसलिए उसके शासनमें स्पेनने शिक्षा और संस्कृतिमें काफी उन्नति की और पश्चिमके इस्लामिक विद्वानोंने पूर्वसे संबंध जोड़ना शुरू किया।

जब तक इस्लाम मराको तक रहा, तब तक अरबोंका संबंध वहाँके बर्बर लोगोंसे था, जो कि स्वयं बद्दुओंसे बहुतर अवस्थामें न थे। किन्तु स्पेनमें पहुँचनेपर वहाँ स्थिति पैदा हुई जो कि बगदाद जाकर हुई थी। दोनों ही जगह उन्हें एक पुरानी संस्कृत जातिके संपर्कमें आनेका मौका मिला। बगदादमें अरबोंने इरानी बीबियोंके साथ इरानी सभ्यतासे विवाह किया और स्पेनमें उन्होंने स्पेनिश स्त्रियोंके साथ रोमन-सभ्यताके साथ। इसका परिणाम भी वही होना था, जो कि पूर्वमें हुआ। अभी उस परिणामपर लिखनेसे पहिले ऐतिहासिक स्थितिको जरा और विशद कर देनेकी जरूरत है।

स्पनपर उमैय्योका राज्य ढाई सौ सालसे ज्यादा रहा। स्पेनिश उमय्योका वभव-सूय ततीय अब्दुरहमान (६१२-६१ ई०)के शासनकालमें मध्याह्नपर पहुँचा था। इसीने पहिल पहिल खलीफाकी पदवी धारण की थी। उसके बाद उसका पुत्र हकम द्वितीय (६६१ ७६ ई०)ने भी पिताके वैभवको कायम रखा। धन और विद्या दोनोमें अब्दुरहमान और हकमका शासनकाल (६१२ ७६ ई०) पश्चिमके लिए उसी तरह वभवशाली था, जिस तरह हारून मामूनका शासनकाल (७८६ ८३३ ई०) पूवके लिए। हा, यह जरूर था कि स्पेनके मुसलमानी समाजमें अपने पूवज या अब्बासिया द्वारा शासित समाजकी अपेक्षा विद्यानुरागके पीछे सारा समय वितानवालोकी अपेक्षा कमाऊ लोग ज्यादा थ। अब्दुरहमान-की प्रजामे ईसाइयोंके अतिरिक्त यहूदियाकी सख्या भी शहरोमें पर्याप्त थी। कसर हदियनने विजन्तीनसे देशनिकाला दकर पाँच लाख यहूदियोको स्पेनमें बसाया था। ईसाई शासनमें उन्हे दबाकर रखनेकी कोशिश की जाती थी, किन्तु इस्लामिक राज्य कायम होनेपर उनके साथ बेहतर बर्ताव होने लगा, और इन्होंने भी देशकी बौद्धिक और सास्कृतिक प्रगतिमें भाग लेना शुरू किया। स्पनके यहूदियाका भी धार्मिक केंद्र बग-दादमें था, जहाँ सर्कार-दर्बारमें भी यहूदी हकीमो और विद्वानोका कितना मान था इसकी जिक्र पहिले हो चुका ह। स्पनमें पहिलसे भी रोमन-कैथलिक जम धार्मिक सकीणताके लिय दु ख्यात सम्प्रदायका जोर था। मुसल्मान आए तो अरब और अर्ध अरब इतनी अधिक सख्यामें आकर वस गए कि स्पेनके शहरो और गाँवोमें अरबी भाषा आम बोल चाल हो गई। ये अरब पूवके साम्प्रदायिक मतभेदोको देखकर नही चाहते थे कि वहा दूसर सम्प्रदाय सर उठायें। उन्होने हवली सम्प्रदायको स्वीकार किया था, जिसमें कुरानका वही अर्थ उन्हें मजूर था, जो कि एक साधारण बद्दू समझता ह। ईसाइया और अरबाकी इस पक्की किलाबदीमें यदि कोई दरार थी तो यही यहूदी थ, जिनका सबध बगदाद जसे 'वायु बह चौबाई" वाल विचार-स्वातत्र्यके केंद्रसे था। य लोग चुपके चुपके दशनकी पुस्तकोंको

पत्न और प्रचार करते थ। इनके अतिरिक्त कितने ही प्रतिभाशाली मुसलमान भी निषिद्ध फल के खानेके लिए पूर्वकी सैर करने लगे। अब्दर्रहमान बिन् इस्माइल ऐसे ही लोगोंमें था, जिसने पूर्वकी यात्रा की और ईरानके सारी विद्वानोंके पास रहकर दर्शनकी शिक्षा ग्रहण की। स्पेन लौटकर पहिले-पहिल पवित्र-संघ (अखवानुस्सफा)-ग्रंथावलीका स्पेनमें प्रचार किया। यह ४५८ हिजरी (१०६५ ई०)मे मरा था।

२—दर्शनका प्रथम प्रवेश

हकम द्वितीय स्पेनका हाकिम था। उस विद्यासे बहुत प्रेम था, और दार्शनिकोंकी वह खास तौरसे बहुत इज्जत करता था। उसे पुस्तकोंके संग्रहका बहुत शौक था। दमिश्क बगदाद, काहिरा, मर्व बुखारा तक उसके आदमी पुस्तकोंकी खोजमें छुटे हुए थे। उसके पुस्तकालयमे चार लाख पुस्तक थी। इस पुस्तकालयका प्रधान पुस्तकाध्यक्ष अल-हक्ता बयान करता है कि पुस्तकालयकी ग्रंथ सूची ८४ जिल्दों—प्रत्येक जिल्द बीस पृष्ठ—में लिखी गई थी। हकमको पुस्तकोंके जमा करनेका ही नहीं पढ़नेका भी बहुत शौक था पुस्तकालयकी शायद ही कोई पुस्तक हो जिसे उसने एक बार न पढ़ा हो, या जिसपर हकमने अपने हाथसे ग्रंथकारका नाम मत्युकाल आदि न लिखा हो उसका दर्शनकी पुस्तकोंका संग्रह बहुत जबर्दस्त था।

हकमके मरने (९७६ ई०)के बाद उसका बारह सालका नाबालिग बेटा हश्शाम द्वितीय गद्दीपर बैठा और काजी मंसूर इब्न अबीआमर उसका वली मुकर्रर हुआ। आमरने हश्शामकी माँको अपने काबूमें करके दो मालाम पुराने अफसरों और दरबारियोंको हटाकर उनकी जगह अपने आदमियोंको भर दिया। और फिर हश्शामको नाम मात्रका बादशाह बनाते हुए उसने अपने नामके सिक्के जारी किए खुत्बे (मस्जिदमें जुमेके उपदेश) अपने नामसे पढ़वाने शुरू किए, देशके लोग और बाहरवाले भी आमरको खलीफा समझने लगे थे। आमरने तलवारसे यह शक्ति

नहीं प्राप्त की, बल्कि यह उसकी चालबाजियोंका पारितोषिक था। इन्हीं चालबाजियोंमें एक यह भी थी कि यह अपनेको मजहबका सबसे जबर्दस्त भक्त जाहिर करता था। "उसने (इसके लिए) आलिमों और फकीहों (=मीमांसकों)का एक जलसा बुलाया। एक छोटेसे भाषणमें उनसे प्रश्न किया कि तुम्हारे ख्यालमें दर्शन और तर्कशास्त्रकी कौन-कौनसी पुस्तकें देशमें फैलकर भोले भाले मुसलमानोंके ईमानको खराब कर रही हैं। स्पेनके मुसलमान अपनी मजहबी हठधर्मीके लिए मशहूर ही थे, और दर्शनसे उन्हें हमेशा टकराना पड़ता था। इन लोगोंने तुरन्त प्रचारके लिए निषिद्ध पुस्तकोंकी एक लंबी सूची तैयार करके इब्न अबी-आमरके सामने रखी। आमरने उन्हें विदा कर दर्शनकी पुस्तकोंको जलानेका हुक्म दिया।"[1]

हकमका बहुमूल्य पुस्तकालय बातकी बातमें जलकर राख हो गया जो पुस्तकें उस वक्त जलनेसे बच गई वह पीछे (१०१३ ई०) बर्बरोंके गृह युद्धमें जल गईं। हकमके शासनमें दार्शनिकोंको बहुत बड़े बड़े दर्जे मिले थे, यह कहनेकी जरूरत नहीं कि आमरने उन्हें पहिले ही दूधकी मक्खीकी तरह निकाल फेंका। खैरियत यही थी कि आमर यहूदियोंका कत्ल आम नहीं कर सकता था, जिससे और जबतक वह स्पेन (युरोप)की भूमिपर थे, तबतक दर्शनका उच्छेद नहीं किया जा सकता था।

३—स्पेनिश् यहूदी और दर्शन

दसवीं सदीमें स्पेनकी राजधानी कार्दोवा (=कर्तबा)की आबादी दस लाखसे ज्यादा थी, और पश्चिममें उसका स्थान वही था, जो कि पूर्वमें बग़दादका। वहाँ स्पेन और मराकोके ही नहीं युरोपके नाना देशोंके गैर मुस्लिम विद्यार्थी भी विद्या पढ़ने आया करते थे—यह कहनेकी जरूरत

[1] "इब्न रोश्द" (मुहम्मद यूनस अन्सारी फिरंगीमहली), पृष्ठ २७से उद्धृत।

जैसे कि अब तककी सभ्य दुनियाके पश्चिमार्द्ध (पश्चिमी एसिया और यूरोप)की सांस्कृतिक भाषा अरबी थी, उसी तरह अब कि प्राय सारे पूर्वार्द्ध (भारत जापान चम्पा आदि)की संस्कृत। अरबी और इब्रानी (यहूदियोंकी भाषा) बहुत नजदीकी भाषाएं हैं, इसलिए यहूदियोंको और भी सुभीता था। दर्शनके क्षेत्रमें यहूदियोंका पहिलेसे भी हाथ था, किन्तु जब हकम द्वितीयने स्पेनके समकालीन प्रसिद्ध दार्शनिक हकीम इब्न-इस्हाकको अपना कृपापात्र बनाया, तबसे उन्होंने दर्शनके मंडलमें और आगे बढ़नेकी जद्दोजहद शुरू की। इब्न-इस्हाकने जब पहिले-पहिल अरस्तूके दर्शनका प्रचार करना शुरू किया, तो यहूदी धर्माचार्योंने फतवा निकालकर मुखालफत करनी चाही, किन्तु वह बेकार गई, और ग्यारहवीं सदी पहुँचते-पहुँचते अरस्तू सारे यहूदियोंका अपना दार्शनिक-सा बन गया।

(१) इब्न-जिब्रोल (१०२१ ७० ई०)—जिब्राल मालागाके एक यहूदी परिवारमें पैदा हुआ था। यह स्पेनका सबसे बड़ा और मशहूर दार्शनिक था। जिब्रोलकी प्रसिद्ध दार्शनिक पुस्तक 'यंबूउ-ल्-हयात' है। इसके दार्शनिक विचार थे—दुनियामें दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ हैं भूत (मूल प्रकृति या हयूला) और आत्मा (=विज्ञान) या "आकार"। लेकिन यह दो वस्तुएं वस्तुतः एक परमसामान्य (परमतत्त्व)के भीतर हैं, जिसे जिब्राल सामान्यभूत (या सामान्यप्रकृति) कहता है। जिब्राल के इस विचारको रोश्द और विकसित किया है।

(२) दूसरे यहूदी दार्शनिक—जिब्रालके बाद दूसरा बड़ा यहूदी दार्शनिक मूसा बिन-मामून हुआ जिसका जन्म ११३५ ई०में कार्दोवामें हुआ था। यह एक प्रतिभाशाली विद्वान् था। तोमरतके उत्तराधिकारी अब्दुल्मोमिनने जब स्पेनपर अधिकार करके दर्शनके उत्पात-क्षेत्र यहूदियोंपर गजब ढाना तथा देश निकाला देना शुरू किया, तो मूसा मिश्र चला गया, जहाँ मिश्रके सुल्तान सलाहुद्दीनने उसे अपना (राज)वैद्य बना लिया और वहीं ६०५ हिजरी (१२१२ ई०)में उसकी मृत्यु हुई।

कोई-कोई विद्वान् मूसाको रोश्दका शिष्य कहते हैं।

मूसाके बाद उसका शिष्य तथा दामाद यूसुफ बिन-यह्या एक अच्छा दार्शनिक हुआ।

स्पेनिश यहूदी दर्शनप्रेमियोंकी मख्या घटनेकी जगह बढ़ती ही गई किन्तु अब रोश्द-सूर्यके उग आनेपर वह टिमटिमाते तारे ही रह सकते थे।

४—मोहिदीन शासक

ग्यारहवीं सदीमें उमय्या शासक इस अवस्थामें पहुँच गए थे कि देश-की शक्तिको कायम रखना उनके लिए मुश्किल हो गया। फलतः सल्तनत-में छोटे-छोटे सामन्त स्वतंत्र होने लगे। वह समय नजदीक था कि पड़ोसी ईसाई शासक स्पेनकी सल्तनतको खतम कर देते इसी वक्त समुद्रके दूसरे (अफ्रीकी) तटके बबरोंने १०१३ ई० में हमला किया और काार्दोवाको जलाया, बर्बाद किया। इसके बाद उन्होंने मराकोमें एक सल्तनत कायम की जिसे ताशफीन (मुल्समीन) कहते हैं। अली (बिन-यूसुफ) ताशफीन (—११४७ ई०) वंशका अन्तिम बादशाह था जबकि एक दूसरे राजवंश—मोहिदीन—ने उसकी जगह ली।

(१) मुहम्मद बिन्-तोमरत (मृ० ११४७ ई०)—मोहिदीन शासन का सस्थापक मुहम्मद (इब्न अब्दुल्लाह) बिन-तोमरत मराकोके बबरी कबीले मसमूदीमें पैदा हुआ था। उसका दावा था कि हमारा वंश अलीकी सन्तानमेंसे है। ग्राम उपलभ्य शिक्षाको समाप्त कर वह पूर्वको आया और वहाँ जिन विद्वानोंसे उसने शिक्षा ग्रहण की उनमें गज़ालीका प्रभाव उसपर सबसे ज्यादा पड़ा। गज़ालीके पास वह कई साल रहा, और इस समय इस्लाम और खासकर स्पेनकी इस्लामी सल्तनतकी दुरवस्थापर गुप्त-चर्चामें अक्सर चर्चा हुआ करती थी। गज़ाली भी एक धर्म राजनीतिक सल्तनतका स्वप्न देख रहे थे और इधर तोमरत भी उसी मजेका मराज़ था। इतिहास-लेखक इब्न-खल्दून इस बारेमें लिखता है—

"जैसाकि लोगोंका ख्याल है वह (तोमरत) गज़ालीसे मिला, और

उसमें अपनी योजनाके बारेमें राय ली। गजालीने उसका समर्थन किया, क्योंकि वह ऐसा समय था जबकि इस्लाम सारी दुनियामें निर्बल हो रहा था और कोई ऐसा सुल्तान न था जो कि सारे पथ (मुसलमानों)को संगठित कर उसे कायम रख सके। किन्तु गजालीने (अपनी सहमति तब प्रकट की जब कि उससे, पूछकर जान लिया कि उसके पास उतना साधन और जमात है, जिसकी सहायतासे अपनी नीति और रक्षाका प्रबन्ध कर सकता है।[1]

गजालीके आशीर्वादसे उत्साहित हो तोमरत देशको लौटते हुए मिस्र पहुँचा। काहिरामें उसके उत्तेजनापूर्ण व्याख्यानोंसे ऐसी अशान्ति फैली कि हुकूमतने उसे शहरसे निकाल दिया। सिकन्दरियामें चन्द दिनों रहनेके बाद वह तूनिस होता मराको पहुँचा। तोमरत पक्का धर्मान्ध था उसके सामने जरासी भी कोई बात शरीअतके विरुद्ध होती दिखाई पड़ती कि वह आपसे बाहर हो जाता। मराकोके बर्बर कबीलोंमें काफी बददूइयत मौजूद थी इसलिए उनके वास्ते यह आदर्श मुल्ला था इसमें सन्देह नहीं। थोड़े ही समयमें गजालीके शागिर्द बगदादसे पढ़कर लौटे इस महान मौलवी की चारों ओर ख्याति फैल गई। वह बादशाह, अमीर मुल्ला सबके पीछे लट्ठ लिए फिरता था और इसके लिए वहाँ बहुत मसाला मौजूद था। मुल्समीन (तारोकीन) खानदानमें एक अजब रवाज था उनकी औरतें खुले मुह फिरती थीं किन्तु मर्द मुँहपर पर्दा डालकर चलते थे। व्यभिचार आम था, भले घरोंकी बहू-बेटियोंकी इज्जत फौजके लोगोंके मारे नहीं बचती थी—शहरोंमें यह सब कुछ खुल्लमखुल्ला चल रहा था। शराब खुले आम बिकती थी। मामला बढ़ते देख मुल्समीन सुल्तान अली बिन-ताशफीनने तोमरत के साथ शास्त्रार्थ करनेके लिए विद्वानोंकी एक सभा बुलाई। शास्त्रार्थ में तोमरतकी जीत हुई बादशाहने उसके विचारोंको स्वीकार किया।[2]

---

[1] इब्न-खल्दून, जिल्द ५, पृष्ठ २२६ [2] स्मरण रहे यही अली बिन ताशफीन था जिसने गजालीकी पुस्तकोंको जलवाया था।

इसपर दर्बारवाले दुश्मन बन गए और तोमरतको भागकर अस्लाम्न नामक बर्बरी कबीलेके पास शरण लेनी पड़ी। यहाँसे उसने अपने मतका प्रचार और अनुयायियोंको सैनिक ढंगपर संगठित करना शुरू (११२१ ई०) किया। इसी समय अब्दुल्मोमिन उसका शागिर्द बना। तोमरत अपने जीवनमें अपने विचारोंके प्रचार तथा लोगोंके संगठन ही लगा रहा उस वक्त कबीलोंके संगठनमें ज्यादा सफलता नहीं हुई, किन्तु उसके मरनेके बाद उसका शागिर्द अब्दुल्-मोमिन उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसने ५४२ हिजरी (११४७ ई०)में मराकोपर अधिकार कर मुल्समीनकी सल्तनतको खतम कर दिया।

(२) अब्दुल् मोमिन (११४७-६३ ई०)—तोमरत अपनको मोहिद् (अद्वैतवादी) कहता था इसलिए उसका संस्थापित शासन मोहिदो (मोहिदीन) का शासन कहा जाने लगा, और अब्दुल् मोमिन मोहिदीनका पहिला सुल्तान था। अब्दुल्मोमिन कुम्हारका लड़का था, और सिर्फ अपनी योग्यता और हिम्मतसे तोमरतके मिशनको सफल करनेमें समर्थ हुआ था। मराकोमें इस तरह उसने अपना राज्य स्थापित कर तोमरतकी शिक्षाके अनुसार हुकूमत चलानी शुरू की। इसकी खबर उस पार स्पेन पहुँची। स्पेनकी सल्तनत टुकड़े-टुकड़ेमें बँटी हुई थी। इन छोटे-छोटे सुल्तानोंकी विलासिता और जुल्मसे लोग तंग थे उन्होंने स्वयं एक प्रतिनिधि मंडल अब्दुल्मोमिनके पास भेजा। अब्दुल्मोमिनने उसका बहुत स्वागत किया, और आश्वासन देकर लौटाया। थोड़े ही समय बाद अब्दुल्मोमिनने स्पेनपर हमला किया और स्पेनको भी मराकोकी सल्तनतमें मिला लिया।

तोमरतने अपनको अशअरी घोषित किया था इसलिए अब्दुल्मोमिनने भी उसे सरकारी पथ घोषित किया लेकिन यह अशअरी पथ गज़ालीकी शिक्षासे प्रभावित था, इसलिए दर्शनका अंधा दुश्मन नहीं बल्कि बुद्धिकी कदर करता था। यद्यपि उसके शासनके आरम्भिक दिनोंमें सख्तीके कारण कितने ही यहूदियों और उनके दार्शनिकोंको देश छोड़कर भागना पड़ा था, किन्तु आगे अवस्था बदली। हकम द्वितीयके बाद यह पहिला

समय था जब कि स्पेनके साथ हुकूमतने सहानुभूति दिखानी शुरू की। अबूबक्र बिन तुफैल और इब्न-रुश्द उस वक्त स्पेनमें दो प्रसिद्ध दार्शनिक थे, अब्दुल्मोमिनने दोनोंको ऊँचे दर्जे दिये। अब्दुल्मोमिन शिक्षाका बड़ा प्रेमी था। अब तक विद्यार्थी मस्जिदोंमें ही पढ़ा करते थे, मोमिनने मद्रसोंके लिए अलग खास तरहकी इमारतें बनवाईं। उसका ख्याल था कि जो बुराइयाँ इस्लाममें आयतोंसे घुस आया करती हैं, उनके दूर करनेका उपाय शिक्षा ही है।

मोमिनके बाद (११६३ ई०) उसका पुत्र मुहम्मद ४८ दिन तक राज कर सका और नालायक समझ गद्दीसे उतार दिया गया, उसके बाद उसका भाई याकूब मंसूर (११६३-८४) गद्दीपर बैठा, इसमें मोमिनके बहुतसे गुण थे किन्तु कितनी ही कमजोरियाँ भी थीं जिन्हें हम रोश्दके वर्णनमें बतलायेंगे।

§ २—स्पेनके दार्शनिक

१—इब्न बाजा[1] (मृ० ११३८ ई०)

(१) जीवनी—अबू-बक्र मुहम्मद (इब्न-यहिया इब्न अल्-सायग) इब्न-बाजाका जन्म स्पेनके सरगोसा नगरमें ग्यारहवीं सदीके अन्तमें उस वक्त हुआ था, जब कि स्पेनकी सल्तनत खतम होकर स्वतन्त्र सामन्तोंमें बँटनेवाली थी। स्पेनके उत्तरमें अर्धसभ्य लड़ाकू ईसाई सर्दारोंकी अमलदारियाँ थीं, जिनसे हर वक्त खतरा बना रहता था। देशकी साधारण जनता उसी दयनीय अवस्थामें पहुँच गई थी जो कि तारिकके आनेके वक्त थी। मुसलमान स्पेनके जितने प्रभाव थे यह तो गज़ालीके प्रभावको देखते हुए हम जान चुके हैं। ऐसी अवस्थामें बाजा जैसे दार्शनिकका पैदा होना अनन्तकी दुनियामें आश्चर्य जैसा [illegible] कोई ताज्जुब नहीं। बाजाकी बातोंको सरगोसाके गवर्नर [illegible] समझा जाने

---

[1] Avempace

दर्शन, तर्कशास्त्र गणित, ज्योतिषका पंडित था। उसने बाजाको अपना मित्र और मंत्री बनाया, जिसका फल यह हुआ कि मुल्ला (=फकीह) और सैनिक उसके खिलाफ हो गए और वह ज्यादा दिन तक गवर्नर नहीं रह सका।

बाजाके जीवनके बारेमें सिर्फ इतना ही मालूम है कि सरगोसाकी पराजयके बाद १११८ ई०में वह शविलीमें रहा, जहाँ उसने अपनी कई पुस्तकें लिखीं। एक बार उसे अपने विचारोंके लिए जेलकी हवा खानी पड़ी, और राश्दके बापने उसे छुड़ाया था। वहाँसे वह फज राजदर्बारमें पहुँचा और वहीं ११३८ ई०में उसका देहान्त हुआ। कहा जाता है कि बाजाके प्रतिद्वंद्वी किसी हकीमने उसे जहर देकर मरवा दिया। अपने छोटेसे जीवनसे बाजा स्वयं ऊबा हुआ था और अन्तिम शान्तिमें पहुँचनेके लिए वह अकसर मृत्युकी कामना करता था। आर्थिक कठिनाइयाँ तो होंगी ही, सबसे ज्यादा अखरनेवाली बात उसके लिए थी, सहृदय विचार वाले मित्रोंका अभाव और दार्शनिक जीवनके रास्तेमें पग-पगपर उपस्थित होनेवाली कठिनाइयाँ। उस वातावरणमें बाजाको अपना दम घुटता सा मालूम होता था, और वह फाराबीकी भाँति एकान्त पसन्द करता था।

(२) कृतियाँ—बाजाने बहुत कम पुस्तकें लिखी हैं और जो लिखी भी हैं, उन्हें सुव्यवस्थित तौरसे लिखनेकी कोशिश नहीं की। उसने छोटी छोटी पुस्तकें अरस्तू तथा दूसरे दार्शनिकोंके ग्रंथोंपर संक्षिप्त व्याख्याके तौर पर लिखी हैं। बाजाकी पुस्तकोंमें 'तद्बीरु'ल-मुतवह्हद' और "हयातु'ल मातजिल' ज्यादा दिलचस्प इस अर्थमें हैं, कि उनमें बाजाने एक राजनीतिक दृष्टिकोण पेश किया है। रोश्दने इस दृष्टिकोणके बारेमें लिखा है—इब्न'स-सायग (बाजा)ने हयातु ल्-मोतजिलमें एक ऐसा राजनीतिक दृष्टिकोण पेश किया है, जिसका संबंध उन मानव-सम्प्रदायोंसे है जो अत्यन्त शान्तिके साथ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।

[1] "अल् इतिसाल"।

गजालीका विचार है कि राज्य (हुकूमत)का दुनियाके आचारपर डाला चाहिए। उसके ख्यालसे एक स्वतंत्र प्रजातंत्रमें वकील और जजों (न्यायाधीशों)की श्रेणीका होना बेकार है। जब आदमी सदाचारपूर्ण जीवन बितानेके लिए अभ्यस्त हो जायेंगे और खान-पान तथा आमोद-प्रमोदमें संयम और मितव्ययिताकी बान डाल लेंगे तो जरूर ही वकीलोंकी जरूरत नहीं रह जायगी। इसी तरह जजोंकी श्रेणी इसलिए बेकार है कि इस समाजमें व्यभिचार तथा आचारिक पतनका पता न होगा, फिर मुकदमा कहाँसे आयगा? और जज लोग फैसला क्या करेंगे?

(३) **दार्शनिक विचार**—गजालीसे एक सदी पहिले सिना हो चुका था। गजाली गजालीसे सत्ताईस साल पहिले मर चुके थे। पूर्वके दूसरे दार्शनिकों खासकर फाराबीका उसपर बहुत ज्यादा असर था। गजालीके रायमें दिव्य प्रकाश द्वारा सत्य-साक्षात्कारके पूर्ण लाभ माननेसे खुशी होनेवाले बातमें आनन्दित हो गजाली वास्तविक तत्त्व तक नहीं पहुँच सका। दार्शनिकको उस आनन्दको भी छोड़ना होगा, क्योंकि धार्मिक रहस्यवाद द्वारा जो प्रतिबिम्ब मानस-तलपर प्रकट होते हैं वह सत्यको खोलते नहीं ढाँकते हैं। किसी भी तरहकी आकांक्षासे रहित शुद्ध चिन्तन ही महान् सत्यके दर्शनका अधिकारी बनाता है।

(४) **प्रकृति-जीव-ईश्वर**—गजालीके अनुसार जगतमें दो प्रकारके तत्त्व हैं—(१) एक वह जो कि गतियुक्त होता है, (२) दूसरा जो कि गति रहित है। जो गतियुक्त है, वह पिंड (=जड) और परिच्छिन्न (=सीमित) होता है। परिच्छिन्न शरीर होनेके कारण वह स्वयं अपने भीतर सदा होती रहती गतिका कारण नहीं हो सकता। उसको अनन्त गतिके लिए एक ऐसा कारण चाहिए, जो कि अनन्त शक्ति या नियन्ता हो, यही ब्रह्म (=नफ्स) है। पिंड (=शरीर) या प्राकृतिक (जड) तत्त्व परतः गतियुक्त होता है, ब्रह्म (=नफ्स) स्वयं अचल रहते, पिंड (जड तत्त्व)को गति प्रदान करता है, (३) जीव तत्त्व इन दोनों (जड ब्रह्म) तत्त्वोंके बीचकी स्थिति रखता है—उसकी गति स्वतः है। पिंड और

जीवका संबंध एक दूसरेसे कैसे होता है, इस प्रश्नको बाजा महत्त्व नहीं देता उसके लिए सबसे बड़ी समस्या है—'मानवके अन्दर जीव और ब्रह्म आपसमें कैसा संबंध रखते हैं ?

(a) "आकृति"—अफलातूनकी भाँति बाजा मान लेता है कि जड़ (भूत) तत्त्व बिना 'आकृति के नहीं रह सकता किन्तु 'आकृति बिना जड़ तत्त्वके भी रह सकती है, क्योंकि ऐसा न माननेपर विश्वके परिवर्तनकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती—यह परिवर्तन वास्तविक आकृतियोंके आने और जानेसे ही संभव है। बाजाकी इस बातको समझनेके लिए एक उदाहरण लीजिए—घड़ा आकृति (मुटाई, गोलाई आदि) और भूत तत्त्व (मिट्टी) दोनोंके मिलनेसे बना है। जब मिट्टीसे आकृति नहीं जुड़ी थी, तब वहाँ घड़ा नहीं था। चिरकालसे मिट्टी पड़ी थी किन्तु घड़ा वहाँ नदारद था क्योंकि आकृति उसमें आकर नहीं मिली थी। अब आकृति आकर मिट्टीसे मिलती है मिट्टी घड़का रूप धारण करती है। जब यह आकृति मिट्टीको छोड़कर चली जाती है तो घड़ा नष्ट हो जाता है। पिथागोर, अफलातू अरस्तू सभी इस 'आकृति' पदार्थपर सबसे ज्यादा जोर देते हैं, और कहते हैं कि वह पिंडसे बिलकुल स्वतंत्र पदार्थ है और वही जगतके परिवर्तनका कारण है।

(b) मानवका आत्मिक विकास—इन आकृतियोंके कई दर्जे हैं सबसे निचले दर्जेमें हयला (सक्रिय प्रकृति) में पाई जानेवाली आकृतियाँ हैं, और सबसे ऊपर शुद्ध आत्मिक (ब्रह्म) आकृति। मानवका काम है सभी आत्मिक आकृतियोंका एक दूसरेके साथ साक्षात्कार (बोध) करना—पहिले सभी पिंडमय पदार्थोंकी सभी बुद्धिगम्य आकृतियोंका बोध फिर बाह्यान्त करणों द्वारा उपस्थापित सामग्रीसे जीवका जो स्वरूप प्रतीत होता है, उसका बोध, फिर खुद मानव विज्ञान[1] और उसके ऊपरके कर्त्ता विज्ञान

---

[1] यूनानी दर्शनका अनुसरण करते इस्लामिक दार्शनिक जीव (=रूह) से विज्ञान (=नफ्स) को अलग मानते हैं।

आकाशका नाश और अन्तमें ब्रह्माण्डके शुद्ध विज्ञानका बोध। इस तरह आत्म-निर्वाणकी भावनाका विकास-क्रम हुआ—

(१) प्राकृतिक आकृति
(२) जीव आकृति
(३) आकाश विज्ञान आकृति
(४) क्रिया विज्ञान आकृति
(५) ब्रह्माण्ड-विज्ञान (ब्रह्म) [1] आकृति

वैयक्तिक तथा इन्द्रिय जन्य भौतिक तत्त्व—जो कि विज्ञान (=नफ्स) की क्रियाका अधिकरण है—से क्रमशः ऊपर उठते हुए मानव अमानुष दिव्य तत्त्व (ब्रह्म) तक पहुँचता है (मुक्ति प्राप्त करता) है।

(ग) ज्ञान बुद्धि-गम्य—गज़ालीने ज्ञान पर योगिक प्रत्यक्ष (=मुकाशफ़ा)को मुक्तिका साधन बतलाया, रुश्द "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" (ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं) के शब्दार्थका अनुयायी है, इसीलिए दिव्यतत्त्व तक पहुँचने (=मुक्ति)के लिए (रहस्यमय) सूफीवादको नहीं, दर्शनको पथप्रदर्शक मानता है। ज्ञान सामान्यका ज्ञान है। सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है विशेष या व्यक्तिके ज्ञानसे चिन्तन—कल्पना—के द्वारा किन्तु इसमें ऊपरके बोधदायक विज्ञानकी सहायताकी भी जरूरत है। इस सामान्य या अनन्त—जिसमें कि सत्ता ("है") तथा प्रत्यक्ष विषय ("होना") एक है—के ज्ञानसे तुलना करनेपर बाह्य वस्तुओंकी सभी मानस प्रतीतियाँ और चिन्तन भ्रमात्मक है। वास्तविक ज्ञान सामान्य ज्ञान है जो सिर्फ बुद्धि गम्य है। इससे पता लगा कि इन्द्रिय गम्य ज्ञानसे सना लिप्त मजहबी और योगिक स्वप्न (ध्यान) दर्शनसे मानव विज्ञान पूर्णता (मुक्ति)को नहीं प्राप्त हो सकता। उसे पूर्णता तक पहुँचनेका रास्ता एक ही है और वह है बुद्धिगम्य ज्ञान। चिन्तन सर्वश्रेष्ठ आनन्द है और उसीके लिए जो कुछ बुद्धिगम्य है, उसे जानना होता है। बुद्धिगम्य ज्ञान केवल सामान्यका ज्ञान

---

[1] आलम-अफ़लाक=आसमानोंकी दुनिया फरिश्ते।

६, और वही सामान्य वस्तुसत् है इन्द्रिय-गम्य व्यक्ति वस्तु सत् नहीं है इसलिए इस जीवनके बाद व्यक्तिके नाशपर मानव विज्ञानका रहना संभव नहीं। मानव विज्ञान तो नहीं किंतु हो सकता है मानव-जीव (जो कि व्यक्तिका ज्ञान करता है, और उसके अस्तित्वको अपनी इच्छा और प्रियास प्रकट करता है) मृत्युके बाद ऐसे वैयक्तिक अस्तित्वको जारी रखने तथा कर्मफल पानेकी क्षमता रखता हो। लेकिन विज्ञान (=नफ्स) या जीवका बौद्धिक (इन्द्रियक नहीं) अंश सबमें एक है। यह सारी मानवताका विज्ञान —अर्थात् वह एक बुद्धि मानवताके भीतरका मन या विज्ञान ही एक मात्र नित्य सनातन तत्त्व है, और वह विज्ञान भी अपने ऊपरके कर्ता विज्ञानके साथ एक होकर।

बाजाके सिद्धान्तको हम फाराबीमें भी अस्पष्टरूपमें पाते हैं और बाजाके योग्य शिष्य रोश्दने तो इसे इतना साफ किया कि मध्यकालीन युरोपकी दार्शनिक विचारधारा में इसे रोश्दका सिद्धान्त कहा जाता था।

(ग) मुक्ति—विज्ञान (=नफ्स)के उस चरम विकास—सामान्य विज्ञानके समागम—को बहुत कम मनुष्य प्राप्त होते हैं। अधिकांश मानव अँधेरेमें ही टटोलते रहते हैं। यह ठीक है कितनेही आदमी ज्योति और वस्तुओंकी रंगीन दुनियाको देखते हैं किंतु उनकी संख्या बहुत ही कम है, जो कि देखे हुए सारका बोध करते हैं। वही जिन्हें कि सारका बोध होता है, अनन्त जीवनका पाते तथा स्वयज्योति बन जाते हैं।

ज्योति बनना या मुक्त होना कैसे होता है इसके लिए बाजाका मत है—बुद्धि-पूर्वक क्रिया और अपनी बौद्धिक शक्तिका स्वतंत्र विकास ही उसका उपाय है। बुद्धि क्रिया स्वतंत्र (=बिना मजबूरीकी) क्रिया है वह ऐसी क्रिया है जिसके पीछे उद्देश्यप्राप्ति या प्रयोजनका ख्याल काम कर रहा है। उदाहरणार्थ, यदि कोई आदमी ठोकर लगनेके कारण उस पत्थरको तोड़ने लगता है तो वह छोटे बच्चे या पशुकी भाँति उद्देश्य रहित काम कर रहा है, यदि वह इसी कामको इस ख्यालसे कर रहा है कि दूसरे उससे ठोकर न खायें तो उसके कामको मानवोचित तथा बुद्धि-

पूर्वक नहीं जायगा।

(घ) "एकान्तता उपाय"—बाजाका एक पुस्तकका नाम "तद्‌बीर-उल-मुतवहहद" या एकान्तताका उपाय है। आत्माकी चरम उन्नतिके लिए वह एकान्तता या एकान्तचिन्तनके जीवनपर सबसे ज्यादा जोर देता है। फाराबीने इस विचारको अपनी मातृभूमि (मध्य एसिया)के बौद्ध विचारोंके ध्वंसावशेषसे लिया था और बाजाने इसे फाराबीसे लिया—और इस सार लतन्तेमें बौद्ध दुःख(निराशा) वाद चला आये तो आश्चर्य ही क्या? एकान्तताके जीवनके पीछे समाजपर व्यक्तिकी प्रधानताकी छाप स्पष्ट है और इसीलिए बाजा एक ऐसे अ-सामाजिक समाजकी कल्पना करता है जिसमें वैद्य और जज (न्यायाधीश)की जरूरत नहीं, जिसमें एक दूसरेकी स्वच्छन्दतापर प्रहार किए बिना मानव कमसे कम पारस्परिक संपर्क रखते आत्माराम हो विहरें।—वह पौधोंकी भाँति खुली हवामें उगते हैं उन्हें मालीके चतुर हाथोंकी आवश्यकता नहीं वह (अज्ञानी) लोगोंके निकृष्ट भोगों और भावुकताओंसे दूर रहते हैं। वह हमारा समाजके चाल-व्यवहारसे कोई सरोकार नहीं रखते। और चूंकि वह एक दूसरेके मित्र हैं इसलिए उनका जीवन पूर्णतया प्रेमपर आश्रित है। फिर सत्यस्वरूप ईश्वरके मित्रके तौरपर वह अमानुष (दिव्य) ज्ञान विज्ञानकी एकतामें विश्राम पाते हैं।

२—इब्न तुफैल[1] (मृत्यु ११८५ ई०)

अब्दुल्मामिन (११४७-६३)के शासनका जिक्र हम कर चुके हैं। उसके पुत्र यूसुफ (११६३-८४ ई०) और याकूब (११८४-९८ ई०)का शासन काल मोहिदीन वंशके चरम उत्कर्षका समय है। इन्हींके समय स्पेनमें फिर दर्शनका मान बढ़ा। इस वक्त दर्शनके मान बढ़नेका मतलब

---

[1] The Philosophy in Islam" (by Dr. T. J. De Boer) pp. 180-81 [2] Abubacer

था समाजमें शारीरिक श्रमसे मुक्त मनुष्योंकी अधिकता, और जिसका मतलब था गुलामी और गरीबोंके मीषडाका कमकर जनतापर भारी भार और उसके बर्दाश्त करनेके लिए मजहब और परलोकवादके अफीमकी कडी पुडियाका उत्साहके साथ वितरण। यही समय भारतमें जयचन्द और 'खण्डनखण्डखाद्य' (शून्यवादी वेदान्त)के कर्त्ता श्रीहर्ष कविका है।

(१) जीवनी—अबू-बक्र मुहम्मद (इब्न-अब्दुल्मलिक) इब्न-तुफल (अल्-कैसी)का जन्म गर्नाताके गादिस[1] स्थानमें हुआ। उसका जन्म-संवत अज्ञात है। उसने अपनी जन्मभूमि हीमें दर्शन और वैद्यकका अध्ययन किया। बाजा (मृत्यु ११३८ ई०) शायद उस वक्त तक मर गया था, किन्तु इसमें शक नहीं बाजाका पुस्तकमान उसके लिए गुरुका काम किया था। शिक्षा-समाप्तिके बाद तुफल गर्नाताके अमीरका लेखक हो गया। किन्तु तुफलकी योग्यता देर तक गर्नाताकी सीमाके भीतर छिपी नहीं रह सकती थी और कुछ समय ही बाद (११६३ ई०) सुल्तान यूसुफने उसे मराको बुलाकर अपना वजीर और राजवैद्य नियुक्त किया। तुफल सर्कारी काम से जो समय बँचा पाता, उसे पुस्तकावलोकनमें लगाता था। उसका अध्ययन बहुत विस्तृत जरूर था, किन्तु वह उन विद्वानोंमें था, जिनको अध्ययनके फलको अपने ही तक सीमित रखनेमें आनंद आता है इसीलिए लिखनेमें उसका उत्साह नहीं था।

यूसुफके बाद याकूब (११८४-९८ ई०) सुल्तान बना, उसने भी तुफलका सम्मान बापकी तरह ही किया। इसीके शासनमें ११८५ ई०में तुफलकी मराकोमें मृत्यु हुई।

(२) कृतियाँ—तुफलकी कृतियोंमें कुछ कवितायें तथा 'हई इब्न-यकजान' (प्रबुद्ध-पुत्र जीवक)की कथा है। 'हईकी कथा' डेढ़ सौ साल पहिलेकी बू-अली सीना (९८०-१०३७ ई०) रचित 'हई इब्न-यकजान'-

[1] Gaudix [2] Granada

का दरजा उससे ऊपर है, किन्तु विचार उसके मार्गमें बाधक हैं।

(३) दार्शनिक विचार—(क) बुद्धि और आत्मानुभूति—बुद्धि तथा [illegible] भी बराबर महत्त्व है यद्यपि [illegible] भाँति उसकी और [illegible] लगी है—

आत्मानुभूति ('बाति प्रत्यक्ष') में जो कुछ दिखाई देता है, उसे शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता, यद्यपि यह (आत्मानुभूति द्वारा ज्ञात तत्त्व) सारपूर्ण ढंग बतलाया [illegible] परिणाममें [illegible] दुनियाके [illegible] पदार्थों [illegible] लगते हैं, [illegible] (स्वरूप) [illegible] विचारके [illegible] ऊपर [illegible] रखूँ। यहाँ [illegible] है कि [illegible] ही (विद्वान्) [illegible] अपने भावोंको प्रकट करनेमें असमर्थ रहे, और बहुतेरे इस राहमें ठोकरें खाते।[1]

(ख) हुईकी कथा—दो द्वीप हैं, जिनमेंसे एकमें हमारे जैसा मानव समाज अपनी सारी [illegible] साथ है, और दूसरेमें एक अकेला आदमी प्रकृतिकी गोदमें आत्मविकास कर रहा है। [illegible] द्वीपमें मनुष्यकी [illegible] प्रवृत्तियोंका राज है, जिसपर यदि कोई अंकुश है तो सिर्फ [illegible] अथवा [illegible] नियंत्रण। किन्तु इसी द्वीपमें ऐसी परिस्थितियोंमें पलने वाला आत्मा—सत्यासत्य और असत्य बुद्धिपूर्वक (बौद्धिक) [illegible] तथा अपनी इच्छानुसार विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। [illegible] व्यवहारकुशल मनुष्य है, वह सार्वजनिक धर्मके अनुसार बने हुए लोगोंपर शासन करता है। [illegible] तथा [illegible] आदमी है, यह [illegible] दूसरे द्वीपमें पहुँच जाता है। पहिले वह उसे एक निर्जन द्वीप समझता है, और वहाँ स्वाध्याय तथा योगाभ्यासमें लग जाता है।

लेकिन इस द्वीपमें हई बिन-यकजान—(प्रबुद्ध)का पुत्र हई (जीवित)—एक पूर्ण दार्शनिक विद्यमान है। हई इस द्वीपमें बचपनमें ही फेंक दिया

---

[1] Intuition. रिसाला 'हई बिन-यकजान", पृष्ठ १३६

गया था अथवा अयोनिज प्राणीकी तरह वहाँ उत्पन्न हुआ था। बचपनमें हरिनियोंने उसे दूध पिलाया, सयाना होनेपर उसे सिर्फ अपनी बुद्धिका सहारा रह गया था। उसने अपनी बुद्धिका पूरा इस्तेमाल किया और उसके द्वारा उसने शारीरिक आवश्यकताओंकी ही पूर्ति नहीं की, बल्कि निरीक्षण और मनन द्वारा उसने प्रकृति, आसमानों (=फरिश्ते) ईश्वर और स्वयं अपनी आन्तरिक सत्ताका ज्ञान प्राप्त करते हुए ७×७ (४९) वर्ष तक उस उच्चतम अवस्थाको प्राप्त हो गया है जिसे ईश्वरका सूफीवाला साक्षात्कार या समाधि अवस्था कहते हैं। जब असल वहाँ पहुँचा तो हई इसी अवस्थामें था। हईको भाषा नहीं मालूम था इसलिए पहिलेपहिले दानोंका एक दूसरेके विचारोंके जाननेमें दिक्कत हुई, किन्तु जब वह दिक्कत दूर हो गई तो उन्होंने एक-दूसरेको अपने तजर्बे बतलाये, जिससे पता लगा कि हईका दर्शन और असलका धर्म एक ही सत्यके दो रूप हैं फर्क दोनोंमें इतना ही है कि पहिला दूसरेकी अपेक्षा कम ढँका है।

जब हई (जीवक)को मालूम हुआ कि सामनेके द्वीपमें ऐसे लोग बसते हैं, जो अंधकार और अज्ञानमें अपना जीवन बिता रहे हैं, तो उसने निश्चित किया कि वहाँ जाकर उन्हें भी सत्यका दर्शन कराये। जब उस लोगोंसे वास्ता पड़ा, तो पता लगा कि वह सत्यके शुद्ध दर्शन करनेमें असमर्थ हैं, तब उसने समझा कि पैगंबर मुहम्मदने ठीक किया जो कि उन्होंने लोगोंको पूर्ण ज्योति न प्रदान कर उसके मोटे रूपको प्रदान किया। इस तरह हार स्वीकार कर हई अपने मित्र असलको लिये फिर अपने द्वीपमें चला गया और वहाँ अपनी शुद्ध दार्शनिक भावनाके साथ जीवनके अन्तिम क्षण तक भगवानकी उपासना करता रहा।

सीना और तुफैलके हईमें फर्क है दोनों ही हई प्रबुद्ध-पुत्र या दार्शनिक हैं, किन्तु जहाँ सीनाका हई अपने दार्शनिक ज्ञानसे दूसरोंको मार्ग बतलानेमें सफल होता है वहाँ तुफैलका हई हार मानकर मुहम्मदी मार्गकी प्रशंसा करता हुआ लौट आता है। तो भी दोनोंमें एक बात जरूर एकसी है—दोनों ही ज्ञान-मार्गको श्रेष्ठ मानते हैं।

पृथ्वीके समान उसमें अविचल भाव पैदा होना चाहिए, उसका निर्माण है इसका यह उदार भाव। पहिले उसका जीवन-मरण उस आसमानों (=वर्षा)से अनद्ध रहता। आसमानों (=वर्षा)की भाँति ही उस अपने पाप-पुण्यमय निज उपयोग रहता तथा अपना जीवन शुद्ध रखना चाहिए। इसी भावका साधन करते हुए, अपने जीवनको स्वयं अपनेमें परिणत करनेके लिए हुई अपने पाप-पुण्यमय पोषाको मिटाना सोचना तथा पशुधारी रक्षा करना है। अपने शरीर और वस्त्रादिको शुद्ध रखनेका बहुत अधिक ध्यान रखता है और कोशिश करता है कि, आसमानी चिड़ों (घटा आदि)की भाँति ही अपनी हर एक क्रिया सबकी अनुकूलताके साथ रखे।

इस तरह हर्ष आदि आत्माको पृथिवी और आसमानसे ऊपर उठाते हुए शुद्ध आत्मा तक पहुँचानेमें समय होता है। यही वह समाधि (=आप

विस्मृति)की अवस्था है जिसे किसी भी कल्पना शब्द मानसप्रतिबिंब द्वारा न जाना जा सकता है, न प्रकट किया जा सकता है।

३—इब्न[1]-रोश्द (११२६-९८ ई०)

बू-अली सीनाके रूपमें जैसे पूर्वमें दर्शन अपने उच्चतम शिखरपर पहुँचा, उसी तरह रोश्द पश्चिमी इस्लामिक दर्शनका चरम विकास है। यही नहीं रोश्दका महत्त्व मध्यकालीन युरोपीय दर्शन चलता गति देकर आधुनिक दर्शनके लिए क्षेत्र तयार करनेमें साधन होनेके कारण और बढ़ जाता है।

(१) जीवनी—अबू वलीद मुहम्मद (इब्न अहमद इब्न-मुहम्मद इब्न अहमद इब्न अहमद) इब्न-रोश्दका जन्म सन ११२६ ई० (५२० हिजरी)में स्पेनके प्रसिद्ध शहर कार्दोवा (कर्तबा)में एक शिक्षित परिवारमें हुआ था। कार्दोवा उस समय विद्याका महान् केन्द्र तथा १० लाखकी आबादीकी महानगरी थी। रोश्दके खानदानके लोग ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदोंपर रहते चले आए थे। रोश्दका दादा मुहम्मद (१०५८ ११२६ ई०) फिका(=इस्लामिक मीमांसा)का भारी पंडित कार्दोवाका महाजज(काजी उल्-कुज्जात्) तथा जामा-मस्जिदका इमाम था। रोश्दका बाप अहमद (१०९४ ११६८ ई०) भी अपने बापकी तरह कार्दोवाका काजी (जज) और जामा मस्जिदका इमाम हुआ था। रोश्दका घर स्वयं एक बड़ा विद्यालय था, जहाँ उसके बाप-दादाके पास दूर-दूरके विद्यार्थी काफी संख्यामें आकर पढ़ते थे, फिर बालक रोश्दकी पढ़ाईका मा-बापने कितना अच्छा प्रबंध किया होगा इसे कहनेकी जरूरत नहीं। रोश्दने पहिले-पहिल अपने बापसे कुरान और मोता[2] पढ़कर कंठस्थ किया उसके बाद अरबी साहित्य और व्याकरण। बचपनमें रोश्दको कविता करनेका शौक हुआ था और उसने कुछ पद्य रचना भी की थी किन्तु सयाना होनेपर उसे वह नहीं जँची और काल मार्क्सकी भाँति उसने अपनी कविताओंको आगके सिपुर्द कर दिया।

---

[1] Averroes [2] इमाम मालिककी लिखी फिकाकी एक पुस्तक।

फिर अशाका (मराको)मे। इसी तरह बार-बार सफ़रोंके जिलाके दौरमें वक्त गुजर जाता है और साथ ही साथ लिखनेका काम भी जारी रहता है जो कि रुश्दके इस मानसिक अभ्यासके कारण शोधपूर्ण और अपरा रह जाता है।[1]

राजकीय अधिकारी बननेके बाद रोश्दको बड़ी हानि नहीं, किन्तु रोश्दने ज्ञानप्रसंगमें सीनाकी तरहका दृढ़ संकल्प और कामकी लगन पाई था जिसका फल हम इतने व्यस्त रहते हुए भी उसका उतना पुस्तकोंका लिखना।

११८४ ई० (५८० हिजरी)मे यूसुफ मर गया, उसके बाद उसका बेटा याकूब मंसूर गद्दीपर बैठा। तासफ़ीन और उसके बाद अब्दुल्मोमिन ने मालिकियोंको दबानेके लिए इतनी लगन पैदा कर दी थी कि शास्त्रार्थोंके पढ़नेके लिए बहुत समय और श्रम करना पड़ता था। याकूब अपने बाप और दादासे भी बढ़ चढ़कर विद्वान और विद्याप्रेमी था। साथ ही वह एक अच्छा जनरल था और उठती हुई पड़ोसी ईसाई शक्तियोंको कई बार पराजित करनेमें सफल हुआ।

याकूब अपने बापसे भी ज्यादा रोश्दका सम्मान करता था और अक्सर ज्ञान-चर्चाके लिए उसे अपने पास रखता था। याकूबके साथ रोश्दकी बेतकल्लुफी इतनी बढ़ गई थी, कि वार्तालापमें अक्सर वह उसे कहता—"अस्मओ या अख़ी!" (सुनो मेरे मित्र!)

आखिरी उम्र रोश्द क़ाज़ीपदसे छुट्टी ले कार्दोवामें रह लगा अध्ययनमें बिताने लगा।

११९५ ई० (५९१ हि०)मे याकूब मंसूर अपने प्रतिद्वन्द्वी अल्फ़ांसोके हमलेको रोकनेके लिए कार्दोवा आया और वहाँ चार दिन ठहरा, इस वक्त रोश्दके सम्मानको उसने चरम सीमा तक पहुँचा दिया। रोश्दके समकालीन एक क़ाज़ीने इस मुलाक़ातका वर्णन इस प्रकार किया है—

---

[1] "इब्न रोश्द"—रेनां पृष्ठ १२

"मसूर जब ५९१ हिजरी (११९८ ई०)मे दशम अल्फासोके ऊपर चढाई करनकी तैयारी कर रहा था उस समय उसने राश्दको मुलाकातके लिए बुलाया। दरबारमे मुहम्मद अब्दुलवाहिदका बहुत प्रभाव था, वह मसूरका दामाद और नदीम-खास था। इसके बटका मसूरने अफ्रीकाकी गवर्नरी दी थी। दर्बारमे अबू-मुहम्मद अब्दुलवाहिदकी कुर्सी तीसर नबर पर होती थी, लकिन उस दिन मसूरने इब्न राश्दको अब्दुल-वाहिदसे भी आगे बढा अपनी बगलमें जगह दी, और दर तक बतकल्लुफीमे बातें करता रहा। बाहर रोश्दने दुश्मनान खबर उडा दी कि मसूरने उसके कत्लका हुक्म दे दिया है। विद्यार्थियोकी भारी जमात बाहर प्रतीक्षा कर रही थी यह खबर सुनकर सब परशान हो गये। जब थोडी देर बाद इब्न रोश्द बाहर आया (और अपनी हालत मालूम हुई तो) उसके दोस्तोने इस प्रतिष्ठा और सम्मानके लिए उसे बधाई दी। लकिन आखिरमें हकीम (रोश्द)ने खुशी प्रकट करनेकी जगह अफसोस जाहिर किया, और कहा—'यह खुशीका नही बल्कि रजका मौका है, क्योकि यकायक इस तरहकी समीपता बुरे परिणाम लायगी।'[1]

रोश्दकी बात सच निकली और उसके जीवनके अन्तिम चार साल बड दुख और शोकमे पूर्ण बन गये।

(क) सत्यके लिए यत्रणा—११९५ से ११९७ ई० तक याकूब मसूर लडाइयोंमें लगा रहा और अन्तमें दुश्मनोको जबदस्त शिकस्त देनेके बाद उसने क़ोर्दोवामें देर तक रहनेका निश्चय किया। रोश्दके इतन बडे सम्मानसे कितने ही बडे-बडे लोग उससे डाह करने लगे थ उधर रोश्द अपने विचारोको प्रकट करनेमें सावधानी नही रखता था जिससे उनको अच्छा मौका मिला। उन्होंने रोश्दके कुछ विद्यार्थियोको उसके विचारो को जमा करनेमें लगाया। उनका मतलब यह था, कि इस प्रकारसे रोश्द जी खोलकर सब कुछ कह डालेगा और फिर खुद उसीके वचनसे

[1] "तबकातुल्-अतिब्बा", पृष्ठ ७६

उसकी अन्तीनाके मबूहाका एकत्रित करना मुश्किल न होगा। और हुआ भी एसा ही। रोश्दने अपने शागिर्दोंसे वह बातें कह डाली जो कि मुल्लोंके उस धर्मान्ध-युगमें नहीं कहनी चाहिए थीं। दुश्मनोंको और क्या चाहिए था। उन्होंने रोश्दके पूरे व्याख्यानको खूब नमक मिर्च लगाकर सुल्तानके पास पहुँचा दिया। सबूतके लिए सौ गवाह पेश कर दिये गए। यूसुफ चाहे कितना ही दर्शनानुरागी हो, उसे अपने समकालीन जयचन्दका प्रजा न मिली थी जिसके सामने खुले तौर श्रीहर्ष न्यायके ऋषि गौतमको गोतम[1] (=महाबैल) कहकर निडर घूमते फिरते, और दर्बारमें ताम्बूलद्वय और आसन (कुर्सी?) प्राप्त करते। मसूर यदि अब रोश्दका पक्ष करता तो उसे प्रजा और सेनाको दुश्मन बनाना पड़ता।

गवाहोंने गवाही दी। रोश्दके हाथके लेख पेश किये गये, जिनमेंसे एक में रोश्दने बादशाहको अमीरुल मामिनीन या सुल्तान न कह 'बर्बरों'के सर्दार (मलिकुल्-बर्बर)के मामूली नामसे याद किया था। दूसरे लेखमें रोश्दने शुक्र (=जोहरा) तारोंको यूनानियोंकी भाँति सम्मान प्रकट करते हुए देवी कहा था। पहिली बातके लिए अब्दुल्ला उसूलीने रोश्दकी ओर से बहस की जिसका नतीजा यह हुआ कि वह भी धर लिया गया। सभी गवाहियों सबूतोंसे यह साबित किया गया कि रोश्द बदीन नास्तिक है। यूसुफ मजबूर था उसने रोश्दको अपने शिष्यों और अनुयायियोंके साथ सार्वजनिक सभामें आनेका हुक्म दिया जिसके लिए कार्दोवाकी जामा मस्जिदका चुना गया। बादशाह अपने दर्बारियोंके साथ वहाँ पहुँचा। इस भारी जल्सेकी कारवाईका वर्णन अन्सारीने इस प्रकार किया है—

'मन्सूरकी मजलिसमें इब्न रोश्दका दर्शन टीका और व्याख्याके साथ पेश किया गया। कुछ डाह करनेवालोंने उसमें नमक मिर्च भी मिला दी थी। चूँकि सारा दर्शन बदीनी (=नास्तिकता) से भरा था इसलिए आवश्यक था कि इस्लामकी रक्षा की जाय। खलीफा (यूसुफ)ने सारी जनताको

---

[1] नैषधीयचरित"।

एक दर्बारमें जमा किया, जिसका स्थान पहिलेहीस जामा मस्जिद निश्चित था। (इस जल्सेमें) यह जतलाना था कि इब्न-रोश्द पथभ्रष्ट और धिक्कारका पात्र हो गया है। इब्न रोश्दके साथ काजी अबु अब्दुल्ला ल्मूरी भी इसी अपराधमें धर लिये गये थे—उनके वार्तालापमें भी नास्तिकता और बदीनी जाहिर हुई थी। कार्रवाईकी जामा मस्जिदमें दोनों अपराधी उपस्थित किए गए। अबू अली हज्जाजने खड़े होकर घोषित किया कि इब्न रोश्द नास्तिक (=मुलहिद) और बदीन होगया है।[1]

हज्जाजके व्याख्यानके बाद सुल्तानने खुद इब्न रोश्दको इस अभिप्रायसे सुनाया कि यह जवाबदेही कर और पूछा कि क्या ये लोग तुम्हारे हैं? यह अजब नाटक था। क्या याकूब मन्सूर जानता नहीं था कि रोश्दके दार्शनिक विचार क्या हैं। क्या वर्षों उसके साथ बातचीतमें दर्शन चर्चामें रोश्दके विचार उससे छिपे हुए थे? यह जानते हुए भी लोगोंको अपनी धर्मप्राणता दिखलाने तथा अपनी राजनीतिक स्थितिको सर्वप्रियता द्वारा दृढ़ करनेके ख्यालसे यह अभिनय कर रहा था। अच्छा होता यदि इस वक्त रोश्द भी सुकरातके रास्तेका स्वीकार किये होता किन्तु रोश्दका नागरिक समाज एथन्सके नागरिक समाजसे बहुत निम्न श्रेणीका था, वह उसके साथ अधिक कमीनेपनसे पेश आता? साथ ही रोश्द सब कुछ स्वीकार कर भी जितने दिन और जीता उतना ही दर्शन और विचार-स्वातन्त्र्यके लिए अच्छा था। इसके अतिरिक्त रोश्दको अपने शिष्यों—अनुयायियों—मित्रोंका भी ख्याल करना जरूरी था। यह सब सोच रोश्दने भी उसी तरह अपने लेखोंसे इन्कार कर दिया, जिस तरह मसूरने उनके पूर्वपरिचयसे इन्कारका नाटक किया था। जवाब सुनकर मंसूरने उन लेखोंके लिखने वालेको धिक्कार (लानत) कहा, और उपस्थित जनमंडलीने 'आमीन' (एवमस्तु) कहा। इब्न रोश्दका अपराध सारी जनताके सामने साबित हो गया उसमें शक शुबहाकी गुंजाइश न थी। यदि सुल्तान बीचमें न होता

[1] 'इब्न रोश्द व फिलसफा'—बहु'ल जोन्।

तो दार्शनिकोंकी अन्तर्मर्दीन गुस्सामें आकर शासकका बाकियों साथ डाला हुआ। लेकिन वास्तविकता रायके लिए इस गुनाहगार कानून किया गया कि वह किसी अलग स्थानपर भेज दिया जाय।

रोश्द विरुद्ध मदारा दुन्यावाले ढूँढ़ने यह भी कहा था कि इसने जो अपनी दलील आकर आवाज़ हो। इन रोश्दका उनमेंसे निर्णय सब जानती मर्यादा न था और यदि उसका मजब है तो वह स्थान (यहूदी)में जा सकता। इसपर यह भी फतवा हुआ कि इसे लासानिय (=अलसाना)में भेज दिया जाये क्योंकि यह वहां स्थान (यहूदियों)की जगह है और उनके अतिरिक्त दूसरी जातिके लोग वहाँ नहीं रहते।

रोश्द दुश्मनों और मुसलमान लोग धर्मसे उसके खिलाफ जो जबरदस्त प्रचार करके लोगोंको धर्मान्धताको उत्तेजित कर रखा था, उस इस फतवेके बाद भी उनका बहुत जोर था। रोश्द यदि यहूदी बस्तीमें भेज दिया गया तो यह उनके लिए अच्छा ही हुआ। लोग मुल्लोंकी बातमें आकर कुछ और रह बैठते। इसका ध्यान उन्हें शान्त करने तथा अपनेको सच्चा भाजन न बनानेके लिए मन्सूरने एक खास सरकारी विभाग कायम किया जिसका काम था दर्शन और तर्कशास्त्रकी पुस्तकोंको एकत्रित कर उन्हें जलाना, तथा इन विद्याओंके पढ़नेवालोंको बड़ी-बड़ी सजायें दिलवाना। इसी समय मन्सूरने लोगोंको शान्त करनेके लिए एक फरमान (=घोषणा) लिखकर सारे मुल्कमें प्रकाशित कराया। इस शाही फर्मानको अल-मारीने अपने ग्रन्थमें उद्धृत किया है और उसके सारको इस प्रकार दिया है[2]— पुराने जमानेमें कुछ लोग ऐसे थे जो मिथ्याविश्वासका अनुगमन करते और हर बातमें उल्टे-सीधे सवाल उठाया करते थे, तो भी आम लोग उनकी बुद्धिकी प्रखरता पर लट्टू हो गए थे। इन लोगोंने अपने विचारोंके अनुसार ऐसी पुस्तकें लिखीं जो कि शरीअत (इस्लामी धर्मग्रन्थों)से

---

[1] कार्दोवाके पास एक गाँव। 'इब्न रोश्द'', पृष्ठ ७३ ७६

[2] वहीं, टिप्पणी पृष्ठ ७६

उतनी ही दूर था जितना पूरब पश्चिम दूर है। हमारे समयमें भी कुछ लोगोंने इन्हीं नास्तिकों (=मुल्हिदों)की पैरवी की और उन्हींके मतके अनुसार किताबें लिखीं। यह पुस्तक देखनेमें कुरानकी आयतों (=वाक्यावलियों)से अधिक अलंकृत है, लेकिन भीतरसे कुफ्र (=नास्तिकता) और जिंदका (=धर्मविरोधी एक मत) है। जब हम (सुल्तान मंसूर)को उनके धोखा-फरेबका हाल मालूम हुआ तो हमने उनको दर्बारसे निकाल दिया, और उनकी किताबें जलवा दीं, क्योंकि हम शरीअत और मुसलमानोंको इन नास्तिकोंसे फरेबसे दूर रखना चाहते हैं। या खुदा! इन नास्तिकों और उनके दोस्तोंको तबाह और बर्बाद कर। (फिर लोगोंको हुक्म दिया है कि)इन नास्तिकोंकी संगतसे वैसे ही परहेज करो जैसे विषसे करते हो। यदि कहीं उनकी कोई पुस्तक पाओ तो उसे आगमें झोंक दो, क्योंकि कुफ्रकी सजा आग है।"

तर्क और दर्शनके प्रति शिक्षित मुल्लाओंका उस वक्त क्या रुख था, वह विद्वान इब्न-जुह्र—जिसे कि मंसूरने पुस्तकोंके जलानेका इन्चार्ज बनाया था—की इस हरकतसे पता लगेगा। दो विद्यार्थी जुह्रसे वैद्यक पढ़ रहे थे। एक दिन उनके पास कोई किताब देख जुह्रने उसे लेकर गौर किया तो मालूम हुआ, मंतिक (=तर्क)की किताब है। जुह्र गुस्सेमें पागल हो नंगे पैर उनके पीछे मारनेके लिए दौड़ा। उन विद्यार्थियोंने फिर जुह्रके पास जाना छोड़ दिया। कुछ दिनों बाद उन्होंने जाकर उस्तादसे कसूरकी माफी माँगी और कहा कि वस्तुतः वह पुस्तक हमारी न थी एक दोस्तसे हमने जबर्दस्ती छीनी और गलतीसे हमारे पास रह गई थी। जुह्रने कसूर माफ कर दिया, और नसीहत दी, कि कुरान कंठस्थ करो फिका (=मीमांसा) और हदीस (=पैगंबर-वचन) पढ़ो। जब उन्होंने उसे समाप्त कर लिया, तो उसने स्वयं अपने पुस्तकालयसे फोर्फोरि (=फोर्फोरियस)की पुस्तक ईसागोजीको लाकर कहा कि फिका और हदीसके बाद अब इसको पढ़नेका समय है तर्क और दर्शनमें पांडित्य प्राप्त करो, किन्तु इससे पहिले इनका पढ़ना तुम्हारे लिए हर्गिज उचित न था। इब्न-जुह्र यद्यपि बाहरसे तर्क-दर्शनकी पुस्तकोंको

'लगाया किया था, किन्तु फिर उस दावेका अन्त नहीं हुआ था। यहूदी एक दुश्मनका रास्ता उनके लिए उठाकर उसे तबाह करना चाहते। [illegible] मसूरके पास [illegible] इस्लामके साथ एक भावना था कि कुछ [illegible] होती है, उनके घरमें दासी हजारों गुलाम हैं। मसूरने [illegible] हुक्म दिया कि [illegible] तुरंत [illegible] किया जावे। [illegible] किया गया और इस्लाम [illegible] उड़ाना शुरू किया गया। मुल्लाओं [illegible] भावना उनके धर्माभिमानकी आग भड़का दी थी। मसूर जानता था, कि यह बात [illegible] इन सम्बन्धोंमें नहीं रह सकती, किन्तु इसका डर भी था, कि इसे एक बार यदि [illegible] जाय। वह [illegible] बलि चढ़ा हुआ था और यह आग [illegible] गई थी। यह जानता था, कि मुल्लाओंका [illegible] यह [illegible] है कि तुरन्त ही फिर जनताको उसी तरह उत्तेजित कर दें। इसलिए उसने [illegible] साथ उनके इस षड्यन्त्रको दबा देनेका निश्चय किया।

जिस वक्त [illegible] निर्वासित किया गया था, उसी वक्त कितने ही दूसरे [illegible]—[illegible], [illegible], [illegible], [illegible]—भी निर्वासित किया गया था। इस वक्त मुल्तान [illegible] आकर [illegible] बनाई था, जिनमें कितने ही अब भी [illegible] हैं।

यहूदी [illegible] पहिलेसे [illegible] थे, इसलिए [illegible] यहूदियोंने जब इस [illegible] [illegible] उस दीन-अवस्थामें देखा, तो उसे [illegible] उठाकर लिए तैयार थे। आखिर स्पेनमें एक छोटा गाँव था जहाँके गँवार उस वक्त भी [illegible] नहीं समझते थे। उनके इस सम्मानकी कीमत और बढ़ जाती है जब हम जानते हैं कि उन्हें यह मालूम न था कि [illegible] यह [illegible] भविष्यमें [illegible] और [illegible] दुनियाका पूज्य [illegible] बनने जा रहा है और उस दुनियाके निर्माणकी बुनियादमें उसके विचार और [illegible] ईंटें भी पड़ेंगी।

[illegible] ऊपर होनेवाले अत्याचारोंके बारेमें कितनी ही बातें मशहूर

है। एक बार वह लूसीनियाके ग्राम भाग गया। गुन्डोंने पकड़वाकर उसे मस्जिदके दर्वाजेपर खड़ा करवाया, और यह सजा दी कि जो मस्जिदके भीतर दाखिल हो या बाहर निकले उसपर थूकता जाय। इस अपमानका वर्णन स्वयं रोश्दने लिखा है—"सबसे अधिक दुःख मुझे उस वक्त हुआ था जब कि एक बार मैं और मेरा बेटा अब्दुल्ला कार्दोवाकी जामा मस्जिदमें नमाज़ पढ़नेके लिए गये लेकिन न पढ़ सके। कुछ गुंडोंने हल्ला मचाया, और हम दोनोंको मस्जिदसे निकाल दिया गया।[1]

रोश्दको लूसीनियामें निर्वासित कर इस तरहसे सख्त नज़रबन्दीमें रखा गया था, कोई दूसरी जगहका आदमी उससे मिलने नहीं पाता था।

(ख) मुक्ति और मृत्यु—दो साल (११९७-९८ ई०) तक रोश्द उस बुढ़ापेमें अपना दार्शनिक अभिमान लिए इस शारीरिक और मानसिक यातनाको सहता रहा। मंसूर समझ रहा था कि उसने अपने समयके लोगोंके सामने ही नहीं इतिहासके सामने कितना भारी पाप किया है, किन्तु रोश्दके बदले स्वयं बलिवेदीपर चढ़नेकी उसकी हिम्मत न थी। अब मंसूर अपने पड़ोसी ईसाई राजाओंकी अन्तिम पराजय करके जहाँ उधरसे निश्चिन्त था, वहाँ उसका प्रभाव अपनी प्रजापर एक भारी विजेताके तौर पर हो गया था, उधर मुल्लोंका जादू भी जनताके सिरसे कम हो गया था। मंसूरके इशारेसे या खुद ही सेविली (अश्बीलिया)के कुछ सम्भ्रान्त लोगोंने गवाही दी कि रोश्दपर झूठा बेबुनियाद इल्ज़ाम लगाया गया था। इसपर मंसूरने इस शर्तपर छोड़नेका हुक्म दिया कि रोश्द जामा-मस्जिदके दर्वाजेपर खड़ा होकर लोगोंके सामने तोबा करे। रोश्द जामा मस्जिदके दर्वाजेपर तब तक नंगे सिर खड़ा रखा गया, जब तक लोग नमाज़ पढ़ते रहे, (और खुदा शान्तचित्तसे उस नमाज़को सुनता भी रहा!)। इसके बाद वह कार्दोवामें बड़ी गरीबीकी जिन्दगी बिताने लगा।

---

[1] "इब्न रोश्द" (रेनाँ द्वारा एक पुराने लेखक अबू मुहम्मद अब्दुल कबीर अन्सारी से उद्धृत), पृष्ठ १६

मसूरकी आत्मा अभी भी उसके पास रही थी, इसलिए वह रोश्दके साथ कुछ और उपकार करनेका रास्ता ढूँढ रहा था। इसी बीच मराकाके काजी (जज)को उसके जुर्मके लिए बर्खास्त करना पड़ा। मसूरने तुरन्त उसकी जगह रोश्दको मुकर्रर किया। रोश्दकी पुस्तकोंके ध्वंसका हुक्म भी वापिस लिया गया, और जो दूसरे दार्शनिक निर्वासित किये गए थे, उनको बुलाकर कितनोंको ऊँचे-ऊँचे दर्जे दिये गए।

रोश्द एक साल और जीवित रहा और अन्तमें १० दिसम्बर ११९८ ई० को मराकोमें उसका देहान्त हुआ। उसके शवको कार्दोवामें लाकर खान्दानी कब्रस्तान मकबरा अब्बासमें दफन किया गया।

तईस दिन बाद (२ जनवरी ११९९ ई०)को मसूर भी मर गया, और साथही अपने नामपर हमेशाके लिए एक काला धब्बा छोड़ गया। वह समय जल्द आया जब स्पेनकी भूमिसे मसूरके खान्दानका शासन ही नहीं बल्कि इस्लाम भी खतम हो गया, किन्तु रोश्दकी आवाज सारे युरोपमें गूँजने लगा।

(ग) रोश्दका स्वभाव—रोश्दके स्वभावके बारेमें इतिहास-लेखक बाजीका कहना है—

"इब्न रोश्दकी राय बहुत मजबूत होती थी। वह जैसा ही जबर्दस्त प्रतिभाका धनी था वैसा ही दिलका मजबूत था। उसके संकल्प बहुत पक्के होते थे, और वह कष्टोंसे कभी भय नहीं खाता था।"[1]

रोश्द गंभीरताकी मूर्ति था। ज्यादा बोलना उसके स्वभावमें न था। अभिमान उसे छू नहीं गया था। किसीको बुरा भला कहना उसे पसन्द न था। धन और पदका न उसे अभिमान था और न लोभ। वह अपने शरीरपर खर्च न करता था। दूसरोंकी सहायता करनेमें उसे बहुत आनन्द आता था। चापलूसीसे उसे सख्त घृणा थी। उसकी विशालहृदयता मित्रों ही तक नहीं शत्रुओं तकके लिए खुला हुई थी। वह कहा करता

[1] तबकातु'ल अतिब्बा", पृष्ठ ७६

था—'यदि हमने दोस्तोंका दिया, तो वह काम किया, जो कि हमारी अपनी रुचिके अनुकूल है। उपकार और दया उसे कहते हैं, जिसमें उन शत्रुओंतकको शामिल किया जाय जिनको हमारी तबियत पसंद नहीं करती'।[1]

"दया उसमें इतनी थी कि यद्यपि वर्षों वह काज़ी (जज) रहा, किन्तु कभी किसीको मृत्यु-दंड नहीं दिया। यदि कोई ऐसा मौका आता, तो स्वयं न्यायासनको छोड़ दूसरेको अपना स्थानापन्न बना देता। अपने शहर कार्दोवामें उसका वैसा ही प्रेम था, जैसा कि यूनानी दार्शनिकोंका अथेन्समें। एक बार मंसूरके दर्बारमें जुह्न और रोश्दमें अपने अपने शहरों सेविली और कार्दोवाके संबंधमें बहस छिड़ गई। रोश्दने कहा—सेविलामें जब कोई विद्वान् मर जाता है तो उसके ग्रंथ-संग्रहको बचनेके लिए कार्दोवा लाना पड़ता है, क्योंकि सेविलीमें इन चीजोंकी पूछ करनेवाले नहीं हैं। हाँ, जब कार्दोवाका कोई गायनावाद्य मर जाता है, तो उसके वाद्य-यंत्र सेविलामें बिकनेके लिए जाते हैं, क्योंकि कार्दोवामें इन चीजोंकी माँग नहीं है'।

पुस्तक पढ़नेका रोश्दको बहुत शौक था। इब्नुल्-अबारका कहना है कि रातके वक्त भी उसके हाथमें किताब नहीं छूटती थी। सारी-सारी रात वह किताब पढ़ा करता था। अपनी उम्रमें सिर्फ दो रातें उसने किताब पढ़े बिना बिताईं, एक शादीकी रात दूसरी वह रात जब कि उसके बापकी मृत्यु हुई।[2]

(२) कृतियाँ—भिन्न भिन्न विषयोंपर रोश्दकी लिखी हुई पुस्तकोंकी संख्या साठसे ऊपर है। इब्नुल्-अबारके कथनानुसार वह दस हजार पृष्ठके करीब है। मौलवी मुहम्मद यूनुस् अन्सारी (फिरंगीमहली)ने अपनी पुस्तक इब्न रोश्द में (जो कि मेरे इस प्रकरणका मुख्य आधार है) भिन्न भिन्न विषयोंपर रोश्दकी पुस्तकोंकी विस्तृत सूची दी है मैं वहाँसे सिर्फ

[1] "अगानी'ल् अख्बार", पृष्ठ २२२ 'नफहु'त तब", पृष्ठ २१६
[2] "अल् दीबाजु'ल् मज़हब", पृष्ठ २८४ इब्न रोश्द", पृष्ठ ११६ ३०

पुस्तकोंकी संख्या यह है।

(१)	दर्शन	२८
(२)	वैद्यक	२०
(३)	फ़िक़ा	८
(४)	कलाम (धर्म) शास्त्र	५
(५)	ज्योतिष-गणित	५
(६)	व्याकरण (अरबी)	२
		६८

रुश्दने अपनी सारी पुस्तकें अरबीमें लिखी थीं, किन्तु उनमेंसे कितनोंके अरबी मूल नष्ट हो चुके हैं, और उनके इब्रानी या लातीनी अनुवाद ही मौजूद हैं।

इब्न रोश्दने स्वयं लिखा है कि किस तरह तुफैलने उसे दर्शनकी पुस्तकोंके लिखनेका भार अर्पण किया—'एक दिन इब्न-तुफैलने मुझे बुलाया। जब मैं गया तो उसने कहा कि आज अमीरुल मोमिनीन (यूसुफ) अफसोस करते थे कि अरस्तूका दर्शन बड़ा गंभीर है, और (अरबी-) अनुवादकोंने अच्छा अनुवाद नहीं किया है। यदि कोई आदमी तैयार होता और उनका संक्षेप करके सुबोध बना देता। मैं तो यह काम नहीं कर सकता, मेरी उम्र अब ज्यादा है और अमीरुलमोमिनीनकी सेवासे भी छुट्टी नहीं। तुम तैयार हो जाओ, तो कुछ मुश्किल नहीं, तुम इस कामको अच्छी तरह कर भी सकते हो। मैंने इब्न-तुफैलको वचन दे दिया, और उसी दिनसे अरस्तूकी किताबोंकी व्याख्या-टीकायें लिखनी शुरू कीं।'[1]

रुश्दकी दर्शन-संबंधी पुस्तकोंको तीन प्रकारमें बाँटा जा सकता है—

(१) अरस्तू तथा कुछ और यूनानी दार्शनिकोंकी पुस्तकोंकी टीकायें या विवरण।

---

[1] "इब्न रोश्द" (रेनाँ), पृष्ठ ११

(२) अरस्तूका पक्ष ले सीना और फाराबीका खंडन।

(३) दर्शनका पक्ष ले गजाली आदि वाद-शास्त्रियोंका खंडन।

रोश्दने अरस्तूके ग्रंथोंकी तीन प्रकारकी टीकायें की हैं—

(१) विस्तृत व्याख्या टीका—इनमें हर मूल शब्दको उद्धृत कर व्याख्या की गई है।

(२) मध्यम व्याख्या—इनमें वाक्यके प्रथम शब्दको उद्धृतकर व्याख्या की गई है।

(३) संक्षेप ग्रंथ—इनमें वाक्यको बिलकुल लिये बिना ही वह भावको समझाता है।

अरस्तूके कुछ ग्रंथोंकी निम्न व्याख्याएँ रोश्दने निम्न सालों और स्थानोंमें समाप्त की—

सन्	नाम पुस्तक	स्थान
११७१ ई०	अस्समाअ-वल्-आलम[1] (व्याख्या)	सेविली
११७४ ई०	खताबत-वल्-शअर[2] (मध्यम व्याख्या)	कार्दोवा
	मावाद'त-तबीआत[3] (मध्यम व्याख्या)	कार्दोवा
११७६ ई०	अखलाक[4] (मध्यम व्याख्या)	कार्दोवा
११८६ ई०	तबीआत[5] (विस्तृत व्याख्या)	सेविली

इनके अतिरिक्त उसकी निम्न पुस्तकोंकी समाप्तिके समय और स्थान मालूम हैं—

११७८ ई०	जवाहरु ल्-कौन	मराको
११७९ ई०	कश्फ-मनाहजु ल अवला	सेविली

---

[1] De Coelo et mundo (देवात्मा और जगत्)
[2] Rhetoric (भाषण-शास्त्र) Poetics (काव्य-शास्त्र)
[3] Metaphysics (अध्यात्म या अतिभौतिक-शास्त्र)
[4] Ethics (आचार-शास्त्र)
[5] Physics (साइंस या भौतिक शास्त्र)

११६२ ई० मन[illegible] (व्याख्या)
११६४ ई० [illegible] निर्णय

अरस्तूकी जिन पुस्तकोंपर रोश्दकी लिखी व्याख्यायें अब इब्रानी लिपिमें न किसी न किसी भाषामें मौजूद हैं—

१ तबइयात (भौतिक शास्त्र)
२ समाअ (स्वर्ग या पृथिवी)
[illegible] (विनाश या नाश-शास्त्र)
४ माबाद-तबइयात (अतिभौतिक या अध्यात्म शास्त्र)

अरस्तू अखलाक (निकोमकियन एथिक्स)के ऊपर इब्न रोश्दकी व्याख्या नहीं मिलती। आचार शास्त्रकी व्याख्यामें उसने लिखा है कि मुझे अरस्तूकी राजनीति शास्त्रकी अरबी अनुवाद स्पेनमें नहीं मिल सका इसलिए मैंने अफलातूँके प्रजातन्त्र (जम्हूरियत)की व्याख्या लिखी।[1]

---

[1] लातीनी (गलत)का पुस्तक

[2] रोश्दका पुस्तकाव हस्तलेख अधिकतर यूरोपके निम्न पुस्तकालयोंमें मिलते हैं—

१—स्कयोरियल पुस्तकालय, (मद्रिदसे ४० मीलपर स्पेन), २—बिब्लियोथेक नाशनल (पेरिस), ३—बोड्लियन लाइब्रेरी (आक्सफोर्ड, इंगलैंड) ४—लारन्शीन पुस्तकालय (फ्लोरेन्स इटाली), ५—लाइडन पुस्तकालय (हालैंड)। इनमें सबसे ज्यादा ग्रंथ स्कयोरियलमें हैं। स्पेन और इटालीके पुस्तकालयोंहीमें अरबी लिपिके कुछ हस्तलेख हैं, नहीं तो इब्रानी और लातीनीके अनुवाद या इब्रानी लिपिमें अरबी भाषाके ग्रंथ ही ज्यादा मिलते हैं। हिन्दुस्तानमें हमारे प्रान्तके आरा शहरकी एक मस्जिदके पुस्तकालयमें रोश्दके दो संक्षेप ग्रंथ बारेमनियास और प्रथम अनालोतिकापर हैं।

[3] सब मिलाकर अरस्तूकी निम्न पुस्तकोंपर रोश्द कृत टीकायें हैं—

टीकायें—१—बुर्हान (तर्क), २—समाअ-व-आलम, ३—तबइयात

गारदके दार्शनिक विचारोंको जानने के लिए उसके दर्शन-संबंधी ' सक्षेप (तलखीस) फाराबी, तथा सीनापर आक्षेप और वाद शास्त्रके खंडन देखने लायक है, जो बदकिस्मतीसे किसी जीवित भाषामें बहुतही कम छपे हुए हैं ।'

रोश्दकी किसी पुस्तककी विशेष तौरसे विवेचना यहा सभव नही है

४–नफस, ५–माबाद तबइयात ।

सक्षेप—६–खतावत्, ७–शेअ्र ८–तौलीद-व-इ हलाल, ९–आसार-अल्इया, १०–अख़लाक़, ११–हिस्स-व-महसूस, १२–हवान, १३–तवल्लुद हवान ।

इनमें १,६,७, मन्तिक (=तर्कशास्त्र) की आठ पुस्तकोंमें से हैं। २,३, ४,८,९,११,१३–तब-इयात (=भौतिकशास्त्र)की आठ पुस्तकोंमेंसे, ५वीं पुस्तक अतिभौतिकशास्त्र है, और १०वीं आचार-शास्त्र ।

' सक्षेपोंमें—

१–तल्खीस-मतकियात (तर्कशास्त्र सक्षेप)

२–तल्खीस-तबइयात (भौतिकशास्त्र-सक्षेप)

३–तल्खीस-माबाद-तबइयात (अतिभौतिकशास्त्र-सक्षेप)

४–तल्खीस्-अख़्लाक (आचारशास्त्र-सक्षेप)

५–शरह-जम्हूरियत (प्रजातंत्रकी व्याख्या)

वादशास्त्रियोंके खंडन—

१–*तोहाफ़तुल्-तोहाफ़तुल फिलासफ़ा (दर्शन-खंडन-खंडन) यह प्रधान* तया ग़ज़ालीके तोहाफ़तुल-तोहाफ़त (दर्शन-खंडन)का खंडन है ।

२–फस्लुल मुकाल ।

३–कश्फुल अदला ।

अरस्तूके तर्कको ग़लत समझनेके लिए फाराबीके विरुद्ध रोश्दने तीन पुस्तकें लिखी है, जिनमें "तल्खीस-मोकालात फाराबी फिल्मंतिक़" मुख्य है । सीनाकी पुस्तक "शफ़ा"की ब्रह्म विद्या (इल्मुल-इलाही)पर आक्षेप किया है ।

मंडन [illegible] हम उन [illegible] आरम्भ करना चाहता, जिनमें बातें
[illegible] और [illegible] तथा [illegible] का झगड़ा था—

(क) [illegible] खंडन—[illegible] समय ठीक यही [illegible], जो [illegible]
था [illegible]। [illegible] (संबन्धी [illegible]
आहार या [illegible] मिठाई)[1] और [illegible] अपना नाम भी [illegible]
[illegible] (खंडन-[illegible]) इसमें
[illegible] (खंडन खंडन)[2] खंडन-खाद्य और 'खंडन-खंडन'
में नाम सादृश्य बहुत ज्यादा जरूर; किन्तु [illegible] प्रतिपाद्य विषयों
[illegible] और [illegible]
[illegible] जिसमें [illegible] बड़े [illegible]
[illegible] थे। श्रीहर्ष [illegible] 'खंडन का [illegible]'[1] और उन [illegible]
[illegible] तथा वस्तुवादी दार्शनिकों [illegible] शून्य-[illegible]
वाद' स्थापित करना चाहता है। उसका [illegible] शंकराचार्य के
द्विविधात्मक ब्रह्मवाद या [illegible] वस्तुवादी विज्ञानवाद—जो [illegible]

---

[1] "दुरावाप इव धर्मकीर्ते पन्था, तदवधानवहितेन भाव्यम्"—खंडन खंड खाद्ये।

धर्मकीर्तिके वादके बहुत नजदीक है—की स्थापना करना चाहता था। अर्थात् पूर्व और पश्चिमके दोनों महान दार्शनिकोंमें एक (श्रीहर्ष) वस्तुवादको हटाकर अ-वस्तुवाद (विज्ञानवाद, शून्यवाद) कायम करना चाहता था, दूसरा (रोश्द) अवस्तुवाद (सूफी ब्रह्मवाद)को हटाकर वस्तुवादकी स्थापना कर रहा था। और दोनोंके प्रयत्नोंका आगे हम परिणाम क्या देखते हैं? श्रीहर्षकी परंपरा ब्रह्मवादके मायाजालमें उलझकर भारतके मोहान्ध समाजको पैदा करती है, और रोश्दकी परम्परा पुनर्जागरणके संघर्षमें भाग लेकर नवीन युरोपके उत्पादनमें सफल होती है। भारतमें यदि गज़ाली और श्रीहर्ष परंपरा सर्वमान्य रही, तो उसके कार्य-कारण संबंध भी दिखाई पड़ते हैं।

(ग) **दर्शनालोचना गज़ालीकी अनधिकार चेष्टा**—एक बार अपनी स्मृतिको ताजा करनेके लिए इस्लामिक वाद शास्त्र(=कलाम)पर नजर दौड़ानी चाहिए। मोतज़लाने "वाद"को अपनाया, फिर अबुल्-हसन अश्-अरीने कलाममें इसी हथियारको लेकर मोतजलापर प्रहार करना शुरू किया। अशअरीके अनुयायी अबूबक्र बाक़्लानीने वादमें थोड़ी दर्शनकी पुट देनी चाही, जिसमें गज़ालीके गुरु इमाम हर्मैनने अपनी प्रतिभाका ही सहारा नहीं दिया, बल्कि गज़ाली जैसे शागिर्दको तैयार करके दे दिया। गज़ालीने सूफीवाद, दर्शनवाद कुरानवाद, बुद्धिवाद, अ-बुद्धिवाद कबीलाशाही जनतंत्रवाद क्या क्या नहीं मिलाकर एक चूँचूँका मुरब्बा "वाद" (कलाम)के नामपर तैयार किया, जिसका नमूना हम देख चुके हैं। गज़ालीके "दर्शन-खंडन"के खंडनमें उस जमैसे नामपर रोश्दका 'दर्शन-खंडन-खंडन'[1] लिखना बतलाता है, कि रोश्दको गज़ालीका चूँचूँका मुरब्बा पसंद नहीं आया। रोश्द अपनी पुस्तक "कश्फु ल् अदला"में गज़ालीके इस चूँचूँके मुरब्बेके बारेमें लिखता है—

इस्लाममें सबसे पहिले ख़ाहरी (मतवाला)ने फसाद (झगड़ा मतभेद)

[1] पृष्ठ ७२

पैदा किया, फिर मातरुद्यान, फिर अश्अरियान, फिर सूफ़ियान और सबसे अन्तमें ग़ज़ालीन। पहिले उस (ग़ज़ाली)ने "मक़ासिदुल् फ़िलासफ़ा" (दार्शनिकाभिप्राय) एक पुस्तक लिखी। जिसमें (यूनानी) आचार्योंके मतोंको सारूपसे बिना घटाये बढ़ाये नकल कर दिया। उसके बाद "तोहाफ़तुल् फ़िलासफ़ा" (दर्शन-खंडन) लिखा, जिसमें तीन सिद्धान्तोंके बारेमें दार्शनिकोंको काफ़िर बनाया। उसके बाद 'जवाहरुल्-क़ुरान' में ग़ज़ालीने साफ़ बतलाया कि तोहाफ़तुल् फ़िलासफ़ा (दर्शन-खंडन) केवल लड़ाई भिड़ाई (=जदल)की किताब है और मेरे वास्तविक विचार "मज़नून-बे-अला ग़ैर-अहलिही" में हैं। इसके बाद ग़ज़ालीने 'मिश्कातुल्-अन्वार' एक किताब लिखी, जिसमें ज्ञानियोंके मतवादी व्याख्या करके यह साबित किया कि सभी ज्ञानी असली सत्यसे अपरिचित हैं, इसमें अपवाद सिर्फ वह हैं, जो कि महान सिरजनहारके संबंधके दार्शनिक सिद्धान्तोंको ठीक मानते हैं। यह कहनेके बाद भी कितनी ही जगह ग़ज़ालीने यह बतलाया है कि ब्रह्मज्ञान(=इल्म-इलाही) केवल चिन्तन और मननका नाम है, और इसी लिए 'मुनक़िज़ मिन-ल्-ज़लाल' में (अरस्तू आदि) आचार्योंपर ताना कसा है और फिर स्वयं ही यह साबित किया है, कि ज्ञान एकान्तवास तथा चिन्तनसे प्राप्त होता है। सारांश यह कि ग़ज़ालीके विचार इतने विभिन्न और अस्थिर हैं कि उनके असली विचारोंका जानना मुश्किल है।"

ग़ज़ालीने 'तोहाफ़तुल् फ़िलासफ़ा' की भूमिकामें[1] अपने ज़मानेके दार्शनिकोंको जो फटकारा है और उनके २० सिद्धान्तोंका खंडन किया है उसके उत्तरमें रोश्द 'खंडन-खंडन'[2] में लिखता है—

'(दार्शनिकोंके) इन सिद्धान्तोंकी जाँच सिर्फ वही आदमी कर सकता है जिसने दर्शनकी किताबोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा है (ग़ज़ाली सीनाके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता था), ग़ज़ाली जो यह आक्षेप करता है, इसके दो कारण हो सकते हैं—या तो वह सब बातोंको जानता है, और फिर आक्षेप करता

[1]देखो पृष्ठ १६१ [2]'तोहाफ़तु त-तोहाफ़त' पृष्ठ ३४

हैं, और यह दुष्टताका काम है, या वह अनभिज्ञ है, तो भी आक्षेप करता है, और यह मूर्खोंकी ही शोभा देता है। लेकिन गज़ालीमें दोनों बातें नहीं मालूम होतीं। मालूम यह होता है, कि बुद्धिके अभिमानने उसे इस पुस्तकको लिखनेके लिए मजबूर किया। आश्चर्य नहीं यदि उसकी मंशा इस तरह लोगोंमें प्रिय होनेकी रही हो।"

(b) कार्य-कारण-नियम अटल—गज़ालीने प्रकृतिमें कार्य-कारण नियमको माननेसे यह कहकर इन्कार कर दिया कि वैसा मान लेनेपर "करामात (=अकलके खिलाफ अप्राकृतिक घटनाएँ) गलत हो जायेंगी, और धर्मकी बुनियाद करामातपर ही है।"

इसके उत्तरमें रोश्द कहता है—

'जो आदमी कार्य-कारण नियमसे इन्कार करता है, उसको यह माननेकी भी जरूरत नहीं कि हर एक कार्य किसी न किसी कर्तासे होता है। बाकी यह बात दूसरी है, कि सरसरी तौरसे जिन कारणोंको हम देखते हैं, वह काफी ख्याल न किए जायें, किन्तु इससे कार्य-कारण नियम (=इल्लियत) पर असर नहीं पड़ता।[1] असल सवाल यह है कि चूँकि कुछ ऐसी चीजें भी हैं जिनके कारण या सबबका पता नहीं लगता, इसलिए क्या एकदम कार्य-कारण नियमसे ही इन्कार कर दिया जाये। लेकिन यह बिलकुल गलत बात है। हमारा काम यह है, कि अनुभूत (वस्तु)से अन्-अनुभूत (अज्ञात)की खोज करें, न कि यह कि (एक वस्तुके) अन्-अनुभूत होनेकी वजहसे जो अनुभूत (ज्ञात है) उससे भी इन्कार कर दें।

आखिर ज्ञानका प्रयोजन क्या है? सिर्फ यही कि अस्तित्व रखनेवाले (पदार्थों)के कारणोंका पता लगावें। लेकिन जब कारणोंहीसे बिल्कुल इन्कार कर दिया गया तो अब बाकी क्या रहा? तर्कशास्त्रमें यह बात प्रमाण-कोटि तक पहुँच गई है कि हर कार्यका एक कारण होता है, फिर यदि कारण और हेतुसे ही इन्कार कर दिया गया, तो इसका नतीजा या

[1] "तोहाफतुल् फिलासफा, पृष्ठ ६४

तो यह होता कि कोई वस्तु मालूम (=ज्ञात) न रहता, या यह कि किसीको दूसरा मालूम (=ज्ञात) न (मानना) होता और सभी ज्ञान (वस्तुओं)के वास्तविक स्वरूप वस्ता। इस तरह सारा (सच्चा) ज्ञान दुनियामें रह न जाता।'

"तहाफ़ुत् ग्रन्था" में इसी विचारको बहुत साफ करते हुए ग़ज़ाली कहता है—

यदि हम कारण (नियम)से बिलकुल इन्कार कर दिया जाय अर्थात् यह मान लिया जाय कि जगत्का क्रमभाव (कार्य-कारण) स्थिति किसी दूसरी स्थितिके रूपमें बदल सकता है और जगत्‌में कोई अटल नियम नहीं है तो किसी (=हकीम)के हिक्मत (=हिकमत)के लिए क्या बाकी रह जायगा? हिक्मत तो नाम ही इसका है कि सारा जगत् क्रम और नियमका अनुसरण करे। लेकिन जब मनुष्यके सारे काम संचालित हुए प्रदान किये जा सकते हैं—अर्थात् आँखके जानका आँख, कानके विषयका कान, रसनाके विषयका रसना से कोई अन्तर संबंध नहीं है, तो मनुष्यके ढाँचेमें ईश्वरकी कारीगरी या हिक्मतका कौनसा नमूना बाकी रहेगा। और वर्तमान नियम उलट जाय—यानी जो चीज पश्चिमकी ओर गति कर रही है वह पूर्वकी ओर, और जो पूर्वकी ओर गति कर रहा है वह पश्चिमकी ओर गति करने लगे, आग ऊपर उठनेकी जगह नीचे उतरने लगे, मिट्टी नीचे उतरनेकी जगह ऊपर उठने लगे तो फिर क्या (ईश्वरकी) कारीगरी और हिक्मत झूठा न हो जायगा।'

(c) धर्म दर्शन समन्वयका ढंग ग़लत—ग़ज़ाली भी बुद्धि और धर्म अथवा दर्शन और धर्मके समन्वय (समझौता) करानेके पक्षपाती हैं और रोश्द भी, किन्तु दोनोंमें भारी अन्तर यह है। 'इब्न रोश्द' मज़हबको दर्शन (=फ़लसफ़ा)के मातहत समझता है और ग़ज़ाली विचारको मज़हबके मातहत। रोश्द लिखता है'—"जब कोई बात प्रमाण (=बुर्हान)से

'‘तोहाफ़तु'त तोहाफ़त’, पृष्ठ १२२ 'पृष्ठ ४१

'‘फ़स्लुल्-मुकाल’, पृष्ठ ८

सिद्ध हो गई, तो मनुष्य (की बात)में ज़रूर नई व्याख्या (=तावील) करनी होगी।'[1]

(ख) जगत् आदि-अन्त-रहित—अरस्तू तथा दूसरे यूनानी दार्शनिक जगत्को अभावसे उत्पन्न नहीं बल्कि अनादिकालसे चला आता, तथा अनन्तकाल तक चला जानेवाला मानते थे, गजाली और इस्लामको इसपर एतराज था। रोश्दने इस विषयको साफ करते हुए अपने ग्रंथ "अतिभौतिक शास्त्र-संक्षेप"में लिखा है—

"जगत्की उत्पत्तिके सिद्धान्तपर दार्शनिकोंके दो परस्पर विरोधी मत हैं। (१) एक पक्ष उत्पत्तिसे इन्कार करता है, और विकास नियमको माननेवाला है, और (२) दूसरा पक्ष विकाससे इन्कार करता है और उत्पत्ति होनेको मानता है। विकासवादियोंका मत है, कि उत्पत्ति इसके सिवा और कुछ नहीं है कि बिखरे हुए परमाणु इकट्ठे हो मिश्रित रूप स्वीकार कर लेते हैं। ऐसी अवस्थामें निमित्तकारण (ईश्वर)का काम सिर्फ इतना ही होगा कि भौतिक परमाणुओंको शकल देकर उनके भीतर पारस्परिक भेद पैदा करे। इसका अर्थ यह हुआ कि ऐसी अवस्थामें कर्त्ता उत्पादक (=स्रष्टा) नहीं रहा, बल्कि उसका दर्जा गिर गया, और वह केवल चालकके दर्जेपर रह गया।

"इसके विरुद्ध उत्पत्ति या सृष्टिके पक्षपाती मानते हैं, कि उत्पादकने भूत (=प्रकृति)की जरूरत रख बिना जगत्को उत्पन्न किया। हमारे (इस्लामिक)वाद-शास्त्री (मुतक्लमीन, गजाली आदि) और ईसाई दार्शनिक इसी मतको मानते हैं।

इन दोनों मतोंके अतिरिक्त भी कुछ मत हैं, जिनमें कम या अधिक इन दो विचारोंमेंसे किसी एक विचारकी झलक पाई जाती है। उदाहरणार्थ (१) इब्न-सीना यद्यपि विकासवादियोंसे इस बातमें सहमत है, कि (जगत्-उत्पत्ति) केवल भूत(=प्रकृति)के शकल-सूरत पकड़नेका नाम है,

[1] "तलखीस माबाद-तबइयात", अध्याय १, ४

लेकिन सृष्टा (=आकृति)का उत्पत्तिके प्रकारपर वह अरस्तूसे मत भेद रखता है। अरस्तू मानता है कि प्रकृति(=मूल) और आकृति दोनों अनुत्पन्न (=नित्य) हैं, लेकिन इब्न-सीना प्रकृतिको अनुत्पन्न तथा आकृतिको उत्पन्न (=अनित्य) मानता है। इसीलिए उसने जगत्-उत्पादकका नाम आकृति-धारक शक्ति रखा है। इस प्रकार इस (सीना)के मतके अनुसार प्रकृति केवल (काय) अधिकरण[2]का नाम है—उत्पत्ति या कायकी सम्बन्ध (स्वता) उसमें बिल्कुल नहीं है। (२) इसके विरुद्ध देमास्तियुस्[3] और फाराबीका मत है कि काय अवस्थामें स्वयं प्रकृति भी (जगत्) उत्पत्तिका काम कर सकती है। (३) तीसरा मत अरस्तूका है। उसके मतका सार यह है—स्रष्टा (=उत्पादक) न तो प्रकृतिका स्रष्टा है और न आकृतिका, बल्कि इन (प्रकृति आकृति) दोनोंके मिलकर जो कार्य बनते हैं, उनका स्रष्टा है।—अर्थात् प्रकृति में गति पैदाकर उसकी आकृति—अवकल—का यहाँ तक बदल देता है कि जो अन्तर्हित शक्तिकी अवस्थामें होती है, वह कार्य-रूप (=कार्य अवस्था)में आ जाती है। स्रष्टाका कार्य बस इतना ही है। इस तरह उत्पत्तिकी क्रियाका यह अर्थ हुआ कि प्रकृतिको गति देकर अन्तर्हित, अप्रकट) शक्ति(की अवस्था)से कार्य(के रूप)में ले आना।—अर्थात् सृष्टि वस्तुका गति क्रिया है। किन्तु, गति गर्मीके बिना नहीं पैदा हो सकती। यही कारण है कि जल—और पृथिवी—मंडलमें जो गर्मी छिपी (=निहित) है उसीसे रंग रंगके वनस्पतियों और प्राणियोंकी उत्पत्ति होती रहती है। नक्षत्रोंके ये सारे काय नियम—क्रम—से साथ होते हैं जिसको देखकर यह ख्याल होता है कि कोई पूर्णबुद्धि इसका पथ प्रदर्शन कर रही है, यद्यपि स्वभावतः इनके बारेमें किसी इन्द्रिय या मानसिक-ज्ञानका पता नहीं। इस बातका अर्थ यह हुआ, कि अरस्तूके मतमें जगत्-स्रष्टा

---

[1] इन्तकाल। [2] सलाहियत्। [3] तामस्तियुस् (नौशेरवांकालीन)।

प्रकृति यहाँ सांख्यकी प्रकृतिके अर्थमें नहीं बल्कि मूल भौतिकतत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त है।

आकृति—शकल—का उत्पादक नहीं है, और हम उसको उनका उत्पादक मानें, तो यह भी मानना पड़ेगा, कि वस्तुका होना अ-वस्तुसे (अभावसे भावका) होना हो गया।

'इब्न-सीनाकी गलती यह है, कि वह आकृतियोंको उत्पन्न मानता है, और हमारे (इस्लामिक) वादशास्त्रियोंकी गलती यह है, कि वह वस्तु-को अ-वस्तु (=अभाव)से हुई मानते हैं। इसी गलत सिद्धान्त—वस्तुका अ-वस्तुसे होना—को स्वीकार कर हमारे वादशास्त्रियोंने जगत-स्रष्टाको एक ऐसा पूर्ण (सवतंत्र) स्वतंत्र कर्ता मान लिया है, जो कि एक ही समयमें परस्पर-विरोधी वस्तुओंको पैदा किया करता है। इस मतके अनुसार न आग जलाती है, और न पानीमें तरलता और आर्द्रता (=स्नेह)का सामर्थ्य है। (जगतमें) जितनी वस्तुएं हैं वह अपनी-अपनी क्रियाके लिए जगत्-स्रष्टाके हस्तक्षेपपर आश्रित हैं। यही नहीं, इन लोगोंका ख्याल है, कि मनुष्य जब एक ढेला ऊपर फेंकता है तो इस क्रियाको उसके अंग—अवयव स्वयं नहीं करते, बल्कि जगत्-स्रष्टा उसका प्रवर्तक और गतिकारक होता है। इस प्रकार इन लोगोंने मनुष्यकी क्रिया-शक्तिकी जड़ही काट डाली।'

इसी तत्त्वको अन्यत्र समझाते हुए रोश्द लिखता है[1]—

(a) प्रकृति—'(जगत-)उत्पत्ति केवल गतिका नाम है, किन्तु गतिके लिए एक गतिवालेका होना जरूरी है। यह गतिवाला जब केवल (अन्तर्हित) क्षमता या योग्यताकी अवस्थामें है, तो इसीका नाम मूल भूत (प्रकृति) है, जिसपर हर तरहकी आकृतियाँ पिन्हाई जा सकती हैं, यद्यपि वह अपने निजी रूप (=स्वभाव)में हर प्रकारकी आकृतियों—शक्लों—से सर्वथा रहित रहता है। उसका कोई तर्कसम्मत लक्षण नहीं किया जा सकता, वह केवल क्षमता—योग्यता—का नाम है। यही वजह है, जगत् पुरातन—अनादि—है, क्योंकि जगत्की सारी वस्तुएं अस्तित्वमें आनेसे पहिले क्षमता—योग्यता—की अवस्थामें थीं, अ-वस्तु (=अभाव)-

---

[1] "तलखीस् तबइयात" (भौतिक शास्त्र संक्षेप)।

से वस्तु (=भाव) का होना असंभव है।

'प्रकृति सर्वथा अनुत्पन्न (=अनादि) और अ-नश्वर (=न नाश होने लायक) है, दुनियामें पदार्थोंका न अन्त होनेवाला क्रम जारी है। जो वस्तु (अन्तर्हित) क्षमता या योग्यताकी अवस्थामें होता है, वह क्रिया अवस्थामें जरूर आती है अन्यथा दुनियामें बाज चीजोंको बत्तर्विके बिना ही रह जाना पड़ेगा। गतिके पहिले स्थिति या स्थितिके पहिले गति नहीं होती, बल्कि गति स्वयं आदि अन्त रहित है। उसका कर्त्ता स्थिति (=गति शून्यता) नहीं है बल्कि गतिके कारण स्वयं एक दूसरेके कारण होते हैं।

(b) गति सब कुछ—जगतका अस्तित्व भी गतिहीसे कायम है। हमारे शरीरके अन्दर जो तरह-तरहके परिवर्तन होते हैं उन्हींसे हम इस दुनियाका अंदाजा लगाते हैं यही परिवर्तन गतिके भिन्न भिन्न प्रकार हैं। यदि जगत् एक निर्जीव यंत्रकी भांति स्थिर (=गति शून्य) हो जाय, तो हमारे दिमाग से दुनियाका ख्याल भी निकल जायगा। स्वप्नावस्थामें हम दुनियाका अन्दाजा अपने दिमाग और ख्यालकी गतियोंसे करते हैं। और जब हम मधुर स्वप्नसे बेखबर (=सुषुप्त) रहते हैं, उस समय दुनियाका ख्याल भी हमारे दिलसे निकल जाता है। साराश यह है कि यह गतिहीका चमत्कार है जो कि आरम्भ और अन्तके विचार हमारे दिमागमें पैदा होते हैं। यदि गतिका अस्तित्व न होता, तो जगतमें उत्पत्तिका जो यह लगातार प्रवाह जारी है उसका अस्तित्व भी न होता, अर्थात् दुनियामें कोई चीज मौजूद नहीं हो सकती।[1]

(ग) जीव—नफ्स[2] या विज्ञानका सिद्धान्त अरस्तूके लिए जितना महत्त्वपूर्ण है राज़्के लिए वह उससे भी ज्यादा है, क्योंकि उसने इसके ऊपर अपने एक विज्ञानता[3]के सिद्धान्तको स्थापित किया है। लेकिन जिस तरह जगतके समझनेके लिए प्रकृति (=मूल तत्त्व) और गति एवं

---

[1] "तलख़ीस-तब इयात" (भौतिक शास्त्र-संक्षेप)।
[2] यूनानी नवस (Nous)=अक्ल। [3] "वहदत् अक्ल।"

गनिवा स्रोत ईश्वर जानना जरूरी है, उसी तरह ईश्वर कर्त्ता-नफस या कर्त्ता विज्ञान[1] जो कि नफ्सों (=विज्ञानों)का नफ्स (विज्ञान) और सभी नफ्सोंके उद्गम तक पहुँचनेके पहिले प्रकृति और ईश्वर (=नफ्स)के बीचके तत्त्व जीव (रूह)के बारेमें जानना जरूरी है।

(a) पुराने दार्शनिकोंका मत—पुराने यूनानी दार्शनिक जीवके बारेमें दो तरहके विचार रखते थे, एक वह जो कि जीवको भूत (=प्रकृति)-से अलग नहीं समझते थे जैसे एम्पदोक्ल (४८३-३० ई० पू०), एपीकुरु (३४१-२७० ई० पू०)। और दूसरे दानोंको अलग अलग मानते थे, इनमें मुख्य हैं अनक्सागोर (५००—४२८ ई० पू०) अफलातून (४२७—३७० ई० पू०)। पुराने यूनानी दार्शनिक इस बातपर एकमत थे, कि जीवमें ज्ञान और स्वत गति यह दो बातें अवश्य पाई जाती है। अखीमनक मतमें जीव सदा गतिशील तथा आदि अन्तहीन (=नित्य) पदार्थ है। क्षणिकवादी हेराक्लितु (५३५-४२५ ई० पू०)के मतमें जीव सार (भौतिक) तत्त्वोंसे श्रेष्ठ और सूक्ष्म है, इसीलिए वह हर तरहकी परिवर्तनशील चीजोंको जान सकता है। देवजन (४२१—३२२ ई० पू०) जीवके मूल तत्त्वको वायुका सा मानता है, जीव स्वयं उसकी दृष्टिमें सूक्ष्म तथा ज्ञानकी शक्ति रखता है। परमाणुवादी दमोक्रितु (४६०-३७० ई० पू०)के मतमें जीव कभी न स्थिर होनेवाली सतत गतिशील, तथा दुनियाकी दूसरी चीजोंको गति देनेवाला तत्त्व है, भौतिकवादी एम्पदोक्ल (४८३ ४३० ई० पू०) के मतमें जीव दूसरी मिश्रित वस्तुओंकी भाँति चार महाभूतोंसे बना है। आपसमें मत भेद जरूर है, किन्तु सिर्फ पिथागोर[2] (५७० ५०० ई० पू०) और जनो[3] (४६० ४३० ई० पू०)को छोड़ सुक्रात (४६९ ३९९ ई०

[1] नफस फआल=Active Reason

[2] सख्या ब्रह्मके सिद्धान्तमें जीवको भी शामिलकर उसे अभौतिक सख्या-तत्त्व मानता था।

[3] वह जीवको सख्या जैसी एक अभौतिक वस्तु मानता था।

पू०)से पहिलेवाले सारे यूनानी दार्शनिक जीव और भूत (=प्रकृति) को अलग अलग तत्त्व नहीं समझते।

(b) अफलातूँका मत—अफलातूँने इस बातपर ज्यादा जोर दिया कि जीव और भूत अलग अलग तत्त्व हैं। मानव शरीरके भीतरके जीव उसके मतमें तीन प्रकारके हैं—(१) विज्ञानीय जीव[1] जो कि मनुष्यके मस्तिष्कके भीतर [illegible] रहता है, (२) दूसरा पार्थिव जीव हृदयमें रहता है, और नश्वर है। इससे आत्माको शौर्य और वीरताकी प्राप्ति होती है। (३) पार्थिव जीवसे भी नीचे प्राकृतिक (=वानस्पतिक) जीव है, क्षुधा पिपासा, मानुषिक कामना आदिका उद्गम यही है। वानस्पतिक (=प्राकृतिक) और पार्थिव जीव आमतौरसे आत्मिक जीवके आधीन काम करते हैं, किन्तु कभी-कभी वह मन-मानी करने लगते हैं, तब अक्ल (=विज्ञान) बेचारी असमर्थ हो जाती है, और आत्मीके काम अबुद्धि-पूर्वक हो जाते हैं।

(c) अरस्तूका मत—अरस्तू जीवके बारेमें अपने गुरु अफलातूँके इस मत (भूतसे जीवका एक भिन्न द्रव्य होना)से सहमत नहीं है। अरस्तूका पुराने दार्शनिकोंपर यह आक्षेप है कि वह जीवका ऐसा लक्षण नहीं बतलाते जो कि वानस्पतिक (प्राकृतिक) पार्थिव, और आत्मिक तीनों प्रकारके जीवोंपर एकसा लागू हो।[2] अरस्तू अपना लक्षण करते हुए कहता है कि भूत (=प्रकृति) क्रियाका आधार[3] (=क्रिया अधिकरण) मात्र है, और जीव केवल क्रिया या आकृति[4] है। भूत और जीव अथवा प्रकृति और आकृति परस्पर-संबद्ध तथा एक दूसरेके पूरक हैं; इन दोनोंके योगको ही प्राकृतिक (=भौतिक) पिंड[5] कहा जाता है। अभाव या अंधकारमें पड़ी प्रकृति (=भूत)को जीव (=आकृति) प्रकाशमें लाता है, दूसरी ओर

[1] रूहे-अक्ली।
[2] "प्राणिशास्त्र", अध्याय २
[3] इन्फ़आल Receptive
[4] Form सूरत।
[5] Physical body जिस्म-तबई।

वानस्पतिक और पार्थिव जीवकी निराशीसे निकालकर उसे नातिक-विज्ञान नाममें जाना चाहता है। वह जीवन ही नातिक विज्ञान[1] है।

नातिक-विज्ञान—विज्ञानीय जीव या नातिक विज्ञान नीचेके तत्वों (प्रकृति आकृति)से श्रेष्ठ है, और वही सभी चीजोंका जानना[2] है—मानो नातिक विज्ञान ऊपरसे नीचेकी दुनियामें खास उद्देश्यसे भेजा जाता है। उसका इस दुनियावी (प्राकृतिक या आकृतिक) व्यक्तियोंसे कोई अपनापन नहीं वह अवयवको नहीं अवयवी, सामान्य तथा आकृतिका ज्ञान रखता है। इसीके द्वारा मनुष्य इंद्रियोंकी दुनियाके पर ज्ञान-गम्य दुनियाको जाननेमें समर्थ होता है। किन्तु ज्ञान-गम्य दुनियाका ठीक-ठीक पता अतिमानुष विज्ञानों (=ऊपरकी नफ्सों)का ही होता है अतः नातिक विज्ञान एक दर्पण है जिसके द्वारा मनुष्य ऊपरकी विज्ञानीय दुनियाके प्रतिबिंबको देख सकता है।

इन्द्रिय विज्ञान—नातिक-विज्ञान अवयवका ज्ञान नहीं करता, वह अति मानुष विज्ञानोंकी भाँति केवल अवयवी, आकृति या सामान्यका ज्ञान करता है, यह कह आए है। इसलिए अवयव या व्यक्तिके ज्ञानके लिए अरस्तू एक और विज्ञानकी कल्पना की है, जिसका नाम इंद्रिय विज्ञान है। आगको छूकर गर्मीका ज्ञान इंद्रिय विज्ञानका काम है। इंद्रिय विज्ञानोंका कार्यक्षेत्र निश्चित है शरीरमें उनका सीमित स्थान है, नातिक-विज्ञान न तो अवयव या शरीरके किसी भागमें समाया हुआ है, न शरीरके भीतर एक जगह सीमित होकर बैठा है, न उसके लिए बाह्य विषयोंकी पाबन्दी है, और न उसकी क्रियाके लिए देश-काल या कमी-बेशीकी। वह भौतिक वस्तुओंपर बिलकुल आश्रय नहीं करता।

नातिक-विज्ञान—जीव और शरीरके पारस्परिक संबंध तथा शरीरके उत्पत्ति विनाशके साथ जीवके उत्पत्ति विनाशकी बात कह आए है किंतु नातिक विज्ञान जैसा कि अभी बतलाया गया, शरीरसे बिलकुल अलग है

---

[1] नफ्स-नातिक़ा, या रूहे अक्ली नतक़=Noetic (यूनानी)=ज्ञान।
[2] मुद्रिक। [3] अजरामें अलूइया।

जिस तरह अपनी क्रियाके आरंभ करनेमें वह शरीरपर अवलंबित नहीं, उसी तरह शरीरके नष्ट हो जानेपर भी उसमें परिवर्तन नहीं होता, वह नित्य सनातन है।

नातिक विज्ञानके अरस्तूने दो भेद बतलाए हैं—क्रिया विज्ञान, और अधिकरण विज्ञान[1], क्रिया विज्ञान वस्तुओंको ज्ञात—मालूम—होने योग्य बनाता है, यह अतिमानुष विज्ञानोंका नातिक-विज्ञान है, जिसके भागीदारमें मानव जाति भी है। अधिकरण विज्ञान ज्ञात (वस्तुओं)से प्रभावित हो उनके प्रतिबिंबको अपने भीतर ग्रहण करता है, यह मानव व्यक्तियोंका विज्ञान है, पहिलेका गुण क्रिया और प्रभाव है, दूसरेका गुण है प्रभावित होना। ये दोनों ही तत्त्व मौजूद रहते हैं किंतु अधिकरण विज्ञानका प्रकाश=प्राकट्य क्रिया विज्ञानके बाद होता है। क्रिया विज्ञान अधिकरण विज्ञानसे श्रेष्ठ है, क्योंकि क्रिया विज्ञान शुद्ध विज्ञानीय शक्ति[2] है, किन्तु अधिकरण विज्ञान चूंकि उससे प्रभावित होता है इसलिए उसमें पिंड (=शरीर)का भी मेल है[3]। अरस्तूके नफ्स (=विज्ञान)-संबंधी विचारों का संक्षेप है—

(१) क्रिया विज्ञान और अधिकरण विज्ञान एक नहीं भिन्न भिन्न है।
(२) क्रिया विज्ञान नित्य और अधिकरण विज्ञान नश्वर है।
(३) क्रिया विज्ञान मानव व्यक्तियोंसे भिन्न है।
(४) क्रिया विज्ञान आत्माके भीतर भी है।

अरस्तू-टीकाकार सिकन्दर अफ्रदिसियुस् और देमासियुस (५४९ ई०) दोनों अरस्तूसे भिन्न विचार रखते हैं। वह क्रिया विज्ञानको मानवसे बिलकुल अलग मानते हैं क्रिया विज्ञानको देमासियुस भदन्त विज्ञान कहता है, और उसीको सिकन्दर कारण-कारण कहता है।

---

[1] नफ्स-फेअली Active reason [2] नफ्स-इन्फआली, Material or Receptive Nous (Reason)
[3] अक्ली क़ूवत्। [4] The Anime प्राणि-शास्त्र (किताबुल हयात)।

(घ) रोश्दका विज्ञान (=नफ़्स) वाद—आत्मा विवरणसे मस्लूम निम्न विचार हमें मालूम है। तत्त्व मुख्यतः तीन हैं—प्रकृति जीव (=आकृति) और विज्ञान (=नफ़्स)। जीवके वह तीन भेद मानता है, जिनमें मानुष (=विचारणीय) जीवको विज्ञानकी तरफ खींचता जाता है। विज्ञान (=नफ़्स)में वह सिर्फ दो भेद मानता है—क्रिया-विज्ञान और अधिकरण विज्ञान।

लेकिन रोश्दके वर्णनसे नफ़्स(=विज्ञान)के और भेद मिलते हैं—(१) प्राकृतिक विज्ञान[1] या भूतानुगत विज्ञान (२) अभ्यस्त विज्ञान[2], (३) ज्ञाता विज्ञान[3], (४) अधिकरण विज्ञान और (५) क्रिया विज्ञान।

सिकन्दर और अरब दार्शनिक प्राकृतिक-विज्ञान और अधिकरण विज्ञानको एक समझते हैं, किन्तु रोश्द कभी-कभी प्राकृतिक-विज्ञानको क्रिया विज्ञान आत्माके रूपमें लेता है और उसे अनादि अनुत्पन्न मानता है, और कहीं इनसे भिन्न मानता है। तेमासियुस् अभ्यस्त विज्ञान और ज्ञाता विज्ञानको एक मानता है, क्योंकि अक्ल(=विज्ञान)का अक्ल ही पता कर सकती है, माद्दा (=प्रकृति) अक्ल (=विज्ञान)का नहीं पता कर सकता, अतएव सारी ज्ञान रखनेवाली वस्तुएं सिर्फ क्रिया विज्ञानकी ही उत्पन्न हैं। इस बातकी और पुष्टि करते हुए वह कहता है—यद्यपि सभी अक्ल (=नफ़्स या विज्ञान) अक्ल-फ़आल (कर्ता विज्ञान)से उत्पन्न हैं, लेकिन ज्ञानकी शक्ति हर व्यक्तिमें उसकी अभ्याससे प्राप्त ज्ञान-योग्यताके अनुसार होती है, इसलिए ज्ञाता विज्ञान और अभ्यस्त विज्ञानमें अन्तर नहीं रहा, अर्थात् ज्ञाता विज्ञान भी वही है जो कि अभ्यास प्राप्त होता है। तेमासियुसने इस मतके विरुद्ध रोश्द अभ्यस्त विज्ञानमें दोनों बातें मानता है—एक ओर उसे वह ईश्वर (=कर्त्ता विज्ञान)का कार्य बतलाता है और इस प्रकार उसे अनादि और अनश्वर मानता है और दूसरी ओर उसे आदमीके अभ्यासका परिणाम कहता है, जिससे वह उत्पन्न तथा नश्वर है।

---

[1]अक्ल हेवलानी। [2]अक्ल-मुस्तफ़ाद। [3]अक्ल मुद्रिक। [4]अक्ले-फ़आल।

नाम अलग अलग रखते हुए भी अरस्तू तथा उसके दूसरे टीकाकारोंकी भाँति रोश्द वस्तुतः नफ्स (=अक्ल, विज्ञान)के भेदोंको न मानकर नफ्सकी एकताको स्वीकार करता है। वह कहता है—यह ठीक है कि चूँकि विज्ञान (=नफ्स)अनेक भिन्न भिन्न आकार प्रकारोंको स्वीकार करनेकी शक्ति रखता है, इसलिए जहाँ तक उसके अपने स्वरूपका संबंध है उसे आकार प्रकार से रहित होना चाहिए—अर्थात् अपने असली स्वरूपमें विज्ञान (=नफ्स) ज्ञान-योग्यताका नाम है। लेकिन यह कहनेका कोई अर्थ नहीं कि सिर्फ योग्यताके अस्तित्वको स्वीकार कर मनुष्यमें क्रिया विज्ञानके होनेसे इन्कार कर दिया जाय। और जब हम मनुष्यमें क्रिया विज्ञानको मानते हैं तो यह भी मानना पड़ेगा, कि विज्ञान[1] अपने स्वरूपमें किसी विशेष आकार प्रकार के साथ मूर्तिमान् हो गया—"क्रिया सिर्फ (अप्रकट, अन्तर्हित) योग्यताके प्रकाशका नाम है", वह किसी विशेष आकार-प्रकारके साथ मूर्तिमान् होनेका नाम नहीं है। अतएव यह कहनेके लिए कोई कारण नहीं मालूम होता, कि आध्यात्मिक या (आन्तरिक) संभवनीयता या योग्यताको तो स्वीकार किया जाये, किन्तु बाह्य क्रियावत्ता या प्रकाशको स्वीकार न किया जाय। ऐसी अवस्थामें, ज्ञान या प्रतीतिका अर्थ सिर्फ ज्ञान योग्यता नहीं, बल्कि ज्ञान घटना है। जबतक आध्यात्मिक या अधिकरण-संबंधी और बाह्य या क्रिया-संबंधी विज्ञानोंके पारस्परिक प्रभाव—अर्थात् शक्तिमत्ता और क्रियावत्ता—एकत्रित न हों तबतक ज्ञान अस्तित्वमें आ नहीं सकता। यह ठीक है, कि अधिकरण विज्ञान[2] में अनेकता या बहुसंख्यकता है, और वह मानव शरीरकी भाँति नश्वर है, तथा क्रिया विज्ञान अपने उद्गमके ख्यालसे मनुष्यसे अलग और अनश्वर है।

दोनों (क्रिया और अधिकरण) विज्ञानोंमें उपरोक्त भेद रहते भी दोनोंका एकत्रित होनेका न तो यह अर्थ है, कि क्रिया विज्ञान व्यक्तियोंकी अनेकताके कारण अनेक हो जाये, और न इसका यह अर्थ है कि व्यक्तियोंकी

[1] Nous (नफ्स), अक्ल। [2] अक्ल-इ-फ़अ्आली।

मानवता खतम हो जाय, और वह क्रिया विज्ञानकी एकतामें विलीन हो जायें। इसका अर्थ सिर्फ यही है, कि क्रिया विज्ञानके (अनादि सनातन) अंशोंमें मानवता बाँट दी गई है—अर्थात् क्रिया और अधिकरण विज्ञानोंके एकत्रित होनेका सिर्फ यह अर्थ है कि मनुष्यके मस्तिष्ककी बनावट जिस तरह एक-सी योग्यताओंकी प्रदर्शिका है उसमें मानवजातिका क्रिया विज्ञानके अंशोंका मिश्रण होता रहता है। ये अंश अपने स्वरूपमें अनश्वर और चिरस्थायी हैं। इनका अस्तित्व मानव व्यक्तियोंके साथ बँधा नहीं है। बल्कि, यदि कभी मानव-व्यक्तिका अस्तित्व न रह जाय, उस अवस्थामें भी इनका काम उसी तरह जारी रहता है जिस तरह मानव व्यक्तियोंके भीतर। इस असंभव कल्पनाकी भी आवश्यकता नहीं। सारा विश्व **परम विज्ञान**[1]के प्रकाशमान कणोंसे प्रकाशित है। प्राणी, वनस्पति, धातु और भूमिके भीतर-बाहरके भाग—सभी जगह इसी परम विज्ञानका शासन चल रहा है। परम विज्ञान जैसे इन सब जगहोंमें प्रकाशमान है, वैसे ही मनुष्यमें भी, क्योंकि मनुष्य भी उसी **प्रकाशमान** विश्वका एक अंग है। जिस तरह मानवता सारे मनुष्योंमें एक ही है, उसी तरह सारे मनुष्योंमें एक विज्ञान भी पाया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ, कि व्यक्ति-संख्या भेदसे शून्य तथा विश्व शासक परम विज्ञान जब क्रियापनका वस्त्र पहनता है तो भिन्न भिन्न किस्मोंमें प्रकाशित होता है—कहीं वह प्राणीमें प्रकाशित होता है कहीं रचनाओंमें[2] और कहीं मनुष्यमें, इसीलिए व्यक्ति स्वरूप नश्वर है किन्तु मानवता विज्ञान[3] चिरन्तन तथा अनश्वर है, क्योंकि वह उस विज्ञानका एक अंश है।

उपरोक्त कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि क्रिया विज्ञान और मानवता विज्ञान दोनोंके अनादि होनेपर मानवता कभी नष्ट न होगी—मानवमें ज्ञान (=ज्ञान साइंस आदि)का प्रकाश सदा होता रहेगा।

(ङ) सभी विज्ञानोंका परमविज्ञानमें समागम—रोश्दके यह

[1] अक्ल-मुत्लक़। [2] अफ़लाक। [3] नफ़्से इन्सानियत।

पाँच किस्मोंका[1] नाम हम बतला चुके हैं। रश्द उनको समझाते हुए कहता है कि (१) प्राकृतिक विज्ञानका[2] अस्तित्व मनुष्यके पैदा होनेके साथ होता है, जो कि वस्तुतः सिर्फ ज्ञानकी योग्यता या सम्भावनाके रूपमें रहता है, भौतिक बढ़नेके साथ (प्रत्यक्ष) योग्यता क्रियाका रूप लेती है, और इस विकासका अन्त (२) अभ्यस्त विज्ञानकी[3] प्राप्तिमें होता है जो कि मानव जीवनकी चरम सीमा है। लेकिन अभ्यस्त विज्ञान विकासका चरम-स्थान नहीं है। हाँ, प्रकृतिसे लिप्त रहते उसका जो विकास हो सकता है, उसका चरम विकास यह अवश्य है। उससे आगे प्राकृतिक जगत्से ऊपर उठकर यह शुद्ध विज्ञान जगत्की ओर बढ़ता है जितना यह विज्ञान जगत्के करीब पहुँचता जाता है, उतना ही उसका विज्ञान जगत्में समागम होता जाता है। इस अवस्थामें पहुँचकर विज्ञान हर प्रकारकी वस्तुओंका ज्ञान स्वयं प्राप्त कर लेता है। अर्थात् ज्ञाता विज्ञानकी[4] अवस्थामें पहुँच जाता है। यही वह अवस्था है, जहाँ मनुष्यके भेद उठ जाते हैं, और मनुष्य कर्त्ता विज्ञान (=ईश्वर)का पद प्राप्त कर लेता है। चूँकि कर्त्ता विज्ञानके अन्दर सब तरहकी वस्तुएँ मौजूद हैं, इसलिए मनुष्य भी मूर्त्तिमान् "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"[6] बन जाता है।

[कर्त्ता (परम) विज्ञान ही सब कुछ]—अरस्तू कहता है— ज्ञान ही विज्ञानका स्वरूप है, और ज्ञान भी मामूली इन्द्रिय-विषयोंका नहीं बल्कि सनातन गुण रखनेवाली चीजों—विज्ञानमय (=विज्ञान-जगत)—का। तब स्पष्ट है कि नफ़्सोंका नफ़्स (=विज्ञानोंका विज्ञान) अर्थात् कर्त्ता विज्ञान (ईश्वर)का स्वरूप ज्ञानके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता। ईश्वरमें जीवन है और उसका जीवन केवल ज्ञान क्रिया होनेका नाम है। कर्त्ता-विज्ञान सनातन शिव और केवल मंगल (-मय) है, और ज्ञानसे बढ़कर कोई शिवता (=अच्छाई) नहीं हो सकती। ("नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह

[1]अक्ल। [2]अक्ल हेवलानी। [3]अक्ल-मुस्तफ़ाद। [4]अक्ले-मुद्रिक। [5]अक्ल-फ़आल। [6]"हमा-ओस्त" (सब वह है)।

नियते') अन ईश्वर इस गिवताका ग्रोर ह । किन्तु उसके नानमें विनाता ग्रौर विनयका भद नहीं क्योकि यहाँ उसके स्वम्पक सिवा ग्रौर कोई चाज मौजूद भी नहीं है ग्रौर ह भी ता उसके ग्रन्दर। ग्रतएव वह (=कर्त्ता विनान ईश्वर) यदि ग्रपनसे भिन्न चीजका नान भी करे, ता भी ग्रपन स्वम्पक ज्ञानसे भिन्न ग्रौर हो नहीं सकता । इस तरह वह स्वयं ही नाता ग्रौर ज्ञय होता है बल्कि यो कहना चाहिए कि उसका नान, नानके ज्ञानका नाम है क्योकि उस ग्रवस्थामें नान नय ग्रौर नातामें कोई भी भेद नहीं है—जो ज्ञान है वही ज्ञाता है, जो ज्ञाता है वही ज्ञेय है, ग्रौर इनके ग्रतिरिक्त सारी चीज नास्ति है ।[1]

रान्द ग्राचार शास्त्रमें सक्षपमें फिर ग्रपने विज्ञान ग्रद्वतवादपर लिखता है[2]—

'नान—ग्रनीति—के ग्रतिरिक्त ग्रौर जितनी निमताय (=ग्रच्छाइयाँ) है, उनमेंसे कोई भी स्वत वाञ्छनीय नहीं होती, ग्रौर न किसीसे ग्रायुमें वृद्धि होती है । वह सबकी सब नश्वर है किंतु यह गिवता (ज्ञान) ग्रनश्वर है सबकी सब दूसराकी वाञ्छा पूरी करती है किंतु यह (नान) स्वय ग्रपनी वाञ्छा है उसका छोड़ किसी वाञ्छाका ग्रस्तित्व नहीं। लेकिन मुश्किल यह है, कि नानावा उच्चतम पद मनुष्यकी पहुँचसे बाहर है—मनुष्य सिरसे पैर तक भौतिकताम घिरा हुग्रा है वह मानवताकी चहारदीवारीके भीतर रहते नन पदो तक किसी तरह पहुँच नहीं सकता । हाँ उसके भीतर ईश्वर (=कर्त्ता विज्ञान)की ज्योति जग रही है यदि वह उसकी ग्रार बढ़नेकी कोशिश कर—मानवताकी पोशाक (=ग्रावरण)को उतारकर—ग्रपने ग्रपनत्व (=मपन)को नष्ट कर दे ता निस्सन्देह केवल शिवकी प्राप्ति उसे हा सकता है । लोग कहते है कि मनुष्यको मनुष्यकी तरह जीवन-यापन करना चाहिए, चूकि वह स्वय भौतिक है, इसलिए भौतिकतासे ही उसे नाता रखना

---

[1] "माबाद-तबइयात", पृष्ठ २५५

[2] "तल्खीस किताबे-ग्रख़लाक", पृष्ठ २९६

चाहिए। लेकिन यह ठीक नहीं है। हर जातिका शिवता (=अच्छाई) सिर्फ उसी चीजमें होती है, जिसमें उसके आत्मदम वृद्धि होती हो, और जो उसके अनुकूल हो। अतएव मनुष्यकी शिवता यह नहीं है कि वह कीड़ा-मकोड़ोंकी तरह (प्रवाहमें) बह जाय। उसके भीतर तो ईश्वरकी ज्योति जगमगा रही है, वह उसकी ओर क्यों न ख्याल करे और ईश्वरसे वास्तविक समागम क्यों न प्राप्त करे—यही तो वास्तविक शिवता[1] और उसका अमर जीवन है। "उस पदकी क्या प्रशंसा की जाय? वह आश्चर्यमय पद है, जहाँपर पहुँचकर बुद्धि आत्मविभोर हो जाती है, लेखनी आनंदातिरेकसे रुक जाती है, जिह्वा स्खलित होने लगती है और शब्द अर्थोंके पर्दोंमें छिप जाते हैं। जबान उसके स्वरूपको किस तरह कहे और लेखनी चलना चाहे तो भी किस तरह चल?'

(च) **परमविज्ञानकी प्राप्तिका उपाय**—यद्यपि ऊपरके उद्धरण-की भाषा और कुछ-कुछ आशयसे भी—आदमीको भ्रम हो सकता है, कि रश्द सूफीवादके योग ध्यानको कर्ता विज्ञान (=ईश्वर)के समागमके लिए जरूरी समझता होगा, किन्तु ध्यानसे देखनेसे मालूम होगा कि उसका परमविज्ञान समागम ज्ञानको प्राप्तिपर है। इस्लामिक दार्शनिकोंमें रश्द सबसे ज्यादा सूफीवादका विरोधी है। वह योग ध्यान, ब्रह्मलीनता को बिलकुल झूठी बात कहता है। मनुष्यकी शिवता उसी योग्यताको विकसित करनेमें है, जिसे लेकर वह पैदा हुआ, और वह है ज्ञानकी योग्यता। आदमीको उसी वक्त शिवता प्राप्त होती है जब वह इस योग्यताको उन्नत कर पदार्थोंकी वास्तविकताके तह तक पहुँच जाता है। सूफियोंका आचार उपदेश बिल्कुल असत्य और बेकार है। मनुष्यके पैदा होनेका प्रयोजन यह है, कि इंद्रिय जगत्पर विज्ञान-जगत्का रंग चढ़ाये। बस इसी एक उद्देश्यके प्राप्त हो जानेपर मनुष्यको स्वर्ग मिल जाता है, चाहे उसका कोई भी मजहब क्यों न हो। 'दार्शनिकोंका असली मजहब है

---

[1] सआदत्।   [2] फना फिल्लाही।

विचार शक्तिका अभ्यास, क्योंकि ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ उपासना केवल है। यह मानी गई कि उसकी शक्ति—कार्यशक्ति—का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जाय यह ईश्वरके परिचय करने जैसा। यही एक धर्म है, जिससे ईश्वर खुश होता है। सबसे बुरा धर्म वे करते हैं, जो कि ईश्वरकी धर्म ही श्रेष्ठ उपासना करनेवालेका कातिल बन गया पगला करते हैं।[1]

(छ) मनुष्य परिस्थितिका दास—मनुष्य काम करनेमें स्वतन्त्र है या परतन्त्र? दूसरे दिनकी धार्मिकोंकी भाँति स्पिनोजाने भी इस प्रश्नको उठाया है। इसपर कुछ कहनेसे पहिले संकल्पको समझना जरूरी है, क्योंकि कर्म करनेसे पहिले संकल्प होता है, अथवा संकल्प स्वयं ही एक कर्म—मानस-कर्म—है।

(ज) संकल्प—संकल्पके कारण क्या होता है?—संकल्प मनुष्यकी एक आन्तरिक (=मानसिक) अवस्था है जिसका उद्देश्य यह है कि मनुष्य कोई कर्म करे। लेकिन मनुष्यके संकल्पकी उत्पत्ति उसके भीतर न होकर बल्कि उसकी उत्पत्ति किसी न किसी बाहरी कारणपर निर्भर है। यही नहीं कि इन बाहरी कारणोंसे हमारे संकल्पमें दृढ़ता पैदा होती है, बल्कि हमारे संकल्प की कायमी और सामान्य स्थिति भी बाहरी कारणोंपर निर्भर है। संकल्प राग या द्वेष इन दो मानसिक अवस्थाओंका है जो कि बाहर किसी लाभदायक या हानि कारक वस्तुके अस्तित्व या ख्यालसे हमारे भीतर पैदा होती है। इससे यह स्पष्ट है कि एक हद तक संकल्पका अस्तित्व बाहरी कारणों ही पर निर्भर है—जब कोई सुन्दर वस्तु हमारी आँखोंके सामने आती है, अवश्य ही हमारा आकर्षण उसकी ओर होता है, जब कोई असुन्दर या भयानक वस्तुपर हमारी निगाह पड़ती है, तो उससे विराग होता है। मनकी इसी राग-द्वेष या आकर्षण विराग वाली अवस्थाका नाम संकल्प है। जब तक हमारे मनको उकसानेवाली कोई बात सामने नहीं आती उस वक्त तक संकल्प भी अस्तित्वमें नहीं आता, यह स्पष्ट है।

[1] History of Philosophy (G L Lewis) Vol 1

(b) संकल्पोत्पादक बाहरी कारण—(१) बाहरी कारण संकल्प के उत्पादक होते हैं, यह तो बतलाया, किन्तु यह भी ख्याल रखना है कि इन बाहरी कारणोंका अस्तित्व भी क्रम रहित—व्यवस्था शून्य—नहीं होता, बल्कि ये स्वयं बाहरवाले अपने कारणोंके आधीन होते हैं। इस प्रकार हमारे भीतर संकल्पका आना क्रम शून्य तथा बे-समय नहीं होता बल्कि (२) कारणोंके क्रम (=परम्परा)की भाँति संकल्पोंकी भी एक क्रमबद्ध शृंखला होती है। जिसकी प्रत्येक कड़ी कारणोंकी शृंखलाकी भाँति बाहरी कड़ीसे मिली होती है। इसके अतिरिक्त (३) स्वयं हमारी शारीरिक व्यवस्था—जिसपर कि बहुत हद तक हमारे संकल्प निर्भर करते हैं—भी एक खास व्यवस्थाके आधीन है। ये तीनों कार्य-कारण शृंखलामें एक दूसरेसे जकड़ी हुई हैं। इन तीनों शृंखलाओंके सभी अंश या कड़ियाँ मनुष्यकी अक्लकी पहुँचसे बाहर हैं। हमारे शरीरकी व्यवस्थामें जो परिवर्तन होते हैं, वे सभी हमारे ज्ञान या अधिकारसे बाहर हैं। इसी तरह बाहरी जगत्‌की जो क्रियाएँ या प्रभाव हमारे मानसिक जीवनपर काम करते हैं, वह असंख्य होनेके अतिरिक्त हमारे ज्ञान या अधिकारसे बाहर रहते, हमपर काम करते हैं। इस तरह इन बाहरी क्रियाओं या प्रभावोंमेंसे अधिकांशको संचित करना क्या उनका ज्ञान प्राप्त करना भी मनुष्यकी शक्तिसे बाहरकी बात है। यही वजह है कि मनुष्य परिस्थितिके सामने लाचार और बेबस है। वह चाहता कुछ है और होता कुछ है।

(४) सामाजिक विचार—हम देख चुके हैं, कि रोश्द जहाँ विज्ञान (=नफ्स)को लेता है तो ज्ञानकी हलकीसी चिनगारीको भी परम विज्ञानमें आई बतलाकर सबको विज्ञानमय बतलाता है। साथ ही प्रकृति (=भूत) से न वह इन्कार करता है, और न उसे विज्ञानका विकार या माया बतलाता है, बल्कि परिस्थितिवश्य तो विज्ञान-ज्योतिसे युक्त मानवको वह जिस प्रकार प्रकृतिसे लाचार बतलाता है उससे तो अपने क्षेत्रमें प्रकृति उसके लिए विज्ञानसे कम स्वतंत्र नहीं है। इन्हीं दो तरहके विचारोंको लेकर उसके समर्थकोंका विज्ञानवादी और भौतिकवादी दो दलोंमें

बँट जाना कितना स्वाभाविक था। यदि रोश्दको विज्ञानवाद भी पसन्द था तो इसमें तो शक नहीं कि यह गजाली आदि सूफ़ीवाद या शंकर आदिके अद्वैत-ब्रह्मवादकी तरहका नहीं था, जिसमें जगत ब्रह्ममें कल्पित सिर्फ माया या अध्यास मात्र हो। लेकिन रोश्दके सामाजिक विचारोंको जो आगे हम देने जा रहे हैं, उससे जान पड़ता है कि भौतिकवाद और व्यवहारवादपर ही उसका जोर ज्यादा था।

(क) समाजका पक्षपाती—समाजके सामने व्यक्तिको रोश्द कितना कम महत्त्व देता था, यह उसके इस विचारसे साफ़ हो जाता है—मानवजातिकी अवस्था वनस्पतिकी भाँति है। जिस तरह किसान हर साल बेकार तथा निष्फल वृक्षों और पौधोंको जड़से उखाड़ फेंकते हैं, और सिर्फ उन्हीं वृक्षोंको रहने देते हैं, जिनमें फल लगनेकी आशा होती है, उसी तरह यह बहुत आवश्यक है कि बड़े-बड़े नगरोंकी जन-गणना कराई जाय और उन व्यक्तियोंका कतल कर दिया जाये, जो बेकार जीवन बिताते हैं, और कोई ऐसा पेशा या काम नहीं करते जिनसे जीवन-यापन हो सके। सफ़ाई और स्वास्थ्य-रक्षाके नियमानुसार नगरोंका बसाना सरकारका कर्तव्य है और यह तबतक संभव नहीं है, जबतक कि काम करनेमें असमर्थ लूले, लँगड़े और बेकार आदमियोंसे शहरोंको पाक न कर दिया जाय[1]।

रोश्दने अरस्तूके राजनीति-शास्त्रके अभावमें अफलातूंके प्रजातंत्र पर विवरण लिखा था, और इस बारेमें अफलातूंके सिद्धान्तोंसे बहुत हद तक सहमत था। नगरको फ़जूलके आदमियोंसे पाक करना अफलातूंके दुर्बल बच्चोंको मरनेके लिए छोड़ देनेका अनुकरण है। स्वास्थ्य-रक्षा, आनुवंशिकता और सन्तान-नियंत्रण द्वारा, बिना कतल किये भी, अगली पीढ़ियोंको कितना बेहतर बनाया जा सकता है, इसे रोश्दने नहीं समझा। तो भी उस वक्तके ज्ञानकी अवस्थामें यह क्षम्य हो सकता है, किन्तु उनके

---

[1] "इब्न रोश्द" (रेनां, २४७) अन्सारी द्वारा उद्धृत, पृष्ठ २६२

लिए क्या कहा जाय, जो कि आज कत्ल आमके द्वारा "हीन" जातियोंका सहार कर 'उच्च' जातिका विस्तार करना चाहते हैं।

रोश्द मूर्ख शासकों और धर्मान्ध मुल्लोंके सख्त खिलाफ था। मुल्लोंको वह विचार-स्वातंत्र्यका दुश्मन होनेसे मानवताका दुश्मन मानता था। अपने समयके शासकों और मुल्लाओंका उसे बडा तल्ख तजर्बा था, और हकामकी (हस्तलिखित) चार लाख पुस्तकोंकी लाइब्रेरीकी होली उसे भूलनेवाली न थी। इस तरह दुनियामें अंधेर देखते हुए भी वह फाराबी या बाजाकी भांति वैयक्तिक जीवन या एकान्तताका पक्षपाती न था। समाजमें उसका विश्वास था। वह कहता था कि वैयक्तिक जीवन न किसी कलाका निर्माण कर सकता है न विज्ञानका। वह ज्यादासे ज्यादा यही कर सकता है, कि समाजकी पहिलेकी अर्जित निधिपर गुजारा करे और जहाँ-तहाँ नाममात्रका सुधार भी कर सके। समाजमें रहना तथा अपनी शक्तिके अनुसार सारे समाजकी भलाईके लिए कुछ करना हर एक आदमीका फर्ज होना चाहिए। इसीलिए वह स्त्रियोंकी स्वतंत्रता चाहता है। मजहबवालों-की भाँति सदाचार नियमको वह 'आसमानसे टपका' नहीं मानता था, बल्कि उसे बुद्धिकी उपज समझता था न कि वैयक्तिक स्वार्थके लिए वैयक्तिक बुद्धिकी उपज। राष्ट्र या समाजकी भलाई उसके लिए सदाचारकी कसौटी थी। धर्मके महत्त्वको भी वह सामाजिक उपयोगिताके ख्यालसे स्वीकार करता था। आमतौरसे दर्शनसे भिन्न और उलटी राय रखनेके कारण धर्मकी असत्यतापर रोश्दका विश्वास था किन्तु अफलातूँके भिन्न-भिन्न धातुओंसे बने आदमियोंकी श्रेणियाँ होने का प्रोपेगंडा द्वारा हृदयासक्त करनेकी भांति मजहबको भी वह प्रोपेगंडाकी मशीन समझता था, और उस मशीनको इस्तेमाल करनेसे उसे इन्कार नहीं था, यदि वह अपने आचार नियमों द्वारा समाजकी बेहतरी कर सके।

(ख) स्त्री-स्वतन्त्रतावादी—मुसलमीन शासकोंके यहाँ स्त्रियाँ मुह

[1] देखो "मानव-समाज" पृष्ठ १२० १

स्थान खाली पड़ा था। और मस्त मुहाजिर नमी रखते थे, ऐसा करके इसका न खयाल किया कि वह इस पार उस पार था। धर्म-शास्त्र भी कहता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मुसलमानी रानियाँ और राजकुमारियाँ यथेष्ट स्वातंत्र्य—जो कि वास्तविक स्वातन्त्र्य है—की अधिकारिणी थीं, और फिर यह राज्य किस तरह शासित था। रुश्द वस्तुतः स्त्रियोंकी स्वतंत्रता चाहता था, क्योंकि वह इसमें समाजका कल्याण समझता था। यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि इस बातमें अरस्तू भी इतना उदार नहीं था।

रुश्दकी रायमें स्त्री और पुरुषकी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियोंमें कोई मौलिक भेद नहीं है, भेद यदि कहीं मिलता तो वह कुछ कमी-बेशी भरका। कला, विद्या, युद्ध-चातुरीमें जिस तरह पुरुष दक्षता प्राप्त करते हैं, उसी तरह स्त्रियाँ भी प्राप्त कर सकती हैं। पुरुषोंसे कमजोर होकर भी वह संगीतकी हर तरहकी सेवा कर सकती है। यही नहीं कितनी ही विद्याएँ—कलाएँ—तो स्त्रियोंके ही लिए अधिक उपयुक्त हैं,—उदाहरणार्थ संगीतकी व्यवस्था और चरम विकास तभी हो सकता है, जब कि स्त्रियाँ उसमें हस्तक्षेप करें। युद्धमें स्त्रियोंकी दक्षता कोई काल्पनिक बात नहीं है। अफ्रीकाकी कितनी ही बद्दू रियासतोंमें स्त्रियोंकी रण-चातुरीके बहुत अधिक उदाहरण मिलते हैं, जिनमें स्त्रियोंने युद्ध-क्षेत्रमें सिपाही और अफसरके कर्त्तव्यको बड़ी सफलताके साथ पूरा किया। इसी तरह शासनके भी कितने ही उदाहरण हैं, जब कि शासन-सूत्र स्त्रीके हाथमें रहा, और राज्य-प्रबंध ठीकसे चलता रहा। स्त्रियोंके लिए स्थापित की गई आजकलकी व्यवस्था बहुत बुरी है, इसके कारण स्त्रियोंको अवसर नहीं मिलता, कि वह अपनी योग्यताको दिखला सकें। आजकी व्यवस्थाने तै कर दिया है कि स्त्रियोंका कर्त्तव्य सिर्फ यही है, कि सन्तान बढ़ावें, और बच्चोंका पालन-पोषण करें। लेकिन इसीका परिणाम है, जो कि एक हद तक उनकी छिपी हुई स्वाभाविक शक्ति लुप्त होती चली जा रही है। यही वजह है कि हमारे देश (=स्पेन) में ऐसी स्त्रियाँ बहुत कम दिखलाई

पडती ह, जा किसी बातमें भी समाजम विशेष स्थान रखती हो। उनका जीवन वनस्पतियाका जीवन ह, खतीकी भाँति वह अपने पतियाकी सम्पत्ति ह। हमारे देश (=स्पेन)म जो दरिद्रता दिन पर दिन बढ रही ह, उसका भी कारण स्त्रियोकी यही दुरवस्था है। चूकि हमारे देशमें स्त्रियोकी सख्या पुरुषोसे अधिक ह, और स्त्रियाँ अपने दिनोका अधिकतर बेकार गुजारती ह, इसलिए वह अपने श्रमसे परिवारकी सम्पत्तिको बढानेकी जगह मर्दोपर भार होकर जिदगी बसर करती ह।

रश्दके ये विचार बतलात ह, कि क्यो वह युरोपीय समाजम तूफान लाने तथा उसे एक नई दिशाकी ओर धक्का देनेम सफल हुआ।

४–यहूदी दार्शनिक

क–इब्न-मैमून (११३५–१२०८ ई०)

यद्यपि इब्न-ममून मुसलमान घरमें नही, बल्कि इब्न जिब्रोलकी भाँति यहूदी घरमें पदा हुआ था, तो भी इस्लामिक दशन या दाशनिकस हमारा अभिप्राय यहाँ कुरानी दशनसे नही ह बल्कि एसी विचारधारासे ह, जो अरबसे निकले उस क्षीण स्रोतमें दूसरी नई-पुरानी विचार धाराओंके मिलनसे बनी। इसीलिए हमने जिब्राल—जो कि स्पेनिश इस्लामिक दर्शनधाराका आरम्भक था—के बारेम पहिले लिखा, और अब इब्न-ममूनके बारेमें लिखते ह, जिसके साथ यह धारा प्राय बिलकुल खतम हो जाती ह।

(१) जीवनी—मूसा इब्न-मैमूनका जन्म गेरदके शहर कार्दोवामें ११३५ ई० में हुआ था। बचपनसे ही वह बहुत तेज बुद्धि रखता था, और जब वह अभी बिलकुल तरुण था तभी उसने बाबुल और यरूशिलमकी तालमूदों[1]पर विवरण लिखे जिसकी वजहसे यहूदियोम उसका बहुत

---

[1] यहूदियोंके धर्म ग्रंथ जो बाइबलसे निचले दर्जेके समझे जाते हैं, और जिन्हें उनके धर्माचार्योंने यरूशिलम या बाबुलके प्रवासमें बनाया।

सम्मान होने लगा। मैमूनने दर्शन किससे पढ़ा, इसमें मतभेद है। कुछ लेखक उसे रोश्दका शिष्य कहते हैं, और वह अपने दार्शनिक विचारोंमें रोश्दका अनुगामी था इसमें सन्देह नहीं है, लेकिन वह स्वयं अपनी पुस्तक 'दलाला' में सिर्फ इतना ही लिखता है, कि उसने इब्न रोश्दके एक शिष्यसे दर्शन पढ़ा। मोहिदीनके प्रथम शासक अब्दुल्मोमिन (११४७-६३ ई०) के शासनारम्भमें यहूदियोंकी जो बुरी अवस्था हुई थी, उसी समय मैमून मिश्र भाग गया। पीछे वह मिश्रके नये शासक तथा ईसाइयोंके ध्वंसक सलाहुद्दीन अय्यूबीका राजवैद्य बना। मिश्रमें आनेपर उसे रोश्दके ग्रंथोंको पढ़नेका शौक हुआ। ११९१ ई० में वह अपने योग्य शिष्य यूसुफ इब्न-यह्याको लिखता है— मैं अरस्तूपर लिखी इब्न रोश्दकी सारी व्याख्याओंको एकत्रित कर चुका हूँ, सिर्फ 'हिस्स व महसूस' (=इन्द्रियके ज्ञान और विषय)की पुस्तक अभी नहीं मिली। वस्तुतः इब्न रोश्दके विचार बहुत ही न्याय-सम्मत होते हैं, इसलिए मुझे उसके विचार बहुत पसन्द हैं, किन्तु अफसोस है कि समयाभावसे मैं उसकी पुस्तकोंका अध्ययन नहीं कर सका हूँ।

मैमूनने ही सबसे पहिले रोश्दके महत्त्वको समझा, और उसकी बदौलत यहूदी विद्वानोंने उसके दर्शनके अध्ययन-अध्यापनका काम ही अपने हाथमें नहीं लिया, बल्कि उन्होंने इब्रानी और लातीनी अनुवादोंसे यूरोपकी अगली विचार-धाराके बनानेका भारी काम किया।

मैमूनका देहान्त ६०५ हिजरी (=सन १२०८ ई०) में हुआ।

(२) **दार्शनिक विचार**—रोश्दने जिस तरह इस्लामके बुद्धि-प्रधान हथियारसे इस्लामिक मजहबी वादशास्त्रियोंकी खबर ली, मैमूनने वही काम यहूदी वादशास्त्रियोंके साथ किया। रोश्दकी तोहाफतुत्-तोहाफत (=खंडन-खंडन)की भाँति ही उसकी पुस्तक 'दलाला' ने यहूदी धर्मवादियों पर प्रहारका काम किया। यहूदियोंके कितने ही सिद्धान्त इस्लामकी तरहके थे, और उनके खंडनमें मैमूनने रोश्दकी तरह ही सरगर्मी दिखलाई, बल्कि ईश्वरके बारेमें तो वह रोश्दसे भी आगे गया और उसने कहा कि ईश्वरके बारेमें हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि "वह 'यह नहीं' है" ऐसा

नहीं है"। यह बतलाना तो हमारी सामर्थ्यके बाहर है, कि उसमें अमुक अमुक गुण है, क्योंकि यदि हम ईश्वरके गुणोंको साफ तौरसे बतला सकें, तो वह संसारकी चीज जैसा हो जायगा। वह यहाँ तक कहता है, कि ईश्वरको 'असंग अद्वैत' (=वह्दहू-लाशरीक) भी नहीं कह सकते, क्योंकि अद्वैत भी एक गुण है। यद्यपि ममून "जगत्की अनादिता"का स्वयं नहीं मानता था, किन्तु ऐसा माननेवालेको वह नास्तिक कहनेके लिए तैयार न था।

विज्ञान (=नफ्स)के सिद्धान्तमें ममूनका रोश्दसे मतभेद था। वह मानता था, कि प्राकृतिक विज्ञान[1], अभ्यस्त विज्ञान[2]से ज्ञान प्राप्त करता है और अभ्यस्त विज्ञान कर्त्ता विज्ञान[3] (=ईश्वर)में। विद्या (=दर्शन)को वह भी रोश्दकी भाँति ही बहुत महत्त्व देता था—मनुष्यकी चरमोन्नति उसकी विद्यासंबंधी उन्नतिपर निर्भर है, और यही ईश्वरकी सच्ची उपासना है।[4] विद्याके द्वाराही आदमी अपने जीवनको उन्नत कर सकता है; किन्तु, इस साधनका उपयोग सबके लिए आसान नहीं, इसलिए मूर्खों और अविद्वानोंकी शिक्षाके लिए ईश्वर पैगंबरोंको भेजता है।

ख—यूसुफ इब्न-यह्या (११९१ ई०)

जीवनी—यूसुफ इब्न-यह्या मराकोका रहनेवाला यहूदी था। यहूदियोंके निर्वासनके जमानेमें वह भी मिश्र चला आया, और मूसा इब्न ममूनसे उसने दर्शनका अध्ययन किया। यूसुफ भी अपने गुरुकी भाँति ही रोश्दके दर्शनका बड़ा भक्त था। रोश्दके प्रति अपनी भक्तिको उसने एक पत्रमें प्रकट किया है, जिसे उसने अपने गुरु ममूनको लिखा था—

"मैंने आपकी प्रिय पुत्री सुरयाको ब्याह-संदेश दिया। उसने

---

[1] अक्ल-माद्दी। [2] अक्ल-मुस्तफाद। [3] अक्ल-फआल।

[4] ममूनसे दो सदी पहिले ब्राह्मण नैयायिक उदयनाचार्य (९८४ ई०) ने भी "उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता" (कुसुमांजलि) कहा था।

तीन शर्तोंके साथ मुझे गरीबकी प्रार्थना स्वीकार की—(१) स्त्रीधन (=मेहर)-के नामकी जगहमें अपने दिलको उसके हाथ बेच डालूँ, (२) शपथ पूर्वक मन्त्र-प्रेम करनेकी प्रतिज्ञा करूँ (३) वह पाक्की कुमारियोंकी तरह मुझे आलिंगन करना पसंद करे। मैंने विवाहके बाद तीनों शर्तें पूरी करनेकी उससे प्रार्थना की। बिना किसी उज्रके वह राजी हो गई। अब हम दोनों पारस्परिक प्रेमके आनन्द लूट रहे हैं। ब्याह दो गवाहोंकी उपस्थितिमें हुआ था—एक स्वयं आप—मूसा इब्न ममून—थे, और दूसरे थे इब्न रोश्द।'

सारे पत्रको यूसुफने आलंकारिक भाषामें लिखा है। सुन्दरी वस्तुत ममूनकी कोई औरस पुत्री नहीं थी बल्कि ममून द्वारा प्रचारित दर्शन विद्याको ही वह उसकी प्रिय पुत्री कह रहा है, और इस पाणिग्रहण के करानेमें रोश्दका भी हाथ वह स्वीकार करता है।

यूसुफ जब हलब (=अलप्पो सीरिया)में रहता था तो उसकी जमाल उद्दीन कुफ्तीसे बहुत दोस्ती थी। जमालुद्दीन लिखता है—'एक दिन मैंने यूसुफसे कहा—यदि यह सच है कि मरनेके बाद जीवको इस दुनियाकी खबर मिलती रहती है तो आओ हम दोनों प्रतिज्ञा करें कि हममेंसे जो कोई पहिले मरे वह स्वप्नमें आकर दूसरेको मृत्युके बादकी हालतकी सूचना दे।

इसके थोड़े ही समय बाद यूसुफ मर गया। अब मुझको फिक्र पड़ी, कि यूसुफ स्वप्नमें आये और मुझे परलोककी बात बतलाये। प्रतीक्षा करते-करते दो वर्ष बीत गए। अन्तमें एक रात उसके दर्शनका सौभाग्य हुआ। मैंने देखा कि वह एक मस्जिदके आँगनमें बैठा हुआ है, उसकी पोशाक उजली है। उसे देखते ही मैंने पुरानी प्रतिज्ञाकी याद दिलाई। पहिले वह मुस्कराया और मेरी ओरसे उसने मुँहको दूसरी ओर फेर लिया। लेकिन मैंने आग्रहपूर्वक कहा कि प्रतिज्ञा पूरा करनी होगी। लाचार हो कहने लगा—अवयवी (=पूर्ण ब्रह्म)-अवयवमें समा गया और अवयव (=शरीर परमाणु) अवयव ही में रह गया।[१]

---

[१] "अखबारु'ल-हुक्मा कुफ्ती", पृष्ठ २५८

शासक और विजेता ईश्वरके प्रतिनिधि शासनको सारी पुष्टि होती था भी ईसाइयोंमें इसके बाद धर्मप्रचार करनेके लिए जहाद (धर्म-युद्ध) धर्मकी सजावट नहीं थी। युद्ध मजहबवादी समाजमें धर्म राजनीति और बहुत हद तक अर्थनीति भी सामाजिक जीवनसे अभिन्न संबंध होता है, इसलिए धर्मीका जो युद्ध भी करता है उसमें धर्म फिर एक धर्मको रंग करता है यह नहीं माना जाता। इस्लाम मजहबवादी अरबमें पैदा हुआ था, किन्तु वह सामन्तवादी प्रभावसे नहीं बचा बल्कि बहुत हद तक प्रभावित था, जहाँ तक उसके धर्मका संबंध था, हाँ आरंभमें आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि उसकी बहुत कुछ कबीलाशाही थी। हर कबीलेका ईश्वर धर्म तथा जातिके साथ इतना सम्बद्ध होता है कि उसे दूसरे कबीलेवाला लिया नहीं जा सकता है। इस्लाम इस कारण एक गैर-कबीलाशाही धर्म था, उसका ईश्वर और धर्म सिर्फ कुरैशके कबीलेके ही नहीं सिर्फ अरब भाषा-भाषी कबीलोंके लिए नहीं बल्कि दुनियाके सभी लोगोंके लिए था। इस तरह धर्ममें गैर-कबीलाशाही होने भी युद्धनीति और राजनीतिमें उसने कबीलाशाहीका अनुसरण करना चाहा। राज(=शासन)-नीतिमें किस तरह स्वाभिमान कबीलाशाही—जिसे कितने ही लोग जनतंत्रकी समझनेकी भारी गलती करते हैं—को तिलांजलि दी, इसका हम जिक्र कर चुके हैं। लेकिन युद्धनीतिमें कबीलाशाहीका मनोभाव इस्लामने नहीं छोड़ा—जहाद और माल गनीमत(=लूटका धन)का औचित्य उसीकी निशानी है। अरब कबीले कबीलाशाही सार्वजनिक नियमके अनुसार जहाद और गनीमतको ठीक समझते थे, किन्तु इस्लाम जिस सामन्तशाही धर्मका प्रचार कर रहा था उसमें ज्यादा विचार-सहिष्णुताकी जरूरत थी जिसे कि ईसाई या बौद्ध जैसे दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय धर्मोंने स्वीकार किया था। इस्लामको ऐसा करनेके लिए इतिहासने भी मजबूर किया था। पैगंबर मुहम्मदने अपनी पैगंबरीके आरंभिक (मक्कावाले) वर्षोंमें इस्लामके लिए जो नीति स्वीकार की थी, वह बहुत कुछ ईसाइयों जैसी युक्ति और प्रेमके साथ धर्मको समझानेकी थी किन्तु जब कुरैशके जुल्मसे बचनेके लिए वह भागकर मदीना आये

और वहाँ भी वही खतरा ज्यादा जोरके साथ दिखलाई देने लगा, तो उन्हें तलवार उठानी पड़ी। हर तलवारके पीछे कोई नारा जरूर होना चाहिए, वहाँके लोग कबीलशाही नारका ही समझते थे—जो कि जहाद और माल गनीमतका नारा हो सकता था—पगबरको भी वही नारा स्वीकार करना पड़ा। और जब एक बार इस नारपर अल्लाहकी मुहर लग गई, तो हर दंग और कानमें उस स्वाकार करनेसे कौन रोक सकता है? इस्लाम अरबसे बाहर गया, साथ ही इस 'जहाद' (रक्षात्मक ही नहीं धन जमा करनेके लिए भी आक्रमणात्मक युद्ध)के नारको भी बताया गया। इस्लामका नेतृत्व अरबी कबीलों तथा अरबी सामन्तोंके हाथसे निकलकर गैर अरब लोगोंके हाथमें चला गया तो भी उन्होंने इस नारको अपने मतलबके लिए इस्तेमाल किया।

यह भी पीछे कहा जा चुका है कि इस्लामने एक छोटेसे कबीलेसे बढ़ते बढ़ते अनेक जाति-व्यापी 'विश्व कबीला'' बनानेका आदर्श अपने सामने रखा था। कबीला होनेके लिए एक धर्म एक भाषा, एक जाति एक संस्कृति, एक देश (भौगोलिक स्थिति) होनेकी जरूरत है। इस्लामने इस स्थितिके पूरा करनेकी भी कोशिश की। आज मराको, त्रिपोली, मिश्र, सीरिया, मेसापोटामियामें (पहिले स्पेन और सिसलीमें भी) जो अरबी भाषा बोली जाती है, वह बहुत कुछ उसी एक भाषा बनानेका नतीजा है। अरबी भाषामें ही नमाज पढ़नेकी सख्ती भी उसी मनोभावको बतलाती है। ईरान, शाम, तुर्किस्तान (मध्य एसिया) आदि देशोंकी जातीय संस्कृतियों तथा साहित्योंको एक ओरसे नेस्त-नाबूद करनेका प्रयत्न भी एक कबीला-स्थापनाका फल था। प्रारंभिक अरब मुस्लिम विजेता बड़ी ईमानदारीके साथ इस्लामके इस आदर्शको पूरा करना चाहते थे। उनको क्या मालूम था, कि जिस कामको वह करना चाहते हैं, उसमें उनका मुकाबिला वर्तमान पीढ़ीकी कुछ जातियाँ ही नहीं कर रही हैं, बल्कि उनकी पीठपर प्रकृति भी है, जो सामन्तवादी जगत्‌को कबीलाशाही जगत्‌में बदल देनेके लिए इजाजत नहीं दे सकती। आखिर भयंकर नरसंहार और कुर्बानियोंके बाद भी एक कबीला (=जन) नहीं बन सका।

हाँ सामन्तशाही युगके निवासियोंके लिए 'जहाद'का नारा अजब-सा लगा। वे लोग लड़ाइयाँ न लड़ते हों यह बात नहीं थी, किन्तु वह लड़ाइयाँ राजाओंके नेतृत्वमें राजनीतिक लाभके लिए होती थीं। उनमें ईश्वरकी सहायता या वरदान भी माँगा जाता था, लेकिन लड़नेवाले दोनों फरीक दिलसे समझते थे, कि ईश्वर इसमें तटस्थ है। जो धार्मिक थे वह यह भी मानते थे कि जिधर न्याय है ईश्वर उधर ही पलड़ा भारी करना चाहता। यह समझना उनके लिए मुश्किल था कि वह जो लड़ाई लड़ रहे हैं वह ईश्वरकी लड़ाई है। इस्लामके जहादियोंने किस तरह अपने झंडोंको दूर-दूर तक गाड़नेमें सफलता पाई, इसको यहाँ कहनेकी जरूरत नहीं। यहाँ हमें सिर्फ इतना बतलाना है कि इस्लामी जहादके मुकाबिलेमें युरोपकी जातियोंको भी उन्हींकी नकलपर ईसाई जहाद (=सलीबी जंग)[1] लड़ने पड़े। ये ईसाई जहाद भी कितने अधिक भयंकर थे, यह इसीसे पता लगता है, कि जहाँ मुस्लिम स्पेनमें कितने ही स्पेनिश ईसाई परिवार बँच गये थे वहाँ ईसाई स्पेनमें कोई भी पहिलेका मुसलमान नहीं रह गया।

इस्लामके इस युगके एक दार्शनिकका हम यहाँ जिक्र करते हैं।

(१) जीवनी—इब्न-खल्दूनका जन्म १३३२ ई०में उत्तरी अफ्रीकाके तूनिस नगरमें हुआ था। उसका परिवार पहिले सेविली (स्पेन)का रहने वाला था। इस प्रकार हम उसे प्रवासी स्पेनिश मुसलमान कह सकते हैं। तूनिस्‌में ही उसने शिक्षा पाई। उसका दर्शनाध्यापक एक ऐसा व्यक्ति था जिसने पूर्वमें भी शिक्षा पाई था, और इस प्रकार उसके शिष्यको सेविली, तूनिस् और पूर्वकी शिक्षाओंसे लाभ उठानेका मौका मिला।

शिक्षा समाप्त करनेके बाद खल्दून कभी किसी दरबारमें नौकरी करता और कभी देशोंकी सैर करता रहा। वह कितनी ही बार भिन्न भिन्न सुल्तानोंकी ओरसे अफ्रीका और स्पेनमें राजदूत भी रहा। राजदूत बनकर

[1] Crusade

कुछ समय वह 'भूर' पीनरके दरबारमें सविलामें भी रहा। उस वक्त पूवजोंकी जन्मनगरी इस्लामिक स्पेनके गौरव—सेविली—को उस तरह ईसाइयोंके हाथमें देखकर उसके दिलपर कैसा असर हुआ होगा, उसकी वजहसे उसके दिमागको जो सोचना पडा था, उसी सोचनेका फल हम उसके इतिहास-दर्शनमें पाते हैं। तमूरका शासन उस वक्त मध्य एसियासे भूमध्य-सागरके पूर्वी तट तक था और दमिश्क भी उसकी एक राजधानी थी। खल्दून दमिश्कमें तमूर (मगोल, थि-मुर=लोहा)के दर्बारमें राजदूत बनकर भी कितने ही समय तक रहा था। १४०६ ई० में काहिरा (मिश्र)में खल्दूनका देहान्त हुआ।

(२) दार्शनिक विचार (क) प्रयोगवाद—इस्लामिक दर्शनके इतिहासके बारेमें हमने अबतक देखा है, कि अश्अरीकी तरह कुछ लोग तो दर्शन या तर्कका इस्तेमाल करके सिर्फ यही साबित करना चाहते थे कि दर्शन गलत है, बुद्धि, ज्ञान प्राप्तिके लिए टूटी नैया है। गज्जालीकी भाँति कुछका कहना था कि दर्शनकी नैया कुछही दूर तक हमारा साथ दे सकती है, उसके आगे योग ध्यान ही हमें पहुँचा सकता है। सीना और रोश्द जैसे इन दोनो तरीकोंको झूठ और बेकार कह कर बुद्धिको अपना सारथी बना दर्शनको ही एक मात्र पथ मानते थे। खल्दून, सीना और रोश्दके करीब जरूर था, किन्तु उसने जगत् और उसकी वस्तुओंको बहुत बारीकीसे देखा था, और उस बारीक दृष्टिने उसे वस्तु-जगतके बारेमें विश्वास दिला दिया था, कि सत्य तक पहुँचानेके लिए यहाँ तुम्हे बेहतर साधन मिलेगा। उसका कहना था—दार्शनिक समझते हैं कि वह सब कुछ जानते हैं, किंतु विश्व इतना महान् है, कि उस सारेको समझना दार्शनिककी शक्तिसे बाहर है। विश्वमें इतनी हस्तियाँ और वस्तुएं हैं वह इतनी अनगिनित हैं, जिनका जानना मनुष्यके लिए कभी संभव न होगा। तर्कसे जिस निष्कर्षपर हम पहुँचते हैं, वह कितनी ही बार व्यवहार या प्रयोग—वस्तुस्थिति—से मेल नहीं खाता। इससे साफ है, कि केवल तर्कके उपयोगसे सच तक पहुँचनेकी आशा दुराशा मात्र है। इसलिए साइंसवेत्ताका काम है प्रयोगसे प्राप्त अनुभवके सहारे

सत्य हो न ज्यादा शान्ति कर। यदि कोई भी उसे सिर्फ अपने प्रयास, अनुभव और निरन्तर गम्भीर नहीं करना चाहिए बल्कि तीसरियों मानव जाति जो एक विषय होते हैं उनको भी समझ लेनी चाहिए। ज्यादा सच्चा प्रमाण अनुभव समर्थन है—आदमी इस सिद्धान्तको किसी बात और उसकी खल्दूनी पुष्टि पाई है इस तरहकी जरूरत नहीं।

(ख) ज्ञान प्राप्तिका उपाय तर्क नहीं—खल्दून औरोंकी तरह तर्कको ज्ञानका साधन मानता है किन्तु साथ ही यह भी कि उससे सत्य ज्ञान निकलता है, यह सदा सर्वत्र मनन और व्याख्या कर सकता है। जिस वक्त वह इस तरहसे मननमें लगा रहता है उसी वक्त सहसा एक विचार एकाएक बिजलीकी तरह दिमागमें चमक उठता है और हम अन्तर्दृष्टि—आन्तरिकता—अहद—तक पहुँच जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त अन्तर्दृष्टिको पीछे तर्ककी भाषा (प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण आदि)में सम्बद्ध किया जा सकता है। इसमें यह तो साफ है कि तर्क ज्ञानको उत्पन्न नहीं करता वह सिर्फ उस पथको अंकित करता है जिस हमें ज्ञान तक पहुँचना चाहिए था यह बतलाता है कि कैसे हम ज्ञान तक पहुँचे हैं। तर्कका एक फायदा यह भी है कि वह हम हमारी भूल बतलाता है, बुद्धिको तीखा करता और उसे ठीक सोचने सोचनेमें सहायक होता है।

खल्दून तर्कको युद्धमें प्रयोगका प्रधान और तर्कको सहायक मानता है फिर उससे इस बातकी आशा होती थी कि वह कामिया और फलित ज्योतिषके मिथ्या विश्वाससे मुक्त होगा।

(ग) इतिहास साइंस—खल्दूनका सबसे महत्त्वपूर्ण विचार है, इतिहासकी सतहके भीतर घुसकर उसके मौलिक नियमों—इतिहास-दर्शन या इतिहास-शास्त्र—को पकड़ना। खल्दूनके मतमें इतिहासको साइंस या दर्शनका एक भाग कहना चाहिए। इतिहासकारका काम है घटनाओंका संग्रह करना और उनमें कार्य कारण सम्बन्ध ढूँढना। इस कामको गंभीर आलोचनात्मक दृष्टिके साथ बिल्कुल निष्पक्षपात होकर करना चाहिए। हर समय हमें इस सिद्धान्तको सामने रखना चाहिए कि कारण जैसा कार्य

(अ-स्थायी-वास घुमन्तू), स्थायी-वास पशुपालक और कृषिजीवी। आहारकी माँग युद्ध लूट और संघर्ष पैदा करती है और मनुष्य ऐसे एक राजाकी अधीनताको स्वीकार करते हैं, जो कि वहाँ उनका नेतृत्व करे। वह सैनिक नेता अपना राजवंश स्थापित करता है, जिसके लिए नगर—राजधानी—की जरूरत पड़ती है। नगरमें श्रम विभाग और पारस्परिक सहयोग स्थापित होता है, जिससे वह अधिक सम्पत्तिमान् तथा समृद्ध होता है। किन्तु यही समृद्धि नागरिकोंको विलासिता और निठल्लेपनमें गिराती है। श्रमने सभ्यताकी प्रथमावस्थामें सम्पत्ति और समृद्धि पैदा की किन्तु सभ्यताकी उच्चतम अवस्थामें मनुष्य दूसरे आदमियोंसे अपने लिए श्रम करवा सकता है, और अक्सर कल्लमें बिना कुछ दिये। आगे समाज और खासकर समृद्धिशाली वर्गकी आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं जिसके कारण करका बोझ और बढ़ता तथा असह्य होता जाता है। समृद्धिशाली धनी वर्गका एक ओर बिना मितव्ययिताके कारण फजूलखर्च होता है और दूसरी ओर उसपर करका बोझ बढ़ता है इस प्रकार वह अधिक और अधिक दरिद्र होता जाता है, साथ ही अस्वाभाविक जीवन बितानेके कारण उसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गिरता जाता है। खल्दून स्वयं सेविला निवासियोंके इसी गिरे हुए वर्गमें पैदा हुआ था इसलिए वह सिर्फ इसी संस्कृत प्रभुवर्गकी दुरवस्थापर आँसू बहाता है, उसे अपने आसपासके दासों और कमियोंके पशुसे बदतर जीवनके ऊपर नजर डालनेकी फुरसत न थी। नागरिक जीवन उसके पुराने सैनिक रीति रवाज अधिक सम्भ्रान्त रूप धारण कर अपनी उपयोगिता खो बैठते हैं, और लोग शत्रुके आक्रमणसे अपनी रक्षा नहीं कर सकते। एक समाज या एक धर्मसे संबद्ध होनेके कारण जो सामूहिक शक्ति और इरादा पहिले मौजूद था, वह जाता रहता है, और लोग ज्यादा स्वार्थी तथा अधार्मिक हो जाते हैं। भीतर ही भीतर सारा समाज खोखला बन जाता है उसी वक्त रेगिस्तानसे कोई प्रबल खानाबदोश या सभ्यतामें अधिक प्रगति न रखनेवाली किन्तु सामूहिक जीवनमें दृढ़ जंगली प्राय जाति उर्वर स्वर्ण नागरिकोंपर टूट पड़ती है। एक नया शासन कायम होता है और

धन दान विजयी जाति पुरानी सभ्यताकी भौतिक तथा बौद्धिक सम्पत्ति-को अपनाती है, और फिर वही इतिहास दुहराया जाता है। यह उतार-चढ़ाव जैसे परिवारमें देखा जाता है, वैसे ही राजवंश या बड़े समाजमें भी पाया जाता है और तीनसे छ पीढ़ीमें उनका इतिहास समाप्त हो जाता है—पहिली पीढ़ी अधिकार स्थापित करती है, दूसरी पीढ़ी उसे कायम रखती है, और शायद तीसरी या कुछ और पीढ़ियाँ भी उसे सँभाल रहती हैं, और फिर अन्त आ पहुँचता है। यही सभी सभ्यताओंका जीवन चक्र है।

जर्मन विद्वान् अगस्ट मूलरका कहना है खल्दूनका यह नियम ग्यारहवींसे पन्द्रहवीं सदी तकके स्पेन मराको दक्षिणी अफ्रीका और सिसलीके इतिहासपर लागू होता है, और उन्हींके अध्ययनसे खल्दून इस निष्कर्षपर पहुँचा मालूम होता है।

खल्दून पहिला ऐतिहासिक है, जिसने इतिहासकी व्याख्या ईश्वर या प्राकृतिक उपद्रवोंके आधारपर न करके उसकी आन्तरिक भौतिक सामग्रीसे करनेका प्रयत्न किया, और उनके भीतर पाये जानेवाले नियमों—इतिहास दर्शन—तक पहुँचनेकी कोशिश की। खल्दून अपने ऐतिहासिक लेखोंमें इति-हासकी कारण शृंखला तक पहुँचनेके लिए जाति जलवायु आहार-उत्पादन आदि सभीकी स्थितिपर बारीकीसे विचार करता है, और फिर सभ्यताके जीवन प्रवाहमें वह अपने सिद्धान्तकी पुष्टि होते देखता है। हर जगह अ प्राकृतिक नहीं प्राकृतिक, दैवी—लोकोत्तर—नहीं, लौकिक कारणोंको ढूँढनेमें वह चरम सीमा तक जाता है। कारण शृंखलाका जहाँसे आगे पता नहीं लगता, वहाँ हमें चरम कारण या ईश्वरको स्वीकार करना पड़ता है। गोया खल्दून इस तरह इतिहासकी कारण शृंखलामें ईश्वरके लानेका मतलब अज्ञता स्वीकार करना समझता है। अपने अज्ञानसे आगाह होना भी एक प्रकारका ज्ञान है, किन्तु जहाँ तक हो सकता है, हमें ज्ञानके पानेकी कोशिश करनी चाहिए। खल्दून अपने कामके बारेमें समझता है कि उसने सिर्फ मुख्य मुख्य समस्याओंका संकेत किया है और इतिहास-साइंसकी

प्रक्रिया तथा विषयके बारेमे सुझाव भर पेश किये है। लेकिन वह आशा करता है कि उसके बाद आनेवाले लोग इस ओर आगे बढायेंगे।

इब्न-खल्दूनकी आशा पूर्ण हुई, किन्तु इस्लामके भीतर नही जहाँ जैसे उसका (अपने विचारोका) कोई पूर्वगामी नही था वैसे ही उसका कोई उत्तराधिकारी भी नही मिला।[1]

---

[1]The Philosophy in Islam (by G T J De Boer), pp 200 208

अनुवादका दौर शुरू होता है। यूनानी दर्शनका भाषान्तर अरबोंने जो दर्शन आरम्भ किया था, वह उनके युगके दर्शन अनुवादियोंके सामने रक्खा था और इसमें भाग लेनेवाले थे यही प्रवासी यहूदी। यहूदी चूँकि इस्लामिक स्पेनमें रहते अरबी उनकी मातृभाषा बनी हुई थी, इसलिए अनुवादकी जरूरत न थी। किन्तु जब वह दूसरे देशोंमें चले गए और वहाँ अरबीकी जगह दूसरी भाषाओंको उन्हें द्वितीय भाषायें और घर अपनानी पड़ीं, तो अरबी भाषा (अरबी भाषा तथा अरबी लिपि) को भी शिक्षित भाषाके तौरपर जारी रखना उनके लिए मुश्किल था। स्थानीय भाषाएं उतनी उन्नत न थीं, इसलिए उन्होंने पहले अरबोंकी पुस्तकों को इब्रानी लिपिमें उतार डाला, फिर उन्हें इब्रानीमें अनुवादित करना भी शुरू किया। इन अनुवादित ग्रन्थोंमें रुश्दकी कृतियाँ बहुत ज्यादा थीं।

(१) प्रथम इब्रानी अनुवाद युग—इब्रानी अनुवादके कामको शुरू करानेवालोंमें इब्न-तिब्बोन खान्दानका नाम खास है। ये लोग इस्लामिक स्पेन छोड़कर ल्यूनेल (उत्तरी फ्रान्स)में बस गये थे। इस खान्दानका पूर्व-पुरुष इब्न-तिब्बोन यहूदा प्राणिशास्त्र और कीमियाका एक बड़ा पंडित था। इस खान्दानका सबसे पहिला अनुवादक समुयेल इब्न-तिब्बोन था, जिसने 'दार्शनिकोंके सिद्धान्त'[1] के नामसे एक पुस्तक लिखा जो कि इब्न-रुश्दके ग्रन्थोंसे संकलित की गई थी। इसी समय तलीतला[2] (स्पेन)के एक यहूदी धर्माचार्य यहूदा बिन्-सलोमान 'निब्बुल्-हिक्मा' (१२७४ ई०) लिखा। यहूदा जर्मन राजा फ्रेडरिक द्वितीय (१२४० ई०) के दरबारमें अरबी ग्रंथोंके अनुवादका काम करता था।

समुयेलके बाद मूसा बिन्-तब्बूनने 'भौतिक-शास्त्र'[3] की अधिकतर पुस्तकोंका इब्रानीमें अनुवाद किया। समुयेलके समकालीन इब्न-यमुफ बिन् फाल्कोरा (जन्म १२२६ ई०) तथा जसन बिन्-सुलमानने भी अनुवाद किये। जसन समुयेलका संबंधी भी था, इसने इब्रानीमें बहुत ज्यादा अनुवाद किये।

---

[1] "आराउ'ल्-हुकमा"। [2] सूला ? [3] "तब्-इयात"।

फ्रेडरिकके दरबारमें एक मशहूर यहूदी अनुवादक याकूब बिन्-मरियम् अबी शम्शून था, इसने फ्रेडरिककी आज्ञा (१२३२ ई०)मे रोश्दकी बहुतसी पुस्तकोंका अनुवाद किया, जिनमें निम्न मुख्य है—

तर्कशास्त्र (मन्तकियात)-व्याख्या (१२३२ ई० नपल्समें)
तर्क-सक्षेप (तल्खीस-मन्तिक)
तल्खीस-मुहस्सती   (१२३१ नपल्समें)

इनके अतिरिक्त निम्न अनुवादकोंके कुछ अनुवाद इस प्रकार है—

सुलमान बिन्-यूसुफ	मुक़ाला फि स-समाअ व आलम्[1]	(१२५९ ई०)
जकरिया बिन् इस्हाक	भौतिक शास्त्र-टीका	(१२८४ ई०)
	प्रति भौतिक शास्त्र-टीका	(१२८४ ई०)
	देवात्मा-जगत- टीका	(१२८४ ई०)
याकूब बिन-मशीर	तर्क-सक्षेप	(१२९८ ई०)
	प्राणिशास्त्र[2]	(१३०० ई०)

(२) द्वितीय इब्रानी अनुवाद-युग—चौदहवीं सदीसे इब्रानी अनुवादोंका दूसरा युग आरम्भ होता है। पहिले अनुवादकी भाषा उतनी मँजी हुई नही थी और न उसमें ग्रंथकारके भावोंका उतना ख्याल रखा गया था। ये अनुवाद गोया फाराबीसे पहिलेके अरबी अनुवादो जैसे थे, लेकिन नये अनुवाद भाषा भाव दोनोंकी दृष्टिमे बेहतर थे। इन अनुवादकोंमें सबसे पहिला है कालानीम् बिन्-कालानीम् बिन्-मीर[3] (जन्म १२८७ ई०) है। उसने निम्न पुस्तकोंके अनुवाद किये[4] —

---

[1] समाअ-व आलम।   [2] हैवानात।

[3] यह लातीनी भी जानता था, इसने रोश्दके "खडन-खडन"का लातीनी भाषामें अनुवाद (१३२८ ई०) किया था।

[4] Topics Sophistics, the Second Analytics, Physics, Mytaphysics, De Coelo et Mundo, De Generatione et Corruptione Meteorology

तापिक (तर्क)	अरस्तू	१३१४ ई०
सोफिस्ता (तर्क)		"
अनालोतिक द्वितीय (तर्क)		"
भौतिक शास्त्र		१३१७
अतिभौतिक शास्त्र		
जीवात्मा और जगत (भौतिक शास्त्र)		
कान-व फसाद (भौतिक शास्त्र)		
मुकाला फि-ल माहयात (भौतिक शास्त्र)		"

इसके अतिरिक्त निम्न अनुवादकोंने भी इस युगमें इब्रानी अनुवाद[1] किये—

अनुवादक	ग्रंथ	ग्रंथकर्ता	अनुवाद-काल
कालानीम बिन दाऊद	खंडन-खंडन	गज़्ज़ाली[2]	
अबी समुयल बिन-यह्या	आचार शास्त्र	अरस्तू	१३२१
	प्रजातंत्र -व्याख्या	रोश्द	"
थ्योदोर	तापिक	अरस्तू	१३३७
	खितावत[3]	अरस्तू	"
	आचार शास्त्र	अरस्तू	

इसी सदीमें निम्न अनुवादक और हुए जिन्होंने करीब सारा ही रोश्द दर्शनको इब्रानीमें कर डाला—

इब्न इस्हाक
यह्या बिन-समून
मूसा बिन-साबूरा
मूसा बिन-सुलमान
यह्या बिन-याकूब
सुलमान बिन-मूसा अल-गोरी

---

[1] पुस्तक-नामोंके लिए देखो पृष्ठ ११५, २२१ २३ भी।
[2] 'तोहाफतु तोहाफत्'।
[3] Rhetoric (=भाषण शास्त्र)

(क) ल्योन् अफ्रीकी—इसी चौदहवीं सदी हीम लावी बिन-जसन—जिसे ल्योन् अफ्रीकी भी कहते हैं—ने रोश्दके दर्शनके अध्ययनाध्यापनके सुभीतेके लिए वही काम किया है, जो कि रोश्दने अरस्तूके लिए किया था। ल्योन् रोश्दके ग्रंथोंकी व्याख्याएं और संक्षेप लिखे। उनका एक समय इतना प्रचार हुआ था कि लोग रोश्दके ग्रंथोंको भी भूल गए। ल्योन् भूत (=प्रकृति)को अनुत्पन्न नित्य पदार्थ मानता था। वह परमेश्वरकी मानवी शक्तियोंका ही एक भेद समझता था।

ल्योन् अफ्रीकीके प्रयत्नने यहूदी विद्वानोंमें रोश्दका इतना प्रचार बढ़ाया कि अरस्तूकी पुस्तकोंको कोई पढ़ना न चाहता था। इसी कालमें मूसा नारबोनीने भी रोश्दकी बहुतसी व्याख्याएं और संक्षेप लिखी।

(ख) अहरन् बिन्-इलियास्—अब तक यहूदियोंमें मजहबी लोग दर्शनसे दूर-दूर रहा करते थे, और वह सिर्फ स्वतंत्र विचार रखनेवाले धर्मोपेक्षकोंकी चीज समझा जाता था, किंतु चौदहवीं सदीके अंतमें एक प्रसिद्ध यहूदी दार्शनिक अहरन बिन इलियास पैदा हुआ। इसने 'जीवन-वृक्ष'[1] के नामसे एक पुस्तक लिखी जिसमें रोश्दके दर्शनका जबर्दस्त समर्थन किया जिससे उसका प्रचार बहुत ज्यादा बढ़ा।

यहूदी विद्वान् इलियास् मदीजू पेदुआ (इताली) विश्वविद्यालयमें अन्तिम प्रोफेसर था। इसने भी रोश्दपर कई पुस्तकें लिखीं।

सोलहवीं सदी पहुँचते-पहुँचते रोश्दके दर्शनके प्रभावसे विचार स्वातन्त्र्यका इतना प्रचार हो गया कि यहूदी धर्माचार्योंको धर्मके खतम होनेका डर होने लगा। उन्होंने दर्शनका जबर्दस्त विरोध शुरू किया और दर्शनके खिलाफ मुसलमान धर्माचार्योंके इस्तेमाल किये हुए हथियारोंका इस्तेमाल करना चाहा। इसी अभिप्रायसे अबी-मूसा अल्-मरीनानने १५३८ ई० में गजालीकी पुस्तक 'तोहाफ्तुल फिलासफा' (=दर्शन-खंडन) का इब्रानी अनुवाद प्रकाशित किया। अफलातूनके दर्शनको धर्मके ज्यादा

[1] "शज्रुल-हयात"।

अनुकूल देखकर उन्होंने अरस्तूका जगह उसका प्रचार शुरू किया। अब हम बकन (१५६१ १६२६), हॉब्स (१५८८ १६७९ ई०) और दकार्त (१५९६ १६५० ई०) के जमानेके साथ दर्शनके आधुनिक युगमें पहुँच जाते हैं, जिसमें अन्तिम यहूदी दार्शनिक स्पिनोज़ा (१६३२ ७७ ई०) हुआ जिसने यहूदियोंके पुराने दर्शन और दर्शनके सिद्धान्तोंको मिलाकर आधुनिक यूरोपके दर्शनकी बुनियाद रखी, और तबसे दर्शन धर्मसे स्वतन्त्र हो गया।

स्पिनोज़ापर इस्राईली (८५० ९५० ई० के बीच) सादिया (८९२ ९४२ ई०), बाहिया (१००० १०५० ई०) इब्न-जब्रोल (१०२० ७० ई०), ममून (११३५ १२०४ ई०), गरसूना (१२८८ १३४४ ई०) और क्रस्का (१३४० १४१० ई०) के ग्रंथोंका बहुत असर पड़ा था।

२–ईसाई (लातीनी)

ईसाई जहादों (=सलीबी युद्धों) का जिक्र पहिले हो चुका है। तेरहवीं सदीमें ये युद्ध स्पेन हीमें नहीं हो रहे थे, बल्कि उस वक्त सारे यूरोपके ईसाई सामन्त मिलकर यरोशिलम और दूसरे फिलस्तीनी ईसाई तीर्थस्थानोंके लौटानेके बहानेसे लड़ाइयाँ लड़ रहे थे। इन लड़ाइयोंमें भाग लेनेके लिए साधारण लोगोंसे ज्यादा उत्साह यूरोपीय सामन्त दिखाते थे। कितनी ही बार तो एक सामन्त दूसरे सामन्त या राजासे अपने प्रभाव और प्रभुत्वको बढ़ानेके लिए युद्धमें सबसे आगे रहना चाहता था।

(१) फ्रेडरिक द्वितीय (१२४० ई०)—जर्मन राजा फ्रेडरिक द्वितीय सलीबी युद्धोंके बड़े बहादुरोंमेंसे था। जब यूरोपीय ईसाइयोंने यरोशिलमपर छठा हमला किया, तो फ्रेडरिक उसमें शामिल था। धर्मके बारेमें उसकी सम्मति बहुत अच्छी न थी तो भी अपने ही कथनानुसार, वह उसमें इसलिए शामिल हुआ कि अपने मूर्ख सिपाहियों और जनतापर प्रभुत्व बढ़ाये। —इस बातमें वह हिटलरका मार्ग-दर्शक था। फ्रेडरिककी प्रारम्भिक जिन्दगीका काफी भाग सिसलीमें बीता था। सिसली द्वीप सदियोंतक अरबोंके हाथमें रहनेसे अरबी संस्कृतिका केन्द्र बन गया था। फ्रेडरिकका

अरब विद्वानोंसे बहुत मेल-जोल था और वह अरबी भाषाको बहुत अच्छी तरहसे बोल सकता था। अरबी सभ्यताका वह इतना प्रेमी हो गया था कि उसने भी हरम (=रनिवास) और ख्वाजा-सरा (=हिजड़ दरोगा) कायम किये थे। ईसाइयतके बारेमें उसकी राय थी—"चर्चकी नींव दरिद्रावस्थामें रखी गई थी, इसीलिए आरम्भिक युगमें सन्तोंसे ईसाई दुनिया खाली न रहती थी लेकिन अब धन जमा करनेकी इच्छाने चर्च और धर्माचार्योंके दिलको गदगीसे भर दिया है।' वह खुल्लमखुल्ला ईसाई धर्मका उपहास करता था, जिससे नाराज होकर पादरियोंने उस नास्तिकका नाम दे रखा था। पोप इन्नोसेंत चतुर्थकी प्रेरणासे ल्यान्समें एक धर्म-परिषद् (कौंसिल) बैठी जिसने फ्रेडरिकको ईसाई बिरादरीसे छाँट दिया।

जिस वक्त सलीबी युद्ध चल रहा था उस वक्त भी फ्रेडरिकका दार्शनिक कथा-संवाद जारी रहता था। मुसलमान विद्वान बराबर उसके दरबारमें रहते थे। मिश्रके सुल्तान सलाह-उद्दीनसे उसकी वैयक्तिक मित्रता थी, जो उन युद्धके दिनोंमें भी वैसी ही बनी हुई थी और दोनों ओरसे भेंट-उपायन आते-जाते रहते थे।

युद्धसे लौटनेके बाद उसने खुल्लमखुल्ला दर्शन तथा दूसरी विद्याओंका प्रचार शुरू किया सिसलीमें पुस्तकालय स्थापित किये, अरस्तू तालमी, और रोश्दके ग्रंथोंके अनुवाद करनेके लिए यहूदी विद्वानोंको नियुक्त किया। पिपरसमें एक युनिवर्सिटीकी नींव रखी और सलर्नोके विद्यापीठका संरक्षक बना। उसने विद्या प्रचारके लिए दूर-दूरसे अरबीदाँ विद्वानोंको एकत्रित किया। तबून खान्दानवाले अनुवादक इसीके दरबारसे संबंध रखते थे। फ्रेडरिक स्वयं विद्वान् था और विद्या तथा संस्कृतिमें सिरमौर उस समयकी अरबी दुनियाको उसने नजदीकसे देखा था, इसलिए वह चाहता था कि अपने लोगोंको भी वैसा ही बनाये। आक्सफोर्डके एक पुस्तकालयमें 'मसायल सकिलिया' नामक एक अरबी हस्तलिखित पुस्तक है जिसके बारेमें कहा जाता है कि फ्रेडरिकने स्वयं उसे लिखा था, लेकिन वस्तुतः वह पुस्तक दक्षिणी स्पेनके एक सूफी दार्शनिक इब्न-सबईनकी कृति है जिसे उसने १२४० ई०

म फ्रेन्सिस्के न दार्शनिक प्रश्नों—जि ह कि उसने स्वतामिक दुनियाके दूसरे पसिद्ध विद्वानोंके पास भी भेज थ—के उत्तरमें लिखा था। इस वक्त दक्षिणी स्पेनपर मुल्तान रशीदका हुकूमत थी। इस हुकूमतमें उस वक्त विचार स्वातन्त्र्यकी क्या हालत थी यह सबईनके इस वाक्यसे पता लगता है— हमारे देशमें इन विषयोंपर कलम उठाना बहुत खतरेका काम है। यदि मुल्लाओंको खबर हो जाय कि मैंने इस विषयपर कलम उठाई है तो वह मेरे दुश्मन बन जायेंगे और उस वक्त मैं दुश्मनोंके हमलोंसे बच न सकूंगा।"[1]

चालीस साल तक फ्रेडरिकके चचके विरोधके होने हुए भी यूरोपको विद्याके प्रकाशमें प्रकाशित करनेकी कोशिश जारी रखी। जब वह मरा तो पोप इन्नोसेंतने सिसलीके पादरियोंके सामने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा —'आसमान और जमीनके लिए यह खुशीकी घड़ी है, क्योंकि जिस तूफानमें मानव जगत फँस गया था उससे ईसाई जगतको अन्तिम बार मुक्ति मिली।' लेकिन फ्रेडरिकके बाद जो परिवर्तन यूरोपमें दिखाई पड़ा उसने पोपकी रायको गलत साबित किया।

(२) अनुवादक—बिन्-रोश्दके खंडन-मंडन के लातीनी अनुवाद (१३२८ ई०) के बारेमें हम कह चुके हैं, किन्तु इसके पहिले हीसे अरबी ग्रंथोंके लातीनी अनुवाद शुरू हो गए थे। फ्रेडरिकका दरबारी मीकाल स्काट तलतला (स्पेन) का निवासी था इसने अपने शहरके एक यहूदी विद्वानकी मददसे कई पुस्तकोंका लातीनी भाषामें अनुवाद किया जिनमें कुछ हैं—

समाअ-व आलम् शरह (टीका)	रोश्द	१२३० ई०
मुकाला फिर्-रूह (टीका)	रोश्द	
मुकाला कौन-व-फसाद	रोश्द	
जौहरुल-कौन		

[1] "आसारुल अदहार", पृष्ठ २४१

राजर बकन (१२१४ ६२ ई०) के अनुसार स्कात अरबी भाषा बहुत कम जानता था और उसने दूसरोकी सहायतासे ही अनुवाद किय थे। कुछ भी हो स्कात पहिला आदमी ह जिसने ईसाई दुनियाके सामन पहिले-पहिल रोश्दके दर्शनको, उस वक्तकी चचकी भाषा लातीनीम पश किया। राजर बैकन खुद अरबी जानता था उसन रोश्दके दर्शनको अपन देश इगलण्ड में फलानेके लिए क्या किया, यह हम आग कहग।

फ्रेडरिकके दर्बारके दूसरे विद्वान हरमनने निम्न दर्शन ग्रथोका लातीनी-में अनुवाद किया—

भाषण[1]-टीका	फाराबी	१२५६ (तलेतला[2])
अलकार[3]-सक्षप	रोश्द	१२५६ (तलतला)
आचार[4]-सक्षेप	रोश्द	१२४० ई० (तलेतला)

तेरहवी सदीके अन्त होते होते तक राश्दके सभी दार्शनिक ग्रथोका लातीनी भाषाम अनुवाद हो गया था।

---

[1] Rhetoric [2] Toledo [3] Rhetoric [4] Ethics

नवम अध्याय

यूरोपमें दर्शन-संघर्ष

संत अगस्तिन (५ ४ ० ई०) के दर्शनके बारेमें हम पहिले कह चुके हैं, किन्तु अगस्तिनका श्रम अगस्तिनके साथ ही रह गया। उसके बाद यद्यपि ईसाई धर्म यूरोपमें बड़े जोरसे फैला, किन्तु ईसाई साधु या तो लोगोंकी अपनी दानाइस्तपर निर्वाह करते मठोंको दान-पुण्य करनेका उपदेश देते और धर्म-ग्रंथके सहारे खूब मौज लूट रहे थे, अथवा कोई-कोई सब छोड़ जंगलवासी बन ध्यान भक्तिमें लगे हुए थे—विद्याका दीपक एक तरहसे बुझ चुका था।

§ १ स्कोलास्तिक

आठवीं सदीमें जब शार्लमान (=चार्लस) यूरोपका महान राजा हुआ तो उसने यह हालत देखी। साथ ही उसने यह खतरा भी देखा कि बाहरसे देख-सुनकर भाव लोगोंके द्वारा धर्मपर संदेहकी दृष्टि डालनेकी ओर प्रवृत्ति भी चुपके-चुपके बढ़ रही है। शार्लमानने इसके प्रतीकारके लिए मूर्ख-उजड्ड साधुओंसे भरे ईसाई मठोंमें पढ़े लिखे साधुओंको बैठा बच्चोंकी शिक्षाका प्रबंध किया, और नये-नये मठ भी कायम किये। इन पाठशालाओंमें सिर्फ धर्म हीकी शिक्षा नहीं दी जाती थी बल्कि, ज्यामिति अंकगणित ज्योतिष संगीत, साहित्य व्याकरण तर्क—इन "सात उदार कलाओं" की भी पढ़ाई होती थी। बढ़ते हुए बुद्धिवादको कुंठित कर धर्मका अनुसरण करनेके ही लिए वहाँ उनकी पढ़ाई होती थी। शार्लमानका यह प्रयत्न उसी वक्त हो रहा था जब कि भारतके नालंदाकी कीर्ति सारी दुनियामें

फनी हुई थी, और उसमें भी शालमानकी भाँति ही राजाओं और सामन्तोंने दिल खोलकर गाँव और धन दे रहे थे। नालंदाके अतिरिक्त और भी विद्यापीठ तथा "गुरुकुल" थे जिनमें विद्या, विशेषकर दर्शनकी चर्चा होती थी। हमारे यहाँ हीकी तरह शालमान द्वारा स्थापित विद्यापीठोंमें भी ग्रंथोंको कंठस्थ तथा शास्त्रार्थ करना—विद्याध्ययनका मुख्य अंग था। यहाँ यह कहनेकी जरूरत नहीं कि भारतके इतने बड़े शिक्षा प्रयत्न क्या निष्फल हुए, और वह क्या फिर अंधकारकी कालरात्रिमें चला गया—वस्तुतः भारतमें उस वक्त भी शिक्षाका सार्वजनिक करनेका प्रयत्न नहीं हुआ और न बाद ही, विद्या प्रचार थोड़ेसे लोगों—शासकों और धर्माचार्यों—में ही सीमित रहा।

शालमानके मरनेके बाद यद्यपि उसके स्थापित मठों, विद्यापीठोंमें शिथिलता आ गई, तो भी ईसाई यूरोपकी छातीपर—स्पेनमें—इस्लाम काला साँप बनकर लोट रहा था, वह सिर्फ तलवारके बल पर ही अपने प्रभुत्वका विस्तार नहीं कर रहा था, बल्कि पुराने यूनान और पूरबके पुराने ज्ञान भंडारको अपनी देनके साथ युरोपके ज्ञान पिपासुओंमें वितरित कर रहा था। ऐसी अवस्थामें ईसाई-धर्म अच्छी तरह समझता था कि उसकी रक्षा तभी हो सकती है जब कि वह भी अपनी मददके लिए विद्याके हथियारको अपनावे।

शालमानके इन मठीय विद्यालयोंको स्कोल (=स्कूल, पीठ) कहा जाता था, और इनमें धर्म और दर्शन पढ़ानेवाले अध्यापकोंको स्कोलास्तिक आचार्य[1] कहा जाता था। पीछे धर्मकी रक्षाके समर्थकके तौरपर जिस मिश्रित दर्शन (वाद-शास्त्र)को उन्होंने विकसित किया, उसका नाम भी स्कोलास्तिक दर्शन पड़ गया। इस वाद-दर्शनका विकास ईसाई धर्माचार्यों के उस प्रयत्नके असफल होनेका पक्का प्रमाण था जो कि बुद्धिवाद और दर्शनकी ओर बढ़ती हुई रुचिको दबानेके लिए वह पशुबलसे गला घोंटकर

[1] Doctors Scholastic

कर रहे थे। इस नये प्रयोगके द्वारा भी आचार्योंको सफलता हुई कि जिस समय (बारहवीं शताब्दीके अन्तमें) नालन्दा, उदन्तपुरी, विक्रमशिला, जगत्तला आदि महान् विद्यापीठ भारतमें आगकी भेंट किये जा रहे थे उसी समय यूरोपमें आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, पेरिस, सारबोन्, बोलोना, सलर्नो आदिमें ये मठीय विश्वविद्यालय कायम किये जा रहे थे।

स्कालास्तिक दार्शनिकोंमें जान स्काट्स एरिगेना (८१०-७७ ई०), सन्त अन्सेल्(ल)म् (१०६३-११०६ ई०), रोसेलिन्[1] (१०५० ११२१ ई०) अबेलार्द (१०७९ ११४२ ई०) ज्यादा प्रसिद्ध हैं।

१ जान स्काट्स एरिगेना[2] (८१० ७७ ई०)

एरिगेना इंगलैण्डमें पैदा हुआ था और स्कोलास्तिक प्रयत्नके पहिले फ्रांसमें था। उसे अरस्तूका वस्तुवादी दर्शन पसन्द था। उस वक्त यूनानी दार्शनिकोंके ग्रंथ सिर्फ एसियाई भाषाओंमें ही मिलते थे, लेकिन एरिगेना अरबी भाषासे बिल्कुल अनभिज्ञ था। संभव है सुरियानी भाषा पढ़ने या सुरियानी ईसाई विद्वानोंकी संगतिका उसे अवसर मिला हो।

एरिगेनाके मुख्य सिद्धान्त थे, अद्वैत विज्ञानवाद और जगतकी अनादिता। यह दोनों ही सिद्धान्त ईसाई धर्मके विरुद्ध थे, इसे यहाँ बतानेकी आवश्यकता नहीं। एरिगेना अपनी पुस्तक 'जगत्का वास्तविभाग' में अपने सिद्धान्तके बारेमें लिखता है— जगतके अस्तित्वमें आनेसे पहिले सभी चीजें पूर्ण विज्ञानके भीतर मौजूद थीं, जहाँसे निकल निकलकर उन्होंने अलग अलग रूप धारण किये लेकिन जब ये रूप नष्ट हो जायेंगे तो वे फिर उसी पूर्ण विज्ञानमें जाकर मिल जायेंगी जहाँसे कि वह निकली थीं। इसमें सन्देह नहीं यह वसुबन्धु (४०० ई०) की 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि' (त्रिंशतिका) की इस कारिकाका भावार्थ है—

("आलय विज्ञान रूपी समुद्रसे) वीचियों तरंगोंकी तरह उन (जगतकी

---

[1] Roscellinus [2] जान अपचीना।

चीजों) की उत्पत्ति कही गई है।"[1]

एरिगनाका पूर्ण विज्ञान योगाचार (विज्ञानवाद) का आलय विज्ञान है, जिसमें क्षणिकताके अटल नियमके अनुसार नाश उत्पाद वीची-तरंगकी तरह होता रहता है। एरिगनासे पहिले यह सिद्धान्त यूरोपके लिए अज्ञात था। हमने देखा है, पीछे रोश्द भी इसी विज्ञानवादको अपनी व्याख्याके साथ लिया है। धर्मांधता युगके दूसरे दार्शनिकोंकी भाँति एरिगना भी धर्म और दर्शनका समन्वय करना चाहता था।

२ अमोरी और दाविद

एरिगेनाके विचार-बीज पश्चिमी यूरोपके मस्तिष्कमें पड़ जरूर गये, किन्तु उनका असर जल्दी दिखाई नहीं दिया। दसवीं सदीमें अमारी और उसका शागिर्द दाविद द-देनिन्तो प्रसिद्ध दार्शनिक हुए। अमोरीके सिद्धान्त जिब्रोल (१०२१-७० ई०) से मिलते हैं जो कि अभी तक पैदा न हुआ था। दाविद जगतकी उत्पत्ति मूल हूवला[2] (=प्रकृति)से मानता है। हेवला स्वयं शकल-सूरतसे रहित है, यह एरिगनाके पूर्ण विज्ञानका ही शब्दान्तरसे व्याख्यान है, यद्यपि मूल प्रकृतिके रूपमें वह बाह्यार्थवाद—प्राकृतिक (=वास्तविक) दुनियाके बहुत करीब आ जाता है।

३ रोसेलिन् (१०५१-११२१ ई०)

दाविद और अमोरीके दर्शनने बाह्यार्थवाद (=प्राकृतिक जगतकी वास्तविकता)की ओर कदम बढ़ाया था। स्कोलास्तिक डाक्टर रोसेलिनने उसके विरुद्ध नाम (=अ-रूप) वाद[3] पर जोर दिया और कहा कि एक प्रकारकी सभी व्यक्तियोंमें जो समानताएं (=सामान्य) पाई जाती हैं उनका अस्तित्व उन व्यक्तियोंसे बाहर नहीं है।

---

[1] "वीची-तरंग-न्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता।"—त्रिंशिका (वसुबंधु)
[2] Hyla [3] Nominalism

§ २ इस्लामिक दर्शन और ईसाई चर्च

रोश्दके ग्रंथोंके पठन-पाठन तथा पीछे उनके अनुवादोंकी प्रगतिके बारेमें हम बतला चुके हैं। यह हो नहीं सकता था कि एरिगना, अमारी आदिके प्रयत्नके कारण पहिलेहीसे धार्मिक खंडन किये ईसाई धर्मके क्षेत्रपर उसका असर न पड़ता।

१ फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय

रोश्दके दर्शनका सबसे ज्यादा प्रभाव ईसाइयोंके फ्रांसिस्कन सम्प्रदायपर पड़ा। इस सम्प्रदायके संस्थापक—उस वक्त काफिर और पीछे सन्त—फ्रांसिस तेरहवीं सदीमें विलासितामें सरतक डूबे पादरी और उनके महन्तोंके विरुद्ध बगावतका झंडा खड़ा किया था। फ्रांसिसका जन्म असिसी (इताली)में १२१६ ई० में हुआ था। उसने विद्या पढ़नेके लिए तीव्र प्रतिभा ही नहीं पाई थी, बल्कि आसपासके दीन-हीनोंकी व्यथा समझने लायक हृदय भी पाया था। 'सादा आचार और उच्च विचार'—उसका आदर्श था। महन्तोंकी शान-शौकत और दुराचारसे वह समझ रहा था कि ईसाई धर्म रसातलको जानेवाला है, इसलिए उसने गरीबीकी जिन्दगी बितानेवाले शिक्षित साधुओंका एक गिरोह बनाया जिसे ही पीछे फ्रांसिस्कन सम्प्रदाय कहा जाने लगा। फ्रांसिस जैसे विद्वान्का ऐसी गरीबीकी जिन्दगी बिताते देख लोगोंका उधर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था—खासकर उस वक्तके विचार-संघर्षके समयमें—और थोड़े ही समयमें फ्रांसिसके साथियोंकी संख्या पाँच हजार तक पहुँच गई।

(१) अलेक्जेंडर हेस—अलक्जेंडर हेस (तेरहवीं सदी) फ्रांसिस्कन सम्प्रदायका साधु था। इसने पेरिसमें शिक्षा पाई थी। हेसने अरस्तूके अति भौतिक-शास्त्र[1]पर विवरण लिखा था। अपने विवरणमें उसने सीना और

[1] Metaphysics

गजालीके मनाको वन्ने सम्मानके साथ उद्धत किया ह, किन्तु उसी सबधके रोश्द-के विचारोके उद्धत नही करनेसे पता लगता ह कि वह उनसे परिचित न था।

(२) राजर बैकन (१२१४-९२ ई०)—(क) जीवनी—ग्राक्स फोर्ड विश्वविद्यालय फ्रांसिस्कन सम्प्रदायका गढ था और वहाँ रोश्दके दर्शनका बहुत सम्मान था। राजर बकन नालन्दा विक्रमशिलाके ध्वस (१२०० ई०)के कुछ ही सालके बाद इगलण्डम पदा हुआ था। उसने पहिले ग्राक्सफोर्ड में शिक्षा पाई थी, पीछे पेरिसमें जाकर डाक्टरकी उपाधि प्राप्त की। वह लातीनी तो जानता ही था, साथ ही अरबी और यूनानीसे भी परिचित था। इन भाषाग्राका जानना—खासकर अरबीका जानना—उस वक्तके विद्या-भ्यासीकेलिए बहुत जरूरी था। पेरिससे लौटनेपर वह साधु (फ्रांसिस्कन) बना। यद्यपि उसके विचार मध्यकालीनतासे मुक्त न थे तो भी उसने वेध, प्रयोग तथा परीक्षणके तरीकोपर ज्यादा जोर दिया पुस्तको तथा शब्दप्रमाणपर निर्भर रहने को ज्ञानकेलिए बाधक बतलाया। वह स्वय यत्र और रसायन शास्त्रकी खोजम समय लगाता था, जिसके लिए स्वार्थी पादरियोंने लोगोमें मशहूर कर दिया कि वह जादूगर ह। जादूगरीके अपराधम उस वक्त यूरोपमें लाखो स्त्री-पुरुष जलाये जाते थे। खैर, राजर उनसे तो बच गया, किन्तु उसके स्वतत्र विचारोको देखकर पादरी जल बहुत रहे थे, और जब इसकी खबर रोममे पोपको पहुँची तो उसने भी इसके बारेमें कुछ करनेकी कोशिश की, किन्तु वह तबतक सफल नहीं हुआ जबतक कि १२७८ ई० मे फ्रांसिस्कन सप्रदायका एक महत्व जरोम डी-एसल राजरका दुश्मन नहीं बन गया। राजर बैकन नास्तिकता और जादूगरके अपराधमें जलमें डाल दिया गया। उसके दोस्तोकी कोशिशसे वह जलसे मुक्त हुआ और १२९२ ई० में ग्राक्सफोडमें मरा। पादरियोने उसकी पुस्तकोको आगमें जला दिया, इसलिए रॉजर बैकनकी कृतियोंसे लोगोको ज्यादा फायदा नहीं हो सका।

(ख) दार्शनिक विचार—सीना और रोश्दके दार्शनिक विचारोंसे रॉजर बहुत प्रभावित था। एक जगह वह लिखता है—

इब्न-सीना पहला आदमी था, जिसने अरस्तूके दर्शनको दुनियामें प्रकाशित किया, लेकिन सबसे बड़ा दार्शनिक इब्न-रोश्द है, जो इब्न-सीनाको अक्सर नापसन्द करता है। इब्न-रोश्दका स्थान एक समय तक उपेक्षित रहा, किन्तु अब (सोलहवीं सदीमें) दुनियाके करीब करीब सब दार्शनिक उसका लोहा मानते हैं। कारण यही है, कि अरस्तूके ग्रन्थोंकी उसने ठीक व्याख्या की है। यद्यपि कहीं कहीं वह उसके विचारोंपर कटाक्ष भी करता है, किन्तु सिद्धान्ततः उसके विचारोंकी सचाई उसे स्वीकृत है।

रोजर दूसरे फ्रांसिस्कनोंकी भाँति रोश्दका समर्थक था, और वह कर्ता विज्ञान[1]को जीवसे अलग एक स्वतन्त्र सत्ता मानता तथा उसका नाम ईश्वर बतलाता था[2]—

कर्ता विज्ञान एक रूपमें ईश्वर है, और एक रूपमें फरिश्ता (=देवात्मा)के तौरपर। (लातिनियन सम्प्रदायवाले कहते हैं कि) कर्ता विज्ञान नातिक-विज्ञान[3] (=जीव)की एक अवस्थाका नाम है, लेकिन यह ख्याल ठीक नहीं जान पड़ता। मनुष्यका नातिक विज्ञान स्वयं ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ है, जबतक कि दैवी साधन उसके सहायक न हों। और वह सहायक किस तरह होते हैं? कर्ता विज्ञानके द्वारा, जो कि मनुष्य तथा ईश्वरके बीच सम्बन्ध पैदा करानेवाला, और मनुष्यसे अलग स्वतः सत्तावान् एक अभौतिक द्रव्य है।

(३) दन् स्कातस्—रोजर बेकनके बाद अरबी दर्शनका समर्थक दन् स्कातस् था। पहिले स्कातस् अविसिनाका अनुयायी था किन्तु पीछे अविसिनाके इस बातसे असहमत हो गया, कि ईश्वरका मनुष्यके कर्मोंपर कोई अधिकार नहीं। अविसिना और स्कातस्के इस विवादकी प्रतिध्वनि सारे

[1] अक्ल-फआल (Creative Reason)
[2] Ibn Roshd (Renan), pp 154 155
[3] Nautic nouse

स्कोलास्तिक दर्शनमें मिलती है। तामसके विरुद्ध स्वातस्की यह भी राय थी, कि मूलभूत (=प्रकृति) अनादि है *आकृति*के उत्पन्न होनेसे प्रकृतिका उत्पन्न होना जरूरी नहीं है, क्योंकि प्रकृति आकृतिके बिना भी पाई जाती है। ईश्वरका सृष्टिकरनेका यही मतलब है, कि प्रकृतिको आकृतिकी पोशाक पहना दे। स्वातस् रोश्दके अद्वैत विज्ञानको माननेसे ही इन्कार नहीं करता था, बल्कि इस सिद्धान्तके प्रारंभको मनुष्यताकी सीमाके भीतर रखना नहीं चाहता था। स्वात्सने ही पहिले पहिल रोश्दको उसके अद्वैतवादके कारण घोर नास्तिक घोषित किया, जिसको लेकर पीछे यूरोपमें रोश्दकी पैगंबरीके अंदर नास्तिकोंका गिरोह कायम हो गया।

२–दोमिनिकन्-सम्प्रदाय

जिस तरह ईसाइयोंका फ्रासिस्कन सम्प्रदाय रोश्द और इस्लामिक दर्शनका जबर्दस्त समर्थक था, उसी तरह दोमिनिकन सम्प्रदाय उसका जबर्दस्त विरोधी था। इस सम्प्रदायका संस्थापक सन्त दोमिनिक ११७० में पैदा हुआ था, और १२२१ ई० में मरा—गोया वह भारतके अन्तिम बौद्ध संघराज तथा विक्रमशिलाके प्रधानाचार्य शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०) का समकालीन था। फ्रासिस्कन सम्प्रदाय रोश्दके दर्शनका जबर्दस्त विरोधी था, यह बतला चुके हैं।

(१) अल्बर्तस् मग्नस् (११९३-१२८० ई०)—अल्बर्तस् मग्नस् उसी समय पैदा हुआ था, जब कि दिल्लीपर अभी हालमें तुर्की झंडा फहराने लगा था। वह उसी साल (१२२१ ई०) दोमिनिकन सम्प्रदायमें साधु बना, जिस साल कि सन्त दोमिनिक मरा था, और फिर वालान् (फ्रांस) विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर हुआ। अरबी दार्शनिकोंके खंडनमें इसने कितनी ही पुस्तकें लिखी थीं, तो भी वह इब्न-सीनाका प्रशंसक, और रोश्दका दूषक था। रोश्दका विरोधी तथा अरस्तूका जबर्दस्त समर्थक तामस् अक्विना इसीका शिष्य था। अल्बर्तसने स्वयं भी रोजर बेकन और दन स्कातसके रोश्द-समर्थक विचारोंका खंडन किया तो भी

यह ज्यादा एकान्तप्रिय था, और उसके कामको उसके शिष्य अक्विनने पूरा किया।

(२) तामस् अक्विना (१२२५-७४ ई०) (क) जीवनी—तामस् अक्विना इतालीके एक पुराने सामन्त-वंशमें १२२५ ई० में (जिस साल कि बंगाल तिब्बत आदिमें खाक छानकर अपनी जन्मभूमि कश्मीरमें शाक्य श्रीभद्रने शरीर छोड़ा) पैदा हुआ था। उसकी शिक्षा नेपिल्स और पेरिसमें हुई, मगर अन्तमें वह अल्बर्तस् मग्नस्‌की विद्वत्ता-प्रसिद्धि सुन, कोलोन् विश्वविद्यालयमें अल्बर्तसके शिष्योंमें सम्मिलित हो गया। शिक्षा समाप्त करनेके बाद पेरिस विश्वविद्यालयमें गया, जहाँ धर्म और दर्शनशास्त्रका प्रोफेसर नियुक्त हुआ। १२७२ ई० में जब पोप ग्रेगरी दशमने रोमन[1] और यूनानी[2] चर्चमें मेल करानेके लिए एक परिषद् बुलाई थी, तो तामस् अक्विनाने एक पुस्तक लिखकर परिषद्के सामने रखी थी, जिसमें यूनानी चर्चके दोष बतलाये थे। मेल तो नहीं हो सका, किन्तु इस पुस्तकके कारण अक्विनाका नाम बहुत मशहूर होगया। परिषद्के दो वर्ष बाद (१२७४ ई०) अक्विनाका देहान्त हो गया।

(ख) दार्शनिक विचार—अक्विना अपने समयमें रोश्द-विरोधी दार्शनिक विचारोंका अगुआ था। धर्ममें वह कितना कट्टर था, यह तो इसीसे मालूम है, कि वकालतकी भाँति निष्पक्षहृदयता दिखलाते हुए सारे ईसाई सम्प्रदायोंको मिलानेके काममें पोप ग्रेगरीके प्रयत्नके असफल होनेमें जिसे सबसे खुशी हुई, वह अक्विना था। फ्रांसिस्कन् यद्यपि रोश्दके दर्शनके समर्थक थे, किन्तु इसलिए नहीं कि वह प्रगतिशील विचारोंका वाहक है, बल्कि इसलिए कि वह वस्तुवादसे ज्यादा अद्वैत विज्ञानवाद[3]का समर्थक है। इसके विरुद्ध रोश्दका विरोधी

---

[1] रोमन कथलिक (रोमवाले उदारवादी)

[2] ग्रीक अर्थोडक्स (यूनानवाले सनातनी), जिसके अनुयायी पूर्वी यूरोपके स्लाव (रूस आदि) देशोंमें ज्यादा रहे हैं। [3] वहदत्-अक्ल।

अक्विना अपने गुरु अल्बर्त्तकी भाँति वस्तुवादका समर्थक था। अक्विनाका गुरु अल्बर्तस् मग्नस् पहिला आदमी था जिसने अरस्तूके वस्तुवादी दर्शनकी ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। मध्यकालकी गाढ़ निद्रासे यूरोपको जगानेमें अरबोंके हमलेने मदद पहुँचाई। अरबोंकी तलवारके साथ बारूद, कागज, कुतुबनुमा आदि व्यवहारकी बड़ी सहायक चीजोंने पहुँचकर भी इस प्रत्यक्ष दुनियाका मूल्य बढ़ा दिया था इस प्रकार अक्विना का इस ओर झुकाव सिर्फ आकस्मिक घटना न थी।

जान लेविस् अक्विनाके बारेमें लिखता है[1]— उसने बिखरे हुए भिन्न भिन्न विचारोंको एकत्रित करके एक सम्बद्ध पूर्ण शरीरके रूपमें संगठित किया और फिरसे आविष्कृत और प्रतिष्ठापित हुए अरस्तूके बौद्धिक दर्शनसे जोड़ दिया। (इस प्रकार) उसने जो सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक रचना की वह चार सौ वर्षों तक युरोपीय सभ्यताका आधार रही और तीन सौ साल तक यूरोपके अधिक भाग तथा लातीनी अमेरिकामें एक जबर्दस्त—यद्यपि पतनोन्मुख—शक्ति बनी रही।

"(अक्विना द्वारा किया गया) ईसाई दर्शनका नया संस्करण अधिक सजीव, अधिक आशावादी, अधिक दुनियावी, अधिक रचनात्मक था। यह अरस्तूका पुनरुज्जीवन था।

अक्विना और मग्नस्की नई विचारधाराके प्रवाहित करनेमें कम कठिनाई नहीं हुई। पुराने ढर्रेके ईसाई विद्वान् अरस्तूके वस्तुवादी दर्शनका इस प्रकार स्वागत धर्मके लिए खतरेकी चीज समझते थे। लेकिन भौतिक परिस्थिति नये विचारोंके अनुकूल थी, इसलिए अक्विनाकी जीत हुई। अक्विनाका प्रधान ग्रंथ सुम्मा थेवलोगी[2] एक विश्वकोष है। अक्विनाका दर्शन अब भी रोमन कैथलिक सम्प्रदायका सर्वमान्य दर्शन है।

(a) मन—अक्विना सारे ज्ञानकी बुनियाद तजर्बे (=अनुभव)को

---

[1] Introduction to Philosophy by John Lewis, p 35

[2] Summa Theologies=ब्रह्मविद्या-संक्षेप।

बतलाता था— सभी चीजें जो बुद्धिमें हैं, वह (कभी) इन्द्रियोंमें थीं।' मन इन्द्रियोंसे और रोमन्स्वभावसे रहित है। कोई चीज स्वयं बुरी नहीं है बल्कि चीजोंके आधार बुरे होते हैं। इस प्रकार अरिस्तू इन्द्रियों, शरीरकी वस्तुओं, और साधारण मनुष्यके अनुभवोंको तुच्छ या हेय नहीं, बल्कि वह महत्त्वकी चीज समझता था।

(b) शरीर—मनुष्यको तभी हम जान सकते हैं जब कि हम सारे मनुष्यत्वका ऊपर विचार करें। बिना शरीरके मनुष्य, मनुष्य नहीं है, उसी तरह जैसे कि मनके बिना वह मनुष्य नहीं। मनुष्य मनुष्य तभी है, जब मन और शरीरका योग हो।

भौतिक तत्त्व अ-मूर्त कच्चे पदार्थ हैं जिनसे कि सारी चीजें बनी हैं। यही भौतिक तत्त्व भिन्न भिन्न वास्तविकताओंके रूपमें सगठित किये जा सकते हैं, जीवन चिन्तनवाला मानव इन्हीं वास्तविकताओंमेंसे एक है। भौतिक सम्बन्धी विशेषता यह है कि वह नये परिवर्तन, नये सगठन, नये गुणोंको अस्तित्वमें ला सकते हैं। अरिस्तू यहाँ अनजान मार्क्सीय भौतिकवादकी ओर बढ़ गया है। यदि गुणात्मक परिवर्तन हो सकता है, तो भौतिक तत्त्व चेतनाको भी पैदा कर सकते हैं।

मनुष्यको अपना या अपनी चेतनाका ज्ञान पीछे होता है। वह क्या है, इसे भी पीछे जानता है। सबसे पहिले मनुष्य (अपनी इन्द्रियोंसे) वस्तुको देखता है और वह जानता है कि मैं "देख रहा हूँ" जिसका अर्थ है कि वह कोई चीज देख रहा है। यहाँ 'है' मौजूद है, और मन बाहरी वस्तुके सिर्फ सस्कारको नहीं बल्कि उसकी सत्ताको पूरी तौरपर जानता है। अपने या अपनी चेतनाके बारेमें मनुष्यका ज्ञान इसके बाद और इसके आधार पर होता है इसलिए बाहरी वस्तुओंसे इन्कार करना ज्ञानके आधारसे इन्कार करना है।

(c) द्वैतवाद—अरिस्तूकी दुनिया दो भागोंमें विभक्त है—(१) रोज-बरोज हम जिस जगतको इन्द्रियोंसे देख रहे हैं, (२) और उसके भीतर बसनेवाला मूलरूप (विज्ञान)। शुद्धतम और सर्वश्रेष्ठ विज्ञान ईश्वर

हैं—यही अरस्तूका दर्शन है। ईश्वरके अतिरिक्त जितने ही विशेष विज्ञान हैं, जिन्हें जीव कहा जाता है, और जो देव (=फरिश्ते), मानुष, आदिकी आत्माओंके रूपमें छोटे-बड़े दर्जोंमें बँटे हैं। इन विज्ञानोंमें देवा, मनुष्यादिके अतिरिक्त वह आत्माएँ भी शामिल हैं, जो नक्षत्रोंका संचालन करती हैं।

अक्विनाकी सबसे बड़ी कोशिश थी धर्म और दर्शनके समन्वय करनेकी। उसका कहना था, दर्शन और धर्म दोनोंके लिए अपना अपना अलग कायदा है, उन्हें एक दूसरेके काममें बाधा नहीं डालनी चाहिए। अगस्तिन् (रोश्द भी) सारे ज्ञानको भगवानके प्रकाशको देन मानता था किन्तु अक्विना इन्द्रिय प्रत्यक्षके महत्त्वको स्वीकार करता था।

अक्विना नवीन अरस्तू-दर्शनके हिमायती दामिनिकन साधु-सम्प्रदायसे संबंध रखता था। फ्रांसिस्कन साधु उसका विरोध करते थे। उनके विद्वान् दन स्कातस् (१२६५-१३०८) और ओक्मवासी विलियम (म० १३४९ ई०) इस बातके विरोधी थे कि धर्म और दर्शनमें समन्वय किया जाये। दर्शन और पदार्थ ज्ञानके लिए एक बात सच्ची हो सकती है किन्तु वही बात धर्मके अनुसार असत्य हो सकती है। सत्यका साक्षात्कार इन्द्रियों और अनुभवसे नहीं, बल्कि आत्मासे होता है। शिव (=अच्छा) सत्यसे ऊपर है और शिव वही है, जिसके लिए भगवान्का वैसा आदेश है। मनुष्यका कर्तव्य है, भगवान्की आज्ञाका पालन करना। बुरे समझे जाने वाले कर्म भी अच्छे हो जाते हैं, यदि वह भगवान्की सेवाके लिए हों। चर्च या धर्म-सम्प्रदायके द्वारा ही हमें भगवान्का आदेश मिलता है, इसलिए धर्मके हिमायतियोंका कहना था कि चर्च और उसका अध्यक्ष पोप पृथ्वीपर वही अधिकार रखते हैं जो कि भगवान् ईसामसीह विश्वपर।

(३) रेमोंद मार्तिनी—अक्विनाके बाद रेमोंद मार्तिनी दो मिनिकनोंकी ओरसे विज्ञवाद और रोश्दके विरोधका आरंभ हुआ। इसने अपने काममें ग़ज़ालीकी पुस्तकोंसे मदद ली यद्यपि ग़ज़ाली स्वयं सूफी अद्वैतवादी था, किन्तु उसके चूँचूके मुरब्बेमें क्या नहीं था? मार्तिनी इस अन्दाजमें सचके बहुत करीब था, कि रोश्दने अपने अद्वैत विज्ञान

(वहदत अक्ल)-वादको अरस्तूसे नहीं अफलातूँसे लिया है।

(४) रेमोंद लिल्ली—(१२२४-१३१५ ई०)—इस्लामी जहादोंके जवाबमें प्रारंभ हुई ईसाई जहादोंकी बात हम कह चुके हैं। बारहवीं-तेरहवीं सदियोंमें जहाँ बाहरी दुनियामें ये जहाद चल रहे थे, वहाँ भीतरी दुनियामें भी विचारात्मक जहाद चल रहे थे, जिसे कि लाखों स्त्री-पुरुषों को नास्तिक और जादूगर होनेके इल्जाममें जलाये जानेके रूपमें देखते हैं। [हमें इसके लिए युरोपवालोंको ताना देनेका हक नहीं है क्योंकि बाण (६०० ई०) की तीव्र आलोचनामें लार्ड बेंटिंक (१८३५ ई०)के सती कानून तकमें धर्मके नामपर पागल करके जिन्दा जलाई जानेवाली स्त्रियोंकी तादाद गिनी जाय तो वह उनसे कई गुना ज्यादा होती है]—कभी रोजर बेकनकी पुस्तकोंके जलाये जानेके रूपमें और कहीं दोमिनिकन और फ्रांसिस्कनके बाद विवादके रूपमें। रेमोंद लिल्ली ऐसे ही समयमें इतालीके एक समृद्ध परिवारमें पैदा हुआ था। पहिले तो उसका जीवन बहुत विलासिता पूर्ण रहा, किन्तु यकायक उसने अपनेको सुधारा, और उसे धुन सवार हो गई कि इस्लामको दुनियासे नेस्तनाबूद करना चाहिए। वह युरोपके सारे ईसाइयोंको सलीबी लड़ाइयोंमें शामिल देखना चाहता था। इसके लिए उसने १२८७ ई०में पोप होनोरियसके दरबारमें पहुँचकर अपने विचार रखे—इस्लामको खतम करनेके लिए एक भारी सेना तैयार की जाय, इस्लामी देशोंमें काम करने लायक विद्वानोंको तैयार करनेके लिए विश्वविद्यालय कायम किये जायें, और रोश्दकी पुस्तकोंका धर्म विरोधी घोषित कर दिया जाय। वहाँ सफल न होनेपर उसने फ्रांस इताली स्विट्जर्लैंड आदिमें इसके लिए दौरा किया। १३११ ई०में ईसाइयोंकी एक बड़ी सभा वीना (आस्ट्रिया)में हुई, वहाँ भी वह पहुँचा किन्तु वहाँ भी असफल रहा। इसी निराशामें वह १३१५ ई०में मर भी गया। रेमोंद विद्वान था, उसने रोश्द और दूसरे दार्शनिकोंकी पुस्तकोंको पढ़ा था और कुछ लिखा भी था इसलिए उसके इस्लाम विरोधी विचार-बाज धरतीमें पड़े हुए समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

§ ३–इस्लामिक दर्शन और विश्वविद्यालय

१. पेरिस और सोरबोन्

फ्रासिस्कन सम्प्रदायका कार्यक्षेत्र अपने गढ आक्सफोर्डसे इंगलैंड भर हीमें सीमित था। पश्चिमी यूरोपमें इस्लामिक दर्शनका प्रचारकेन्द्र पेरिस था। पेरिसमें एक बडा सुभीता यह भी था कि यहाँ स्पेनसे प्रवासित उन यहूदियोंकी एक काफी संख्या रहती थी, जिन्होंने रोश्द तथा दूसरे दार्शनिकोंके ग्रंथोंको अरबीसे अनुवाद करनेमें बहुत काम किया था। रोश्द-दर्शनके समर्थकों और विरोधियोंके यहा भी दो गिरोह थे। सोरबोन् विश्वविद्यालय रोश्द विरोधियोंका गढ था और पास ही पेरिस विश्वविद्यालय समर्थकोंका। पेरिसके कला (आर्ट) विभागका प्रधानाध्यापक सीजर ब्राबँत (म० १२८४ ई०) रोश्दका जबर्दस्त हामी था। अपने इन विचारोंके लिए धर्म विरोधी होनेके अपराधमें उसे जेल भेज दिया गया, और ओर्बीतो[1]के जेलमें उसकी मृत्यु हुई। अब भी पेरिसमें उसकी दी हुई अरबीकी दार्शनिक पुस्तकोंकी काफी संख्या है।

पेरिस विश्वविद्यालयके विरुद्ध सोरबोन् धर्मवादियोंका गढ था— और शायद इसीलिए आज भी वह भाग (जो कि अब पेरिस नगरके भीतर आगया है) लातीनी मुहल्ला कहा जाता है। सोरबोनपर पोपकी विशेष कृपा होनी ही चाहिए और उसी परिमाणमें पेरिस पर कोप। सोरबोन् वालोंकी कोशिशसे पोपने पेरिस विश्वविद्यालयके नाम १२१७ ई० में फर्मान निकाला कि ऐसे शास्त्रार्थ न किये जायें, जिनमें फसादका डर हो। वस्तुत यह फर्मान अरबी दर्शन सर्वथा वाद विवादको रोकनेका एक बहाना मात्र था। पीछे पोपोंने भी इस तरहके फर्मान जारी करके अरबी दर्शनके अध्ययन-अध्यापनको ही धर्म विरुद्ध ठहरा दिया। १२६९ ई० में सोरबोनवालोंकी

[1] Orbieto

कौंसिलसे एक धर्म-परिषद् बुलाई गई जिसने निम्न सिद्धान्तोंके माननेवालोंपर नास्तिकताका फतवा दे दिया—

(१) सभी आदमियोंमें एक ही विज्ञान है,
(२) जगत अनादि है,
(३) मनुष्यका वंश किसी बाबा आदम तक खतम नहीं हो जाता,
(४) जीव शरीरके साथ नष्ट हो जाता है,
(५) ईश्वर व्यक्तियोंका ज्ञान नहीं रखता
(६) बंदा(=आदमियो)के कर्मपर ईश्वरका कोई अधिकार नहीं,
(७) ईश्वर नश्वर वस्तुको नित्य नहीं बना सकता।

यह सब कुछ होनेपर भी पेरिस विश्वविद्यालयमें इस्लामिक दर्शनका अध्ययन बंद नहीं हुआ।

२ पेदुआ विश्वविद्यालय

यूरोपमें सिसली द्वीप और स्पेन इस्लामिक शासन-केन्द्र थे, इसलिए इनके ही रास्ते इस्लामिक विचारों (दर्शन)का भी यूरोपमें पहुँचना स्वाभाविक था। सिसली द्वीप इतालीके दक्षिणमें है यहाँसे ही वे विचार इतालीमें पहुँचे उनमें स्पेनसे फ्रांस जानेकी बात हो चुकी है। इतालीमें भी पेदुआके विद्यापीठने इस्लामिक दर्शनके अध्ययन द्वारा अपनी कीर्तिको सारे यूरोपमें फैला दिया।—खासकर रोश्दके दर्शनके अध्ययनकेलिए तो यह विश्वविद्यालय सदियों तक प्रसिद्ध रहा। यहाँ रोश्दपर कितने ही विवरण और टीकायें लिखी गईं। तेरहवीं सदीसे रोश्दके दर्शनके अन्तिम आचार्य दे क्रिमोनी (मृत्यु १६३१ ई०) तक यहाँ इस्लामिक दर्शन पढ़ाया जाता रहा। यहाँके इस्लामिक दर्शनके प्रोफेसरोंमें निम्नका नाम बहुत प्रसिद्ध है—

पीतर-द-आबानो
जीन दे-जाँदुन
फा अरबानो

पाल दी-वनिस—(मृत्यु १४२६ ई०)
गाइतनो—(मृत्यु १४६५ ई०)
इलियास् मदीजू—(१४७७ ई०)
वरोना
ज्वाबाला—(१५६४ ८६ ई०)
पदसिया
सीज़र क्रिमोनी—(मृ० १६३१ ई०)

सोलहवीं सदीमें इब्न रोश्दकी पुस्तकोंके नये लातीनी अनुवाद हुए, इस काममें पदुआका खास हाथ रहा। इन अनुवादकोंमें पेदुआका प्रोफेसर वेरोना भी था, जिसने कुछ पुस्तकोंका अनुवाद सीधे यूनानीसे किया था। पदेसियोके व्याख्यानोंके कितने ही पुराने नोट अब भी पदुआके पुस्तकालयमें मौजूद हैं।

[क्रिमोनी]—ज्वाबीलाका शागिर्द सीज़र क्रिमोनी इस्लामिक दर्शन का अन्तिम ही नहीं, बल्कि वह बहुत योग्य प्रोफेसर भी था। इसके लकचरोंके भी कितने ही नोट उत्तरी इतालीके अनेक पुस्तकालयोंमें मिलते हैं। ज्वाबीलाकी भाँति इसका भी मत था, कि ग्रह नक्षत्रोंकी गतिके सिवा ईश्वरके अस्तित्वका कोई सबूत नहीं। रोश्दकी भाँति यह भी मानता था, कि ईश्वरको सिर्फ अपना ज्ञान है, उसे व्यक्तियोंका ज्ञान नहीं है। मनुष्यमें सोचनेकी शक्ति कर्त्ता विज्ञानसे आती है। यह ऐसे विचार थे, जिन्हें ईसाई धर्म नास्तिकता कहता था। क्रिमोनी उनसे बचनेकी कोशिश बस करता था, इसका उदाहरण लीजिए—[1] "इस पुस्तकमें मैं यह कहना नहीं चाहता, कि जीवके बारेमें हमारा क्या विश्वास होना चाहिए। यहाँ मैं सिर्फ यह बतलाना चाहता हूँ, कि जीवके बारेमें अरस्तूके क्या विचार थे। यह स्मरण रहे कि दर्शनकी आलोचना मेरा काम नहीं है, इस कामको सन्त तामस् आदिने अच्छी तरह पूरा किया है।' लेकिन इसपर भी

---

[1] रोश्दके "कितावुन्‌'नफ़स"की व्याख्याकी भूमिका।

§४ इस्लामिक दर्शनका यूरोपमें अन्त

इन [illegible] जिस तरह रोश्दी [illegible] गम्भीरतासे गिरी हुई [illegible] लाया, यह हम बता चुके हैं। इसकी वजहसे जहाँ [illegible] धार्मिक क्षेत्रमें [illegible] नाम हुआ वहाँ हर तरहकी स्वतंत्र [illegible] लोग—[illegible] बुद्धि स्वातंत्र्यवादी—रोश्दके झंडेके नीचे [illegible] लगे और रोश्दके [illegible] जगह-जगह दल बनने लगे। इन्हीं दलोंमेंसे एक उन लोगोंका था

जिन्होंने अपना नाम "स्वतंत्रताके पुत्र" रखा था। ये लोग विश्वको ही ईश्वर मानते थे, और विश्वकी चीजोंको उसका अंश। ईसाई चर्चके न्यायालयोंसे इनको आगमें जलानेकी सजा होती थी और ये लोग खुशी-खुशी आगमें गिरकर जान दे देते थे। 'स्वतंत्रताके पुत्रों' में बहुत सी स्त्रियां भी शामिल थीं, उन्होंने भी अग्निपरीक्षा पास की।

पादरी लोग इस अधार्मिकताके जिम्मेवार फ्रेडरिक और इब्नरोश्दको ठहराते थे। तो भी इस विरोधसे रोश्दके दर्शन—अथवा पुराने दर्शन—का कुछ नहीं बिगड़ा।

चौदहवीं सदीमें तुर्कोंने बेजन्तीनके ईसाई राज्यपर आक्रमण कर अधिकार जमाना शुरू किया। हर ऐसे युद्ध—राजनीतिक अशांति—में लोगोंका तितर बितर होना जरूरी है। कुस्तुन्तुनिया (आजका इस्ताबूल) का नाम उस वक्त बेजन्तीन था, और प्राचीन रोमन सल्तनतके उत्तराधिकारी होनेसे उसका जहाँ सम्मान ज्यादा था, वहाँ वह विद्या और संस्कृति का एक बड़ा केन्द्र भी था। ईसाई धर्मके दो सम्प्रदायों—कथलिक (=कथलिक) और सनातनी (=आर्थोडाक्स)—में सनातनी चर्चका पत्रियार्क (=महापितर या धर्मराज) यहीं रहता था। जिस तरह कथलिक चर्चकी धर्मभाषा लातीनी थी, उसी तरह पूर्वी सनातनी चर्चकी धर्मभाषा यूनानी थी। तुर्कोंके इस आक्रमणके समय वहाँसे भागनेवालोंमें कितने ही यूनानी साहित्यके पंडित भी थे। वे बहुमूल्य प्राचीन यूनानी पुस्तकोंके साथ पूर्वसे भागकर इतालीमें आ बसे। इन पुस्तकोंको देखकर वहाँके पंडितोंकी आँखें खुल गई, यदि जैसे मानो तिब्बती चीनी अनुवादों-दर अनुवादोंके सहारे पढ़ने रहनेवाले भारतीय विद्वानोंके हाथमें असंगकी 'योगचर्या भूमि'[1], वसुबंधुकी 'वादविधि' दिग्नागका 'प्रमाणसमुच्चय', धर्मकीर्तिका 'प्रमाणवार्त्तिक'[2] और "प्रमाणविनिश्चय" मूल संस्कृतमें मिल

[1] मूल संस्कृत पुस्तक मुझे तिब्बतमें मिली है।

[2] तिब्बत और नेपालमें मिली, और इसे मैंने सम्पादित भी कर दिया है।

जावें। अब लोगोंको क्या जरूरत था, कि वे मूल यूनानी पुस्तकको और यूनानी न जाननेवाले लसकोंकी टीकाओं और सरपारी मददसे उन्हें पढ़नेकी कोशिश करें।

पिटार्क (१३०४-७४ ई०)—रमार्ट लिली (१२२४-१३१५)ने इस्लामको उखाड़ फेंकनेकी बहुत कोशिश की थी, किन्तु वह उसमें सफल नहीं हुआ, तो भी उसकी वसीयतके एक हिस्से—यूरोपसे इस्लामिक दर्शन अध्ययनाध्यापनको खतम करने—का पूर्त्तिकेलिए तस्केनीमें पिटार्कका जन्म हुआ। बापने उसे वकील बनाना चाहा था किन्तु उसका उसमें दिल नहीं लगा, और अन्तमें वह पेदुआमें आगया। पिटार्क लातीनी और यूनानी भाषाओंका पंडित था दर्शन और आचार शास्त्रपर उसकी पुस्तकें आज भी मौजूद हैं। जहादवाद ने यूरोपके दिमागपर कितना जहरीला असर किया था यह पिटार्कके इस विचारसे मालूम होगा अरबोंका और विद्याकी कोई सेवा न की, उन्होंने यूनानी संस्कृति और कलाकी कुछ बातोंको कायम जरूर रखा। पिटार्क कहता था कि जब यूनानी संस्कृति और विद्याकी मूल वस्तुएं हमें प्राप्त हो गई हैं, तो हमें अरबोंकी जूठी पत्तल चाटनेसे क्या मतलब। अरबोंसे उसे कितनी चिढ़ थी, यह उसके एक पत्रसे पता लगेगा, जिसे उसने अपने एक मित्रको लिखा था— मैं तुमसे इस कृपा की आशा रखता हूँ कि तुम अरबोंको इस तरह भुला दोगे, जैसे संसारमें उनका अस्तित्व कभी था ही नहीं। मुझे इस जातिकी जातिसे घृणा है। यह भलीभांति याद रखें कि यूनानने दार्शनिक वक्ता, कवि और वक्ता पैदा किये। दुनियाकी वह कौनसी विद्या है, जिसपर यूनानी विद्वानोंकी पुस्तकें न मौजूद हों। लेकिन अरबोंके पास क्या है?—सिर्फ दूसरोंकी बचा खुची पूँजी। मैं उनके यहाँके वैद्यों, दार्शनिकों कवियोंसे भले प्रकार परिचित हूँ और यह मेरा विश्वास है, कि अरब कौमसे कभी भलाईकी उम्मीद नहीं की जा सकती। तुम ही बताओ, यूनानी भाषाके वक्ता देमस्थनीजके बाद सिसरो यूनानी कवि होमरके बाद वर्जिल यूनानी ऐतिहासिक हेरोदोतसके बाद तीतस् लवीका जन्म दुनियामें कहाँ

हुआ ? हमारी जातिके नाम बाज़ बातोमें दुनियाकी सभी जातियोंके कारनामोंसे बढ़ चढ़कर है। यह क्या बेवकूफी है, कि अपनेको अरबोंसे भी हीन समझते हो। यह क्या पागलपन है, कि अपने कारनामोंको भुलाकर अरबोंकी स्तुति—प्रशंसा—के नशेमें डूब गये हो। इतालीकी बुद्धि और प्रतिभा! क्या तू कभी गाढ निद्रासे नहीं जागेगी?"

पित्रार्कके बाद 'इतालीकी प्रतिभा" जगी, और यूनानी दर्शनके विद्वानोंने—जो कि पूरबसे भाग भागकर आये थे—जगह-जगह एसे विद्यालय स्थापित किये, जिनमें यूनानी साहित्य और दर्शनकी शिक्षा सीधे यूनानी पुस्तकोंसे दी जाती थी। आरम्भके यूनानी अध्यापकोंमें गाज़ा (मृ० १४७८ ई०) जाज दे त्रेपर्जिंद (मृत्यु १४८४ ई०) जाज स्कोलारियस् ज्यादा प्रसिद्ध हैं।

४ नवम्बर सन् १४९७ ई० की तारीख पेदुआ और इतालीके इतिहासमें अपना 'खास" महत्त्व रखती है। इसी दिन प्रोफ़ेसर ल्युनियस्ने पदुआके विश्वविद्यालय भवनमें अरस्तूके दर्शनको उस भाषा द्वारा पढाया, जिसमें नौ सौ साल पहिले खुद अरस्तू अथेन्समें पढाया करता था। प्राचीनता-पंथियोंको गर्व हुआ कि उन्होंने कालकी सुईको पीछे लौटा दिया, किन्तु वह उनके बसकी बात नहीं थी, इसे इतिहासने आगे साबित किया।

४ नवम्बर १४९७ ई०के बाद भी रोश्दका पठन-पाठन पदुआमें भी जारी रहा यह बतला चुके हैं। सत्रहवीं सदीमें जसुइत-पंथियोंने रोश्दपर भी हमला शुरू किया, किन्तु सबसे जबर्दस्त हमला जो चुपचाप हो रहा था, वह था साइंसकी ओरसे, गेलेलियोकी दुरबीन न्यूटनके गुरुत्वाकर्षण और भापके इंजनके रूपमें।

---

३ यूरोपीय दर्शन

३. यूरोपीय दर्शन

दशम अध्याय

सत्रहवीं सदीके दार्शनिक

(विचार-स्वातन्त्र्यका प्रवाह)

[ल्योनार्दो दा विन्ची (१४५१-१५१९)]—नवीन यूरोपके स्वतंत्र विचारक और कलाकारका एक नमूना था दा विन्ची, जिसकी कला (चित्र) में ही नहीं, लेखोंमें भी नवयुगकी ध्वनि थी किन्तु वह अपने ग्रंथोंको उस वक्त प्रकाशित कर पोप और धर्माचार्योंके कोपका भाजन नहीं बनना चाहता था, इसलिए उसके वैज्ञानिक ग्रंथ उस वक्त प्रकाशमें नहीं आये।

१४५५ ई०में छापेका आविष्कार ज्ञानके प्रचारमें बड़ा सहायक साबित हुआ, निश्चय ही छापके बिना पुस्तकों द्वारा ज्ञानका प्रचार उतनी शीघ्रतासे न होता, जितना कि वह हुआ। पोप-पुरोहित परिश्रमसे देरमें लिखी दो चार कापियोंको जलवा सकते, किन्तु छापेने सकड़ों हजारों कापियोंको तयार कर उनके प्रयत्नको बहुत हद तक असफल कर दिया।

पंद्रहवीं-सोलहवीं सदियां हमारे यहां सन्तों और सूफियोंको पैदा कर दुनियाकी तुच्छता—अतएव दुनियाकी समस्याओंके भुलाने—का प्रचार कर रही थीं, लेकिन इसी समय यूरोपमें बुद्धिको धर्म और रूढ़ियोंसे स्वतंत्र करनेका प्रयत्न बहुत जोखिम उठाकर हो रहा था। लारेंजो वाला (१४०८-५७ ई०) ने खुलकर शब्दोंके धनी धर्म-रूढ़िके हिमायती दार्शनिकोंपर प्रहार किया। उसका कहना था, शब्दोंके दिमागी तर्कको छोड़ो और सत्यकी खोजकेलिए वस्तुओंके पास जाओ। कोलम्बस (१४४७-१५०६),

१

वास्को-द-गामा (१४६९-१५२४) ने अमेरिका और भारतके रास्ते खोले। पारासेल्सस (१४९३-१५४१) और फान् हेल्माट (१५७७-१६४४) ने पुस्तक पन्नोंकी गुलामीको छोड़ प्रकृतिके अध्ययनपर जोर दिया। उस वक्तके विश्वविद्यालय धर्मकी मुट्ठीमें थे, और साइंस-संबंधी गवेषणाके लिए वहाँ कोई स्थान न था, इसीलिए साइंसकी खोजोंके लिए स्वतंत्र संस्थाएँ स्थापित करनी पड़ीं। तलसियो (१५७७-१६०४) ने ऐसी गवेषणाओंके लिए नेपल्समें पहिली रसायनशाला खोली। १५४३ में वसालियस् (१५१५-६४ ई०) ने शरीरशास्त्रपर साइंस सम्मत ढंगसे पहिली पुस्तक लिखी, इसमें उसने कल्पनाकी जगह हर बातको शरीर देखकर सिद्ध करनेकी कोशिश की। धर्म बहुत परेशानीमें पड़ा हुआ था, वह सख्त डरसे साइंसकी प्रगतिको रोकना चाहता था। १५३३ ई०में सर्वेतस और १६०० ई०में ग्यार्दिनो ब्रूनो आगमें जलाकर साइंसके शहीद बनाये गये। यह वह समय था जब कि भारतमें अकबर उदारतापूर्वक साइंसवेत्ताओंके खूनके प्यासे इन ईसाई पुरोहितों और दूसरे धर्मियोंके साथ समानताका बर्ताव करते हुए सबकी धार्मिक शिक्षाओंको सुनता तथा एक नये धर्म द्वारा उनके समन्वय करनेके प्रयत्नमें लगा हुआ था। सोलहवीं सदीके पोपोंके विरोधी प्रयोग हिमायती विद्वानोंमें मोन्ताञ्[1] (१५६१-१६२६) तायको ब्राह (१५४६-१६०१) के साञ्चेज[2] (१५६२-१६३२) के नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं।

पन्द्रहवीं सदीके विचार-स्वातन्त्र्य और सोलहवीं सदीके भौगोलिक खगोलिक आविष्कारोंने कूप मंडूकताके दूर करनेमें बहुत मदद की, और इस प्रकार सत्रहवीं सदीमें यूरोपमें कुछ खुली हवा सी आने लगी थी। इस वक्तके दार्शनिकोंकी विचारधारा दो प्रकारकी देखी जाती है। (१) कुछका कहना था, कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष, और तजर्बा (प्रयोग) ही ज्ञानका एक मात्र आधार है, इन्हें प्रयोगवादी कहते हैं। बेकन, हाब्स, लाक, बर्कले, ह्यूम प्रयोगवादी दार्शनिक थे। (२) दूसरे दार्शनिक ज्ञानको इन्द्रिय या

---

[1] Montaigne [2] Sanchez

प्रयोग-गम्य नहीं बुद्धिगम्य मानते थे। इन्हें बुद्धिवादी कहा जाता है द-कार्त, स्पिनोजा, लाइब्निट्ज इस प्रकारके दार्शनिक थे।

§ १–प्रयोगवाद[1]

प्रयोगवाद प्रयोग या तजर्बेको ज्ञानका साधन बतलाता है, किन्तु प्रयोगके जरिये जिस सच्चाईको वह सिद्ध करता है वह केवल भौतिक तत्त्व, केवल विज्ञानतत्त्व—अर्थात् अद्वैत भी हो सकता है—अथवा भौतिक और विज्ञान दोनों तत्त्वोंको माननेवाला द्वैतवाद भी। हॉब्स, टोलण्ड, अद्वैती भौतिकवादी थे, स्पिनोजा अद्वैती विज्ञानवादी और बकन द-कार्त लीबनित्ज द्वैतवादी थे।

१. अद्वैत-भौतिकवाद

(१) हॉब्स (१५८८-१६७९ ई०)—टामस हाब्सने अध्ययन आक्सफोर्डमें किया। पेरिसमें उसका परिचय दकार्तसे हुआ। जो देश उद्योग धंधे और पूँजीवादका बानी बनने जा रहा था, यह जरूरी था कि उसका नवर स्वतंत्र विचारकोंमें भी पहिला हो इसलिए सत्रहवीं सदीके आरंभमें बकन (१५६१-१६२६) का विचार-स्वातन्त्र्यका प्रचार और मध्ययुगीनताका विरोध करना, तथा हाब्स, लॉक जैसे दार्शनिकोंका उसे आगे बढ़ाना, कोई आकस्मिक घटना न थी। बकन दार्शनिक विचारोंमें प्रगतिशील था, किन्तु यह जरूरी नहीं है कि दार्शनिक प्रगतिशीलता राजनीतिमें भी वही स्थान रखे। जब इंगलैंडमें सामन्तवादके खिलाफ क्रामवेलके नेतृत्वमें जनताने क्रान्तिका झंडा उठाया तो हाब्स क्रान्ति-विरोधियोंके दलमें था। ३० जनवरी १६४९ को शाहजहाँके समकालीन राजा चार्ल्सको गिरफ्तारकर जनताने सामन्तवादियोंपर विजय पाई। हॉब्स जैसे कितने ही व्यक्ति उससे सन्तुष्ट नहीं हुए। नवम्बर १६५१ में हॉब्स फ्रांस भाग गया, लेकिन उसे यह समझनेमें देर न लगी, कि

[1] Empiricism

गुजरा जमाना नहीं लौट सकता और उसी साल लौटकर उसने अधिनायक ओलिवर क्रामवेल (१५९९-१६५८) से समझौता कर लिया।

हॉब्स सोफिस्तवादका विरोधी था। उसके अनुसार दर्शन कारणोंसे कार्य और कार्योंसे कारणके ज्ञानको कहा जाता है। हम इन्द्रियोंके साक्षात्कार द्वारा वस्तुका ज्ञान (सिद्धान्त) प्राप्त कर सकते हैं या इस प्रकारके सिद्धान्तोंसे वस्तुके ज्ञानको भी पा सकते हैं।

दर्शन गति और क्रियाका विज्ञान है ये गतियाँ प्राकृतिक पिंडोंकी भी हो सकती हैं, राजनीतिक पिंडोंकी भी। मनुष्यका स्वभाव, मानसिक जगत् राज्य प्राकृतिक घटनाएँ उन्हीं गतियोंके परिणाम हैं।

ज्ञानका उद्गम इन्द्रियोंकी वेदना (=प्रत्यक्ष) है, और वेदना मस्तिष्क या किसी इसी तरहके आभ्यन्तरिक तत्त्वकी गतिके सिवा और कुछ नहीं है। जिसे हम मन कहते हैं, वह मस्तिष्क या सिरके भीतर मौजूद इसी तरहके किसी प्रकारके भौतिक पदार्थकी गतिमात्र है। विचार या प्रतिबिंब, मस्तिष्क और हृदयकी गतियाँ—अर्थात् भौतिक पदार्थोंकी गतियाँ—हैं। भौतिक तत्त्व और गति ये मूलतत्त्व हैं, वे जगत्‌की हर एक वस्तु—जड़ चेतन सभी—की व्याख्या करनेके लिए पर्याप्त हैं।

हॉब्सने ईश्वरके अस्तित्वका साफ तौरसे इन्कार नहीं किया उसका कहना था कि मनुष्य 'ईश्वरके बारेमें कुछ नहीं जान सकता।'

अच्छा बुरा—पाप पुण्य—हॉब्सके लिए सापेक्ष बातें हैं कोई परमार्थतः न अच्छा है न परमार्थतः बुरा।

हॉब्स अरस्तूकी भाँति मनुष्यको सामाजिक प्राणी नहीं बल्कि 'मानव भेड़िया' कहता था। मनुष्य हमेशा धन मान, प्रभुता, या शक्तिकी प्रतियोगितामें रहता है उसका झुकाव अधिकके लाभ तथा द्वेष और युद्धकी ओर होता है। जब उसके रास्तेमें दूसरा प्रतियोगी आता है, तो फिर उसे मार डालने अधीन बना लेने, या भगा देनेकी कोशिश करता है।

(२) टोलैंड (१६७०-१७२२ ई०)—हॉब्सकी भाँति उसका देश भाई टोलैंड भी भौतिकवादका हामी, तथा बर्कलेके विज्ञानवादका विरोधी

था। भौतिक तत्त्व गतिशून्य नही बल्कि सक्रिय द्रव्य या शक्ति है। भौतिक तत्त्व शक्ति है, और गति, जीवन, मन सब इसी शक्तिकी क्रियाएं है। चिन्तन उसी तरह मस्तिष्ककी क्रिया है, जिस तरह स्वाद जिह्वाका।

२–अद्वैत विज्ञानवाद

स्पिनोजा (१६३२-७७ ई०)—बारूच स्पिनोजा हालैंडमें एक धनी यहूदी परिवारमें पैदा हुआ था। उसने पहिले इब्रानी साहित्यका अध्ययन किया पीछे फ्रेंच दार्शनिक द-कार्तके ग्रंथोंको पढ़कर उसकी प्रवृत्ति स्वतंत्र दार्शनिक चिन्तनकी ओर हुई। उसके धर्मविरोधी विचारोंसे उसके सधर्मी नाराज हो गये और उन्होंने १६३६ ई० में उसे अपने धर्म मंदिरसे निकाल बाहर किया जिससे स्पिनोजाको अम्स्टडम् छोड़नेपर बाध्य होना पड़ा। जहाँ-तहाँ धक्के खाते अन्तमें १६६६ में (औरंगजेबके शासनारंभ कालमें) वह हागमें जाकर बस गया, जहाँ उसकी जीविकाका जरिया चश्मेके पत्थरोंको घिसना था। शताब्दियों तक स्पिनोजाको नास्तिक समझा जाता था, और ईसाई यहूदी दोनों उससे घृणा करनेमें होड़ लगाये हुए थे।

स्पिनोजा पहिला दार्शनिक था, जिसने मध्यकालीन लोकोत्तरवाद तथा धर्म रूढ़िवादका साफ शब्दोंमें खंडन करते हुए बुद्धिवाद और प्रकृतिवादका जबर्दस्त समर्थन किया हर तरहके शास्त्र या धर्मग्रंथके प्रमाणसे बुद्धि ज्यादा विश्वसनीय प्रमाण है। धर्मग्रंथोंको भी सच्चा साबित होनेके लिए उसी तरह बुद्धिकी कसौटीपर ठीक उतरना होगा जिस तरह कि दूसरे ऐतिहासिक लेखों या ग्रंथोंको करना पड़ता है। बुद्धिका काम है यह जानना कि भिन्न भिन्न वस्तुओंमें आपसका क्या संबंध है। प्राकृतिक घटनाएं परस्पर संबद्ध हैं। यदि उनकी व्याख्याकेलिए प्रकृतिसे परेकी किसी लोकोत्तर चीजको लाते हैं तो वस्तुओंका वह आन्तरिक संबंध विच्छिन्न हो जाता है, और सत्य तक पहुँचनेकेलिए जो एक जरिया हमारे पास था, उसे ही हम खो देते हैं। इस तरह बुद्धिवाद और प्रकृतिवाद (=भौतिकवादी प्रयोगवाद) दोनोंको हम स्पिनोजाके दर्शनमें सम्मिश्रण पाते हैं।

लेकिन स्पिनोज़ाके प्रकृति (=भौतिक) वाद और हॉब्सके भौतिकवादमें अन्तर है। हॉब्स शुद्ध भौतिकवादी था। वह सबकी व्याख्या भौतिक तत्त्वों और उसकी शक्ति या गतिसे करता था किन्तु इसके विरुद्ध स्पिनोज़ाकी व्याख्या या ब्रह्म-जगत अद्वैतवादी सर्वान्तिवादी भाँति "यह सब ईश्वर (=ब्रह्म) है और ईश्वर (=ब्रह्म) यह है।" इस तरह उसका जोर भौतिकतत्त्व पर नहीं बल्कि आत्मतत्त्वपर था।

(परमतत्त्व)—एक सान्त वस्तु अपनी सत्ताके लिए दूसरे आधारिक तत्त्वोंपर निर्भर है और इन आधारभूत तत्त्वोंमेंसे भी प्रत्येक दूसरे आधारिक तत्त्वोंपर निर्भर है। इस तरह एकका आधार दूसरा, दूसरेका आधार तीसरा मानते जानेपर हम किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सकते। कोई ऐसा तत्त्व होना चाहिए, जो स्वयंसिद्ध, स्वयं अपना आधार हो जो सभी आश्रयों, घटनाओंका अवलम्ब है। लेकिन, ऐसे स्वतः सिद्ध तत्त्वके ढूँढ़नेके लिए हमें प्रकृतिसे परे किसी स्रष्टाकी ज़रूरत नहीं। प्रकृति या सृष्टि स्वयं इस कामको तथा ईश्वरकी आवश्यकताको पूरा करती है। इस तरह प्रकृति या ईश्वर स्वयं सर्वमय, अनन्त और पूर्ण है इससे परे कुछ नहीं है न कोई लोकोत्तर तत्त्व है। प्रकृति भी गतिशून्य नहीं बल्कि सक्रिय परिवर्तनशील है—सभी तरहकी शक्तियाँ वही है। हर एक अन्तिम शक्ति, ईश्वरका गुण है। मनुष्य इन गुणोंमेंसे सिर्फ दो गुणोंको जानता है—विस्तार (=परिमाण) और चिन्तन और यही दोनों हैं भौतिक और मानसिक शक्तियाँ। सभी भौतिक पिंड और भौतिक घटनाएँ विस्तार-गुणकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ हैं और सभी मन तथा मानसिक अनुभव चिन्तन गुणकी। चूँकि, विस्तार और चिन्तन दोनों एक परमतत्त्वके गुण हैं—इसलिए भौतिक मानसिक पदार्थोंके संबंधमें कोई कठिनाई नहीं है। जितनी सान्त स्थितियाँ हमें दृष्टिगोचर होती हैं वह भ्रम या माया नहीं बल्कि वास्तविक है—उस वक्त जब कि वह घटित हो रही है, और उस वक्त भी जब कि वह लुप्त होती है तब भी उसका अत्यन्ताभाव नहीं होता, क्योंकि वह एक परमतत्त्व मौजूद रहता है, जिसमें कि अनेक बदलते और फिर बदलते रहते हैं।

३. द्वैतवाद

लॉक (१६३२-१७०४ ई०)—जॉन लॉकने आक्सफोर्डमें दर्शन प्राकृतिक विज्ञान और चिकित्साका अध्ययन किया था। बहुत सालों तक (१६६६-८३ ई०) इंगलैंडके एक रईस (अर्ल शाफ्टसबरी) का सेक्रेटरी रहा।

प्रयोग या अनुभवसे परे कोई स्वतःसिद्ध[1] वस्तु है, लॉक इससे इन्कारी था। हमारा ज्ञान हमारे विचारोंसे परे नहीं पहुँच सकता। ज्ञान तभी सच हो सकता है, जब कि हमारे विचारोंकी वस्तुओंकी सत्यता स्वीकार करती हो—अर्थात् विचार प्रयोगके विरुद्ध न जाते हो।

(१) तत्त्व—मानसिक और भौतिक तत्त्व—प्रत्यक्ष सिद्ध और अप्रत्यक्ष सिद्ध—दो पदार्थ तो हैं ही, इनके अतिरिक्त एक तीसरा आत्मतत्त्व ईश्वर है। अपनी प्राकृतिक योग्यताका ठीक तौरसे उपयोग करके हमें ईश्वर का ज्ञान हो सकता है।

अपने कामोंके बुरे होनेके बारेमें हमारी जो राय है—जो कि हमारे सीखे आचारज्ञानसे तयार होती है—इसीको आत्माकी पुकार कहा जाता है, वह इससे अधिक कुछ नहीं है। आचार नियम स्वयंभू (=स्वतः उत्पन्न) नहीं कहे जा सकते, क्योंकि उन्हें न स्वयंभू देखा जाता है, और न सर्वत्र एक समान पाया जाता है। ईश्वर-सम्बन्धी विचार भी स्वयंभू नहीं है। यदि ऐसा होता तो कितनी ही जातियोंको ईश्वरके ज्ञानसे वंचित अथवा उसके जाननेके लिए उत्सुक न देखा जाता। इसी प्रकार आग, सूर्य, गर्मीका ज्ञान भी सीखनेसे आते हैं, स्वयंभू नहीं हैं।

(२) मन—मन पहिले-पहिल साफ सलेट जैसा होता है, उसमें न कोई विचार होते हैं, न कोई छाप या प्रतिबिम्ब (=वासना)। ज्ञानकी सामग्री हम अनुभव (=प्रयोग) द्वारा प्राप्त होती है, अनुभवके ऊपर हमारे ज्ञानकी इमारत खड़ी है।

---

[1] Innate

लाक कहता ह कारण वह चीज ह, जो किसी दूसरी चीजको बनाता ह और काय वह ह जिसका आरम्भ किसी दूसरी चीजमे है।

इन्द्रियोसे प्राप्त वेदना या उसपर होनेवाला विचार ही हम देश-काल-विस्तार भेद-अभेद आचार तथा दूसरी बातोंके सबधका ज्ञान देते हैं यही हमार ज्ञानकी सामग्रीको प्रस्तुत करते ह।

लाक चाहता था, कि दशनको कोरी दिमागी उड़ानसे बचाकर प्रकृतिके अध्ययनमें लगाया जाये। जिज्ञासा करन प्रश्नोंके हल ढूँढ़नसे पहिल हमें अपनी योग्यताका निरीक्षण करना चाहिए, और देखना चाहिए किस ओर कितने विषयको हमारी बुद्धि समझ सकती है। "अपनी योग्यतासे परेकी जिज्ञासाए अनक नय प्रश्न कितन ही विवाद खड कर देती ह, जिससे हमार सन्दह ही बढत ह।

§ २–बुद्धिवाद (द्वैतवाद)

वैसे तो स्पिनोजाके अद्वैती विज्ञानवादको भी बुद्धिवादमें गिना जा सकता ह, क्योंकि विज्ञानवाद भौतिक जगत्की सत्ताको महत्त्व नहीं देता, किन्तु स्पिनोजाके दर्शनमें विज्ञानवाद और भौतिकवादका कुछ इतना सम्मिश्रण है, तथा प्रकृतिकी वास्तविकतापर उसका इतना जोर ह, कि उसे केवल विज्ञानवादमें नहीं गिना जा सकता। बाकी सत्रहवी सदीके प्रमुख बुद्धिवादी दार्शनिक द-कार्त और लाइबनिट्ज ह, जो दोनो ही द्वैतवादी भीह।

१–द कार्त (१५९६-१६५० ई०)

रन द कार्तका जन्म फ्रासके एक रईस परिवारमें हुआ था। दार्शनिकके अतिरिक्त वह कितनी ही पुरानी भाषाओंका पडित तथा प्रथम श्रेणीका गणितज्ञ था उसकी ज्यामिति आज भी कार्तेसीय ज्यामितिके नामसे मशहूर ह।

यूरोपके पुनर्जागरण कालके कितने ही और विद्वानोंकी भाँति द कार्त भी अपने समयके ज्ञानकी अवस्थासे असन्तुष्ट था। सिर्फ गणित एक विद्या

थी, जिसकी अवस्याको वह सन्तापजनक समझता था और उसका कारण उसका भय वह नपी-तुली नियमबद्ध प्रक्रियावा देता था। उसने गणित-के ढगका दर्शनमें भी इस्तेमाल करना चाहा। संत अगस्तिनकी भाति उसने भी "बाकायदा सदेह से सोचना आरभ किया—म दुनियाकी हर चीजको सदिग्ध समझ सकता हूँ, लेकिन अपने 'होने'के बारेमें सन्देह नहीं कर सकता 'म सोचता हूँ, इसलिए म हूँ।" इसे सच इसलिए मानना पडता ह, क्योंकि यह "स्पष्ट और असदिग्ध ह। इस तरह हम इस सिद्धान्तपर पहुँचते ह, 'जिसे हम अत्यन्त स्पष्ट और असन्दिग्ध पाते ह, वह सच है। इस तरहके स्पष्ट और असन्दिग्ध अतएव सच विचार ह—ईश्वर रखा गणितके स्वयसिद्ध, और 'नहींमें कुछ नहीं पैदा हो सकता' का तरहके अनादि सत्य। यद्यपि द-कार्तने स्पष्ट और असदिग्ध विचार होनेसे ईश्वरको स्वयसिद्ध मान लिया था किन्तु हवाका रुख इतना प्रतिकूल था कि ईश्वरकी सिद्धिकेलिए अलग भी उसे प्रयत्न करना पडा। दृश्य जगत्-के भी 'स्पष्ट और असदिग्ध' अशको उसने सत्य कहा। जगत् ईश्वरने बनाया ह, और अपनी स्थितिको जारी रखनेकेलिए वह बिलकुल ईश्वरपर निर्भर ह। ईश्वरनिर्मित जगतके दो भाग ह—काया या विस्तारयुक्त पदार्थ और मन या सोचनेवाला पदार्थ। आत्मा और शरीरको वह अक्विना की भाँति अभिन्न नहीं, बल्कि अगस्तिनकी भाँति सर्वथा भिन्न—एक दूसरसे बिलकुल अलग-अलग—कहता था। यह भगवान्की दिव्य सहायता ह, जिससे कि आत्मा शरीरकी गतिको उत्पन्न नहीं, बल्कि सचालित भर कर सकता ह। द-कार्त इस प्रकार लोकोत्तरवादी तथा अगस्तिनकी भाति ईसाई धर्मका एक जबदस्त सहायक था। शरीर और आत्माम आपसका कोई सबध नहीं इस धारणाने द कार्तको यह माननेके लिए भी मजबूर किया, कि जब दोनोंमेंसे किसी एकम कोई परिवर्तन होता ह तो भगवान बीचमें दखल देकर दूसरमें भी वही परिवर्तन पैदा कर देता है।

अंग्रेज दार्शनिक हाब्स द-कार्तका समकालीन तथा परिचित था, किन्तु दोनोंके विचारोंमें हम जमीन आसमानका अंतर देखते ह। द-कार्त पूरा

लोकोत्तरवाद ईश्वरके इशारेपर उस तनको नाचनेवाला मानता था किन्तु इन लोकोत्तरवादोंसे बिल्कुल मिलाप हुए समन्वय इस प्रकृति से ईश्वरका पक्षपाती था। सिद्धान्त देकार्तके ग्रंथोंने बहुत प्रोत्साहन उसको, विस्तार और चिन्तन काया और आत्माके व्याख्याकार भी उसने देकार्तसे लिया किन्तु देकार्तके दर्शन "स्वर्गीय यंत्रवाद"की चमत्कारिताको वह समझता था इसीलिए देकार्तके द्वैतवादका खंडन उसने। प्रकृति ईश्वर महत या विज्ञानवादको हॉब्सके जड़वादतक लानेकी कोशिश था।

देकार्तके अनुसार ध्यान कहता है मनुष्य जितना ज्ञान रखता है, वह ज्ञान तथा अपने जीवनके आचरण अपने स्वास्थ्यकी रक्षा और सभी कलाओं (=विद्याओं)के आविष्कारक पूर्ण ज्ञानका। इस तरह देकार्तकी परिभाषामें दर्शनमें लौकिक लोकोत्तर सार ही स्पष्ट और असन्दिग्ध (=अविसंवादि) ज्ञान शामिल है।

ईश्वरके कामके बारेमें देकार्तका कहना है—भगवानने शुरूमें गति और विश्रामके साथ भौतिक तत्त्वों (=प्रकृति)को पैदा किया। प्रकृतिमें जो गति उसने उस वक्त पैदा की, उसे उसी मात्रामें जारी रखनेके लिए उसकी सहायता की सदा जरूरत है। इस प्रकार ईश्वरको सदा सक्रिय रहना पड़ता है।

आत्मा या सोचनेवाली वस्तु उसे कहते हैं जो सन्देह करने, समझने, ग्रहण-समर्थन-अस्वीकार इच्छा अनिश्चय करनेकी क्षमता रखती है।

गंभीर विचारक होते हुए भी देकार्त मध्ययुगीन मानसिक बंधनोंसे अपनेको आजाद नहीं कर सका था और अपने दर्शनको सर्वप्रिय रखनेके लिए भी वह धर्मान्धियोंका कोपभाजन नहीं बनना चाहता था। स्वयं देकार्तके अपने वर्गका भी स्वार्थ इसीमें था कि धर्म और उसके साथ प्राचीन समाजकी व्यवस्थाको न छुआ जाये।

२ लाइप्निट्ज (१६४६-१७१६ ई०)

गोटफ्रीड विल्हेल्म लाइप्निट्ज लीपज़िग (जर्मनी)में एक मध्यवित्तक परिवारमें पैदा हुआ था। विश्वविद्यालयमें वह कानून दर्शन और गणित

का विद्यार्थी रहा।

दर्शन—लाइपनिट्ज आत्म कणवाद[1] का प्रवर्त्तक था। उसके दर्शनमें भौतिक पदार्थ—और अवकाश भी—वस्तु सत्य[2] नहीं है मन जिन्हें अनुभव करता है उसके वे सिर्फ दिखाव मात्र है। आत्मकण (=मन, विज्ञान) ही एकमात्र वस्तु सत्य है। सभी आत्मकण विकासमें एकसे नहीं है। कुछका विकास अत्यन्त अल्प है, वह सुप्तसे है। कुछका विकास इनसे कुछ ऊँचा है वह स्वप्न अवस्थाकी चेतना जैसे है। कुछका विकास बहुत ऊँचा है, वह पूरी जागृत चेतना जैसे है। और इन सबसे ऊँचा चरम विकास ईश्वरका है। उसकी चेतना अत्यन्त गंभीर अत्यन्त पूर्ण, और अत्यन्त सक्रिय है। आत्मकणोंकी संख्या अनन्त और उनके विकासके दर्जे भी अनन्त है—उनमें इतनी भिन्नता है, कि कोई दो आत्मकण एकसे नहीं है। इस प्रकार लाइपनिट्ज द्वैती विज्ञानवादको मानता है।

प्रत्येक आत्मकण अपनी सत्ता और गुणके लिए दूसरे आत्मकणका मुहताज नहीं है एक आत्मकण दूसरेको प्रभावित नहीं कर सकता। लेकिन सर्वोच्च आत्मकण ईश्वर इस नियमका अपवाद है—उसने एक तरह अपनेमेंसे इन आत्मकणोंको पैदा किया। आत्मकण अपनी क्रियाओंके संबंधमें जो आपसमें सहयोग करते दीख पड़ते है, वह 'पहिलेसे स्थापित समन्वय[3]'-के कारण है— भगवान्ने उन्हें इस तरह बनाया है, जिसमें वह एक दूसरेसे सहयोग करें।

देकार्त्तका यह विचार कि ईश्वरने भौतिक तत्त्वोंमें गति एक निश्चित मात्रामें—घड़ीकी कुंजीकी भाँति—भर रखी है, लाइपनिट्जको पसंद न था, यद्यपि धर्म, ईश्वर, द्वैतवाद आदिका जहाँ तक संबंध था वह उससे सहमत था। लाइपनिट्जका कहना था—पिंड चलते है, पिंड विश्राम करते है—जिसका अर्थ है गति आती है, और नष्ट भी होती है। यह (संसार-) प्रवाहका सिद्धान्त—अर्थात् प्रकृतिमें मेढक-कुदान नहीं सम प्रवाह है—के

[1] Monadism [2] Objective reality [3] Harmony

खिलाफ जाता है। संसारमें कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जो क्रिया नहीं करता। जो क्रिया नहीं करता वह है ही नहीं। लाइब्नित्जने इस कथन द्वारा अपनेसे हजार वर्ष पहिलेके बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्तिकी बातको दुहराया। "अर्थक्रियामें जो समर्थ है वही ठीक सत् है।"[1]

लाइब्नित्ज विस्तारको नहीं बल्कि शक्तिको शरीरका वास्तविक गुण कहता है, बिना शक्तिके विस्तार नहीं हो सकता, अतएव शक्ति मुख्य गुण है।

अवकाश या देश[2] सापेक्ष पदार्थ है, उसकी परमार्थ सत्ता नहीं है। वस्तुएँ जिसमें स्थित हैं वह देश है, और वह वस्तुओंके नाशके साथ नाश हो जाता है। शक्तियाँ देशपर निर्भर नहीं हैं, किन्तु देश अपनी सत्ताके लिए शक्तियोंपर अवश्य निर्भर है। इसलिए वस्तुओं (=आत्मकणों)के बीचमें तथा उनसे परे देश नहीं हो सकता, जहाँ शक्तियाँ खतम होती हैं, वहीं देश भी खतम होता है। देशकी यह कल्पना आइन्स्टाइनके सापेक्षतावाद[3]के बहुत समीप है।

(१) ईश्वर—लाइब्नित्जके अनुसार दर्शन भगवान् तक पहुँचाता है, क्योंकि दर्शन भौतिक और यांत्रिक सिद्धान्तोंकी व्याख्या करना चाहता है, उसकी उस व्याख्याके बिना चरम कारण भगवान्‌को हम मान ही नहीं सकते। भगवान् स्वनिर्मित गौण या उपादान-कारणों द्वारा सभी चीजोंको बनाता है। भगवान्‌ने दुनिया कोई अच्छी तो नहीं बनाई है—इसका जवाब लाइब्नित्ज देता है—भई! दुनियाको भगवान्‌ने उतना अच्छा बनाया है, जितना अच्छा कि वह बनाई जा सकती थी—इसमें जितना संभव हो सकता है उतना वैचित्र्य और पारस्परिक समन्वय है। यह ठीक है कि यह पूर्ण नहीं है, इसमें दोष है। किन्तु, भगवान् सीमित रूपमें कैसे अपने स्वभावको व्यक्त कर सकता था? दोष (=बुराइयाँ) भी अनावश्यक नहीं है। चित्रमें जैसे काली

[1] "अर्थक्रियासमर्थं यत् तदत्र परमार्थ सत्"—प्रमाणवार्त्तिक।

[2] Space

[3] देखो "विश्वकी रूपरेखा" में सापेक्षतावाद

जमीनकी आवश्यकता होती है उसी तरह अच्छाइया (=शिव)को व्यक्त करनेकेलिए बुराइयाकी भी जरूरत है। यहा समाजके अत्याचार उत्पीडनके समर्थनकेलिए लाइपनिटज कैसी कायरतापूर्ण युक्ति दे रहा है !! यदि अपनी अच्छाइयोंका दिखलानकेलिए ईश्वरने चंद व्यक्तियोंको अपना कृपापात्र और ९० सैकड़ाको पीडित, दुखी नारकीय बना रखा है तो ऐसे भगवानसे 'त्राहि माम्।

(२) जीवात्मा—जीव अगणित आत्मकणाम एक है—यह बतला चुके है। आत्माको लाइपनिटज अमर एकरस मानता है।— आत्मा मोम नही है, जो कि उसपर ठप्पा (=वासना) मारा जा सके। जो आत्मा को ऐसा मानते है वह आत्माको भौतिक पदार्थ बना देते है।' आत्माके भीतर भाव (सत्ता), द्रव्य, एकता समानता कारण, प्रत्यक्ष कार्यकारण, ज्ञान परिमाण—यह सारे ज्ञान मौजूद है। इनकेलिए आत्मा इद्रियोका मुहताज नहीं है।

(३) ज्ञान—बुद्धिसगत ज्ञान तभी सभव है जब हम कुछ सिद्धान्तोको स्वयभू सिद्ध मान ले जिसमें कि उनके आधारपर अपनी युक्तियोको इस्तमाल किया जा सके। समानता (=सादृश्य) और विरोध इन्ही स्वयभू सिद्धान्तोमें है। शुद्ध चिन्तनके क्षेत्रमें सच्चाईकी कसौटी यही समानता और विरोध है। प्रयोग (=तजर्बे)के क्षेत्रमे सच्चाईकी कसौटी पर्याप्त युक्ति ही स्वयभू सिद्धान्त है। दर्शनका मुख्य काम ज्ञानके मौलिक सिद्धान्तो—जोकि साथ ही सत्यताके भी मौलिक सिद्धान्त या पूर्वनिश्चय है—का आविष्कार करना है।

हाब्स और देकार्त दोनो बिलकुल एक दूसरेके विरोधीवादो—प्रकृतिवाद और नास्तिकवाद—को मानते थ। स्पिनोजाका मिल देकार्तके साथ था, दिमाग हॉब्सके साथ, जिसमे वह देकार्तका मदद नही कर सका, और उसका दर्शन नास्तिकता और भौतिकवादकेलिए रास्ता साफ करानेका काम देन लगा। लाइपनिटज चाहता था, कि दर्शनको बुद्धिसगत बनानेके लिए मध्य-युगीनतासे कुछ आगे जरूर बढना चाहिए किन्तु इतना नहीं

कि स्पिनोज़ाकी भाँति लोग उसे भौतिकवादी कहने लगें। साथ ही ईश्वर आत्मा सृष्टि आदिके धार्मिक विचारोंको भी वह अपने दर्शनमें जगह देना चाहता जिसमें कि सभ्य समाज उसे एक प्रतिष्ठित दार्शनिक समझे। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित हो स्पिनोज़ाके समन्वय—प्रकृति ईश्वर अद्वैत तत्त्व—को न मान, उसने आत्मकण सिद्धान्त निकाला, जिसमें स्पिनोज़ाका विज्ञानवाद भी था और देकार्तका द्वैतवादी, ईश्वरवाद भी।



एकादश अध्याय

अठारहवी सदीके दार्शनिक

न्यूटन (१६४२-१७२७ ई०) के सत्रहवी सदीके आविष्कार गुरुत्वाकर्षण (१६५७ ई०) और विश्वकी यांत्रिक व्याख्यान सत्रहवी सदी और आगेकी दार्शनिक विचार धारापर प्रभाव डाला। अठारहवी सदीमे हर्शल (१७३८ १८२२ ई०) ने न्यूटनके यांत्रिक सिद्धान्तके अनुसार शनिकी कक्षामे और पर वरुण[1] ग्रह तथा शनिके दो उपग्रहोका (१७८९ ई०) आविष्कार किया। इसके अतिरिक्त उसने एक दूसरेके गिर्द घूमनेवाले ८०० युग्म (=जुड़वें) तारे खोज निकाले जिससे यह भी सिद्ध हो गया कि न्यूटनका यांत्रिक सिद्धान्त सौरमडलके आगे भी लागू है। शताब्दीके अन्त (१७९९ ई०) मे लाप्लासने अपनी पुस्तक खगोलीय यंत्र[2] लिखकर उक्त सिद्धान्तकी और पुष्टि की। इधर भौतिक साइस[3]ने भी ताप, ध्वनि, चुम्बक, बिजलीकी खोजोमे नई बातोका आविष्कार किया। रमफ़ोर्डने सिद्ध किया कि ताप भी गतिका एक भेद है। हाक्सबीने १७०५ ई० में प्रयोग करके पहिले-पहिल बतलाया, कि ध्वनि हवापर निर्भर है, हवा न होनेपर ध्वनि नहीं पैदा हो सकती।

रसायन शास्त्रमें प्रीस्टली (१७३३-१८०४ ई०) और शील (१७४२-८६ ई०)ने एक दूसरेसे स्वतंत्र रूपेण आक्सीजनका आविष्कार किया। कैवेंडिश (१७३१-१८१०)ने आक्सीजन और हाइड्रोजन मिलाकर साबित किया कि पानी दो गैसोंसे मिलकर बना है।

---

[1] Uranus [2] Celestial Mechanics [3] Physics

इसी शताब्दीमें हटन (१७२६-९७ ई०) ने अपना पृथ्वी-सिद्धान्त[1] लिखकर भूगर्भ-शास्त्रकी नींव डाली और जेनर (१७४६-१८६३ ई०) ने चेचकके टीकेका आविष्कारकर बीमारियोंका प्रतिरोधसे रोकथामका नया तरीका चिकित्साशास्त्रमें प्रारम्भ किया।

अठारहवीं सदीमें साइंसकी जो प्रगति हुई उसे हम देख चुके हैं; तो यह कैसे हो सकता था कि उसका प्रभाव दर्शनपर न पड़ता। इसीलिए हम अठारहवीं सदीके दार्शनिकोंको सिर्फ इसका उपयोग करते नहीं पाते, बल्कि साइंसवादी ह्यूम ही नहीं विज्ञानवादी बर्कले और काण्टको भी साइंसकी पूरी सहायता लेते हुए अपने काल्पनिकवादका समर्थन करना चाहते हैं।

§ १. विज्ञानवाद

अठारहवीं सदीके प्रमुख विज्ञानवादी दार्शनिक बर्कले और काण्ट हैं।

१–बर्कले (१६८५-१७५३ ई०)

जार्ज बर्कलेका जन्म आयर्लैंडमें हुआ था, और शिक्षा डब्लिनके ट्रिनिटी कालेजमें। १७३४ ई०में वह क्लोयनका लाट-पादरी बना।

बर्कलेके दर्शनका मुख्य प्रयोजन किसी नये तत्त्वका अन्वेषण नहीं था। उसकी मुख्य मंशा थी भौतिकवाद और अनीश्वरवादसे ईसाई धर्मकी रक्षा करना। इस प्रकार वह अठारहवीं सदीका अगस्तिन और सामित अथम ईसाइयोंका आक्विना था। हाब्सका भौतिकवादी दर्शन तथा विचार-स्वातन्त्र्य संबंधी दूसरी शिक्षाएं धीरे धीरे शिक्षित बुद्धिमान् दिमागोंपर असर कर ईसाइयतके लिए खतरा पैदा कर रही थीं। सत्रहवीं और अठारहवीं सदीमें भी जिस तरहकी प्रगति साइंसमें देखी जा रही थी उससे धर्मका पक्ष और निर्बल होता जा रहा था, तथा यह साबित हो रहा था कि प्रकृति और उसके अपने नियम हर बौद्धिक समस्याके हलके

[1] Theory of the Earth

लिए पर्याप्त ह। यद्यपि इस लहरको रोकनेकेलिए द-काल, स्पिनोजा और लाइपनिटजके दर्शन भी सहायक हो सकते थ, किन्तु भौतिक-तत्त्वोंके अस्तित्वको व किसी न किसी रूपमें स्वीकार करते थे। बिशप् (=लाट-पादरी) वर्कलन भौतिकतत्त्वोंके अस्तित्वको ही अपने दर्शन-द्वारा मिटा देना चाहा—न भौतिकतत्त्व रहगा, न भौतिकवादी सर उठायेंगे।

वर्कलेका कहना था मुख्य या गौण गुणोंके सबधम जो हमारे विचार या वेदनाए हैं वह किन्ही वास्तविक बाह्यतत्त्वोकी प्रतिकृति या प्रतिबिंब नही हैं, वह सिर्फ मानसिक वेदनाए ह और इससे अधिक कुछ नही ह। विचार विचारोंसे ही सादृश्य रख सकत ह भौतिक पदार्थों और उनके गुणो—लाल, पीला, कडवा आदि—का इन अभौतिक विचारो या मानस प्रतिबिंबोका कोई सादृश्य नहीं हो सकता। इसलिए भौतिक पिंडोंके अस्तित्वको माननेकेलिए कोई प्रमाण नही। ज्ञानका विषय हमारे विचार ह उनसे पर या बाहर कोई भौतिकतत्त्व ज्ञानका वास्तविक विषय नहीं ह। "मनसे बाहर चाहे वह स्वर्गकी सगान मंडली हो अथवा पृथिवीके सामान हो, मन (=विज्ञान)को छोड वहा कोई दूसरा द्रव्य नही (मानसिक) ग्रहण ही उनकी सत्ताको बतलाता ह। जब उन्हें कोई मनुष्य नही जान रहा है, तो या तो वे ह ही नहीं, अथवा व किसी अविनाशी आत्माके मनमे ह। भौतिक पिंड अपने गुणानुसार नियमित प्रभाव (आग, ठडक) पदा करते ह, यदि भौतिक तत्त्व नही है, तो सिर्फ विचारसे यह कैसे होना है ?—वर्कलेका उत्तर था कि यह 'प्रकृतिके विधानाके द्वारा स्वेच्छासे बनाए उस सबध"का यह परिणाम ह जिसे उसने भिन्न भिन्न विचारोंके बीच कायम किया ह। वर्कल के अनुसार सत्यके तत्त्व ह भगवान, उसके बनाए आत्मा, और भिन्न-भिन्न विचार जो उसकी आज्ञानुसार विशेष अवस्थाओंमें पदा होते ह।

२. कान्ट (१७२४ १८०४ ई०)

इम्मानुयल काट कोइनिक्सबर्ग (जर्मनी)में एक साधारण कारीगरके घर पदा हुआ था। उसका बाल्य धार्मिक वातावरणम बीता था।

प्राय सारा ज्ञान उसी प्रकार अनुभवगत और उसके पदार्थ हैं। विज्ञान और इस प्रकार मैत्रभावके समान ... एक वस्तु मूर्तगंध था।

हॉब्स, स्पिनोज़ा, देकार्त, लाइब्नित्ज़के दर्शन चिन्तनामें था जो भौतिक तत्त्वोंका ही मूल तत्त्व मानकर आरम्भ किया गया था, उसका प्रवृत्तिका ... करके विज्ञान (= ...)का ही प्राधान्य ... किया गया। उनके समय तक विज्ञानका विकास और उसके प्रति ... इतना बढ़ गया था कि ... भय ... करनेके लिये विज्ञानवाद्यर ... आर नहीं ... सकता था—... धर्माधिकार ... था वही ... था—और ... यह पूरा विरोधी था ही। ... भाँति इन दोनों व्यापार ... परम्परा भी वह ... नहीं करता था। उसका ... मुख्य लक्ष्य था—... और पुरानी ... शिर ... साबित करना तथा ... बढ़कर वह मौलिकता ... करना चाहता था। ... युक्तियों साबित करनेके लिए वह भाववाद ..., मिथ्या विश्वासका भी विरोधी था। ... पुराना सामन्ती समाज मध्ययुगी ... ही ... नहीं हो गया था बल्कि उसके मध्ययुगके धार्मिक ढाँचे—...—को भी दो प्रमुख स्तम्भों इंग्लैंड (१४९५ १६००) और फ्रांस (१७८९)में ... पूँजीवादी ... उठाया था। इंग्लैंडमें अंग्रेजी सामन्तशाही निरंकुशता चार्ल्स प्रथमके साथ ही १६४९ में खतम कर दी गई थी। वहाँ सवाल सिर्फ एक मुकुटका खतम करनेका नहीं था, बल्कि मुकुटके साथ ही सनातन मर्यादाओंके प्रति लोगोंकी आस्था उठने लगी थी। अठारहवीं सदीमें अब फ्रांसकी बारी था। सामन्तवाद और उसके पिट्ठू धर्मके दबने-उखड़ने लग गए थे। उनके इस भावको व्यक्त करनेवालोंमें फ्रांसने वाल्तेर (१६९४-१७७८) और रूसो (१७१२-७८ ई०) जैसे स्वतन्त्र लेखक पैदा किये। वोल्तेर धर्मको अज्ञान और धोखेकी उपज कहता था। उसके मतसे मजहब होशियार पुरोहितोंका जाल है, जिन्होंने कि मनुष्यकी मूर्खता और पक्षपातको इस्तेमालकर इस तरह उनपर शासनका एक नया तरीका निकाला

है। रूसो, वोलतेरमे भी आगे गया, और उसने कला और विज्ञानको भी शौकीनी और कामचोरपनकी उपज बतलाया, और कहा कि आचारिकताके यही कारण है। "स्वभावसे सभी मनुष्य समान है। यह हमारा *समाज है, जिसने वैयक्तिक सम्पत्तिकी प्रथा चला उन्हें अ-समान बना* दिया—और आज हम उसमें स्वामी-दास, शिक्षित अशिक्षित, धनी-निर्धन, पा रहे है। एक बड़ा रईस बरन दोलबाग (१७१२-७८ ई०) कह रहा था—"आत्मा कोई चीज नहीं है, चिन्तन मस्तिष्ककी क्रिया है, भौतिकतत्त्व ही एकमात्र अमर वस्तु है।

एसी परिस्थितिमें काट समझता था, कि यूरोपके मुक्त होते विचारोको ईसाइयतकी तंग चहारदीवारीके अन्दर बन्द नहीं किया जा सकता, इसलिए चहारदीवारीको कुछ बढ़ाना चाहिए, और ईश्वर कर्मस्वातन्त्र्य तथा आत्माके अमरत्व—धर्मके इन मौलिक सिद्धान्तोकी रक्षा करनेकी कोशिश करनी चाहिए। इन्हीको लेकर कान्टने अपने प्रखर तर्कके तान-बान बुनकर एक जबर्दस्त जाल तैयार किया। उसने कहा तजर्बेपर निर्भर मानव-बुद्धि बहुत दूर तक जा सकती है, इसमें शक नहीं, किन्तु उसकी गति अनन्त तक नहीं हो सकती। उसकी दौड़की भी सीमा है। ईश्वर, परलोक या परजीवन मानवके तजर्बेकी सीमासे बाहरकी—सीमापारीय—चीजें है इसलिए उनके बारेमें कोई तर्क वितर्क नहीं किया जा सकता, तर्कसे न उनका खंडन ही किया जा सकता है, न उन्हें सिद्ध ही किया जा सकता है। उन्हें श्रद्धावश माना जा सकता है—सैद्धान्तिक तौरसे यह श्रद्धा भले ही कमजोर मालूम होती है, मगर व्यवहारमूलक होनेसे वह काफी प्रबल है।—अर्थात् ईश्वर, तथा परजन्मके विश्वास समाज और व्यक्तिमें शान्ति और संयमका प्रचार करते है जो कि इनके माननेकेलिए काफी कारण है।

(१) ज्ञान—वास्तविक ज्ञान वह है, जो कि सार्वदेशिक, तथा आवश्यक हो। इन्द्रियाँ हमारे ज्ञानके लिए मसाला जमा करती है, और मन अपने स्वभावके अनुकूल तरीकेसे उन्हें क्रमबद्ध करता है। इसीलिए जो ज्ञान हमें मिलता है वह वस्तुए—अपने—भीतर जैसी है वैसा नहीं होता,

Gandhi also believe in it.

प्रायः सारा जीवन उसने अपने जन्मनगर और उसके पड़ोस हीमें बिताया और इस प्रकार देशभ्रमणके सम्बन्धमें वह एक पूरा कूपमंडूक था।

हॉब्स स्पिनोज़ा देकार्त, लाइब्नित्ज़के दर्शनोंमें या तो भौतिक तत्त्वोंके ही मूल तत्त्व होनेपर जोर दिया गया था, अथवा प्रकृतिकी उपेक्षा करके विज्ञान (=चेतना)को ही एकमात्र परमतत्त्व कहा गया। कान्टके समय तक विज्ञानका विकास और उसके प्रति शिक्षितोंका सम्मान इतना बढ़ गया था कि वह उसकी अवहेलना करके सिर्फ विज्ञानवादपर सारा जोर नहीं खर्च कर सकता था—यद्यपि घूमफिरकर उसे भी वहीं पहुँचना था—और भौतिकवादका तो वह पूर्ण विरोधी था ही। ह्यूमकी भाँति इन दोनों वादोंपर सन्देह करनेको ही वह अपना वाद बनाना पसन्द नहीं करता था। उसके दर्शनका मुख्य लक्ष्य था—ह्यूमके सन्देहवाद और पुरानी दार्शनिक रूढ़ियोंको सीमित करना तथा सबसे बढ़कर वह भौतिकवाद अनीश्वरवादको नष्ट करना चाहता था। अपनेको बुद्धिवादी साबित करनेकेलिए वह भाग्यवाद भानुमतीवाद मिथ्या विश्वासोंका भी विरोधी था। कान्टके वक्त यूरोपका विचारशील समाज मध्ययुगीन मानसिक-बंधनोंसे ही मुक्त नहीं हो गया था बल्कि उसने मध्ययुगके आर्थिक ढाँचे—सामन्तवाद—को भी दो प्रमुख देशों इंग्लैंड (१४८५ १६००) और फ्रांस (१७८९)से विदा कर पूँजीवादकी ओर जोरसे कदम उठाया था। इंग्लैंडमें अंग्रेजी सामन्तवादकी निरंकुशता चार्लस प्रथमके साथ ही १६४९ में खतम कर दी गई थी। वहाँ सवाल सिर्फ एक मुकुटके धूलमें लोटनेका नहीं था, बल्कि मुकुटके साथ ही सनातन मर्यादाओंके प्रति लोगोंकी आस्था उठने लगी थी। अठारहवीं सदीमें अब फ्रांसकी बारी थी। सामन्तवाद और उसके पिट्ठू धर्मसे दबते-दबते लोग ऊब गए थे। उनके इस भावको व्यक्त करनेकेलिए फ्रांसने वोल्तेर (१६९४ १७७८) और रूसो (१७१२ ७८ ई०) जैसे जबर्दस्त लेखक पैदा किये। वाल्तेर धर्मको अज्ञान और धोखेकी उपज कहता था। उसके मतसे मजहब होशियार पुरोहितोंका जाल है, जिन्होंने कि मनुष्यकी मूर्खता और पक्षपातको इस्तेमालकर इस तरह उनपर शासनका एक नया तरीका निकाला

देश, काल—हमारी बनावट ही ऐसी है, कि वहाँ कोई वैसी वस्तु न होने पर भी देश और कालका प्रत्यक्ष करता है—वह वस्तुओंका ही देश और कालमें (अर्थात् देश-कालके साथ) प्रत्यक्ष नहीं करता बल्कि खुद देश-काल-का स्वतंत्र वस्तुके तौर पर प्रत्यक्ष करता है। हमारी आन्तरिक मानस क्रिया कालकी सीमाके भीतर अर्थात् एकके बाद दूसरा करके होता है और बाहरी इंद्रिय ज्ञान देशकी सीमाके भीतर होता है, अर्थात् हम उन्हीं चीजोंका प्रत्यक्ष कर सकते हैं, जिनका कि हमारी इंद्रियोंसे संबंध है। देश और काल वस्तु-सत्य अर्थात् बिना दूसरेकी सहायताके खुद अपनी सत्ताके धनी नहीं हैं, और नहीं वस्तुओंके गुण या संबंध ही हैं। वे तरीके या प्रकार जिनसे कि हमारी इंद्रियाँ विषयोंका ग्रहण करती हैं इंद्रियोंके स्वरूप या क्रियाएँ हैं। देश और काल आत्मानुभूतिसे ही जाने जाते हैं, वे बाहरी इंद्रियोंके विषय नहीं हैं—इसका मतलब है कि यदि आत्मानुभूति या देश कालके प्रत्यक्षीकरणकी शक्ति रखनेवाले सत्त्व जगतमें न होते तो निश्चय ही जगत हमारे लिए देश-कालवाला न रह जाता। बिना देशके हम वस्तुका ख्याल भी नहीं कर सकते, और न बिना वस्तुके हम देशका ख्याल कर सकते, इसलिए वस्तुओं या बाहरी दुनिया-संबंधी विचारके लिए देशका होना जरूरी है। कालके बारेमें भी यही बात है।

(४) **सीमापारी**—इस प्रकार देश-काल इंद्रियोंसे संबंध नहीं रखते वह अनुभव (=तजुर्बे)की चीज नहीं है, बल्कि उसकी सीमासे परे—सीमापारी[1]—चीजें हैं। सीमापारी होते इंद्रिय अगोचर होते भी वस्तुओंके साथ वह चीजें कितना नित्य संबंध रखती हैं, यह बतला आए हैं।

(५) **वस्तु-अपने भीतर**[2]—बाहरी जगतका संबंध—सविकल्प—इंद्रियोंसे होता है, इंद्रियाँ उनकी सूचना मात्र देती हैं, मन उनकी व्याख्या स्वेच्छापूर्वक खुद करता है। इंद्रियोंका सविकल्प वस्तुओंके बाहरी दिखावेसे होता है। फिर मन वस्तुके बारेमें जो व्याख्या करता है

---

[1] Transcental [2] Thing in-itself, Ding-an sich

बन्ति विचारोंके भ्रम-सम्बन्धी सार्वदेशिक और आवश्यक ज्ञानके तौरपर होता है। गोया वस्तुएं अपने भीतर क्या हैं इसे हम नहीं जान सकते—यह है काण्टका सन्देहवाद। साथ ही हमारे ज्ञानमें जो कुछ आता है वह तजर्बे या प्रयोगमें आता है—यहां वह प्रयोगवादी सा मालूम होता है। लेकिन, मन बाहरी बातोंकी कोई पर्वाह न करके, अपने तजर्बोंपर चिंतन करता है और उन्हें अपने स्वभावके अनुसार ग्रहण करता है—यह बाह्यार्थसे असंबद्ध मनका अपना निर्णय बुद्धिवाद है। प्रयोगवाद, सन्देहवाद और बुद्धिवाद तीनोंका सिर्फ अपने मतलबके लिए काण्टने इस्तेमाल किया है और इसका मतलब विचारको बड़ा सीमाबंदीके घर जानेसे रोकना है।

(२) निश्चय—ज्ञान सदा निश्चयके रूपमें प्रकट होता है—हम ज्ञानमें चाहे किसी बातकी स्वीकृति (=विधि) करते हैं, या निषेध करते हैं। तो भी प्रत्येक निश्चय ज्ञान नहीं है। जो निश्चय सार्वदेशिक और आवश्यक नहीं है वह साइंस-सम्मत नहीं हो सकता। यदि उस निश्चयका कोई अपवाद भी है तो वह सार्वदेशिक नहीं रहेगा, यदि कोई विरोधी भी आ सकता है तो वह आवश्यक नहीं।

(३) प्रत्यक्ष—किसी वस्तुके प्रत्यक्ष करनेकेलिए जरूरी है कि वहां भौतिक तत्त्व या उसके भीतर जो कुछ भरा (वेदना) और आकार (=रंग, शब्द, भार) हो। इन्हें बुद्धि एक ढांचे—या देश-कालके चौखटे—में क्रमबद्ध करती है तब हम किसी वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। आत्मा (=मन) सिर्फ वेदनाओंको प्राप्त करता है वह सीधे पदार्थों (=विषयों) तक नहीं पहुँच सकता, और न विषय सीधे मन (=आत्मा) तक पहुँच सकते। फिर अपनी एक विशेष शक्ति—आत्मानुभूति[1]—द्वारा उन्हें वह प्रत्यक्ष करता है। तब वह अपनेसे बाहर देश और कालमें रंगको देखता है, शब्दको सुनता है।

[1] Intuition

बुद्धि समझने पर जाता है, और इंद्रिय अगोचर ज्ञान—जिसे जानना कि कोई प्रत्यक्ष विषय नहीं है जो शुद्ध बोध रूप है—का उपलब्ध करना चाहती है। मन या बुद्धिका साधारण क्रियाको समझ कहते है। वह हमारे तजर्बे—विषय-साक्षात्कारों—को समान रूपमें तथा नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार एक दूसरेके साथ संबंध कराती है, और इस प्रकार हमें निश्चय प्रदान करती है।

निश्चय—समझ जिन निश्चयोंको हमारे सामने प्रस्तुत करती है, कांटने उनके बारह भेद गिनाये है—

(१) **सामान्य निश्चय**—जैसे सारी धातुएँ तत्त्व है।

(२) **विशेष निश्चय**—जैसे कुछ वृक्ष आम है।

(३) **एकत्व निश्चय**—जैसे अकबर भारतका सम्राट था। इन तीन निश्चयोंमें चीज गुण विभाग-योग, बहुत्व, एकत्व—के रूपमें देखी जाती है।

(४) **स्वीकारात्मक निश्चय**—जैसे गर्मी एक प्रकारकी गति है।

(५) **नकारात्मक निश्चय**—जैसे मनमें विस्तार परिमाण नहीं है।

(६) **असीम निश्चय**—जैसे मन अ विस्तृत है। इन तीन निश्चयोंमें वास्तविकता (भाव) अभाव और सीमाके रूपमें गुण विभाग दिखाई देते है।

(७) **स्पष्ट निश्चय**—जैसे देह भारी है।

(८) **आशंसात्मक निश्चय**—जैसे यदि हवा गर्म रही तो तापमान बढ़ेगा।

(९) **विकल्पात्मक०**—जैसे द्रव्य या तो ठोस होते है या तरल, या गैसीय। ये तीनों निश्चय संबंधों—नित्य (समवाय या अयुतसिद्ध)-संबंध, आधार (और संयोग)-संबंध, कार्यकारण-संबंध समुदाय (सक्रिय निष्क्रियके आपसी)-संबंध—को बतलाते है।

(१०) **सन्देहात्मक निश्चय**—जैसे 'हो सकता है यह जहर हो'।

(११) **आग्रहात्मक निश्चय**—'यह जहर है'।

(१२) **सुपरीक्षित निश्चय**— हर एक कार्यका कोई कारण होता है।

वह इन्द्रियोंकी बनावटके अनुसार होता है। इसलिए वस्तु-अपने-भीतर क्या है यह बात इन्द्रियोंके जरियेसे जान नहीं है यह इन्द्रियके सामने प्रकट—इन्द्रिय-गोचर—नहीं है। वस्तुओंके आभास हमें मिलते हैं और उनसे संवेदनोंका ज्ञान होता है, लेकिन वस्तु-अपने-भीतर क्या है, इसके बारेमें आभास बतला नहीं सकते, न सम्भव है। वस्तु-अपने-भीतर (=वस्तु-सार) अपने इन्द्रियोंसे नहीं जानी जा सकती। हाँ, उसके बारेमें दूसरी तरह सोचा जा सकता है, क्योंकि ज्ञानानुभूति और इन्द्रियोंकी यह सीमा है—इसलिए ज्ञानकी सीमा यहीं तक है, इससे आगे जाननेका हमें अधिकार नहीं।

(आत्मा)—इस प्रकारका सार—भी साक्षात् नहीं जान सकते किन्तु उसका अस्तित्व मान लिया जा सकता है। हम इसपर चिन्तन कर सकते हैं—ऐसा सम्भव ही नहीं है बल्कि यह भी कि एक स्वतंत्र विचारोंका स्मृतिका ... न हो। किन्तु इस आत्माको और इन्द्रियोंकी सहायतासे हम नहीं जान सकते, क्योंकि वह सीमाकारी, इन्द्रिय अगोचर है।

इस तरह सीमाकारी वस्तुओंका होना भी सम्भव है। वस्तु-अपने-भीतर या वस्तुसार[1] भी इसी तरह अज्ञेय है किन्तु वह है जरूर, अन्यथा इन्द्रिय तथा विषयके सम्पर्कसे जो बनता होता है, वह निराधार होता—आखिर बाहरी जगत् या वस्तुकी जिस आभासका ज्ञान हम रखते हैं, उसके पीछे कोई वस्तुसार जरूर है जो कि सतत पाई जाती है, जो हमारी इन्द्रियोंको प्रभावित करता है, और हमारे ज्ञानके लिए विषय प्रस्तुत करता है। इस आधार वस्तु-अपने-भीतर (वस्तुसार)के बिना यह झाँकी ही नहीं मिलती जिसकी बुनियादपर कि हमारा सारा ज्ञान खड़ा है।

कान्ट बुद्धि और समझके बीच फर्क करता है।—समझ वह है जो कि इन्द्रिय द्वारा लाई सामग्री—रचना—पर आधारित है। लेकिन

---

[1] Nomena

बुद्धि गमझने पर जाती है और इन्द्रिय अगोचर ज्ञान—जिस ज्ञानका कि कोई प्रत्यक्ष विषय नहीं है जो शुद्ध बोध रूप है—को उपलब्ध करना चाहती है। मन या बुद्धिकी साधारण क्रियाको समझ कहते हैं। वह हमारे तजर्बे—विषय-साक्षात्कारों—का समान रूपसे तथा नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार एक दूसरेके साथ संबंध कराती है और इस प्रकार हमें निश्चय प्रदान करती है।

निश्चय—समझ जिन निश्चयोंको हमारे सामने प्रस्तुत करती है काण्टने उनके बारह भेद गिनाये हैं—

(१) सामान्य निश्चय—जैसे सारी धातुएँ तत्त्व हैं।

(२) विशेष निश्चय—जैसे कुछ वृक्ष आम हैं।

(३) एकत्व निश्चय—जैसे अकबर भारतका सम्राट् था। इन तीन निश्चयोंमें चीज गुण विभाग-योग, बहुत्व, एकत्व—के रूपमें देखी जाती है।

(४) स्वीकारात्मक निश्चय—जैसे गर्मी एक प्रकारकी गति है।

(५) नकारात्मक निश्चय—जैसे मनमें विस्तार परिमाण नहीं है।

(६) असीम निश्चय—जैसे मन अविस्तृत है। इन तीन निश्चयोंमें वास्तविकता (भाव), अभाव और सीमाके रूपमें गुण विभाग दिखाई देते हैं।

(७) स्पष्ट निश्चय—जैसे देह भारी है।

(८) आशंसात्मक निश्चय—जैसे यदि हवा गर्म रही तो तापमान बढ़ेगा।

(९) विकल्पात्मक०—जैसे द्रव्य या तो ठोस होते हैं या तरल, या गैसीय। ये तीनों निश्चय संबंधी—नित्य (समवाय या अयुतसिद्ध)-संबंध, आधार (और संयोग)-संबंध कार्यकारण-संबंध, समुदाय (सक्रिय निष्क्रियके आपसी)-संबंध—को बतलाते हैं।

(१०) सन्देहात्मक निश्चय—जैसे हो सकता है यह जहर हो।

(११) आग्रहात्मक निश्चय—'यह जहर है।'

(१२) सुपरीक्षित निश्चय—हरएक कार्यका कोई कारण होता है।

ये सारी विज्ञान सम्बन्धी प्रकार गया प्रगति मानसिकता-योरो—इन भिन्नताओंका उत्तर है।

ये तुच्छ-ब्रह्म स्थिति इन्द्रिय-गोचर विषयमें ही है, इन्द्रिय-अगोचर (आत्मा आदि)में नहीं।

काण्टके (अनुसार ईश्वर) अमर आत्मा, कर्म-स्वातन्त्र्य, ईश्वर यदि हमारी समझसे सिद्ध नहीं हैं तो उनका न होना साबित नहीं होता। उनके अस्तित्वको हमें बुद्धि न ... क्योंकि यह नैतिकताका तकाजा है। वह भी आचारिक कानून ही हमें बाध्य करता है कि हम ईश्वरके अस्तित्वको स्वीकार करें, नहीं तो आत्मा, कर्म-स्वातन्त्र्य पाप-पुण्य, आदि आचारकी सारी परम्परा निरर्थक नहीं रह जायगा।

इस प्रकार काण्टने भी वही काम करना चाहा था जो कि बर्कलेने किया था। हाँ, जहाँ बर्कलेने समझका आश्रय ले भौतिकवादके अस्तित्वका खंडन तथा विज्ञानका समर्थन किया, वहाँ काण्टने भौतिक जगत्के ज्ञानकी सम्भावनाको मानकर उसके अस्तित्वको संशयमें डाल दिया और ईश्वर आत्मा-अमरता जैसे मुख्य—वस्तु अपने मानने या न मानने—को इन्द्रियोंसे परे—आत्मा-आदि—बना ईश्वर-आत्मा-धर्म आचार (और समाजके ढाँचा ढाँचे)को शुद्ध बुद्धिसे सिद्ध करनेकी कोशिश की।

किन्तु क्या बुद्धि और भौतिक प्रगतिके प्रवाहको कुण्ठित कर काण्ट अपने अभिप्रायमें सफल हुआ? मुमकिन है बुद्धि और भौतिक तत्त्वोंने जिन्हें बराबर नहीं यह ऐसा समझानेकी गलती कर, किन्तु काण्टके तीक्ष्ण तर्कका क्या परिणाम हुआ इसे काण्टके समकालीन जर्मन विचारक हाइनरिख हाइनेके कलाम सुनिए—

तब (काण्टके बाद)से सोचनेवाली बुद्धिके अनुसार ईश्वर निर्वासित हो गया। शायद कुछ शताब्दियाँ लगें जब कि उसकी मृत्यु-सूचना सर्वसाधारण तक पहुँचे, लेकिन हम तो यहाँ कबसे इस सम्बन्धमें शोक कर रहे हैं। आप शायद मान रहे हैं कि अब (शोक करनेके लिए कुछ नहीं है), सिवाय इसके कि (अपने अपने) घर जायँ?

"अभी नहीं, अपनी कसम ! अभी एक पीछे आनेवाली चीजका अभिनय करना है। दुःखान्त नाटकके बाद प्रहसन आ रहा है।'

"अब तक इम्मानुयेल काट एक गभीर निठुर दार्शनिकके तौरपर सामने आया था। उसने स्वर्ग(-दुर्ग)को ताककर सारी सेनाको तलवारके घाट उतार दिया। विश्वका शासक (ईश्वर) वहाँ अपने खूनमें ही तर रहा है। वहाँ दयाका नाम नहीं रहा। वही ज्ञानत पितृतुल्य शिवता और आजके कष्टोंकेलिए भविष्यमें मिलनेवाले सुफलकी है। आत्माकी अमरता अपनी आखिरी साँस गिन रही है ! उसके कंठमें मृत्युकी यंत्रणा ध्वनित हो रही है ! और बूढ़ा भगवानदास पास खड़ा है, उसका छाता उसकी बाँहमें है। वह एक शोकपूर्ण दर्शक है—व्यथा जनित पसीनेसे उसकी भौंहे भीगी है, उसके गालोंपर अश्रुबिन्दु टपक रहे हैं।

"तब इम्मानुयल काटका दिल पसीजता है, और अपनेको दार्शनिकोंमें महान दार्शनिक ही नहीं बल्कि मनुष्योंमें भलामानुष प्रकट करनेकेलिए वह आधी भलमनसाहतसे और आधा व्यंगके तौरपर सोचता है—

"बूढ़े भगवानदासकेलिए एक दयनीय ईश्वर चाहिए नहीं तो बेचारा सुखी नहीं रह सकेगा, और वस्तुतः लोगोंको इस दुनियामें सुखी रहना चाहिए। व्यावहारिक साधारण बुद्धिका यह तकाजा है।

'अच्छी बात ऐसा ही हो क्या पर्वाह ! व्यावहारिक बुद्धिको किसी ईश्वर या और किसीके अस्तित्वकी स्वीकृति दने दो।'

परिणामस्वरूप काट सैद्धान्तिक और व्यावहारिक बुद्धिके भेदपर तर्क वितर्क करता है, और व्यावहारिक बुद्धिकी सहायतासे उसी देवता (=ईश्वर)को फिर जिला देता है जिसे कि सैद्धान्तिक बुद्धिने लाशके रूपमें परिणत कर दिया था।'[1]

"'शुद्ध बुद्धि' के लिखनेके बाद 'व्यावहारिक बुद्धि' लिखकर काटने जो लीपापोती करनी चाही, हाइनने यहाँ उसका सुन्दर खाका खींचा है।

---

[1] (Germany, Heine, works, Vol V)

§ २ सन्देहवाद

ह्यूम (१७११-७६ ई०)—डेविड ह्यूम एडिनबरा (स्काटलैंड)में कान्टसे १३ साल पहिले पैदा हुआ था। इसने कानूनका अध्ययन किया था। पहिले जेनरल सन्क्लेयर फिर लार्ड हर्टफोर्डका सेक्रेटरी रहा, और अन्तमें १७६७ ईमें इंगलैंडका अण्डर-सेक्रेटरी (=उपमंत्री) रहा। इस प्रकार ह्यूम शासक वर्गका सदस्य ही नहीं, खुद एक शासक तथा सम्पत्तिवाली श्रेणीसे संबंध रखता था। मध्यम तथा उच्चवर्गोंमें शिक्षित लेखक सदा यह दिखलाना चाहते हैं कि वह वर्ग और वर्गस्वार्थसे बहुत ऊपर उठे हुए हैं लेकिन कोई भी आँख रखनेवाला इस धोकेमें नहीं आ सकता। अक्सर जान-बूझकर—कभी कभी अनजाने भी—लेखक अपनी चेष्टाओंसे उस स्वार्थकी पुष्टि करते हैं जिससे उनकी दाल रोटी चलती है। हम पिछले बर्कलेको देख चुके हैं कि किस तरह बुद्धिकी आँखमें धूल झोंक, प्रत्यक्ष—अनुमानगम्य—बुद्धिगम्य—भौतिक तत्त्वोंसे इन्कारकर उसने लेबोरेटरी आवश्यक विज्ञानतत्वका समर्थन किया। और जब लोग वस्तु-सत्यको छोड़ इस ख्याली विज्ञानको एक मात्र तत्त्व मानकर आँख मूंद झूमने लगे, तो फिर ईश्वर धर्म आत्मा फिरिश्तोंको चुपकेसे सामने ला बैठाया। कान्टको बर्कलेकी यह चेष्टा कुछ बाजारू तथा भोंडापन लिये हुए मालूम हुई। उसने उसे और ऊपरी तलपर उठाया। भौतिक तत्त्व साधारण बुद्धि (=समझ) गम्य हैं उनकी सत्ता भी आंशिक सत्य हो सकती है, किन्तु असली तत्त्व वस्तु अपने भीतर (=वस्तुसार) है जिसकी सत्ता शुद्ध बुद्धिसे सिद्ध होती है। समझ द्वारा ज्ञेय वस्तुओंसे कहीं अधिक सत्य है, शुद्ध-बुद्धिगम्य वस्तुसार। तर्क तजर्बे समझ साधारण बुद्धिके क्षेत्रकी सीमा निर्धारित कर उनकी गतिको रोक कान्टने समझसे परे एक सुरक्षित क्षेत्र तैयार किया और इस प्रशान्त, झगड़े झंझट रहित स्थानमें लेजाकर ईश्वर आत्मा धर्म आचार (वैयक्तिक सम्पत्ति जैसी सामाजिक व्यवस्था) को बैठा दिया। यह था कान्टकी अप्रतिम प्रतिभाका चमत्कार।

आइये अब हम इंगलण्डके टोरी शासक (अण्डर-सेक्रेटरी) ह्यूमको भी देखें। कान्टमें पहिले साइंसजन्य विचार-स्वातन्त्र्यके प्रवाहसे पुरानी नीतकी रक्षा करनेके लिए पहिलेके दार्शनिकोंके प्रयत्नको उसने देखा था, और यह भी देखा था, कि वस्तु-जगत और उससे प्राप्त सच्चाइयाँ इतनी प्रबल है, कि उनका सामना उन हथियारोंसे नहीं किया जा सकता, जिनसे दे-कार्त, लाइब-नित्ज, बर्कलेने किया था। भौतिक तत्त्वोंको गलत साबित करनेसे ह्यूम् सहमत था, किन्तु इसे वह फजूलकी जवाबदेही समझता था, कि सामने दखी जानेवाली वस्तुको तो इन्कार कर दिया जाय, और इन्द्रिय अनुभवसे परे किसी चीज— विज्ञान—को सिद्ध करनेकी जिम्मेवारी ली जाय। ह्यूम पूँजीवादी युगके राजनीतिज्ञोंका एक अच्छा पथप्रदर्शक था। उसने कहा—भौतिकतत्त्वोंका सिद्ध मत होने दो, विज्ञानको सिद्ध करके जिस ईश्वर या धर्मको लाना चाहते हो, वह समाजके ढाँचेको क्रान्तिकी लपटसे बचानेके लिए जरूरी है, किन्तु उनका नाम लेते ही लोग हमारी नेकनीयतीपर शक करने लगेंगे, इसलिए अपनेको और सच्चा साबित करनेके लिए उनपर भी दो चोट लगा देनी चाहिए और इस प्रकार अपनेको दोनोंसे ऊपर रखकर मध्यस्थ बना देना चाहिए। यदि एक बार हम भौतिक तत्त्वोंके अस्तित्वमें सन्देह पैदा कर दें और बाहरी प्रकाशको रोक दें, तो फिर अँधेरेमें पड़ा जनसमुद्र किस्मतपर बैठ रहेगा। और फिर इस सन्देहवादसे हमारी हानि ही क्या है—उससे न हमारे क्लाइव झूठे हो सकते हैं और न माखन रोटी या दाम्पत्य ही।

अब जरा इस मध्यस्थ, दूधका दूध पानीका पानी करनेवाले राज-मन्त्रीकी दार्शनिक उड़ानको देखिए।

(१) **दर्शन**—हम जो कुछ जान सकते हैं वह है हमारी अपनी मानसिक छाप—संस्कार। हमें यह अधिकार नहीं है कि भौतिक या अभौतिक तत्त्वोंकी वास्तविकता सिद्ध करें। हम उतनहीको जान सकते हैं, जितनोंको कि इन्द्रियाँ और मन ग्रहण करते हैं, और इस क्षेत्रमें भी सम्भावनामात्रके बारेमें हम कह सकते हैं। इस अनुभव (=प्रत्यक्ष, अनुमान) से बढ़कर ज्ञान प्राप्त करनेका हमारे पास कोई साधन नहीं है।

(२) स्पर्श—हमारे ज्ञानकी सारी सामग्री बाहरी (वस्तु द्वारा प्राप्त) और भीतरी वस्तुओंके स्पर्शों[1]—छापों—से प्राप्त होती है। जब हम देखते, अनुभव करते, प्यार करते, घृणा करते, इच्छा या संकल्प करते हैं, यानी हमारी सभी वेदनायें, भावनायें और मनोभाव जब आत्मामें पहिले-पहिल प्रकट होते हैं, तो हमारे सबसे सजीव स्पर्श-आकार यही हैं। बाहरी स्पर्श या वेदनायें आत्माके भीतर अज्ञात कारणोंसे उत्पन्न होती हैं। भीतरी स्पर्श अधिकतर हमारे विचारोंसे आते हैं, अर्थात् ये स्पर्श हमारी इन्द्रियों पर चोट करते हैं और हम सर्दी-गर्मी सुख-दुख अनुभव करते हैं।

(३) विचार—स्पर्शोंके बाद ज्ञानसे संबंध रखनेवाली दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज विचार[2] है। हमारे विचार बिल्कुल ही भिन्न भिन्न असंबद्ध संयोगका मिला पदार्थ नहीं है। पर दूसरी तरफ़ भिन्न रहते उनमें एक खास दर्जे तक नियम और व्यवस्थाका पालन देखा जाता है। यह एक तरहकी एकताके सूत्रमें बद्ध देख पड़ता है, जिसे कि हम **विचार-संबंध** कहते हैं।

(४) कार्य-कारण—कार्य कारणसे एक बिल्कुल ही अलग चीज है, कारणको हम कार्यमें हर्गिज नहीं पा सकते। कार्य-कारणके संबंधका ज्ञान हमें निरीक्षण और अनुभवसे होता है। कार्य-कारणका संबंध यही है कि एकके बाद दूसरा आता है—कार्य नियत-पूर्व-वृत्ति कारण, कारण नियत-पश्चाद्-वृत्ति कार्य—हम यहाँ एक घटनाके बाद दूसरीको होते देखते हैं।

(५) ज्ञान—हम सिर्फ़ प्रत्यक्ष (साक्षात्) मात्र करते हैं, हम इससे अधिक किसी चीजका पूर्ण ज्ञान रखते हैं, यह गलत है। जो प्रत्यक्ष है, वही वह वस्तु नहीं है जिसकी कि एक तेज झाँकी हमें उस रूपमें मिलती है। वस्तुकी सिर्फ़ बाहरी सतह और उसमें भी एक भाग मात्रका प्रत्यक्ष होता है। दार्शनिक विचार या आत्मानुभूतिसे और अधिक ज्ञान संभव, इसकी कोई आशा नहीं, क्योंकि दार्शनिक निर्णय और कुछ नहीं, सिर्फ़ नियमित तथा शोधित साधारण जीवनका प्रतिबिंब मात्र है। इस तरह

---

[1]Impressions [2]Ideas

हमारा ज्ञान सतही—ऊपर-ऊपरका है, और उसमें किसी चीजकी वास्त विकता स्थापित नहीं की जा सकती।

(६) **आत्मा**—'जब मैं खूब नजदीकसे उस चीजपर विचार करता हूँ, जिसे कि मैं **अपनी आत्मा** कहता हूँ, तो वहाँ सदा एक या दूसरी तरहका प्रत्यक्ष (=अनुभव) सामने आता है। वहाँ कभी मैं **अपनी आत्माको** नहीं पकड़ पाता।' आत्मापर भीतरसे चिन्तन करनेपर वहाँ मिलता है—गर्मी-सर्दी, प्रकाश-अंधकार, राग-द्वेष, सुख-पीडाका अनुभव। इन्हें छोड़ वहाँ शुद्ध अनुभव कभी नहीं मिलता। इस प्रकार **आत्माका** साबित नहीं किया जा सकता।

(७) **ईश्वर**—जब ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता, तो उसके होनेका प्रमाण क्या है? उसके गुण आदि। किन्तु ईश्वरके स्वभाव गुण, आज्ञा और भविष्य योजनाके संबंधमें कुछ भी कहनेके लिए हमारे पास कोई भी साधन नहीं है। घड़से कुम्हार—अर्थात कार्यसे कारण—के अनुमानसे हम ईश्वरको सिद्ध नहीं कर सकते। जब हम एक घरको देखते हैं, तो पक्की तौरसे इस निश्चयपर पहुँचते हैं, कि इसका कोई बनानेवाला मिस्त्री या कारीगर था। क्योंकि हमने सदा मकान-जातिके कार्योंको कारीगर-जातिके कारणों द्वारा बनाये जाते देखा है। किन्तु विश्व-जातिके कार्योंको ईश्वर-जातिके कारणों द्वारा बनते हमने कभी नहीं देखा इसलिए यहाँ घर और कारीगरके दृष्टान्तसे ईश्वरको नहीं सिद्ध कर सकते। आखिर अनुमानमें, जिस जातीय कार्यको जिस जातीय कारणसे उत्पन्न होना देखा गया, उसी जातिके भीतर ही रहना पड़ता है। ईश्वर पूर्ण अचल, अनन्त है, ये ऐसे गुण हैं, जिन्हें निरन्तर परिवर्तनशील—क्षण क्षण पैदा होने तथा मरनेवाला—मन नहीं जान सकता, जब एक मन दूसरे क्षण रहता ही नहीं तो नया आनेवाला मन कैसे जान सकता है, कि ईश्वरका अमुक गुण पहिले भी मौजूद था। मनुष्य अपने परिमित ज्ञानसे ईश्वरका अनुमान कर ही नहीं सकता, यदि उसके अज्ञानसे, अनुमान करनेका आग्रह किया जाय, तो फिर यह दर्शन नहीं हुआ।

विशेष स्वभाववाले ईश्वरके स्वभावका अनुमान बहुत पीछेका गौण रहेगा। कार्यके गुणके अनुसार ही हम कारणके गुणका अनुमान कर सकते हैं। बाह्य-जगत् अनन्त नहीं सान्त, अनादि नहीं सादि है, इसलिए ईश्वरको भी सान्त और सादि मानना पड़ेगा। जगत् पूर्ण नहीं अपूर्ण, त्रुटियों, संघर्ष, विषमतासे भरा हुआ है, और यह भी तब जब कि ईश्वरको अनन्तकालके अभ्यास करते हुए इस जगत्के बनानेका मौका मिला था। इस जगत्का कारण ईश्वर सान्त और अपूर्ण क्रूर, गफलती, विषमता-प्रेमी होगा।

मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक सीमित अवस्थाओंके कारण सदाचार, दुराचारका भी उसपर भार डाला नहीं जा सकता, आखिर यह ईश्वर ही की देन है।

(८) धर्म—प्रकृतिकी अनुकूलता या प्रतिकूलताका शुद्ध भ्रम भी धर्म और ईश्वर विश्वासको पैदा करता है किन्तु इसके मुख्य आधार हैं—सुखके लिए भारी चिन्ता, भविष्यकी तकलीफोंका भय, बदला लेनेकी जबर्दस्त इच्छा, खान-पान और दूसरी आवश्यक चीजोंकी भूख।

ह्यूमने यद्यपि केवल धार्मिक जगतके तर्कोंपर भी काफी प्रहार किया है, और दर्शनको धर्मका चाकर बननेसे रोकना चाहा, किन्तु दूसरी तरफ ज्ञानको असंभव मानकर उसने कोई भावात्मक स्थान नहीं पेश किया। दर्शनका प्रयोजन सन्देहमात्र पैदा करना नहीं होना चाहिए, क्योंकि जीवनके होनेमें सन्देहकी गुंजाइश नहीं है।[1]

§ ३–भौतिकवाद

अठारहवीं सदीमें भौतिकवादी विचारों तथा सामाजिक परिवर्तन संबंधी ख्याल जोर पकड़ रहे थे, इसे हम कह चुके हैं। इस शताब्दीमें

[1] साधु शान्तिनाथ भी अपने "Critical Examination of the philosophy of Religion" (2 vols) में ह्यूमका ही अनुसरण करते हैं।

भौतिकवादी दार्शनिक भी काफी हुए थे, जिनमें प्रमुख थे—हर्टली (१७०४-५७ ई०), ला मेत्री (१७०६-५१) हेल्वेशियस (१७१५-७१), दा अलम्बर (१७१७-८३), द हेलबाख (१७२३-८९), दीदरो (१७३१-८४), प्रीस्टली (१७३३-१८०४), कबानी (१७५७-१८०८)।

भौतिकवादका समर्थन सिर्फ दार्शनिकोंके प्रयत्नपर ही निर्भर नहीं था, बल्कि सारा साइंस—साइंसदानोंके वैयक्तिक विचार चाहे कुछ भी हों—भौतिकवादी प्रवृत्ति रखता था इसीलिए यह अकेला अस्त्र दार्शनिकोंके हजारों दिमागी तर्कोंको काटनेके लिए पर्याप्त था। इसीलिए अठारहवीं सदीकी भौतिकवादी प्रगति उसपर निर्भर नहीं है कि उसके दार्शनिकोंकी संख्या कितनी है, या वह कितने शिक्षितोंको प्रिय हुआ।

हर्टली मनोविज्ञानको शरीरका एक अंश मानता था। देकार्त यद्यपि द्वैतवादी ईश्वर विश्वासी कट्टर कथलिक ईसाई था लेकिन उसके दर्शनने अनजाने फ्रांसमें भौतिकवादी विचारके फैलानेमें सहायता की। देकार्तका मत था कि निम्न श्रेणीके प्राणी चलते फिरते यंत्र भर हैं, यदि प्राणीके सभी अंग ठीक जगहपर लगे हों, तो बिना आत्माके सिर्फ इंद्रियों द्वारा उत्पादित उत्तेजनासे भी शरीर चलने फिरने लगेगा। इसीको लेकर ला-मेत्री और दूसरे फ्रेंच भौतिकवादियोंने आत्माको अनावश्यक साबित किया, और कहा कि सभी सजीव वस्तुएं भौतिक तत्वोंसे बने चलते फिरते स्वयं वह यंत्र हैं। ला मेत्रीने कहा—जब दूसरे प्राणी, दार्शनिक देकार्तके मतसे बिना आत्माके भी चल फिर सोच-समझ सकते हैं, तो मनुष्यमें ही आत्माकी क्या जरूरत है? सभी प्राणी एक ही विकासके नियमोंका अनुसरण करते हैं, अन्तर है तो उनके विकासके दर्जेमें। कबानीके ग्रन्थ फ्रांसमें भौतिकवादके प्रचारमें सहायक हुए थे। उसकी कितनी ही बातें बहुत मशहूर हैं। "शरीर और आत्मा एक ही चीज हैं।" "मनुष्य ज्ञानतंतुओंका गट्ठा है।" "पित्ता जिस तरह रस प्रस्राव करता है वैसे ही दिमाग विचारोंका प्रस्राव करता है।" भौतिक तत्त्वोंके नियम मानसिक आचारिक घटनाओंपर भी लागू हैं।

नास्तिकवादपर एक आक्षेप किया जाता था, कि उनके अनुसार ईश्वर परलोकका न डर होनेसे दुनियामें दुराचार फैल जायगा, साथ न्यायाधीश या दूसरोंकी धन-सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रहने पायेंगे। किन्तु अठारहवीं सदीके इसका जवाब भौतिकवादियोंने आचार-विचारसे दे दिया। ये भौतिकवादी सबसे ज्यादा धर्मकी नास्तिकता और सामाजिक असमानताके विरोधी थे, व्यक्तिगत स्वार्थ समाजके कल्याणपर जोर देते थे। हेल्वेशियसने कहा था—"साधारण आत्म-स्वार्थ आचारका सबसे अधिक दृढ़ आधार बन सकता*।"

द्वादश अध्याय

उन्नीसवीं सदीके दार्शनिक

अठारहवीं सदी साइंसका प्रारंभिक काल था, लेकिन उन्नीसवीं सदी उसके विकासके विस्तार और गति दोनोंमें ही पहिलेसे तुलना न रखती थी। अब साइंस पर्वतका आरंभिक चश्मा नहीं बल्कि एक महानदी बन गया था। अब उसे दर्शनकी पर्वाह नहीं थी, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिए दर्शनको साइंसकी सहायता आवश्यक थी, और इस सहायताको बिना उसकी मर्जीके लेनेमें दर्शनने परहेज नहीं किया।

उन्नीसवीं सदीमें ज्योतिष शास्त्रने ग्रहों-उपग्रहोंकी छान-बीन ही नहीं पूरी की बल्कि सूर्यकी दूरी ज्यादा शुद्धतासे मालूम की। स्पेक्ट्रस्कोप (वर्ण रश्मि-दर्शक-यंत्र)की मददसे सूर्य, तारोंके भीतर मौजूद भौतिक तत्त्वों, उनके ताप घनता आदि तथा दूरी मालूम हुई और तारोंके बारेमें चले आते कितने ही भ्रम और मिथ्याविश्वास दूर हो गए।

गणितके क्षेत्रमें लोबाचेव्स्की रीमान आदिने आयलेन्सिम अलग तथा अधिक शुद्ध ज्यामितिका आविष्कार किया।

भौतिक साइंसमें जूल, हेल्महोलट्ज केलविन एडिंग्टनने नये आविष्कार किये। रसायनविज्ञान सिर्फ परमाणुओंकी ही छानबीन नहीं की बल्कि इलेक्ट्रन परमाणुओंको भी तोड़कर एलेक्ट्रनपर पहुँच गया।[1] बिजलीसे परिचय हुआ ही नहीं, बल्कि शताब्दीके अन्त तक सड़कों और घरोंमें बिजली प्रवाहित करने लगी।

रसायन शास्त्रमें परमाणुओंकी नाप-तोल होने लगी और ...

---

[1] देखो "विश्वकी रूपरेखा"।

का बटवारा बना परमाणु-तत्त्वोंके भार आदिका पता लगाया गया। १८२८ ई०में वालेर्न सिर्फ प्राणियोंमें मिलनेवाले तत्त्व उरियाको रसायनशालामें कृत्रिम रूपसे बनाकर सिद्ध कर दिया, कि भौतिक नियम प्राणि अप्राणि दोनों जगतमें एकसे लागू है। शताब्दीके आरम्भमें ३० के करीब मूल रसायन तत्त्व ज्ञात थे, किन्तु अन्तमें उनकी संख्या ८० तक पहुँच गई।

प्राणिशास्त्रमें अनुवीक्षणसे देखे जानेवाले बक्टीरिया और दूसरे कीटाणुओंकी खोज उनके गुण आदिने विज्ञानके ज्ञान-भंडारको ही नहीं बढ़ाया बल्कि पास्तोरकी इन खोजोंने घाव आदिकी चिकित्सा तथा टीनबंद खाद्यपदार्थोंकी तैयारीमें बड़ी सहायता पहुँचाई। क्वीन बहोशीकी दवा निकालकर चिकित्सकोंके लिए आपरेशन आसान बना दिया। शताब्दीके मध्यमें डार्विनके जीवन विकासके सिद्धान्तने विचारोंमें भारी क्रान्ति पैदा की, और जड़-चेतनकी सीमाओंको बहुत नजदीक कर दिया।

इस तरह उन्नीसवीं सदीने विश्व-संबंधी मनुष्यके ज्ञानमें भारी परिवर्तन किया जिससे भौतिकवादको जहाँ एक ओर भारी सहायता मिली, वहाँ दार्शनिकों की दिक्कतें बहुत बढ़ गई। इसी तरह फिख्टे, हेगल शोपनहार जैसे विज्ञानवादियोंने भौतिकतत्त्वोंसे भी परे विज्ञानतत्त्वपर पहुँचनेकी कोशिश की। गलिङ्, नीट्शेने द्वैतवादी बुद्धिवादका आश्रय ले भौतिकवाद की बाढ़को रोकना चाहा। स्पेन्सरने ह्यूमके मिशनको सँभाला और अपने अज्ञेयतावाद द्वारा समाजके आर्थिक-सांस्कृतिक ढाँचेको बरकरार रखनेकी कोशिश की। लेकिन इसी शताब्दीको मार्क्स जैसे प्रखर दार्शनिकको पैदा करनेका सौभाग्य है जिसने साइंससे अपने दर्शनको सुव्यवस्थित किया, और उसके द्वारा दर्शनको समाजके बदलनेका साधन बनाया।

§ १–विज्ञानवाद

१–फिख्टे (१७६५-१८१४ ई०)

योहन गाट्लीप् फिख्ट सेक्सनी (जर्मनी)में एक गरीब जुलाहेके घर पैदा हुआ था।

परमतत्त्व—काण्टने बहुत प्रयत्नसे वस्तुसार (वस्तु अपने भीतर)को समझकी सीमाके पार बुद्धि अगम्य वस्तु साबित किया था। फिख़्टेने कहा, कि वस्तुसार भी मनसे परकी चीज नहीं, बल्कि मन हीकी उपज है। सारे तजर्बे तथा मनके सिर्फ आकार ही नहीं 'परम आत्मा'[1]से उत्पन्न हुए है, बल्कि उत्पत्तिमे वयक्तिक मनोंने भी भाग लिया है। "परम आत्माने अपनको ज्ञाता (=आत्मा) और ज्ञेय (=विषय)के रूपमें विभक्त किया क्योंकि आत्माके आचारिक विकासके लिए ऐसे बाधा डालनेवाले पदार्थोंकी जरूरत हैं, जिनको कि आत्मा अपने आचारिक प्रयत्नसे पार करे। इन्हीं कारणोंसे परम आत्माको अनेक आत्माओंमें भी विभक्त होना पड़ता है यदि ऐसा न हो तो उन्हें अपने-अपने कर्त्तव्योंको पूरा करनेका अवसर नहीं मिलेगा। आत्माओंके अनेक स्थानपर भी वह उस एक **आचारिक विधानके** प्रकाश है, जिसे कि परम-आत्मा या ईश्वर कहते हैं। फिख़्टेका परमतत्त्व स्थिर नहीं, बल्कि सजीव, प्रवाह है।

ईश्वरको ठोक-पीटकर, हर एक दार्शनिक, अपने मनका बनाना चाहता है, लेकिन सबका प्रयत्न है इस बेचारेको खतरेसे बचाना।

(१) **श्रद्धातत्त्व**—काण्टने आचारिक विधि—यह आचार तुम्हें जरूर करना होगा—के बारेमें कहा कि उसपर विश्वास करनेसे हम सन्देहवाद, भौतिकवाद और नियतिवाद[2]से बचते हैं। चूंकि हम आचारिक विधानपर विश्वास रखते हैं, इसलिए हम उसे जानते हैं। यह आचारिक सच्चाई है, जो हमको आजाद बनाती है, और हमारे स्वातन्त्र्यको सिद्ध करती है। काण्ट और फिख़्टेके इस दर्शनके अनुसार हम ज्ञानकी पर्वाह न कर विश्वासपर दृढ़ हो अपनी स्वतंत्रता पाते हैं—विश्वास करने न करनेमें जो हमें आजादी है! यदि हम दो तीन हजार वर्ष पहिले चंद आदमियों द्वारा अपने स्वार्थ और स्वार्थरक्षाके लिए बनाये गये आचारिक नियमोंको नहीं मानते तो अपनी आजादी खो डालते हैं!!

---

[1] Absolute Self [2] Determinism

और इन्हीं आचार्योंके समय वह दुनिया … भौतिकवाद है या कि आचार्योंके एकमात्र … विश्वास (=श्रद्धा) पर बुद्धिवादी … हुए बुद्धि और तजर्बेके बारेमें रास्ता बताते किए जाते थे ।।। धर्मशास्त्रकी … नहीं 'और वह … यानि उस … मुनियोंके द्वारा … गया है । और जब … ठीक पृथिवी और उसके तजर्बोंका … कि … मनस्पमें काम याब हुए ।

(२) बुद्धिवाद—आधुनिक-युगमें विशुद्ध ज्ञान, और प्रमाण(=तजर्बे) का उपकारक … आज बना सकता था, इसीलिए इसी … परिभाषाएँ, … शास्त्र … आदर्श (=विज्ञानशास्त्र पर) है । प्रयोग और बुद्धिवादका … चला है—यदि … तजर्बेको … नहीं रखता तो वह अवश्य भूला है, यद्यपि … अनुभवका पूर्ण (…)का निदान पर रखना और बुद्धिकी … क्रिया द्वारा उसकी व्याख्या करना । जो परम आत्माका एकमात्र … तत्त्व मान और 'आस्तिक' विश्वास (=श्रद्धा)को … एकमात्र पथ समझ उसके मुँहमें तजर्बे और अक्लकी यह … नहीं है ।

(३) आत्मा—आत्मा परम आत्मासे निकला है, यह बतला आये हैं । आत्मा परम आत्माकी … प्राकट्य है । आत्माकी सीमाएँ हैं । विचारसे वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष, और मननसे परे नहीं जा सकता, और व्यवहारसे वह (परम आत्माके) विश्व प्रयोजनसे परे नहीं जा सकता ।

(४) ईश्वर—ईश्वर एकमात्र परम-तत्त्व या परम आत्मा है यह बतला आये हैं । आचारिक विधानपर पादरियोंकी भाँति … किये जाते थे यह भी कहा जा चुका है । आचारिक विधानके ढाँचेको कायम रखनेके लिए एक विश्व प्रयोजक या ईश्वरकी जरूरत है । सच पूछो तो आचारिक विधान—जो कि सत्ताधारी वर्गके स्वार्थके अनुकूल है—का समर्थन बुद्धि और प्रयोगसे नहीं हो सकता उसके लिए ईश्वरका अवलंब

चाहिए। फिग्टे और स्पष्ट करते हुए यह भी कहता है कि आचारिक विधानके लिए धार्मिक विश्वासकी भी जरूरत है। संसार भरमें विद्यमान आचारिक विधान (=धर्म नियम) और उसके विधानके विपाकपर विश्वास के बिना आचारिक विधान ठहर नहीं सकते। अन्तरात्माकी आवाज सभी विश्वासों और सच्चाइयोंकी कसौटी है। वह अभ्रान्त है। अन्तरात्माकी आवाज हमारे भीतर भगवानकी आवाज है। आध्यात्मिक जगत और हमारे बीच ईश्वर बिचवई है और वह अन्तरात्माकी आवाजके रूपमें अपना सन्देश भेजता है।

२—हेगेल् (१७७०-१८३१ ई०)

जार्ज विल्हेल्म फ्रीड्रिख हेगल् स्टुटगार्ट (जर्मनी)में पैदा हुआ था। टूबिंगन् विश्वविद्यालयमें उसने धर्मशास्त्र और दर्शनका अध्ययन किया। पहिले जेनामें दर्शनका प्रोफेसर हुआ, फिर १८०६-८ ई० तक बम्बर्गमें एक समाचारपत्रका सम्पादक रहा। उसके बाद फिर अध्यापनका काम शुरू किया, और पहिले हाइडलबर्ग फिर बर्लिनमें प्रोफेसर रहा। ६१ वर्षकी उम्रमें हैजेसे उसकी मृत्यु हुई।

[विकास]—आधुनिक युगमें जो अभौतिकवादी दर्शनका नया प्रवाह आरम्भ हुआ हेगेलके दर्शनके रूपमें वह चरममीमांसाको पहुँचा। उसके दर्शनके विकासमें अफलातू अरस्तू स्पिनोजा कांटका खास हाथ है। कान्टसे उसने लिया कि मन (=विज्ञान) सारे विश्वका निर्माता है। हमारे वयक्तिक मन (=विज्ञान)विश्व मनके अंश है। वही विश्व-मन हमारे द्वारा विश्वको अस्तित्वमें लानेके लिए मनन (=अभिध्यान) करता है। स्पिनोजासे उसने यह लिया कि आत्मिक और भौतिक तत्त्व उसी एक अनादि तत्त्वके दो रूप हैं। अफलातूके दर्शनसे लिया—(१)विज्ञान सामान्य विज्ञान (आचारिक)मूल्य और यह कि पूर्णताका जगत ही एक मात्र वास्तविक जगत है। इन्द्रियोंका जगत् उसी सीमा-पारी आत्मिक जगतकी उपज है, (२) भौतिक जगत आत्मिक जगत (=परमतत्त्व)के स्वेच्छापूर्वक सीमित करनेका परिणाम है,

अर्थात् वह आदिम सरल अखण्ड स्थापना होता है। लेकिन इस विज्ञानवाद दर्शनके साथ साथ हमारे परन्तुके आत्मिक विकासको भी मनाया है, मानो विज्ञानका हर एक कदम पार करके विकासकी ओर उठता जा रहा है। इसका अपनी सबसे बड़ी ऊँचाई है यही द्वन्द्वात्मक[1] विकास।

(१) दर्शन और उसका प्रयोजन—हेगल्के अनुसार दर्शनका काम है प्रकृति और तत्त्वोंके द्वारा सारे जगत्‌का ज्ञान पाना, अर्थात् जानना, उसके भीतरके हेतुका अध्ययन करना और समझना—सिर्फ बाहरी घटनाओं तथा संयोगसे उत्पन्न होनेवाला नहीं, बल्कि प्रकृतिके भीतर जो मनोनिर्माण सम्बन्धी व्यवस्था है उसको भी। हेगलके अनुसार कुछ भव है अगाहरी घटनाएँ बुद्धिपूर्वक हैं यह-उपग्रह-नीहारिका बुद्धिगत नियमके अन्दर हैं प्राणिशरीर सप्रयोजन अर्थपूर्ण और बुद्धिगम्य[2] हैं। चूँकि मनुष्य जितना अपने गर्भके भीतर बुद्धिगत है इसीलिए वह चिन्तन या मानसी प्रक्रियाओंसे हम बुद्धिगत घटनाओंके रूपमें पाते हैं। चूँकि दर्शनका सम्बन्ध प्रकृतिके गम्भीरतम अध्ययन करना है, इसीलिए प्रकृतिके साथ दर्शनका विकास उज्ज्वल-उज्ज्वलतर होता जा रहा है।

(२) परमतत्त्व—हेगल्ने काण्टके अज्ञात वस्तुमात्र (वस्तु अपने भीतर) या परमात्मतत्त्वको मानसके द्वारा मान लिया, और उसकी जगह बतलाया कि मन (=विज्ञान) और भौतिक प्रकृति ही परमतत्त्व है। प्रकृति किसी अज्ञात परम (आत्म) तत्त्वका बाहरी आभास या दिखलावा नहीं बल्कि वह स्वयं परमतत्त्व है। मन और भौतिक तत्त्व दो अलग अलग चीज नहीं, बल्कि परमतत्त्वके आत्मप्रकाशके एक ही प्रवाहके दो अभिन्न अंग हैं। मनके लिए एक भौतिक जगत्‌की जरूरत है जिसपर कि वह अपना प्रभाव डाल सके किन्तु भौतिक जगत् भी मनोमय है। 'वास्तविक मनोमय है, और मनोमय वास्तविक है।'

(३) द्वन्द्वात्मक परमतत्त्व—परमतत्त्व भौतिक और मानस जगतके

---

[1] Dialectical evolution [2] Rational

अभिन्न हैं, इसे हेगल् बहुत व्यापक अर्थमें इस्तेमाल करता है। परमतत्त्व स्थिर नहीं गतिशील, चल है।—जगत् क्षण क्षण बदल रहा है, विचार बुद्धि, समझ या सच्चा ज्ञान सक्रिय प्रवाहित घटना, विकासकी धारा है। विकास नीचेसे ऊपरकी ओर हो रहा है, कोई चीज—सजीव या निर्जीव निम्न दर्जे या ऊँचे दर्जेके जन्तु—अभी अविकसित विशेषताशून्य सम-स्वरूप रहती है, वह उस अवस्थासे विकसित विशेषतायुक्त हो विभक्त होती है, और फिर नाना ही भिन्न भिन्न आकारोंको ग्रहण करती है। गर्भ, अणुगुच्छक आदिके विकासमें इसे हम देख चुके हैं।[1] ये भिन्न भिन्न आकार जहाँ पहिली अविकसित अवस्थामें अभिन्न=विशेषता रहित थे, अब वह एक दूसरेसे स्वरूप और स्थितिमें ही भिन्न नहीं रखते, बल्कि वह एक दूसरेके विरोधी हैं। इन विरोधियोंका अपने विरोधी गुणों और क्रियाओंके कारण आपसमें द्वंद चल रहा है, तो भी उस पूर्णमें वह एक हैं, जिसके कि वह अवयव हैं।—अर्थात् वास्तविकता अपने भीतर द्वन्द्व या विरोधी अवयवोंका स्वागत करती है। ऊपरकी ओर विकास करना वस्तुओंकी अपनी आन्तरिक रुचि का परिणाम है। इस तरह विकास निम्न स्थितिका प्रयोजन अर्थ और सत्य है। निम्नमें जो छिपा, अस्पष्ट होता है, उच्च अवस्थामें वह प्रकट स्पष्ट हो जाता है। विकासकी धारा अपनी हर एक अवस्थामें पहिलेकी अपनी सारी अवस्थाओंको लिये रहती है तथा सभी आनेवाली अवस्थाओंकी झाँकी देती है। जगत अपनी प्रत्येक स्थितिमें पहिलेकी उपज तथा भविष्य-द्वाणी भी है। उच्च अवस्थामें पहुँचनेपर निचली अवस्था अभावप्राप्त[2] (=प्रतिषिद्ध) बन जाती है—अर्थात् इस वक्त वह वही नहीं रहती जो कि पहिले थी, तो भी पिछली अवस्था उच्च अवस्थाके रूपमें सुरक्षित है, वह ऊपर पहुँचाई गई है। यह पहुँचाना—निम्नसे ऊपरकी ओर बढ़ना, एक दूसरी विरोधी अवस्थामें पहुँचा देता है। दो रास्ते एक जगहसे फूटते हैं, किन्तु आगे चलकर उनकी दिशा एक दूसरेसे विरोधी बन जाती

[1] देखो मेरी "विश्वकी रूपरेखा"।

[2] Negated

है। चीजोंकी गति उसे एक दशा गतिसे उलट (कठोर, स्थिर, ज्या-[illegible]) रूपमें बदल देता है। पहिली अवस्था उसकी बिलकुल विरोधी अवस्थामें बदल जाती है इस तरह द्वन्द्वात्मक घटना होती है।

[द्वन्द्वात्मकता]—द्वन्द्व विरोध सभी सत्ताके जीवन और गतिका स्रोत है। हर एक वस्तु द्वन्द्व है। द्वन्द्व या विरोधका सिद्धान्त संसारपर शासन कर रहा है। हरएक वस्तु अपनेको और अपनेसे अलग अपने विरुद्ध अवस्थामें परिणत होना चाहती है। चीजोंके भीतर युद्ध और यतन, मरनेकी तड़पन तथा जन्मनेकी चाह भरी है। द्वन्द्व (=विरोध) यदि न होता, तो जगतमें न जीवन होता न गति न वृद्धि और सभी चीजें मुर्दा और स्थिर होतीं। लेकिन प्रकृतिका काम विरोध (=द्वन्द्व) तक ही खतम नहीं हो जाता। प्रकृति उसपर काबू पाना चाहती है परन्तु अपने विरोधी रूपमें परिणत जरूर हो जाती है, लेकिन गति बन्द नहीं हो जाती, वह आगे जारी रहती है, और आगे भी विरोधोंको दबाया और उनका समन्वय किया जाता है। इस प्रकार विरोधी एक पूर्ण शरीरके अवयव बन जाते हैं। विरोधी, एक दूसरेसे जहाँ तक संबंध है, आपसमें विरोधी हैं, किन्तु जहाँ तक उस अपने एक पूर्ण शरीरसे संबंध है, वे परस्पर विरोधी नहीं हैं। वहाँ तो यही परस्परविरोधी मिलकर एक पूर्ण शरीर को बनाते हैं।

विश्व निरन्तर होते विकासोंका प्रवाह है। यही उसके लक्ष्य या प्रयोजन है, यही विश्व-बुद्धिका प्रयोजन है। परमात्मतत्त्व[1] वस्तुतः विश्वके विकास का परिणाम है। लेकिन यह परिणाम जितना है उतना सम्पूर्ण नहीं है। सच्चा सम्पूर्ण है परिणाम (परमात्मतत्त्व) और उसके साथ विकासका सारा प्रवाह—वस्तुएँ अपने प्रयोजनके साथ खतम नहीं होतीं, बल्कि वह जो बन जाती है उसीमें समाप्त होती है। इसीलिए दर्शनका लक्ष्य परिणाम नहीं बल्कि उसका लक्ष्य यह दिखलाना है कि कैसे एक परिणाम दूसरे

[1] Absolute

परिणाममें पैदा होता है वस उसका दूसरका प्रकट होना अवश्यंभावी है।

वास्तविकता (परमतत्त्व) मनसे कल्पित एक निराकार ख्याल नहीं, बल्कि चलता बहता प्रवाह, एक द्वन्द्वात्मक सन्तान है। उसे हमारे निराकार ख्याल पूरा तौरसे नहीं व्यक्त कर सकते। निराकार ख्याल एक अंश और उसमें छोट अभावे ही वारस बनजाते हैं। वास्तविकता इस क्षण यह है, दूसरे क्षण वह है, इस अर्थमें वह अभावों विरोधी द्वन्द्वोंसे भरी हुई है पौधा अंकुरित होता है फूलता है सूखता और फिर मर जाता है, मनुष्य बच्चा होता फिर तरुण जीर्ण वृद्ध हो मर जाता है।

(४) द्वन्द्ववाद—वस्तु आग रटते-बढते अपनेमें उलटे विरोधी रूपमें बदल जाती है। सम्पूर्ण (=अवयवी) परस्पर विरोधी अवयवोंका योग है यह हम कह चुके। दो विरोधियोंका समागम कैसे होता है, इसे हेगेलने इस प्रकार समझाया है।—हमारे सामने एक चीज आती है, फिर उसकी विरोधी दूसरी चीज आ मौजूद होती है। इन दोनोंका द्वन्द्व चलता है, फिर दोनोंका समन्वय हम एक तीसरी चीजसे करते हैं। इनमें पहिली बात *वाद* है, दूसरी *प्रतिवाद* और तीसरी *संवाद*। उदाहरणार्थ—पर्मेनिदने कहा मूल तत्त्व स्थिर नित्य है यह हुआ वाद। हेराक्लितुने कहा कि वह निरन्तर परिवर्तन शील है, यह हुआ प्रतिवाद। परमाणुवादियोंने कहा, यह न तो स्थिर ही है न परिवर्तनशील ही, बल्कि दोनों है यह हुआ संवाद।

(५) ईश्वर—हेगलका दर्शन स्पिनोजासे अधिक क्रान्तिकारी है, किन्तु ईश्वरका मोह उसे स्पिनोजासे ज्यादा है। ईश्वर सिद्ध करनेके लिए बड़ी भूमिका बाँधते हुए वह कहता है—विश्व एक पागल प्रवाह, बिल्कुल ही अर्थहीन बे-लगामसी घटना नहीं है, बल्कि इसमें नियमबद्ध विकास और प्रगति देखी जाती है। हम वास्तविकताको आभास और सार बाह्य और अन्तर द्रव्य और गुण शक्ति और उसके प्राकट्य सान्त और अनन्त मन (=विज्ञान) और भौतिक तत्त्व, लोक और ईश्वरमें विभक्त करना चाहते हैं, किन्तु इससे हम झूठ भेद और मनमानी दिमागी कल्पनाके सिवाय कुछ

है। पानीकी गति उसे बर्फ बना गतिसे उलट (कठोर, स्थिर, ज्यादा विस्तृत) रूपमें बदल देती है। पहिली अवस्थासे उसकी बिलकुल विरोधी अवस्थामें बदल जाना इसे हेगल द्वन्द्वात्मक घटना कहता है।

[द्वन्द्वात्मकता]—द्वन्द्व विरोध सभी तरहके जीवन और गतिकी जड़ है। हर एक वस्तु द्वन्द्व है। द्वन्द्व या विरोधका सिद्धान्त संसारपर शासन कर रहा है। हरएक वस्तु बदलना और बदलकर पहिलेसे विरुद्ध अवस्थामें परिणत होना चाहती है। बीजके भीतर कुछ और बनने अपनेपनसे लड़ने तथा बदलनेकी चाह भरी है। द्वन्द्व (=विरोध) यदि न होता, तो जगतमें न जीवन होता न गति न वृद्धि और सभी चीजें मुर्दा और स्थिर होतीं। लेकिन, प्रकृतिका काम विरोध (=द्वन्द्व) तक ही खतम नहीं हो जाता, प्रकृति उसपर काबू पाना चाहती है, वस्तु अपने विरोधी रूपमें परिणत जरूर हो जाती है, लेकिन गति वहीं रुक नहीं जाती, वह आगे जारी रहती है, और आगे भी विरोधोंको दबाया और उनका समन्वय किया जाता है। इस प्रकार विरोधी एक पूर्ण शरीरके अवयव बन जाते हैं। विरोधी एक दूसरेसे जहाँ तक संबंध है, आपसमें विरोधी हैं, किन्तु जहाँ तक उस अपने एक पूर्ण शरीरसे संबंध है वे परस्पर विरोधी नहीं हैं। वहाँ तो यही परस्परविरोधी मिलकर एक पूर्ण शरीर को बनाते हैं।

विश्व निरन्तर होनेवाले विकासका प्रवाह है, यही उसके लक्ष्य या प्रयोजन है, यही विश्व-बुद्धिका प्रयोजन है। परमात्मतत्त्व[1] वस्तुतः विश्वके विकास का परिणाम है। लेकिन यह परिणाम जितना है, उतना सम्पूर्ण नहीं है। सच्चा सम्पूर्ण है परिणाम (परमात्मतत्त्व) और उसके साथ विकासका सारा प्रवाह—वस्तुएँ अपने प्रयोजनके साथ खतम नहीं होतीं, बल्कि वह जो बन जाती है उसीमें समाप्त होती है। इसीलिए दर्शनका लक्ष्य परिणाम नहीं बल्कि उसका लक्ष्य यह दिखलाना है कि कैसे एक परिणाम दूसरे

---

[1] Absolute

आगे पाये जानेवाले सत्यका यह सार है कि पीछे पार किये सारे भ्रमोंका सत्य—वह लक्ष्य जिसकी कि खोजमें वह भ्रममें फिर रहा था—होवे। इसीलिए **परमतत्त्व**—निम्न और सापेक्ष सत्यके रूपमें ही मौजूद है। अनन्त सिर्फ सान्तके सत्यके तौरपर ही पाया जाता है। सत्य पूर्ण तभी हो सकता है, जब कि अपूर्ण द्वारा की जानेवाली खोजको पूरा करता हो।

(८) हेगेल्के दर्शनकी कमज़ोरियाँ—(१) हेगेल्का दर्शन विश्वको परमविज्ञान[1]के रूपमें मानता है। इस तरह बर्कलेके विज्ञानवाद और हेगल्के दर्शनका भाव एक ही है। दोनों मन (शुद्ध चेतना)को भौतिक तत्त्वोंसे पहिले मानते हैं।

(२) हेगल यद्यपि विश्वमें परिवर्तन, प्रवाहकी बात करता है, किन्तु वास्तविक परिवर्तनको वह एक तरहसे इन्कार करता है। जो भविष्यमें होनेवाला है, वह पहिले हीसे मौजूद है, यह इसी बात को प्रकट करता है, और विश्वको भाग्यचक्रमें बँधा एक निरीह वस्तु बना देता है। परमतत्त्वकी एकतामें विश्वकी विचित्रताओंको वह खपा देना चाहता है, और इस तरह भिन्न-भिन्न वस्तुओंवाले जगत्के व्यक्तित्वको एक मूलतत्त्वसे बढ़कर 'कुछ नहीं' कह, परिवर्तन तथा विकासके सारे महत्त्वको खतम कर देता है।

(३) हेगल् कहता है, कि सभी सत्ताओंकी एकताएँ, सभी बुराईसी जान पड़ती बातें वस्तुतः अच्छी (=शिव) हैं। ऊँचे दृष्टिकोणसे वह बुराइयोंको उचित ठहराना चाहता है, और बुराइयोंको भ्रम कहकर उनसे ऊपर उठना चाहता है। दर्शनमें उसका यह औचित्य व्यवहारमें बहुत खतरनाक है, इसके द्वारा राजनीतिक, सामाजिक अत्याचार, वैषम्य सभीको उचित ठहराया जा सकता है।

३—शोपनहार (१७८८-१८६० ई०)—अर्थर शोपनहार डन्ज़िग्में एक धनी बनियेके घरमें पैदा हुआ था। उसकी माँ एक प्रसिद्ध उपन्यास-

[1] Idea

लभिका थी। गाटिंगन (१८०९-११ ई०) और बर्लिन (१८११-१३ ई०)के विश्वविद्यालयोंमें उसने प्लातो, कान्ट और संस्कृत-साहित्यका अध्ययन किया। फिर हेगलसे नाता तोड़ जहाँ-तहाँ ठोकरें खानेके बाद बर्लिन विश्वविद्यालयमें उसे अध्यापकी मिली, जहाँसे १८३१में उसने अवकाश ग्रहण किया, और फिर माइन-तटवर्ती फ्रांकफुर्त शहरमें बस गया।

[तृष्णावाद[1]]—कान्टका दर्शन वस्तु-अपने-भीतर (वस्तु-सार)के गिर्द घूमता है; शोपनहारका दर्शन तृष्णा—सबके—भीतर (सर्वव्यापी तृष्णा)के गिर्द घूमता है। वस्तुएँ या इच्छाएँ कोई वैयक्तिक नहीं हैं, क्योंकि व्यक्ति भ्रम है। तृष्णासे परे कोई वस्तु अपने भीतर नहीं है। तृष्णा ही कालातीत, देशातीत मूलतत्त्व और कारण-विहीन क्रिया है। वही मेरे भीतर उत्तेजना, पशुबुद्धि, उद्यम, इच्छा, भूखके रूपमें प्रकट होती है। प्रकृतिके एक भागके तौरपर उसके आभासके तौरपर मैं अपनेपनसे आगाह हो जाता हूँ—मैं अपनेको विस्तारयुक्त प्राणिशरीर समझने लगता हूँ। वस्तुतः यही तृष्णा मेरी आत्मा है, शरीर भी उसी तृष्णाका आभास है।

जब मैं अपने भीतरकी ओर देखता हूँ, तो मुझे वहाँ तृष्णा (मानकी तृष्णा, खानेकी तृष्णा, जीनेकी तृष्णा, न जानकी तृष्णा) दिखाई पड़ती है। जब मैं बाहरकी ओर देखता हूँ, तो उसी अपनी तृष्णाको शरीरके तौरपर देखता हूँ। दूसरे शरीर भी मेरे शरीरकी ही भाँति तृष्णाके प्राकट्य हैं। पत्थरमें तृष्णा अंधी शक्तिके तौरपर प्रकट होती है, मनुष्यमें वह चेतनायुक्त बन जाती है। चुम्बककी सुई सदा उत्तरकी ओर घूमती है, पिंड गिरनेपर सीधे नीचेकी ओर लगातार गिरता है। एक तत्त्वको जब दूसरेसे प्रभावित किया जाता है, तो स्फटिक बनता है। यह सब बतलाते हैं कि प्रकृतिमें सर्वत्र तृष्णाकी जातिकी ही शक्तियाँ काम कर रही हैं। वनस्पति जगत्में भी अनजाने ऐसी तरहकी उत्तेजना या प्रयत्न दीखते हैं—वृक्ष प्रकाश की तृष्णा रखता है और ऊपरकी ओर जानेका प्रयत्न करता है। वह नमीकी

[1] Will देखो पृष्ठ ५०३ ४

भी तृष्णा रखता है, जिसके लिए अपनी जडोंको धरतीकी ओर फैलाता है। तृष्णा या आन्तरिक उत्तेजना प्राणियोंकी वृद्धि और सभी क्रियाओंको सचालित करती है। हिंस्र पशु अपने शिकारको निगलनेकी चाह (=तृष्णा) रखता है, जिसमें तदुपयोगी दाँत नख और नस-पेशियाँ उसके शरीरमें निकल आती है। तृष्णा अपनी जरूरतको पूरा करने लायक शरीरको बनाती है, प्रहार करनेकी चाह सींग जमाती है। जीवनकी तृष्णा ही जीवनका मूल आधार है।

जड-चेतन, धातु-मनुष्यमें प्रकट होनेवाली यह आधारभूत तृष्णा न मनुष्य है और न कोई ज्ञानी ईश्वर। वह एक अंधी चेतनारहित शक्ति है, जो कि अस्तित्वकी चाह (=तृष्णा) रखती है। वह न देशसे सीमित है, न कालसे, किन्तु व्यक्तियोंमें देश-कालसे परिसीमित हो प्रकट होती है।

होनेकी तृष्णा, जीनेकी तृष्णा, दुनियाके सारे संघर्षों, दु:ख और बुराइयोंकी जड है। तृष्णा स्वभावसे ही बुरी है, उसको कभी तृप्त नहीं किया जा सकता। निरन्तर युद्ध और संघर्षकी यह दुनिया है, जिसमें भिन्न भिन्न प्रकारकी बने रहनेकी अंधी तृष्णाएं एक दूसरेके साथ लड रही है, यह दुनिया जिसमें छोटी मछलियाँ बडी मछलियों द्वारा खाई जा रही है। यह अच्छी नहीं, बुरी दुनिया, बल्कि जितना संभव हो सकता है, उतनी बुरी दुनिया है। जीवन अंधी चाहसे अधिक और कुछ नहीं है। जबतक उसकी तृप्ति नहीं होती, तबतक पीडा होती है, और जब उसकी तृप्ति कर दी जाती है, तो दूसरी पीडाकारक तृष्णा पैदा हो जाती है। तृष्णाओंको कभी सदाके लिए सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। हर एक फूलमें काँटे है। इस दु:खसे बचनेका एक ही रास्ता है, वह है तृष्णाका पूर्णतया त्याग (प्रहाण), और इसके लिए त्याग और तपस्याका जीवन चाहिए।

शोपनहारके दर्शनपर बौद्ध दर्शन[1]का बहुत प्रभाव पडा है। उसके दर्शनमें तृष्णाकी व्याख्या, और प्राधान्य उसी तरहसे पाया जाता है, जैसा

[1] देखो आगे "बुद्ध दर्शन" पृष्ठ ५१५,५१७

दुनियाको हटाकर झूठी दुनियाको गद्दीपर बिठाया गया। सच्चाईको खोजकर प्राप्त किया जाता है उसे गढा-बनाया नहीं जाता। किन्तु, दार्शनिकोने अपना वक्तव्य—सत्यका ढूँढना छोड़, उसे गढ़ना शुरू किया।"

(२) **महान् पुरुषोंकी जाति**—निटज़्श कान्ट, हेगल आदिके दर्शनको कितना गलत बतलाता था, यह मालूम हो चुका। वह वास्तविकतावादी था किन्तु इस दर्शनका बहुत ही खतरनाक उपयोग करता था। प्रभुता पानेके लिए ज्ञान एक हथियार है, जिसे प्रभुता पानेकी तृष्णा इस्तेमाल करती है। तृष्णा या संकल्प विश्वासपर आश्रित होता है। विश्वास झूठा है या सच्चा इसे हमें नहीं देखना चाहिए, हमे देखना है कि वह सार्थक है या निरर्थक, उपयोगी है या अनुपयोगी। प्रभुताका प्रेम निटज़्शके लिए सर्वोच्च उद्देश्य है, और महान पुरुष पैदा करना सर्वोच्च आदर्श है—एक महान् पुरुष नहीं महान पुरुषोंकी जाति, एक ऊँचे दर्जेकी जाति वीरोंकी जाति। निट्ज़शके इसी दर्शनके अनुसार आज हिटलर जर्मनोंको महान पुरुषोंकी जाति बना रहा है, ऐसी जाति बना रहा है जो दुनियाको विजय करे दुनियापर शासन करे और विश्वास रखे, कि वह शासन तथा विजय करनेके लिए पैदा हुई है। इसके लिए जो भी किया जाय निटज़्श उसे उचित ठहराता है। युद्ध, पीड़ा आफ्त निर्बलोंपर प्रहार करना अनुचित नहीं है। इसीलिए शान्तिसे युद्ध बेहतर है—बल्कि शान्तिको तो मृत्युका पूर्वलक्षण समझना चाहिए। हम इस दुनियामें अपने सुख और हर्षके लिए नहीं है। हमारे जीवनका और कोई अर्थ नहीं सिवाय इसके कि हम एक अगुल भी पीछे न हटें, या तो अपनेको ऊपर उठायें या खतम हो जायें। दया बहुत बुरी चीज है यह उस आदमीके लिए भी बुरी है जो इसे करके अपने लक्ष्यसे विचलित होता है, और उसके लिए भी जो कि दूसरेकी दया लेकर अपनेको दूसरोंकी नजरोंमे गिराता है। दया निर्बल और बलवान दोनोंको कमजोर करती है, यह जातिके जीवन रसको चूस लेती है।

जर्मनजाति रईस व्यक्तियोंको अधिक सुभीता होना चाहिए क्योंकि साधारण निम्न श्रेणीके आदमियोंसे उनके कर्तव्य ज्यादा और भारी है।

सर्वश्रेष्ठ आदमियोंको ही शासनका अधिकार होना चाहिए और सर्वश्रेष्ठ आदमी वही है, जो त्याग-मयाके पर ह, सुख खतरेमें पडने तथा दूसरों पर उसे डालनेके लिए हर वक्त तयार ह। आजके हिटलर, गोयरिंग, आदि इसी तरहके सर्वश्रेष्ठ आदमी हैं।

निट्शे जनतन्त्रता, समाजवाद, साम्यवाद, अराजकवाद सबको फजूल और असम्भव बतलाता है। वह कहता है कि यह जीवन जिस सिद्धान्त—योग्यतमका बँच रहना—पर कायम ह। जो उसके बरखिलाफ ह वे आदर्शके विरोधी ह। वे सबल व्यक्तियोंके विकासमें बाधा डालते ह। 'आज हमारे लिए सबसे बड़ा खतरा ह यही समानताकी हवा—शान्ति, सुख, दया आत्मत्याग, जगत्‌से घृणा जनानापन, अ विरोध, समाजवाद, साम्यवाद, समानता, धर्म, दर्शन और साइंस सभी जीवन सिद्धान्तके विरोधी ह, इसलिए उनसे कोई सबध नहीं रखना चाहिए।

निट्शे कहता ह महान् पुरुष उसी तरह दूसरोंको परास्त कर आगे बढ़ जायगे जैसे कि मानुषने बनमानुषको।

§ ३–अज्ञेयतावाद

स्पेन्सर (१८२० १९०३ ई०)—हर्बर्ट स्पेन्सर डर्बी (इगलण्ड)में एक मध्यमश्रेणीके परिवारमें पैदा हुआ था।

दर्शन—स्पेन्सर मानवज्ञानको इन्द्रियोंकी दुनिया तक ही सीमित रखना चाहता ह, किन्तु उस दुनियाके पीछे एक अज्ञेय दुनिया ह, इसे वह स्वीकार करता है। उसका कहना ह—हम सान्त और सापेक्ष वस्तुको ही जान सकते ह, परमतत्त्व, आदिकारण, अनन्तको जानना हमारी शक्तिसे बाहर ह। ज्ञान सापेक्ष होता ह, और परमतत्त्वको किसीसे तुलना या भेद करके बतलाया नहीं जा सकता। चूँकि हम परमतत्त्वके बारेमें कोई ज्ञान नहीं पैदा कर सकते इसलिए उसकी सत्तासे इन्कार करना भी ठीक नहीं ह। विज्ञान और धर्म दोनों इस बातपर एकमत हो सकते ह कि सभी दृश्य जगतके पीछे एक सत्ता परमतत्त्व ह। शक्तियाँ दो प्रकारकी होती ह—वह शक्ति

जिससे प्रकृति हमें अपनी सत्ताका परिचय देती है, वह शक्ति जिसमें वह काम करता हुआ दिखाई पड़ता है—अर्थात् सत्ता और क्रियाकी परिचायक शक्तियाँ।

(१) परमतत्त्व या अज्ञेय अपनको दो परस्पर विरोधी बड़े समुदायोंमें प्रकाशित करता है वह है अन्तर और बाह्य, आत्मा और अनात्मा, मन और भौतिक तत्त्व।

(२) विकासवाद—हमारा ज्ञान परमतत्त्वके भीतरी (मन) और बाहरी (जड़) प्रदर्शनतक ही सीमित है। दार्शनिकोंका काम है, कि उनमें जो साधारण प्रवृत्ति है सभी चीजोंका जो सार्वदेशिक नियम है, उसे ढूँढ निकालें। यही नियम है विकासका नियम। विकासके प्रवाहमें हम भिन्न भिन्न रूप देखते हैं—(१) एकीकरण[1], जैसे कि बादलों बालुकाके टीले, शरीर या समाजके निर्माणमें देखते हैं (२) विभाजन[2] या पिंडको उसकी परिस्थितिसे अलग कर, एक अलग भाग बनाना, तथा उसे एक सगठित पिंडका इस तरह अवयव बनाना जिसमें अवयव अलग होते भी एक दूसरेसे सबद्ध हो। विकास और विनाशमें अन्तर है। विनाशमें विभाजन होता है किन्तु सबद्धता नहीं। विकास भौतिक तत्त्वोंका एकीकरण और गतिका वितरण है, इसके विरुद्ध विनाश गतिको हजम करता और भौतिक तत्त्वोंका तितर बितर करता है।

जीवन है, बाहरी सबधके साथ भीतरी सबधका बराबर समन्वय स्थापित करते रहना। अत्यन्त पूर्ण जीवन वह है जिसमें बाहरी सबधोंके साथ भीतरी सबधोंका पूर्ण समन्वय हो।

(३) सामाजिक विचार—स्पेंसरके अनुसार बड़ी ही निम्न श्रेणीकी सामाजिक अवस्थामें ही सर्वशक्तिमान् समाजवादी राज्य स्वीकार किया जा सकता है। जब समाजका अधिक ऊँचा विकास हो जाता है तो इस तरहके राज्यकी जरूरत नहीं रहती, बल्कि वह प्रगतिमें बाधा

---

[1] Concentration [2] Differentiation

रखता है। राज्यका काम है भीतर शान्ति रखना और बाहरके आक्रमणसे बचाना। जब समाजवादी राज्य इससे आगे बढ़ता तथा मनुष्यके आर्थिक सामाजिक कामोंमें दखल देता है तो वह अपनी सीमाका उल्लंघन करता है और जिसमें भाग बढ़ व्यक्तियोंकी स्वतन्त्रतापर प्रहार करता है। स्पेंसर समाजवादके सख्त खिलाफ था, वह कहता था—वह आ रहा है किन्तु शासितके लिए यह भारी दुर्भाग्यकी बात होगी, और बहुत निकम्मा भी होगा।

§ ४–भौतिकवाद

उन्नीसवीं सदीके आरम्भमें विज्ञानवादियोंका बड़ा जोर रहा किन्तु मेयर, मूर हेल्महोल्ट्ज, डार्विन आदि वैज्ञानिकोंके आविष्कार भौतिकवादको अप्रत्यक्ष रूपसे बहुत प्रोत्साहित किया।

१—बुख़नेर् (१८२४-९९)का ग्रन्थ 'शक्ति और भौतिक तत्त्व' भौतिकवादका एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उसका सिद्धान्त है कि सभी शक्तियाँ गति हैं, और सभी चीजें गति और भौतिक तत्त्वोंसे आगत बनती हैं। गति और भौतिक तत्त्वको हम अलग समझ सकते हैं किन्तु अलग कर नहीं सकते। आत्मा या मन कोई चीज नहीं। जीवन विशेष परिस्थितिमें भौतिक-तत्त्वोंसे ही पैदा हो जाता है। मनकी क्रिया "बाहरसे आई उत्तेजनासे मस्तिष्ककी पीली मज्जाके सेलोंकी गति है।

मोलेशोट (१८२२-९३ ई०) फोग्ट (१८१७-९५ ई०), चोल्बे (१८१९-७३ ई०) इस सदीके भौतिकवादी दार्शनिक थे। विरोधी भी इस बातको कबूल करते हैं कि इस सदीके सभी भौतिकवादी दार्शनिक और साइंसवेत्ता मानवता और मानव प्रगतिके जबर्दस्त हामी थे।

२–लुड्विग् फ्यरबाख (१८०४–७२ ई०)

कान्टने अपनी 'शुद्ध बुद्धि' या सैद्धान्तिक तर्कसे किस प्रकार धर्म रूढ़ि, ईश्वरके चीथड़े चीथड़े उड़ा दिये, किन्तु अन्तमें भलमानुस बननेके

सार' बतलाया गया है। भूमिकामें मनुष्य और धर्मके मुख्य स्वभावोंकी विवेचना की गई है। मनुष्यका मुख्य स्वभाव उसकी अपनी जातिका यथार्थ मानव-स्वभाव है। यह अपना विषय है, दूसरा है उसका मानुष भाव और संबन्ध लगता है।

जो जिसके सारका अनुभव करता है वह मानव स्वभाव क्या है अथवा मनुष्यकी खास मानवता उसकी किसमें क्या है? बुद्धि, इच्छा, स्नेह।

"मनुष्यके अस्तित्वके आधार, उसके मनुष्य होनेके तौरपर उसकी सर्वोच्च शक्तियाँ हैं—समझना (बुद्धिकी क्रिया), इच्छा करना और प्रेम। मनुष्य है समझने, प्रेम करने और इच्छा करनेके लिए।

सिर्फ वही सच्चा, पूर्ण और दिव्य है, जो कि अपने लिए अस्तित्व रखता है। किन्तु ऐसा ही तो प्रेम है, ऐसी ही तो बुद्धि है, ऐसी ही तो इच्छा है। अतएव मानवमें मनुष्यके भीतर यह दिव्यत्रयी—बुद्धि, प्रेम, इच्छा—का समागम है। बुद्धि, प्रेम, इच्छा ऐसी शक्तियाँ नहीं हैं जिनपर मनुष्यका अधिकार है। उनके बिना मनुष्य कुछ नहीं है। वह जो कुछ है वह उनका ही बनाया है। यही उसके स्वभावकी बुनियादें हैं। वह न उन्हें (स्वाधीन तौरपर) रखता है, न उन्हें ऐसी सजीव विचारक नियामक शक्तियाँ—दिव्य परम शक्तियाँ—बनाता है जिनके कि प्रतिरोधमें वह टिक न सके।"[1]

फ्यरबाखने बतलाया—'मनुष्यके लिए परमतत्त्व (श्रेष्ठतम वस्तु) उसका अपना स्वभाव है। मनोभावसे जिस दिव्य स्वभावका पता लगता है, वह वस्तुतः और कुछ नहीं। वह है खुद अपने प्रति आनन्दविभोर हो प्रसन्नताकी भावना, अपने ही भीतरकी आनन्दमयता।' उसने धर्मके बारेमें कहा—जहाँ 'इन्द्रियोंके प्रत्यक्षमें विषय (=वस्तु)-संबंधी चेतनाको अपनी (आत्माकी) चेतनासे पृथक् किया जा सकता है, धर्ममें

---

[1] The Essence of Christianity, p. 52

विषय-चेतना और आत्म-चेतना एक बना दी जाती है।" वस्तुतः मनुष्यकी आत्मचेतनाको एक स्वतंत्र अस्तित्वके तौरपर आसमानपर चढाना, धर्म है। इसी तरह उसे पूजाकी वस्तु बनाया जाता है। फ्वेरबाखने इसे साफ करते हुए कहा—

'किसी मनुष्यके जैसे विचार, जैसी प्रवृत्तियाँ होती हैं वैसा ही उसका ईश्वर होता है। जितने मूल्यका मनुष्य होता है, उतना ही उसका ईश्वर होता है, उससे अधिक नहीं। ईश्वर-संबंधी चेतना (=चिंतन) आत्म (अपनी)-चेतना है, ईश्वर-संबंधी ज्ञान (उसका) आत्म (=अपना) ज्ञान है। उसके ईश्वरसे तू उस मनुष्यको जानता है और उस मनुष्यसे उसके ईश्वरको, दोनों (मनुष्य और उसका ईश्वर) एक हैं।'[1]

निरपेक्षतत्त्व मानवीय है इसकी आलोचना करनेके बाद वह फिर कहता है—

'धर्म (=मजहब)-संबंधी विकास ... विशेषपर इस तरह पाया जाता है कि मनुष्य ईश्वरको अधिकाधिक वर्जित करता है, और अधिकाधिक अपनेपर लगाता है। ईश्वरीय वाणीके संबंधमें यह बात खास तौरसे स्पष्ट है। पीछेके युग या संस्कृत जनोंके लिए जो बात प्रकृति या बुद्धिसे मिली होती है, वही बात पहिलेके युग या अ-संस्कृत जनोंको ईश्वर-प्रदत्त (मालूम होती) थी।

'इस्राइलियों (=यहूदी धर्मानुयायियों)के अनुसार ईसाई स्वतंत्र विचारवाला (=धर्मकी पाबंदीसे मुक्त) है। बातोंमें इस तरह परिवर्तन होता है। जो कल तक धर्म (=मजहब) था, आज वह वैसा नहीं रह गया है, जो आज नास्तिकवाद[2] है, कल वही धर्म होगा।'[3]

धर्मका वास्तविक सार क्या है, इसके बारेमें उसका कहना है—

'धर्म मनुष्यको अपने आपसे अलग कराता है, (इसके कारण) वह (मनुष्य) अपने सामने तथा अपने प्रतिवादीके तौरपर ईश्वरको ला रखता

---

[1] Ibid, p 12 [2] Atheism [3] वहीं, pp 31-32

है। ईश्वर वह है जो कि मनुष्य नहीं है—मनुष्य वह है, जो कि ईश्वर नहीं है।

ईश्वर और मनुष्य दो विरोधी छोर हैं ईश्वर पूर्णतया भावरूप वास्तविकताओंका योग है मनुष्य पूर्णतया अभावरूप, सभी अभावोंका योग है।

परन्तु धर्ममें मनुष्य अपने निजी अन्तर्हित स्वभावपर ध्यान करता है। इसलिए यह दिखलाना होगा, कि यह प्रतिवाद, यह ईश्वर और मनुष्य का विभाजन—जिसे लेकर कि धर्म (अपना काम) शुरू करता है—मनुष्यका उसके अपने स्वभावसे विभाजन करता है।[1]

अपने ग्रंथके दूसरे भागमें फ्वरबाखने धर्मके भूठ (अर्थात् मजहबा) सारपर विवेचन करते हुए कहा है—

धर्मके लिए संपूर्ण वास्तविक मनुष्य, प्रकृतिका वह भाग है, जोकि व्यावहारिक है जोकि निश्चय करता है, जो कि समझ-बूझकर (स्वीकार किये) लक्ष्योंके अनुसार काम करता है जो कि जगतको उसके अपने भीतर नहीं सोचता बल्कि सोचता है उन्हीं लक्ष्यों या आकांक्षाओंके सबंधसे। इसका परिणाम यह होता है कि जो कुछ व्यावहारिक चेतनाके पीछे छिपा रखा गया है तो भी जो सिद्धान्तका आवश्यक विषय है उसे मनुष्य और प्रकृतिके बाहर एवं खास वैयक्तिक सत्ताके भीतर ले जाता है।—यहाँ सिद्धान्त बहुत मौलिक और व्यापक अर्थमें लिया गया है, जिसमें वास्तविक (जगत-संबंधी) चिन्तन और अनुभव (=प्रयोग)के सिद्धान्त, तथा बुद्धि (=तर्क) और सादृश्के (सिद्धान्त) शामिल है।[2]

इसी कारणसे फ्वरबाख जोर देता है कि हम ईसाइयत (=धर्म)से ऊपर उठें। धर्म झूठ तौरसे मनुष्य और उसकी आवश्यक सत्ताके बीचके संबंधको उलट देता है और मनुष्यको खुद मानवीय स्वभावके सारको पूजने उसपर विश्वास करनेके लिए परामर्श देता है। ऐसी प्रवृत्तिका विरोध

[1] वहीं p 33 [2] वहीं p 187

करते हुए फ्वेरबाख बतलाता है कि मनुष्यकी उच्चतम सत्ता उसका ईश्वर वह स्वयं है।' "धर्मका आदि, मध्य और अन्त मानव है।' यहाँ फ्वेरबाख धर्मको एक खास अर्थमें प्रयुक्त करता है—मानवता धर्म। वह फिर कहता है—

"धर्म आत्म-चेतनाका प्रथम स्वरूप है। धर्म पवित्र (चीज) है, क्योंकि वह प्राथमिक चेतनाकी कथाएं है। किन्तु जो चीज धर्ममें प्रथम स्थान रखता है—अर्थात् ईश्वर— वह खुद और सत्यके अनुसार दूसरे (दर्जेका) है क्योंकि वह वस्तुरूपेण सोचा गया मनुष्यका स्वभाव मात्र है और जो चीज धर्मके लिए दूसरे दर्जेकी है—अर्थात मानव—उसे प्रथम बनाना और घोषित करना होगा। मानवके लिए प्रेम शाखा-स्थानीय प्रेम नहीं होना चाहिए उसे मूलस्थानीय होना चाहिए। यदि मानवीय स्वभाव मानवके लिए श्रेष्ठतम स्वभाव है तो व्यवहारतः, मनुष्यके प्रति मनुष्यके प्रेमको भी उच्चतम और प्रथम नियम बनाना चाहिए। मनुष्य मनुष्यके लिए ईश्वर है, यह महान् व्यावहारिक सिद्धान्त है यह धुरी है जिसपर कि जगतका इतिहास चक्कर काटता है।'[1]

इस उद्धरणसे मालूम होता है, कि फ्वेरबाख यद्यपि धर्मकी कड़ी दार्शनिक आलोचना करता है, किन्तु साथ ही आजके नास्तिकवादको बलका धर्म भी देखना चाहता है। वह भौतिकवादको धर्मके सिंहासनपर बठाना चाहता था।— मानव और पशुके बीचका वास्तविक भेद धर्मका आधार है। पशुओंमें धर्म नहीं है।[2]—यह भी इसी बातको बतलाता है।

फ्वेरबाख यद्यपि धर्म शब्दको खारिज नहीं करना चाहता था, किन्तु उसके विचार धर्म विरोधी तथा भौतिकवादके समर्थक थे—खासकर धर्मके दुर्गके भीतर पहुँचकर वह वैसा ही काम करना चाहते थे। भला यह धर्म तथा सत्ताधारियोंके पिट्ठुओंको कब पसन्द आ सकता था? प्रोफेसर

[1] वहीं, pp 270 71 [2] वहीं, p 1

ड्यूरिंगने एंगेल्सके खिलाफ कलम चलाई थी, जिसका कि उत्तर १८८८ ई० में एंगेल्सने अपने ग्रंथ 'लुडविग फ़्वरबाख़' में दिया।

३—मार्क्स् (१८१८-८३ ई०)

कार्ल मार्क्सका जन्म राइनलैण्डके ट्रेवज नगरमें हुआ था। उसने बौन बर्लिन और जेनाके विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा पाई। जेनामें उसने 'दिमोक्रितु और एपीकुरुके प्राकृतिक दर्शन' पर निबंध लिखा था, जिसपर उसे पी एच० डी० (दर्शनाचार्य)की उपाधि मिली। मार्क्स् भौतिकवादी बननेसे पहिले हेगल्के दर्शनका अनुयायी था। राजनीतिक, सामाजिक विचार उसके शुरू हीसे उग्र थे, इसलिए जर्मनीका कोई विश्वविद्यालय उसे अध्यापक क्यों रखने लगा। मार्क्सने पत्रकारके कामको अपनाया और २४ सालकी उम्रमें "राइनिश् त्साइटुङ्" पत्रका संपादक बना। किन्तु प्रुशियन सरकार उसे बहुत खतरनाक समझती थी जिसके कारण देश छोड़कर मार्क्सको विदेशोंमें मारा मारा फिरना पड़ा। पहिले वह पेरिसमें रहा, फिर ब्रूसेल्स (बेल्जियम)में। वहाँकी सरकारने भी प्रुशियाके नाराज़ होनेके डरसे मार्क्सको चले जानेको कहा और अन्तमें मार्क्स् १८४९ में लंदन चला गया। उसने बाकी जीवन वहीं बिताया।[1]

मार्क्स् दर्शनका विद्यार्थी विश्वविद्यालय द्वारा था, और खुद भी एक प्रथम श्रेणीका दार्शनिक था, किन्तु उसके सामाजिक और राजनीतिक विचार इतने उग्र अद्वितीय और दृढ़ थे, कि उसका नाम जितना एक समाजशास्त्र अर्थनीति और राजनीतिके महान् विचारकके तौरपर मशहूर है उतना दार्शनिकके तौरपर नहीं। इसमें एक कारण और भी है। कलाकी भाँति दर्शन भी बैठे-ठाले सम्पत्तिशालियोंके मनोरंजनका विषय है। वह जिस तरहका दर्शन चाहते हैं, मार्क्सका दर्शन वैसा नहीं है फिर मार्क्सको वह क्या दार्शनिकोंमें गिनने लगे ?

---

[1] विशेषके लिए देखो मेरा "मानव समाज।" ४०६-१०

मार्क्स्-दर्शनके बारेमें हम खास तौरसे 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' लिखने जा रहे हैं, इसलिए यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं है।

(१) मार्क्सीय दर्शनका विकास—आधुनिक युगके अभौतिकवादी यूरोपीय दर्शनोंका चरम विकास हेगलके दर्शनके रूपमें हुआ, और सारे मानव इतिहासके भौतिकवादी वस्तुवादी दर्शनोंका चरम विकास मार्क्सके दर्शनमें।

प्राचीन यूनानके युनिक दार्शनिक भौतिक तत्त्वको सभी वस्तुओंका मूल, और चेतनाके लिए भी पर्याप्त समझते थे, इसीलिए उन्हें भूतात्मवादी[1] कहा जाता था। स्तोइक भी भौतिक तत्त्वसे इन्कार नहीं करते थे किन्तु भौतिकवादका ज्यादा विकास दमोक्रितु और एपीकुरुने किया, जिनपर कि मार्क्सने विश्वविद्यालयके लिए अपना निबंध लिखा था। रोमके लुक्रेशियस्ने अपने समयमें भौतिकवादका झंडा नीचे गिरने नहीं दिया। मध्य युगमें विचार-स्वातन्त्र्यके लिए जैसे गुंजाइश नहीं थी, उसी तरह भौतिकवाद-के लिए भी अवकाश नहीं था। मध्ययुगसे बाहर निकलते ही हम यूरोपमें बारूच स्पिनोजाको देखते हैं, जो हैं तो विज्ञानवादी, किन्तु उसके विचार ज्यादातर यूनानी भूतात्मवादियोंकी तरहके हैं। इंगलैण्डमें टामस् हाब्स (१५८८-१६७९)ने भौतिकवादको जगाया। अठारहवीं सदीमें फ्रेंच क्रान्ति (१७९२ ई०)के पहिले जो विचार-स्वातन्त्र्यकी बाढ़ आई थी उसने दी देरो, हेल्वेशिया, दालबाश्[2], लामेत्रा, जैसे भौतिकवादी दार्शनिक पैदा किये। उन्नीसवीं सदीमें लुडविग फ्वेरबाखने भौतिकवादपर कलम उठाई थी। फ्वेरबाखका प्रभाव मार्क्सपर भी पड़ा था। मार्क्सने हेगलकी द्वन्द्वात्मक प्रक्रियासे मिलाकर भौतिकवादी दर्शनका पूर्णरूप हमारे सामने पेश किया, और साथ ही दर्शनको कल्पनाक्षेत्रमें बौद्धिक व्यायाम करनेवाला न बना उसका प्रयोग समाजशास्त्रमें किया।

---

[1] Hylozoist ह्युलो=हेयला, भूत, जोए=जीवन, आत्मा।

[2] इसका मुख्य ग्रंथ Systems de la Nature १७७० में प्रकाशित हुआ।

विज्ञानवादी धारा समाजशास्त्रमें बुध और शून्यवादी छोड़ और कुछ प्रकाश करती। यह समाजकी व्यवस्थामें किसी तरहका दखल देनेवाला जगत् ईश्वर परमात्मा अथवा निःश्वास, अथवा इसकी निःश्वासमात्र है सकती है। लेकिन भौतिकवाद इसके विचार इससे बिल्कुल उलटा है। मानव जातिका भौतिक ही मानव समाज—उसका आर्थिक, धार्मिक व्यवस्था—प्रकृतिका उपज है। यह प्रकृतिपर अवलंबित है और तभी तक अपना अस्तित्व कायम रख सकता है जबतक प्रकृति उसकी आवश्यकताओंको पूरा करती है। भौतिक उपज—खाना, कपड़ा आदि—तथा उस उपजके आधारपर ही मानव-समाज कायम है।

'महान मानसिक संस्कृति' भव्य विचार 'दिव्य चिन्तन'—चाहे कैसे ही बड़े-बड़े शब्दोंका इस्तेमाल कीजिए है वह सभी भौतिक उपजका परिणाम।

> ना कुछ देखा भाव भजनमें ना कुछ देखा पोथी में।
> कहत कबीर सुनो भाई साधो जो देखा सो रोटी में॥'

अथवा—

> भूखे भजन न होय गोपाला। लेहु अपनी कंठी माला॥

इसके लिए अवसर कब आया? जब कि प्रकृतिपर मनुष्यकी शक्ति ज्यादा बढ़ी, मनुष्यके श्रमकी उपजमें वृद्धि हुई, उसका सारा समय खाने पहननेकी चीजोंके संग्रहमें ही नहीं लगकर कुछ बचने लगा तथा निठ-ठाल व्यक्तिके लिए दूसरे भी काम करनेको तैयार हुए। जब इस तरह आदमी कामसे मुक्त रहता है, उसी समय वह सोचने, तर्क वितर्क करने योजना बनाने, भव्य संस्कृति 'ब्रह्मज्ञान' पैदा करनेमें समर्थ हो सकता है। और जगत्की भाँति समाजमें भी भौतिक तत्त्व या प्रकृति ही मनकी माँ है, मन प्रकृतिका जनक नहीं।

भौतिकवाद 'मानस-जीवन' की विशेषताओंकी व्याख्या जितना अच्छी तरह कर सकता है, विज्ञानवाद वैसा नहीं कर सकता, क्योंकि विज्ञानवाद समझता है, कि विचार या विज्ञानको पृथिवी और उसकी वस्तुओंसे कोई

सबध नही है, वह अपने भीतरसे उत्पन्न होता है। हेगल अपने 'दर्शन-इतिहास'में ऐसी ऊल-जलूल व्याख्या करता है—'यह अच्छा (=शिव), यह वार　ईश्वर है। ईश्वर जगत्पर शासन करता है। उसके सस्कारका स्वरूप, उसकी योजनाकी पूर्ति विश्व इतिहास है। बूढे ईश्वरने एक ही साथ बाबा आदम बीबी हौआ, अथवा ऋषि-मुनि, वश्याए हत्यारे, काढ़ी, पन्न किये, साथ ही भूख और दरिद्रता आतनाक और ताडीको पापिया के दडके लिए पैदा किया। उह खुद उस तरहका पैदा किया गया है, कि वह उन पापोको करें, और फिर न्यायका नाटय किया जाये और उन्हे दड दिया जाये, क्या मजाक है!! और वह भी एक दिनका नहीं अनादिसे अनन्त कालतक यह प्रहसन-लीला चलता रहेगी। यह है ईश्वर, जिसे कि विज्ञानवादी दार्शनिक पाठकोंसे नहीं खिड़कीके रास्ते द्रविड प्राणायाम द्वारा हमारे सामने रखना चाहते हैं।

यूनानी दार्शनिक पर्मेनिद—एलियातिकोंके नेता—की शिक्षा थी, कि हर एक चीज अचल अनादि, अनन्त, एकरस अपरिवर्तनशील अविभाज्य, अविनाशी है। जेनो (३३६-२४६ ई० पू०) ने बाणके दृष्टान्तको देकर सिद्ध करना चाहा, कि बाण हर क्षण किसी न किसी स्थानपर स्थिर है, इसलिए उसकी गति भ्रमके सिवा कुछ नही है। इस प्रकार जिसके चलनेको लोग आँखोंसे साफ देखते हैं, उसने उससे भी इन्कार कर स्थिरवादको दृढ करना चाहा। इसके विरुद्ध हेराक्लितुका हम यह बहुत देख चुके हैं, कि ससारमें कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो गतिशील न हो। 'हरएक चीज बह रही है, कोई चीज खडी नही है ("पान्त रेह')। उसी नदीमें हम दो बार नहीं उतर सकते, क्योंकि दूसरी बार उतरते वक्त वह दूसरी ही नदी होगी। उसके साथी क्रातिलने कहा, "उसी नदीमें दो बार उतरना असभव है क्योंकि नदी लगातार बदल रही है।" परमाणुवादी दमाक्रितुने गति—यानी परमाणुओंकी गति—को सभी वस्तुओंका आधार बतलाया। हेगलने गति तथा भवति (=अ-वर्तमानका वर्तमान होना)का समर्थन किया।

(७) दर्शन—और, परिवर्तनवादके अनुसार दोनोंका आधार है स्थायित्व इस गतिशीलता और परिवर्तनका मात्र है। यही दर्शनका स्थायी फल। किन्तु आज हमारे सामने—निर्जीव वस्तुओं और प्राणियों में, द. दृष्टियोंसे देखा जाता है [illegible] पहिले मानते थे कि उन्हें स्थिर अचल मानना—स्थिरवाद दूसरे शब्दोंमें और गतिका परिवर्तन (क्षणिक वाद—क्षण क्षण परिवर्तनवाद)। यद्यपि स्थिरतावादके खिलाफ हैं, इस जगत् [illegible] सोचा जाने लगा। यह [illegible] भी [illegible] कहलाता है। जिन तारोंको किसी समय अचल और स्थिर समझा जाता था आज [illegible] आरम्भ हुआ [illegible] कि यह [illegible] प्रति घण्टा [illegible] करते हैं। जिनके भीतर [illegible] परमाणु दौड़ रहे हैं, और उनके भी सबसे छोटे अंश एलेक्ट्रन परमाणु भीतर चक्कर काटते तथा स्थान बदलते [illegible] हैं।[1] पृथ्वी, पशु आदि सभी नहीं हैं [illegible] कि उन्हें ईश्वरने [illegible] बनाया था। आजके प्राणी [illegible] बहुत [illegible] आज यहाँ [illegible] जो [illegible] इतने [illegible] ऊँचे तथा एक पूरी मानवा—[illegible] बराबर लम्बे थे। [illegible] पहिले यह पृथिवी जिनकी थी आज [illegible] कोई [illegible] नहीं रह गया। उस समय न आदमी पैदा था, न [illegible] न उस बकरे जंगलोंमें छिपे भेड़ बकरी, गाय या [illegible] पैदा था। वानर नर-वानर और नर तो बहुत पीछे आये। सर्वशक्तिमान् [illegible] बेचारा सृष्टि बनाते वक्त इन्हें बनानेमें असमर्थ था। आज मनुष्य प्रयोग करके इस लायक हो गया है, कि वह [illegible] दूसरा [illegible], [illegible] गुलाबको पैदा कर उनकी नसलको जारी रख सकता है।

इस प्रकार [illegible] कोई [illegible] नहीं है कि विश्वमें कोई स्थिर वस्तु नहीं है। मैं जिस [illegible] कागजको चौकी बनाकर इस वक्त लिख रहा हूँ वह भी क्षण

---

[1] देखो "विश्वकी रूपरेखा।"

क्षण बदल रही है किन्तु बदलते जिन परमाणुओं एलक्ट्रानोंके रूपमें हो रहा है उन्हें हम आँखोंसे देख नहीं सकते। यदि हमारी आँखोंकी ताकत करोड़गुना होती है तो हम अपनी इस छोटीसी चौकी का उड़ते हुए सूक्ष्म कणोंका समूह मात्र देखते। ये कण बहुत धीरे-धीरे, और अलग अलग समय चौकी की सीमा पार करते हैं, इसीलिए चौकीको जीर्ण शीर्ण होकर टूटनेमें अभी देर लगेगी, शायद तबतक यहाँ देवलीमें रहकर लिखनेकी मुझे जरूरत नहीं रहेगी।

निरन्तर गतिशील भौतिकतत्त्व इस विश्वके मूल उपादान हैं। किसी वाह्य दृश्यको देखते वक्त हमको बाहरी दिखलावटी स्थिरताको नहीं लेना चाहिए हमें उसे उसके भीतरकी अवस्थामें देखना चाहिए। फिर हमें पता लग जायगा, कि गतिवाद विश्वका अपना दर्शन है। गतिवादको ही द्वन्द्ववाद भी कहते हैं।

(क) द्वन्द्ववाद[1]—हराक्लितु और हेगल—और बुद्धको भी ले लीजिये—गतिवाद, अनित्यतावाद, क्षणिकवादके आचार्य थे, दर्शनकी व्याख्या करते वक्त वे द्वन्द्ववादपर पहुँचे। हराक्लितुने कहा— विरोधिता (=द्वंद्व) सभी सुखोंकी माँ है।' हेगलने कहा 'विरोध वह शक्ति है, जो कि चीजोंको चालित करती है।' विरोध क्या है? पहिलीकी स्थितिमें गड़बड़ी पैदा करना। इसे द्वंद्ववाद इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस वादमें परिवर्तनका कारण वस्तुओं, सामाजिक संस्थाओंमें पारस्परिक विरोध या द्वन्द्वको मानते हैं। हेगलने द्वंद्ववादको सिर्फ विचारोंके क्षेत्र तक ही सीमित रखा किन्तु मार्क्सने इसे समाज और, उसकी संस्थाओं तथा दूसरी जगहोंमें भी एकसा लागू बतलाया। वाद प्रतिवाद संवादका दृष्टान्त हम दे चुके हैं।[2] द्वन्द्ववादके इन अवयवोंका उपयोग प्राणिविकासमें देखिए लंकाशायरमें सफेद रंगके तेलचट्टे जैसे फर्तिगे थे। वहाँ मिलें खड़ी हो जाती हैं, जिनके धुएँसे धरती, वृक्ष, मकान सभी काले रंगके हो जाते हैं। जितने तेलचट्टे अब भी

---

[1] Dialectic   [2] देखो "वैज्ञानिक भौतिकवाद" पृष्ठ १४

मार्क्सवादीका कहना है, आप किसी चीजको जानते हैं, तो उसमें विचार जरूर शामिल रहता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप लाल और आँच मात्र ही जानते हैं। जानना होना ही असंभव हो जायगा, यदि वस्तुकी सत्तासे आप इन्कार करते हैं। जिस वक्त आप ज्ञानके अस्तित्वको स्वीकार करते हैं, उसी वक्त ज्ञाता और ज्ञेयको भी स्वीकार कर लेते हैं, बिना जानने वाले और जानी जानेवाली चीजके जानना कैसा? बिना उसके मतलब हम ख्यालमात्रको छोड़कर अस्तित्वके जानकार नहीं होते, फिर यह अर्थ कैसे होता है कि आप सिर्फ अपने विचारोंके ही जानकार हैं। इन्द्रिय और विषयका जब सन्निकर्ष (=योग) होता है, तो पहिले-पहिल हमें वस्तुका अस्तित्वमात्र ज्ञान होता है—प्रत्यक्षको दिङ्नाग और धर्मकीर्तिने भी कल्पना अपोढ (=कल्पनासे रहित) माना है। लाल रंग और आँच तो पीछेकी कल्पना है, जिसे वस्तुतः प्रत्यक्षमें गिनना ही नहीं चाहिए प्रत्यक्ष—साक्षात्कार ज्ञानका जनक—हम पहिले-पहिल वस्तुके अस्तित्वका ज्ञान कराता है। यह ठीक है कि हम विषयको पूर्णतया नहीं जानते उसके बारेमें सब कुछ नहीं जानते, लेकिन उसके अस्तित्वको अच्छी तरह जानते हैं इसमें तो शककी गुंजाइश नहीं। इन्द्रिय-साक्षात्कार हमें थोड़ासा वस्तुके बारेमें बतलाता है और जो बतलाता है वह सापेक्ष होता है। विज्ञानवादमें यदि कोई सचाई हो सकती है तो यही सापेक्षता है जो कि सभी ज्ञानोंपर लागू है।

प्रकृति बाह्य पदार्थके तौरपर मौजूद है यह निश्चित है। लेकिन वह पूर्णरूपेण क्या है, यह उसका रहस्य है, जिसका खोलना उसके स्वभावमें नहीं है। हमें वह परिस्थितियोंको बतलाती है उन परिस्थितियोंके रूपमें हम प्रकृतिको देखते हैं। सभी प्रत्यक्ष विशेष या वैयक्तिक प्रत्यक्ष हैं जो कि खास परिस्थितियोंमें होता है। शुद्ध प्रत्यक्ष—विशेष विषय और परिस्थिति से रहित—कभी नहीं होता। हम सदा वस्तुओंके विशेष रूपको ही प्रत्यक्ष करते हैं। हम सीधी छड़ीको पानीमें खड़ा करनेपर वक्र (टेढ़ी मेढ़ी) छड़ी या लाल प्रकाशमें प्रकाशित देखते हैं। यह वक्रता, छोटापन

और खाली सिर्फ छड़ीका रूप रहा है, बल्कि उस परिस्थितिमें दबी गई छड़ीके रूपमें है।

अतएव ज्ञान वास्तविकताका आभास है, किन्तु आभासमात्र नहीं है। वह दृष्टिकोण और ज्ञानके प्रयोजन—इसलिए ऐतिहासिक विकासकी खास अवस्था—से बिल्कुल सापेक्ष है, देश-कालकी परिस्थितियोंसे हटा कर वस्तुका ज्ञान नहीं हो सकता। 'प्रकृतिका ज्ञान होता ही नहीं", और "वह सदा सापेक्ष ही होता है" इसमें उतना ही अन्तर है जितना 'हाँ" और "नहीं" में। मार्क्सवाद सापेक्ष मानकर बिल्कुल सम्भव मानता है जिससे साइंसकी गवेषणाओंका समर्थन होता है, विज्ञानवाद वस्तुकी सत्तासे ही इन्कार करके ज्ञानको असम्भव बना देता है, जिससे साइंसको भी वह त्याज्य ठहराता है।

(ग) भौतिक वाद और मन—जब हम विज्ञानवादके गंधर्व-नगरसे नीचे उतरकर जरा वास्तविक जगतमें आते हैं, तो फिर क्या देखते हैं—भौतिक तत्त्व, प्राकृतिक जगत् मनकी उपज नहीं है, बल्कि भौतिक तत्त्वकी उपज मन है। पृथिवी प्रायः दो अरब वर्ष पुरानी है। जीव कुछ करोड़ वर्ष पुराने, लेकिन उन जीवोंके पास 'जगत् बनानेवाला' मन नहीं था। मनुष्यकी उत्पत्ति ज्यादासे ज्यादा १० लाख वर्ष तक ले जाई जा सकती है, किन्तु जावा, चीन या नेअन्डर्थल मानवके पास भी ऐसा मन नहीं था जो 'विश्व' को बनाता। 'विश्व बनानेवाला' मन सिर्फ पिछले ढाई हजार वर्षसे दार्शनिकोंकी फिक्र में पैदा हुआ। गोया दो अरब वर्षसे कुछ लाख वर्ष पहिले तक किसी तरहके मनका पता नहीं था और इस सारे समयमें भौतिक तत्त्व मौजूद थे। फिर इस हालके बच्चे मनको भौतिक तत्त्वोंका जनक कहना क्या बेटेको बापका बाप बनाना नहीं है? मूल भौतिक तत्त्वोंसे परमाणु, अणु, अणु-गुच्छक, फिर आरम्भिक निर्जीव क्षुद्र पिंड तथा जीव-अजीवके बीचके विरस[1] और बक्टीरिया जैसे एक सेलवाले अत्यन्त सूक्ष्म सत्त्व बने। एक सेलवाले

[1] Virus

प्राणियोंके क्रमशः विकास होते-होते अस्थि-रहित, अस्थिधारी [illegible] जीव, यहाँ तक कि बुद्धि-ज्ञान वाले पहिले मनुष्यका मौजूद हुआ। यह [illegible] सिलसिला यह भी बतलाता, कि आरम्भमें मन था, उसने शायद कि [illegible] हो गये, और उसकी [illegible] जगत [illegible] । सारा [illegible] तथा नृतत्त्वशास्त्र एवं विकास सिद्धान्त हमें यही बतलाते हैं, कि भौतिक [illegible] प्राणोंके पहिले मौजूद थे प्राणी बाहरी परिस्थितियोंसे [illegible] है। मन प्राणी [illegible] भी विकासका परिणाम उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार साफ है कि मन भौति[illegible] तत्त्वोंकी उपज है।

उपज होनेसे यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि मन भौति[illegible] तत्त्व है। भौतिक तत्त्व जब मिलते हैं, तो जिन परिस्थितियोंमें सम्ब[illegible] विकास (=द्वंद्व) शुरू होता [illegible] द्वन्द्वात्मक परिवर्तन—गुणात्मक परिवर्तन—होता है। गुणात्मक-परिवर्तन हो जानेके बाद हम [illegible] कहा जाय नहीं कह सकते क्योंकि गुणात्मक-परिवर्तन एक बिल्कु[illegible] नई वस्तु हमारे सामने उपस्थित करता है। मन इसी तरह भौतिकतत्त्वोंका गुणात्मक-परिवर्तन है। यह भौतिक तत्त्वोंसे पैदा हुआ किन्तु भौतिक तत्त्व नहीं है।

त्रयोदश अध्याय

बीसवीं सदीके दार्शनिक

बीसवीं सदीमें साइंसकी प्रगति और भी तेज हुई। मनुष्य हवामें उसी तरह उड़ने लगा है जिस तरह अबतक वह समुद्रमें 'तैर' रहा था। उसके कानकी शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वह हजारों मीलों दूरके शब्दों—खबरों गानों—को सुनता है। उसकी आँखकी ज्योति इतनी बढ़ रही है, कि हजारों मील दूरके दृश्य भी उसके सामने आने लगे, यद्यपि इसमें अभी और विकासकी जरूरत है। पिछली शताब्दीने जिन शक्लों और स्वरोंको अचल पत्थरकी मूर्ति तथा गुफाकी प्रतिध्वनिकी भाँति हमारे पास पहुँचाया था, अब हम उन्हें अपने सामने सजीव-सा चलते फिरते, बोलते-गाते देखते हैं। अभी हम इसे प्रतिचित्र और प्रतिध्वनिके रूपमें देख रहे हैं, लेकिन उस समयका भी आरंभ हो गया है जिसमें आमनेसामने रक्त-मांसके रूपको गंध अपने सामने सजीवता प्रदान करते देखेंगे। यह सभी बातें कुछ शताब्दियों पहिले दैवी चमत्कार, अमानुषिक सिद्धियाँ समझी जाती थीं।

मनुष्यका एक ज्ञान-क्षेत्र है, और एक अज्ञान-क्षेत्र। उसका अज्ञानक्षेत्र जब बहुत ज्यादा था, तब ईश्वर, धर्मकी बहुत गुंजाइश थी। ज्ञान-क्षेत्रने गढ़ोंका जब शासन छीनकर अपना क्षेत्र बनाना चाहा, तो अज्ञान-क्षेत्रके वासियों—धर्म और ईश्वरकी स्थिति खतरेमें पड़ गई। उस वक्त अज्ञान-राज्यकी हिमायतकेलिए "दर्शन"का खास तौरसे जन्म हुआ। उसका मुख्य काम था, खुली आँखोंमें धूल झोंकना—नामसे बिल्कुल उल्टा जो बात दर्शनने सातवीं-छठी सदीमें अपने जन्मके समयकी थी, वही उसने अब

§१–ईश्वरवाद

१–ह्वाइटहेड् (जन्म १८६१ ई०)

ए० एन्० ह्वाइटहेड् इंगलैंडके मध्यम श्रेणीके एवं धर्म विश्वासी गणितज्ञ हैं।

दर्शन—ह्वाइटहेडको इस बातका बहुत क्षोभ है कि प्रत्यक्ष करनेमें इतनी समृद्ध प्रकृति 'शब्दहीन, गंधहीन, वर्णहीन व्यर्थ ही निरन्तर दौड़ते रहनेवाला भौतिकतत्त्व' बना दी गई। ह्वाइटहेड अपने दर्शन—शरीरवाद—द्वारा प्रकृतिको इस अधःपतनसे बचाना चाहता है। उसका दर्शन काय-गुणों—शब्द, गंध, वर्ण आदि—को ही नहीं बल्कि मनुष्यके कला, आचार, धर्म संबंधी जीवनसे संबंध रखनेवाली बातोंका समर्थन करना चाहता है, साथ ही अपनेको विज्ञानका समर्थक भी जतलाना चाहता है। हमारे तजर्बे (=अनुभव) सदा साकार घटनाओंके होते हैं। यह घटनाएँ अलग अलग नहीं बल्कि एक शरीरके अनेक अवयवोंकी भाँति हैं। शरीर अपने स्वभावसे सारे अवयव तत्त्व या घटनाओंको प्रभावित करता है। ह्वाइटहेड् यहाँ शरीरको जिस अर्थमें प्रयुक्त करता है वह सार वस्तु-सत्त्व—वास्तविकता—का वाचक है और वह सिर्फ चेतन प्राणी शरीर तक ही सीमित नहीं है। सारी प्रकृतिका यही मूल स्वरूप है। ह्वाइटहेडके अनुसार भौतिकशास्त्र अतिसूक्ष्म "शरीर" (एलक्ट्रन परमाणु आदि)का अध्ययन करता है, और प्राणिशास्त्र बड़े शरीरका। ह्वाइटहेड प्राणी अप्राणीके ही नहीं मन और कायाके भेदको भी नहीं मानता। मन शरीरका ही एक खास घटना-प्रबंध है और उसका प्रयोजन है उच्च क्रियाओंका संपादन करना। भौतिकशास्त्रकी आधुनिक प्रगतिको लेते हुए ह्वाइटहेड मन या कायाको वस्तु नहीं घटनाओं—बदलती हुई वास्तविकता—को विश्वका सूक्ष्मतम अवयव या इकाई मानता है। इकाइयों और उनके पारस्परिक संबंधका योग विश्व है। बड़ी घटनाएँ छोटी घटनाओंकी अवयवी

सर्वत्र उपस्थितिके अनुभव—की जरूरत है।

यदि आत्मिक जीवन स्थिर है। धर्म मानव जीवनको आत्मिक जीवनके उच्च शिखरपर ले जाता है, उसके बिना मनुष्यका अस्तित्व खोखला मालूम होता है। यूकन् इस प्रकार भौतिकवादके प्रभावको हटाकर दर्शनको ईश्वर और धर्मका हस्तावलम्ब देना चाहता।

§ ७—अन्-उभयवाद

१ बेर्गसाँ (१८५९-१९४१ ई०)

फ्रेंच दार्शनिक था। हाल (१९४० ई०) में जर्मनी द्वारा फ्रांसके पराजित होनेके बाद उसकी मृत्यु हुई।

बेर्गसाँकी कोशिश है कि प्रकृति और प्राकृतिक नियमोंका इन्कार किये बिना विश्वकी आध्यात्मिकताको सिद्ध किया जाय। इसके दर्शनकी विशेषता है परिवर्त्तन (=क्षणिकता) क्रिया, स्वतंत्रता सर्जनात्मक विकास[1], स्थिति,[2] आत्मानुभूति। बेर्गसाँके दर्शनको आमतौरसे 'परिवर्तनका दर्शन" या "सर्जनात्मक विकास' कहते हैं।

(१) तत्त्व—बेर्गसाँके अनुसार असली तत्त्व न भौतिक है, न मन (=विज्ञान) बल्कि इन दोनोंसे भिन्न=अन्-उभय तत्त्व है, जिससे ही भौतिक तत्त्व तथा मन दोनों उपजते हैं। यह मूल तत्त्व सदा परिवर्तनशील घटना-प्रवाह लहराता जीवन सदा नये रूपकी ओर बढ़ रहा जीवन है।

(२) स्थिति—बेर्गसाँ स्थितिको मानता है किन्तु स्थिरताकी स्थितिको नहीं बल्कि प्रवाहकी स्थितिको। स्थिति अतीतका लगातार प्रगति है जो कि भविष्यके रूपमें बदल रहा है और जैसे जैसे वह आगे बढ़ रही है वैसे ही-वैसे उसका आकार विशाल होता जा रहा है।' इस प्रकार बेर्गसाँ

---

[1] Creative evolution [2] Duration

यहाँ सामग्वाह "स्थिति" शब्दको घसीट रहा है, क्योंकि स्थिति परिवर्तनसे बिल्कुल उलटी चीज है। वह और कहता है—'हमने अपने अत्यन्त बाल्यसे जो कुछ अनुभव किया है, सोचा और चाहा है वह यहाँ हमारे वर्तमानके ऊपर भुक रहा है और वर्तमान जिसमें तुरन्त मिलनेवाला है। जन्मसे लेकर—नहीं बल्कि जन्मसे भी पहिलेसे क्योंकि अनुवंशिकता भी हमारे साथ है—जो कुछ जीवनमें हमने किया है, उस इतिहासके सारके अतिरिक्त हम और हमारा स्वभाव और है ही क्या? इसमें सन्देह नहीं कि हम अपने भूतके बहुत छोटेसे भागको सोच सकते हैं किन्तु हमारी चाह, संकल्प, क्रिया अपने सारे भूतको लेकर होती है।' बर्गसाँ इसे स्थिति कहता है। यह सारे अतीतका वर्तमानमें सारावर्षण है। स्थितिके कारण सिर्फ वास्तविक और निरन्तर परिवर्तन ही नहीं होता, बल्कि प्रत्येक नया परिवर्तन, कुछ ताजगी कुछ नवीनता लिए होता है। इसीलिए इस सृजनात्मक विकास कहते हैं। आध्यात्मिकता (=आत्मतत्त्व) इसी प्रकारकी स्मृतिरूप रहता है वह इस प्रकारकी निरन्तर क्रिया है जिसमें कि अतीत वर्तमानमें व्याप्त है। कभी-कभी इस क्रियामें शिथिलता हो जाती है जिससे भौतिक तत्त्व या प्रकृति पैदा होती है। चेतना (=विज्ञान) बाह्यता की अपेक्षाके बिना व्यापकता कहते हैं और प्रकृति बिना व्यापककी बाह्यताको कहते हैं।

जीवनके विकासकी तीन भिन्न भिन्न तथा स्वतन्त्र दिशायें हैं—वानस्पतिक पशुबुद्धिक बुद्धिक जो कि क्रमशः वनस्पति पशु और मनुष्यमें पाई जाती है।

(३) **चेतना**—चेतना या आत्मिकताको बर्गसाँ स्मृतिसे संबद्ध मानता है प्रत्यक्षीकरणसे नहीं। चेतना मस्तिष्ककी क्रिया नहीं बल्कि मस्तिष्कको वह औजारके तौरपर इस्तेमाल करता है। 'कोट और खूँटी, जिसपर कि यह टँगा है दोनोंका घनिष्ट संबंध है क्योंकि यदि खूँटीको उखाड़ दें तो कोट गिर जायगा, किन्तु इससे क्या यह हम कह सकते हैं कि खूँटीकी शकल जैसी होती है वैसी ही कोटकी शकल होती है?'

कहेगा। दार्शनिकके लिए जरूरी है, कि वह सख्या भाषामें अपने विचार प्रकट करे, जिसमें उसकी गिनती रात दिन दोनोंमें हो सके। रसलके दर्शनको वह खुद "तार्किक परमाणुवाद", 'अनुभयवादी अद्वैतवाद' 'द्वैतवाद', वस्तुवाद' कहता है।

रसल कही कही हमारे सारे अनुभवोका विश्लेषण प्रकृतिके मूलतत्त्व परमाणुओके रूपमें करता है। दर्शन साइसका अनुयायी हो सकता है, साइसकी जगह लेनेका उसका अधिकार नही है। वस्तुओ, घटनाओंका बहुत्व विज्ञान और व्यवहार-बुद्धि दोनोसे सिद्ध है इसलिए दर्शनको उनसे इकारी नही होना चाहिए। किन्तु इसका मूल क्या है, इसपर विचार करते हुए रसल कहता है—विज्ञानवादका सारे बाहरी बहुत्वोको मानसिक कहना ठीक नही क्योकि यह साइसका अपलाप है। साथही भौतिकवादके भी वह विरुद्ध है। मूलतत्त्व तरग—शक्ति या केवल किरण प्रसरण[1] नही है। मूलतत्त्व न विज्ञान है, न भौतिक तत्त्व, वह दोनोसे अलग "अन् उभयतत्त्व' है, लेकिन अनुभयतत्त्व" एक नही घटनाओकी एक किस्म है। या तत्त्वोकी एक जाति है। "जगत अनेक शायद परिसख्यात, या असख्य तत्त्वोका समूह है। ये तत्त्व एक दूसरेके साथ विभिन्न सबध रखते है, और शायद उनके गुणोमें भी भेद है। इन तत्त्वोमेंसे प्रत्येकको घटना कहा जा सकता है।'

रसलके अनुसार 'दर्शन जीवनके लक्ष्यको निश्चित नही कर सकता, किन्तु वह दुराग्रहो, सकीर्ण दृष्टिके अनर्थोसे हमें बचा सकता है।'

§ ३ भौतिकवाद

बीसवी सदीका समाजवाद जैसे मार्क्सका समाजवाद है, वैसे ही बीसवी सदीका भौतिकवाद मार्क्सीय भौतिकवाद है। मार्क्सवादके कहनेसे यह नही समझना चाहिए कि वह स्थिर और अचल एकरस

---

[1] Radiation

है। विकास मार्क्सवादका मूल सूत्र है इसलिए मार्क्सवादीय भौतिक दर्शन का भी विकास हुआ है। मार्क्सवाद भौतिक दर्शनके बारेमें हम आगे अपने वर्तमान भौतिकवाद में सविस्तार लिखने जा रहे हैं। इसलिए उसे यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं।

§४–द्वैतवाद

बीसवीं सदीमें नई-नई गवेषणाओं साइंसकी प्रतिष्ठा और प्रभावको और बढ़ा दिया इसीलिए केवल बुद्धिवादी दार्शनिकोंकी जगह आज प्रयोग-वादियोंकी प्रधानता ज्यादा है।

विलियम् जेम्स (१८४२-१९१० ई०)—विलियम् जेम्सका जन्म अमेरिकाके मध्यमवर्गीय परिवारमें हुआ था। दर्शन और मनोविज्ञानका वह प्रोफ़ेसर रहा। जिस तरह बुद्धके तृष्णावाद(=क्षय)वादने शोपनहारके दर्शनको प्रभावित किया उसी तरह बुद्धके अनात्मवादी मनोविज्ञानने जेम्स पर प्रभाव डाला था।

जेम्सको भौतिकवादी तथा विज्ञानवादी दोनों प्रकारके अद्वैतवाद पसन्द न थे। भौतिक अद्वैतवादके विरुद्ध उसका कहना था कि यदि सभी चीज—मनुष्य भी—आदिम नीहारिकाओं या अतिसूक्ष्म तत्वोंकी उपज मात्र है, तो मनुष्यकी आचारिक जिम्मेवारी(=दायित्व), कर्म-स्वातन्त्र्य, वैयक्तिक प्रयत्न और महत्त्वाकांक्षाएं बेकार है। यह स्पष्ट है कि भौतिकवादका विरोध करते वक्त उसके सामने सिर्फ यान्त्रिक भौतिकवाद था। वैज्ञानिक भौतिक वाद जिस प्रकार गुणात्मक परिवर्तन द्वारा बिल्कुल नवीन वस्तुके उत्पादको मानता है और परिस्थितिके अनुसार बदलती किन्तु और भी बढ़ती जिम्मे वारियोंको अज्ञान और भयके आधारपर नहीं बल्कि और भी ऊँचे तलपर—ज्ञानके प्रकाशमें—मनुष्य होनेका नाता मानता है और उसकेलिए बड़ीसे बड़ी कुर्बानी करनेकेलिए आदमीको तैयार करता है इससे स्पष्ट है, कि वह 'आचारिक जिम्मेवारियों की उपेक्षा नहीं करता, किन्तु आचारिक जिम्मेवारियों से यदि जेम्सका अभिप्राय पुराने आर्थिक स्वार्थों और

उसपर आश्रित समाजके ढाँचेको कायम रखनेमें मतलब है, तो निश्चय ही वह इस तरहकी जिम्मेवारीको उठानेकेलिए तैयार नहीं है। शायद, जेम्सको यदि पिछला महायुद्ध—और खासकर वर्तमान युद्ध—देखनेका मौका मिला होता, तो वह अच्छी तरह समझ लेता कि सामाजिक स्वार्थकी अवहेलना करते अन्धी वैयक्तिक लिप्सा—जिसे कर्म-स्वातंत्र्य, प्रयत्न महत्वाकांक्षा आदि जो भी नाम दिया जावे—मानवको कितना नीचे ले जा सकती है।

(१) प्रभाववाद[1]—जेम्सके दिलमें साइंसके प्रयत्नों उसकी गवेषणाओं और सच्चाइयोंके प्रति बहुत सम्मान था, इसलिए वह कोरे मस्तिष्ककी कल्पनाओं या विज्ञानवादको महत्त्व नहीं दे सकता था। उसका कहना था किसी वाद, विश्वास या सिद्धान्तकी सच्चाईकी कसौटी वह प्रभाव या व्यावहारिक परिणाम जो हमपर या जगतपर पड़ता दिखाई पड़ता है। **प्रभावपर जोर देनेके ही कारण जेम्सके दर्शनको प्रभाववाद**[1] भी कहते हैं।

(२) ज्ञान—ज्ञान एक साधन है, वह जीवनकेलिए है, जीवन ज्ञानकेलिए नहीं है। सच्चा ज्ञान या विचार वह है जिसे हम हजम कर सकें, यथार्थ साबित कर सकें, और जिसकी परीक्षा कर सकें।

यह कहना ठीक नहीं है कि जो कुछ बुद्धिपूर्वक है, वह वस्तु-सत है। जो कुछ **प्रयोग या अनुभवमें सिद्ध** है, वह वस्तु-सत् है। अनुभवमें हम सिर्फ उसी अनुभवको लेना चाहिए, जो कि कल्पनासे मिश्रित नहीं किया[2] गया जो शुद्धता और मौलिक निर्दोषितासे युक्त है। वस्तु-सत् वह शुद्ध अनुभव है जो मनुष्यकी कल्पनासे बिल्कुल स्वतंत्र है, उसकी व्याख्या बहुत मुश्किल है। यह वह वस्तु है, जो कि अभी-अभी अनुभवमें घुस रही है किन्तु अभी उसका नामकरण नहीं हुआ है अथवा यह अनुभवमें कल्पनारहित[2] ऐसी आदिम उपस्थिति है, जिसके बारेमें अभी कोई श्रद्धा

---

[1] Pragmatism

[2] "कल्पना अपोढ"—दिङ्नाग और धर्मकीर्ति।

यह हमारी चतना-सबधी गुत्थियाको सुलभा नही सकता, बल्कि बुराइय (=पाप)के सबधकी एक नई समस्या खा खडा करता ह—अद्वत शुद्धतत्त्वा आखिर जीवनकी अशुद्धताएं, शुद्ध अद्वत विरुप्रम विषमताएं—क्रूरता कहाँसे आ पडी ? अद्वतवाद इस प्रश्नके हल करनम असमथ ह, कि कूटस्थ एकरस अद्वत तत्त्वम परिवत्तन क्या होता है। सबसे भारी दोष अद्वत वादमें ह, उसका भाग्यवादी (=नियतिवादी) होना—वह एक है, उसकी एक इच्छा ह वह एकरस ह इसलिए उसकी इच्छा—भविष्य—नियत है। इसके विरुद्ध द्वतवाद प्रत्यक्षसिद्ध घटनाके प्रवाहकी सत्ताको स्वीकार करता ह उसकी तथता (=जसा-ह-वसेपन)का समथक ह और कार्य-कारण सबध(=परिवत्तन) या इच्छा-स्वातत्र्य (=कम-स्वातत्र्य)की पूणतया सगत व्याख्या करता ह—द्वतवादमें परिवत्तन नवीनताके लिए स्थान ह।

(६) ईश्वर—जम्स भी उन्नीसवी सदीके कितने ही उन दार्शनिकोंमें, जो अधिकारारूढ-वगसे भयभीत दार्शनिक ह, जो एक वक्त सत्यसे प्रेरित होकर बहुत आग बढ जात ह, फिर पीछे छूट गय अपन सहकर्मियोंकी उठती अँगुलियाको दखकर किन्तु, परन्तु करन लगते ह। जम्सने काटके वस्तु अपने भीतर स्पेन्सरके अज्ञय हगलके तत्त्वको इन्कार करनम तो पहिल साहस दिखलाया, किन्तु फिर भय खान लगा कि कही सभ्य" समाज उसे नास्तिक अनीश्वरवादी न समझ ले। इसलिए उसने कहना शुरू किया—ईश्वर विश्वका एक अग ह वह सहानुभूति रखनेवाला शक्तिशाली मददगार है तथा महान सहचर है। वह हमार ही स्वभावका एक चेतन, आचार-परायण व्यक्तित्वयुक्त सत्ता ह, उसके साथ हमारा समागम हो सकता ह, जैसा कि कुछ अनुभव(यकायक भगवानसे वार्तालाप, या श्रद्धासे रोगमुक्ति) सिद्ध करते ह।—तो भी यह ईश्वरवादी मान्यताए पूणतया सिद्ध नही की जा सकती लकिन यही बात किसी दर्शनके बारमें भी कही जा सकती ह।—किसी दर्शनको पूणतया सिद्ध नहीं किया जा सकता, प्रत्यक दशन श्रद्धा करनेकी चाहपर निभर ह। श्रद्धाका सार

उत्तरार्ध

४—भारतीय दर्शन

४ भारतीय दर्शन

चतुर्दश अध्याय

प्राचीन ब्राह्मण-दर्शन (१०००–६०० ई० पू०)

हम बतला चुके हैं कि दर्शन मानव मस्तिष्कके बहुत पीछेकी उपज है। यूरोपमें दर्शनका आरंभ छठी सदी ईसा पूर्वसे होता है। भारतीय दर्शनका आरंभ-समय भी करीब-करीब यही है, यद्यपि उसकी स्वप्न चेतना वेदके सबसे पिछले मंत्रोंमें मिलती है, जो ईसा पूर्व दसवीं सदीके के आस पास बनते रहे।

प्राकृतिक मानव जब अपने अज्ञान एवं भयका कारण तथा सहारा ढूँढने लगा, तो वह देवताओं और धर्म तक पहुँचा। जब सीधे-सादे धर्म-देवता-संबंधी विश्वास उसकी विकसित बुद्धिको सन्तुष्ट करनेमें असमर्थ होने लगे, तो उसकी उड़ान दर्शनकी ओर हुई। प्राकृतिक मानवको यात्राके आरंभसे धर्म तक पहुँचनेमें भी लाखों वर्ष लगे थे, जिससे मालूम होता है कि मनुष्यकी सहज बुद्धि प्रकृतिके साथ-साथ रहना ज्यादा पसन्द करती है। शायद धर्म और दर्शनको उतनी सफलता न हुई होती, यदि मानव [illegible] अपने स्वार्थोंके कारण वर्गोंमें विभक्त न हुआ होता। वर्ग-स्वार्थ [illegible] परिवर्तनशीलता द्वारा परिचालित सामाजिक परिवर्तनमें [illegible] रहता है, इसलिए उसकी कोशिश होती है कि परिवर्तित [illegible] को अक्षुण्ण रखे। इन्हीं कारणोंसे पितृसत्ताक समाजने [illegible] याद रक्खी और प्राकृतिक शक्तियाँ एवं मृत-जीवित [illegible] उठाकर उसे वैयक्तिक देवताओं और भूतोंके रूपमें [illegible]

गया, आज वह चार हजार वर्ष तककी पुरानी बेवकूफियोंका एक अच्छा म्यूजियम है, जब कि यूनानी समाज परिस्थितिके अनुसार बदलता रहा—आज जहाँ नव्य शिक्षित भारतीय भी वेद और उपनिषदके ऋषियोंको ही अनन्तकाल तकके लिए दार्शनिक तत्त्वोंको सोचकर पहिलेसे रख देनेवाला समझते हैं, वहाँ आधुनिक यूरोपीय विद्वान अफलातू और अरस्तूको दर्शनकी प्रथम और महत्त्वपूर्ण ईंटें रखनेवाले समझते हुए भी आजकी दर्शन विचार-धाराके सामने उनकी विचारधाराको आरंभिक ही समझता है।

प्राचीन सिंधु उपत्यकाकी सभ्यताका परिचय वर्तमान शताब्दीके द्वितीयपादके आरम्भसे होने लगा है, जब कि मोहनजो-डरो और हड़प्पाकी खुदाइयोंमें उस समयके नगरों और नागरिक जीवनके अवशेष हमारे सामने आये। लेकिन जो सामग्री हम वहाँ मिली है, उससे यही मालूम होता है, कि मेसोपोतामियाकी पुरानी सभ्य जातियोंकी भाँति सिंधुवासी भी सामन्तशाही समाजके नागरिक जीवनको बिता रहे थे। वह कृषि, शिल्प, वाणिज्यके अभ्यस्त व्यवसायी थे। ताम्र और पित्तलयुगमें रहते भी उन्होंने काफी उन्नति की थी। उनका एक मातापाँत धर्म था, एक तरहकी चित्र लिपि थी। यद्यपि चित्र लिपिमें जो मुद्राएँ और दूसरी लेख-सामग्री मिली है, अभी वह पढ़ी नहीं जा चुकी है, लेकिन दूसरी परीक्षाओंसे मालूम होता है कि सिंधु-सभ्यता असुर और काल्दी सभ्यताकी समसामयिक ही नहीं, बल्कि उनकी भगिनी-सभ्यता थी, और उसी तरहके धर्मका ख्याल उसमें था। वहाँ लिंग तथा दूसरे देव चिह्न या देव-मूर्तियाँ पूजी जाती थीं, किन्तु जहाँतक दर्शनका संबंध है, इसके बारेमें इतना ही कहा जा सकता है कि सिंधु-सभ्यतामें उसका पता नहीं मिलता। यदि वह होता तो आर्योंको दर्शनका विकास शुरू करनेकी जरूरत न होती।

१. आर्योंका साहित्य और काल

आर्योंका प्राचीन साहित्य वेद, जैमिनि (३०० ई०)के अनुसार मंत्र और ब्राह्मण दो भागोंमें विभक्त है। मंत्रोंके संग्रहको संहिता कहते हैं।

ऋग्, यजु, साम, अथर्वकी अपनी अपनी मंत्रसंहिताएं हैं, जो शाखाओंके अनुसार एकसे अधिक भी मिलती हैं। बहुत काल तक—बुद्ध (५६३-४८३ ई० पू०)से पीछे तक—ब्राह्मण (और दूसरे धर्मवाले भी) अपने ग्रंथोंको लिखकर नहीं कंठस्थ करके रखते थे, और इसमें शक नहीं, उन्होंने जितने परिश्रमसे वेदों छन्द व्याकरण उच्चारण और स्वर रक्षा कंठस्थ करके सुरक्षित रखा, वह असाधारण बात है। तो भी इसका मतलब यह नहीं कि आज भी मंत्र उसी रूपमें शुद्धसे शुद्ध इसी पोथीमें भी मौजूद हैं। यदि ऐसा होता तो एक ही शुक्ल यजुर्वेद संहिताके माध्यन्दिन और काण्व शाखाके मंत्रोंमें पाठभेद न होता। आर्योंके विचारों, सामाजिक व्यवस्थाओं तथा आरंभिक अवस्थाके लिए जो लिखित सामग्री मिलती है वह मंत्र(=संहिता), ब्राह्मण, आरण्यक तीन भागोंमें विभक्त है। वैदिक साहित्य तथा कर्मकाण्डके संरक्षक ब्राह्मणोंके तरह तरह मतभेदोंके कारण अलग अलग सम्प्रदाय हो गये थे, इन्हींको शाखा कहा जाता है। हर एक शाखाकी अपनी अपनी अलग संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक थे, जैसे (कृष्ण) यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाकी तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण और तैत्तिरीय आरण्यक। आज बहुतसी शाखाओंके संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक लुप्त हो चुके हैं।

वेदोंमें सबसे पुरानी ऋग्वेद मंत्र-संहिता है। ऋग्वेदके मंत्रकर्ता ऋषियोंमें सबसे पुराने विश्वामित्र, वशिष्ठ, भारद्वाज, गोतम(=दीर्घतमा), अत्रि आदि हैं। इनमें कितने ही विश्वामित्र वशिष्ठकी भाँति ही समसामयिक परस्पर और कुछमें एक दो पीढ़ियोंका अन्तर है। अंगिराके पौत्र तथा बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजका समय[1] १५०० ई० पू० है। भारद्वाज उत्तर-पंचाल (=वर्तमान रुहेलखंड)के राजा दिवोदासके पुरोहित थे। विश्वामित्र दक्षिण-पंचाल (=आगरा कमिश्नरीका अधिक भाग)से संबद्ध थे। वशिष्ठका संबंध कुरु (=मेरठ और अम्बाला कमिश्नरियोंके अधिक भाग) राजके

[1] देखिए मेरा "सांकृत्यायन-वंश।"

पुरोहित थे। सारा ऋग्वेद छ सात पीढ़ियोंके ऋषियोंकी कृति है, जैसा कि वृहस्पतिके इस वंशसे पता लगेगा—

(अंगिरा)
|
बृहस्पति (१५२० ई० पू०)
|
भरद्वाज (१५०० ई० पू०)
|
(विदथी)
|
नर (१४६० ई० पू०)
|
(सङ्कृति १४४० ई० पू०)
|
गौरवीति (१४२० ई० पू०) (रन्तिदेव)

इनमें बृहस्पति, भारद्वाज, नर और गौरवीति ऋग्वेदके ऋषि हैं। बृहस्पतिसे गौरवीति (=सांकृत्यायनोंके एक प्रवर पुरुष) तक छ पीढ़ियाँ होती हैं। मैंने अन्यत्र[1] भारद्वाजका काल १५०० ई० पू० लिखलाया है, और पीढ़ीके लिए २० वर्षका औसत लेनेपर बृहस्पति (१५२० ई० पू०) से गौरवीति के समय (१४२० ई० पू०) के अंदर ही ऋषियोंने अपनी रचनाएं की। ऋषियोंकी परम्पराओंपर नजर करनेपर हम इसी नतीजेपर पहुँचते हैं कि ऋग्वेदका सबसे अधिक भाग इसी समय बना है। ब्राह्मणों और आरण्यकोंके बननेका समय इससे पीछे सातवीं और छठी सदी ईसा पूर्व तक चला आता है। प्राचीन उपनिषदोंमें सिर्फ एक (ईश) मंत्र-संहिता (शुक्ल यजुर्वेद) का भाग (अन्तिम चालीसवाँ) अध्याय है, बाकी सातों ब्राह्मणोंके भाग हैं या आरण्यकोंके।

[1] देखिए मेरा "सांकृत्यायनवंश।"

इनके अध्ययनसे यह, उत्तर-दक्षिण-पंचाल तथा अर्थात आजकलके पश्चिमी युक्त प्रान्तमें था जो कि आर्योंके भारतमें आगमनके बाद तीसरा उपनिवेश है—पहिला घसरा मञ्जिल काबुल और स्वात नदियोंकी उपत्यकाओं (अफगानिस्तान)में था, दूसरा सप्त सिंधु (पंजाब)में, और यह तीसरा अब का पश्चिमी युक्त प्रान्त या यमुना-गंगा रामगंगाकी मदानी उर्वर उपत्यकायें। इतना कहनेसे यह भी मालूम हो जायगा कि क्यों प्रयाग और सरस्वती (घाघर)के बीचके प्रदेशको पीछे बहुत पुनीत, अधिकांश तीर्थोंका क्षेत्र तथा आर्यावर्त कहा गया।

उस समय आर्योंके समाजके विकासके बारेमें जो कुछ मिलता है, उससे जान पड़ता है कि आर्यावर्तमें बस जानेके समय तक आर्योंमें कुरु पंचाल जैसे प्रभुताशाली सामन्तवादी राज्य कायम हो चुके थे, कृषि, ऊनी वस्त्र, तथा व्यापार खूब चल रहा था। तो भी पशुपालन—विशेषकर गोपालन, जो कि मांस दूध हल चलाने तीनोंके लिए बहुत उपयोगी था—उनकी आर्थिक उपजका सबसे बड़ा जरिया था। चाहे सुवास्तु और सप्तसिंधुके समय—जो कि इससे तीन चार सौ पहिले बीत चुका था—की ध्वनियाँ यहाँ कहीं-कहीं भले ही मिल जायें, किन्तु उनपर अब वह ज्यादा रोशनी नहीं डालता। इस समयके साहित्यसे यही पता लगता है, कि आर्यावर्तमें बसनेकी आरंभिक अवस्थामें उनके भीतर 'वर्ण' या जातियाँ बनने जरूर लगी थीं, किन्तु अभी वह तरल या अस्थिर अवस्थामें थीं। अधिक शुद्ध रक्तवाले आर्य ब्राह्मण या क्षत्रिय थे। केवल विश्वामित्र ही राज-पुत्र (=क्षत्रिय) होते ऋषि नहीं हो गए, बल्कि ब्राह्मण भरद्वाजके पौत्र सुहोत्र और शुनहोत्रकी अगली सारी सन्तान क्रमशः कुरु और पंचालके क्षत्रिय शासक थी। भरद्वाजके प्रपौत्र संकृतिका पुत्र रन्तिदेव भी राजा और क्षत्रिय था। इस प्रकार इस समय (=कुरु-पंचालकालमें) जहाँ तक ब्राह्मण क्षत्रियों—शासकों तथा पुरोहितों—का संबंध है, वर्ण-व्यवस्था कर्म पर निर्भर थी। ब्राह्मण क्षत्रिय हो सकता था और क्षत्रिय ब्राह्मण हो सकता था। आगे जिस वक्त राजाओंकी संरक्षकतामें पुश्तैनी पुरोहित—ब्राह्मण—तथा

ब्राह्मणोंके विधानके अनुसार क्षत्रिय आनुवंशिक योद्धा और शासक बनते जा रहे थे, उस वक्त भी सप्तसिंधु तथा काबुल-स्वातमें ब्राह्मणादि भेद नहीं कायम हुआ। पूरबमें भी मल्ल-वज्जी आदि प्रजातंत्रोंमें भी यही हालत थी, यह हम अन्यत्र¹ बतला चुके हैं। इसी पुरोहित शास्त्रीके कारण इन स्थानोंके आर्योंको—जो रक्तमें आर्यावर्त्तके ब्राह्मण-क्षत्रियों (=आर्यों)से कहीं अधिक शुद्ध थे—व्रात्य (=पतित) कहा जाता था। किन्तु यह 'क्रियाके लोप' या ब्राह्मणके अदर्शनसे नहीं था, बल्कि वहाँ वह अपने साथ नाई पुरानी व्यवस्थापर ज्यादा आरूढ रहना चाहते थे। आर्योंके सामन्तवादके चरम विकासकी उपज ब्राह्मणादि भेदको मानना नहीं चाहते थे।

ऋग्वेदके आर्यावर्त्त (१५०० १००० ई० पू०)में, जैसा कि मैं अभी कह चुका कृषि और गोपालन जीविकाजनके प्रधान साधन थे। युक्त प्रान्त अभी घने जंगलोंसे ढँका था, इसलिए उसके वास्ते वहाँ बहुत सुभीता भी था। उस वक्तके आर्योंका खाद्य रोटी, चावल दूध, घी दही, मांस—जिसमें गोमांस (वत्सतरा मांस प्रियतम)—बहुप्रचलित खाद्य थे, मांस पकाया और भुना दोनों तरहका होता था। अभी मसाले और छौंक-बघारका बहुत जोर न था। गर्मागर्म सूप (मांसका रस) जो कि हिंदी-युरोपीय जातिके एक जगह रहनेके समयका प्रधान पेय था वह अब भी वैसा ही था।² सोम(=भाँग)का रस हिन्दी-ईरानी कालसे उनके प्रिय पानोंमें था वह अब भी मौजूद था। पानके साथ नृत्य उनके मनोरंजनका एक प्रिय विषय था। दस्तकारोंसे लोहार(=ताम्रकार), बढ़ई(=रथकार), कुम्हार अपने व्यवसायको करते थे। सूत (ऊनी) कातना और बुनना

¹"वोल्गासे गंगा" पृष्ठ २१६-१८। ²संकृतिके पुत्र दानी रन्तिदेवके दो सौ रसोइये प्रतिदिन दो हजारसे अधिक गायोंके मांसको पका कर भी, अतिथियोंसे विनयपूर्वक कहते थे—"सूपं भूयिष्टमश्नीध्वं नाद्य मांसं यथापुरा।" महाभारत, द्रोण-पर्व ६७।१७,१८। शान्ति-पर्व २९।२८

प्राप्त हुए आर्योंमें होता था। उस समय आर्योंके धार्मिक विश्वासकी प्रधान बातें क्या थी।

सिन्धुकी पुरानी सभ्यतामें मातृदेवियों और शिश्नकी भाँति पशुपतिकी पूजा होती तथा उनकी प्रतिमायें या मन्दिर भी थे। किन्तु आर्योंका यह ढंग न था—आगे चलकर प्रतिमापूजा सिन्धुवासियोंसे सीखी। सिन्धुवासी पूजकोंको उस वक्त शिश्नदेवा कहते थे। प्रारम्भिक आर्योंके देवता अग्नि, सूर्य, वायु आदि प्राकृतिक शक्तियाँ थे। उनके लिए कही स्तुतियाँ ऋग्वेदमें हमें कवित्वपूर्ण अक्सर दिखाई पड़ती हैं किन्तु वह सिर्फ कविताएँ ही नहीं, अधिक भावपूर्ण स्तुतियाँ हैं। वायुकी स्तुति करता हुआ ऋषि कहता है[1]—

यह कहाँ पैदा हुआ और कहाँसे आता है?
वह देवताओंका जीवप्राण, जगत्का सबसे बड़ा गर्भ है।
यह देव इच्छापूर्वक सर्वत्र घूमता है।
उसके चलनेकी आवाजें हम सुनते हैं किन्तु उसका रूप नहीं।

२. दार्शनिक विचार

(१) ईश्वर—ऋग्वेदके पुराने मंत्रोंमें यद्यपि इन्द्र, सोम, वरुणकी महिमा ज्यादा गाई गई है, किन्तु उस वक्त किसी एक देवताको सर्वोपरि माननेका ख्याल नहीं था। ऋषि जब भी किसी देवताकी स्तुति करने लगता तन्मय होकर उसीको सब कुछ सभी गुणोंका आकर कहने लगता। किन्तु जब हम ऋग्वेदके सबसे पीछेके मंत्रों (दशम मंडल) पर पहुँचते हैं तो वहाँ बहुदेववादसे एकदेववादकी ओर प्रगति देखते हैं। सभी जातियोंके देव-लोकमें उनके अपने समाजका प्रतिबिम्ब होता है। जहाँ आरम्भकालमें देवता, पितृसत्ताक समाजके नेता पितरोंकी भाँति छोटे-बड़े होते थे, वहाँ आगे निश्चित सामन्त या राजा बनते हुए अन्तमें

[1] ऋग्वेद १०।१६८।३,४

वह निरकुश राजा बन जाते ह—निरकुश जहा तक कि दूसर व्यक्ति याका सबध ह, धार्मिक, सामाजिक, नियमोंमें भी उन्हे निरकुश कर देना तो न ब्राह्मणोंको पसद होता न प्रभु वर्गको। प्रजाके अधिकार जब बहुत कम रह गए, और राजा सर्वेसर्वा बन गया उसी समय (६०० ५०० ई० पू०) "देव" राजाका पर्यायवाची शब्द बना।

देवावलीकी ओर अग्रसर होनेपर एक तो हम इस ख्यालको फलते देखते है, कि ब्राह्मण एकही (उस देवताको) अग्नि यम सूय कहते ह।[1] दूसरी ओर एकाधिकारको प्रकट करनेवाले प्रजापति, वरुण जसे देवताओंको आगे आते देखते ह। ब्रह्म (नपुसकलिंग) व्यापार प्रधान कालके उपनिषदोंमें चलकर यद्यपि देवताओंका देवता एक अद्वितीय निराकार शक्ति बन जाता है किन्तु जहाँ ऋग्वेदका ब्रह्मा (पुलिंग) एक साधारण सा देवता है वहाँ ब्रह्म (नपुसक)का अर्थ भोजन भाजनदान सामगीत, अद्भुत शक्तिवाला मत्र, यज्ञपूर्ति, दान-दक्षिणा, होता (पुरोहित)का मत्रपाठ महान् आदि मिलता है। प्रजापति ऋग्वेदके अन्तिमकालमें पहुँचकर महान एकदेवता सर्वेश्वर बन जाता ह उसके क्रम विकास पर भी यदि हम गौर करें, तो वह पहिले प्रजाओंका स्वामी एक विशेषण मात्र ह। ऋग्वेदकी अन्तिम रचना दशम मडलमें प्रजापतिके बारमें कहा गया है[2]—

"हिरण्य-गर्भ (सुनहरे गर्भवाला) पहिले था वह भूतका अकेला स्वामी मौजूद था।'

'वह पृथिवी और इस आकाशको धारण करता था, उस (प्रजापति) देवको हम हवि प्रदान करते ह।"

वरुण तो भूतलके शक्तिशाली सामन्त राजाका एक पूरा प्रतीक था। और उसकेलिए यहाँ तक कहा गया—

---

[1] "एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यम मातरिश्वानमाहु ।"
ऋ० १।१६४।४६

[2] ऋग् १०।१२

'दो (आदमी) बैठकर जो आपसमें मंत्रणा करते हैं, उसे तीसरा राजा वरुण जानता है।

(२) आत्मा—वैदिक ऋषि विश्वास रखते थे कि आत्मा (=मन) शरीरसे अलग भी अपना अस्तित्व रखता है। ऋग्वेदमें एक मंत्रमें कहा गया है कि वह वृक्ष, वनस्पति, अन्तरिक्ष सूर्य आदिसे हमारे पास चली आये। वैदिक ऋषि विश्वास करते थे कि इस लोकके परे भी दूसरा लोक है, जहाँ मरनेके बाद सुकर्मी पुरुष जाता है, और आनन्द भोगता है। नीचे पातालमें त्वचा अन्धकारमय लोक है, जहाँ अधर्मी जाते हैं। ऋग्वेदमें मन, आत्मा और असु जीवके वाचक शब्द हैं लेकिन आत्मा वहाँ आम तौरसे प्राणवायु या शरीरकेलिए प्रयुक्त हुआ है। वैदिक कालके ऋषि पुनर्जन्मसे परिचित न थे। शायद उनकी सामाजिक विषमताओंके इतने जबर्दस्त समालोचक नहीं पैदा हुए थे जो कहते कि दुनियाकी यह विषमता—गरीबी-अमीरी दासता-स्वामिता, जिससे बहुत थोड़ेको छोड़कर बाकी सभी दु:खकी चक्कीमें पिस रहे हैं—सख्त सामाजिक अन्याय है, और उसका समाधान कभी न दिखाईदेनेवाले परलोकसे नहीं किया जा सकता। जब इस तरहके समालोचक पैदा हो गए, तब उपनिषद्-कालके धार्मिक नेताओंको पुनर्जन्मकी कल्पना करनी पड़ी—यहाँकी सामाजिक विषमता भी वस्तुतः उन्हीं जीवोंको लौटकर अपने कियेको भोगनेकेलिए है। जिस सामाजिक विषमताको लेकर समाजके प्रभुओं और शोषकोंके बारेमें यह प्रश्न उठा था, पुनर्जन्मसे उसी विषमताके द्वारा उसका समाधान—बड़े ही चतुर दिमागका आविष्कार था, इसमें सन्देह नहीं।

ऋग्वेदके बारेमें जो यहाँ कहा गया, वह बहुत कुछ साम और यजुर्वेद पर भी लागू है। ७५ मंत्रोंको छोड़ सामके सभी मंत्र ऋग्वेदसे लेकर यज्ञोंमें गानेकेलिए एकत्रित कर दिये गए हैं। (शुक्ल) यजुर्वेद संहिताके भी बहुतसे मंत्र ऋग्वेदसे लिये गए हैं, और कितने ही नये मंत्र भी हैं।

[1]ऋग्वेद १०।५८

यजुर्वेद यज्ञ या कर्मकांडका मंत्र है, और इसीलिए इसके मंत्रोंको भिन्न-भिन्न यज्ञोंमें उनके प्रयोगके क्रमसे संगृहीत किया गया है। अथर्ववेद सबसे पीछेका वेद है। बुद्धके वक्त (५६३-४८३ ई०) तक वेद तीन ही माने जाते थे। सुपठित पंडित ब्राह्मणको उस वक्त 'तीनों वेदोंका पारंगत'[1] कहा जाता था। अथर्ववेद 'मारन-मोहन-उच्चाटन' जैसे तंत्र-मंत्रका वेद है।

(३) दर्शन—इस प्रकार जिसे हम दर्शन कहते हैं वह वैदिक कालमें दिखलाई नहीं पड़ता। वैदिक ऋषि धर्म और देववादमें विश्वास रखते हैं। यज्ञों दान द्वारा अब और मरनेके बाद भी वह सुखी रहना चाहते थे। इस विश्वकी तहमें क्या है? इस चलके पीछे क्या कोई अचल शक्ति है? यह विश्व आरंभमें कैसा था? इन विचारोंका धुंधला सा आभास मात्र हमें ऋग्वेदके नासदीय सूक्त[2] और यजुर्वेदके अन्तिम अध्याय[3]में मिलता है। नासदीय सूक्तमें है—

उस समय न सत् (=होना) था न अ-सत्।
न अंतरिक्ष था न उसके परे व्योम था।
किसने सबको ढाँका था? और कहाँ? और किसके द्वारा रक्षित?
क्या वहाँ पानी अथाह था? ॥१॥
तब न मृत्यु था न अमर मौजूद,
रात और दिनमें वहाँ भेद न था।
वहाँ वह एकाकी स्वावलंबी शक्तिसे श्वसित था,
उसके अतिरिक्त न कोई था उसके ऊपर ॥२॥
अंधकार वहाँ आदिम अँधेरेमें छिपा था,
विश्व भेदशून्य जल था।
वह जो शून्य और खालीमें छिपा पड़ा है।

[1] "तिण्णं वेदानं पारगू"।　　[2] ऋग् १०।१२९
[3] यजु अध्याय ४० (ईश उपनिषद्)।

तप एक (अपनी) शक्तिसे निकला था ॥३॥
तब प्रथम (उसमें) काम भावना उत्पन्न हुई
जो कि मनका और सबसे प्रारम्भिक बीज थी।
और ऋषियोंने अपने हृदयमें खोजते हुए
असत्‌में सत्‌के बंधनको पाया ॥४॥

× × ×

वह मूल स्रोत जिससे यह विश्व उत्पन्न हुआ,
और क्या यह बनाया गया था या अकृत था,
(इसे) वही जानता या नहीं जानता, जो कि उच्चतम द्यौलोकमें
शासन करता है, जो सबका स्वामी है। ॥७॥

यहाँ हम उन प्रश्नोंको उठते हुए देखते हैं जिनके उत्तर आगे चलकर दार्शनिक बुनियादें कायम करते हैं। विश्व पहिले क्या था?—इसका उत्तर किसीने सत् अर्थात् वह सत्ताके रूपमें मौजूद रहा—दिया। किसीने कहा कि वह असत्—नहीं मौजूद अर्थात् सृष्टिसे पहिले कुछ नहीं था। इस मतके ऋषिने पहिले वादके प्रतिवादका प्रतिवाद (प्रतिषेध) करके—"नहीं सत था, नहीं असत"—द्वारा अपना संवादका पक्ष लिया। उसने उस विश्वसे पहिलेकी शून्य अवस्थामें भी एक सत्ताकी कल्पनाकी, जो कि उस शून्य गम्भीर जगत्‌में भी सजीव था। आरम्भमें 'निश्चय अंधकार-शून्य जल था', यह उपनिषद्‌के 'यह जल ही पहिले था'[1] का मूल है। ऋषिकी इस जिज्ञासा और उत्तरसे पता लगता है, कि विश्वका मूल ढूँढते हुए, वह अभी तो प्रकृतिके साथ चलना चाहता है, और पशुकी भाँति, किन्तु उससे कुछ सूक्ष्म जलको सबका मूल मानता है। दूसरी ओर प्रकृतिका तट छोड़ वह सूक्ष्म छलाँग मारकर एक रहस्यमयी शक्तिकी कल्पना करता है, जो कि उस शून्य और असीम बनी है। अन्तमें रहस्यको और गूढ़ बनाते हुए विश्वके सर्वदर्शी शासकके ऊपर विश्वके कृत या अकृत होने तथा उसके

[1] "आप एव इदमग्र आसुः" बृहदारण्यक ५।५।१

बारमें जानने न जाननेका भार रखकर चुप हो जाता है। इस लंबी छलाँगमें साहस भी है, साथ ही कुछ दूरकी उडानके बाद थकावटसे फिर घोसलेकी ओर लौटना भी देखा जाता है। जो यही बतलाते हैं कि कवि (=ऋषि) अभी ठोस पृथ्वीको बिल्कुल छोडनेकी हिम्मत नहीं रखता।

ईश उपनिषद् यद्यपि संहिता (यजुर्वेद)का भाग है तो भी वह काल और विचार दोनोंसे उपनिषद-युगका भाग है, इसलिए उसके बारेमें हम आगे लिखेंगे।

§ २–उपनिषद् (७००-१०० ई० पू०)

क–काल

वैसे तो निर्णयसागर प्रेस (बंबई)ने ११२ उपनिषदें छापी हैं, किन्तु यह बढती संख्या पीछेके हिन्दू धार्मिक पंथोंके अपनेको वेदोक्त साबित करनेकी धुनकी उपज है। इनमें निम्न तेरहको हम असली उपनिषदोंमें गिन सकते हैं और उन्हें कालक्रमसे निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है—१ प्राचीनतम उपनिषदें (७०० ई० पू०)—

(१) ईश (२) छांदोग्य (३) बृहदारण्यक।

२ द्वितीयकालकी उपनिषद (६०० ५०० ई० पू०)—

(१) ऐतरेय (२) तैत्तिरीय।

३ तृतीयकालकी उपनिषद (५००-४०० ई० पू०)—

(१) प्रश्न (२) केन, (३) कठ (४) मुंडक (५) मांडूक्य।

४ चतुर्थकालकी उपनिषद (२०० १०० ई० पू०)—

(१) कौषीतकि, (२) मैत्री (३) श्वेताश्वतर।

जैमिनिने वेदके मंत्र और ब्राह्मण दो भाग बतलाये हैं यह हम कह चुके हैं। मंत्र सबसे प्राचीन भाग है यह भी बतलाया जा चुका है। ब्राह्मणोंका मुख्य काम है, मंत्रोंकी व्याख्या करना उनमें निहित या उनके पोषक आख्यानोंका वर्णन करना, यज्ञके विधि विधान तथा उसमें मंत्रोंके प्रयोगको बतलाना। ब्राह्मणोंके ही परिशिष्ट आरण्यक हैं, जैसे (शुक्ल)

यजुर्वेदके शतपथ (=सौ रास्तावाले) ब्राह्मणका अन्तिम भाग बृहदारण्यक उपनिषद् एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है। लेकिन सभी आरण्यक उपनिषद् नहीं हैं हाँ, किन्हीं किन्हीं आरण्यकोंके अन्तिम भागमें उपनिषद् मिलती है—जैसे ऐतरेय उपनिषद् ऐतरेय आरण्यकका और तैत्तिरीय उपनिषद् तैत्तिरीय आरण्यकका अन्तिम भाग है। ईश उपनिषद्, यजुर्वेद संहिता (मंत्र)के अन्तमें आती है, दूसरी उपनिषदें प्रायः किसी न किसी ब्राह्मण या आरण्यकके अन्तमें आती हैं और ब्राह्मण खुद जैमिनिके अनुसार वेदके अन्तमें आते हैं, आरण्यक ब्राह्मणके अन्तमें आते हैं, यह बतला चुके हैं। इन्हीं कारणोंसे उपनिषदोंको पीछे वेदान्त (=वेदका अन्त, अन्तिम भाग) कहा जाने लगा।

वैसे उपनिषद् शब्दका अर्थ है पास बैठकर गुरुद्वारा अधिकारी शिष्यको बतलाया जानेवाला रहस्य। ईशको छोड़ देनेपर सबसे पुरानी उपनिषदें छांदोग्य और बृहदारण्यक गद्यमें हैं, पीछेकी उपनिषदें केवल पद्य या गद्यमिश्रित पद्यमें हैं।

ख—उपनिषद्-संक्षेप

उपनिषद्के ज्ञात और अज्ञात दार्शनिकोंके आपसमें विचार भिन्नता रखते हैं। उनमें कुछ आरुणि और उसके शिष्य याज्ञवल्क्यकी भाँति एक तरहके अद्वैती विज्ञानवादपर जोर देते हैं, दूसरे द्वैतवादपर जोर देते हैं तीसरे शरीरके रूपमें ब्रह्म और जगत्की अद्वैतताको स्वीकार करते हैं। उपनिषद् इन दार्शनिकोंके विचारोंके उनकी शिष्य-परंपरा और शाखा परंपरा द्वारा अपूर्ण रूपसे याद करके रखे गये संग्रह हैं, किन्तु इस संग्रहमें न दार्शनिककी प्रधानता है न द्वैत या अद्वैतकी बल्कि किसी वेदकी शाखामें जो अच्छे अच्छे दार्शनिक हुए उनके विचारोंको वहाँ एक जगह जमाकर दिया गया। ऐसा होना जरूरी भी था, क्योंकि प्रत्येक ब्राह्मणको अपनी शाखाके मंत्र ब्राह्मण आरण्यक उपनिषद् (, कल्प, व्याकरण)का पढ़ना (=स्वाध्याय) परम कर्त्तव्य माना जाता था।

उपनिषदके मुख्य विषय हैं लोक, ब्रह्म, आत्मा (=जीव,) पुनर्जन्म, मुक्ति—जिनके बारेमें हम आगे कहेंगे। यहाँ हम मुख्य उपनिषदोंका संक्षेपमें परिचय देना चाहते हैं।

१ प्राचीनतम उपनिषदें (७०० ई० पू०)

(१) **ईश-उपनिषद्**—ईश उपनिषद् यजुर्वेद-संहिताका अन्तिम (चालीसवाँ) अध्याय है, यह बतला आये हैं। यह अठारह पद्योंका एक छोटा सा संग्रह है। चूँकि इसका प्रथम पद्य (मंत्र) शुरू होता है "ईशावास्य"से इसलिए इसका नाम ही ईश या ईशावास्य उपनिषद् पड़ गया। इसमें वर्णित विषय है ईश्वरकी सर्वव्यापकता, कार्य करनेकी अनिवार्यता, व्यवहार ज्ञान (अविद्या)से परमार्थ ज्ञान (=ब्रह्म विद्या)की प्रधानता, ज्ञान और कर्मका समन्वय। प्रथम मंत्र बतलाता है—

'यह सब जो कुछ जगतीमें जगत् है, वह ईशसे व्याप्त है, अतः त्यागके साथ भोग करना चाहिए। दूसरेके धनका लोभ मत करो।'

वैयक्तिक सम्पत्तिका ख्याल उस वक्त तक इतना पवित्र और दृढ़ हो चुका था, साथ ही धनी-गरीब श्रमकर-कामचोरकी विषमता, इतनी बढ़ चुकी थी कि उपनिषद्-कर्ता अपने पाठकके मनमें तीन बातोंको बठा देना चाहता है—(१) ईश सब जगह बसा हुआ है, इसलिए किसी 'बुरे' कामके करते वक्त तुम्हें इसका ध्यान और ईशसे भय खाना चाहिए, (२) भोग करो, यह कहना बतलाता है कि अभी वैराग्य जिना नकेलके ऊँटकी भाँति नहीं छूट पड़ा था जीवनकी वास्तविकता और उसके लिए जरूरी भोग सामग्री अभी हेय नहीं समझी गई थी। हाँ वैयक्तिक सम्पत्तिके ख्यालमें भी यह जरूरी था कि निर्धन कमकर वर्ग 'भोग करो' का अर्थ स्वच्छन्द-भोगवाद न समझ ले इसलिए उनपर नियंत्रण करनेके लिए त्यागपर भी जोर दिया गया। और (३) अंतमें मंत्रकर्त्ताने वैयक्तिक सम्पत्तिकी पवित्रताकी रक्षाके लिए कहा—'दूसरेके धनका लोभ मत करो।' उस कालके वर्ग-युक्त (शोषक-शोषित निठल्ले-कमकर) समाजकेलिए इस

मनका की इच्छा थी यद्यपि व्यक्तिगत सम्पत्तिके लिए इसका भय हुआ करना था हो सकता था क्योंकि यहाँ रागके साथ आपस। बात उठाई गई थी। लेकिन उसके लिए बहुत दूर तक जाना-आना पड़ता। गुजारा न था। इसलिए व्याप्त था तथा दूसरेके मनका न इसकी निन्दा समय है वहाँ भय था परलोकनिष्ठा ज्यों संजीवन की आवश्यक है। आज का वर्ग-समाज। और इस समाजके वर्गसमाजमें शासन यंत्र (=राज्य)का प्रधान कर्तव्य था धन-स्वामित्व—शासक और पर्यवेक्ष सम्पत्ति—की रक्षा करना। मंत्रदाताने अपना प्रथम और अन्तिम शिक्षापाठ राजाके हाथमें मालूम करता था। यदि ऐसा न होता तो आजकल भी अपने दयनीय दशावाले भाग-भागिया (जिन्हें बाजारोंमें ले जाकर ढोरोंकी तरह बेचा-खरीदा जाता था) और काम करते-करते मरते रहने भी खाने-कपड़ेका मुहताज कम्मियोंका प्यार भी ध्यान देना चाहिए था। ऐसा होनेपर कहना होगा— जगतीमें जो कुछ है यह ईशकी देन सबके लिए समान है इसलिए मिलकर भोग करो, किसी एक धनमें लोभ मत करो।[1]

उपनिषद्-कालके आरम्भ तक आर्योंके ऊपरी वर्ग—शासक, पुरोहित वर्ग—में भोग और विलास प्रधान जीवन उस सीमा तक पहुँच गया था, जहाँ समाजका भीतरी विषमता अन्दर अन्दर बड़ा उत्पीड़ित वर्ग मूक रोष और शोषकोंकी अपने अपने लाभकी पूर्तिके लिए निरन्तर होते पारस्परिक कलह शासक धनिक वर्गको भी सुखकी नींद सोने नहीं देते और हर जगह शंका एवं भय उठते रहते हैं। इसका सबका परिणाम होता है, निराशावाद और अकर्मण्यता। राज्य और धर्म द्वारा शासन करनेवाले वर्गको अकर्मण्यतासे हटानेके लिए दूसरे मन्त्रमें कहा गया है—

'यहाँ काम करते ही हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा रक्खो।

---

[1] ईशदत्त इव सव यत् किंच जगत्यां जगत ।
तेन समाना भुजीया मा गृध: तस्य सद्धनम् ॥

(वस) यही और दूसरा (रास्ता) तुम्हारे लिए नहीं नरम धर्म नहीं लिप्त होना। उपनिषद्कार स्वयं यज्ञोंके व्यर्थके लम्बे चौड़े विधिविधानके विरुद्ध एक नई धारा निकालनेवाले थे—"यज्ञरूपी ये नावें कमजोर बड़े हैं। इन्हें उत्तम मान जो अभिनन्दन करते हैं, वे मूढ़ फिर फिर बुढ़ापे और मृत्युके शिकार बनते हैं। अविद्याके भीतर स्वयं वर्तमान (अपनेको) धीर और पंडित माननेवाले　　मूढ़ (उसी तरह) भटकते हैं जैसे अंधे द्वारा लिये जाये जाते अंधे। इष्ट (=यज्ञ) और पूर्त (=परार्थ किए जानेवाले कूप तालाब) निर्माण आदि कर्मको सर्वोत्तम मानते हुए (उससे) दूसरेको (जो) अ-मूढ़ अच्छा नहीं समझते वे स्वर्गके ऊपर सुकर्मको अनुभव कर इस हीनतर लोकमें प्रवेश करते हैं।

उपनिषदकी प्रतिक्रियासे कर्मकांडके त्यागकी जो हवा उठी, उसके कारण लोग कहीं हाथ-पैर ढीला कर सदाके लिए छोड़ भाग, इसीलिए कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीते रहनेकी इच्छा करनेका उपदेश दिया गया।

(२) छान्दोग्य उपनिषद् (७०० ई० पू०), (क) संक्षेप—छांदोग्य और बृहदारण्यक न सिर्फ आकारहीमें बड़ी उपनिषद् हैं, बल्कि काल और प्रथम प्रयासमें भी बहुत महत्त्व रखती हैं। छांदोग्यके प्रधान दार्शनिक उद्दालक आरुणि (गौतम)का स्थान यदि सुकरातका है तो उनके शिष्य याज्ञवल्क्य वाजसेनेय उपनिषदका अफलातूँ हैं। हम इन दोनों उपनिषदोंके इन दोनों दार्शनिकों तथा कुछ दूसरोंपर भी आगे लिखेंगे, तो भी इन उपनिषदोंके बारेमें यहाँ कुछ संक्षेपमें कह देना जरूरी है।

बृहदारण्यककी भाँति छान्दोग्य पुरानी और संधिकालीन उपनिषद् है, इसीलिए कर्मकाड-प्रशंसाका इसमें छोटा नहीं है। बल्कि पहिले दूसरे अध्याय तो उपनिषद नहीं ब्राह्मणका भाग होने लायक हैं। उपनिषदके सामवेदी होनेसे सामगान और ओम्‌की महिमा इन अध्यायोंमें गाई गई है।

हाँ, प्रथम अध्यायके अंतमें दाल रोटीके लिए "हावु" 'हावु" (=सामगान का आलाप) करनेवाले पुरोहितोंका एक दिलचस्प मजाक किया गया है। बक दाल्भ्य—जिसका दूसरा नाम ग्लाव मैत्रेय भी था—कोई ऋषि था। वह वेदपाठकेलिए किसी एकांत स्थानमें रह रहा था। उस समय एक सफेद कुत्ता वहाँ प्रकट हुआ। फिर कुछ और कुत्ते आगये और उन्होंने सफेद कुत्तेसे कहा कि हम भूखे हैं, तुम साम गाओ, शायद इससे हमें कुछ भोजन मिल जाय। सफेद कुत्तेने दूसरे दिन आनेकेलिए कहा। दाल्भ्यने कुत्तोंकी बात सुनी थी। वह भी सफेद कुत्तेके सामगानको सुननेकेलिए उत्सुक था। दूसरे दिन उसने देखा कि कुत्ते आगे पीछे एक दूसरेकी पूछ दूसरेके मुहमें लिए बैठकर गा रहे थे—"हिं! ओम् खायें ओम् पीयें, ओम्, देव हमें भोजन दें। हे अन्न देव! हमारे लिए अन्न लाओ, हमारे लिए इसे लाओ, ओम्।" इस मजाकमें सामगायक पढ़नेके लिए यज्ञके वक्त एकके पीछे एक दूसरे अगलेका वस्त्र पकड़े हुए पुरोहितोंके साम-गायनकी नकल उतारी गई है।

तीसरे अध्यायमें आदित्य (=सूर्य)को देव मधु बतलाया गया है। चौथे अध्यायमें रैक्व, सत्यकाम जाबाल और सत्यकामके शिष्य उपकोसल की कथा और उपदेश है। पाँचवें अध्यायमें जैवलि और अश्वपति कैकेय (राजा)के दर्शन हैं। छठे अध्यायमें उपनिषदके प्रधान ऋषि आरुणिकी शिक्षा है और यह अध्याय सारे छांदोग्यका बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है। शतपथ ब्राह्मणसे पता लगता है कि आरुणि बहुत प्रसिद्ध ऋषि तथा याज्ञवल्क्यके गुरु थे। सातवें अध्यायमें सनत्कुमारके पास जाकर नारदके ब्रह्मज्ञान सीखनेकी बात है। आठवें तथा अंतिम अध्यायमें आत्माके साक्षात्कारकी युक्ति बतलाई गई है।

(ग) ज्ञान—छांदोग्य धर्मकांडसे नाता तोड़नेकी बात नहीं करता, बल्कि उसे ज्ञानकांडसे पुष्ट करना चाहता है जैसा कि इस उद्धरणसे मालूम होगा[1]—

---

[1] छांदोग्य ५।१६ २४

"प्राणके लिए स्वाहा। व्यान अपान, समान, उदानके लिए स्वाहा। जो इसके ज्ञानके बिना अग्नि होम करता है वह अंगारोंको छोड़ मानो भस्ममें ही होम करता है। जो इसे ऐसा जानकर अग्निहोत्र करता है उसके सभी पाप (=बुराइयाँ) उसी तरह दूर हो जाते हैं जैसे सरकंडेका धूआ आगमें डालनेपर। इसलिए ऐसा ज्ञानवाला चाहे चांडालको जूठ ही क्यों न दे, वह वैश्वानर आत्मा (=ब्रह्म)में आहुति देता होता है।"

'विद्या और अविद्या तो भिन्न भिन्न हैं। (किन्तु) जिस (कर्म)को (आदमी) विद्या (=ज्ञान)के साथ श्रद्धा और उपनिषदके साथ करता है, वह ज्यादा मजबूत होता है।'

मनुष्यकी प्रतिभा एक नये क्षेत्रमें उड़ रही थी जिसके चमत्कारको देखकर लोग आश्चर्य करने लगे थे। लोगोंको आश्चर्य-चकित होनेको ये दार्शनिक कम नहीं होने देना चाहते थे। इसलिए चाहते थे कि इसका ज्ञान कमसे कम आदमियों तक सीमित रहे। इसीलिए कहा गया है—

'इस ब्रह्मको पिता या तो ज्येष्ठ पुत्रको उपदेश करे या प्रिय शिष्यको। किसी दूसरेको (हर्गिज) नहीं चाहे (वह) इसे जल-सहित धनसे पूर्ण इस (पृथ्वी)को ही क्यों न दे देवे 'यही उससे बढ़कर है, यही उससे बढ़कर है।'

(ग) धर्माचार—छांदोग्यके समयमें दुराचार किसे कहते थे, इसका पता निम्न पद्यसे लगता है—

'सोनेका चोर शराब पीने वाला, गुरु-पत्नीके साथ व्यभिचार करने वाला और ब्रह्महत्या करनेवाला ये चार और इनके साथ (संसर्ग या) आचरण करनेवाले पतित होते हैं।'[३]

सदाचार तीन प्रकारके बतलाये गये हैं—[४]

धर्मके तीन स्कंध (=अंग) हैं—यज्ञ, अध्ययन (=वेदपाठ) और दान। यह पहिला तप ही दूसरा (स्कंध है), ब्रह्मचर्य (रख) आचार्य-

कुसुम वसना—आशाके कुसुमसे अलंकृत। अन्यत्र इसका वरण (करना)। ये सभी पुण्य लोक (तक) ले जाते हैं। (जो) ब्रह्ममें स्थित, वह अमृतत्व (मुक्ति)को प्राप्त होता है।

(घ) ब्रह्म—ब्रह्मकी आकाश विद्या या प्रतीकमें उपासना करनेकी बात छान्दोग्यमें बतलाई जा चुकी है। इनके बारेमें सन्देह उठ सकता है कि यह ब्रह्मकी उपासनाएं हैं या जिन प्रतीकों—अग्नि, आकाश आदिकी उपासना करने—को कहा गया है। यहाँ प्रसंग अलग देता है। और उसी रूपमें उनकी उपासना करनेको कहा गया है। बादरायणने अपने वेदान्त सूत्रोंके काफी भागको इसकी सफाईमें खर्च किया है, यह हम आगे देखेंगे। इन उपासनाओंमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

(a) दहर—हृदयके क्षुद्र (=दहर) आकाशमें ब्रह्मकी उपासना करनेके लिए कहा गया है—[1]

इस ब्रह्मपुर (=शरीर)में जो दहर (=क्षुद्र) पुंडरीक (=कमल) गृह है। इसके भीतर (एक) दहर आकाश है, उसके भीतर जो है, उसका अन्वेषण करना चाहिए उसकी ही जिज्ञासा करनी चाहिए। जितना यह (बाहरी) आकाश है उतना यह हृदयके भीतरका आकाश है। दोनों द्यु (नक्षत्र)-लोक और पृथ्वी इसीके भीतर एकत्रित हैं—दोनों अग्नि और वायु दोनों सूर्य और चन्द्रमा, दोनों बिजली-तारे और इस विश्वका जो कुछ यहाँ है तथा जो नहीं, वह सब इसमें एकत्रित है।

(b) भूमा—सुखकी कामना हर एक मनुष्यमें होती है। ऋषिने सुखको ही प्राप्त करनेका प्रलोभन दे भारी (भूमा)-सुखकी ओर खींचते हुए कहा—

जब सुख पाता है तब (उसके लिए प्रयत्न) करता है। अ-सुखको प्राप्तकर नहीं करता सुखको ही पाकर करता है। सुखकी ही जिज्ञासा करनी चाहिए। जो कि भूमा (=बहुत) है वह सुख है थोड़ेमें सुख नहीं होता।

---

[1] छां० ८।१।१ ३

भूमाकी ही जिज्ञासा करनी चाहिए। जहा (=ब्रह्म) न दूसरेको देखता, न दूसरेको सुनता न दूसरेका विजानन करता (जानता) वह भूमा है। जहा दूसरेको देखता, सुनता, विजानन करता है वह अल्प है। जो भूमा है वह अमृत है, जो अल्प है वह मर्त्य (=नाशमान)। हे भगवन! वह (=भूमा) किसमे स्थित है। 'अपनी महिमामे या (अपनी) महिमामें नही।' गाय घोड़े हाथी-सोना, दास भार्या खेत घरको यहाँ (लोग) महिमा कहते है। मै ऐसा नही कह रहा हूँ। वही (=भूमा ब्रह्म) नीचे वही ऊपर वही पश्चिम, वही पूरब वही दक्षिण वही उत्तरमे है वही यह सब है। वह (=ज्ञानी) इस प्रकार देखते इस प्रकार मनन करते और इस प्रकार विजानन करते आत्माके साथ रति रखनेवाला, आत्माके साथ क्रीडा और आत्माके साथ जोडीदारी रखनेवाला आत्मानन्द स्वराड (=अपना राजा) होता है वह इच्छानुसार सारे लोकोमे विचरण कर सकता है।[1]

इसी भाँति आकाश, आदित्य[2], प्राण वैश्वानरआत्मा, सेतु[3], ज्योति[4] आदिको भी प्रतीक मानकर ब्रह्मोपासनाकी शिक्षा दी गई है।

(ड) सृष्टि—विश्वके पीछे कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है और वह अपनेको बिलकुल छिपाए हुए नही है बल्कि विश्वकी हर एक क्रिया उसीके कारण दृष्टिगोचर हो रही है उसी तरह जैसे कि शरीरमें जीवकी क्रिया देखी जाती है लेकिन वस्तुओंके बनने बिगडनेसे मानवके मनमे यह भी ख्याल पैदा होने लगा कि इस सृष्टिका कोई आरम्भ भी है और आरम्भ है तो उसके पहिले कुछ था भी या बिलकुल कुछ नही था। इसका उत्तर इस तरह दिया गया है[5]—

हे सोम्य (प्रिय)! यह पहिले एक अद्वितीय सद् (=भावरूप) ही था। उसीको कोई कहते है—'यह पहिले एक अद्वितीय असद् (=अभाव

---

[1] छां० ७।२२-२५ [2] वही १।६।१, ७।१२।१
[3] वही ३।१६।१-३ [4] वही १।११।५, [5] वही ५।१८।१,
[6] वही ८।४।१-२ वही ३।१३ वही ६।२।१-४

रूप) ही था। इसलिए असत्से सत् उत्पन्न हुआ। लेकिन सौम्य ! कैसे ऐसा हो सकता है—'कैसे असत्से सत् उत्पन्न होगा।' सौम्य ! यह पहिले एक अद्वितीय सत् ही था। उसने ईक्षण (=इच्छा) किया—मैं बहुत हो प्रकट होऊँ। उसने तेज (=अग्नि)को सिरजा। उस तेजने ईक्षण किया उसने जलको सिरजा उस जलने अन्नको सिरजा।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि (१) यहाँ उपनिषत्कार असत्से सत्की उत्पत्ति नहीं मानता अर्थात् वह एक तरहका सत्कार्यवादी है, (२) भौतिक तत्त्वोंमें प्रथम या मुख्य तत्त्व तेज (=अग्नि) है।

(च) मन (१) भौतिक—मन आत्मासे अलग और भौतिक वस्तु है, इसी ख्यालसे यहाँ हम मनको अन्नसे बना पाते हैं—[1]

"खाया हुआ अन्न तीन तरहका बनता (=परिणत होता) है। उसका जो स्थूल धातु (=तत्त्व) है वह पुरीष (=पाखाना) बनता है, जो बिचला वह मांस और जो अतिसूक्ष्म वह मन (बनता है)। सौम्य ! मन अन्नमय है। सौम्य ! दहीको मथनेपर जो सूक्ष्म (अंश है) वह ऊपर उठ आता है वह मक्खन (=सर्पि) बनता है। इसी तरह सौम्य ! खाये जाते अन्नका जो सूक्ष्म अंश है वह ऊपर उठ आता है, वह मन बनता है।

(छ) सुप्तावस्था—इन आत्मिक विचारोंके लिए गाढ़ निद्रा और स्वप्नकी अवस्थायें बहुत बड़ा रहस्य ही नहीं रखती थीं, बल्कि इनसे उनके आत्मा-परमात्मा संबंधी विचारोंकी पुष्टि होती जान पड़ती थी। इसीलिए बृहदारण्यकमें कहा गया—

'जब वह सुषुप्त (=गाढ़ निद्रामें सोया) होता है तब (पुरुष) कुछ नहीं महसूस (=वेदना) करता। हृदयसे पुरीतत्[3]की ओर जानेवाली

---

[1] छां० ६।५।६ [2] बृह० २।१।१९

[3] पुरीतत् हृदयके पास अथवा पृष्ठ दंडमें अवस्थित किसी चक्र को कहते थे, जहाँ स्वप्न और गाढ़ निद्रामें जीव चला जाता है।

७२ हजार हिता नामवाली नाडियाँ ह। उनके द्वारा (वहाँ) पहुँचकर पुरीततमें वह सोता ह, जसे कुमार (बच्चा) या महाराजा या महा ब्राह्मण आनदकी पराकाष्ठाको पहुँच सोये, वसे ही यह सोता ह।"

इसी बातको छांदोग्यमें इन शब्दोंमें कहा ह—[1]

"जहाँ यह सुप्त अच्छी तरह प्रसन्न हो स्वप्नको नहीं जानता, उस वक्त इन्हीं (=हिता नाडियो)मे वह सोया होता ह।'

इसके बारेमें[2]—

"उद्दालक आरुणिने (अपने) पुत्र श्वतकेतुको कहा—स्वप्नके भीतर (की बातको) समझो।' जसे सूतसे बधा पक्षी दिशा दिशामें उडकर दूसरी जगह स्थान न पा, बधन(-स्थान)का ही आश्रय लेता ह। इसी तरह सोम्य! वह मन दिशा दिशामें उडकर दूसरी जगह स्थान न पा प्राणका ही आश्रय लेता ह। सोम्य! मनका बधन प्राण है।"

सुषुप्ति (=गाढ निद्रा)में आदमी स्वप्न भी नहीं दखता, इस अवस्थाको आरुणि ब्रह्मके साथ समागम मानते ह।[3]

'जब यह पुरुष सोता है (=स्वपिति) उस समय सोम्य! वह सत (=ब्रह्म)के साथ मिला रहता है। 'स्व अपीति (=अपनको मिला) होता है, इसीलिए इसे स्वपिति कहते ह।

जब हम रोज इस तरह ब्रह्म मिलन कर रह ह, किन्तु इसका ज्ञान और लाभ(=मुक्ति) हम क्यो नही मिलती इसके बारेमें कहा है—[4]

'जसे धनका ज्ञान न रखनेवाले छिपी हुई सुवर्ण निधिके ऊपर ऊपर चलते भी उसे नहीं पाते, इसी तरह यह सारी प्रजा (=प्राणी) रोज रोज जाकर भी इस ब्रह्मलोकको नही प्राप्त करती, क्योकि वह अनृत(=अ-सत्य, अज्ञान)से ढँकी हुई ह।"

(छ) मुक्ति और परलोक—इन प्रारभिक दार्शनिकोंमें जो अद्वैतवादी भी ह उन्हें भी उन अर्थोंमें हम अद्वैती नहीं ले सकते, जिनमें कि

---

[1] छा० ८।६।३, [2] वहीं ६।८।१,२ [3] वहीं ६।८।१ [4] वहीं ८।३।२

अलग या परायेका समझना है। यद्यपि यहाँ पर भी यह दीपकी भाँति पानी और पार्थिव आकाशको सबका अपनाना परलोकमें तैयार नहीं है, दूसरे धर्मके विरुद्ध अभी इतने स्वतन्त्र विचार नहीं उठ खड़े हुए थे कि वह साफ किसी मानवको न स्वीकार करते अथवा अभी मनुष्यका ज्ञान इतना विकसित नहीं हुआ था कि रास्तेमें भार कठिनाईको उठाते हुए वह अपना साथी रास्ता तय। निम्न उद्धरणमें मुक्तिको इस प्रकार बतलाया गया है, जैसे यहाँ मुक्त आत्मा और ब्रह्मका भेद बिल्कुल नहीं रहता—

जैसे सौम्य! मधुमक्खियाँ मधु बनाती हैं, नाना प्रकारके वृक्षोंके रसोंका संचय कर एक रसको बनाती हैं। जैसे वहाँ वह (मधु अपनेमें) फर्क नहीं पाती—मैं अमुक वृक्षका रस हूँ, मैं अमुक वृक्षका रस हूँ, ऐसे ही सौम्य! यह सारी प्रजा सत्में प्राप्त हो नहीं जानती—हमने सत्को प्राप्त किया'।[1]

यहाँ सुषुप्तिकी अवस्थाके बारेमें मधुर दृष्टान्त द्वारा बतलानेकी कोशिश की गई है, किन्तु इन वाक्योंसे यदि कोई अभिप्राय था तो आत्माका अत्यन्त समानता तथा ब्रह्मका शुद्ध शरीर होना ही अभिप्रेत मालूम होता है। जैसा कि निम्न उद्धरण बतलाता है—

जो यहाँ आत्माको न जानकर प्रयाण करते (=मरते) हैं, उनका सारे लोकोंमें स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण नहीं होता। जो यहाँ आत्माको जानकर प्रयाण करते हैं, उनका सारे लोकोंमें स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण होता है।'[2]

मुक्त पुरुषका मरकर स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण यही बतलाता है कि यहाँ विचारकोंको मुक्तिमें अपने अस्तित्वको खोना अभिप्रेत नहीं है। छान्दोग्यने इसे और साफ करते हुए कहा है[3]—

'जिस जिस अन्त(=अन्त)का वह कामनावाला होता है, जिस जिसकी कामना करता है, संकल्पमात्रसे ही (वह) उसके पास उपस्थित

---

[1] छां० ६।६।१०, [2] वहीं ८।१।६ [3] वहीं ८।२।१०

होता है, वह उसे प्राप्त कर महान् होता है।'

ब्रह्म-ज्ञान प्राप्तकर जीवित रहते मुक्तावस्थामें—

'जैसे कमलके पत्तेमें पानी नहीं लगता इसी तरह ऐसे ज्ञानीको पाप कर्म नहीं लगता।'

पापकर्म नहीं लगता' यह वाक्य सदाचारकेलिए घातक भी हो सकता है क्योंकि इसका अर्थ 'वह पापकर्म नहीं कर सकता' नहीं है।

मुक्तके पाप क्षीण हो जाते हैं इसके बारेमें और भी कहा है[1]—

घोड़ा जैसे रोयेंको (झाड़ देता), ऐसे ही पापोंको झाड़कर चंद्र जैसे राहुके मुखसे छूटा हो शरीरको झाड़कर कृतार्थ (हो), वैसे ही मैं ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूँ।

(a) आचार्य—मुक्तिकी प्राप्तिमें ज्ञानकी अनिवार्यता है जिसके लिए आचार्य जरूरी है। इसी अभिप्रायको इस वाक्यमें कहा गया है[2]—

"जैसे सोम्य! एक पुरुषको गंधार (देश)से आँख बाँध लाकर उसे जहाँ बहुत जन हो उस स्थानमें छोड़ दें। जैसे वह वहाँ पूरब पच्छिम ऊपर उत्तर चिल्लाये—आँख बाँध लाया आँख बाँध (मुझे) छोड़ दिया।' जैसे उसकी पट्टी खोलकर (कोई) कहे—'इस दिशामें गंधार है, इस दिशाको जा।' वह (एक) गाँवसे (दूसरे) गाँवको पूछता पंडित मेधावी (पुरुष) गंधारमें ही पहुँच जाय। उसी तरह यहाँ आचार्यवाला पुरुष (ब्रह्मको) जानता है। उसको उतनी ही देर है जब तक विमोक्ष नहीं होता, फिर तो (वह ब्रह्मको) प्राप्त होगा।

(b) पुनर्जन्म—भारतीय प्राचीन साहित्यमें छान्दोग्य ही ने सबसे पहिले पुनर्जन्म (=परलोकमें ही नहीं इस लोकमें भी कर्मानुसार प्राणी जन्म लेता है)की बात कही। शायद उस वक्त प्रथम प्रचारकोंने यह न सोचा हो कि जिस सिद्धान्तका वह प्रचार कर रहे हैं वह आगे कितना खतरनाक साबित होगा, और वह परिस्थितिके अनुसार बदलनेकी क्षमता रखनेवाली

[1] छा० ८।१३।१		[2] छा० ६।१४।१ २

धाराधारा कंठावर समाजका प्रभाव पड़ने नदीका गँदला पानी बन जायेगा। मगर किसी दूसरे नद धार्मिक मार्गमें जो आग भागता, सिर्फ यहाँ है कष्ट पीड़ित जनताको दूसरी भाषा ना । जिसका भी अभिप्राय था कि यहाँ सामाजिक विषमताका जो सुन्दर चित्रण करना है उसके लिए सत्यकाम उपनिषद्‌का सहारा लेना होगा। इसी तोड़ आकर फिर जनमना (=पुनर्जन्म) का पीड़ित वर्गके लिए और भारी चीज है। इसमें यहाँ नहीं है कि आजके दुःखोंको भूल जाओ, बल्कि साथ ही यह भी बतलाया गया है कि यहाँकी सामाजिक विषमताएँ न्याय्य हैं, क्योंकि तुम्हारी ही पिछले जन्मकी तपस्याओं (=बुरा या आचारपूर्ण कर्मों)के कारण संसार ऐसा बना है। इन विषमताओंके बिना तुम अपने आजके अपने अस्तित्वकी पर्याप्ति (?) नहीं पा सकते। पुनर्जन्मके संबंधमें यह सब पुरातन वाक्य है[1]—

सो जो यहाँ रमणीय (=अच्छे) आचरण वाले हैं, यह जरूरी है कि वह रमणीय योनि—ब्राह्मण-योनि या क्षत्रिय-योनि या वैश्य-योनि—को प्राप्त हों। और जो बुरे (=आचार वाले) हैं, यह जरूरी है कि वह बुरी योनि—कुत्ता-योनि, सूकर-योनि, या चांडाल-योनिको प्राप्त हों।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको यहाँ मनुष्य-योनिके अन्तर्गत न मानकर उन्हें स्वतन्त्र योनियाँ करार दिया है, क्योंकि मनुष्य-योनि माननेपर समानताका सवाल उठ सकता था। पुरुष सूक्तके एक ही शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंवाली (?) बातको भी यहाँ भुला दिया गया, क्योंकि यद्यपि वह कल्पना भी सामाजिक अत्याचारपर पर्दा डालनेके लिए ही गढ़ी गई थी, तो भी वह उतनी दूर तक नहीं जाती थी। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको स्वतन्त्र योनिका दर्जा इसीलिए दिया गया, जिसमें सम्पत्तिके स्वामी इन तीनों वर्णोंकी वैयक्तिक सम्पत्ति और प्रभुताको धर्म (=कर्म-फल) द्वारा न्याय्य बतलाया जाय और वैयक्तिक सम्पत्तिके संरक्षक राज्यके हाथको धर्म द्वारा दृढ़ किया जाये।

---

[1] छां० ५।१०।७

(c) पितृयान—मरनके बाद सुकर्मी जब अपने कर्मोंका फल भोगने के लिए लोकान्तरमें जाते हैं, इसे यहाँ पितृयान (=पितरोंका मार्ग) कहा गया है। उसपर जानेका तरीका इस प्रकार है—

'जो ये ग्राममें (रहते) इष्ट आपूर्त (=यज्ञ, परोपकारके कर्म), दानकी सेवन करते हैं। वह (मरने बाद) धूममें संगत होते हैं। धूएँसे रात, रातसे अपर (=कृष्ण) पक्ष, अपर पक्षसे छै दक्षिणायन मासोंको प्राप्त होते हैं। मासोंसे पितृलोकको, पितृलोकसे आकाशको, आकाशसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं। वहाँ (=चन्द्रलोकमें) संपात (=मियाद)के अनुसार निवासकर फिर उसी रास्तेसे लौटते हैं—जैसे कि (चन्द्रमासे) इस आकाशको, आकाशसे वायुको, वायु हो धूम होता है, धूम हो बादल होता है, बादल हो मेघ होता है, मेघ हो बरसता है। (तब) वे (लौटे जीव) धान, जौ, ओषधि, वनस्पति तिल-उड़द हो पैदा होते हैं जो जो अन्न खाता है जो वीर्य सेचन करता है वह फिरसे ही होता है।'[1]

यहाँ चन्द्रलोकमें सुख भोगना फिर लौटकर पहिले उद्धृत वाक्यके अनुसार ब्राह्मण-योनि क्षत्रिय-योनि' में जन्म लेना पितृयान है।

(d) देवयान—मुक्त पुरुष जिस रास्तेसे अंतिम यात्रा करते हैं, उसे देवयान या देवताओंका पथ कहते हैं। पुराने वैदिक ऋषियोंको कितना आश्चर्य होता यदि वह सुनते कि देवयान वह है, जो कि उनको इन्द्र आदि देवताओंकी ओर नहीं ले जाता। देवयानवाला यात्री[2]—"किरणोंको प्राप्त होते हैं। किरणसे दिन दिनसे भरते (=शुक्ल) पक्ष भरते पक्षसे जो छै उत्तरायणके मास हैं उन्हें (उन) मासोंसे संवत्सर, संवत्सरसे आदित्य, आदित्यसे चन्द्रमा, चन्द्रमासे विद्युतको (प्राप्त होते हैं।) फिर अ-मानव पुरुष इन (देवयान-यात्रियों)को ब्रह्मके पास पहुँचाता है। यही देवपथ[3] ब्रह्मपथ है, इससे जानेवाले इस मानवकी लौटानमें नहीं लौटते, नहीं लौटते।"

---

[1] छां० ५।१०।१-६ [2] छां० ४।१५।५-६ [3] आगे (छां० ५।१०।१ २में) इसे देवयान ("एष देवयानः पन्थाः") कहा है।

(ज) अद्वैत—मुक्ति और उसके रास्तेका जो वर्णन यहाँ दिया गया है उससे स्पष्ट है, कि छांदोग्यके ऋषि जीवात्मा और ब्रह्ममें अंतरको पूर्णतया मिटानेको तैयार नहीं थे, तो भी वह बहुत दूर तक इस दिशामें जाते थे। यह इससे भी स्पष्ट है, कि शंकरने जिन चार उपनिषद् वाक्योंको अद्वैतका जबर्दस्त प्रतिपादक समझा, जिन्हें "महावाक्य" कहा गया, उनमें दो "सर्व खल्विदं ब्रह्म"[1] (=यह सब ब्रह्म ही है) और 'तत्त्वमसि'[2] (=वह तू है) छांदोग्य-उपनिषद्के हैं।

(झ) लोक विश्वास—यद्यपि कर्मकांडसे लोगोंका विश्वास हटता जा रहा था जब छांदोग्य ऋषि राजा जैवलि, और ब्राह्मण आरुणिने नया रास्ता दिखाया। उन्होंने पुनर्जन्म जैसे विश्वासको गढ़कर दाम कमाकर, आदि पीढ़ियोंसे जनताकी बंधन शृंखलाकी कड़ियाँको और भी मजबूत किया। भारतके बहुतसे भाववादी विचारक भी जान या अनजाने उन्हीं कड़ियोंको मजबूत करनेकेलिए जबकि आरुणि याज्ञवल्क्यकी दुहाई देते हैं—दर्शनशास्त्रके प्रथम पथिकोंकी प्रशंसाके तौरपर नहीं बल्कि उन्हें सबका जमा बनाकर। वह कितने भ्रमत थे, यह तो राहुके मुखमें चन्द्रमाके घुसने (=चंद्रग्रहण), तथा सूर्यलोकसे भी परे चन्द्रलोकके होनेकी बात ही से स्पष्ट है। इन विचारकोंकी नजरमें भौतिक शास्त्रका यह बड़ी भूलसी मालूम होनेवाली गलतियाँ 'सर्वज्ञता' पर कोई असर नहीं डालतीं धर्मोंटीपर परखकर देखने लायक ज्ञानमें भले ही गलती कोई भले ही करे, किन्तु ब्रह्मज्ञानपर उसका निशाना अचूक लगता यह तो यही साबित करता है कि ब्रह्मज्ञानके लिए अतिसाधारण बुद्धिसे भी काम चल सकता है।

चोरी या दूर कर्मकी सजा देनेकेलिए जब गवाही नहीं मिल सकती थी, तो उसके साबित करनेके लिए दिव्य (शपथ) करनेका रवाज बहुतसे मुल्कोंमें अभी बहुत पीछे तक रहा है। आरुणिके वक्तमें यह अतिप्रचलित प्रथा थी, जैसा कि यह वाक्य बतलाता है[3]—

---

[1] छां० ३।१४।१ [2] छां० ६।८।७ [3] छांदोग्य ६।१६।१ २

'सोम्य ! एक पुरुषको हाथ पकड़ कर लाते है— चुराया है, सो इसके लिए परशु (=फरसे) को तपाओ।' अगर वह (पुरुष) उस (चोरी) का कर्त्ता होता है, (तो) उससे ही अपनको झूठा करता है, वह झूठ दाववाला झूठमें अपनको गोपित कर तपे परशुको पकड़ता है, वह जलता है, तब (चोरीके लिए) मारा जाता है। और यदि वह उस (चोरी) का अ-कर्त्ता होता है, तो उससे ही अपनको सच कहता है, वह सच्च दाववाला सचसे अपनको गोपित कर तप परशुको पकड़ता है वह नहीं जलता, तब छोड़ दिया जाता है।

कोई समय था जब कि "दिव्य" के फरेबमें फँसाकर हजारों आदमी निरपराध जानसे मार जाते थे, किन्तु, आज कोई इमानदार इसकेलिए तैयार नहीं होगा। यदि दिव्य सचमुच दिव्य था, तो सबसे जबर्दस्त चोरों—जो यह कामचोर तथा संपत्तिके स्वामी—'ब्राह्मण, क्षत्रिय-वैश्य-योनियाँ' है—ने परखनेमें उसने क्या नहीं करामात दिखलाई?

छांदोग्यके अन्य प्रधान ऋषियोंके विचारोंपर हम आगे लिखेंगे।

(३) बृहदारण्यक (६०० ई० पू०)

(क) **संक्षेप**—बृहदारण्यक शुक्ल-यजुर्वेदके शतपथ ब्राह्मणका अन्तिम भाग तथा एक आरण्यक है। उपनिषदके सबसे बड़े दार्शनिक याज्ञवल्क्यके विचार इसीमें मिलते है इसलिए उपनिषत्-साहित्यमें इसका स्थान बहुत ऊँचा है। याज्ञवल्क्यके बारेमें हम अलग लिखने-वाले है, तो भी सार उपनिषदके परिचयकेलिए संक्षेपमें यहाँ कुछ कहना जरूरी है। बृहदारण्यकमें छै अध्याय हैं जिनमें द्वितीय तृतीय और चतुर्थ दार्शनिक महत्त्वके है। बाकीमें शतपथ ब्राह्मणकी कर्मकांडी धारा बह रही है। पहिले अध्यायमें यज्ञीय अश्वकी उपमासे सृष्टिपुरुषका वर्णन है फिर मृत्यु सिद्धान्तका। दूसरे अध्यायमें तत्त्वज्ञानी काशिराज अजातशत्रु और अभिमानी ब्राह्मण गार्ग्यका संवाद है, जिसमें गार्ग्यका अभिमान चूर होता है, और वह क्षत्रियके चरणोंमें ब्रह्मज्ञान सीखनेकी इच्छा प्रकट करता है। दध्यच् आथर्वणके विचार भी इसी अध्यायमें है। तीसरे

अध्यायमें याज्ञवल्क्यके दर्शन होते हैं। वह जनकके दरबारमें दूसरे दार्शनिकोंसे शास्त्रार्थ कर रहे हैं। चौथे अध्यायमें याज्ञवल्क्यका जनकको उपदेश है। पाँचवें अध्यायमें धर्म आचार तथा दूसरी कितनी ही बातोंका जिक्र है। छठे अध्यायमें याज्ञवल्क्यके गुरु (आरुणि)के गुरु प्रवाहण जवलिके बारेमें कहा गया है। इसी अध्यायमें अच्छी सन्तानकेलिए साँड, बैल आदिके मांस खानेकी गर्भिणीको हिदायत दी गई है जो बतलाता है कि अभी ब्राह्मण क्षत्रिय गोमांसको अपना प्रिय खाद्य मानते थे।

जिस तरह आजके हिन्दू दार्शनिक अपने विचारोंकी सच्चाईकेलिए उपनिषद्की दुहाई देते हैं उसी तरह बृहदारण्यक उपनिषद चाहता है, कि वेदोंका मन्त्र ऊँचा रहे। इसीलिए अपनी पुष्टिकेलिए कहता है[1]—

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वांगिरस इतिहास पुराण विद्या, उपनिषद श्लोक सूत्र, अनुव्याख्यान इस महान् भूत (=ब्रह्म)का श्वास है, इसीके ये सारे निश्वसित हैं।

इतना होनेपर भी वेद और ब्राह्मणोंके यज्ञादिसे लोगोंकी श्रद्धा उठती जा रही थी इसमें तो शक ही नहीं। इस तरहके विचार-स्वातन्त्र्यको खतरनाक न बनने देनेके प्रयत्नमें पुरोहित (=ब्राह्मण) जातिकी अपेक्षा शासक (=क्षत्रिय) जातिका हाथ काफी था इसीलिए छान्दोग्यने कहा[2]—

'चूँकि तुमसे पहिले यह विद्या ब्राह्मणोंके पास नहीं गई, इसीलिए सारे लोकोंमें (*ब्राह्मणका नहीं बल्कि सिर्फ*) क्षत्र (=क्षत्रिय)*का ही* शासन हुआ।

इसमें कौन सन्देह कर सकता है कि राजनीति—खासकर वर्गस्वार्थवाली राजनीति—को चलानेकेलिए पुरोहितोंसे ज्यादा पैनी बुद्धि चाहिए। लेकिन समाजमें ब्राह्मणकी सबसे अधिक सम्मानवाली अवस्थाको बृहदारण्यक समझता था। इसीलिए विद्याभिमानी ब्राह्मण गार्ग्य जब उशीनर

[1] बृ० २।४।१० [2] छा० ५।३।७

जगत ब्रह्मका एक रूप है। पियागोर और दूसरे जगत्को ब्रह्मका शरीर माननेवाले दार्शनिकोंकी भाँति यहाँ भी जगत्को ब्रह्मका एक रूप कहा गया और फिर[1]—

ब्रह्मके दो ही रूप है—मूर्त (=साकार) और अ-मूर्त (=निराकार) मर्त्य (=नाशमान) और अमृत (=अविनाशी)।'

पुराने धर्म विश्वासी ईश्वरको संसारमें पाये जानेवाले भले पुरुषोंके गुणों—कृपा, क्षमा आदिसे—युक्त, भावात्मक गुणोंवाला मानते थे किन्तु अब श्रद्धासे आगे बढ़कर विकसित बुद्धिके रास्तेसे लोग घुस चुके थे, इसलिए उनको समझाने या अपने वाक्यको तर्कसंगत बनाने एवं पकड़में न आनेकेलिए, ब्रह्मको अभावात्मक गुणोंवाला कहना ज्यादा उपयोगी था। इसीलिए बृहदारण्यकमें हम पाते है —

"(वह) न स्थूल न सूक्ष्म (=अणु), न ह्रस्व, न दीर्घ, न लाल, न छाया न तम न संग रस-गंधवाला, न आँख-कान-वाणी-मन प्राण-मुखवाला, न आन्तरिक न बाहरी, न वह किसीको खाता है, न उसे कोई खाता है।"[2]

ब्रह्मके गुणोंका अन्त नहीं—'नेति नेति'[3] इस तरहका विशेषण भी ब्रह्मकेलिए पहिले-पहिल इसी वक्त दिया गया है।

(ग) सृष्टि—ऋग्वेदके नासदीय सूक्तकी कल्पनाको जारी रखते हुए बृहदारण्यक कहता है —

यह कुछ भी पहिले न था, मृत्यु (=जीवन शून्यता), भूखसे यह ढँका हुआ था। भूख (=अशनाया) मृत्यु है। सो उसने मनमें किया—मैं आत्मावाला (=सशरीर) होऊँ।' उसने अर्चन (=चाह) किया। उसके अर्चनपर जल पैदा हुआ। ... जो जलका सार था, वह कड़ा हुआ। वह पृथिवी हुई। उस (=पृथिवी)में श्रान्त हो (=थक) गया। श्रान्त तप्त उस (ब्रह्म)का जो तेज (-रूपी) रस बना (वही) अग्नि (हुआ)।'[4]

---

[1] बृह० २।३।१ [2] बृह० ३।८।८ [3] बृह० २।३।६
[4] बृह० १।२।१ २

यूनानी दार्शनिक थल (६४० ५५० ई० पू०) की भांति यहां भी भौतिक तत्त्वोंमें सबसे प्रथम जलको माना गया है, पृथिवीका नंबर दूसरा और आगका तीसरा है।

दूसरी जगह सृष्टिका वर्णन इन शब्दोंमें किया गया है[1]—

"आत्माही यह पहिले पुरुष जैसा था। उसने नजर दौड़ाकर अपनेसे भिन्न (किसी)को नहीं देखा। (उसने) मैं हूँ (सोऽहं) यह पहिले कहा। इसीलिए अहं' नामवाला हुआ। इसीलिए आज भी बुलानेपर (=मैं) अहं पहले कहकर पीछे दूसरा नाम बोला जाता है। वह डरा। इसीलिए (आज भी) अकेला (आदमी) डरता है। 'उसने दूसरेकी चाह की।' उसने (अपने) इसी ही आत्मा (=शरीर)का दो भाग किया, उससे पति और पत्नी हुए।

और भी[2]—

'ब्रह्मही यह पहिले था, उसने अपनको जाना—मैं ब्रह्म हूँ उससे वह सब हुआ। तब देवताओंमेंसे जो-जो जागा, वह ही वह हुआ। वैसे ही ऋषियों और मनुष्योंमेंसे भी जो ऐसा जानता है—मैं ब्रह्म हूँ (=अहं ब्रह्मास्मि), वह यह सब होता है। और जो दूसरे देवताकी उपासना करता है—'वह दूसरा, मैं दूसरा हूँ' वह नहीं जानता वह देवताओंके पशु जैसा है।'

आत्मा (=ब्रह्म)से कैसे जगत होता है, इसकी उपमा देते हुए कहा है[3]—

"जैसे आगसे छोटी चिंगारियाँ (=विस्फुलिंग) निकलती हैं, इसी तरह इस आत्मा (=विश्वात्मा ब्रह्म)से सारे प्राण (=जीव), सारे लोक सारे देव सारे भूत निकलते हैं।'

बृहदारण्यकके और दार्शनिक विचारोंके बारेमें हम आगे याज्ञवल्क्य, आदिके प्रकरणमें कहेंगे।

---

[1] बृह० १।४।१४　[2] बृह० १।४।१०　[3] वहीं २।१।२०

२ द्वितीय कालकी उपनिषदें (६००-५०० ई० पू०)

ईश उपनिषद् संहिताका एक भाग है। छान्दोग्य, बृहदारण्यक, ब्राह्मणके भाग हैं यही तीन सबसे पुरानी उपनिषदें हैं, यह हम बतला आए हैं। आगकी आरण्यकोंवाली ऐतरेय और तैत्तिरीय उपनिषदोंने एक कदम और आगे बढ़कर मध्यकालीन उपनिषदोंसे कुछ और स्पष्ट भाषामें ज्ञानका समर्थन और कर्मकाण्डका अवहेलना शुरू की।

(१) ऐतरेय-उपनिषद्

ऐतरेय-उपनिषद् ऋग्वेदके ऐतरेय आरण्यकका एक भाग है। ऐतरेय ब्राह्मण और आरण्यक दोनोंके रचयिता महिदास ऐतरेय थे। इस उपनिषदके तीन भाग हैं। पहिले भागमें सृष्टिका ब्रह्मसे क्रम बतलाया, इसे बतलाया गया है। दूसरे भागमें तीन जन्मोंका वर्णन है जो शायद पुनर्जन्मके प्रतिपादक अति प्राचीनतम वाक्योंमें है। अन्तिम भागमें प्रज्ञानवादका प्रतिपादन है।

(क) **सृष्टि**—विश्वकी सृष्टि कैसे हुई। इसके बारेमें महिदास ऐतरेयका कहना है[1]—

यह आत्मा अकेला ही पहिले प्राणित (=जीवित) था, और दूसरा कुछ भी नहीं था। उसने ईक्षण किया (=मनमें किया)—'लोकोंको सिरजूँ। उसने इन लोकों—जल किरणों को सिरजा। उसने ईक्षण किया कि ये लोकपालोंको सिरजें। उसने पानीसे ही पुरुषको उठाकर कम्पित किया उसे तपाया। तप्त करनेपर उसका मुख उसी तरह फूट निकला जैसे कि अंडा। (फिर) मुखसे वाणी वाणीसे आग नाकमें नथने फूट निकले, नथुनोंसे प्राण, प्राणसे वायु। आँखें फूट निकलीं। आँखोंसे चक्षु (इन्द्रिय) चक्षुसे आदित्य (=सूर्य)। दोनों कान फूट निकले। कानोंसे श्रोत्र (-इन्द्रिय)। श्रोत्रसे दिशाएँ। त्वक्

---

[1] ऐतरेय १।१ ३

(=चमडा) फूट निकला। चमडसे राम रामोंसे ओषधि-वनस्पतियाँ। हृदय फूट निकला। हृदयसे मन, मनसे चन्द्रमा। नाभि फूट निकली। नाभिसे अपान(-वायु), अपानसे मृत्यु। शिश्न (=जननेन्द्रिय) फूट निकला। शिश्नसे वीर्य वीर्यसे जल। (फिर) उस (पुरुष)के साथ भूख प्यास लगा दी।'

सृष्टिकी यह एक बहुत पुरानी कल्पना है जिसे कि वर्णनकी भाषा ही बतला रही है। उपनिषत्कार एक ही वाक्यमें शरीर तथा उसकी इन्द्रियाँ, एवं विश्वके पदार्थोंकी भी रचना बतलाना चाहता है।—पानीसे मानुष शरीर और उसमें क्रमश मुख आदिका फूट निकलना। किन्तु अभी ऋषि भौतिक विश्वसे पूर्णतया इन्कार नहीं करना चाहता इसीलिए क्रम विकासका आश्रय लेता है। उस कुन फ-यकून (=होजा बस होगया) कहनेकी हिम्मत न थी।

(ख) प्रज्ञान (=**ब्रह्म**)—ज्ञान या चेतनाको ऋषिने यहाँ प्रज्ञान कहा है जैसा कि उसके इस वचनसे मालूम होता है[1]—

स ज्ञान, आ ज्ञान विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा दृष्टि धृति (=धैर्य), मति, मनीषा, जुति स्मृति सकल्प क्रतु असु (=प्राण), काम (=कामना), वश ये सभी प्रज्ञानके नाम हैं।

फिर चराचर जगतको प्रज्ञानमय बतलाते हुए कहता है—

'यह (प्रज्ञान ही) ब्रह्मा है। यह इन्द्र (यही) ये पाँच महाभूत अण्डज जारुज स्वेदज और उद्भिज, घोडे, गाय, पुरुष हाथी, जो कुछ चलने और उडनेवाले प्राणी हैं जो स्थावर है, वह सब प्रज्ञा नेत्र है प्रज्ञानमें प्रतिष्ठित हैं। लोक (भी) प्रज्ञा नेत्र है प्रज्ञा (सबकी) प्रतिष्ठा (=आधार) है। प्रज्ञान ब्रह्म है।

प्रज्ञान या चेतनाको ऋषि सर्वत्र उसी तरह देख रहा है लेकिन जगत्के पदार्थोंसे इन्कार करके प्रज्ञानको इस प्रकार देखना अभी नहीं हो रहा है,

---

[1] ऐतरेय ३।२

बल्कि जगतके भीतरकी क्रियाओं और हरकतोंको देखकर वह अपने समकालीन यूनानी दार्शनिकोंकी भाँति विश्वको सजीव समझकर वैसा कह रहा है।

(२) तैत्तिरीय उपनिषद्

तैत्तिरीय उपनिषद् कृष्ण-यजुर्वेदके तैत्तिरीय आरण्यकका एक भाग है। इसके तीन अध्याय हैं, जिनमें ब्रह्म सृष्टि आनन्दकी-सीमा, आचार्यका शिष्यकेलिए उपदेश आदिका वर्णन है।

(क) ब्रह्म—ब्रह्मके बारेमें सन्देह करनेवालेको तैत्तिरीय कहता है—

'ब्रह्म अ-सत् है' ऐसा जो समझता है, वह अपने भी असत् ही होता है। ब्रह्म सत् है जो समझता है उसे सन्त कहते हैं।'[1]

ब्रह्मकी उपासनाके बारेमें कहता है—

वह (ब्रह्म) प्रतिष्ठा है ऐसे (जो) उपासना करे वह प्रतिष्ठावाला होता है। 'वह मह है' ऐसे जो उपासना करे तो महान् होता है। 'वह मन है' ऐसे उपासना करे तो वह मानवान् होता है । वह परिमरह यदि ऐसे उपासना करे तो द्वेष रखनेवाले शत्रु उससे दूर ही मर जाते हैं।"

इस प्रकार तैत्तिरीयकी ब्रह्म-उपासना अभी राग-द्वेषसे बहुत ऊँचे नहीं उठी है, और वह शत्रु-संहारका भी साधन हो सकती है। ब्रह्मकी उपासना और उसके फलके बारेमें और भी कहा है—

वह जो यह हृदयके भीतर आकाश है। उसके अन्दर यह मनोमय अमृत हिरण्मय (=सुनहला) पुरुष है। तालुके भी भीतरकी ओर जो यह स्तन सा (=क्षुद्र घंटिका) लटक रहा है। वह इन्द्र (=आत्मा)की योनि (=मूल स्थान) है। (जो ऐसी उपासना करता है) वह स्वराज्य पाता है मनके पतिको पाता है। उससे (वह) वाक्-पति, चक्षु-पति, श्रोत्र-पति विज्ञान-पति होता है। ब्रह्म आकाश-शरीरवाला है।"[2]

ब्रह्मको अन्तस्तम तत्त्व आनन्दमय आत्मा बतलाते हुए कहा है[3]—

[1] तै० २।६ [2] तै० १।६।१ २ [3] वहीं २।२ ५

"इस अन्न रसमय आत्मा (शरीर)से भिन्न आन्तरिक आत्मा प्राणमय ह, उससे यह (शरीर) पूर्ण ह, और वह यह (=प्राणमय शरीर) पुरुष जसा ही ह। उस इस प्राणमयसे भिन्न मनोमय ह, उससे यह पूर्ण ह। वह यह (=मनोमय शरीर) पुरुष जसा ही है। उस मनोमयसे भिन्न विज्ञानमय(=जीवात्मा) है। उससे यह पूर्ण ह। उस विज्ञानमयसे भिन्न आनन्दमय(=ब्रह्म) आत्मा ह। उससे यह पूर्ण ह। वह यह(=विज्ञानमय आत्मा) पुरुष जसा ही ह।"

यहाँ आत्मा शब्द शरीरसे ब्रह्मतकका वाचक ह। आत्माका मूल अर्थ शरीर अभी भी चला आता था।—अध्यात्मसे 'शरीरके भीतर' यह अर्थ पुराने उपनिषदोंमें पाया जाता ह किन्तु धीरे धीरे आत्मा शब्द शरीरका प्रतियोगी, उससे अलग तत्त्वका वाचक, बन जाता ह। आनन्दमय शब्द ब्रह्मका वाचक ह इसे सिद्ध करनेकेलिए बादरायणने सूत्र लिखा 'आनन्दमयोऽभ्यासात्'[1] (=आनन्दमय ब्रह्मवाचक ह क्योंकि वह जिस तरह दुहराया गया ह उससे वही अर्थ लिया जा सकता ह)।

आनन्द ब्रह्मके बारेमें एक कल्पित आख्यायिकाका सहारा ले उपनिषत्कार कहता ह—[2]

'भृगु वारुणि(=वरुण-पुत्र) (अपने) पिता वरुणके पास गया (और बोला)—भगवन्! (मुझे) ब्रह्म सिखलायें। उस (वरुणने) यह कहा। ।'जिससे यह भूत उत्पन्न होते (=जन्मते) ह, जिससे उत्पन्न हो जीवित रहते ह जिसके पास जाते (जिसके) भीतर समाते ह। उसकी जिज्ञासा करो वह ब्रह्म ह।'[3] उस(=भृगु)ने तप किया। तप करके अन्न ब्रह्म है यह जाना। 'अन्नसे ही यह भूत जन्मते ह, जन्म ले अन्नसे जीवित

---

[1] वेदान्त-सूत्र १।१।   [2] तत्तिरीय ३।१ ६

[3] "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" (=अब यहाँसे ब्रह्मकी जिज्ञासा आरम्भ करते ह), "जन्माद्यस्य यतः" (इस विश्वके जन्म आदि जिससे होते ह), वेदान्तके प्रथम और द्वितीय सूत्र इसी उपनिषद-वाक्यपर अवलम्बित ह।

रहते हैं अन्नमें जाते भीतर घुसते हैं। इसे जानकर फिर (भृगु) पिता वरुणके पास गया—भगवन्! ब्रह्म सिखायें। उसको (वरुणने) कहा—तपसे ब्रह्मकी जिज्ञासा करो, तप ब्रह्म है। उसने तप करके विज्ञान ब्रह्म है यह जाना। तप करके आनन्द ब्रह्म है यह जाना।

भिन्न भिन्न स्थानोंमें अवस्थित होते भी ब्रह्म एक है इसके बारेमें कहा है—

वह जो कि यह पुरुषमें और जो यह आदित्यमें है, वह एक है।[1]

ब्रह्म मन वचनका विषय नहीं है—

(जहाँ) बिना पहुँचे जिससे मनके साथ वचन लौट आते हैं, वही ब्रह्म है।[2]

(ग) सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म—ब्रह्मसे विश्वके जन्मादि होते हैं इसका एक उद्धरण दे आए हैं। तैत्तिरीयके एक वचनके अनुसार पहिले विश्व अ-सत् (=सत्ताहीन कुछ नहीं) था जैसे कि—

'असत् ही यह पहिले था। उससे सत् पैदा हुआ। उसने अपनेको स्वयं बनाया। इसीलिए उसे (=विश्वको) सु-कृत (अच्छा बनाया गया) कहते हैं।

ब्रह्मने सृष्टि कैसे बनाई?—

उसने कामना की 'बहुत होऊँ जन्माऊँ'। उसने तप किया। उसने तप करके यह जो कुछ है, इस सब (जगत्)को सिरजा। उसको सिरजकर फिर उसमें प्रविष्ट हो गया। उसमें प्रविष्टकर सत् और त्यत् (=वह) हो गया, व्याख्यात और अव्याख्यात, निलयन (=छिपनेकी जगह) और अ-निलयन, विज्ञान और अ-विज्ञान (अ-चेतन) सत्य और अनृत (=अ-सत्य) हो गया।[3]

(घ) आचार्य उपदेश—आचार्यने शिष्योंकेलिए अन्तिम उपदेश तैत्तिरीयमें इन शब्दोंमें लिखाया है—

---

[1] तै० २।८ [2] वहीं २।७ [3] वहीं २।६

वद पढाकर आचार्य अन्तेवासी (=शिष्य) को अनुशासन (=उपदेश) देता है—सत्य बोल धर्माचरण कर, स्वाध्यायमें प्रमाद न करना। आचार्यके लिए प्रिय धन (=गुरु दक्षिणाके तौर पर) लाकर प्रजा-तन्तु (=सन्तान परंपरा) को न तोड़ना। देवों पितरोंके कामम प्रमाद न करना। माताको देव मानना पिताको देव मानना आचार्यको देव मानना, अतिथिको देव मानना। जो हमारे निर्दोष कर्म है, उन्हींको सेवन करना दूसरोंको नहीं।'[1]

३–तृतीय कालकी उपनिषदें (५००-४०० ई० पू०)

(१) प्रश्न-उपनिषद्

जैसा कि इसके नामसे ही प्रकट होता है, यह छै ऋषियोंके पिप्पलादके पास पूछे प्रश्नोंके उत्तरोंका संग्रह है।

प्रश्नमें निम्न बात बतलाई गई है[1]—

(क) मिथुन (=जोड़ा) वाद—"भगवन्! यह प्रजाएं कहाँसे पैदा हुई?"

'उसको (पिप्पलादने) ने उत्तर दिया—प्रजापति प्रजा (पैदा करने) की इच्छावाला (हुआ) उसने तप किया। उसने तप करके 'यह मेरे लिए बहुतसी प्रजाओंको बनायेंगे (इस ख्यालसे) मिथुन (=जोड़े) को उत्पन्न किया—रयि (=धन, भूत) और प्राण (=जीवन) को। आदित्य प्राण है चन्द्रमा रयि ही है ।। संवत्सर प्रजापति है उसके दक्षिण और उत्तर दो अयन हैं। जो पितृयान (के छ मास) है, वही रयि है। मास प्रजापति है, उसका कृष्णपक्ष रयि है शुक्ल (=पक्ष) प्राण है। दिन रात प्रजापति है, उसका दिन प्राण है, रात रयि है।'

इस प्रकार प्रश्न उपनिषदका प्रधान ऋषि पिप्पलाद विश्वको दो दो (=मिथुन) तत्त्वोंमें विभक्त कर उसे द्वैतमय मानता है, यद्यपि रयि और

[1] प्र० १।३–१३

प्राण दानों मिलकर प्रजापतिके रूपमें एक हो जाते हैं।

(ख) सृष्टि—एक प्रश्न है[1]—

भगवन् ! प्रजाको (=सृष्टि)को कितने देव धारण करते हैं? कौनसे देव प्रकाशित करते हैं, कौन उनमें सर्वश्रेष्ठ है?' उनको उस (=पिप्पलाद ऋषि)ने बतलाया—(प्रजाको धारण करनेवाला) यह आकाश देव है, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाणी, मन, नेत्र और श्रोत्र (देव) हैं। वह प्रकाश करके कहते हैं 'हम इस बाण (=शरीर) को रोककर धारण करते हैं।' उनसे सर्वश्रेष्ठ (देव) प्राणने कहा—'मत मूढ़ता करो, मैं ही अपनेको पाँच प्रकारसे विभक्त कर इस बाणको रोककर धारण करता हूँ।' उन्होंने विश्वास नहीं किया। वह अभिमानसे निकलने लगा। उस (=प्राण)के निकलते ही दूसरे सारे ही प्राण (=इंद्रिय) निकल जाते हैं, उसके ठहरनेपर सभी ठहरते हैं। जैसे (शहदकी) सारी मक्खियाँ मधुकरराजा (=रानी मक्खी)के निकलने पर निकलने लगती हैं, उसके ठहरनेपर सभी ठहरती हैं। वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्रने प्राणकी स्तुति की—यही तप रहा अग्नि है, यह सूर्य पर्जन्य (=वृष्टि-रचना) मघवा (=इन्द्र) यही वायु है, यही पृथिवी रयि देव है जो कुछ कि सत् असत् और अमृत है। (हे प्राण !) जो तेरा शरीर या वचनमें स्थित है, जो श्रोत्र या नेत्रमें (स्थित है) जो मनमें फैला हुआ है, उसे शान्त कर, (और शरीरसे) मत निकल।

इस प्रकार पिप्पलादने प्राण (=जीवन या विज्ञान)को सर्वश्रेष्ठ माना, और रयि (या भौतिक तत्त्व)को द्वितीय या गौण स्थान दिया।

(ग) स्वप्न—स्वप्न अवस्था पिप्पलादकेलिए एक बहुत ही रहस्य पूर्ण अवस्था थी। वह समझता था कि वह परम पुरुष या ब्रह्मके मिलनेका समय है। इसके बारेमें गार्ग्यके प्रश्नका उत्तर देते हुए पिप्पलादने कहा[2]—

[1] प्रश्न २।१-१२ [2] प्रश्न ४।२

"जैसे गार्ग्य ! अस्त होते सूर्यके तेजोमंडलमें सारी किरणें एकत्रित होती है, (सूर्यके) उदय होने वक्त वह फिर फैलती है, इसी तरह (स्वप्नमें) वह सब (इंद्रियाँ) उस परमदेव मनमें एक होती है। इसी लिए तब यह पुरुष न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, (उसकेलिए) 'सो रहा है' इतना ही कहते है।"

"वह जब तेजसे अभिभूत (=मद्धिम पड़ा) होता है, तब यह देव स्वप्नोंको नही देखता, तब यह इस शरीरमें सुखी होता है।"[1]

"मन यजमान है, अभीष्ट फल उदान है। यह (उदान) इस यजमानको रोज रोज (सुप्तावस्थामें) ब्रह्मके पास पहुँचाता है।"[2]

"यहाँ सुप्तावस्थामें यह देव (अपनी) महिमाको अनुभव करता है और देखे-देखेके पीछे देखता है, सुने सुनेके पीछे सुनता है देखे और न देखे, सुने और न सुने अनुभव किये और न अनुभव किये, सत और असत, सबको देखता है, सबको देखता है।

(घ) **मुक्तावस्था**—मुक्तावस्थाके बारेमें इस उपनिषद्का कहना है[3]—

"जैसे कि नदियाँ समुद्रमें जा अस्त हो जाती हैं उनका नाम और रूप छूट जाता है, 'समुद्र' बस यही कहा जाता है, इसी तरह पुरुष (ब्रह्म)को प्राप्त हो इस परिद्रष्टाके यह सोलह कला अस्त हो जाती हैं। उनके नाम-रूप छूट जाते हैं, उसे 'पुरुष' बस यही कहा जाता है। वही यह कला-रहित अमृत है।"

असत्य भाषणके बारेमें कहा है—"जो झूठ बोलता है, वह जड़से सूख जाता है।"[4]

(२) केन-उपनिषद्

ईशकी भाँति केन-उपनिषद् भी 'केन' से शुरू होता है, इसलिए इसका यह नाम पड़ा। केनके चार खंडोंमें पहिले दो पद्यमें हैं, और अन्तिम दो

[1] प्रश्न ४।६	[2] प्रश्न ४।४	[3] प्रश्न ६।५	[4] प्रश्न ६।१

गद्यमें। पद्य-खंडमें आत्माको शरीरसे अलग तथा इन्द्रियोंका प्रेरक होना सिद्ध किया गया है और बतलाया गया है कि वही चरम सत्य तथा पूजनीय है। उपसंहारमें (रहस्यवादी भाषामें) कहा है[1] "जो जानते हैं वह वस्तुतः नहीं जानते, जो नहीं जानते वही उसे जानते हैं।" आत्माको सिद्ध करते हुए केनने कहा है—

'जो श्रोत्रका श्रोत्र, मनका मन वचनका वचन और प्राणका प्राण, आँखकी आँख है (ऐसा समझनेवाले) धीर अत्यन्त मुक्त हो इस लोकसे जाकर अमृत हो जाते हैं।'

ब्रह्म छोड़ दूसरेकी उपासना नहीं करनी चाहिए—

'जो वाणीसे नहीं बोला जाता जिससे वाणी बोली जाती है, उसीको तू ब्रह्म जान, उसे नहीं जिसे कि (लोग) उपासते हैं।

'जो मनसे मनन नहीं किया जाता जिससे मन जाना गया कहते हैं, उसीको तू ब्रह्म जान,

'जो प्राणसे प्राणन करता है जिससे प्राण प्राणित किया जाता है, उसीको तू ब्रह्म जान॰[1]।

केनके गद्य भागमें जगतके पीछे छिपी अपरिमेय शक्तिको बतलाया गया है।

(३) कठ उपनिषद्

(क) नचिकेता-यम-समागम—कठ-शाखाके अन्तर्गत होनेसे इस उपनिषद्का नाम कठ पड़ा है। यह पद्यमय है। भगवद्गीताने इस उपनिषद्से बहुत लिया है, और 'उपनिषद्रूपी गायसे कृष्णने अर्जुनके लिए गीतामृत दूधका दोहन किया' यह कहावत कठके संबंधसे है। नचिकेता और यमकी प्रसिद्ध कथा इसी उपनिषद्में है। नचिकेताका पिता अपनी सारी सम्पत्तिका दान कर रहा था, जिसमें उसकी अत्यन्त बूढ़ी

---

[1] "यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥" केन २।३

गायें भी थी। नचिकेता इन गायोको दानके अयोग्य समझता था, इसलिए उसने सोचा¹—

"पानी पीना तृण खाना दूध दुहना जिन (गायो)का खतम हो चुका है उनका देनेवाला (=दाता) आनन्दरहित लोकमे जाता है।"

नचिकेताकी समझमे यह नही आया कि सर्वस्व-दानमें यह निरर्थक वस्तुए भी शामिल हो सकती है। यदि सर्वस्व शब्दका अर्थ शब्दश लिया जाये तो फिर मै भी उसमें शामिल हूँ। इसपर नचिकेताने पितासे पूछा— "मुझे किसे देते हो?" पुत्रको प्रश्न दुहराते देख गुस्सा हो पिताने कहा— "तुझे मृत्युको देता हूँ।" नचिकेता मृत्युके देवता (=यम)के पास गया। यम कही बाहर दौरेपर गया हुआ था। उसके परिवारने अतिथिको खाने पीनेके लिए बहुत आग्रह किया, किन्तु, नचिकेताने यमसे मिले बिना कुछ भी खानेसे इन्कार कर दिया। तीसरे दिन यमने अतिथिको इस प्रकार भूखे प्यासे घरपर बैठा देखकर एक सद्गृहस्थकी भाति खिन्न हुआ, और नचिकेताको तीन वर मांगनेकेलिए कहा। इन वरोमे तीसरा सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसे नचिकेताने इस प्रकार मांगा था²—

"जो यह मरे मनुष्यके बारेमें सन्देह है। कोई कहता है "है" कोई कहता है 'यह (=जीव) नही है।' तुम ऐसा उपदेश दो कि मै इसे जानूं। वरोमे यह तीसरा वर है।"

यम— इस विषयमें देवोने पहिले भी सन्देह किया था। यह सूक्ष्म धर्म (=बात) जाननेमें सुकर नही है। नचिकेता! दूसरा वर मांगो, मत आग्रह करो, इसे छोड दो।"

नचिकेता—"देवोने इसमें सन्देह किया था, हे मृत्यु! जिसे तुम 'जाननेमें सुकर नही' कहते। तुम्हारे जैसा इसका बतलानेवाला दूसरा नही मिल सकता, इसके समान कोइ दूसरा वर नही।"

यम— मर्त्यलोकमें जो जो काम (=भोग) दुर्लभ है, उन सभी

¹कठ १।१।३　　²कठ १।१।२०—

कामोंको स्वेच्छासे माँगो। रथों वाद्योंके साथ मनुष्योंके लिए अलभ्य यह रमणियाँ हैं। नचिकेता! मेरी दी हुई इन (=रमणियों)के साथ मौज करो—मरणके संबंधमें मुझसे मत प्रश्न पूछो।'[1]

नचिकेता—"कल इनका अभाव (होनेवाला है)। हे अन्तक! मर्त्य (=मरणधर्मा मनुष्य)की इंद्रियोंका तेज क्षीण होता है। बल्कि सारा जीवन ही थोड़ा है। ये घोड़े तुम्हारे ही रहें नृत्य-गीत तुम्हारे ही (पास) रहें। जिस महान परमात्माके विषयमें (लोग) सन्देह करते हैं हे मृत्यु! हमें उसीके विषयमें बतलाओ। जो यह अतिगहन वर है, उससे दूसरेको नचिकेता नहीं माँगता।'

इसपर यमने नचिकेताको उपदेश देना स्वीकार किया।

(ख) ब्रह्म—ब्रह्मका वर्णन कठ-उपनिषद्में कई जगह आया है। एक जगह उसे पुरुष कहा गया है[2]—

इंद्रियोंसे परे (=ऊपर) अर्थ (=विषय) हैं, अर्थोंसे परे मन, मनसे परे बुद्धि, बुद्धिसे परे महान् आत्मा (=महत् तत्त्व) है। महान्से परे परम अव्यक्त (=मूल प्रकृति), अव्यक्तसे परे पुरुष है। पुरुषसे परे कुछ नहीं वही पराकाष्ठा है, वही (परा) गति है।

फिर कहा है[3]—

ऊपर मूल रखनेवाला, नीचे शाखा वाला यह अश्वत्थ (वृक्ष) सनातन है। वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, उसीको अमृत कहा जाता है, उसीमें सारे लोक आश्रित हैं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता। यही वह (ब्रह्म) है।'

और[4]—अणुसे अत्यन्त अणु महान्से अत्यन्त महान् (वह) आत्मा इस जन्तुकी गुहा(=हृदय),में छिपा हुआ है।

और भी—

---

[1] कठ १।१।१०–११ [2] कठ २।६।१ [3] कठ १।२।२० [4] कठ २।५।१५

"वहाँ सूर्य नहीं प्रकाशता न चाँद तारे, न यह बिजलियाँ प्रकाशती, (फिर) यह आग कहाँसे प्रकाशेगी। उसी (=ब्रह्म)के प्रकाशित होनेपर सब पीछेसे प्रकाशते हैं, उसीकी प्रभासे यह सब प्रकाशता है।[1]

और भी[2]—

'जैसे एक आग भुवनमें प्रविष्ट हो रूप रूपमें प्रतिरूप होती है, उसी तरह सारे भूतोंका एक अन्तरात्मा है, जो रूप रूपमें प्रतिरूप तथा बाहर भी है।"

सर्वव्यापक होते भी ब्रह्म निर्लेप रहता है[2]—

'जैसे सारे लोककी आँख (=सूर्य) आँख-संबंधी बाहरी दोषोंसे लिप्त नहीं होता वैसे ही सारे भूतोंका एक अन्तरात्मा (=ब्रह्म) लोकके बाहरी दुःखोंसे लिप्त नहीं होता। ब्रह्मकी रहस्यमयी सत्ताके प्रतिपादनमें रहस्यमयी भाषाका प्रचुर प्रयोग पहिलेपहिल कठ-उपनिषदमें किया गया है। जैसे[3]—

'जो सुननेके लिए भी बहुतोंको प्राप्य नहीं है। सुनते हुए भी बहुतेरे जिसे नहीं जानते। उसका वक्ता आश्चर्य (-मय) है उसका प्राप्त करनेवाला कुशल (=चतुर) है कुशल द्वारा उपदिष्ट ज्ञाता आश्चर्य (पुरुष) है।'

अथवा[4]—

'बैठा हुआ दूर पहुँचता है, लेटा सर्वत्र जाता है। मेरे बिना उस मद अमद देवको कौन जान सकता है?"

(ग) आत्मा (=जीव)—जीवात्माका वर्णन जिस प्रकार कठ उपनिषद्ने किया है, उससे उसका झुकाव आत्मा और ब्रह्मकी एकता (=अद्वैत)की ओर नहीं जान पड़ता। आत्मा शरीरसे भिन्न है इसे इस श्लोकमें बतलाया गया है जिसे भगवद्गीताने भी अनुवादित किया है[5]—

"(वह) ज्ञानी न जन्मता है न मरता है, न यह कहींसे (आया) न कोई हुआ। यह अजन्मा नित्य, शाश्वत, पुराण है। शरीरके हत होनेपर

[1] कठ २।५।६ [2] कठ २।५।११ [3] कठ १।२७
[4] कठ १।२।२१ [5] कठ १।२।१८

वन्य नहीं हन होता।

हन्ता यदि हननका मानता है, हत यदि हत (=मारित) मानता है, तो वे दोनों नहीं जानते हैं न यह मारता है न मारा जाता है।"[1]

कठने रथके दृष्टान्तसे आत्माको सिद्ध करना चाहा'—

'आत्माको रथी जानो और शरीरको रथ मात्र। इन्द्रियोंको घोड़े कहते हैं (और) मनको पकड़नेकी रास। बुद्धिको सारथी जानो ।"[2]

(घ) मुक्ति और उसके साधन—मुक्ति—दुःखसे छूटना और ब्रह्मको प्राप्त करना—उपनिषदोंका लक्ष्य है। कठ मानवको मुक्तिके लिए प्रेरित करते हुए कहता है'—

उठो जागो, वरोंको पाकर जानो। कवि (=ऋषि) लोग उस दुर्गम पथको छुरेकी तीक्ष्ण धार (की तरह) पार होनेमें कठिन बतलाते हैं।[3]

तर्क, पठन या बुद्धिसे उसे नहीं पाया जा सकता—

'यह आत्मा प्रवचन (पठन-पाठन)से मिलनेवाला नहीं है, नहीं बुद्धि या बहुश्रुत होनेसे।'[4]

दूसरेके बिना बतलाए यहाँ गति नहीं है। सूक्ष्माकार होनेसे वह अत्यन्त अणु और तर्कका अविषय है। यह मति (=ज्ञान) तर्कसे नहीं मिलनेवाली है। हे प्रिय! दूसरेके बतलानेहीपर (यह) जाननेमें सुकर है।[5]

(ङ) सदाचार—ब्रह्मकी प्राप्तिकेलिए कठ ज्ञान और ध्यानको ही प्रधान साधन मानता है तो भी सदाचारकी वह अवहेलना नहीं देखना चाहता। जैसे कि'—

'दुराचारसे जो विरत नहीं जो शान्त और एकाग्रचित्त नहीं, अथवा जो शान्त मानस नहीं, वह प्रज्ञानसे इसे नहीं पा सकता।"[6]

तो भी मुक्तिकेलिए कठका बहुत जोर ज्ञानपर है—

---

[1] कठ १।२।१९ [2] कठ [3] कठ १।३।१४
[4] कठ १।२।२३ [5] यहीं १।२।८ ९ [6] यहीं १।२।२४

सारे भूतो (=प्राणियो)के अन्दर छिपा हुआ यह आत्मा नहीं प्रकाशता। किन्तु वह तो सूक्ष्मदर्शियो द्वारा सूक्ष्म तीव्र बुद्धिसे देखा जाता है।[1]

(b) ध्यान—ब्रह्म-प्राप्ति या मुक्तिके लिए ज्ञान-दृष्टि आवश्यक है, किन्तु साथ ही ज्ञान-दर्शनकेलिए ध्यान या एकाग्रता भी आवश्यक है—

'स्वयभू (=विधाता)ने बाहरकी ओर छिद्र (=इंद्रियाँ) खोदी है। इसलिए मनुष्य बाहरकी ओर देखते है, शरीरके भीतर (=अन्तरात्मा) नहीं। कोई-कोई धीर (है जो कि) आँखोको मूदकर अमृतपदकी इच्छासे भीतर आत्माको देखते है।'[2]

(ब्रह्म) न आखसे ग्रहण किया जाता है, न वचनसे, न दूसरे देवो, तपस्या या कर्मसे। ज्ञानकी शुद्धतासे (जो) मन विशुद्ध (हो गया है वह), ध्यान करते हुए उस निष्कल (ब्रह्म)का दर्शन करता है।[3]

(४) मुडक उपनिषद्

मुडकका अर्थ है मुड़े सिरवाला यानी गृहत्यागी परिव्राजक, भिक्षु या संन्यासी, जो कि आजकी भाँति उस समय भी मुड सिर रहा करते थे। बुद्धके समय ऐसे मुडक बहुत थे, स्वय बुद्ध और उनके भिक्षु मुडक थे। मुडक उपनिषद्में पहिली बार हमें बुद्धकालीन घुमन्तू परिव्राजकोंके विचार मालूम होते है। यहाँ प्राचीन परपरामे एक नई परपरा आरम्भ होती दीख पडती है।

(क) कर्मकाड-विरोध—ब्राह्मणोंके याज्ञिक कर्मकाडसे मुडकका खास विरोध मालूम होती है, जो कि निम्न उद्धरणसे मालूम होगा —

'यज्ञ-रूपी ये बेडे (या धरनइयाँ) कमजोर है　　। जो मूढ इसे अच्छा (कह) कर अभिनंदन करते है, वे फिर फिर बुढ़ापे और मृत्युको प्राप्त होते है। अविद्या (=अज्ञान)के भीतर वर्तमान अपनेको धीर

---

[1]वहीं १।३।१२　[2]वहीं २।४।१　[3]वहीं ३।१।८　[4]मुड १।२।७ ११

(और) पन्नि समझनेवाले व मूढ अंध द्वारा लिवाये जाते अंधोकी भांति दु ख पाते भटकते ह । अविद्याके भीतर बहुतारके वर्तमा 'हम कृतार्थ ह ऐसा अभिमान करते ह। (य) बालक ये कर्मी (=कर्मकाडपरायण) रागके कारण नहीं समझते ह, उसीसे (य) आतुर लोग (पुण्य) लोकस क्षीण हुए (नीचे) गिरते ह । तप और श्रद्धाके साथ भिक्षाटन करते हुए, जो शान्त विद्वान अरण्यमें वास करते हैं। वह निष्पाप हो सूर्यके रास्ते (वहाँ) जाते ह, जहाँ कि वह अमृत, अक्षय आत्मपुरुष ह।"

जिस वद और वदिक कर्मकाडी विद्याके लिए पुरोहितोको अभिमान था, उसे मुडक निम्न स्थान देता ह—

'"दो विद्याए जाननेकी ह' यह ब्रह्मवेत्ता बतलाते ह। (वह) ह, परा और अपरा (=छोटी) । उनम अपरा ह—'ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवद अथर्ववद' शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त, छन्द ज्योतिष। परा (विद्या) वह ह, जिसम उस अक्षर (=अविनाशी) को जाना जाता है।"[1]

(ख) ब्रह्म—ब्रह्मके स्वरूपके बारेमें कहता ह—

'वही अमृत ब्रह्म आगे ह, ब्रह्म पीछे ब्रह्म दक्षिण और उत्तरमें। ऊपर नीचे यह ब्रह्म ही फैला हुआ है सर्वश्रेष्ठ (ब्रह्म ही) यह सब ह।"[2]

"यह सब पुरुष ही ह। गुहा (=हृदय) में छिपे इसे जो जानता ह। वह अविद्याकी ग्रंथिको काटता ह।"[3]

'वह बृहद् दिव्य अचिन्त्य रूप, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर (ब्रह्म) प्रकाशता है। दूरसे (वह) बहुत दूर ह और देखनेवालोका यही गुहा (=हृदय) में छिपा वह पास ही में है।"[4]

(ग) मुक्तिके साधन—कर्मकाड—यज्ञ-दान-वेदाध्ययन आदि—को मुडक हीन दृष्टिसे देखता ह यह बतला चुके ह उसकी जगह मुडक दूसरे साधनोको बतलाता ह।[5]

---

[1] मुडक १।१।४ ५ [2] मुडक २।२।११ [3] २।१।१० [4] मुडक ३।१।७ [5] मुडक ३।१।५

"यह आत्मा सत्य, तप, ब्रह्मचर्यसे सदा प्राप्य है। शरीरके भीतर (वह) शुभ्र ज्योतिर्मय है, जिसको दोषरहित यति देखते हैं।"

"यह आत्मा बलहीन द्वारा नहीं प्राप्य है और नहीं प्रमाद या लिंगहीन तपसे ही (प्राप्य है)।

शायद लिंगसे यहां मुंडकों (=परिव्राजकों)के विशेष शरीरचिह्न अभिप्रेत है। कठ, प्रश्नकी भांति मुंडक भी उन उपनिषदोंमें है, जो उस समयमें बनीं जब कि ब्राह्मणोंके कर्मकांडपर भारी प्रहार हो चुका था।

(१) **गुरु**—मुंडक गुरुकी प्रधानताको भी स्वीकारता है, इससे पहिले दूसरी शिक्षाओंकी तरह ब्रह्मज्ञानकी शिक्षा देनेवाला भी आचार्य या उपाध्यायके तौरपर एक आचार्य था। अब गुरुको वह स्थान दिया गया, जो कि तत्कालीन अवैदिक बौद्ध, जैन आदि धर्मोंमें अपने शास्ता और तीर्थंकरको दिया जाता था। मुंडकने कहा—

"कर्मसे चुने गए लोकोंकी परीक्षा करनेके बाद ब्राह्मणको निर्वेद (=वैराग्य) होना चाहिए कि अ-कृत (=ब्रह्मत्व) कृत (कर्मों)से नहीं (प्राप्त होता)। उस (ब्रह्म) जाननेकेलिए समिधा हाथमें ले (शिष्य बननेके वास्ते) *श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास ही जाये।*"[1]

(b) **ध्यान**—ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए मनकी तन्मयता आवश्यक है[2]—

उपनिषद्के महास्त्र धनुषको लेकर उपासनासे तेज किये शरको चढ़ाये तन्मय हुए चित्तसे खींचकर हे सोम्य! उसी अ-क्षर (=अ-विनाशी)को लक्ष्य समझ। प्रणव (=ओम्) धनुष है, आत्मा शर ब्रह्म वह लक्ष्य कहा जाता है। (उसे) प्रमाद (=गफलत)-रहित हो बेधना चाहिए शरकी भाँति तन्मय होना चाहिए।

(c) **भक्ति**—वैदिक कालके ऋषि, और ज्ञान-युगके आरंभिक ऋषि आरुणि, याज्ञवल्क्य आदि भी देवताओंकी स्तुति करते थे, उनसे अभिलषित भोग-वस्तुएं भी माँगते थे, किन्तु यह सब होता था आत्म-सम्मानपूर्वक।

---

[1] मुंडक १।२।१२ [2] मुंडक २।२।३ ४

यह व्यावहारिक भी था, यद्यपि शासकवर्ग अद्वैत जानकर भी भाव भेद जब तक वैदिक-आर्य-कालीन आर्योंका पक्का दाढ़ नहीं रहे थे, इसलिए ऋषियोंकि साथ भी पूर्ण समानता या निकटता रख लिया जाता था। किन्तु अब अवस्था बदल गई थी। आर्य जिस तरह भूमिमें मिश्रित हो जा रहे थे उसी तरह उनके विचारोंपर भी यहाँके प्रभाव पड़ रहे थे। इसीलिए अब आत्मसमर्पणका स्थान राजनीतिक क्षेत्रकी भाँति धार्मिक क्षेत्रमें भी ऊपर आने लगा था। मुण्डकोपनिषद्कारने भी भक्तिको समझा और कह दिया[1]—

'जिसको ही यह (ब्रह्म) चुनता (=वरण) करता है, उसीसे यह प्राप्य है, उसीके लिए यह अपना रूप खोलता है।'

(d) ज्ञान—अन्य उपनिषदोंकी भाँति यहाँ भी (ब्रह्म) ज्ञानपर जोर दिया गया है—

"उसी आत्माको जानो, दूसरी बातें छोड़ो। यह (ही) अमृत (=मुक्ति)का सेतु है। उसे विज्ञान (=ज्ञान)से धीर (पुरुष) (उसे) चारों ओर देखते हैं जो कि आनन्दरूप अमृत, प्रकाशमान है।"[2]

"जब देखनेवाला (जीव) सुनहले रंगवाले कर्ता ईश, ब्रह्मयोनि पुरुषको देखता है तब वह (विद्वान्) पुण्य पापको फेंककर निरञ्जन परम समानताको प्राप्त होता है।"[3]

यहाँ याद रखना चाहिए कि भक्तिको ब्रह्मप्राप्तिका साधन मानते हुए, मुण्डक मुक्त जीवकी ब्रह्मसे अभिन्न होनेकी बात नहीं बल्कि परम समानताकी बात कह रहा है।

(घ) द्वैतवाद—ऊपरके उद्धरणसे मालूम हो गया कि मुण्डकके मतमें मुक्तिका मतलब ब्रह्मकी परम समानता मात्र है, जिससे यह समझना आसान है कि वह अद्वैत नहीं द्वैतका हामी है। इस बातमें सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं रह जाती, जब हम उसके निम्न उद्धरणोंको देखते हैं[4]—

---

[1]मुण्डक ३।२।३ [2]मुण्डक २।२।५, ७ [3]मुण्डक ३।१।३ [4]मुण्डक ३।१।२

"दो सहयोगी सखा पक्षी (=जीवात्मा और परमात्मा) एक वृक्षको आलिंगन कर रहे हैं। उनमेंसे एक फल (=कर्मभोग)को चखता है, दूसरा न खाते हुए चारों ओर प्रकाशता है। (उस) एक वृक्ष (=प्रकृति)में निमग्न पुरुष परवश मूढ हो शोक करता है। दूसरे ईशको जब वह (अपना) साथी (तथा) उसकी महिमाको देखता है, तो शोक रहित हो जाता है।

(ङ) **मुक्ति**—मुंडकके अनवाद—प्रकृति (=वृक्ष), जीव ईश्वर और मुक्तिका आभास तो कुछ ऊपर मिल चुका, यदि उसे और स्पष्ट करना है तो निम्न उद्धरणोंको लीजिए—

जैसे नदियाँ बहती हुई नाम रूप छोड़ समुद्रमें अस्त हो जाती हैं, वैसे ही विद्वान (=ज्ञानी) नाम-रूपसे मुक्त हो दिव्य परात्पर (=अति परम) पुरुषको प्राप्त होता है।"[1]

"इस (=ब्रह्म)को प्राप्तकर ऋषि ज्ञानतृप्त कृतकृत्य, वीतराग (और) प्रशान्त (हो जाते हैं)। वे धीर आत्म-संयमी सर्वव्यापी (=ब्रह्म)को चारों ओर पाकर सब (=ब्रह्म)में ही प्रवेश करते हैं।"[2]

"वेदान्तके विज्ञानसे अर्थ जिन्हें सुनिश्चित हो गया, सन्यास-योगसे जो यति शुद्ध मन वाले हैं, वे सब मरसे अन्तकालमें ब्रह्म-लोकोंमें पर-अमृत (बन) सब ओरसे मुक्त होते हैं।"[3]

उपनिषद या ज्ञानकांडकेलिए यहाँ वेदान्त शब्द आ गया, जो इस तरहका पहिला प्रयोग है।

(च) *सृष्टि*—*ब्रह्मने किस तरह विश्वकी सृष्टि की, इसके बारेमें* मुंडकका कहना है—

(वह है) दिव्य अ-मूर्त्त (=निराकार) पुरुष, बाहर भीतर (बसने वाला) अ-जन्मा। प्राण रहित मन रहित शुद्ध अ-क्षर (प्रकृति)के परेसे परे है। उससे प्राण, मन और सारी इन्द्रियाँ पैदा होती हैं। आकाश, वायु ज्योति

---

[1] मुंडक ३।२।८　　[2] वहीं ३।२।५　　[3] वहीं ३।२।६

(=अग्नि) जल विश्वको धारण करनेवाली पृथिवी। उससे बहुत प्रकारके देव पैदा हुए। साध्य (=निम्नकोटिके देव) मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण अपान धान जौ तप और श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य, विधि (=कर्मका विधान)। इससे (ही) समुद्र और गिरि। सब रूपके सिंधु (=नदियाँ) इसीसे बहते हैं। इसीसे सारी औषधियाँ, और रस पैदा होते हैं।[1]

और—

जैसे मकड़ी सृजती है और समेट लेती है, जैसे पृथिवीमें औषधियाँ (=वनस्पति) पैदा होती हैं जैसे विद्यमान पुरुषसे केश रोम (पैदा होते हैं) उसी तरह अ-क्षर (=अविनाशी) से विश्व पैदा होता है।"[2]

और—

"इसलिए यह सत्य है कि जैसे सुदीप्त अग्निसे समान रूपवाली हजारों शिखाएँ पैदा होती हैं, उसी तरह अ-क्षर (=अविनाशी) से हे सौम्य! नाना प्रकारके भाव (=हस्तियाँ) पैदा होते हैं।"[3]

इस प्रकार मुंडकके अनुसार ब्रह्म (=अ-क्षर) जगत्का निमित्त और उपादान कारण दोनों है, वह ब्रह्म और जगत्में शरीर शरीरी जैसा संबंध मानता है तभी तो जहाँ सत्ता बतलाते वक्त वह जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनोंके अस्तित्वको स्वीकार करता है वहाँ सृष्टिके उत्पादनमें प्रकृतिको अलग नहीं बतलाता। मकड़ी आदिका दृष्टान्त इसी बातको सिद्ध करता है।

बुद्धके समय परिव्राजकके नामसे प्रसिद्ध धार्मिक सम्प्रदाय इन्हीं मुंडकोंका था। पाली सूत्रके अनुसार इनका मत था कि मरनेके बाद आत्मा अरोग एकान्त सुखी होता है।"[4]

पोट्ठपाद, वच्छ-गोत्त जैसे अनेका परिव्राजक बुद्धके प्रति श्रद्धा रखते थे और उनके सर्वश्रेष्ठ दो शिष्य सारिपुत्र और मोद्गल्यायन पहिले परिव्राजक

---

[1] मुंडक २।१।२ ६ [2] वहीं १।१।७ [3] वहीं ३।१।१
[4] पोट्ठपाद-सुत्त (दीघनिकाय, १।६)

सम्प्रदायके थे। मुडकोंसे ब्राह्मणोंकी चिढ़ थी, यह अम्बष्टके बुद्धके सामने "मुंडक, श्रमण,   वाले वधु (ब्रह्म)के परकी सन्तान" कहकर बुरा-भला कहने से भी पता लगता है।[1] सुन्दरिका भारद्वाजका बुद्धको 'मुडक' कहकर तिरस्कार करना भी उसी भावको पुष्ट करता है।[2] मज्झिम-निकायमें परिव्राजकोंके सिद्धान्तके बारेमें कितनी ही और बातें मिलती हैं, जो इस उपनिषदके अनुकूल पड़ती हैं। परिव्राजक कर्मकाड विरोधी भी थे।

(५) माण्डूक्य-उपनिषद्

इसके प्रतिपाद्य विषयमें ओम्‌को मामूली बातसे दार्शनिक तलपर उठानेकी कोशिश की गई है, और दूसरी बात है, चेतनाकी चार अवस्थाओं—जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय——का विवेचन। इसका एक और महत्व यह है कि 'प्रच्छन्न बौद्ध' शंकरके परम गुरु तथा बौद्ध गौडपादने माडूक्यपर कारिका लिखकर पहिले पहिल बौद्ध विज्ञानवादसे कितनी ही बातोंको ले—और कुछको स्पष्ट स्वीकार करते भी—आगे आनेवाले शंकरके अद्वैत वेदान्तका बीजारोपण किया।

(क) ओम्—"भूत, वर्तमान, भविष्यत सब ओंकार ही है। जो कुछ त्रिकालसे परे हैं, वह भी ओंकार ही है।[3]

(ख) ब्रह्म—ओंकारको ब्रह्मसे मिलाते आगे कहा है—[4]

'सब कुछ यह ब्रह्म है। यह आत्मा (=जीव) ब्रह्म है। वह यह आत्मा चार पादवाला है। (१) जागरित अवस्थावाला, बाहरका ज्ञान रखनेवाला, सात अंगों (=इंद्रियों) उन्नीस मुखोंवाला, वैश्वानर (नामका) प्रथम पाद है, (जिसका) भोजन स्थूल है। (२) स्वप्न अवस्था वाला

---

[1] वहीं २।१ (देखो बुद्धचर्या, पृष्ठ २११)।
[2] संयुत्तनिकाय ७।१।९ (बुद्धचर्या पृष्ठ ३७९)
[3] माडूक्य १   [4] माडूक्य २ १२

ज्ञ (=ज्ञानी ब्रह्म) और अज्ञ (=जीव) दोनों अजन्मा हैं, जिनमें (दूसरा) ईशान (=शासक) है। एक अजा (=जन्मरहित प्रकृति है जो कि) भोक्ता (=जीव)के भोगार्थ पदार्थोंसे युक्त है। आत्मा (=ब्रह्म) अनन्त, विश्वरूप, अकर्ता है। तीनोंको जानता है (तो वह) ब्रह्म है।' क्षर (=नाशमान) प्रधान (=प्रकृति) है, अमृत अक्षर (=अविनाशी) हर है। क्षर और (जीव) आत्मा (दोनों) पर एक देव (=ईश्वर) शासन करता है। सदा (जीव)आत्मामें स्थित यह (=ब्रह्म) जानने योग्य है। इससे परे कुछ भी जानने लायक नहीं है। भोक्ता (=जीव) भोग्य (=प्रकृति) प्रेरिता (=ब्रह्म)को जानना यह सारा त्रिविध ब्रह्म कहा गया।[1]

लाल-सफेद-काली एक स्वरूपवाली बहुत-सी प्रजाओंको सृजन करती एक अजा (=प्रकृति)में एक अज (=जीव) भोग करते हुए सोता है, (किन्तु) इस भुक्त भोगा वाली (प्रकृति)को दूसरा (=ब्रह्म) छोड़ता है। दो सहचारी सखा पक्षी (=जीव ईश्वर) एक वृक्षको आलिंगन कर रहे हैं। उनमेंसे एक पिप्पलको चखता है, दूसरा न खाते हुए चारों ओर प्रकाशता है। मायी (=मायावाला ईश्वर) इस विश्वको सृजता है, उसमें दूसरा मायासे बँधा हुआ है। प्रकृतिको माया जानो, और महेश्वरको मायी।"[2]

'नित्यों (बहुतसे जीवों)के बीच (एक) नित्य, चेतनोंके बीच एक चेतन जो (कि) बहुतोंकी कामनाओंको (पूरा) करता है। प्रधान और क्षेत्रज्ञ (जीव)का स्वामी गुणोंका ईश संसारसे मोक्ष, स्थिति बंधनका (जो) हेतु है।'[3]

श्वेताश्वतरकी भगवद्गीतासे तुलना करनेपर साफ जाहिर होता है, कि गीताके कर्त्ताके सामने यह उपनिषद् मौजूद ही नहीं था, बल्कि इस प्रथम प्रयाससे उसने लाभ उठाया रचनाके ढंग को लिया

---

[1]श्वे० १।६-१२ [2]श्वे० ४।५-१० [3]श्वे० ६।१३-१६
मिलाओ भगवद्गीता, अध्याय १२, १३, १५

तथा अनाम न रख वासुदेव कृष्णके नाम उसे थापने द्वारा बड़ी चतुराई दिखलाई। जान पड़ता है उसका अभिप्राय था शैवोंके मुकाबिलेमें वैष्णवों का भी एक जबरदस्त ग्रंथ—गीतोपनिषत—तयार करना। यद्यपि ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दीके आस-पास समाप्त होनेवाले श्वेताश्वतरसे चार-पाँच सदियाँ पिछड़कर आनेसे उसने देरी जरूर की किंतु गीताकी जन प्रियता बतलाती है कि गीताकार अपने उद्देश्यमें सफल जरूर हुआ और उत्तरी भारतमें पुराने वैष्णवोंको प्रधानता दिलाने में सफल हुआ।

(ख) **शैववाद**—श्वेताश्वतरके उत्तवादमें ईश्वर या ब्रह्मको शिव, रुद्र या महेश्वर—हिंदुओंके तीन प्रधान देवताओंमेंसे एक—का लिया गया है।

"एक ही रुद्र है जो कि इन लोकोंपर अपनी ईशानी (=प्रभुताओं) से शासन करता है।"[1]

'मायाको प्रकृति जानो, मायीको महेश्वर।'[2]

"सारे भूतों (प्राणियों)में छिपे शिवको जानकर (जीव) सारे फंदोंसे मुक्त होता है।'[3]

(ग) **ब्रह्म**—ब्रह्मसे इस शैव-उपनिषद्का अर्थ उसका इष्टदेवता शिव से है। ब्रह्मके रूपके वर्णनमें यहाँ भी पुराने उपनिषदोंका आश्रय लिया गया है, यद्यपि वह कितनी ही जगह ज्यादा स्पष्ट है। उदाहरणार्थ—

"जिस (=ब्रह्म) से न पर न उरे कुछ भी है, न जिससे सूक्ष्मतम या महत्तम कोई है। द्युलोकमें वृक्षकी भाँति निश्चल (वह) एक खड़ा है उस पुरुषसे यह सब (जगत्) पूर्ण है।"[4]

"जिससे यह सारा (विश्व) नित्य ही ढँका है जो कालका काल, गुणी और सर्ववेत्ता है उसीसे सचालित कर्म (=क्रिया) यहाँ पृथिवी, जल, तेज, सारका उद्घाटन (=सृजन) करता है . . . । . . . । वह ईश्वरोंका परम-महेश्वर देवताओंका परम-देवता पतियों (=पशुपतियों)का परम

[1] श्वे० ३।२　　[2] श्वे० ४।१०　　[3] श्वे० ४।१६
[4] श्वे० ३।६　　[5] श्वे० ६।२-१८

(पति) है। पूज्य भुवनेश्वर (उस) देवको हम जानें। उसका कार्य और कारण (कोई) नहीं है न कोई उसके समान या अधिक है । जो ब्रह्माको पहिले बनाता है और जो उसे वेदोंको देता है। "

(घ) जीवात्मा—जीवात्माका वर्णन अनुवादमें कर चुके हैं। लेकिन श्वेताश्वतर जीवात्माको ईश्वरसे अलग करनेपर तुला हुआ है। तो भी पुरानी उपनिषदोंके ब्रह्म अद्वैतवादको वह इन्कार करनेकी हिम्मत नहीं कर सकता था इसीलिए 'त्रय ब्रह्ममेतत्'[1] (=तीन यह ब्रह्म है), त्रिविध ब्रह्ममेतत्[2] में जीव ईश्वर प्रकृति—तीनोंको—ब्रह्म कहकर संगति करनी चाही है। जीवमें कोई लिंग भेद नहीं—

'न वह स्त्री है न पुरुष, और न वह नपुंसक ही है। जिस जिस शरीरको ग्रहण करता है, उसी-उसीसे साथ जोड़ा जाता है।[3]

जीव अत्यन्त सूक्ष्म है और उसका परिमाण है—

बालकी नोकके सौवें हिस्सेका और सौ (हिस्सा) किया जावे, तो इस भागका जीव(के समान) मानना चाहिए।[4]

(ङ) सृष्टि—सृष्टिकेलिए श्वेताश्वतरने भी मकड़ीका दृष्टान्त लिया, किन्तु और उपनिषदोंकी भाँति ब्रह्मके उपादान कारण होनेका सन्देह न हो इस साफ करते हुए—

जिसे एक देव मकड़ीकी भाँति प्रधान (=प्रकृति)से उत्पन्न तंतुओं द्वारा स्वभावसे (विश्वको) आच्छादित करता है।[5]

(च) मुक्ति—मुक्तिके लिए ईश्वरदेवारका जोर जानकर है, यद्यपि मैं मुमुक्षु उस देवकी शरण लेता हूँ।[6]—वाक्यमें भगवद्गीताके लिए शरणागति धर्म (=प्रपत्ति)का रास्ता भी खोल रखा है। शरणागति जो भागवता (=वैष्णवों)के पंचरात्र आगमकी भाँति शायद तत्कालीन शैव-आगमोंमें भी रही है। वैसे भी अन्वादा ईश्वरवाद शरणागति-धर्मकी

[1] श्वेता० १।६ [2] श्वे० १।१२ [3] श्वे० ५।१०
[4] श्वे० ५।६। [5] श्वे० ६।१० [6] श्वे० ६।१८

हा ग्रार न जाता ह । ता भा ग्रभी मत शाचवर सारे धर्मांरो छाड ग्रव न मेरी नरणमें ग्रा, म तुझ सारे पापासे मुक्त कराऊँगा । [1] बहुत दूर था इसीनिए—

न्वरो जानवर सार फदोंसे छूट जाना ह । [2]

जत्र मनुष्य चमडवी भाँति ग्रावाशवो लपट सकेंग तभा देववा विना जाने दु खवा ग्रन्त हागा । [3]

( ) योग—यागवा वदमें नाम नहा ह । पुरानी उपनिषदाम भी योगम जा ग्रथ ग्राज हम लत ह उसवा पता नही ह । श्वताश्वतरमें हम स्पष्ट योगवा वणन पाते ह । उसव पहिल इसका वणन बद्धवे उपदेशोमें भी मिनता ह । जिस सास्य यागवा समन्वय पीछ भगवदगीतामें किया गया, उसका नीव पहिल-पहिल श्वताश्वतर ही न डाली थी । पुरुष, प्रकृति ही नही वपिल ऋषि तवका उमन जित्र विया हां निरीश्वर सास्यवा सेश्वर वना वर । इस बातका इस्तेमाल भगवत्गीताने भी बहुत सफाईवे साथ विया ग्रौर सेश्वर साग्य तथा याग का एव वहकर घाषित विया— 'मूढ ही सास्य ग्रौर योग को ग्रलग ग्रलग बतलात ह । [4]

श्वताश्वतरका याग विधिवा गीताने भी लिया ह ।—

तीन जगहम शरारको समान उन्नत स्थापित वर हृदयमें मनमे इन्द्रियाका रोववर ब्रह्मरूपी नाव से विद्वान (=ज्ञानी) सभी भयावह धारावा पार वर । चष्टामें तत्पर हो प्राणाका रोव उनके क्षीण होनपर नासिकाम श्वास ले । दुष्ट घाडवाल यानकी भाँति इस मनका विद्वान बिना गाफिल हुए धारण कर । समतल पवित्र कवडी ग्राग-बालुका रहित, शब्द जनाश्रय ग्रादि द्वारा मनको ग्रनुकूल—किन्तु ग्राँखको न साचनवाल गुहा-सुन-सान स्थानमें (यागवा) प्रयाग वर । यागमें ब्रह्मवा ग्रभिव्यक्ति करानवाल य रूप पहिल ग्रात ह— कुहरा, धूम सूय ग्रग्नि वायु जुगनू

---

[1] भगवद्गीता [2] श्वे० १।८, २।१५, ४।१६ [3] श्वे० ६।२०
[4] भगववगीता—"सांख्ययोगौ पथग् बाला प्रवदन्ति न पडिता ।"

[चित्तके] विस्तार और पहुँचा। मन-बुद्धिके शान्त हो जानेपर उस योगाग्निमय शरीरवाले योगीको न रोग, न बुढ़ापा, न मृत्यु होता। (शरीरमें) हल्कापन, आरोग्य, निर्लोभता, रंगमें स्वच्छता, स्वरमें मधुरता, अच्छी गंध, मल-मूत्र कम, योगकी पहिली अवस्थामें (होते हैं)।

दीपककी भाँति (प्रकाश) युक्त हो जब आत्मतत्त्वसे ब्रह्मतत्त्वको देखता है, (तब) सारे तत्त्वोंसे विशुद्ध अजन्मा ध्रुव (=नित्य) देवको जान सारे फन्दोंसे मुक्त हो जाता है।[1]

(ख) गुरुवाद—मुक्तिकी प्राप्तिके लिए ज्ञान और योग जैसे आवश्यक हैं, वैसे ही गुरु भी आवश्यक है—गुरुका उपदेश और वैसे आचार्योंकी भाँति अध्यात्मशिक्षण करनेवाले गुरु नहीं, बल्कि ऐसा गुरु जो कि ईश्वरके दूसरे नंबरपर है—

'जिसकी देवमें परम भक्ति है, जैसी देवमें वैसी ही गुरुमें (भी भक्ति है), उसी महात्माके यह कहे परम अर्थ (=परमार्थतत्त्व) प्रकाशित होते हैं।'[2]

ग. उपनिषद्के प्रमुख दार्शनिक

जिन उपनिषदोंका हम जिक्र कर आये हैं, उनमें छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषीतकि, कठमें ही ऐतिहासिक नाम मिलते हैं। उनमें भी जिन ऋषियोंके नाम आते हैं, उनमें और प्रवाहण जैवलि, उद्दालक आरुणि, याज्ञवल्क्य, सत्यकाम जाबाल ही वह व्यक्ति हैं, जिनके बारेमें कहा जा सकता है कि उपनिषद्के दर्शनकी मौलिक कल्पनामें इनका विशेष हाथ था। ब्राह्मण-कालमें भी कुरु-पंचाल (=मेरठ आगरा कमिश्नरियों) वैदिक आर्योंका प्रधान कार्यक्षेत्र था। यहीं भरद्वाजके यजमान राजा दिवोदासका समकालीन शासन था। यहीं उसके पुत्र सुदासने पहिले वशिष्ठ और पीछे विश्वामित्रको पुरोहित बना अनेक याग कराये, और पश्चिमके दस राज्योंको पराजित कर पंजाबमें भी सतलज-व्यास तक अपना राज्य

[1] श्वे० २।८-१५ [2] श्वे० ६।२३

बनाया। उपनिषद्कालमें वेदकी इसी भूमिका हम फिर नये विचारक पैदा करते देखते हैं। उद्दालक आरुणि कुरु पंचालका ब्राह्मण था यह शतपथ ब्राह्मणसे[1] मालूम होता है। जनककी जिस परिषद्में विद्वानोंसे शास्त्रार्थ करके याज्ञवल्क्यने विजय प्राप्त की थी उसमें मुख्यतः कुरु पंचालके विद्वान् मौजूद थे[2]। याज्ञवल्क्यके समयसे दो शताब्दी बाद बुद्धके समयमें भी इसी भूमिमें उन्होंने 'महासतिपट्ठानसुत्त[3] और 'महानिदानसुत्त' जैसे दार्शनिक उपदेश दिये थे जिसका कारण बतलाते हुए अट्ठकथाकार कहते हैं—[4] कुरु देश-वासी देशके अनुकूल ऋतुआदि-युक्त होनेसे हमेशा स्वस्थ शरीर स्वस्थ चित्त होते हैं। चित्त और शरीरके स्वस्थ होनेसे प्रज्ञा बलयुक्त हो गंभीर कथाके ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं। भगवान् (=बुद्ध)ने कुरुदेशवासी परिषद्को गंभीर देशनाका उपदेश किया। (इस देशमें) दास और कमकर नौकर-चाकर भी स्मृति प्रस्थान (=ध्यानयोग) संबंधी कथाहीको कहते हैं। पनघट और सूत कातनेके स्थान आदिमें भी व्यर्थकी बात नहीं होती। यदि कोई स्त्री—अम्म! तू किस स्मृति प्रस्थानकी भावना करती है? पूछनेपर कोई नहीं बोलती है तो उसको धिक्कारती है — धिक्कार है तेरी जिन्दगीको, तू जीती भी मुर्देके समान है।

त्रिपिटककी यह अट्ठकथाएँ ईसा पूर्व तीसरी शताब्दीमें भारतसे सिंहल गई परंपराके आधारपर इसकी चौथी सदीमें लेखबद्ध हुई थीं।

उपनिषद्के दार्शनिक विचारोंको दिखलानेकेलिए यहाँ हम उपनिषद्के कुछ प्रधान दार्शनिकोंके विचारोंको देते हैं।

---

[1] शत० १।४।१२

[2] बृह० ३।१।१ "तत्र ह कुरुपञ्चालानां ब्राह्मणा अभिसमेता बभूवुः।"

[3] दीघनिकाय २।१, २।२२

[4] दीघनिकाय अट्ठकथा—"महासतिपट्ठानसुत्त" (देखो मेरी "बुद्धचर्या", पृष्ठ ११८)

अन्तिम देव सोमराजाको हवन करते हैं, उस आहुतिसे वर्षा होती है।

इसी तरह आगे भी बतलाया। इस सारे उपदेशको कोष्ठक-चित्रके रूप पर इस प्रकार होगा—

अग्नि	समिधा	धूम	किरण	अंगार	शिखा	आहुति	फल
१ (स्वर्ग) लोक	आदित्य	रश्मि	दिन	चंद्रमा	नक्षत्र	श्रद्धा	सोम
२ पर्जन्य	वायु	अभ्र	विद्युत्	अशनि	ह्रादुनि	सोम	वर्षा
३ पृथिवी	संवत्सर	आकाश	रात्रि	दिशा	अन्तर्दिशा	वर्षा	अन्न
४ पुरुष	वाणी	प्राण	जिह्वा	चक्षु	श्रोत्र	अन्न	वीर्य
५ स्त्री	उपस्थ	प्रमाह्वान	योनि	अन्तःप्रवेश	मैथुनसुख	वीर्य	गर्भ

'इस प्रकार पाँचवीं आहुतिमें जल पुरुषनामवाला (=पुरुष कहा जाने वाला) होता है। झिल्लीमें लिपटा वह गर्भ दस या नौ मासके बाद (उदरमें) लेटकर जन्मता है। जन्मके आयु भर जीता है। मरनेपर अग्नियाँ ही उसे यज्ञमें वहीं ले जाती हैं जहाँसे (आकर) कि वह (यहाँ) पैदा हुआ था।'

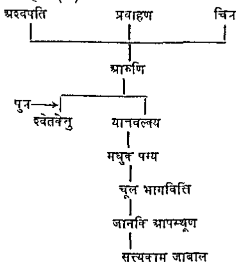
आगे ब्रह्मविद्याके जाननेवाले साधकके लिए, देवयानका रास्ता प्राप्त होता है, यह बतलाया गया है।

छान्दोग्यके इसी संवादको बृहदारण्यकने भी दुहराया है। हाँ, जैवलिने आरुणिको जिन मानुष वित्तोंके देनेका प्रलोभन दिया, उनकी यहाँ गणना भी की गई है—हाथी, सोना, गाय, घोड़े, प्रवर दासियाँ, परिवार (=वस्त्र)। यह विद्या आरुणिसे पहिले किसी ब्राह्मणमें नहीं रही, पर यहाँ भी ज़ाहिर किया गया। पञ्चाहुति फिर देवयान पितृयाण और पितृयाणसे लौटकर फिर इस लोकमें छान्दोग्यके अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि योनियों और बृहदारण्यकके अनुसार कीट पतंग आदिमें भी जन्म लेना। यह खूब स्मरण रखनेकी बात है कि पुनर्जन्मका सिद्धान्त ब्राह्मणोंका नहीं

क्षत्रियों (=शासकों)का गढ़ा हुआ है और तब इसके भीतर छिपा रहस्य आसानीसे समझमें आ सकता है।

२–उद्दालक आरुणि गौतम (६५० ई० पू०)

आरुणि शतपथके अनुसार कुरु-पंचालके ब्राह्मण थे।[1] पंचालराज प्रवाहण जैवलिके पास देर तक शिष्य रह इन्होंने उनसे पंचाग्नि विद्या देवयान पितृयाण (=पुनर्जन्म) तत्त्व की शिक्षा ग्रहण की थी, इसे हम अभी बतला चुके हैं। आगेके उद्धरणसे यह भी मालूम होगा, कि इन्होंने राजा अश्वपति कैकय तथा (राजा ?) चित्र गार्ग्यायणिसे भी दर्शनकी शिक्षा ग्रहण की थी। बृहदारण्यकके अनुसार याज्ञवल्क्य आरुणिके शिष्य थे[2] किन्तु साथ ही जनककी परिषद्में उद्दालक आरुणिका याज्ञवल्क्यके साथ शास्त्रार्थ होना[3] प्रमाण पाठ में यह हम बतला चुके हैं। इस तरह आरुणि की शिष्य-परंपरा है—(क)



[1] शतपथ १।४।१२ [2] बृह० ६।३।७ [3] बृह० ३।७।१

(ख) और याज्ञवल्क्यके समकालीन प्रतिद्वंद्वी, साथी या शिष्य है[1]—

१ याज्ञवल्क्य २ जनक वैदेह, ३ जारत्कारव आर्तभाग ४ भुज्यु लाह्यायनि ५ उषस्ति चाक्रायण ६ कहोल कौषीतकेय ७ गार्गी वाचक्नवी ८ विदग्ध शाकल्य

(ग) जनक वैदेह साथ बात करनेवालोंमें हम निम्न नाम पाते है[2]—

९ जित्वा शैलिनि, १० उदङ्क शौल्बायन, ११ बर्कु वार्ष्ण, १२ गर्दभीविपीत भारद्वाज १३ सत्यकाम जाबाल।

इन तीनों सूचियोंके मिलानेसे सत्यकाम जाबाल और उद्दालक आरुणिके संबंधोंमें गड़बड़ी मालूम होती है—(क)में उद्दालक आरुणि (श्वेतकेतुका पिता) याज्ञवल्क्यके गुरु हैं लेकिन (ख)में वह जनककी सभामें उनके प्रतिद्वंद्वी। इसी तरह (क)में सत्यकाम जाबाल याज्ञवल्क्यकी शिष्य-परंपरामें पांचवें हैं किन्तु (ग)में वह जनक विदेहके उपदेष्टा रह चुके हैं। वंशावलीकी अपेक्षा संवादके समय कहा गया संबंध यदि अधिक शुद्ध मान लिया जाये तो मानना पड़ेगा कि सत्यकाम जाबाल याज्ञवल्क्यकी शिष्य-परम्परामें नहीं बल्कि समकालीन थे। यद्यपि दोनों उद्दालक आरुणियोंके गौतम होनेसे वहाँ दो व्यक्तियोंकी कल्पना स्वाभाविक नहीं मालूम होती, साथ ही आरुणिके सर्वप्रथम क्षत्रियसे पंचाग्नि विद्या देवयान पितृयाणकी शिक्षा पानेवाले प्रथम ब्राह्मण होनेसे आरुणिका याज्ञवल्क्यका गुरु होना ज्यादा स्वाभाविक मालूम होता है और यहाँ संवादमें आरुणिको याज्ञवल्क्यका प्रतिद्वंद्वी बतलाया गया है। लेकिन जब हम संवादोंकी संख्या और क्रमको देखते हैं, तो मालूम होता है कि परिषदमें सभी प्रतिद्वंद्वियोंके संवाद एक जगह आये हैं, सिर्फ गार्गी वाचक्नवी ही वहाँ एक ऐसी प्रतिद्वंद्वी है जिसके संवाद दो बार आये हैं और दोनों संवादोंके बीच आरुणिका संवाद मिलता है। यद्यपि इसमें भीतर रहे ब्रह्मके संचालन (=अन्तर्यामिता)की महत्त्वपूर्ण बात है,

[1] बृह० ३।१-७ [2] बृह० ४।१

इसलिए उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती तो भी आरुणिको बीचमें डालकर गार्गीके सवालको दो टुकडे़ कर बाँटनेका कोई कारण नहीं मालूम होता। आखिर क्या वजह जब सभी वक्ता एक-एक बार बोलते हैं तो गार्गी दो बार बोलने गई। फिर पतंचल काप्यकी भार्यापर आये भूतका जिक्र भुज्यु[1] पहिले अपने नामसे कहता है और उसको आरुणि भी दुहरा रहा है, यह भी हमारे सन्देहको पुष्ट करता है और एक बार गार्गीके चुप हो जानेपर निगृहीत व्यक्तिका फिर बोलना उस वक्तकी वाद-प्रथाके भी विरुद्ध था। इस तरह आरुणिका याज्ञवल्क्यका गुरु होना ही ठीक मालूम होता है।

दार्शनिक विचार—

(१) आरुणि जैवलिकी शिष्यतामें—आरुणिको पंचालराज जवलिने पंचम आहुति तथा देवयान पितृयानका उपदेश दिया था इसका जिक्र हम कर चुके हैं। छान्दोग्यमें एक जगह और आरुणिका आचार्य नहीं शिष्यके तौरपर जिक्र आया है[2]—

'प्राचीनशाल औपमन्यव सत्ययज्ञ पौलुषि इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय जन शार्कराक्ष्य, बुडिल अश्वतराश्वि—इन महाशालों (=प्रतापी) महा श्रोत्रियों (=महावक्ता)ने एकत्रित हो विचार किया—'क्या आत्मा है, क्या ब्रह्म है। उन्होंने सोचा—भगवानो! यह उद्दालक आरुणि इस वक्त वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है उसके पास (चलो) हम चलें।' वह उसके पास गये। उस (=आरुणि)ने सोचा (=संपादन किया)—ये महाशाला महाश्रोत्रिय मुझसे प्रश्न करेंगे उन्हें सब नहीं समझा सकूँगा। अच्छा! मैं दूसरेका (नाम) बतलाऊँ। (और) उनसे कहा—भगवानो! यह अश्वपति कैकेय इस वक्त इस वैश्वानर आत्माका अध्ययन करता है, (चलो) उसीके पास हम चलें। वे उसके पास गये। आनेपर उसने उनकी पूजा (=सम्मान) की। (फिर) उसने सवेरे (उनसे) कहा—

[1] बृह० ३।३।१ [2] छां० ५।११

मेरे देश (जनपद)में चोर है, न कंजूस न शराबी, न अग्निहोत्र न करने वाला, न अविद्वान, न स्वैरी है, (फिर) स्वैरिणी (=व्यभिचारिणी) कहाँसे ? मैं यज्ञ करने जा रहा हूँ, जितना एक-एक ऋत्विजको धन दूँगा उतना (आप) भगवानोंको भी दूँगा। बसो भगवानो !'

उन्होंने कहा— जिस प्रयोजनसे मनुष्य चले, उसीको कहे। वैश्वानर आत्माको तुम इस वक्त अध्ययन कर रहे हो, उसे ही हम बतलाओ।

उसने कहा— सवेरे आपलोगोंको बतलाऊँगा।'

वे (शिष्यता-सूचक) समिधा हाथमें लिए पूर्वाह्णमें (उसके) पास गये। उसने उनको उपनयन किये (=शिष्यता स्वीकार कराये) बिना कहा—

औपमन्यव ! तू किस आत्माकी उपासना कर रहा है ?'

'द्यौ (=नभस्तल)की भगवन् राजन् !

वह सुन्दर तेजवाला वैश्वानर आत्मा है जिसकी तू उपासना करता है इसलिए तेरे कुलमें सुत (=सन्तान) प्र-सुत, आ-सुत दिखाई देते हैं तू अन्न भोजन करता है प्रियको देखता है। जो ऐसे इस वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है, उसके कुलमें ब्रह्मतेज रहता है। यह आत्माका सिर है। सिर तेरा गिर जाता यदि तू मेरे पास न आया होता।'

'तब सत्ययज्ञ पौलुषिसे बोला— प्राचीनयोग्य ! तू किस आत्माकी उपासना करता है ?'

'आदित्यकी ही भगवन् राजन् !

'यही विश्वरूप वैश्वानर आत्मा है जिसकी तू उपासना करता है। इसलिए तेरे कुलमें विश्वरूप दिखलाई देते हैं—ऊपरसे ढँका खच्चरीका रथ दासी, निष्क (=अशर्फी) तू अन्न खाता यह आत्माका नेत्र है। अन्धा हो जाता यदि तू मेरे पास न आया होता।

'तब इन्द्रद्युम्न भाल्लवेयसे बोला— वैयाघ्रपद्य ! तू किस आत्माकी उपासना करता है ?

वायुकी ही भगवन् राजन् !

'यही पृथग् वर्त्म (=अलग रास्तेवाला) वैश्वानर आत्मा है । इसीलिए तेरे पास अलग (अलगमें) बलियां आती है, अलग (अलग) रथकी पंक्तियाँ अनुगमन करती है ।

"तब जन शार्कराक्ष्यसे पूछा—'तू किस ?'

आकाशकी ही भगवन् राजन्!'

'यही बहुल वैश्वानर आत्मा है । इसलिए तू प्रजा (=सन्तान) और धनसे बहुवल है ।'

'तब बुडिल अश्वतराश्विसे बोला—वयाघ्रपद्य ! ?

जलकी ही ।'

'यही रयि वैश्वानर आत्मा है । इसीलिए तू रयिमान (=धनी) पुष्टिमान है । ।'

'तब उद्दालक आरुणिसे बोला—'गौतम ?'

पृथिवीकी ही भगवन् राजन!'

यही प्रतिष्ठा वैश्वानर आत्मा है । इसीलिए तू प्रजा और पशुओंसे प्रतिष्ठित है । ।'

'(फिर) उन (सब)से बोला—तुम सब वैश्वानर आत्माको पृथक्की तरह जानते अन्न खाते हो। इस वैश्वानर आत्माका सिर ही सुतेजा है चक्षु विश्वरूप है प्राण पृथग्वर्त्मा है ।' "

यहाँ इस संवादमें आरुणिने अपनको पृथिवीको वैश्वानर आत्मा (=जगत् शरीरी आत्मा)के तौरपर अध्ययन करनेवाला बतलाया गया है, और अश्वपतिने उसे एकांगिक कहा।

(२) **आरुणि गार्ग्यायणिकी शिष्यतामें**—आरुणि मालूम होता है क्षत्रियोंसे दार्शनिक ज्ञान संग्रह करनेमें ब्राह्मणोंके एक जबर्दस्त प्रतिनिधि थे। उनकी पंचालराज जवलि कैकयराज[1] अश्वपतिके पास ज्ञान

[1] झेलम और सिन्धके बीचके हिमालयके निचले भागपर अवस्थित राजौरीके पासका प्रदेश।

सारानकी बात कही ना चुका। कौषीतकि उपनिषद्में यह भी पता लगता है, कि उन्होंने चित्र गार्ग्यायणिके पास भी ज्ञान प्राप्त किया था।—

चित्र गार्ग्यायणिने यज्ञ करते आरुणिको (ऋत्विक) चुना। उसने (अपने) पुत्र श्वेतकेतुसे कहा—'तू यज्ञ करा।'

गार्ग्यायणिके प्रश्नोंका उत्तर न दे सकनेके कारण श्वेतकेतुने घर लौटकर पितासे कहा। तब आरुणि शिष्य बनकर ज्ञान सीखनेके लिए समिधा हाथमें लिये गार्ग्यायणिके पास गया। गार्ग्यायणिने पितृयान, पुनर्जन्म, देवयानका उपदेश किया, जो कि जवलिके उपदेशकी भद्दी आवृत्ति मात्र है।

(३) आरुणिका याज्ञवल्क्यसे संवाद गलत—बृहदारण्यकमें आये आरुणि-याज्ञवल्क्य संवादकी असम्भवता आरंभमें हम बतला चुके हैं। वहा आरुणिके मुहसे यह कहलाया गया है[2]—

(एक बार) हम मद्रमें[3] पतंचल काप्यके घर यज्ञ (-विद्या)का अध्ययन करते निवास करते थे। उसकी भार्याको गंधर्व (=देवता)ने पकड़ा था। उस (=गंधर्व)से पूछा—'तू कौन है?' उसने कहा—कबंध आथर्वण। उस (=गंधर्व)ने याज्ञिकों और पतञ्चल काप्यसे पूछा—'काप्य! क्या तुम वह सूत्र (धागा) मालूम है जिसमें यह लोक, परलोक सारे भूत गुथे हुए हैं। ... पतञ्चलने कहा—'भगवन्! मैं उसे नहीं जानता।'

शायद आरुणिका मद्रमें पतञ्चलके पास कर्मकाण्डका अध्ययन सही हो और याज्ञिक (=कर्मी) गुरु भी दर्शनसे बिलकुल कोरे रहते थे, यह भी ठीक हो।

इन उद्धरणोंसे यह पता लगता है, कि आरुणि प्रथम ब्राह्मण दार्शनिक था। इससे पहिले दर्शन चिन्तन शासक (=क्षत्रिय) वर्ग करता था

[1]कौ० १।१ [2]बृह० ३।७।१ [3]स्यालकोट, गुजरांवाला आदि जिले।

जिसमें कितने ही उस समयके राजा भी शामिल थे। राजा दार्शनिक होते भी यज्ञ करना, ब्राह्मणोंको दक्षिणा देना छोड़ते नहीं थे—जैसा कि अश्वपति और गार्ग्यायणिके दृष्टान्तसे स्पष्ट है। आरुणिने पञ्चमाहुति (=देवयान पितयान), तथा वैश्वानर आत्माका ज्ञान अपने क्षत्रिय गुरुओंसे सीखा था, किन्तु उसका अपना दर्शन वही था, जिसे कि उसने अपने पुत्र श्वेतकेतुको 'तत्त्वमसि'—या ब्रह्म-जगत अभेदवाद—द्वारा बतलाया।

(४) आरुणिका श्वेतकेतुको उपदेश—श्वेतकेतु आरुणेय आरुणिका पुत्र था, दोनों पिता-पुत्रोंका संवाद हमें छान्दोग्य[1]में मिलता है—

"श्वेतकेतु आरुणेय था। उसे पिताने कहा—

'श्वेतकेतु! ब्रह्मचर्य वास कर। सोम्य! हमारे कुलका (व्यक्ति) अपठित रह ब्रह्मबन्धु (=ब्राह्मणका भाई मात्र)की तरह नहीं रहता।"

'बारहवें वर्षमें उपनयन (ब्रह्मचर्य आरंभ) कर चौबीसवें वर्ष तक सारे वेदोंको पढ़ (श्वेतकेतु) महामना पठिताभिमानी गम्भीर-सा हो पास गया। उससे पिताने कहा—

'श्वेतकेतो! जो कि सोम्य! यह तू महामना ०है, क्या तूने उस आदेशको पूछा, जिसके द्वारा न-सुना सुना हो जाता है न-जाना जाना ?

कैसा है भगवन्! वह आदेश (=उपदेश) ?'

जैसे सोम्य! एक मिट्टीके पिंडसे सारी मट्टीकी (चीज) ज्ञात हो जाती है, मिट्टी ही सच है और तो विकार वाणीका प्रयोग नाम-मात्र है। जैसे सोम्य! एक लोह-मणि (=ताम्र पिंड)से सारी लोहकी (चीजें) विज्ञात हो जाती हैं । जैसे सोम्य! एक नखसे खरोटनसे सारी कृष्ण-अयस (=लोहे)की (चीजें) विज्ञात हो जाती हैं। इसी तरह सोम्य! वह आदेश होता है।

'निश्चय ही वे भगवन् (मेरे आचार्य) नहीं जानते थे, यदि उसे जानते तो क्यों न मुझे बतलाते। भगवान् ही उसे बतलायें।'

---

[1] छान्दोग्य ६।१

अच्छा सोम्य!

सोम्य! पहिले यह एक अद्वितीय सत् (=भावरूप) ही था, उसे कोई कोई कहते हैं—पहिले यह एक अद्वितीय असत् ही था, इसलिए असत्से सत् उत्पन्न हुआ। किन्तु सोम्य! यह कैसे हो सकता है?

कैसे असत्से सत् उत्पन्न हो सकता है?

सत् ही सोम्य! यह एक अद्वितीय था। उसने ईक्षण (=कामना) किया ... उसने तेजको सिरजा।'

इस प्रकार आरुणिके मतसे तेज (=अग्नि) प्रथम भौतिक तत्त्व था जिससे दूसरा तत्त्व—जल—पैदा हुआ। तपनेपर पसीना निकलता है, इस उदाहरणद्वारा आरुणि अग्निसे जलकी उत्पत्ति साबित करनेके लिए काफी समझता था। जलसे अन्न। इस प्रकार "सत् मूल" है तेजका, तेज मूल है पानीका। उदाहरणार्थ 'मरते हुएकी वाणी मनमें मिल जाती है, मन प्राणमें, प्राण तेज (=अग्नि)में, तेज परदेवतामें। सो जो यह अणिमा (=सूक्ष्मता) है, इसीका स्वरूप यह सारा (=विश्व) है, यह सत्य है, वह आत्मा है, वह तू है (=तत् त्वम् असि) श्वेतकेतु!'

और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

'अच्छा सोम्य! जैसे सोम्य! मधु मक्खियाँ मधु बनाती हैं, नाना प्रकारके वृक्षोंके रसोंको जमाकर एक रस बनाती हैं। वह (रस) जैसे वहाँ पता नहीं पाता—मैं उस वृक्षका रस हूँ, उस वृक्षका रस हूँ। इसी तरह सोम्य! यह सारी प्रजाएँ सत् (=ब्रह्म)में प्राप्त हो नहीं जानतीं—हम सत्में प्राप्त होते हैं। ... वह तू है श्वेतकेतु!'

और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

अच्छा सोम्य! जैसे सोम्य! पूर्ववाली नदियाँ पूर्वसे बहती हैं, पश्चिमवाली पश्चिमसे, वह समुद्रसे समुद्रमें जाती हैं, (वहाँ) समुद्र ही होता है। वह जैसे नहीं जानतीं—मैं यह हूँ। ऐसे ही सोम्य! यह सारी प्रजाएँ सत्से आकर नहीं जानतीं—सत्से हम आई हैं ... वह तू है श्वेतकेतु!'

'और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

'अच्छा सोम्य ! 　जैसे सोम्य ! बड़े वृक्षके यदि मूलमें आघात करे तो जीव (रस) बहता है। मध्यम आघात करे　अग्रम आघात करे, जीव (रस) बहता है। सो यह (वृक्ष) इस जीव-आत्मा द्वारा अनुभव किया जाता, पिया जाता मोद लेता स्थित होता है। उसकी यदि एक शाखाको जीव छोड़ता है, वह सूख जाती है, दूसरीको छोड़ता है, वह सूख जाती है, तीसरीको छोड़ता है वह सूख जाती है, सबको छोड़ता है, सब (वृक्ष) सूख जाता है। ऐसे ही सोम्य ! तू समझ ! 　जीव रहित ही यह (शरीर) मरता है, जीव नहीं मरता। सो जो यह 　वह तू है श्वेतकेतु !

'और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

'बरगदका फल ले आ।'

यह है भगवन् !

तोड़ !

'तोड़ दिया भगवन् !

यहाँ क्या देखता है ?'

'छोटे छोटे इन दानोंको भगवन् !

'इनमेंसे प्रिय ! एकको तोड़ !'

'तोड़ दिया भगवन् !'

'यहाँ क्या देखता है ?'

'कुछ नहीं भगवन् !'

'सोम्य ! तू जिस इस अणिमा (=सूक्ष्मता)को नहीं देख रहा है, इसी अणिमासे सोम्य ! यह महान् बरगद खड़ा है। श्रद्धा कर सोम्य ! सो जो 　वह तू है श्वेतकेतु !'

'और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।'

'अच्छा सोम्य ! इस नमकको सोम्य ! पानीमें रख, फिर सवेरे मेरे पास आना।'

"उसने वैसा किया।'

जा नमक रातको पानीमें रखा, प्रिय ! उसे ला ता।'

उसे ढूँढ़ा पर नहीं पाया।'

गल गया सा (मालूम होता) है।

प्रिय ! भीतरसे इसका आचमन कर। कैसा है ?'

नमक है।

मध्यसे आचमन कर। कैसा है ?'

नमक है।

'इसे फेंककर मेरे पास आ।

उसने वैसा किया। वह एक समान (नमकीन) था। उस(=श्वेतकेतु)से कहा—(उसमें) यहाँ होते भी जिसे सोम्य ! तू नहीं देखता, यहीं है (वह)। सो जो वह तू है श्वेतकेतु !'

'और भी मुझे भगवान विज्ञापित करें।

'अच्छा सोम्य ! जैसे सोम्य ! (किसी) पुरुषको गंधार (देश)से आँख मूँद लाकर (एक) जनशून्य (स्थान)में छोड़ दे। वह जैसे वहाँ आगे पीछे या ऊपर-नीचे चिल्लाये आँख मूँदे (मुझे) लाया, आँख मूँदे मुझे छोड़ दिया। जैसे उसकी पट्टी छोड़ (कोई) कहे—इस दिशामें गंधार है इस दिशामें जा। वह पंडित, मेधावी एक गाँवसे दूसरे गाँवको पूछता गंधार ही को पहुँच जाये इसी तरह यहाँ आचार्य रखनेवाला पुरुष ज्ञान प्राप्त करता है। उसको (मुक्त होनेमें) उतनी ही देर है, जबतक कि (शरीरसे) नहीं छूटता (शरीर छूटने)पर तो (ब्रह्मको) प्राप्त होता है। सो जो वह तू है श्वेतकेतु !'

और भी मुझे भगवान् विज्ञापित करें।

अच्छा सोम्य ! जैसे सोम्य ! (मरण यातनासे) पीड़ित पुरुषको भाई-बंधु घेरते (और पूछते) हैं—पहिचानते हो मुझे, पहिचानते हो मुझे ? जब तक उसकी वाणी मनमें नहीं मिलती मन प्राणमें प्राण तेजमें तेज परम देवतामें (नहीं मिलता), तबतक पहिचानता है। किन्तु जब उसकी वाणी मनमें मिल जाती है मन प्राणमें, प्राण तेजमें,

तेज परम देवनाम, तब नहीं पहचानता। सो जो　　वह तू है श्वेत-केतु !'[1]"

इस तरह आरुणि सद्ब्रह्म (=शारीरक ब्रह्म) वादी थे, और भौतिक तत्त्वोंमें अग्निको प्रथम मानते थे।

३ याज्ञवल्क्य (६५० ई० पू०)

(१) **जीवनी**—याज्ञवल्क्यकी जन्मभूमि कहाँ थी इसका उल्लेख नहीं मिलता। कुछ लेखकोंने जनक वैदेहका गुरु होनेसे उन्हें भी विदेह (=तिरहुत) का निवासी समझ लिया है[1] जो कि गलत है। बृहदारण्यकके उद्धरणपर गौर करनेसे यही पता लगता है, कि वह कुरु-पंचालके ब्राह्मणोंमेंसे थे—

जनक वैदेहने बहुत दक्षिणावाले यज्ञसे किया। उसमें कुरु-पंचाल (=पश्चिमी युक्तप्रान्त)के ब्राह्मण एकत्रित हुए थे। जनक वैदेहके मनमें जिज्ञासा हुई—'इन ब्राह्मणों (=कुरु-पंचालवाला)में कौन सबसे बड़ा शिक्षित (=अनूचानतम) है?[2]

यहाँ इन ब्राह्मणों शब्दसे कुरु-पंचालवालोंका ही बोध होता है। वैसे भी यदि याज्ञवल्क्य विदेहके थे, तो उनकी विद्वत्ता जनकके लिए अज्ञान नहीं होनी चाहिए।

इस तरह जान पड़ता है, जैवलि, आरुणि, याज्ञवल्क्य तीनों दिग्गज उपनिषदके दार्शनिक कुरु-पंचालके रहनेवाले थे। इसीसे बुद्ध कालमें भी कुरु-पंचाल दर्शनकी खानि समझा जाता था जैसा कि पीछे हम बतला चुके हैं। और इस तरह ऋग्वेदके समयसे (१५०० ई० पू०) जो प्रधानता इस प्रदेशको मिली, वह बराबर याज्ञवल्क्यके समय तक मौजूद रही, यद्यपि इसी बीच केकय (पंजाब) काशी और विदेहमें भी ज्ञान चर्चा होने लगी थी।

अश्वपति कैकयके पास जानेवाले ये ब्राह्मण महाशाल बड़े धनाढ्य

---

[1] डाक्टर श्रीधर व्यंकटेश केतकरका "महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश" (पूना, १९२३) प्रस्तावना खंड १, विभाग ३, पृ० ४४८　[2] बृह० ३।१

बांध हुए थ। जनकन उनसे कहा—'ब्राह्मण भगवाना ! जो तुममें ब्रह्मिष्ठ (=सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवादी) है वह इन गायाको हँका ले जायें। ब्राह्मणाने हिम्मत न की। तब याज्ञवल्क्यन अपने ही ब्रह्मचारी (=शिष्य) का कहा—सोमश्रवा ! हँका ले चल इन्हे।' और उन्हें हँकवा दिया। व ब्राह्मण क्रुद्ध हुए—कसे (यह) हममें (अपनेको) ब्रह्मिष्ठ कहता ह।' जनक वदेहका होता अश्वल था उसन इस (याज्ञवल्क्य)से पूछा—

'तुम हममें ब्रह्मिष्ठ हो याज्ञवल्क्य !

'हम ब्रह्मिष्ठका नमस्कार करत ह हम ता गाय चाहते ह।

(a) **अश्वलका कमपर प्रश्न**— होता अश्वला वहासे उससे प्रश्न करना शुरू किया— "

अश्वलने अपने प्रश्न ज्यादातर यज्ञ और उसके कर्मों कलापके बारेमें किये। याज्ञवल्क्य वैदिक कर्मकाण्डके बड पडित थ, यह शत पथ ब्राह्मणके १४ तथा १०-१४ काडोमें उद्धत उनकी बहुतसी याज्ञिक व्याख्याओंसे स्पष्ट ह। याज्ञवल्क्यका आधी तार्किक और आधी साम्प्रदायिक व्याख्यासे होता अश्वल चुप हो गया।

(b) **आर्तभागका मृत्यु भक्षकपर प्रश्न**—फिर जारत्कारव आर्तभागन प्रश्न करने शुरू किय—अतिग्राह (=बहुत पकडनवाले) क्या ह ? आठ—प्राण वाग जिह्वा, आँख कान, मन, हाथ, चर्म—यह आठ ग्रह (=इद्रिय) ह जो कि क्रमश अपान, नाम, रस, रूप शब्द, कामना और कर्म इन आठ अतिग्राह्य (=विषयो) द्वारा गध सूघते, नाम बोलते, रस चखते, रूप देखते शब्द सुनते, काम (=भोग) चाहते, कर्म करते, स्पर्श जानते ह। इद्रियोंके बारेमें यह उत्तर सुनकर आर्तभागन फिर पूछा—

'याज्ञवल्क्य ! यह सब (=विश्व) तो मत्युका अन्न (भोजन) है। कौन वह देवता ह, जिसका अन्न मृत्यु है ?'

'आग मृत्यु ह, वह पानीका भोजन है पानीसे मत्युका जीता जा सकता ह।'

'याज्ञवल्क्य ! जब यह पुरुष मर जाता ह, (तब) उसके प्राण (साथ) जाते ह या नहीं ?'

री। यही गृह जाता है। वह उसासें लेता है फूल जाता है फिर मरकर पड़ जाता है।

याज्ञवल्क्य! जब यह पुरुष मरता है क्या (है जो) इसे नहीं छोड़ता नाम ।

याज्ञवल्क्य! जब मरनेपर इस पुरुषकी वाणी आग (=तत्त्व) में समा जाती है, प्राण वायुमें, आँख आदित्यमें, मन चन्द्रमामें, श्रोत्र दिशाओंमें, शरीर पृथिवीमें, आत्मा आकाशमें, रोएँ ओषधियोंमें, केश वनस्पतियोंमें, खून और वीर्य पानीमें मिल जाते हैं तब यह पुरुष (जीव) कहाँ होता है?

हाथ ला सौम्य आर्तभाग! हम दोनों ही इस (तत्त्व)को जान सकेंगे, ये लोग नहीं ।

तब दोनोंने उठकर मंत्रणा की, उन्होंने जो कहा वह कर्म हीके बारेमें कहा। जो प्रशंसाकी कर्मकी ही प्रशंसा की।—पुण्य कर्मसे पुण्य (=भला) होता है पापसे पाप (=बुरा) होता है। तब जरत्कारव आर्तभाग चुप हो गया।

(c) भुज्यु लाह्यायनिका अश्वमेध-याजियोंके लोकपर प्रश्न—तब भुज्यु लाह्यायनिने पूछा—'याज्ञवल्क्य! हम मद्र देशमें विचरण करते थे। वहाँ पतंचल काप्यके घर पर गये। उसकी लड़की गंधर्व-गृहीता (=देवता जिसके सिरपर आया हो) थी। उससे मैंने पूछा—'तू कौन है?' उसने कहा—सुधन्वा आङ्गिरस। तब उससे लोकोंका अन्त पूछते हुए मैंने कहा—कहाँ पारिक्षित[1] (परीक्षित वंशी) गये? सो मैं तुमसे भी याज्ञवल्क्य! पूछता हूँ, कहाँ पारिक्षित गये?'

---

[1]छान्दोग्य (३।१७।६) में घोर आंगीरसके शिष्य देवकीपुत्र कृष्णका जिक्र आया है, उससे और यहाके वर्णनको मिलानेसे परीक्षित् महाभारतके अर्जुनका पुत्र मालूम होता है। फिर परीक्षित्-वंशियोंके कहनेसे जान पड़ता है, कि तबसे याज्ञवल्क्य तक कितनी ही पीढ़ियाँ बीत चुकी थीं। "सांकृत्यायन-वंश"में मैंने परीक्षित-पुत्र जन्मेजयका समय ९०० ई० पू० निश्चित किया है।

'उस (याज्ञवल्क्य)ने कहा— वह वहाँ गये जहाँ अश्वमेध याजी (=करने वाले) जाते हैं ?'

अश्वमेधयाजी कहाँ जाते हैं ?'

इसपर याज्ञवल्क्यने वायु द्वारा उस लोकमें अश्वमेधयाजियोंका जाना बतलाया जिसपर लाह्यायनि चुप हो गया।

(d) उषस्ति चाक्रायण-सर्वान्तरात्मापर प्रश्न—उपस्ति चाक्रायण कुरु-देशका एक प्रसिद्ध वेदज्ञ था। छान्दोग्य[1]में इसके बारेमें कहा गया है—

कुरु-देशमें ओले पड़े थे, उस समय उषस्ति चाक्रायण (अपनी) भार्या आटिकीके साथ प्रद्राणक नामक शूद्रोंके ग्राममें रहता था। उसने (एक) इभ्य (=शूद्र)को कुल्माष (=दाल) खाते देख उससे माँगा। उसने उत्तर दिया—'यह जो मेरे सामने है उसे छोड़ और नहीं है।' इसे ही मुझे दे। उसने दे दिया।

इभ्यने उपस्तिको जब पानी भी देना चाहा तो उपस्तिने कहा—'यह जूठा पानी होगा। जिसपर दूसरेने पूछा—क्या यह (कुल्माष) जूठा नहीं है ? तो उसने कहा—इसे खाये बिना हम नहीं जी सकेंगे। पानी तो यथेष्ट पा सकते हैं। खाकर बाकीको स्त्रीके लिए ले गया। वह पहिले ही आहार प्राप्त कर चुकी थी। उसने उसे लेकर रख दिया। दूसरे दिन उसी जूठे कुल्माषको खाकर उषस्ति कुरु राजके यज्ञमें गया, और राजाने उसका बहुत सम्मान किया।

उषस्ति चाक्रायण अब कुरु (मेरठ जिले)से चलकर विदेह (दरभंगा जिले, बिहार)में आया था जहाँ कि जनक बहुदक्षिणा यज्ञ कर रहा था। याज्ञवल्क्यको गायें हँकवाते देख उसने पूछा[2]—

'याज्ञवल्क्य ! जो साक्षात् अपरोक्ष (=प्रत्यक्ष) ब्रह्म जो सबके भीतर वाला (=सर्वान्तर) आत्मा है, उसके बारेमें मुझे बतलाओ।'

---

[1] छां० १।१० [2] बृह० ३।४।१

इच्छाएं ह । इसलिए ब्राह्मणको पाडित्यस विरक्त हो जाल्य (=बालकोंकी भाति भानाभालापन)के साथ रहना चाहिए, बाल्य और पाण्डित्यसे विरक्त हो मुनि । मौनसे विरक्त हो, फिर ब्राह्मण (होता ह) । वह ब्राह्मण कमे हाता ह ? जिसस होता ह उसमे एसा ही (होता ह) इससे भिन्न तुच्छ ह ।

तब कहोल कौषीतकेय चुप हो गया ।

(f) गार्गी वाचक्नवी (ब्रह्मलोक, अक्षर)—मत्रयीकी भाँति गार्गी और उमके प्रश्न इस बातके सबूत ह कि छठी सातवी सदी ईसा-पूवम स्त्रियोंका चौके-चूल्हेस आग बढनका काफी अवसर मिलता था अभी वह पर्दे और दूसरी सामाजिक जकडबन्दियाम उतनी नहा जकडी गइ थी। गार्गीने पूछा[1]—

'याज्ञवल्क्य ! जो (कि) यह सब (=विश्व) पानीम ओत प्रोत (=ग्रथित) ह पानी किसमें ओतप्रोत ह ?

वायुम गार्गी !'

वायु किसमे ओतप्रोत ह ?

'अन्तरिक्ष लाकामें गार्गी !' '

आगके इसी तरहके प्रश्नके उत्तरमें याज्ञवल्क्यने गन्धर्वलोक, आदित्य-लोक चन्द्रलाक,[2] नक्षत्रलोक, दवलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक, ब्रह्मलोक —म पहिला का पिछलामें ओतप्रोत होना बतलाया ।—ब्रह्मलोकमें सारे ही ओतप्रोत ह, इसपर गार्गीने पूछा—

ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है ?

"उस याज्ञवल्क्यन कहा— मत प्रश्नकी सीमाके पार जा, मत तरा शिर गिरे । प्रश्नकी सीमा न पारकी जानवाली देवताके बारमे तू अतिप्रश्न कर

---

[1] बृह० ३।६।१

[2] आदित्यलोकसे भी चन्द्रलोकको परे और महान् बतलाना बतलाता है, कि ब्रह्मज्ञानीके लिए विज्ञानके क-खके ज्ञान होनेकी कोई खास जरूरत नहीं।

रहा है। गार्गी! मत अति प्रश्न कर।

तब गार्गी वाचक्नवी चुप हो गई।

इसके बाद उद्दालक आरुणिका प्रश्न है। जो कि प्रश्नकर्त्ता आरुणिके लिए अनगढ़ा मालूम होता है। कितने ही लोग ग्रंथ कंठस्थ करके लाते गये थे, इसलिए ऐसा गड़बड़ भी भूल संभव है। पालि दीघनिकायके महापरिनिव्वाणसुत्तमें भी कंठस्थ प्रथाके कारण ऐसी गलती हुई है, इसका उल्लेख हमने वहाँ किया है। गार्गीके प्रश्नके उत्तरोंको भी देकर हम आगे याज्ञवल्क्यके विचारोंके जाननेके लिए बिना विस्तृत प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नोत्तरको (जो कि यहाँ आरुणिके नामसे मिल रहा है) देंगे।[1]—

'तब वाचक्नवीने पूछा—

ब्राह्मण भगवानो! अच्छा तो मैं इस (याज्ञवल्क्य)से दो प्रश्न पूछती हूँ यदि उन्हें यह बतला देंगे तो तुममेंसे कोई भी इन्हें ब्रह्मवादमें न जीतेगा।

(याज्ञवल्क्य—) 'पूछ गार्गी!'

'उसने कहा—याज्ञवल्क्य! जैसे काशी या विदेह वासी कोई उग्र-पुत्र (=सिपाही) उतरी प्रत्यंचाको धनुषपर लगा शत्रुको बधनेवाले बाण-फलवाले दो (तीरों)को हाथमें ले उपस्थित हो, इसी तरह मैं तुम्हारे पास दो प्रश्नोंके साथ उपस्थित हुई हूँ। उन्हें मुझे बतलाओ।'

पूछ गार्गी!

'उसने कहा—याज्ञवल्क्य! जो मैं द्यौ(=नभस्)लोकसे ऊपर, जो पृथिवीसे नीचे जो द्यौ और पृथिवीके बीचमें है, जो अतीत, वर्तमान और भविष्य कहा जाता है, किसमें वह ओतप्रोत है?'

वह आकाशमें ओतप्रोत है।'

'उस (गार्गी)ने कहा—'नमस्ते याज्ञवल्क्य! जो कि तुमने यह मुझे बतलाया। (अब) दूसरा (प्रश्न) लो।

---

[1] बृह० ३।८।१।१-१२

'पूछ गार्गी !'

'आकाश किसमें ओतप्रोत है ?'

'गार्गी ! इस ही ब्राह्मण अक्षर (=अविनाशी) कहते हैं, (जो कि) न स्थूल न अणु न ह्रस्व, न दीर्घ न लाल, न स्नेह (=चिकना या आर्द्र) न छाया न तम न वायु न आकाश, न संग न रस, न गंध, न नेत्र-श्रोत्र वाणी-मन द्वारा ग्राह्य न तेज (=अग्नि) वाला न प्राण न मुख न मात्रा (=परिमाण) वाला, न आन्तरिक, न बाह्य है। न वह किसीको खाता है न उसको कोई खाता है। गार्गी ! इसी अक्षरके शासनमें सूर्य-चन्द्र धारे हुए स्थित हैं, इसी अक्षरके शासनमें द्यौ और पृथिवी मुहूर्त रात दिन अर्ध-मास मास ऋतु-संवत्सर धारे हुए स्थित हैं। इसी अक्षरके शासनमें श्वेत पहाड़ों (=हिमालय) से पूर्व वाली नदियाँ या पश्चिमवाली दूसरी नदियाँ उस उस दिशामें बहती हैं इसी अक्षरके शासनमें (हो) गार्गी ! दाताओंकी मनुष्य, यजमानकी देव प्रशंसा करते हैं। गार्गी ! जो इस अक्षरको बिना जाने इस लोकमें हवन करे, यज्ञ करे, बहुत हजार वर्ष तप तपे उसका यह (सब करना) अन्तवाला ही है। गार्गी ! जो इस अक्षरको बिना जाने इस लोकसे प्रयाण करता है, वह अभागा (=कृपण) है, और जो गार्गी ! इस अक्षरको जानकर इस लोकसे प्रयाण करता है वह ब्राह्मण है। वह यह अक्षर गार्गी ! न-देखा देखनेवाला, न-सुना सुननेवाला न-मनन किया मनन करनेवाला, न विज्ञात विजानन करनेवाला है। इससे दूसरा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं है। गार्गी ! इसी अक्षरमें आकाश ओतप्रोत है।

'तब वाचक्नवी चुप हो गई।'

गार्गीके दो भागोंमें बँट मध्यमें 'किसमें यह विश्व ओतप्रोत है' इसी प्रश्नका उत्तर है, इससे भी हमारा सन्देह दृढ़ होता है कि श्रुतिमें स्मरण करनेवालोंकी गलतीसे यहाँ आरुणि—जो कि याज्ञवल्क्यके गुरु थे—के नामसे नया प्रश्न डालनेकी गड़बड़ी हुई है।

(४) विदग्ध शाकल्यका देवोंकी प्रतिष्ठापर प्रश्न—अन्तिम

प्रकारान्तर¹ किया जाता था। उसका संक्षेप यहाँ स्थानादि अर्थमें दूसरा भी दिया जाता है—

किसमें [illegible] है?

रूपमें।

रूप किसमें है?

दृगमें। नाकमें। मनमें। हृदयमें।

कौन देवता?

'यह सब उसका है अथवा धारित (सब मिलकर) [illegible] और इस तरह प्रतिपादित—नेति।

फिर इस प्रकार स्थानादि वाक्यमें शाकल्यकी अपमानजनका की गई है। फिर अन्तमें शाकल्यने पूछा—

किसमें तुम और आत्मा प्रतिष्ठित (=स्थित) हो?

प्राणमें।

किसमें प्राण प्रतिष्ठित है?

अपानमें। व्यानमें। उदानमें।

किसमें उदान प्रतिष्ठित है?

समानमें। वह यह (=सबका आत्मा) अगृह्य=नहीं ग्रहण किया जा सकता, अशीर्य=न शीर्ण हो सकता, असंग=कहीं लिप्त हो सकता तुमसे मैं उस औपनिषद (=उपनिषद् प्रतिपादित, अथवा रहस्यमय) पुरुषके बारेमें पूछता हूँ उसे यदि न कहेगा तो तेरा सिर गिर जायगा।'

'शाकल्य उसे नहीं समझा, (और) उसका सिर गिर गया। (मरनेपर) समझ दूसरा हरनेवाले उसकी हड्डियोंको ले गये।

ब्रह्मके संवादमें शाकल्यका इस तरह शोचनीय अन्त हो जानेपर याज्ञवल्क्य कहा—

'ब्राह्मण भगवानो! आपमेंसे जिसकी इच्छा हो मुझसे प्रश्न करे,

---

¹ बृह० ३।६।१

या सभी मुझसे प्रश्न करें। आपमेंसे जो चाहें उससे मैं प्रश्न करूँ या आपमें सबसे मैं प्रश्न करूँ।' "

'उन ब्राह्मणोंकी हिम्मत नहीं हुई।'

(h) अज्ञात प्रश्नकर्त्ताका अन्तर्यामीपर प्रश्न—आरुणिने नामसे किये गये प्रश्नके कर्त्ताका असली नाम हमारे लिए चाहे अज्ञात हो, किन्तु याज्ञवल्क्यके दर्शनके जाननेकेलिए प्रश्न महत्त्वपूर्ण है इसलिए उसका भी संक्षेप देना जरूरी है[1]—

'उसे मैं जानता हूँ, याज्ञवल्क्य! यदि उस सूत्र और अन्तर्यामीको बिना जाने ब्राह्मणोंकी गायोंको हँकायगा तो तेरा सिर गिर जायगा।

मैं जानता हूँ गौतम! उस सूत्र (=धागे)को उस अन्तर्यामीको।

'मैं जानता हूँ (कहता है, तो) जैसे तू जानता है, वैसे बोल।

'उस (=याज्ञवल्क्य)ने कहा—वायु है गौतम! वह सूत्र वायु है। सूत्रसे गौतम! यह लोक, परलोक और सारे भूत गुथे हुए हैं। इसीलिए गौतम! मरे पुरुषके लिए कहते हैं—वायुसे इसके अंग छूट गये।

यह ऐसा ही है याज्ञवल्क्य! अन्तर्यामीके बारेमें कहो।

जो पृथिवीमें रहते पृथिवीसे भिन्न है, जिसे पृथिवी नहीं जानती, जिसका पृथिवी शरीर है, जो पृथिवीको अन्दरसे नियमन करता (=अन्तर्यामी) है यही तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।

'जो पानीमें आगमें अन्तरिक्षमें वायुमें द्यौमें आदित्यमें दिशाओंमें चन्द्र-तारामें आकाशमें तम (=अंधकार)में तेजमें सारे भूतोंमें प्राणमें वाणीमें नेत्रमें श्रोत्रमें मनमें चर्म (=त्वग् इन्द्रिय)में विज्ञान (=जीव)में (और) जो वीर्य (=रेतस)में रहते वीर्यसे भिन्न है जिसे वीर्य नहीं जानता, जिसका वीर्य शरीर है, जो वीर्यको अन्दरसे नियमन

[1] बृह० ३।७।१ २३

करता (=अन्तर्यामी) है, यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत (=अवि नाशी) है। वह अन्-या दर्शनवाला० अविज्ञात विज्ञान करनेवाला है। ऐसा दूसरा श्राता मन्ता विज्ञाता नहीं है। यही तेरा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। इससे अन्य (सभी) दुःख है।'"

(ख) जनकको उपदेश—सभाके बाद भी याज्ञवल्क्य और ध्यान प्रभा जनक (=राजा) विदेहका समागम होता रहा। इस समागममें जो दार्शनिक वार्तालाप हुए थे उसको बृहदारण्यकके चौथे अध्यायमें सुरक्षित रखा गया है।—

'जनक वैदेह बैठा हुआ था, उसी समय याज्ञवल्क्य आ गये। उनसे (जनकने) पूछा—

कैसे आये पशुओंकी इच्छासे या (किसी) सूक्ष्म बात (अण्वन्त)के लिए?'

'दोनों हीके लिए सम्राट्! जो कुछ किसीने तुझे बतलाया हो उसे सुनना चाहता हूँ।'

मुझसे जित्वा शैलिनिने कहा था—वाणी ब्रह्म है।'

जैसे माता पिता आचार्यवाला (=शिक्षित पुरुष) बोले, उसी तरह शैलिनिने यह कहा—वाणी ब्रह्म है। क्या उसने तुझे उसका आयतन (=स्थान) प्रतिष्ठा बतलाई?

' नहीं बतलाई।'

'वह एकपाद (एक परवाला) है सम्राट!'

'तो (उसे) मुझे बतलाओ याज्ञवल्क्य!

वाणी आयतन है आकाश प्रतिष्ठा है, प्रज्ञा (मान) करके इसकी उपासना कर।'

'प्रज्ञा क्या है याज्ञवल्क्य!'

'वाणी ही सम्राट! वाणीसे ही सम्राट! बन्धु (=ब्रह्मा[1]) जाना

---

[1] तुलना करो "दीघ निकाय" (हिन्दी-अनुवाद, नामसूची)

जाता है, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्वांगिरस इतिहास पुराण, विद्या, उपनिषद् श्लोक, सूत्र, व्याख्या अनुव्याख्यान, आहुति, खान-पान, यह लोक परलोक, सारे भूत वाणीसे ही जाने जाते हैं। सम्राट ! वाणी परमब्रह्म है। जो ऐसा जानते हुए इसकी उपासना करता है उसको वाणी नहीं त्यागती सारे भूत उसे (भोग) प्रदान करते हैं (वह) देव बन स्वोम जाता है।

जनक वैदेहने कहा—'(तुम्हें) हजार हाथी-सांड देता हूँ।

याज्ञवल्क्यने कहा—पिता मेरे मानते थे, कि बिना अनुशासन (=उपदेश)के (दान) नहीं लेना चाहिए। जो कुछ किसीने तुझे वतलाया हो, उसीको मैं सुनना चाहता हूँ।'

'मुझसे उदङ्क शौल्वायनने कहा था—प्राण ही ब्रह्म है।'

जैसे माता पिता आचार्यवाला बोले, उसी तरह शौल्वायनने कहा—प्राण ही ब्रह्म है। क्या उसने प्रतिष्ठा वतलाई ?

' नहीं वतलाई।'

'हजार हाथी-सांड देता हूँ।'

(जनक—) 'मुझसे वकु वार्ष्णने कहा—नेत्र ही ब्रह्म है।

'मुझसे गर्दभीविपीत भारद्वाजने कहा—श्रोत्र ही ब्रह्म है।

'मुझसे सत्यकाम जाबालने कहा—मन ही ब्रह्म है।

'मुझसे विदग्ध शाकल्यने कहा—हृदय ही ब्रह्म है'

(जनक—) 'हजार हाथी-सांड देता हूँ।'

'याज्ञवल्क्यने कहा—'पिता मेरे मानते थे कि बिना अनुशासनके दान नहीं लेना चाहिए।

और दूसरी वार जानेपर[1] 'जनक वैदेहने दाढीपर (हाथ) फेरते हुए कहा—नमस्ते हो याज्ञवल्क्य ! मुझे अनुशासन (=उपदेश) करो।'

'उस (=याज्ञवल्क्य)ने कहा—'जैसे सम्राट ! बड़े रास्तेपर

---

[1]वृह० ४।२।१

जानेवाला (यात्री) रथ या नाव पकड़ता है, इसी तरह इन उपनिषद् (=तत्वोपदेशों)मे तेरा आत्मा समाधान हो गया है। इस तरह वृदारक(=देव) आढ्य(=धनी) वेद-पढा, उपनिषत्-सुना तू यहाँसे छूटकर कहा जायगा ?'

'भगवन् ! मैं नहीं जानता कि कहाँ जाऊँगा।

अच्छा तो जहा तू जायगा उसे मैं तुझे बतलाता हूँ।

कहें भगवन् !'"

इसपर याज्ञवल्क्यने आँखों और हृदयमें हजार होकर ऊपरको जाने वाली केश-जैसी सूक्ष्म हिता नामक नाडियोंका जिक्र करके प्राणको चारो ओर व्यापक बतलाया और कहा—

'वह यह नेति नेति (=इतना ही नहीं) आत्मा है, (जो) अगृह्य= नहीं ग्रहण किया जा सकता अ-संग नहीं लिप्त हो सकता। जनक ! (अब) तू अभयको प्राप्त हो गया।

जनक वैदेहने कहा—अभय तुम्हें प्राप्त हो, याज्ञवल्क्य ! जो कि हमें तुम अभयका ज्ञान करा रहे हो। नमस्ते हो, यह विदेह (=देश) यह मैं (तुम्हारा) हूँ ॥२॥

(a) **आत्मा, ब्रह्म और सुषुप्ति**—'जनक वैदेहके पास याज्ञवल्क्य गए। जब जनक वैदेह और याज्ञवल्क्य अग्निहोत्रमें एकत्रित हुए, (तब) याज्ञवल्क्यने जनकको वर दिया। उसने इच्छानुसार प्रश्नका वर मागा, उसने उसे दिया। सम्राटने ही पहिले पूछा—

'याज्ञवल्क्य ! किस ज्योतिवाला यह पुरुष है ?'

आदित्य-ज्योतिवाला सम्राट ! आदित्य-ज्योतिसे ही वह कर्म करता है।'

हाँ, ऐसा ही है याज्ञवल्क्य ! आदित्यके डूबनेपर किस ज्योति वाला ?'

चन्द्र-ज्योतिवाला ' अग्नि-ज्योतिवाला '

'वाणी

'आत्म-ज्योतिवाला सम्राट ! आत्मा (रूपी) ज्योतिसे ही यह कम करता है ।

कौनसा है आत्मा ?

जो यह प्राणोंमें विज्ञानमय, हृदयमें आन्तरिक ज्योति (=प्रकाश) पुरुष है वह समान हो दोनों लोकोंमें संचार करता है वह स्वप्न (देखनेवाला) हो इस लोकके मृत्युके रूपोंको अतिक्रमण करता है। वह पुरुष पैदा हो शरीरमें प्राप्त हो पापसे लिप्त होता है उत्क्रान्ति करते मरते वक्त पापको त्यागता है। इस पुरुषके दो ही स्थान होते हैं—यह और परलोक स्थान तीसरा संधिवाला स्वप्नस्थान है। उस संधिस्थानमें रहते (वह) इन दोनों स्थानोंको देखता है—इस और परलोक स्थानको।

पाप और आनन्द दोनोंको देखता है। वह जब सोता है, इस लोककी सारी ही मात्राको ले स्वयं निर्माण कर अपनी प्रभा अपनी ज्योतिके साथ प्रसुप्त होता है वहाँ यह पुरुष स्वयंज्योति होता है। न वहाँ (स्वप्नमें) रथ होते, न घोड़े (=रथ-योग) न रास्ते, किन्तु (वह) रथों, रथयोगों रास्तोंको सृजता है आनन्दोंको सृजता है। न वहाँ घर, पुष्करिणियाँ नदियाँ होतीं, किन्तु (इन्हें) वह सृजता है। जिन्हें जागृत (-अवस्थामें) देखता है उन्हें स्वप्नमें भी (देखता है), इस तरह वहाँ यह पुरुष स्वयंज्योति होता है।

'सो मैं भगवानको (और) हजार देता हूँ इसके आगे (भी) विमोक्षके बारेमें बतलावें।'

जैसे कि बड़ी मछली (नदीके) दोनों किनारोंमें संचार करता है, इसी तरह यह पुरुष स्वप्न और बुद्ध (=जागन) दोनों छोरोंमें संचार करता है। जैसे आकाशमें बाज या गरुड़ उड़ते (उड़ते) थककर पंखोंको इकट्ठाकर घोसलेको ही (आश्रय) पकड़ता है इसी तरह यह पुरुष उस अन्त (=छोर)की ओर धावन करता है जहाँ सोया हुआ न किसी काम (=भोग)की कामना करता है, न किसी स्वप्नको देखता है। उसकी वह केश-जैसी (सूक्ष्म) हजारों फूट निकली नील पिंगल-हरित

नाहिए (रस)मे पूण हिता नामक नाडियाँ है जिनम गड्ढे (गिरत) जसा गिरता ह जहाँ देवकी भाँति राजाकी भाँति—मैं ही यह सब कुछ हूँ, (म ही) सब हूँ—यह मानता ह, वह इसका परम लोक ह। सो जसे प्रिय स्त्रीसे आलिंगित हो (पुरुष) न बाहरके बारम कुछ जानता न भीतरके बारेम, ऐसे ही यह पुरुष प्राज्ञ आत्मा (=ब्रह्म) से आलिंगित हो न बाहरके बारम कुछ जानता, न भीतरके बारेमें। वह इसका रूप है। यहाँ पिता अ-पिता हो जाता है, माता अ-माता, लोक अ-लोक, देव अ-देव, वेद अ-वेद हो जाते हैं। यहाँ चोर अ-चोर, गर्भघाती अ-गर्भघाती, चंडाल अ-चंडाल, पौल्कस (=म्लेच्छ) अ-पौल्कस, श्रमण अ-श्रमण, तापस अ-तापस, पुण्यसे रहित पापसे रहित होता है। उस समय वह हृदयके सारे शोकोंसे पार हो चुका होता ह। यदि वहाँ उसे नहीं देखता, तो देखते हुए ही उसे नहीं देखता अविनाशी होनेसे द्रष्टा (=आत्मा)की दृष्टिका लोप नहीं होता। उसम विभक्त (=भिन्न) दूसरा नहीं ह, जिसे कि वह देखता। जहाँ दूसरा जसा हो, वहाँ दूसरा दूसरेको देखे, दूसरा दूसरेको सूँघे चखे बोले सुने संयुक्त हो छुये विजानन करे। द्रष्टा एक अद्वैत होता ह यह है ब्रह्मलोक सम्राट्।'

(b) ब्रह्मलोक आनन्द—ब्रह्मलोकमें कितना आनंद ह, इसको समझाते हुए याज्ञवल्क्यने कहा—

'मनुष्योंमें जो संतुष्ट समृद्ध, दूसरोंका अधिपति न (होते भी) सब मानुष भोगोंसे सम्पन्न होता ह उसका यह (आनन्द) मनुष्योंका परमानंद ह। १०० मनुष्योंके जो आनंद ह वह एक पितरोंका आनन्द ' आगे—

१०० पितर	आनन्द	=१ गंधर्व-लोक आनन्द
१०० गंधर्वलोक		=१ कर्मदेव ,,
१०० कर्मदेव		=१ आजानदेव ,
१०० आजानदेव		=१ प्रजापति-लोक ,
१०० प्रजापति-लोक		=१ ब्रह्म-लोक

फिर उपसंहार करते—

यही परम प्राप्त ही ब्रह्मलोक है सम्राट !

सो मैं भगवानको सहस्र देता हूँ। इससे आगे (भी) विमोक्षकेलिए ही बतलाओ।'

'यहाँ याज्ञवल्क्यको भय होने लगा— राजा मेधावी है इन सब(की बात करने)से मुझे रोक दिया। (पुन:) वही यह (आत्मा) इस स्वप्नके भीतर रमण विचरण कर पुण्य और पापको देखकर फिर नियमानुसार जागृत अवस्थाको दौड़ता है। जैसे राजाको आते देख उग्र प्रत्यनस (=मन्त्रि) सूत (=सारथी) ग्रामणी (=गाँवके मुखिया) अन्न-पान निवास प्रदान करते है—'यह आ रहा है 'यह आता है इसी तरह इस तरहके ज्ञानीकेलिए सारे भूत (=प्राणी) प्रदान करते है—यह ब्रह्म आ रहा है—यह आता है।

(ग) मैत्रेयीको उपदेश—याज्ञवल्क्यकी दो स्त्रियाँ थी—मैत्रेयी और कात्यायनी। याज्ञवल्क्यने घर छोड़ते वक्त जब सम्पत्तिके बँटवारेका प्रस्ताव किया, तो मैत्रेयीने अपने पतिसे कहा—

'भगवन् ! यदि वित्तसे पूर्ण यह सारी पृथिवी मेरी हो जाय, तो क्या उससे मैं अमृत होऊँगी अथवा नही ?'

नही, जैसे सम्पत्तिवालोका जीवन होता है वैसा ही तेरा जीवन होगा, अमृतत्व(=मुक्तपद)की तो आशा नही है।

उस (=मैत्रेयी)ने कहा— जिससे मैं अमृत नही हो सकती, उस (से) क्या करूँगी। जो भगवान जानते है वही मुझसे कहें।

याज्ञवल्क्यने कहा— हमारी प्रिया हो आपने सबसे प्रिय (वस्तु) माँगी अच्छा तो आपको यह बतलाता हूँ। मेरे वचनोको ध्यानमें करो।' और उसने कहा— अरे ! पतिकी कामनाकेलिए पति प्रिय नही होता अपनी कामना(=भोग)केलिए पति प्रिय होता है। अरे ! भार्याकी कामनाके लिए भार्या प्रिया नहीं होती, अपनी कामनाके लिए भार्या प्रिय होती है।

पुत्र वित्त पशु ब्रह्म क्षत्र लोक

[illegible] भूत [illegible] । आत्माके लिए सब (=सब वस्तु) प्रिय [illegible] । [illegible] आत्माके लिए सब प्रिय होता है । अरे ! आत्मा (=आप) ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य, निदिध्यासन (=ध्यान) करने योग्य है । मैत्रेयि ! आत्माके दृष्ट, श्रुत, मत [illegible] हो जानेपर [illegible] (=विश्व) विदित हो जाता है । [illegible] [illegible] है [illegible] आत्माको अन्य [illegible] जानता है । [illegible]

भूत (=प्राणी) [illegible] । यह जो आत्मा है यही ब्रह्म, [illegible] भूत [illegible] है । जैसे सभी जलोंका समुद्र एकायन (=एकाश्रय) है, ऐसे ही सभी स्पर्शोंका त्वक् [illegible] । [illegible] रसोंकी जिह्वा [illegible] नाना [illegible] सकल्पोंका मन [illegible] विद्याओंका हृदय [illegible] कर्मोंका हाथ [illegible] आनन्दोंका उपस्थ (=ज्ञान-इन्द्रिय) [illegible] विसर्गों (=त्याग) की गुदा [illegible] मार्गोंके पैर [illegible] सभी वेदोंकी वाणी एकायन है । जैसे [illegible] (=नमक) पूर्ण होता है बाहर भीतर (कहीं) बिना छोड़े सारा (लवण) रसपूर्ण ही है इसी तरह अरे ! यह आत्मा बाहर भीतर (कहीं) न छोड़े प्रज्ञानपूर्ण (=प्रज्ञाघन) ही है । इन (शरीरसे) भूतोंसे उठकर उनके बाद ही विनष्ट हो जाता है अरे ! मरकर (प्रेत्य) संज्ञा नहीं है (यह मैं) कहता हूँ ।

मैत्रेयीने कहा—'यहीं मुझे भगवान्ने मोहमें डाल दिया, मैं इसे नहीं समझ सकी ।'

उस (=याज्ञवल्क्य)ने कहा—अरे ! मैं मोह (की बात) नहीं कहता । अविनाशी है अरे ! यह आत्मा, उच्छिन्न न होनेवाला है । जहाँ द्वैत हो वहाँ (उनमेंसे) एक दूसरेको देखता [illegible] सूँघता [illegible] चखता [illegible] बोलता [illegible] सुनता [illegible] मनन करता [illegible] छूता [illegible] विज्ञान करता है, जहाँ कि सब उसका आत्मा ही है, वहाँ किससे किसको देखे [illegible] विज्ञान करे । सो यह 'नेति नेति' आत्मा अगृह्य=नहीं ग्रहण किया जा सकता [illegible] असंग=नहीं लिप्त हो सकता है । [illegible] मैत्रेयी ! यह

(जो स्वयं) सबका विज्ञाता (=जाननहार) है, उसे किससे जाना जाये, यह मैत्रेयी ! तुझे अनुशासना कह दी गई। अरे ! इतना ही अमृतत्व है। यह कह याज्ञवल्क्य चल दिये।"

याज्ञवल्क्यके इन उपदेशोंसे पता लगता है, कि यद्यपि अभी भी जगतके प्रत्याख्यानका सवाल नहीं उठा था और न पीछेके योगाचारों और शंकरानुयायियोंकी भाँति ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या तक बात पहुँची थी तो भी सुषुप्ति और मुक्तिमें याज्ञवल्क्य ब्रह्मसे अतिरिक्त किसी और तत्त्वका भान होता है, इसे स्वीकार नहीं करते थे। आनंदकी सीमा ब्रह्म या ब्रह्मलोक है—यह सिर्फ अभावात्मक गुणोंका ही धनी नहीं है। ब्रह्म सबके भीतर है और सबका अन्दरसे नियमन करता (=अन्तर्यामी) है। यद्यपि अन्तमें याज्ञवल्क्यने घर-बार छोड़ा, किन्तु सन्तानरहित एक बूढ़के तौर पर। घर छोड़ते वक्त उनका ब्रह्मज्ञान (=दर्शन) पहिलेसे ज्यादा बढ़ गया था इसकी संभावना नहीं है। पहिले जीवनमें धन और कीर्ति दोनोंको उन्होंने खूब संग्रह किया यह हम देख चुके हैं। याज्ञवल्क्यके समयमें कर्म-काडपर जबर्दस्त संदेह होने लगा था, यज्ञमें लाखों खर्च करनेवाले क्षत्रियोंके मनमें पुरोहितोंकी आमदनीके संबंध में खतरनाक विचार पैदा हो रहे थे। साथ ही गृहत्यागी श्रमण और तापस साधारण लोगोंको अपनी तरफ खींच रहे थे। ऐसी अवस्थामें याज्ञवल्क्य और उनके गुरु आरुणिकी दार्शनिक विचारधाराने ब्राह्मणोंके नेतृत्वको बचानेमें बहुत काम किया। (१) पुराने ब्राह्मण इन बातोंपर डटे हुए थे—यज्ञसे लौकिक पारलौकिक सारे सुख प्राप्त होते हैं। (२) ब्राह्मण विरोधी विचार धारा कहती थी—यज्ञ कर्मकाण्ड फजूल है, इन्हें लोकमें कितनी ही बार असफल होते देखा गया है, ब्राह्मण अपनी दक्षिणाके लोभसे परलोकका प्रलोभन देते हैं। (३) इसपर आरुणि-याज्ञवल्क्य का कहना था—ज्ञानके बिना कर्म बहुत कम फल देता है। ज्ञान सर्वोच्च साधन है, उससे हम उस अक्षर ब्रह्मके पास जाते हैं जिसका आनंद सभी आनंदोंकी चरम सीमा है। इस ब्रह्मलोकको हम नहीं देखते, किन्तु वह है उसकी हल्कीसी झाँकी हमें गाढ़ निद्रा

(सुषुप्ति)में मिलती है जहाँ—

जब सो गये हो गये बराबर।
सब शाहो-गदामें फर्क पाया॥'

इंद्रिय-अगोचर इस ब्रह्मलोकके स्थानको मजबूत कर देनेपर यज्ञ फल भोगनेवालोंके लिए देवताओंकी सत्ताको मनवानेका भी काम चल जाता है। सर्व-श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य शुक्ल वेद (यजुर्वेद)के मुख्य आचार्य तथा यजुर्वेदके कर्मकाण्डीय ब्राह्मण—शतपथ ब्राह्मण—के महान कर्ता हैं। यज्ञरूपी अन्ध-श्रद्धाको उन्होंने सबसे अधिक दृढ़ता प्रदान की। उपनिषद्के इन ऋषियोंने अपने सारे ब्रह्मज्ञानके साथ पुनर्जन्म परलोकका ध्यान छोड़ा नहीं। सामाजिक दृष्टिसे देखनेपर पुरोहित वर्गके आर्थिक स्वार्थपर जो एक भारी संकट आया था, उसे यज्ञोंकी प्रथाको पूर्ववत् प्रधान स्थान दिलाकर तो नहीं, बल्कि स्वयं गुरु बनने तथा श्रद्धा-दक्षिणा पानेका पहिलेसे भी मजबूत दूसरा रास्ता—ब्रह्मज्ञान प्रचार—निकालकर हटा दिया। अब जहाँ ब्राह्मण पुरोहित बन पुराने यज्ञोंमें श्रद्धा रखनेवालोंको सन्तुष्टि कर्मकांड द्वारा कर सकते थे, वहाँ ब्राह्मण ज्ञानी बुद्धिवादियोंको ब्रह्म ज्ञानसे भी सन्तुष्ट कर सकते थे।[1]

४ सत्यकाम जाबाल (६५० ई० पू०)

सत्यकाम जाबालका दर्शन जैसा हम छान्दोग्यमें पाते हैं और उसके प्रकट करनेका जो स्थूलसा ढंग है, उससे वह समय याज्ञवल्क्यसे पहलेवाली पीढ़ीका मालूम होता है। याज्ञवल्क्यके यजमान जनक वैदेहने सत्य-कामसे अपने वार्तालापका जिक्र किया है, उससे याज्ञवल्क्यके समयमें उसका होना सिद्ध होता है। अपने गुरु हारिद्रुमत गौतमके अतिरिक्त गोश्रुति वैयाघ्र पद्यका नाम सत्यकामके साथ आता है वैयाघ्रपद्य उसके शिष्योंमें था।

---

[1] इसकालकी सामाजिक व्यवस्थाके लिए देखो मेरी "वोलगासे गंगा"में "प्रवाहण जबलि" पृष्ठ ११८-३४ [2] बृह० ४।१।६ [3] छा० ५।२।३

(१) जीवनी—सत्यकाम जाबालके जीवनके बारेमें उपनिषदसे हमें इतना ही मालूम होता है[1]—

सत्यकाम जाबालने (अपनी) मा जबालासे पूछा—'मैं ब्रह्मचर्य-वास करना चाहता हूँ　, मेरा गोत्र क्या है?

'बहुतोंके साथ भ्रमण-परिचारण करती जवानीमें मैंने तुझे पाया। इसलिए मैं नहीं जानती कि तेरा क्या गोत्र है। जबाला तो नाम मेरा है, सत्यकाम तेरा नाम इसलिए सत्यकाम जाबाल ही तू कहना।

"तब वह हारिद्रुमत गौतमके पास जाकर बोला—'भगवानके पास ब्रह्मचर्यवास करना चाहता हूँ, भगवानकी शिष्यता मुझे मिले।

उसने पूछा—'क्या है सौम्य! तेरा गोत्र?

उसने कहा—मैं यह नहीं जानता भो! माँसे पूछा उसने मुझसे कहा—बहुतोंके साथ सचरण-परिचारण करती जवानीमें मैंने तुझे पाया।

सत्यकाम जाबाल ही तू कहना। सो मैं सत्यकाम जाबाल हूँ भो!

उससे (=गौतमने) कहा—अ-ब्राह्मण ऐसे (साफ-साफ) नहीं कह सकते। सौम्य! समिधा ला तेरा उपनयन (=शिष्य बनाना) करूँगा, तू सत्यसे नहीं हटा।"

(२) अध्ययन—'　उपनयनके बाद दुबली-पतली चार सौ गौओंको हवाले कर (हारिद्रुमत गौतमने) कहा—सौम्य! इनके पीछे जा।

'हजार हुए बिना नहीं लौटना। उसने कितने ही वर्ष (=वर्षगण) प्रवास किये, जब कि वह हजार हो गई, तब ऋषभ (=साँड)ने उसके पास आकर (बात) सुनाई—हम हजार हो गए, हमें आचार्य-कुलमें ले चलो। और मैं ब्रह्मका एक पाद तुझे बतलाता हूँ।

'बतलायें मुझे भगवान्!'

पूर्व दिशा एक कला, पश्चिम दिशा एक कला, दक्षिण दिशा एक कला, उत्तर दिशा एक कला—यह सौम्य! ब्रह्मका प्रकाशवान् नामक चार

[1] छा० ४।४।१-५

लावाला पाद है। (अगला) पाद अग्नि तुझे बतलायेगा।'

दूसरे दिन उसने गायोंको हाँका। जब सन्ध्या आई तो आगको गायोंका घर समिधाका रखकर आगके सामने बैठा। उसे अग्निने आकर कहा— सत्यकाम !

'भगवन् !'

ब्रह्मका एक पाद मैं तुझे बतलाता हूँ।

बतलायें मुझे भगवन् !

पृथिवी एक कला अन्तरिक्ष द्यौ समुद्र एक कला है। यह साम्य—ब्रह्मका अनन्तवान् नामक चार कलावाला पाद है। हंस तुझे (अगला) पाद बतलायेगा।

" अग्नि सूर्य चन्द्र विद्युत् कला है। यह ज्योतिष्मान् नामक पाद है। मद्गु तुझे (अगला) पाद बतलायेगा।

' प्राण चक्षु श्रोत्र मन कला है। यह आयतन(=इन्द्रिय)वान् नामक पाद है।

वह आचार्यकुलमें पहुँच गया। आचार्यने उससे कहा— सत्यकाम !'

'भगवन् ! —उत्तर दिया।'

'ब्रह्मवेत्ताकी भाँति सौम्य ! तू दिखाई दे रहा है, किसने तुझे उपदेश दिया ?'

(वह) मनुष्योंमेंसे दूसरा था। भगवान् ही मुझे इच्छानुसार बतला सकते हैं। भगवान्-जैसोंसे सुना है आचार्यके पाससे जाना विद्या ही उत्तम प्रयोजन (=समाधि)को प्राप्त करा सकती है।

(आचार्यने) उससे कहा—यहाँ छूटा कुछ नहीं है।

इसमें कथासे ही पता लगता है कि गौतमने सत्यकामसे कई वर्षों गायें चरवाई, वहाँ चराते वक्त पशुओं और प्राकृतिक वस्तुओंने उसे सिखाया, सारी प्राकृतिक शक्तियों और इन्द्रियोंसे व्याप्त प्रकाशमान्, ज्योति-स्वरूप इन्द्रिय (=धनाः) प्रत्येक ब्रह्मका पाद हुआ।

(३) **दार्शनिक विचार**—सत्यकाम ब्रह्मको व्यापक अनन्त, चेतन प्रकाशवान् मानता था यह ऊपर आ चुका। जनकको उसने 'मन ही ब्रह्म'[1] का उपदेश किया था, अर्थात् ब्रह्म मनकी भाँति चेतन है। उसके दूसरे दार्शनिक विचार (आँखमेंका पुरुष ही ब्रह्म है आदि) उस उपदेशसे जाने जा सकते हैं जिसे कि उसने अपने शिष्य उपकोसल कामलायनको दिया था।[2]—

"उपकोसल कामलायनने सत्यकाम जाबालके पास ब्रह्मचर्यवास (=शिष्यता) किया। उसने गुरुकी (पूजा की) अग्नियोंकी बारह वर्ष तक सेवा (=परिचरण) की। वह (=सत्यकाम) दूसरे शिष्योंका समावर्तन (शिक्षा समाप्तिपर विदाई) कराते भी इसका समावर्तन नहीं कराता था। उससे पत्नीने कहा—

'ब्रह्मचारीने तपस्या की अच्छी तरह अग्नि-परिचरण किया। क्या तुझे अग्नियाँ इसे बतलानेको नहीं कहा ?'

"(सत्यकाम) बिना बतलाये ही प्रवास कर गया। उस (=उपकोसल) ने (चिंता) व्याधिके मारे खाना छोड़ दिया। उसे आचार्य-जायाने कहा—

'ब्रह्मचारिन्! खाना खा क्यों नहीं खाता ?'

'इस पुरुषमें नाना प्रकारकी बहुतसी कामनाएँ हैं। मैं (मानसिक) व्याधियोंसे परिपूर्ण हूँ। (अपनेको) नष्ट करना चाहता हूँ।"

इसके बाद जिन अग्नियोंकी उसने सेवा की थी, उन्होंने उसे उपदेश दिया—

" प्राण ब्रह्म है प्राणको आकाश भी कहते हैं। जो यह आदित्यमें पुरुष (=आत्मा) है वह मैं (=सोऽहम्) हूँ वही मैं हूँ। जो यह चन्द्रमामें पुरुष (=आत्मा) है, वह मैं (=सोऽहम्) हूँ, वही मैं हूँ। जो यह विद्युतमें पुरुष है वह मैं हूँ वही मैं हूँ।'

साथ ही अग्नियोंने यह भी कहा— उपकोसल! यह विद्या तू हमसे

[1] वृह० ४।१।६ [2] छा० ४।१०।१

'वृ० भाष्य।

यह था दोनोंको गुरु [illegible] है, [illegible] है। यह [illegible]
समय [illegible] है।

५—सयुग्वा (गाड़ीवाला) रैक्व

सयुग्वा रैक्व उपनिषत्कालके प्रसिद्ध ही नहीं प्रारम्भिक ऋषियोंमें मालूम होता है। [illegible] जहाँ-तहाँ साथ गाड़ीवाली भाँति घूमता रहता तथा राजाओं और धनिकोंकी पर्वाह न करता—इस नव प्रकारके विचारोंका नमूना पेश करता था। यूनानमें दियोजन[1] (४१२-३२३ ई० पू०)—जो कि चन्द्रगुप्त मौर्य समकालीन साथ मरा—भी इसी तरहका एक फक्कड़ दार्शनिक हुआ था, जिसका एक नांदमें पड़े रहते उपदेश देना उसका मशहूर है। भारतमें इस तरहके फक्कड़—चाहे उनमें विचारोंकी मौलिकता हो या न हो—अभी भी सिद्ध महात्मा समझे जाते हैं। याज्ञवल्क्यने जो ब्रह्मज्ञानीके बालककी भाँति रहनेकी बात[2] कही थी, वह सयुग्वा जैसे ही के आचरणसे प्रभावित होकर कही मालूम होती है।

---

[1] Diogenes [2] बृह०

इतना होने भी सयुग्वा अध्यात्मवादी नहीं ठठ भौतिकवादी दार्शनिक था, वह ससारका मूल उपादान याज्ञवल्क्यके समकालीन अनक्सिमनस[1] (५६० ५५०)की भाँति वायुको मानता था।

रैकका जीवन और उपदेश—सिर्फ छान्दोग्यमें और उसमें भी सिर्फ एक स्थानपर सयुग्वा रक्वका जिक्र आया है[2]—

"(राजा) जानश्रुति पौत्रायण श्रद्धासे दान देनेवाला बहुत दान देनेवाला था, (अतिथियोंके लिए) बहुत पाक (राँधनेवाला) था। उसने सर्वत्र आवसथ (=पथिकशालाएँ धर्मशालाएँ) बनवाई थीं, (इस ख्यालसे कि) सर्वत्र (लोग) मेरा ही (अन्न) खायेंगे। हंस रातको उड रहे थे। उस समय एक हसने दूसरे हससे कहा—

'हो-हो हि भल्लाक्ष! भल्लाक्ष! जानश्रुति पौत्रायणकी भाँति (यहाँ) दिनकी ज्योति (=अग्नि) फैली हुई है, सो छू न जाना जल न जाना।'

"उसे दूसरेने उत्तर दिया—कम्बर! तू तो ऐसा कह रहा है, जैसे कि वह सयुग्वा रक्व हो।'

'कैसा है सयुग्वा रक्व?'

'जैसे विजेताके पास नीचेवाले जाते हैं इसी तरह प्रजाएँ जो कुछ अच्छा कर्म करती हैं वह उस (=रक्व)के ही पास चल जाते हैं　　।

"जानश्रुति पौत्रायणने सुन लिया। उसने बड़े सबेरे उठते ही क्षत्ता (=सेक्रेटरी)से कहा—अरे प्रिय! सयुग्वा रक्वके बारेमें बतलाओ न?'

'कैसा सयुग्वा रक्व?'

'जैसे विजेताके पास नीचेवाले जाते हैं　　।'

'ढूँढनेके बाद क्षत्ताने कहा—'नहीं पा सका।'

"(फिर) जहाँ ब्राह्मणोंको ढूँढा जा सकता है, वहाँ ढूँढो।'

'वह शकटके नीचे दाद खुजलाता बैठा हुआ था। (क्षत्ताने) उससे पूछा—भगवन्! तुम्हीं सयुग्वा रक्व हो?

---

[1] Anaximanes　[2] छा० ४।१

भ नी हूँ र ।

क्षत्ता लौट गया। तब जानश्रुति पौत्रायण छ सौ गायों, निष्क (=अशर्फी या सुवर्ण मुद्रा), खचरी रथ लेकर गया, और उससे बोला—

रैक्व! यह छ सौ गायें हैं, यह निष्क है, यह खचरी रथ है। भगवन्! मुझे उस देवताका उपदेश करो जिस देवताकी तुम उपासना करते हो।

(रैक्वने) कहा— हटा रे शूद्र! गायोंके साथ (यह सब) तेरे ही पास रहे।

तब फिर जानश्रुति पौत्रायण हजार गायें, निष्क, खचरी रथ (और अपनी) कन्याको लेकर गया—और उससे बोला—

रैक्व! यह हजार गायें हैं, यह निष्क है, यह खचरी रथ है, यह (तुम्हारे लिए) जाया (=भार्या) है, यह गाँव है जिसमें तुम (इस समय) बैठे हुए हो। भगवन्! मुझे उपदेश दो।'

'(रैक्वने) उस (कन्या)के मुखको (हाथसे) ऊपर उठाते हुए कहा—

'हटा रे शूद्र! इन सबको इसी मुखके द्वारा तू मुझसे (उपदेश) कहलवायेगा। वायु ही मूल (=संवर्ग) है। जब आग ऊपर जाती है वायुमें ही लीन होती है। जब सूर्य अस्त होता है, वायुमें ही लीन होता है। जब चन्द्र अस्त होता है वायुमें ही लीन होता है। जब पानी सूखता है वायुमें ही लीन होता है। वायु ही इन सबको समेटता है।—यह देवताओंके बारेमें। अब शरीरमें (=अध्यात्ममें) प्राण संवर्ग (=संवर्ग) है, यह जब सोता है, वाणी प्राणमें ही लीन होती है चक्षु श्रोत्र मन प्राणमें ही लीन होता है। यही दोनों मूल हैं—देवोंमें वायु, प्राणोंमें प्राण।'

इस प्रकार भौतिक जगत (=देवताओं) और शरीर (=अध्यात्म) दोनोंमें वायुको ही मूलतत्त्व मानना रैक्वका दर्शन था। रैक्वको फक्कड़पन बहुत पसन्द था इसलिए 'राजकन्याको लिए बैलगाड़ीपर चिचरना और गाड़ीके नीचे बैठ दाद खुजलाना जितना उसे पसंद था उतना उसे गाँव, सोना गायें रथ नहीं।

पंचदश अध्याय

स्वतंत्र विचारक

जिस समय भारतमें उपनिषद्के दार्शनिक विचार तयार हो रहे थे उसी वक्त उसमें उलटी दिशाकी ओर जाती दूसरी विचार धाराएं भी चल रही थीं स्वयं उपनिषदमें भी इसका पता लगता है।[1] सयुग्वा रैक्वके विचार भी भौतिकवादकी ओर झुकते थे, यह हम देख चुके हैं। ये तो वे विचारक थे जो किसी न किसी तरह वैदिक परंपरासे अपना संबंध बनाये रखना चाहते थे किन्तु इनके अतिरिक्त ऐसे भी विचारक थे जो वैदिक परंपरामें अपनेको बँधा नहीं समझते थे और जीवन तथा विश्वकी पहेलियोंको वैदिक परंपरासे बाहर जाकर हल करना चाहते थे। हम 'मानव समाज' में कह चुके हैं, कि भारतीय आर्योंका प्रारंभिक समाज जब अपनी पितृसत्ताक व्यवस्थासे आगे सामन्तवादकी ओर बढ़ा तो उसकी दो शाखाएं हुईं, एक तो वह जिसने कुरु-पंचाल (मेरठ रुहेलखंड) और आसपासके प्रदेशोंमें जो राजसत्ता कायम की, दूसरी वह जिसने कि पंजाब तथा मल्ल-वज्जी (युक्तप्रान्त बिहारकी सीमाओंपर) में अपने सामन्तवादी प्रजातंत्र कायम किये। इनके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि सिंधु-उपत्यका और दूसरे भू भागोंमें भी जिस जाति (=असुर) से आर्योंका संघर्ष हुआ था वह सामन्तवादी थे राजतांत्रिक थे सभ्य थे नागरिक थे। उनके परास्त होनेका मतलब यह नहीं था कि सभ्यता और विचारोंका जो विकास उन्होंने किया था, वह उनके पराजयके साथ बिल्कुल लुप्त हो गया।

---

[1] "तद्धैक आहुः 'असदेवेदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायते'।" छां० ६।२।१

ईसा-पूर्व छठी शताब्दीमें जब कि भारतमें दर्शनका स्रोत पहिले-पहिल फूट निकला, उस समय तीन प्रणालियाँ मौजूद थीं—वैदिक (ब्राह्मणानुयायी) आर्य, अ-वैदिक (ब्राह्मणोंसे स्वतंत्र, या व्रात्य) आर्य, और अनार्य। इनमें वैदिक और अवैदिक आर्योंके राजनीतिक (-आर्थिक) भेद किसी एक जनपदकी सीमाके भीतर न थे। लेकिन अनार्य नागरिक शासनमें मौजूद थे। गणों (=प्रजातंत्रों)में रक्तकी प्रधानता मानी जानेसे राजनीतिमें सीधे तो वह दखल नहीं दे सकते थे, किन्तु उनके लिए राजतंत्रोंमें सुविधा अधिक थी। वहाँ किसी एक कबील (=जन)की प्रधानता न होनेसे राजा और पुरोहितकी आधीनता स्वीकार कर लेनेपर उनके लिए भी राज्यके उच्चपद और कभी कभी तो राजपद पर भी पहुँचनेका सुभीता था। इतना होनेपर भी दर्शन-युगके आरंभ होनेसे पहिले अनार्य-संस्कृतिको आर्य-संस्कृतिसे अलग रखने ही की कोशिश की जाती रही। वेद-संहिताएँ उठाइए ब्राह्मणोंको देखिए कहीं अनार्य धार्मिक रीति रिवाजोंको लेनेका या समन्वयका प्रयास नहीं मिलता—इसका अपवाद यदि है तो अथर्ववेद, किन्तु बुद्धके समय (५०० ई० पू०) तक वेद अभी तीन ही थे, बुद्धके समकालीन उपनिषदोंमें इसका नाम तो आता है, किन्तु तीनों वेदोंके बाद बिना वेद विशेषणके—अथर्ववेद नहीं आथर्वण[1] या अथर्वांगिरसके नामसे[2] तो भी अथर्ववेद निम्न तलपर आर्य अनार्य धर्मों—मंत्र-तंत्रों, टोने-टोटकों—के मिश्रणका प्रथम प्रयत्न है। दर्शनकी शिक्षा यद्यपि दास-स्वामी दो वर्गोंमें विभक्त समाजमें जरा भी हेरफेर करनेके लिए तैयार नहीं है तो भी मानसिक तौरपर इस तरहके भेदको मिटानेका प्रयत्न जरूर करती है।—इस दिशामें वैदिक दर्शन (=उपनिषद्)का प्रयत्न जितना हुआ, उससे कहीं अधिक प्रयत्नशील हम अवैदिक दर्शनोंको पाते हैं। बुद्धने

---

[1] छा० ७।१।२, ७।२।१ [2] बृह० ४।१।२

[3] छांदोग्य (१।३)में भी कई बार तीन ही वेदोंका जिक्र किया गया है।

जातिभेद या रखके प्रश्न (आम अन्याय भेद) को उठा देना चाहा। यही बात जैन आजीवक आदि धर्मोंके बारेमें भी है।

इन स्वतंत्र विचारोंमें चार्वाक और कपिलके दर्शन प्रथम आते हैं, उनके बाद बुद्ध और उनके समकालीन तीर्थंकर (=सम्प्रदाय प्रवर्तक)।

§१ बुद्धके पहिलेके दार्शनिक

चार्वाक

भौतिकवादी दर्शनको हमारे यहाँ चार्वाक दर्शन कहा जाता है। चार्वाकका शब्दार्थ है चबानेके लिए मुस्तैद या जो खाने पीने—इस दुनिया के भोगको ही सब कुछ समझता है। चार्वाक मत संस्थापक व्यक्तिका नाम नहीं है। बल्कि परलोक पुनर्जन्म, देववादसे जो लोग इन्कारी थे उनके लिए यह गालीके तौरपर इस्तेमाल किया जाता था। जडवादी दर्शनके आचार्योंमें बृहस्पतिका नाम मिलता है। बृहस्पतिने शायद सूत्र, रूपमें अपने दर्शनको लिखा था। उसके कुछ सूत्र कहीं-कहीं उद्धृत भी मिलते हैं। किन्तु हम देखेंगे कि सूत्र रूपेण दर्शनोंका निर्माण ईसवी सनके बादसे शुरू हुआ है। बुद्धके समकालीन अजित केशकम्बल भी जडवादी थे, किन्तु वह धार्मिक चोगको उतारना पसन्द न करते थे। प्राचीन चार्वाक-सिद्धान्त जडवादके सिद्धान्त थे—ईश्वर नहीं आत्मा नहीं पुनर्जन्म और परलोक नहीं। जीवनके भोग त्याज्य नहीं ग्राह्य हैं। तजर्बे (अनुभव) और बुद्धिको हमें सत्यके अन्वेषणकेलिए अपना मार्गदर्शक बनाना चाहिए। चार्वाक दर्शनके कितने ही और मतव्य हमें पीछेके ग्रंथोंमें मिलते हैं। वह उसके पिछले विकासकी चीजें हैं। उनके बारेंमें हम आगे कहेंगे।

§२ बुद्ध कालीन और पीछेके दार्शनिक (५०० १५० ई० पू०)

हमने 'विश्वकी रूपरेखा' में देखा कि 'अचेतन प्रकृतिके राज्यमें गति शान्त एकरस प्रवाहकी तरह नहीं बल्कि रह-रह कर गिरते जल प्रपात या मेढककूदानकी भाँति होती है। 'मानव समाज' में भी यही बात मानव

संस्कृति विज्ञानों आविष्कारों और सामाजिक प्रगतिके बारेमें देखी। दर्शनक्षेत्रमें भी हम यही बात देखते हैं—कुछ समय तक प्रगति तीव्र होती है फिर प्रवाह रुँध जाता है उसके बाद एकत्रित होती शक्ति एक बार फिर फूट निकलती देख पड़ती है। हर वादके प्रतिवादमें, जान पड़ता है काफी समय लगता है, फिर संवाद फूट निकलता है। यूरोपीय दर्शनके इतिहासमें हम ईसा-पूर्व छठीसे चौथी शताब्दीका समय दर्शनका प्रगतिका सुनहरा समय देखते हैं, फिर जो प्रवाह क्षीण होता है तो तेरहवीं सदीमें कुछ सुगबुगाहट होती दीख पड़ती है, और सत्रहवीं सदीमें प्रवाह फिर तीव्र हो जाता है। भारतीय इतिहासमें ई० पू० पंद्रहवींसे तेरहवीं सदी भरद्वाज, वशिष्ट, विश्वामित्र जैसे प्रतिभाशाली वन्कि कवियोंका समय है। फिर छ सदियोंके घमकाना जंगलका मानसिक निद्राके बाद हम ई० पू० आठवीं-छठवीं-पाचवीं सदियोंके दर्शनके रूपमें प्रतिभाको जागते देखते हैं। इन तीन सदियोंके परिश्रमके बाद, मानो श्रान्त प्रतिभा स्वास्थ्यके लिए शताब्दियोंकी निद्राको आवश्यक समझती है, और फिर ईसाकी दूसरी सदीमें तीन सदियों तक यूनानी दर्शनसे प्रभावित हो, वह नागार्जुनके दर्शनके रूपमें फूट निकलती है। चार सदियों तक प्रवाह प्रखर होता जाता है, उसके बाद आठवीं और बारहवीं सदीमें सिवाय थोड़ीसी करवट बदलनेके वह अब तक चिरसुप्त है।

उपनिषदके जबालि आरुणि, याज्ञवल्क्य ऋषियों आदि और चार्वाक दर्शनके स्वतंत्र विचारकोंने जो विचार सम्बन्धी उथल-पुथल पैदा की थी, वह अब पाचवीं सदी ई० पू०में अपनी चरमसीमापर पहुँच रही थी। यह बुद्धका समय था। इस कालके निम्नलिखित दार्शनिक बहुत प्रसिद्ध हैं इनका उस समयके सभ्य समाजमें बहुत सम्मान था—

१ भौतिकवादी—अजित केशकम्बल, मक्खलि गोसाल
२ नित्यतावादी—पूरणकाश्यप प्रकुधकात्यायन
३ अनिश्चिततावादी—संजय वेलट्ठिपुत्त निगंठ नातपुत्त
४ अभौतिक क्षणिक अनात्मवादी—गौतम बुद्ध।

१—अजित केशकम्बल (५२३ ई० पू०) भौतिकवादी

अजित केशकम्बलके जीवनके बारेमें हमें इससे अधिक नहीं मालूम है, कि वह बुद्धके समय एक लोक विख्यात सम्मानित तीर्थंकर (सम्प्रदाय प्रवर्तक) था। कोसलराज प्रसेनजितने बुद्धसे एक बार कहा था[1]—"हे गौतम! यह जो श्रमण-ब्राह्मण संघके अधिपति गणाधिपति, गणके आचार्य प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर बहुत जनों द्वारा सुसम्मत हैं, जैसे—पूर्ण काश्यप मक्खलि गोशाल निगंठ नातपुत्त संजय वेलट्ठिपुत्त, प्रक्रुध कात्यायन अजित केशकम्बल—वह भी यह पूछनेपर कि (आपने) अनुपम सच्ची सम्बोधि (=परम ज्ञान)को जान लिया यह दावा नहीं करते। फिर जन्मसे अल्पवयस्क और प्रव्रज्या (=संन्यास)में नये आप गौतमके लिए तो क्या कहना है?

इससे जान पड़ता है कि बुद्ध (५६३-४८३ ई० पू०)से अजित उम्रमें ज्यादा था। त्रिपिटकमें अजित और बुद्धके आपसमें संवादकी कोई बात नहीं आती, हाँ यह मालूम है कि एक बार बुद्ध और इन सभी तीर्थंकरोंका वर्षावास राजगृहमें (५२३ ई० पू०) हुआ था।[2] केशकम्बल नाम पड़नेसे मालूम होता है कि आदमीके केशोंका कम्बल पहिननेको संयुक्त रक्खका बैलगाड़ीकी भाँति उसने अपना बाना बना रखा था।

दर्शन—अजित केशकम्बलके दार्शनिक विचारोंका जिक्र त्रिपिटकमें कितनी ही जगह[3] आया है लेकिन सभी जगह एक ही बातको उन्हीं शब्दोंमें दुहराया गया है।—

"दान यज्ञ हवन नहीं (=बेकार है) सुकृत-दुष्कृत कर्मोंका फल=विपाक नहीं। यह लोक परलोक नहीं। माता पिता नहीं। देवता

---

[1] संयुत्त निकाय ३।१।१ (देखो, "बुद्धचर्या", पृ० ६१)

[2] बुद्धचर्या, पृ० २६६, ७५ (मज्झिम निकाय, २।३।७)

[3] दीघ निकाय, १।२, मज्झिम निकाय, २।१।१०, २।३।६

(=पौरुषातिग, अयोनिज) नहीं। लोकमें सत्य तक पहुँचे, सन्मार्गारूढ (=एस) श्रमण-ब्राह्मण नहीं हैं, जो कि इस लोक, परलोकको स्वयं जानकर साक्षात्कर (दूसरोंको) जतलायेंगे। आदमी चार महाभूतोंका बना है। जब (वह) मरता है (शरीरकी) पृथिवी पृथिवीमें, पानी पानीमें, आग आगमें, वायु वायुमें मिल जाते हैं। इन्द्रियाँ आकाशमें चली जाती हैं। मृत पुरुषको खाटपर ले जाते हैं। जलाने तक चिह्न जान पड़ते हैं। (फिर) हड्डियाँ कबूतर(के रंग)सी हो जाती हैं। आहुतियाँ राख रह जाती हैं। दान (करो) यह मूर्खोंका उपदेश है। जो कोई आस्तिकवादकी बात करते हैं, वह उनका (कहना) तुच्छ (=थोथा) झूठ है। मूर्ख हो चाहे पंडित, शरीर छोड़नेपर (सभी) उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं, मरनेके बाद (कुछ) नहीं रहता।

यहाँ हम अजितका दर्शन उसके विरोधियोंके शब्दोंमें मिल रहा है जिसमें उसे बदनाम करनेकेलिए भी कोशिश जरूर की गई होगी। अजित आत्माको चातुर्महाभौतिक (=चारों भूतोंका बना) मानता था। परलोक और उसकेलिए किए जानेवाले दान-पुण्य तथा आस्तिकवादको वह झूठ समझता था, यह तो स्पष्ट है। किन्तु वह माता पिता और इस लोकको भी नहीं मानता था यह गलत है। यदि ऐसा होता तो वह वैसी शिक्षा न देता जिसके कारण वह अपने समयका लोक-सम्मानित सम्भ्रान्त आचार्य माना जाता था, फिर तो उसे डाकुओं और चोरोंका आचार्य या सर्दार होना चाहिए था।

अजितने अपने दर्शनमें, मालूम होता है, उपनिषद्के तत्त्वज्ञानकी अच्छी खबर ली थी। सत्य तक पहुँचा (=सम्यग्-गत), 'सत्यआरूढ' ब्रह्मज्ञानी कोई हो सकता है, यह माननेसे उसने इन्कार किया, एवं जन्मके पाप पुण्यको आदमी दूसरे जन्ममें इसी लोकमें अथवा परलोकमें भोगता है, इसका भी खंडन किया।

उग्र भौतिकवादी होते हुए भी अजित तत्कालीन साधुओं जैसे कुछ संयम नियमको मानता था, यह उक्त उद्धरणके आगे— ब्रह्मचर्य नंगा, मुंडित

रहना, उक्कुँ-तप करना, केश-दाढ़ी नोचना —इस वचनसे मालूम होता है। किन्तु यह वचन छओं अ-बौद्ध तीर्थंकरोंकेलिए एक ही तरह दुहराया गया है और निगठ नातपुत्तके (जैन) मतमें यह बातें धर्मका अंग मानी भी जाती रही हैं, जिससे जान पड़ता है त्रिपिटकको कंठस्थ करनेवालोंने एक तीर्थंकरकी बातको कंठ करनेकी सुविधाकेलिए सबके साथ जोड़ दी—स्मरण रहे बुद्धके निर्वाणके चार सदियों बाद तक बुद्धका उपदेश लिखा नहीं गया था।

२ मक्खलि गोशाल (५२३ ई० पू०) अकर्मण्यतावादी

मक्खलि (=मस्करी) गोशालका जिक्र बौद्ध और जैन दोनों पिटकोंमें आता है। जैन पिटकसे पता लगता है कि वह पहिले जैन मतका साधु था पीछे उससे निकल गया। गोशालका जो चित्र वहाँ अंकित किया गया है उससे वह बहुत नीच प्रकृतिका ईर्ष्यालु धर्मांध जान पड़ता है।—उसने महावीर (=जैन-तीर्थंकर निगंठ नातपुत्त)को जानसे मारने की कोशिश की, ब्राह्मण-देवताकी मूर्तिपर पेशाव-पाखाना किया जिससे ब्राह्मणोंने उसे कूटा आदि आदि। किन्तु इसके विरुद्ध बौद्ध पिटक उसे बुद्धकालीन छ प्रसिद्ध लोकसम्मानित आचार्योंमें एक मानता है, आजीवक सम्प्रदायके तीन आचार्यों (=निर्याताओं)—नन्द वात्स्य, कृश सांकृत्य और मक्खली गोशालमेंसे एक बतलाता है[1]। वहीं[2] यह भी पता लगता है कि मक्खलि गोशाल (आजीवक) आचार्य नंगे रहते तथा कुछ संयम नियमकी पाबन्दी भी करते थे। बुद्धके बुद्धत्व प्राप्त करनेके समय (५३७ ई० पू०में) आजीवक सम्प्रदाय मौजूद था क्योंकि बुद्ध गयासे चलनेपर बोधि और गयाके बीच रास्ते उन्हें उपक नामक आजीवक मिला था।[3] इससे यह भी पता लगता है कि गोशालसे पहिले नन्द

[1] मज्झिम निकाय, २।३।६ (मेरा हिन्दी अनुवाद, पृ० ३०४)
[2] वहीं, १।४।६
[3] म० नि०, १।३।६ (अनुवाद, पृ० १०७)

दारुण और घृणित मानुष आजीविक सम्प्रदायमें आचार्य थे।

मक्खलि गोसाल नामकी व्याख्या बचपनमें भी पालीमें गोशाल की गई — जिसमें मक्खलि=मस्करि=दण्डी, गो-शाल=गोशालामें उत्पन्न बतलाया गया। पाणिनि (४०० ई० पू०)ने मस्करी शब्दको गृह्य-परिव्राजक माना है। गोसाल आजीवकोंकी जगह पाणिनिका व्याख्यान है, पर अब गोसाल मात्र गोसाल।

दर्शन—गोसालके (आजीवक) दर्शनको त्रिपिटकमें कई जगह आया है किन्तु सभी जगह एक। उसको दुहराया गया है।[1]—

प्राणियों (=सत्त्वों)के संक्लेश (=चित्त मालिन्य)का कोई हेतु=प्रत्यय नहीं। बिना हेतुके ही प्राणी संक्लेशको प्राप्त होते हैं। प्राणियोंकी (चित्त)विशुद्धिका कोई हेतु नहीं है। बिना हेतुके प्राणी विशुद्ध होते हैं। बल नहीं, वीर्य नहीं, पुरुषकी दृढ़ता नहीं, पुरुष पराक्रम नहीं (आत्मशक्ति)। सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सभी भूत, सभी जीव वश-बल-वीर्य बिना हो नियति (=भवितव्यता)के वशमें छ अभिजातियों (=जन्मों)में सुख-दुःख अनुभव करते हैं। चौदह सौ हजार प्रमुख योनियाँ हैं (दूसरी) साठ सौ, (दूसरी) छ सौ। पाँच सौ कर्म हैं, (दूसरे) पाँच कर्म तीन कर्म एक कर्म और आधा कर्म। बासठ प्रतिपद (=मार्ग), बासठ अन्तरकल्प, छ अभिजातियाँ आठ पुरुष भूमियाँ उनचास सौ आजीवक उनचास सौ परिव्राजक, उनचास सौ नाग वास, बीस सौ इन्द्रियाँ तीस सौ नरक छत्तीस रजो (=मलवाली)-धातु सात संज्ञी (=होशवाले) गर्भ, सात असंज्ञी गर्भ सात निगंठी गर्भ, सात देव सात मनुष्य, सात पिशाच सात स्वर सात सौ सात पगुट (=गाँठ), सात सौ सात प्रपात, सात सौ सात स्वप्न। और अस्सी लाख छोटे बड़े कल्प हैं जिन्हें मूर्ख और पंडित जानकर और अनुगमन कर दुःखोंका अन्त कर सकते हैं। वहाँ यह नहीं है कि इस शील-व्रतसे, इस तप-ब्रह्म

---

[1] दीघ नि०, १।२ (अनुवाद, पृ० २०), "बुद्धचर्या", पृ० ४६२, ४६३

चयसे मैं अपरिपक्व कर्मको परिपक्व करूँगा परिपक्व कर्मका भोगकर (उसका) अन्त करूँगा। सुख और दुःख द्रोण (=नाप)से नप हुए हैं। संसारमें घटना-बढ़ना, उत्कर्ष अपकर्ष नहीं होता। जैसे कि सूतकी गोली फेंकनेपर खुलती हुई गिर पड़ती है, वैसे ही मूर्ख और पंडित दौड़कर आवागमनमें पड़कर, दुःखका अन्त करेंगे।'

इससे जान पड़ता है कि मक्खलि गोसाल (आजीवक) पूरा भाग्यवादी था, पुनर्जन्म और देवताओंको मानता था और कहता था कि जीवन का रास्ता नपा-तुला है पाप-पुण्य उसमें कोई अन्तर नहीं डालते।

३—पूर्ण काश्यप (५२३ ई० पू०) अक्रियावादी

पूर्णकाश्यपके बारेमें भी हम इससे अधिक नहीं जानते कि वह बुद्धका समकालीन एक प्रसिद्ध तीर्थंकर था।

दर्शन—पूर्ण अच्छे बुरे कर्मोंको निष्फल बतलाता था। किन्तु परलोकके सम्बन्धमें वह या या इस लोकके इस बहु स्पष्ट नहीं करता था। उसका मत इस प्रकार उद्धृत मिलता है[1]—

(कर्म) करते-कराते, छेदन करते कराते, पकाते पकवाते शोक करते, परेशान होते परेशान करते चलते चलाते, प्राण मारते बिना दिया लेते (=चोरी करते), सेंध काटते गाँव लूटते चोरी-बटमारी करते, परस्त्रीगमन करते झूठ बोलते भी पाप नहीं होता। छुरे जैसे तेज चक्र-द्वारा (काटकर) चाहे इस पृथिवीके प्राणियोंका (कोई) मांसका एक खलियान, मांसका एक पुंज (क्यों न) बना दे, तो (भी) इसके कारण उसको पाप नहीं होगा पापका आगम नहीं होगा। यदि घात करते-कराते, काटते कटवाते, पकाते-पकवाते गंगाके (उत्तर तीरसे) दक्षिण तीरपर भी (चला) जाय, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं होगा, पापका आगम नहीं होगा। दान देते दिलाते यज्ञ करते-कराते यदि गंगाके

---

[1] दीघ० १।२ (अनुवाद, पृ० १६, २०)

उत्तर तीर भी जाय, तो इसके कारण उसको पुण्य नहीं होगा, पुण्यका आगम नहीं होगा। दान-दम-संयम सत्य बोलनेसे न पुण्य है न पुण्यका आगम है।

पूर्ण काश्यपका यह मत परलोकमें भाग आनेवाले पाप-पुण्यके संबंधमें माना होता है। इस लोकमें तो चोरी हत्या, व्यभिचारका फल राजदण्डके रूपमें मिलता है, इसे वह मानता ही था।

४–प्रकुध कात्यायन (५२३ ई० पू०) नित्यपदार्थवादी

प्रकुधकी जीवनीके संबंधमें भी हम यही जानते हैं, कि यह बुद्धका ज्येष्ठ समकालीन प्रसिद्ध और सम्मानित तीर्थंकर था।

दर्शन—मक्खलि गोशालने भाग्यवादके कारण पतन कर्मोंको निष्फल बतलाया था। पूर्ण काश्यप भी उन्हें निष्फल समझता था। प्रकुध कात्यायन हर वस्तुको अचल नित्य मानता था, इसलिए कोई कर्म वस्तुस्थितिमें किसी तरहका परिवर्तन ला नहीं सकता। इस तरह वह भी उसी अकर्मण्यतावादपर पहुँचता था। उसका मत इस प्रकार मिलता है[1]—

यह सात काय (=समूह) अ-कृत=अ-कृत्य, अ-निर्मित=अ-निर्मित, अ-वध्य कूटस्थ=स्तम्भ जैसे (अचल) हैं, यह चल नहीं होते, विकारको प्राप्त नहीं होते, न एक दूसरेको हानि पहुँचाते हैं, न एक दूसरेके सुख दुःख, या सुख-दुःखके लिए पर्याप्त (=समर्थ) हैं। कौनसे सात? पृथिवी-काय (=पृथिवीतत्त्व) जल-काय, अग्नि-काय, वायु-काय, सुख, दुःख और जीवन—यह सात। यहाँ न (कोई) हन्ता है न घातयिता (=हनन करनेवाला), न सुननेवाला न सुनानेवाला न जाननेवाला, न जतलानेवाला। यदि तीक्ष्ण शस्त्रसे भी काटे (तो भी) कोई किसीको नहीं मारता। सातों कायोंसे हटकर विवर (=खाली जगह)में वह शस्त्र गिरता है।

[1] दीघ निकाय, १।२ (अनुवाद, पृ० २१)

प्रक्रुध पथिवी, जल तेज वायु इन चार भूतों तथा जीवन (=चेतना) के साथ सुख और दुःखको भी अलग तत्त्व मानता था। इन तत्त्वोंके बीचमें वाफी खाली जगह है जिसकी वजहसे हथियार का प्रहार भी वहीं रह जाता है और मूलतत्त्वको नहीं छू पाता। यह विचारधारा बतलाती है कि स्थूल तत्त्वोंकी तहमें किसी तरहके अखण्डनीय सूक्ष्म अंशको वह मानता था जो कि एक तरहका परमाणुवाद मालूम होता है।—खाली जगह या विवर (=आकाश)को उसने आठवाँ पदार्थ नहीं माना। सुख और दुःखको जीवनसे स्वतन्त्र वस्तु मानना यही बतलाता है कि कर्मके निष्फल मान लेने पर उन्हें अकृत माने बिना उसके लिए कोई चारा नहीं था।

५—सजय वेलट्ठिपुत्त (५२३ ई० पू०) अनेकान्तवादी

सजय वेलट्ठिपुत्त भी बुद्धका ज्येष्ठ समकालीन तीर्थंकर था।

दर्शन—सजय वेलट्ठिपुत्त और निगंठ नातपुत्त (=महावीर) दोनों होके दर्शन अनेकान्तवादी है। फर्क इतना ही है कि महावीरका जोर हाँ पर ज्यादा है और सजयका नहीं पर जैसा कि सजयके निम्न वाक्य और महावीरके स्याद्वादके मिलानसे मालूम होगा[1]—

'यदि आप पूछें — क्या परलोक है तो यदि मैं समझता होऊँ कि परलोक है तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता दूसरी तरहसे भी नहीं कहता। मैं यह भी नहीं कहता कि वह नहीं है। मैं यह भी नहीं कहता कि वह नहीं नहीं है। परलोक नहीं है, परलोक नहीं नहीं है। परलोक है भी और नहीं भी है। परलोक न है और न नहीं है। देवता (=औपपातिक प्राणी) है । देवता नहीं है, है भी और नहीं भी न है और न नहीं है। अच्छे बुरे कर्मके फल है नहीं है है भी और नहीं भी न है और न नहीं है। तथागत (=मुक्तपुरुष) मरनेके बाद होते हैं नहीं होते हैं ?—यदि मुझसे

[1] दीघ निकाय, १।२ (अनुवाद, पृ० २२)

[illegible] तो ऐसा आपको कहूँ। [illegible]

[illegible] अनेकान्त और [illegible] सिद्धान्तमें [illegible] विचार [illegible] । [illegible] मालूम होता [illegible] था, कि अब उनके [illegible] सम्मानित महापुरुष [illegible] थे। [illegible] अभिप्राय है [illegible] बुद्धिको [illegible] जाय और [illegible] पृष्ठ ४७।

६—वर्धमान महावीर (५६९-४८५ ई० पू०) सर्वज्ञतावादी

जैन धर्मके संस्थापक वर्धमान ज्ञातपुत्र (=नातपुत्त) बुद्धके समकालीन आचार्योंमें थे। इनका जन्म प्राचीन वज्जी[1] प्रजातंत्रकी राजधानी वैशाली[2]के लिच्छवियोंकी एक शाखा ज्ञातृवंशमें बुद्धके जन्म (५६३ ई० पू०)से कुछ पहिले हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ गण-संस्था (=सीनेट) के सदस्यों (=राजाओं)मेंसे एक थे। [illegible] शादी हुई थी जिससे एक लड़की हुई। माँ-बापके मरनेके बाद ३० वर्षकी उम्रमें वर्धमानने गृहत्याग किया। १२ वर्ष तक [illegible] सुनसानवाली तपस्याओंके बाद उन्होंने कैवल्य (=मनन) प्राप्त किया। तबसे ४२ वर्ष तक उन्होंने अपने धर्मका उपदेश मध्यदेश (=युक्तप्रांत और बिहार)में किया। ८४ वर्षकी उम्रमें पावा[3]में उनका देहान्त हुआ। मृत्युके समय महावीरके

[1] जिला मुजफ्फरपुर बिहार। [2] वर्तमान बसाढ़ (पटनासे २७ मील उत्तर)।

[3] कुसीनारा (कसया)से चार मील उत्तर पपउर (जिला गोरखपुर)। परंपराको भूलकर पटना जिलाकी पावा नई कल्पना है।

अनुयायियोंमें भारी कलह उपस्थित हो गया था[1]।

तीर्थंकर वर्धमानको जो लोग वीर या महावी
उनका उल्लेख निगंठ नातपुत्त (=निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र)के

(१) शिक्षा—महावीरकी मुख्य शिक्षाको बौद्ध
प्रकार उल्लेख किया गया है—

(क) चातुर्याम संवर[2]— निर्ग्रंथ (=जैन सा
(=संयमों)से संवृत (=आच्छादित संयत) रहता है।
जलके व्यवहारका वारण करता है (जिसमें जलके जीव
(२) सभी पापोंका वारण करता है (३) सभी पापो
वह पापरहित (=धुतपाप) होता है (४) सभी पापो
रहता है। चूंकि निर्ग्रंथ इन चार प्रकारके संवरों
इसीलिए वह गतात्मा (=अनिच्छुक) यतात्मा
स्थितात्मा कहलाता है।'

(ख) शारीरिक कर्मोंकी प्रधानता—मज्झिम-नि
(ज्ञातपुत्र)के शिष्य दीर्घ तपस्वीके साथ बुद्धका वार्तालाप
है। इसमें दीर्घ तपस्वीने कर्मकी जगह निग्रंथी परिभाषामें
जोर देते हुए कर्मों (=दंडों)को काय- वचन मन-दंडों
हुए काय-दंड (कायिक कर्म)को सबसे "महादोष-युक्त"

(ग) तीर्थंकर सर्वज्ञ—तीर्थंकर सर्वज्ञ होता है इस
में आरम्भसे बहुत जोर दिया जाता था—

"(तीर्थंकर) सर्वज्ञ सर्वदर्शी सारे ज्ञान=दर्शनको जान
खड़े, सोते, जागते सदा निरन्तर (उनको) ज्ञान=दर्शन उप

---

[1]देखो सामगामसुत्त (म० नि०, ३।१।४, "बुद्धचर
[2]दीघ नि० १।२ (अनु०, पृ० २१)
[3]म० नि०, २।२।६, 'बुद्धचर्या', पृ० ४४५
[4]म० नि[illegible] पृ० ५६)

[illegible] तपस्या महत्त्वा। [illegible] हुए बुद्धने भिन्न मानते [illegible] —

[illegible] [illegible] करते हैं [illegible] (जो भी) [illegible] (वह) भिक्षा भी नहीं पाते, कुक्कुर भी [illegible] हाथ [illegible] [illegible] होता है। (मरने के बाद भी) [illegible] नाम [illegible] [illegible] है। (फिर) [illegible] —[illegible] कहता है—शून्य घरमें [illegible] भिक्षा न मिलनी [illegible] होती। [illegible] केवल [illegible] था

(घ) शारीरिक तपस्या—शारीरिक [illegible] महावीरका जोर था, उनका उतना शारीरिक तपस्यापर भी जोर [illegible] स्वाभाविक था। इस शारीरिक तपस्या—मरणान्त [illegible] [illegible] खान-उपवास महता भाव [illegible] जैन आगमोंमें बहुत आती है। जैन साधुओंकी तपस्या और उसके औचित्यका वर्णन त्रिपिटकमें भी मिलता है। बुद्धने महानाम शाक्यसे कहा था[1]—

एक समय महानाम! मैं राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर रहता था। उस समय बहुतसे निगंठ (=जैन साधु) ऋषिगिरिकी कालशिलापर खड़े रहने (का व्रत) ले आसन छोड़ [illegible] (=उपक्रम) करते हुए कटु तीव्र, [illegible] झेल रहे थे। (कारण पूछनेपर) निगंठोंने कहा—निगंठ नातपुत्त (महावीर) सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। वह ऐसा कहते हैं—निगंठो! जो तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कड़वी, दुष्कर क्रिया (=तपस्या) से नाश करो और जो यहाँ तुम काय-वचन-मनसे संयम-युक्त हो यह भविष्यके लिए पापका न करना होगा। इस प्रकार

---

[1] म० नि०, २।३।६ (अनुवाद, पृ० ३०२)
[2] म० नि०, १।२।४ (अनुवाद, पृ० ५९)

तपस्या द्वारा पुराने कर्मोंके अन्त होने और नये कर्मोंके न करनेसे भविष्यमें चित्त निर्मल (=अनास्रव) हो जायगा। भविष्यमें मल (=आस्रव) न होनेसे कर्मका क्षय (हो जायगा), कर्मक्षयसे दुःख-क्षय, दुःख-क्षयसे वेदनाका क्षय, वेदना क्षयसे सभी दुःख नष्ट हो जायगे।'

बुद्धने इसपर उन निगठोंसे पूछा कि क्या तुम्हे पहिले अपना होना मालूम है? क्या तुमने उस समय पापकर्म किये थे? क्या तुम्हें मालूम है कि इतना दुःख (=पाप फल) नष्ट हो गया, इतना बाकी है? क्या मालूम है कि तुम्हें इसी जन्ममें पापका नाश और पुण्यका लाभ प्राप्त करना है? इसका उत्तर निगठोंने नहीं में दिया। इसपर बुद्धने कहा—

"ऐसा होनेसे ही तो निगठो! जो दुनियामें रुद्र (=भयंकर) खूनरंगे हाथोंवाले, क्रूरकर्मा मनुष्योंमें नीच हैं वह निगठोंमें साधु बनते हैं। निगठोंने फिर कहा—"गौतम! सुखसे सुख प्राप्य नहीं है दुःखसे सुख प्राप्य है।"

—अर्थात् शारीरिक दुःख ही पाप हटाने और कैवल्य-सुख प्राप्त करनेका मुख्य साधन है यह वधमानका विश्वास था।

(२) दर्शन—तप-संयम ही वधमानकी मूल शिक्षा मालूम होती है उसमें दर्शनका अंश बहुत कम था यदि था, तो यही कि पानी, मिट्टी, सभी जड़ अजड़ तत्त्व जीवोंसे भरे पड़े हैं, मनुष्यको हर तरहकी हिंसासे बचना चाहिए। इसीलिए उन्होंने जलके व्यवहार, तथा गमन आगमन आदि सबमें भारी प्रतिबंध लगाया। इसीका परिणाम यह हुआ कि जोतने काटने, निराने—जैसे कामोंमें प्रत्यक्ष अगणित जीवोंको मारे जाते देख, जैन लोग खेती छोड़ बैठे और आज वे प्राय सभी बनिया-वर्गमें पाये जाते हैं।—यूरोपमें यहूदियोंने राजद्वारा खेतके अधिकारसे वंचित होनेके कारण मजबूरन् बनिया-व्यवसाय स्वीकार किया। किन्तु, भारतमें जैनियोंने अपने धर्मसे प्रेरित हो स्वेच्छापूर्वक वैसा किया। मनुष्योंकी एक भारी जमाअतको कैसे धर्म द्वारा उत्पादक-श्रमसे हटाकर पर परिश्रमापहारी बनाया जा सकता है यहाँ यह इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

§ ३ गौतम बुद्ध (५६३-४८३ ई० पू०)

दो सदियों तकके भारतीय दार्शनिक चिन्तनके जबर्दस्त प्रयासका अन्तिम फल हमें बुद्धके दर्शन—क्षणिक अनात्मवाद—के रूपमें मिलता है। आगे हम देखेंगे कि भारतीय दर्शनधाराओंमें जिसने काफी समय तक नई गवेषणाओंको जारी रखने दिया वह यही धारा थी।—नागार्जुन असंग वसुबंधु दिङ्नाग धर्मकीर्ति—भारतके अप्रतिम दार्शनिक इसी धारामें पैदा हुए थे। उन्हींके ही उच्छिष्ट भोजी पीछेके प्रायः सारे ही दूसरे भारतीय दार्शनिक दिखलाई पड़ते हैं।

१. जीवनी

सिद्धार्थ गौतमका जन्म ५६३ ई० पू०के आसपास हुआ था। उनके पिता शुद्धोदनको शाक्योंका राजा कहा जाता है, किन्तु हम जानते हैं कि शुद्धोदनके साथ-साथ भद्दिय[1] और दण्डपाणिको भी शाक्योंका राजा कहा गया, जिससे यही अर्थ निकलता है कि शाक्योंके प्रजातंत्रकी गण-संस्था (=सीनेट या पार्लामेंट)के सदस्योंको लिच्छविगणकी भाँति राजा कहा जाता था। सिद्धार्थकी माँ मायादेवी अपने मैके जा रही थीं उसी वक्त कपिलवस्तुसे कुछ मीलपर लुम्बिनी[3] नामक शालवनमें सिद्धार्थ पैदा हुए। उनके जन्मसे ३१८ वर्ष बाद तथा अपने राज्याभिषेकके बीसवें साल अशोकने इसी स्थानपर एक पाषाण स्तम्भ गाड़ा था जो अब भी वहाँ मौजूद है। सिद्धार्थके जन्मके सप्ताह बाद ही उनकी माँ मर गई, और उनके पालन-पोषणका भार उनकी मौसी तथा सौतेली माँ प्रजापती

---

[1] चुल्लवग्ग (विनय पिटक) ७, ("बुद्धचर्या", पृ० ६०)

[2] मज्झिमनिकाय-अट्ठकथा, १।२।८

[3] वर्तमान रुम्मिनदेई, नेपाल-तराई (नौतनवा-स्टेशनसे ८ मील पश्चिम)।

गौतमीके ऊपर पडा। तरुण सिद्धार्थको ससारसे कुछ विरक्त तथा अधिक विचारमग्न देख, शुद्धोदनको डर लगा कि वहा उनका लडका भी साधुओंके बहकावेमे आकर घर न छोड जाय, इसकेलिए उसने पडोसी कोलिय गण (=प्रजातत्र)की सुन्दरी कन्या भद्रा कापिलायनी (या यशोधरा)से विवाह कर दिया। सिद्धार्थ कुछ दिन और ठहर गये और इस बीचमें उन्हे एक पुत्र पैदा हुआ जिसे अपने उठते विचार-चन्द्रके ग्रसनेके लिए राहु समझ उन्होने राहुल नाम दिया। वृद्ध रोगी, मृत और प्रव्रजित (=सन्यासी)के चार दृश्योंको देख उनकी ससारसे विरक्ति पक्की हो गई और एक रात चुपकेसे वह घरसे निकल भागे। इसके बारेमे बुद्धने स्वय चुनार (=सुसुमारगिरि)में वत्सराज उदयनके पुत्र बोधिराज-कुमारसे कहा था[1]—

"राजकुमार! बुद्ध होनेसे पहिले मुझे भी होता था— 'सुखमें सुख नही प्राप्त हो सकता, दुखमें सुख प्राप्त हो सकता है।' इसलिए मै तरुण बहुत काल केशोवाला ही सुन्दर यौवनके साथ, प्रथम वयसमें माता पिताको अश्रुमुख छोड घरसे प्रव्रजित हुआ। (पहिले) आलार कालाम(के पास) गया।"

आलार कालामने कुछ योगकी विधिया बतलाई किन्तु सिद्धार्थकी जिज्ञासा उससे पूरी नही हुई। वहाँसे चलकर वह उद्दक रामपुत्त (=उद्रक रामपुत्र)के पास गये वहाँ भी योगकी कुछ बाते सीख सके, किन्तु उससे भी उन्हें सन्तोष नही हुआ। फिर उन्होने बोधगयाके पास प्राय छ वर्षों तक योग और अनशनकी भीषण तपस्या की। इस तपस्याके बारेमे वह खुद कहते है[2]—

"मेरा शरीर (दुबलता)की चरमसीमा तक पहुँच गया था। जैसे आसीतिक (अस्सी सालवाले)की गाठें वैसे ही मेरे अग

[1] मज्झिम निकाय, २।४।५ (अनुवाद, पृ० ३४५)
[2] वही, पृ० ३४८

अल्प हो गए थे। जैसे ऊँटका पैर, वैसे ही मेरा कूल्हा हो गया था। जैसे सूआकी (ऊँचा नीचा) पाँती, वैसे ही पीठके काँटे हो गये थे। जैसे शालकी पुरानी कड़ियाँ टेढ़ी मेढ़ी होती हैं, वैसे ही मेरी पँसुलियाँ हो गई थीं। जैसे गहरे कूएँमें तारा, वैसे ही मेरी आँखें दिखाई देती थीं। जैसे कच्चा तोड़ा कड़वी लौकी हवा धूपसे चुचक जाता है, मुर्झा जाती है, वैसे ही मेरे शिरकी खाल चुचक मुर्झा गई थी। उस अनशनसे मेरे पीठके काँटे और पेटकी खाल बिलकुल सट गई थी। यदि मैं पाखाना या पेशाब करनेके लिए (उठता) तो वहीं भहराकर गिर पड़ता। जब मैं कायाको सहराते हुए हाथसे गात्रको मसलता तो कायासे सड़ी जड़वाले रोम झड़ पड़ते। मनुष्य कहते—श्रमण गौतम काला है, कोई कहते— काला नहीं श्याम है। कोई कहते— मंगुरवर्ण है। मेरा वैसा परिशुद्ध गोरा (=परि अवदात) चमड़ेका रंग नष्ट हो गया था।

लेकिन मैंने इस (तपस्या) से उस चरम दर्शनको न पाया। (तब विचार हुआ) बोधि(=ज्ञान)के लिए क्या कोई दूसरा मार्ग है? तब मुझे हुआ— मैंने पिता (=शुद्धोदन) शाक्यके खेतपर जामुनकी ठंडी छायाके नीचे बैठ प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार किया था, शायद वह मार्ग बोधिका हो। (किन्तु) इस प्रकारकी अत्यन्त कृश पतली कायासे वह (ध्यान) सुख मिलना सुकर नहीं है। फिर मैं स्थूल आहार— दाल भात—ग्रहण करने लगा। उस समय मेरे पास पाँच भिक्षु रहा करते थे। जब मैं स्थूल आहार ग्रहण करने लगा, तो वह पाँचों भिक्षु उदासीन हो चले गये।

आगेकी जीवनयात्राके बारेमें बुद्ध अन्यत्र कहते हैं[1]—

---

[1] म० नि०, १।३।६ (अनुवाद, पृ० १०५)

"मैने एक रमणीय भूभागमें वनखंडमें एक नदी (=निरंजना)को बहते देखा। उसका घाट रमणीय और श्वेत था। यहां ध्यान-योग्य स्थान है, (सोच) वहां बैठ गया। (और) जन्मके दुष्परिणामको जान अनुपम निर्वाणको पा लिया मेरा ज्ञान दर्शन(= साक्षात्कार) बन गया मेरे चित्तकी मुक्ति अचल हो गई यह अन्तिम जन्म है, फिर अब (दूसरा) जन्म नहीं (होगा)।'

सिद्धार्थका यह ज्ञान दर्शन था—दुःख है, दुःखका हेतु (=समुदय), दुःखका निरोध (=विनाश) है और दुःख निरोधका मार्ग। जो धर्म (=वस्तुएं घटनाएं) हैं वह हेतुसे उत्पन्न होते हैं। उनके हेतुको, बुद्धने कहा। और उनका जो निरोध है (उसे भी) ऐसा मत रखनेवाला महा श्रमण।'[1]

सिद्धार्थने उनतीस सालकी आयु (५३४ ई० पू०)में घर छोड़ा। छ वर्ष तक योग-तपस्या करनेके बाद ध्यान और चिंतन द्वारा ३६ वर्षकी आयु (५२८ ई० पू०)में बोधि(=ज्ञान) प्राप्त कर वह बुद्ध हुए। फिर ४५ वर्ष तक उन्होंने अपने धर्म (=दर्शन)का उपदेश कर ८२ वर्षकी उम्रमें ४८३ ई० पू०में कुसीनारा[2]में निर्वाण प्राप्त किया।

२ साधारण विचार

बुद्ध होनेके बाद उन्होंने सबसे पहिले अपने ज्ञानका अधिकारी उन्हीं पाँचों भिक्षुओंको समझा, जो कि अनशन त्यागनेके कारण पतित समझ उन्हें छोड़ गये थे। पता लगाकर वह उनके आश्रम ऋषि-पतन मृगदाव (सारनाथ बनारस) पहुँचे। बुद्धका पहिला उपदेश उसी शंकाको हटानेके लिए था, जिसके कारण कि अनशन तोड़ आहार आरम्भ करनेवाले गौतम

---

[1] "ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत।
तेषां च यो निरोध एववादी महाश्रमणः।"

[2] कसया, जिला गोरखपुर।

को यह ठीक भाव थे। बुद्धने कहा[1]—

भिक्षुओ! इन दो अतियों (=चरम-पथों) को ... नहीं सेवन करना चाहिए।—(१) काम-सुखमें लिप्त होना, (२) शरीर पीड़ामें लगना।—इन दोनों अतियोंको छोड़ (मैं)ने मध्यम मार्ग खोज निकाला, (जो कि) आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति (देन)वाला है। वह (मध्यम मार्ग) यही आर्य (=श्रेष्ठ) अष्टांगिक (=आठ अंगोंवाला) मार्ग है, जैसे कि—ठीक दृष्टि (=दर्शन) ठीक संकल्प ठीक वचन ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक प्रयत्न, ठीक स्मृति और ठीक समाधि।

(१) चार आर्य-सत्य—

दुःख दुःख-समुदय (=हेतु) दुःख निरोध, दुःखनिरोधगामी मार्ग—जिनका जिक्र अभी हम कर चुके हैं, यह बुद्धने आर्य-सत्य—श्रेष्ठ सच्चाइयाँ—कहा है।

एक दुःख-सत्यकी व्याख्या करते हुए बुद्धने कहा है—'जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, मरण भी दुःख है, शोक रोना—मानसिक चिन्ता—हैरानगी दुःख है। अप्रियसे संयोग प्रियसे वियोग भी दुःख है, इच्छा करके जिसे नहीं पाता वह भी दुःख है। संक्षेपमें पाँचों उपादान स्कंध दुःख हैं।'[2]

(पाँच उपादान स्कंध)—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—यही पाँचों उपादान स्कंध हैं।

(क) रूप—चारों महाभूत—पृथिवी, जल, वायु, अग्नि यह रूप उपादान स्कंध है।

---

[1] "धर्मचक्रप्रवर्तन-सूत्र"—संयुत्त निकाय ५५।२।१ ("बुद्धचर्या", पृ० २३)

[2] महासतिपट्ठान सुत्त (दीघ निकाय, २।९)

(b) वेदना—हम वस्तुओं या उनके विचारके सम्पर्कमें आनेपर जो सुख दुख, या न सुख-दुखके रूपमें अनुभव करते हैं इसे ही वेदना स्कंध कहते हैं।

(c) संज्ञा—वेदनाके बाद हमारे मस्तिष्कपर पहिलेसे ही अंकित संस्कारों द्वारा जो हम पहिचानते हैं—यह वही देवदत्त है, इसे संज्ञा कहते हैं।

(d) संस्कार—रूपादि वेदनाओं और संज्ञाओंका जो संस्कार मस्तिष्क पर पड़ा रहता है और जिसकी सहायतासे कि हमने पहिचाना—'यह वही देवदत्त है', इसे संस्कार कहते हैं।

(e) विज्ञान—चेतना या मनको विज्ञान कहते हैं।

ये पाँचों स्कंध जब व्यक्तिकी तृष्णाके विषय होकर पास आते हैं तो इन्हें ही उपादान स्कंध कहते हैं। बुद्धने इन पाँचों उपादान स्कंधोंको दुःख रूप कहा है।

ख दुःख हेतु—दुःखका हेतु क्या है? तृष्णा—काम (भोग)की तृष्णा भवकी तृष्णा, विभवकी तृष्णा। इन्द्रियोंके जितने प्रिय विषय या काम हैं उन विषयोंके साथ संपर्क उनका ख्याल तृष्णाको पैदा करता है। 'काम (=प्रिय भोग)केलिए ही राजा भी राजाओंसे लड़ते हैं क्षत्रिय भी क्षत्रियोंसे, ब्राह्मण भी ब्राह्मणोंसे, गृहपति (=वैश्य) भी गृहपतिसे माता भी पुत्रसे, पुत्र भी मातासे, पिता पुत्रसे पुत्र पितासे भाई भाईसे बहिन भाईसे, भाई बहिनसे, मित्र मित्रसे लड़ते हैं। वह आपसमें कलह विग्रह विवाद करते एक दूसरेपर हाथसे भी, दंडसे भी, शस्त्रसे भी आक्रमण करते हैं। वह (इससे) मर भी जाते हैं, मरण समान दुःखको प्राप्त होते हैं।'[1]

ग दुःख-विनाश—उसी तृष्णाके अत्यन्त निरोध परित्याग विनाशको दुःख निरोध कहते हैं। प्रिय विषयों और तद्विषयक विचारों-विकल्पोंसे जब तृष्णा छूट जाती है तभी तृष्णाका निरोध होता है।

---

[1] मज्झिम निकाय, १।२।३

भावनाओंका संयम रखनेका प्रयत्न—यह ठीक प्रयत्न है।

(b) ठीक स्मृति—काया वेदना चित्त और मनके धर्मोंकी ठीक स्थितियाँ—उनके मलिन क्षण विध्वंसी आदि होने—को सदा स्मरण रखना।

(c) ठीक समाधि—'चित्तकी एकाग्रताको समाधि कहते हैं'।[1] ठीक समाधि वह है जिससे मनके विक्षेपोंको हटाया जा सके। बुद्धकी शिक्षाओंके अत्यन्त संक्षेपमें एक पुरानी गाथामें इस तरह कहा गया है—

सारी बुराइयोंका न करना, और अच्छाइयोंका संपादन करना अपने चित्तका संयम करना यह बुद्धकी शिक्षा है।

अपनी शिक्षाका क्या मुख्य प्रयोजन है इसे बुद्धने इस तरह बतलाया है[2]—

'भिक्षुओ! यह ब्रह्मचर्य (=भिक्षुका जीवन) न लाभ-सत्कार प्रशंसाकेलिए है न शील (=सदाचार)की प्राप्तिकेलिए, न समाधि प्राप्तिकेलिए न ज्ञान=दर्शनकेलिए है। जो न अटट चित्तकी मुक्ति है उसीकेलिए यह ब्रह्मचर्य है यही सार है यही उसका अन्त है।

बुद्धके दार्शनिक विचारोंको देनेसे पूर्व उनके जीवनके बाकी भागको समाप्त कर देना जरूरी है।

सारनाथमें अपने धर्मका प्रथम उपदेश कर, वहीं वर्षा बिता, वर्षाके अन्तिम स्थान छोड़ते हुए प्रथम बार मासोंमें हुए अपने साठ शिष्योंको उन्होंने इस तरह संबोधित किया—[3]

'भिक्षुओ! बहुत जनोंके हितकेलिए बहुत जनोंके सुखकेलिए, लोकपर दया करनेकेलिए देव-मनुष्योंके प्रयोजन हित-सुखकेलिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। मैं भी उरुवेला सेनानी ग्राममें धर्म उपदेशकेलिए जा रहा हूँ।

[1] म० नि०, १।५।४ [2] म० नि०, १।३।६
[3] संयुत्त नि०, ४।१।४

इसके बाद ४४ वर्ष। बुद्ध जीवित रहे। इन ४४ वर्षोंमें बरसातके तीन मासोंको छोड़ वह बराबर विचरते जहाँ-तहाँ ठहरते लोगोंको अपने धर्म और दर्शनका उपदेश करते रहे।[1] बुद्धने बुद्धत्व प्राप्तिके बादकी ४४ बरसातोंको निम्न स्थानोंपर बिताया था—

स्थान	ई०पू०	स्थान	ई०पू०
(लुंबिनी जन्म	५६३)	बीच)	५१७
(बोधगया बुद्धत्व	५२८)	१३ चालिय पर्वत (बिहार)	५१६
१ ऋषिपतन (सारनाथ)	५२८	१४ श्रावस्ती (गोंडा)	५१५
२-४ राजगृह	५२७-२५	१५ कपिलवस्तु	५१४
५ वैशाली	५२४	१६ आलवी (अरवल)	५१३
६ मकुल पर्वत (बिहार)	५२३	१७ राजगृह	५१२
७ (त्रयस्त्रिंश ?)	५२२	१८ चालिय पर्वत	५११
८ सुसुमारगिरि(=चुनार)	५२१	१९ चालिय पर्वत	५१०
९ कौशाम्बी (इलाहाबाद)	५२०	२० राजगृह	५०९
१० पारिलेयक (मिर्जापुर)	५१९	२१-४५ श्रावस्ती	५०८-४८४
११ नाला (बिहार)	५१८	४६ वैशाली	४८३
१२ वेरंजा (कन्नौज-मथुराके		(कुसीनारामें निर्वाण ४८३)	

उनके विचरणका स्थान प्रायः सारे युक्त प्रान्त और सारे बिहार तक सीमित था। इससे बाहर वह कभी नहीं गये।

(२) अनतत्त्ववाद—

हम देख चुके हैं, कि जहाँ बुद्ध एक ओर अत्यन्त भोग-मय जीवनके विरुद्ध थे, वहाँ दूसरी ओर वह शरीर सुखानेको भी मूर्खता समझते थे। कर्मकांड, भक्तिकी अपेक्षा उनका झुकाव ज्ञान और बुद्धिवादकी ओर

---

[1] बुद्धके जीवन और मुख्य मुख्य उपदेशोंको प्राचीनतम सामग्रीके आधारपर मैंने "बुद्धचर्या"में संगृहीत किया है।

रखता था। उनकी प्रतिभाकी विशालताको हम अभी कहनेवाले हैं। इन सारी बातोंके कारण अपने समयमें और बादमें भी बुद्ध प्रतिभाशाली व्यक्तियोंको आकर्षित करनेमें समर्थ हुए। मगधके सारिपुत्र, मौद्गल्यायन महाकाश्यप ही नहीं सुदूर उज्जैनके राजपुरोहित महाकात्यायन जैसे विद्वान् ब्राह्मण उनके शिष्य बने। फिर भी ब्राह्मणोंके धन और स्वार्थके विरोधी बौद्धधर्मके प्रति ब्राह्मणोंमें कटुता पैदा होना—जो आगे चलकर प्रारंभिक सम्मान—न रहा। मगधका राजा बिंबिसार बुद्धका अनुयायी था। कोसलके राजा प्रसेनजित्‌को इसका बड़ा अभिमान था कि बुद्ध भी कोसल क्षत्रिय हैं और वह भी कोसल क्षत्रिय। उसने बुद्धका और नजदीकी बनानेकेलिए शाक्योंकी कन्याके साथ ब्याह किया था। शाक्य, मल्ल लिच्छवि प्रजातंत्रोंमें उनके अनुयायियोंकी भारी संख्या थी। बुद्धका जन्म एक प्रजातंत्र (शाक्य)में हुआ था, और मृत्यु भी एक प्रजातंत्र (मल्ल) हीमें हुई। प्रजातंत्र प्रणाली उनको कितनी प्रिय थी, यह इससे मालूम है, कि अजातशत्रुके साथ अच्छा संबंध होनेपर भी उन्होंने उसके विरोधी वज्जीके लिच्छवियोंकी प्रशंसा करते हुए राष्ट्रके अपराजित रखनेवाली निम्न सात बातें बतलाईं[1]—

(१) बराबर एकत्रित हो सामूहिक निर्णय करना, (२) (निर्णयके अनुसार) कर्तव्यको एक हो करना, (३) व्यवस्था (=कानून और विनय)का पालन करना (४) वृद्धोंका सत्कार करना, (५) स्त्रियों पर जबर्दस्ती नहीं करना, (६) जातीय धर्मका पालन करना (७) धर्माचार्योंका सत्कार करना।

इन सात बातोंमें सामूहिक निर्णय सामूहिक कर्तव्य-पालन स्त्री स्वातन्त्र्य प्रगतिके अनुकूल विचार थे किन्तु बाकी बातोंपर जोर देना यही बतलाता है, कि वह तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थामें हस्तक्षेप नहीं करना

---

[1]देखो, महापरिनिब्बाण-सुत्त (दी० नि०, २।३), "बुद्धचर्या", पृष्ठ ५२० २२

चाहते थे। वयक्तिक तृष्णाके दुष्परिणामको उन्होंने देखा था। दुःखोंका कारण यही तृष्णा है। दुःखोंका चित्रण करते हुए उन्होंने कहा था[1]—

"चिरकालसे तुमने　　माता पिता-पुत्र-दुहिताके मरणको सहा, भोग रोगकी आफतोंको सहा, प्रियके वियोग, अप्रियके संयोगसे रोते क्रन्दन करते जितना आँसू तुमने गिराया, वह चारों समुद्रोंके जलसे भी ज्यादा है।

यहाँ उन्होंने दुःख और उसकी जड़को समाजमें न ख्याल कर व्यक्तिमें देखनेकी कोशिश की। भोगकी तृष्णाके लिए राजाओं, क्षत्रियों ब्राह्मणों, वैश्यों, सारी दुनियाको भगड़ते मरते-मारते देख भी उस तृष्णाको व्यक्तिसे हटानेकी कोशिश की। उनके मतानुसार मानो, काटोंसे बँचनेके लिए सारी पृथिवीको तो नहीं ढाँका जा सकता है हाँ, अपने पैरोंको चमड़ेसे ढाँक कर काँटोंसे बचा जा सकता है। वह समय भी ऐसा नहीं था कि बुद्ध जैसे प्रयोगवादी दार्शनिक सामाजिक पापोंकी सामाजिक चिकित्सासे दूर करनेकी कोशिश करते। तो भी वयक्तिक सम्पत्तिकी बुराइयोंको वह जानते थे, इसीलिए जहाँ तक उनके अपने भिक्षु-संघका संबंध था, उन्होंने उसे हटाकर भोगमें पूर्ण साम्यवाद स्थापित करना चाहा।

(३) दुःख विनाश-मार्गकी त्रुटियाँ—

बुद्धका दर्शन घोर क्षणिकवादी है किसी वस्तुको वह एक क्षणसे अधिक ठहरनेवाली नहीं मानते किन्तु इस दृष्टिको उन्होंने समाजकी आर्थिक व्यवस्थापर लागू नहीं करना चाहा। सम्पत्तिशाली शासक-शोषक-समाजके साथ इस प्रकार शान्ति स्थापित कर लेनेपर उनके जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिकका ऊपरके तबकेमें सम्मान बढ़ना लाजिमी था। पुरोहित-वर्गके कूटदंत, सोणदंड जैसे धनी प्रभुताशाली ब्राह्मण उनके अनुयायी बने थे राजा लोग उनकी आवभगतके लिए उतावले दिखाई पड़ते थे। उस वक्तका धनकुबेर व्यापारी-वर्ग तो उसमें भी

---

[1] सं० नि०, १४

ज्यादा उनके सत्कारके लिए प्रजा कैसी शान रखता था, जितने कि आजके भारतीय समाजमें साधारण नहीं। सावत्थीके धनकुबेर सुदत्त (अनाथपिंडक)ने [illegible] एक भारी बाग (जेतवन) खरीदकर बुद्ध और उनके भिक्षुओंके लिए अर्पित किया। उसी शहरकी दूसरी सेठानी विशाखाने भारी व्ययसे सात तल्ला दूसरा विहार (=मठ) पूर्वाराम बनवाया था। दक्षिण और पश्चिम-दक्षिण भारतके साथ व्यापारके महान केन्द्र कौशाम्बीके तीन भारी सेठोंने तीन विहार बनवानेमें लाखों खर्च कीं और यह है कि बुद्धके धर्म प्रचारमें राजाओंसे भी अधिक व्यापारियोंकी सहायता थी। यदि बुद्ध तत्कालीन आर्थिक व्यवस्थाके खिलाफ जाते तो यह सुभीता कहाँ मिल सकता था?

३ दार्शनिक विचार

अनित्य दुःख अनात्म[1] इस एक सूत्रमें बुद्धका सारा दर्शन आ जाता है। इनके बारेमें हम कह चुके हैं।

(१) क्षणिकवाद—बुद्धने तत्वोंका विभाजन तीन प्रकारसे किया है—(१) स्कंध (२) आयतन (३) धातु।

स्कन्ध पाँच हैं—रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान। रूपमें पृथिवी आदि चारों महाभूत शामिल हैं। विज्ञान चेतना या मनको कहते हैं। वेदना सुख दुःख आदिका जो अनुभव होता है उसे कहते हैं। संज्ञा होश या अभिज्ञानको कहते हैं। संस्कार मनपर बची रही छाप या वासनाको कहते हैं। इस प्रकार वेदना, संज्ञा, संस्कार—रूपके संपर्कसे विज्ञान (=मन)की भिन्न भिन्न स्थितियाँ हैं।[2] बुद्धने इन स्कंधोंको 'अनित्य=संस्कृत (=कृत)=

---

[1]अंगुत्तर निकाय, ३।१।३४

[2]महावेदल्ल-सुत्त म० नि०, १।५।३—"संज्ञा वेदना विज्ञान यह तीनों धर्म (=पदार्थ) मिलेजुले हैं, बिलग नहीं बिलग करके इनका भेद नहीं जतलाया जा सकता।

प्रतीत्य समुत्पन्न=व्यय धर्मवाला=व्यय धर्मवाला= निरोध (=विनाश) धर्मवाला"[1] कहा है।

आयतन बारह हैं—छ इंद्रियां (चक्षु श्रोत्र घ्राण जिह्वा काया या चमड़ा और मन) और छ उनके विषय—रूप, शब्द, गंध रस स्प्रष्टव्य, और धर्म (=वेदना, संज्ञा संस्कार)।

धातु अठारह हैं—उपरोक्त छ इंद्रियां तथा उनके छ विषय और इन इंद्रियों तथा विषयोंके संपर्कसे उत्पन्न होनेवाले छ विज्ञान (=चक्षु विज्ञान, श्रोत्र विज्ञान घ्राण विज्ञान जिह्वा विज्ञान काय विज्ञान और मन विज्ञान)।

विश्वकी सारी वस्तुएं स्कंध, आयतन धातु तीनोंमेंसे किसी एक प्रक्रियामें बांटी जा सकती हैं। इन्हें ही नाम और रूपमें भी विभक्त किया जाता है, जिनमें नाम विज्ञानका पर्यायवाची है। यह सभी अनित्य हैं—[2]

"यह अटल नियम है— रूप (महाभूत) वेदना संज्ञा, संस्कार, विज्ञान (ये) सारे संस्कार (=कृत वस्तुएं) अनित्य हैं।"

"रूप वेदना संज्ञा संस्कार विज्ञान (ये पांचों स्कंध) नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अविकारी नहीं हैं यह लोकमें पंडितसम्मत (बात) हैं। मैं भी (वैसा) ही कहता हूँ। ऐसा कहने समझाने पर भी जो नहीं समझता नहीं देखता उस बालक (=मूर्ख) अंध, बेआंख, अजान केलिए मैं क्या कर सकता हूँ।"[3]

रूप (भौतिक पदार्थ)की क्षणिकताको तो आसानीसे समझा जा सकता है। विज्ञान (=मन) उससे भी क्षणभंगुर है, इसे दर्शाते हुए बुद्ध कहते हैं—

"भिक्षुओ! यह बल्कि बेहतर है, कि अजान (पुरुष) इस चार महाभूतोंकी कायाको ही आत्मा (=नित्य तत्व) मान लें किन्तु

---

[1] महानिदान-सुत्त (दी० नि०, २।१५, "बुद्धचर्या", १३३)
[2] अंगुत्तर निकाय, ३।१।३४
[3] संयुत्त नि०, १६

चित्तको (उतना मानना ठीक) नहीं। सो क्यों ? क्योंकि महाभूतोंसे
यह काया एक [illegible] दो [illegible] तीन [illegible] चार [illegible] पाँच [illegible]
सौ वर्ष भी मौजूद देखा जाता है, किन्तु जिसे चित्त, मन या विज्ञान
कहा जाता है, वह रात और दिनमें भी (पहिलेसे) दूसरा ही उत्पन्न होता
है, दूसरा ही नष्ट होता है।"[1]

बुद्धके दर्शनमें अनित्यता एक ऐसा नियम है जिसका कोई अपवाद नहीं है।

बुद्धका अनित्यवाद भी "दूसरा ही उत्पन्न होता, दूसरा ही नष्ट होता है" के अनुसार किसी एक मौलिक तत्त्वका बाहरी परिवर्तनमात्र नहीं बल्कि एकका बिलकुल नाश और दूसरेका बिलकुल नया उत्पाद है।—बुद्ध कार्य कारणकी निरन्तर या अविच्छिन्न सन्ततिको नहीं मानते।

(२) प्रतीत्य समुत्पाद—यद्यपि कार्य कारणकी बुद्ध अविच्छिन्न सन्तति नहीं मानते तो भी यह वह मानते हैं कि "इसके होनेपर यह होता है"[2] (एकके विनाशके बाद दूसरेकी उत्पत्ति इस नियमको बुद्धने प्रतीत्य समुत्पाद नाम दिया है)। हर एक उत्पादका कोई प्रत्यय है। प्रत्यय और हेतु(=कारण) समानार्थक शब्द मालूम होते हैं किन्तु बुद्ध प्रत्ययसे वही अर्थ नहीं लेते जो कि दूसरे दार्शनिकोंको हेतु या कारणसे अभिप्रेत है। प्रत्ययसे उत्पादका अर्थ है, बीतनेसे उत्पाद—यानी एकके बीत जाने नष्ट हो जानेपर दूसरेकी उत्पत्ति। बुद्धका प्रत्यय ऐसा हेतु है जो किसी वस्तु या घटनाके उत्पन्न होनेसे पहिले क्षण सदा लुप्त होते देखा जाता है। प्रतीत्य समुत्पाद कार्यकारण नियमको अविच्छिन्न नहीं विच्छिन्न प्रवाह[3] बतलाता है। प्रतीत्य समुत्पादके इसी विच्छिन्न प्रवाहको लेकर आगे नागार्जुनने अपने शून्यवादको विकसित किया।

---

[1] संयुत्त नि०, १२।७ [2] "अस्मिन् सति इदं भवति।" (म० नि०, १।४।८, अनुवाद, पृ० १५५)

[3] Discontinuous continuity

प्रतीत्य-समुत्पाद बुद्धके सारे दर्शनका आधार है उनके दर्शनके समझनेकी यह कुंजी है, यह खुद बुद्धके इस वचनसे मालूम होता है[1]—

"जो प्रतीत्य समुत्पादको देखता है, वह धर्म (=बुद्धके दर्शन)को देखता है, जो धर्मको देखता है, वह प्रतीत्य समुत्पादको देखता है। यह पाँच उपादान स्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार विज्ञान) प्रतीत्य समुत्पन्न (=विच्छिन्न प्रवाहके तौरपर उत्पन्न) है।"

प्रतीत्य समुत्पादके नियमको मानव व्यक्तिमें लगाते हुए बुद्धने इसके बारह अंग (=द्वादशांग प्रतीत्य समुत्पाद) बतलाये हैं। पुराने उपनिषदके दार्शनिक तथा दूसरे कितने ही आचार्य नित्य ध्रुव, अविनाशी तत्त्वको आत्मा कहते थे। बुद्धके प्रतीत्य समुत्पादमें आत्माके लिए कोई गुंजाइश न थी, इसीलिए आत्मवादको वह महा अविद्या कहते थे। इस बातको उन्होंने अपने एक उपदेश[2]में अच्छी तरह समझाया है—

'साति केवट्टपुत्त भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि (=धारणा) उत्पन्न हुई थी—मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूँ कि दूसरा नहीं बल्कि वही (एक) विज्ञान (=जीव) संसरण-संधावन (=आवागमन) करता रहता है।'

बुद्धने यह बात सुनी तो बुलाकर पूछा—

"'क्या सचमुच साति! तुझे इस प्रकारकी बुरी धारणा हुई है?'

'हाँ, दूसरा नहीं वही विज्ञान (=जीव) संसरण-संधावन करता है।'

साति! वह विज्ञान क्या है?

यह जो, भन्ते! वक्ता अनुभव करता है, जो कि यहाँ वहाँ (जन्म लेकर) अच्छे बुरे कर्मोंके फलको अनुभव करता है।

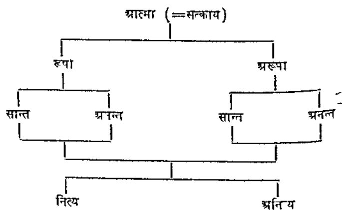
निकम्मे (=मोघपुरुष)! तूने किसको मुझे ऐसा उपदेश करते

[1] मज्झिम नि०, १।३।८

[2] म० नि०, १।४।८ (अनुवाद, पृ० १५१ ८)

क्लता आदिके अनुसार) अनुरोध (=राग), विरोधमें पड़ा सुखमय, दुखमय न सुख-न दुखमय वेदनाको अनुभव करता है, उसका अभिनन्द करता है। (इस प्रकार) अभिनंदन करते उसे नन्दी (=तृष्णा) उत्पन्न होती है। वेदनाओंके विषयमें जो यह नन्दी (=तृष्णा) है, (यही) उसका उपादान (=ग्रहण करना या ग्रहण करनेकी इच्छा) है।"

(३) अनात्मवाद—बुद्धके पहिले उपनिषदके ऋषियोंको हम आत्माके दर्शनका जबर्दस्त प्रचार करते देखते हैं। साथ ही उस समय चार्वाककी तरहके भौतिकवादी दार्शनिक भी थे यह भी बतला चुके हैं। नित्यतावादियोंके आत्मा संबंधी विचारोंको बुद्धने दो भागोंमें बाँटा है,[1] एक वह जिसमें आत्माको रूपी (इंद्रिय-गोचर माना जाता है, दूसरेमें उसे अ-रूपी माना गया है)। फिर इन दोनों विचारवालोंमें कुछ आत्माको अनन्त मानते हैं और कुछ सान्त (=परिच्छि या अणु)। फिर ये दोनों विचारवाले नित्यवादी और अनित्यवादी दो भागोंमें बँटे हैं—



[1] महानिदान-सुत्त, दी० नि०, २।१५ ("बुद्धचर्या, पृ० १३१, ३२)

आत्मवादके लिए बुद्धने एक दूसरा शब्द सत्काय-दृष्टि भी व्यवहृत किया है। सत्कायका अर्थ है कायामें विद्यमान (=कायासे भिन्न अजर अमर तत्व)। अभी साति केवट्टपुत्तके विज्ञान (=जीव)के आवागमनकी बात करनेपर बुद्धने उसे कितना फटकारा और अपनी स्थितिको स्पष्ट किया यह बतला चुके है। सत्काय (=आत्मा) की धारणाको बुद्ध दर्शन-संबंधी एक भारी बंधन (=दृष्टि-संयोजन) मानते थे और सच्चे ज्ञानकी प्राप्तिके लिए उसके नष्ट होनेकी सबसे ज्यादा जरूरत समझते थे। बुद्धकी शिष्या पंडिता धम्मदिन्नाने अपने एक उपदेशमें[1] पाँच उपादान (=ग्रहण करनेकी इच्छासे युक्त)-स्कंधोंको सत्काय बतलाया है, और आवागमनकी तृष्णाको सत्काय दृष्टिका कारण।

बुद्ध अविद्या और तृष्णासे मनुष्यकी सारी प्रवृत्तियोंकी व्याख्या करते है। हम लिख आये है कि कैसे जर्मन दार्शनिक शोपनहारने बुद्धकी इसी सर्वशक्तिमती तृष्णाका बहुत व्यापक क्षेत्रमें प्रयोग किया।

लेकिन बुद्ध सत्काय-दृष्टि या आत्मवादकी धारणाको नैसर्गिक नहीं मानते थे इसीलिए उन्होंने कहा है—[2]

'उतान (ही) सो सकनेवाले (दुधमुँहे) अबोध छोटे बच्चेको सत्काय (=आत्मवाद)का भी (पता) नहीं होता फिर कहाँसे उसे सत्काय-दृष्टि उत्पन्न होगी ?'

—यहाँ मिलाइए भेड़ियेकी माँदसे निकाली गई लड़की कमलासे जिसने चार वर्षमें ३० शब्द सीखे।[3]

उपनिषदके इतने परिश्रमसे स्थापित किए आत्माके महान् सिद्धांतको प्रतीत्यसमुत्पादवादी बुद्ध कितनी तुच्छ दृष्टिसे देखते थे ?—[4]

---

[1] चूलवेदल्ल-सुत्त, म० नि०, १।५।४ (अनुवाद, पृ० १७६)

[2] महामालुंक्य-सुत्त, म० नि०, २।२।४ (अनुवाद, पृ० २५४)

[3] "वैज्ञानिक भौतिकवाद।" पृष्ठ १६७-८ [4] मज्झिम नि०, १।१।२—"अयं भिक्खवे! केवलो परिपूरो बाल धम्मो।"

'जो यह मेरा आत्मा अनुभव कर्ता, अनुभवका विषय है, और तहाँ-तहाँ (अपने) भले बुरे कर्मोंके विपाकको अनुभव करता है, यह मेरा आत्मा नित्य=ध्रुव=शाश्वत=अपरिवर्तनशील है, अनन्त वर्षों तक वैसा ही रहेगा—यह भिक्षुओ! केवल पूरा बाल धर्म (=मूढ़ विचार) है।"

अपने दर्शनोंमें अनात्मवाद बुद्धको प्रधानतम वस्तु अभिप्रेत नहीं है? उपनिषद्में आत्माको भी नित्य, ध्रुव, वस्तु सत्य माना जाता था। बुद्धने उसका निम्न प्रकारसे उत्तर दिया—

(उपनिषद्)—आत्मा=नित्य, ध्रुव=वस्तुसत्

(बुद्ध)—अन्-आत्मा=अ-नित्य, अ-ध्रुव=वस्तुसत्

इसीलिए वह एक जगह कहते हैं—

'रूप अनात्मा है, वेदना अनात्मा है, संज्ञा   संस्कार   विज्ञान   सारे धर्म अनात्मा हैं।'[1]

बुद्धने प्रतीत्य-समुत्पादके जिस महान् और व्यापक सिद्धान्तका आविष्कार किया था उसके प्रकट करनेकेलिए उस वक्त अभी भाषा भी तैयार नहीं हुई थी, इसलिए अपने विचारोंको प्रकट करनेके वास्ते जहाँ उन्हें प्रतीत्य-समुत्पाद संस्कार जैसे कितने ही नये शब्द गढ़ने पड़े, वहाँ कितने ही पुराने शब्दोंको उन्होंने अपने नये अर्थोंमें प्रयुक्त किया। उपरोक्त उद्धरणमें धर्मको उन्होंने अपने खास अर्थमें प्रयुक्त किया है, जो कि आजके साइंसकी भाषामें वस्तुकी जगह प्रयुक्त होनेवाले घटना शब्दका पर्यायवाची है। 'ये धर्मा हेतु-प्रभवा' (=जो धर्म हैं वह हेतुसे उत्पन्न हैं)—यहाँ भी धर्म विच्छिन्न प्रवाह वाले विश्वके क्षण-तरंग अवयवको बतलाता है।

(४) अ-भौतिकवाद—आत्मवादके बुद्ध जबर्दस्त विरोधी थे सही, किन्तु, इससे यह अर्थ नहीं लेना चाहिए, कि वह भौतिक (=जड़) वादी थे। बुद्धके समय कोसलदेशकी सालविका नगरीमें लौहित्य नामक एक ब्राह्मण

[1] चूलसच्चक-सुत्त, म० नि०, १।४।५ (अनु०, पृ० १३८)

सामन्त रहता था। धर्मोंके बारेमें उसकी बहुत बुरी सम्मति थी[1]—

"ससारम (कोई ऐसा) श्रमण (=सन्यासी) या ब्राह्मण नही है, जो अच्छे धर्मको जानकर दूसरको समझावेगा। भला दूसरा दूसरके लिए क्या करेगा? (नये नये धर्म क्या ह), जैसे कि एक पुराने बधनको काटकर एक दूसर नय बधनका डालना। इसी प्रकार म इसे पाप (=बुराई) और लोभकी बात समझता हूँ।"

बुद्धने अपने शील समाधि प्रज्ञा सबधी उपदेश द्वारा उसे समझानकी कोशिश की थी।

कोसलदेशमें ही एक दूसरा सामन्त—सेतव्या का स्वामी पायासी राज्य था। उसका मत था[2]—

"यह भी नही ह, परलोक भी नही है, जीव मरनके बाद (फिर) नही पदा होत, और अच्छ बुर कर्मोंका कोई भी फल नही होता।'

पायासी क्या परलोक और पुनर्जन्मको नही मानता था इसकेलिए उसका तीन दलील थी जिन्हे कि बुद्धके शिष्य कुमार काश्यपके सामन उसने पेश की थी—(१) किसी मरने लौटकर नही कहा, कि दूसरा लोक है, (२) धर्मात्मा आस्तिक—जिन्हे स्वर्ग मिलना निश्चित है—भी मरनेसे अनिच्छुक होते ह, (३) जीवके निकल जानसे मृत शरीरका न वजन कम होता ह, और सावधानीस मारनपर भी जीवका कहीसे निकलत नही देखा जाता।

बुद्ध समझते थे कि भौतिकवाद उनके ब्रह्मचर्य और समाधिका भी वसा ही विरोधी है जसा कि वह आत्मवादका विरोधी ह। इसीलिए उन्होंने कहा[3]—

'वही जीव ह वही शरीर ह, (दोनो एक ह) ऐसा मत होनेपर

[1] दीघ निकाय, १।१२ (अनुवाद, पृ० ८२)
[2] दीघ नि०, २।१० (अनु०, पृ० १६६)
[3] अगुत्तर नि०, ३

ब्रह्मचर्यवास पूरा हो सकता। जीव दूसरा है शरीर दूसरा है' ऐसी दृ (=दृष्टि) होनेपर भी ब्रह्मचर्यवास नहीं हो सकता।'

आत्मा ब्रह्मचर्यवास (=साधुका जीवन) तब करता है, जब कि इसके बाद भी उसे फल पाने या काम पूरा करनेका अवसर मिलनेवाला हो। भौतिकवादके बारे इसीलिए ब्रह्मचर्यवास व्यर्थ है। शरीर और आत्माको भिन्न भिन्न माननेवाले आत्मवादियोंके लिए भी ब्रह्मचर्यवास व्यर्थ है क्योंकि नित्य ध्रुव आत्मामें ब्रह्मचर्य द्वारा परिवर्तन करनेकी गुंजाइश नहीं। इस तरह बुद्धने अपनेको अभौतिकवादी अनात्मवादीकी स्थितिमें रक्खा।

(५) अनीश्वरवाद—बुद्धके दर्शनका जो रूप—अनित्य, अनात्म, प्रतीत्य समुत्पाद—हम देख चुके हैं, उसमें ईश्वर या ब्रह्मकी भी उसी तरह गुंजाइश नहीं है जैसे कि आत्माकी। यह ठीक है कि बुद्धने ईश्वरवादपर उतना अधिक व्याख्यान नहीं दिया है, जितना कि आत्मवादपर। इससे कुछ भारतीय—साधारण ही नहीं सुप्रतिष्ठित पश्चिमी ढंगके प्रोफेसर—भी यह कहते हैं कि बुद्धने चुप रहकर इस तरहके बृहद् उपनिषद्के सिद्धान्तकी पूर्ण स्वीकृति दे दी है।

ईश्वरका ख्याल जहाँ आता है उसमें विश्वके स्रष्टा भर्ता हर्ता एक नित्य चेतन व्यक्तिका अर्थ लिया जाता है। बुद्धके प्रतीत्य-समुत्पादमें ऐसे ईश्वरकी गुंजाइश तभी हो सकती है, जब कि सारे 'धर्मों की भाँति वह भी प्रतीत्य-समुत्पन्न हो। प्रतीत्य समुत्पन्न होनेपर वह ईश्वर ही क्या रहेगा। उपनिषद्में हम विश्वका एक कर्ता पाते हैं—

'प्रजापतिने प्रजाकी इच्छासे तप किया। उसने तप करके जोड़े पैदा किये।'[1]

'ब्रह्मा ने कामना की। तप करके उसने इस सब (=विश्व) को पैदा किया। '[2]

---

[1]प्रश्नोपनिषद्, १।३ १३ [2]तैत्तिरीय, २।६

"आत्मा ही पहिले अकेला था। उसने चाहा—'लोकोंको सिरजूँ।' उसने इन लोकोंको सिरजा।[1]

अब इस सृष्टिकर्ता ब्रह्मा आत्मा ईश्वर, सत की बुद्ध क्या गति बनाते हैं, इसे सुन लीजिए। मल्लोंके एक प्रजातन्त्रकी राजधानी अनूपिया[2]में बुद्ध भार्गव-गोत्र परिव्राजकसे इस बातपर वार्तालाप कर रहे हैं।[3]—

'भार्गव! जो श्रमण-ब्राह्मण, ईश्वर (=इस्सर) या ब्रह्माके कर्त्तापनके मत (=आचार्यक)को श्रेष्ठ बतलाते हैं उनके पास जाकर मैं यह पूछता हूँ—'क्या सचमुच आपलोग ईश्वर के कर्त्तापनको श्रेष्ठ बतलाते हैं ?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे 'हाँ' कहते हैं। उनसे मैं (फिर) पूछता हूँ—'आपलोग कैसे ईश्वर या ब्रह्माके कर्त्तापनको श्रेष्ठ बतलाते हैं ?' मेरे ऐसा पूछनेपर वे मुझसे ही पूछने लगते हैं। मैं उनको उत्तर देता हूँ— बहुत दिनोंके बीतनेपर इस लोकका प्रलय होता है। (फिर) बहुत काल बीतनेपर इस लोककी उत्पत्ति होती है। उत्पत्ति होनेपर शून्य ब्रह्म विमान (=ब्रह्माका उड़ता फिरता घर) प्रकट होता है। तब (आभास्वर देवलोकका) कोई प्राणी आयुके क्षीण होनेसे या पुण्यके क्षीण होनेसे उस शून्य ब्रह्म विमानमें उत्पन्न होता है। वह वहाँ बहुत दिनोंतक रहता है। बहुत दिनों तक अकेला रहनेके कारण उसका जी ऊब जाता है और उसे भय मालूम होने लगता है।[4]—अहा दूसरे प्राणी भी यहाँ आवें।

---

[1] ऐतरेय, १।१ [2] छपरा जिलामें कहीं पर, अनोमा नदीके पास था।

[3] पाथिकसुत्त, दीघ नि०, ३।१ (अनुवाद, पृ० २२३)

[4] बुद्धका यहाँ ब्रह्माके अकेले डरनेसे बृहदारण्यकके इस वाक्य (१।४।१ २)की ओर इशारा है।—"आत्मा ही पहले था। उसने नजर दौड़ाकर अपनेसे दूसरेको नहीं देखा। वह भय खाने लगा। इसीलिए (आदमी) अकेला भय खाता है। उसने दूसरे(के होने)की इच्छा की।"

दूसरे प्राणी भी यहाँ आयें। मेरे मनमें ऐसा होनेसे ... दूसरे प्राणी विमानमें उत्पन्न हुए हैं। जो प्राणी पहिले उत्पन्न होता है, उसके मनमें होता है— मैं ब्रह्मा महाब्रह्मा विजेता अविजित सर्वद्रष्टा वशवर्ती, ईश्वर, कर्ता निर्माता श्रेष्ठ स्वामी और भूत तथा भविष्यके प्राणियोंका पिता हूँ। मैंने ही इन प्राणियोंको उत्पन्न किया है। (क्योंकि) मेरे ही मनमें यह पहिले हुआ था—दूसरे भी प्राणी यहाँ आवें। मेरे मनमें ही मनन उत्पन्न होनेसे ये प्राणी यहाँ आये हैं। और जो प्राणी पीछे उत्पन्न हुए, उनके मनमें भी उत्पन्न होता है 'यह ब्रह्मा ... ईश्वर ... कर्ता ... है। सो क्यों? (इसलिए कि) हम लोगोंने इनको पहिलेहीसे यहाँ विद्यमान पाया। हम लोग (तो) पीछे उत्पन्न हुए।' ... दूसरा प्राणी जब उस (देव) कायाको छोड़कर इस (लोक)में आता है। (जब इनमेंसे कोई) समाधिको प्राप्तकर उससे पूर्वजन्मका स्मरण करता है, उसके आगे नहीं स्मरण करता है। वह कहता है—जो यह ब्रह्मा ... ईश्वर ... कर्ता ... है वह नित्य=ध्रुव है शाश्वत निर्विकार और सदाकेलिए वैसा ही रहनेवाला है। और जो हम लोग उस ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये गये हैं (वह) अनित्य अध्रुव, अल्पायु मरणशील हैं। इस प्रकार (क्या तो) आप लोग ईश्वरका कर्तापन ... बतलाते हैं? वे कहते हैं—' ... जैसा आयुष्मान गौतम बतलाते हैं वैसा ही हम लोगोंने (भी) सुना है।

उस वक्तकी—परंपरा, चमत्कार तथा अंधश्रद्धा प्रमाणमें ईश्वरका यह एक ऐसा बहुतरीन खंडन था जिसमें एक बड़ा बारीक मजाक भी शामिल है।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा (=ईश्वर)का खंडन एक जगहपर और सूक्ष्म परिहास किया है।—

बहुत पहिले ... एक भिक्षुके मनमें यह प्रश्न हुआ—'ये चार

---

[1] केवट्टसुत्त (दीघ निकाय, १।११, अनुवाद पृ० ७६-८०)

महाभूत—पृथिवी धातु जल धातु, तेज-धातु, वायु-धातु—कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं ? उसने चातुमहाराजिक देवताओं (के पास) जाकर (पूछा) । चातुमहाराजिक देवताओंने उस भिक्षुसे कहा—' हम भी नहीं जानते हमसे बढकर चार महाराजा[1] हैं । वे शायद इसे जानते हों ।'

" 'हमसे भी बढकर त्रायस्त्रिंश याम सुयाम तुषित (देवगण) सतुषितदेवपुत्र निर्माणरति (देवगण) सुनिर्मित (देवपुत्र) परनिर्मितवशवर्ती (देवगण) वशवर्ती नामक देवपुत्र ब्रह्मकायिक नामक देवता हैं वह शायद इसे जानते हों । ब्रह्मकायिक देवताओंने उस भिक्षुसे कहा—'हमसे भी बहुत बढ चढकर ब्रह्मा हैं वह ईश्वर कर्त्ता निर्माता और सभी पैदा हुए और होनेवालोंके पिता हैं, शायद वह जानते हों । (भिक्षुके पूछनेपर उन्होंने कहा—) हम नहीं जानते कि ब्रह्मा (=ईश्वर) कहाँ रहते हैं । इसके बाद शीघ्र ही महाब्रह्मा (=महान ईश्वर) भी प्रकट हुआ । (भिक्षुने) महाब्रह्मासे पूछा—ये चार महाभूत कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध (=विलुप्त) हो जाते हैं ?' महाब्रह्माने कहा— मैं ब्रह्मा ईश्वर पिता हूँ ।' दूसरी बार भी महाब्रह्मासे पूछा—' मैं तुमसे यह नहीं पूछता कि तुम ब्रह्मा ईश्वर पिता हो । मैं तो तुमसे यह पूछता हूँ—ये चार महाभूत कहाँ बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं ? तीसरी बार भी पूछा—तब महाब्रह्माने उस भिक्षुकी बाँह पकड, (देवताओंकी सभासे) एक ओर ले जाकर कहा—'हे भिक्षु ये देवता मुझे ऐसा समझते हैं कि (मेरे लिए) कुछ अज्ञात अ-दृष्ट नहीं है इसीलिए मैंने उन लोगोंके सामने नहीं बतलाया । भिक्षु ! मैं भी नहीं जानता यह तुम्हारा

[1] धृतराष्ट्र, विरूढक, विरूपाक्ष, वश्रवण (=कुबेर)

हो रहे हैं कि तुम (बुद्ध)को छोड़ बाहरमें इस बातकी खोज करते हो। उन्हींके पास जाओ जैसा (वह) कहें वैसा ही समझो।

स्मरण रखना चाहिए कि आज हिंदूधर्ममें ईश्वरसे जो अर्थ लिया जाता है वही अर्थ उस समय ब्रह्मा शब्द देता था। अभी शिव और विष्णुको ब्रह्मासे ऊपर नहीं उठाया गया था। बुद्धकी इस परिहासपूर्ण कहानीका मजा तब आयेगा यदि आप यहाँ ब्रह्माकी जगह अल्लाह या भगवान बुद्धकी जगह मार्क्स और भिक्षुकी जगह किसी साधारणसे मार्क्स अनुयायीको रखकर इसे दुहरायें। हजारों अविश्वसनीय चीजोंपर विश्वास करनेवाले अपने समयके अंध श्रद्धालुओंको बुद्ध बतलाना चाहते थे कि तुम्हारा ईश्वर नित्य ध्रुव वगैरह नहीं है न वह सृष्टिको बनाता बिगाड़ता है, वह भी दूसरे प्राणियोंकी भाँति जन्मन-मरनेवाला है। वह ऐसे अनगिनत देवताओंमें सिर्फ एक देवतामात्र है। बुद्धके ईश्वर (=ब्रह्मा)के पीछे 'लाठी' लेकर पड़नेका एक और उदाहरण लीजिए। अबके बुद्ध स्वयं जाकर ईश्वर को फटकारते हैं[1]—

एक समय बक ब्रह्माको ऐसी बुरी धारणा हुई थी[2]—यह (ब्रह्मलोक) नित्य ध्रुव, शाश्वत, शुद्ध अच्युत अज, अजर, अमर है न च्युत होता है न उपजता है। इससे आगे दूसरा निस्सरण (पहुँचनेका स्थान) नहीं है। तब मैं ब्रह्मलोकमें प्रकट हुआ। बक ब्रह्माने दूरसे ही मुझे आते देखा। देखकर मुझसे कहा—आओ मार्ष! (मित्र!) स्वागत मार्ष! चिरकालके बाद मार्ष! (आपका) यहाँ आना हुआ। मार्ष! यह (ब्रह्मलोक) नित्य ध्रुव शाश्वत अजर अमर है। ऐसा कहनेपर मैंने कहा—अविद्यामें पड़ा

[1] ब्रह्मनिमंतिक-सुत्त (म० नि०, १।५।६, अनुवाद०, पृ० १९४-५)

[2] याज्ञवल्क्यने गार्गीको ब्रह्मलोकसे आगेके प्रश्नको सिर गिरनेका डर दिखलाकर रोक दिया था। (बृहदारण्यक ३।६)

है, अहा ! वक ब्रह्मा, अविद्याम पडा ह अहा ! वक ब्रह्मा, जो कि अनित्यको नित्य कहता है, अशाश्वतको शाश्वत ।' एसा कहने पर वक ब्रह्माने कहा—माप ! म नित्यको ही नित्य कहता हूँ ।' मैंने कहा— ' ब्रह्मा ! (दूसरे लोकस) च्युत होकर तू यहाँ उत्पन्न हुआ ।' ।'[1]

ब्राह्मण अधेके पीछे चलनवाल अधोकी भाँति विना जान देखे ईश्वर (ब्रह्मा) और उसके लोकपर विश्वास रखते ह इस भावको मम भाते हुए एक जगह और बुद्धने कहा ह[1]—

वाशिष्ठ ब्राह्मणने बुद्धसे कहा—'ह गौतम ! मार्ग अमार्गके सबधमें ऐतरेय ब्राह्मण, छदोग ब्राह्मण छन्दावा ब्राह्मण नाना मार्ग बत लात ह तो भी वह ब्रह्माकी सलोकताको पहुँचाते ह । जस ग्राम या कस्बके पास बहुतसे नाना मार्ग होते ह तो भी व सभी ग्राममें ही जानवाले होते ह ।'

'वाशिष्ठ ! त्रिविद्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं जिसने ब्रह्माको अपनी आँखसे देखा हो एक आचार्य एक आचार्य प्राचार्य सातवी पीढी तकका आचार्य भी नही । ब्राह्मणोंके पूर्वज, ऋषि[2] मत्रोंके कर्त्ता, मत्रोंके प्रवक्ता अष्टक वामक वामदेव, विश्वा मित्र यमदग्नि, अंगिरा भरद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, भृगु—से क्या कोई है,

---

[1] तेविज्ज-सुत्त (दी० नि० १।१३, अनुवाद, पृ० ८७-९)

[2] ऋग्वेदके ऋषियोंमें वामकका नाम नहीं ह, अंगिराका भी अपना मत्र नहीं ह, किन्तु अंगिराके गोत्रियोके ५७से ऊपर सूक्त ह।(ऋक १।३५।३६, ६।१५, ८।५७ ५८, ६४, ७४, ७६, ७८ ७९, ८१ ८५, ८७, ८८, ९।४, ३०, ३५ ३६, ३९ ४०, ४४ ४६, ५० ५२, ६१, ६७, (२२ ३२), ६९, ७२, ७३, ८३, ९४, ९७, (४५ ५८), १०८ (८ ११), ११२, १०।४२ ४४, ४७, ६७-६८, ७१, ७२, ८२, १०७, १२८, १६४, १७२ ७४ बाकी आठ ऋषियोंके बनाए ऋग्-मत्र इस प्रकार ह—

जिसन ब्रह्मा। अपना आंगिर दया है। 'जिसने न
जान न दखन उनका गलावनाकेलिए माग जागेन बरा है।
वासिष्ठ ! (यह सा वस ही हुआ), जस अपानी गति एर

	सूक्त संख्या	पता
१ अष्टक (विश्वामित्र-पुत्र)	१	१०।१०४
२ वामक	०	
३ वामदेव (बृहदुक्थ, मूर्धन्वा, अंहोमुचके पिता)	५५	४।१ ४१ ४५ ५८
४ विश्वामित्र (कुशिक-पुत्र)	४६	३।१ १२, २४, २६, २७-३०, ३२ ५३ ५७-६२, ९।६७ (१३ १५), ९। १०१ (१३ १६)
५ जमदग्नि (भार्गव)	४	८।१०, ९।६२, ६५, ६७ (१६ १८)
६ अंगिरा	०	०
७ भरद्वाज (बृहस्पति-पुत्र)	६०	६।१ १४, १६ ३२, ३७ ४३, ५३ ७४, ९।६७ (१ ३)
८ वसिष्ठ (मित्रावरुण-पुत्र)	१०५	७।१ १०४, ९।६७ (१९ २१), ९०, ९७ (१ ३)
९ कश्यप (मरीचि-पुत्र)	७	१।९९, ९।६४, ६७ (४ ६), ९१ ९२, ११३ १४
१० भृगु (वरुण-पुत्र)	१	९।६५

दूसरसे जुटी हो, पहिलवाला भी नहीं देखता बीचवाला भी नहीं देखता, पीछेवाला भी नहीं देखता।　　"

(६) दश अकथनीय—बुद्धने कुछ बातोंको अकथनीय (=अव्याकृत) कहा है, कितने ही बौद्धिक बईमानीकेलिए उतारू भारतीय लेखक उसीका सहारा लेकर यह कहना चाहते हैं कि बुद्ध ईश्वर, आत्माके बारेमें चुप थे। इसलिए चुप्पीका मतलब यह नहीं लेना चाहिए कि बुद्ध उनके अस्तित्वसे इन्कार करते हैं। लेकिन वह इस बातको छिपाना चाहते हैं, कि बुद्धकी अव्याकृत बातोंकी सूची खुली हुई नहीं है कि उसमें जितनी चाहें उतनी बात आप दर्ज करते जायँ। बुद्धके अव्याकृतोंकी सूचीमें सिर्फ दस बातें हैं, जो लोक (=दुनिया) जीव शरीरके भेद-अभेद तथा मुक्त-पुरुषकी गतिके बारेमें हैं[1]—

क लोक	१ क्या लोक नित्य है ?
	२ क्या लोक अनित्य है ?
	३ क्या लोक अन्तवान है ?
	४ क्या लोक अनन्त है ?
ख जीव शरीरकी एकता	५ क्या जीव और शरीर एक है ?
	६ क्या जीव दूसरा शरीर दूसरा है ?
ग निर्वाणके बाद की अवस्था	७ क्या मरनेके बाद तथागत (=मुक्त) होते हैं ?
	८ क्या मरनेके बाद तथागत नहीं होते ?
	९ क्या मरनेके बाद तथागत होते हैं नहीं भी होते हैं ?
	१० क्या मरनेके बाद तथागत न होते हैं न नहीं होते हैं ?

मालुक्यपुत्तने बुद्धसे इन दस अव्याकृत बातोंके बारेमें

[1] म०नि०, २।२।३ (अनुवाद, पृ० २४१)

यह समझना असम्भव है, कि बुद्धने दुनियाके इस बहावमें किसी वस्तुको ध्रुव (=नित्य) नहीं स्वीकार किया, सारे विश्वमें हो रही अशान्तिमें (उन्होंने) कोई ऐसा विश्राम-स्थान नहीं (माना), जहाँ कि मनुष्यका अशान्त हृदय शान्ति पा सके।[1]

इसके लिए सर राधाकृष्णनने बौद्ध निर्वाणको 'परमसत्ता' मनवाने की चेष्टा की है, किन्तु बौद्ध निर्वाणको अभावात्मक छोड़ भावात्मक वस्तु माना ही नहीं जा सकता। बुद्ध जब शान्तिके प्राप्तिकर्त्ता आत्माको भारी मूर्खता (=बालधर्म) मानते हैं, तो उसके विश्रामकेलिए शान्तिका गाँव राधाकृष्णन् ही ढूंढ सकते हैं! फिर आपने तो इस वचनको वहीं उद्धृत भी किया है—'यह निरन्तर प्रवाह या घटना है, जिसमें कुछ भी नित्य नहीं। यहाँ (=विश्वमें) कोई चीज नित्य (=स्थिर) नहीं—न नाम (=विज्ञान) ही और न रूप (=भौतिकतत्त्व) ही।'[2]

(घ) आत्माके बारेमें बुद्धके चुप रहनेका दूसरा ही कारण था 'बुद्ध उपनिषदमें वर्णित आत्माके बारेमें चुप हैं—वह न उसे स्वीकार ही करते हैं न इन्कार ही।'[3]

नहीं जनाब! बुद्धके दर्शनका नाम ही अनात्मवाद है। उपनिषद्के नित्य, ध्रुव आत्माके साथ यहाँ 'अन' लगाया गया है। 'अनित्य दुःख अनात्म'की घोषणा करनेवालेकेलिए आपके ये उद्गार सिर्फ यही साबित करते हैं, कि आप दर्शनके इतिहास लिखनेकेलिए बिलकुल अयोग्य हैं।

आगे यह और दुहराते हैं—

'बिना इस अन्तर्हित तत्त्वके जीवनकी व्याख्या नहीं की जा सकती।[4]

[1] वहीं, पृष्ठ ३७९

[2] It is a perpetual process with nothing permanent. Nothing here is permanent, neither name nor form—महावग्ग (विनय पिटक) VI 35 ff

[3] वहीं, पृष्ठ ३८५ [4] वहीं, पृष्ठ ३८७

इसीलिए बुद्ध बराबर आगावी सत्यताके निषधसे इन्कार करते थे।"[1]

इसे कहते हैं—'मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी।' और बुद्धके सामने जानेपर राधाकृष्णन्‌की क्या गति होती, इसकेलिए मालुंक्य पुत्तकी घटनाको पढ़िए।

(ड) मिलिन्द प्रश्नके रचयिता नागसेन (१५० ई० पू०)ने बुद्धके दर्शनकी व्याख्या जिस सरलताके साथ यवनराजा मिनान्दरके सामने की, उसके बारेमें सर राधाकृष्णनका कहना है—

'नागसेनने बौद्ध (=बुद्धके) विचारको उसकी पतके शाखा (=उपनिषद्?)से तोड़कर शुद्ध बौद्धिक (=बुद्धिसंगत) क्षेत्रमें रोप दिया।[2]

और—

"बुद्धका लक्ष्य (=मिशन) था कि उपनिषद्के श्रेष्ठ विज्ञानवाद (Idealism)को स्वीकार कर उसे मानव जातिके दिन प्रतिदिनकी आवश्यकताकेलिए सुलभ बनाये। ऐतिहासिक बौद्ध धर्मका अर्थ है, उपनिषद्के सिद्धान्तका जनतामें प्रसार।"[3]

स्वयं बुद्ध उनके समकालीन शिष्य नागसेन (१५० ई० पू०), नागार्जुन (१७५ ई०), असंग (३७५ ई०), वसुबंधु (४०० ई०), दिग्नाग (४२५ ई०) धर्मकीर्ति (६००), धर्मोत्तर, शान्तरक्षित (७५० ई०), ज्ञानश्री, शाक्यश्रीभद्र (१२०० ई०) जिस रहस्यको न जान पाये थे, उसे खोज निकालनेका श्रेय सर राधाकृष्णनको है, जिन्होंने अनात्मवादी बुद्धको उपनिषद्के आत्मवादका प्रचारक सिद्ध कर दिया। २५०० वर्षों तक भारत, लंका, बर्मा, स्याम चीन जापान कोरिया मंगोलिया तिब्बत, मध्य एसिया, अफगानिस्तान और दूसरे देशों तक फैले भूभागपर कितना भारी भ्रम फैला हुआ था जो कि वह बुद्धको अनात्मवादी अनीश्वरवादी समझते रहे! और अक्षपाद बादरायण वात्स्यायन उद्योतकर कुमारिल वाचस्पति उदयन जैसे ब्राह्मणोंने भी बुद्धके दर्शनको जिस

[1] वहीं, पृष्ठ ३८९ [2] वहीं, पृ० ३९० [3] वहीं, पृष्ठ ४७१

तरहका समझा वह भी उनकी भारी अविद्या थी।

(७) विचार-स्वातन्त्र्य—प्रतीत्य-समुत्पादके आविष्कर्त्ताकेलिए विचार-स्वातन्त्र्य स्वाभाविक चीज थी। बौद्ध दार्शनिकोंने अपने प्रवर्त्तकके आदेशके अनुसार ही प्रत्यक्ष और अनुमान दोके अतिरिक्त तीसरे प्रमाण-को माननेसे इन्कार कर दिया। बुद्धने विचार-स्वातन्त्र्यको अपने ही उपदेशोंसे इस प्रकार शुरू किया था[1]—

"भिक्षुओ! मैं बेड़े(=कुल्ल)की भाँति पार जानेकेलिए तुम्हें धर्मका उपदेश करता हूँ, पकड़ रखनेकेलिए नहीं। जैसे भिक्षुओ! पुरुष ऐसे महान् जल-अर्णवको प्राप्त हो, जिसका उरला तीर खतरे और भयसे पूर्ण हो और परला तीर क्षेमयुक्त तथा भयरहित हो। वहाँ न पार ले जानेवाली नाव हो, न इधरसे उधर जानेकेलिए पुल हो। तब वह तृण-काष्ठ-पत्र जमाकर बेड़ा बाँधे और उस बेड़ेके सहारे हाथ और पैरसे मेहनत करते स्वस्तिपूर्वक पार उतर जाये। उतर जानेपर उसके (मनमें) हो—यह बेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है, इसके सहारे मैं पार उतर सका, क्या न मैं ऐसे बेड़ेको शिरपर रख कर, या कंधेपर उठाकर ले चलूँ।' तो क्या ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़ेके प्रति (अपना) कर्त्तव्य पालन करनेवाला होगा? नहीं। 'भिक्षुओ! वह पुरुष उस बेड़ेसे दुःख उठानेवाला होगा।' "

एक बार बुद्धसे केसपुत्र ग्रामके कालामोंने नाना मतवादोंके सच-झूठमें सन्देह प्रकट करते हुए पूछा था[2]—

"भन्ते! कोई-कोई श्रमण (=साधु) ब्राह्मण केसपुत्तमें आते हैं, अपने ही वाद (=मत)को प्रकाशित करते हैं, दूसरेके वादपर नाराज होते हैं, निन्दा करते हैं। दूसरे भी अपने ही वादको प्रकाशित

[1] म० नि०, १।३।२ (अनुवाद, पृष्ठ ८६-८७)

[2] अंगुत्तर निकाय, ३।७।५

वस्तुएँ दूसरा वाण्डन करता है। तब हम सन्देह होता है—कौन इन में सच कहता है, और कौन झूठ ?"

कालामो ! तुम्हारा सन्देह ठीक है, सन्देहके स्थानमें ही तुम्हें सन्देह उत्पन्न हुआ है। कालामो ! मत तुम श्रुत (=सुन बचना, वर्षों)के कारण (किसी बातको मानो), मत तर्कके कारणसे, मत नय-हेतुसे, मत (वक्ताके) आकारके विचारसे, मत अपने चिर विचारित मतके अनुकूल होनेसे, मत (वक्ताके) भव्यरूप होनेसे, मत 'श्रमण हमारा गुरु है' से। जब कालामो ! तुम स्वयं ही जानो कि ये धर्म (=काम या बात) अच्छे, अपाप, विज्ञोंसे अनिन्दित हैं यह सब, ग्रहण करनेपर हित, सुखके लिए होते हैं तो कालामो ! तुम उन्हें स्वीकार करो।

(८) सर्वज्ञता गलत—बुद्धके समकालीन वर्धमानको सर्वज्ञ सर्वदर्शी कहा जाता था जिसका प्रभाव पीछे बुद्धके अनुयायियोंपर भी पड़े बिना नहीं रहा। तो भी बुद्ध स्वयं सर्वज्ञताके ख्यालके विरुद्ध थे।

वत्सगोत्र पूछा[1]—"सुना है भन्ते ! श्रमण गौतम सर्वज्ञ सर्वदर्शी है —(क्या ऐसा कहनेवाले) यथार्थ कहनेवाले हैं ? भगवान्की असत्यसे निन्दा तो नहीं करते ?

वत्स ! जो कोई मुझे ऐसा कहते हैं , वह मेरे बारेमें यथार्थ कहनेवाले नहीं हैं। वह असत्यसे मेरी निन्दा करते हैं।

और अन्यत्र[2]—

ऐसा श्रमण ब्राह्मण नहीं है जो एक ही बार सब जानेगा, सब देखेगा (सर्वज्ञ सर्वदर्शी होगा)।

(९) निर्वाण—निर्वाणका अर्थ है बुझना—दीप या आगका जलते जलते बुझ जाना। प्रतीत्यसमुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाह रूपसे उत्पन्न) नाम-रूप (=विज्ञान और भौतिक तत्त्व) तृष्णाके कारण मिलकर जो एक जीवन प्रवाहका रूप धारण कर प्रवाहित हो रहे हैं इस प्रवाहका

[1] म० नि०, २।३।१ [2] म० नि०, २।४।१० (अनुवाद, पृष्ठ ३६६)

अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है। पुराने तेल-बत्ती या इन्धनके जल चुकने तथा नयेका आगमन न होनेसे जैसे दीपक या अग्नि बुझ जाते हैं, उसी तरह आस्रवों—चित्तमलों (काम भोगों, पुनर्जन्म और नित्य आत्माके नित्यत्व भ्रान्तिकी दृष्टियों)के क्षीण होनेपर यह आवागमन नष्ट हो जाता है। निर्वाण बुझना है, यह उसका शब्दार्थ ही बतलाता है। बुद्धने अपने इस विशेष शब्दको इसी भावके द्योतनकेलिए चुना था। किन्तु साथ ही उन्होंने यह कहनेसे इन्कार कर दिया कि निर्वाण गत पुरुष (=तथागत)का मरनेके बाद क्या होता है। अनात्मवादी दर्शनमें उसका क्या हो सकता है, यह तो आसानीसे समझा जा सकता है, किन्तु यह ख्याल "बालानां त्रासजनकम्" (=अज्ञोंको भयभीत करनेवाला) है, इसलिए बुद्धने उसे स्पष्ट नहीं कहना चाहा[1]। उदानके इस वाक्यको लेकर कुछ लोग निर्वाणको एक भावात्मक ब्रह्मलोक जैसा बनाना चाहते हैं।[2]—

"हे भिक्षुओ! अ-जात, अ-भूत, अ-कृत=अ-संस्कृत। किन्तु, यह निषेधात्मक विशेषणसे किसी भावात्मक निर्वाणको सिद्ध तभी कर सकते थे, जब कि उसके आनन्दका भोगनेवाला कोई नित्य ध्रुव आत्मा होता। बुद्धने निर्वाण उस अवस्थाको कहा है जहाँ तृष्णा क्षीण हो गई आस्रव=चित्तमल (=भोग, जन्मान्तर और विशेष मतवादकी तृष्णाएँ हैं) जहाँ नहीं रह जाते। इससे अधिक कहना बुद्धके अ-व्याकृत प्रतिज्ञाकी अवहेलना करनी होगी।[3]

४. बुद्धका दर्शन और तत्कालीन समाज व्यवस्था

दर्शन दिमागकी चीज है, फिर हाड मांसके समूहवाले समाजका उसपर क्या असर है? यह केवल मनकी ऊँची उड़ान, मनोमय जगतकी

[1] इतिवुत्तक, २।२।६ [2] उदान, ८।३

[3] उदान, ८।२—"दुद्दसं अनत्तं नाम न हि सच्चं सुदस्सनं।
पटिविद्धा तण्हा जानतो पस[illegible] ..."

द्वारा कराया । तो भी जो प्रहार हो चुका था उससे अग्निक चर्वाकको बचाया नहीं जा सकता था। कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे पता लगता है, कि लोकायत (=भौतिकवादी)-वाद शासकों और भीतर ही भीतर बहुत प्रिय था। किन्तु दूसरी ही दृष्टिसे वह समयके अनुसार, सिर्फ अपने स्वार्थों स्वार्थोंका ध्यान रखते हुए सामाजिक—धार्मिक—रूढ़ियोंके तोड़ने की स्वतंत्रता चाहते थे। लोगोंके धार्मिक मिथ्याविश्वासोंसे फायदा उठाकर शासकोंने क्या चमत्कारों द्वारा राज्यकोष और बल बढ़ानेकी वहाँ साफ सलाह दी गई है। 'दशकुमारचरित'के समय (ई० छठी सदीमें) तो राज्यके गुप्तचर धार्मिक निर्बोध वर्ग को जगत्‌के इस्तेमाल करते थे, और इस तरीकेका इस्तेमाल चाणक्य और उससे पहिलेके शासक भी किया करते थे इसमें सन्देह नहीं। अतिरिक्त शासकवर्ग भौतिकवादको अपने प्रयोजनकेलिए इस्तेमाल करता था—सिर्फ "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् (=ऋण करके घी पीओ)के नीचे उद्देश्य थे। वही भौतिकवाद जब शोषित-श्रमिकवर्गकेलिए इस्तेमाल होता, तो उसका उद्देश्य वैयक्तिक स्वार्थ नहीं होता था। वह अपने श्रमका फल स्वयं भोगनेकी माँग पेश करता—शोषणको बन्द करना चाहता था।

बुद्धका दर्शन अपने मौलिक रूप—प्रतीत्य-समुत्पाद (=क्षणिकवाद)—में भारी क्रान्तिकारी था। जगत, समाज, मनुष्य सबको उसने क्षण-क्षण परिवर्तनशील घोषित किया और कभी न लौटनेवाले "ते हि नो दिवसा गता (=वे हमारे दिवस चले गये)की पर्वाह छोड़कर परिवर्तनके अनुसार अपने व्यवहार अपने समाजके परिवर्तनकेलिए हर वक्त तैयार रहनेकी शिक्षा देता था। बुद्धने अपने बड़े-से-बड़े दार्शनिक विचार ('धर्म')को भी बेड़के समान सिर्फ उससे फायदा उठानेकेलिए कहा था, और उस समयके वादको भी ढालनेकी निन्दा की थी। तो भी इस क्रान्तिकारी दर्शनने अपने भीतरसे उन तत्त्वों (धर्म)को हटाया नहीं था जो 'समाजकी प्रगतिको रोकने'का काम देते हैं। पुनर्जन्मको यद्यपि बुद्धने नित्य आत्माका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आवागमनके

[illegible] हटा, किन्तु किसी मगधका गणराज्य जरूर बौद्ध धर्मकी ओर झुक गया। वर्ग-दृष्टिसे देखनेपर बौद्धधर्म नागरवर्गके एजेंटकी मान्यता रखता था, वर्गके भौतिक स्वार्थके बिना हमारे यह अपनेको न्याय-पक्षपाती सिद्ध करना चाहता था।

सिद्धार्थ गौतम अपने व्यक्तिगत रूपमें साधनाकेलिए क्या मजबूर हुए ? इसलिए उनके आगे आनेकी भौतिक परिस्थिति कहाँ तक कारण थी ? यह प्रश्न उठ सकता है। किन्तु हमें ख्याल रखना चाहिए कि व्यक्तिपर भौतिक परिस्थितियोंका प्रभाव समाजके एक आवश्यक रूपमें जो पड़ता है, कभी-कभी उस व्यक्तिका विशेष दिशामें प्रतिक्रियाकेलिए पर्याप्त है, और कभी कभी व्यक्तिकी अपनी वैयक्तिक भौतिक परिस्थिति भी दिशा-परिवर्तनमें सहायक होता है। पहिली दृष्टिसे बुद्धके स्थानपर हम अभी विचार कर चुके हैं। बुद्धकी वैयक्तिक भौतिक परिस्थितिका उनके स्थानपर क्या कोई प्रभाव पड़ा ? जरा इसपर भी विचार करना चाहिए। बुद्ध शरीरसे बहुत स्वस्थ थे। मानसिक तौरसे वह शान्त, गम्भीर तीक्ष्ण प्रतिभाशाली विचारक थे। महत्त्वाकांक्षाएं उनकी उतनी ही थीं जितनी कि एक काफी योग्यता रखनेवाले आत्म विश्वासी व्यक्तिकी होनी चाहिए। वह अपने दार्शनिक विचारोंकी सच्चाईपर पूरा विश्वास रखते थे, प्रतीत्यसमुत्पादके महत्त्वको भली प्रकार समझते थे साथ ही पहिले-पहिल उन्हें अपने विचारोंके फैलानेकी उत्सुकता न थी क्योंकि वह तत्कालीन विचार प्रवृत्तिको देखकर आशापूर्ण न थे। शायद अभी तक उन्हें यह पता न था कि उनके विचारों और उस समयके प्रभुवर्गकी प्रवृत्तिमें समझौतेकी गुंजाइश है।

बुद्धके दर्शनका अनित्य—अनात्मके अतिरिक्त दुःखवाद भी एक स्वरूप है। इस दुःखवादका कारण यदि उस समयके समाज तथा बुद्धकी अपनी परिस्थितिमें ढूँढ़ें, तो यही मालूम होता है, कि उन्हें बचपनमें ही मातृवियोग सहना पड़ा था, किन्तु उनकी मौसी प्रजापतीका स्नेह सिद्धार्थकेलिए कम न था। घरमें उनको किसी प्रकारका कष्ट

अश्वघोषने अपने "बुद्धचरित"में बुद्धके पहिलेके दो आचार्यों—आलार-कालाम और उद्दक रामपुत्त—मे एकको सांख्यवादी (कपिलका अनुयायी) कहा है, किन्तु यह भी जान पडता है ज्यादातर नवनिर्मित परम्परा पर निर्भर है, क्योंकि न इसका जिक्र पुराने साहित्यमें है और न उन दोनोंमें से किसीकी शिक्षा सांख्यदर्शनसे मिलती है। ऐसी अवस्थामें कपिलको बुद्धके पहिलेके दार्शनिकोंमें ले जाना मुश्किल है।

श्वेताश्वतरमें कपिल एक बड़े ऋषि है। भागवतमें वह विष्णुके २४ अवतारोंमें है, और उनके माता पिताका नाम कर्दम ऋषि और देवहूति बतलाया गया है। तो भी इससे कपिलके जीवनपर हमें ज्यादा प्रकाश पडता दिखाई नहीं पडता। कपिलके दर्शनका सबसे पुराना उपलब्ध ग्रंथ ईश्वरकृष्णकी सांख्यकारिका है। सांख्यसूत्रोंके नामसे प्रसिद्ध दोनों सूत्र ग्रंथ उससे पीछे तथा दूसरे पांच सूत्रात्मक दर्शनोंसे मुकाबिला करनेके लिए बने। चीनमें सुरक्षित भारतीय बौद्ध-परंपरासे पता लगता है, कि वसुबंधु समकालीन (४०० ई०) विंध्यवासीने सत्तर कारिकाओंमें सांख्यदर्शनको लिखा। वसुबंधुने उसके खंडनमें परमार्थसप्ततिके नामसे कोई ग्रंथ लिखा था। सांख्यकारिकाके ऊपर माठरने एक वृत्ति(=टीका) लिखी है, जिसका अनुवाद चीनी भाषामें भी हो चुका है। ईश्वरकृष्ण तथा माठरके कथनोंसे मालूम होता है, कि विचारक कपिलके उपदेशोंका एक बड़ा संग्रह था जिसे षष्ठितंत्र कहा जाता था। ईश्वरकृष्णने षष्ठितंत्रके कथानकों, परवादोंको हटाकर[1] दर्शनके असली तत्त्वको सत्तर आर्या श्लोकोंमें ग्रथित किया। इससे यह भी मालूम होता है, कि षष्ठितंत्र बौद्धोंके पिटक और जैनोंके आगमोंकी भांति एक वृहत् साम्प्रदायिक पिटक था, जिसमें बुद्ध और महावीरके उपदेशोंकी भांति कपिल—और शायद उनके शिष्य आसुरि—के उपदेश और संवाद संगृहीत थे।

---

[1] "सप्तत्यां किल येऽर्था तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्ठितंत्रस्य। आख्यायिका विरहिता परवादविवर्जिताश्चेव।"—(सां० का०)

बनाते वक्त विधिवाक्योंका पढ़नेवाले)की जीभ निकालनी चाहिए, और गण (=संघ)की पसली तोड़ देनी चाहिए।'

राजा बिंबिसारने जाकर बुद्धके पास इसकी शिकायत की, तो बुद्धने घोषित किया—

"भिक्षुओ! राजसैनिकोंको प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिए।"[1]

इस तरह दुःख-सत्यके साक्षात्कारसे दुःख-हेतुओंको संसारमें दूर करनेका जो सवाल था वह तो खतम हो गया, अब उसका सिर्फ आध्यात्मिक मूल्य रह गया था, और वैसा होते ही सम्पत्तिवाले वर्गकेलिए बुद्धका दर्शन विषदन्तहीन सर्प-सा हो जाता है।

सब देखनेपर हम यही कह सकते हैं कि तत्कालीन दासता और दरिद्रता बुद्धको दुःखसत्य समझनेमें सहायक हुए। दुःख दूर किया जा सकता है इसे समझते हुए बुद्ध प्रतीत्यसमुत्पाद पर पहुँचे—क्षणिक तथा "हेतुप्रभव" होनेसे उसका अन्त हो सकता है। संसारमें साफ दिखाई देनेवाले दुःखकारणोंको हटानेमें असमर्थ समझ उन्होंने उसकी अलौकिक व्याख्या कर डाली।

§ ४ बुद्धके पीछेके दार्शनिक

क कपिल (४०० ई० पू०)

बुद्धके पहिलेके दार्शनिकोंमें कपिलको भी गिना जाता है, किन्तु जहाँ तक बुद्धके प्राचीनतम उपदेश-संग्रहों तथा तत्कालीन दूसरी उपलब्ध सामग्रीका संबंध है वहाँ कपिल या उनके दर्शनका बिल्कुल पता नहीं है। श्वेताश्वतरमें कपिलका नाम ही नहीं है, बल्कि उसपर कपिलके दर्शनकी स्पष्ट छाप भी है, किन्तु वह बुद्धके पीछेकी उपनिषदोंमें है, यह कह आये हैं। ईसाकी पहिली सदीके बौद्ध कवि और दार्शनिक

---

[1] वहीं

ख. बौद्ध दार्शनिक नागसेन (१५० ई० पू०)

१ सामाजिक परिस्थिति

बुद्धके जन्मसे कुछ पहिले हीसे उत्तरी भारतके सामन्तोंने राज्य-विस्तारकेलिए युद्ध छेड़ने शुरू किये थे—दो-तीन पीढ़ी पहिले ही कोसलने काशी-जनपदको हड़प कर लिया था। बुद्धके समयमें ही बिंबिसारने अंगको भी मगधमें मिला लिया और उस समय विंध्यमें होती मगधकी सीमा अवन्ती (उज्जैन)के राज्यसे मिलती थी। वत्स (=कौशाम्बी, इलाहाबाद)का राज भी उस वक्तके सभ्य भारतके बड़े शासकोंमें था। कोसल, मगध, वत्स, अवन्तीके अतिरिक्त लिच्छवियों (वैशाली)का प्रजातंत्र पाँचवीं महान शक्ति थी। आर्य प्रदेशोंको विजय करते एक एक जन (=कबीले)के रूपमें बसे थे। आर्योंकी यह नई बस्तियाँ पहिलेसे बसे लोगों और स्वयं दूसरे आर्य जनोंके खूनी संघर्षोंके साथ मजबूत हुई थीं। कितनी ही सदियों तक राजतंत्र या प्रजातंत्रके रूपमें यह जन चले आये। उपनिषद्कालमें भी यह जन दिखाई पड़ते हैं यद्यपि जनतंत्रके रूपमें नहीं बल्कि अधिकतर सामन्ततंत्रके रूपमें। बुद्धके समय जनोंकी सीमाबंदियाँ टूट रही थीं, और काशि-कोसल, अंग-मगधकी भाँति अनेक जनपद मिलकर एक राज्य बन रहे थे। व्यापारी वर्गने व्यापारिक क्षेत्रमें इन सीमाओंको तोड़ना शुरू किया। एक नहीं अनेक राज्योंसे व्यापारिक संबंधके कारण उनका स्वार्थ उन्हें मजबूर कर रहा था, कि वह छोटे-छोटे स्वतंत्र जनपदोंकी जगह एक बड़ा राज्य कायम होनेमें मदद करें। मगधके धनंजय सेठ (विशाखाके पिता)को साकेत (=अयोध्या)में बड़ी कोठी कायम करते हम पहले[1] देख चुके हैं। जिस वक्त व्यापारी अपने व्यापार द्वारा, राजा अपनी सेना द्वारा जनपदोंकी सीमा तोड़नेमें लगे हुए थे, उस वक्त जो भी ज्ञान या धार्मिक विचार उसमें सहायता देते, उनका अधिक प्रचार

---

[1] "मानवसमाज" पृष्ठ १३६-३८

एक प्रख्यात विद्वान अश्वगुप्तके पास पहुँचे। अश्वगुप्त अभी इस नये विद्यार्थीकी विद्या बुद्धिकी परख कर ही रहे थे, कि एक दिन किसी गृहस्थके घर भोजनके उपरान्त कायदेके अनुसार दिया जानेवाला धर्मोपदेश नागसेनके जिम्मे पड़ा। नागसेनकी प्रतिभा उससे खुल गई और अश्वगुप्तने इस प्रतिभाशाली तरुणको और योग्य हाथोंमें सौंपनेके लिए पटना (=पाटलिपुत्र)के अशोकाराम विहारमें वास करनेवाले आचार्य धर्मरक्षितके पास भेज दिया। सौ योजनपर अवस्थित पटना पैदल जाना आसान काम न था किन्तु अब भिक्षु बराबर आते-जाते रहते थे, व्यापारियोंका साथ (=कारवाँ) भी एक-न-एक चलता ही रहता था। नागसेनको एक ऐसा ही कारवाँ मिल गया जिसके स्वामीने बड़ी खुशीसे इस तरुण विद्वानको खिलाते पिलाते साथ ले चलना स्वीकार किया।

अशोकाराममें आचार्य धर्मरक्षितके पास रहकर उन्होंने बौद्ध तत्व ज्ञान और पिटकका पूर्णतया अध्ययन किया। इसी बीच उन्हें पंजाबसे बुलौवा आया, और वह एक बार फिर रक्षिततलपर पहुँचे।

मिनान्दर (=मिलिन्द)का राज्य यमुनासे आमू (वक्षु) दरिया तक फैला हुआ था। यद्यपि उसकी एक राजधानी बलख (बाह्लीक) भी थी किन्तु हमारी इस परंपराके अनुसार मालूम होता है मुख्य राजधानी सागल (=स्यालकोट) नगरी थी। प्लूताक्र लिखता है कि—मिनान्दर बड़ा न्यायी, विद्वान और जनप्रिय राजा था। उसकी मृत्युके बाद उसकी हड्डियोंके लिए लोगोंमें लड़ाई छिड़ गई। लोगोंने उसकी हड्डियोंपर बड़े-बड़े स्तूप बनवाये। मिनान्दरको शास्त्रचर्चा और बहसकी बड़ी आदत थी, और साधारण पंडित उसके सामने नहीं टिक सकते थे। भिक्षुओंने कहा—'नागसेन! राजा मिलिन्द वाग्विवादमें प्रश्न पूछकर भिक्षु-संघको तंग करता और नीचा दिखाता है, जाओ तुम उस राजाका दमन करो।'

नागसेन संघके आज्ञाको स्वीकार कर सागल नगरके असंखेय्य नामक परिवेण (=मठ)में पहुँचे। कुछ ही समय पहिले वहाँके बड़े पंडित आयुपालको मिनान्दरने चुप कर दिया था। नागसेनके आनेकी खबर शहरमें

फैल गई। मिनान्डरने भारतके एक भारी देशभाग (=आज कल पंजाब) में शासन किया था। मिनान्डर एक दिन पाँच सौ यवनोंके साथ रथपर सवार हो वह संखेय्य परिवेण गया। वहाँ नमस्कार और अभिनन्दन कर बातें करने शुरू किए। इन्हीं प्रश्नोंके कारण इस ग्रन्थका नाम 'मिलिन्द प्रश्न' पड़ा। यद्यपि उसका पाली मिलिन्द-पञ्ह में छ परिच्छेद हैं, किन्तु उनमें पहिलेके तीन ही पुराने मालूम होते हैं, चीनी भाषामें भी इन्हीं तीन परिच्छेदोंका अनुवाद मिलता है। मिनान्डरने पहिले दिन संघमें जाकर नागसेनसे प्रश्न किये, दूसरे दिन उसे महलमें निमंत्रण कर प्रश्न पूछे।

४—दार्शनिक विचार

आगे उत्तरमें नागसेन बुद्धके दर्शन अनात्मवाद, कर्म या पुनर्जन्म, नाम-रूप (=मन और भौतिक तत्त्व), निर्वाण आदिकी व्याख्या करनेका प्रयत्न किया है।

(१) अनात्मवाद—मिनान्डरने पहिले बौद्धोंके अनात्मवादकी ही परीक्षा करनी चाही। उसने पूछा[1]—

(क) 'भन्ते (स्वामिन्)! आप किस नामसे जाने जाते हैं?'

नागसेन ... (मुझे) पुकारते हैं? ... किन्तु यह केवल व्यवहारके लिए संज्ञा भर है, क्योंकि यथार्थमें ऐसा कोई एक पुरुष (=आत्मा) नहीं है।

'भन्ते! यदि एक पुरुष नहीं है तो कौन आपको वस्त्र ... भोजन देता है? कौन उसका भोग करता है? कौन शील (=सदाचार)की रक्षा करता है? कौन ध्यान ... का अभ्यास करता है? कौन आर्यमार्गके फल निर्वाणका साक्षात्कार करता है? ... यदि ऐसी बात है तो न पाप है और न पुण्य, न पाप और पुण्यका कोई करनेवाला है ... न करानेवाला

---

[1] मिलिन्द प्रश्न, २।१ (अनुवाद, पृ० ३०-३४)

है। न पाप और पुण्य के फल [illegible] [illegible]
आपको कोई मार डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ। [illegible]
नागसेन क्या है ? क्या ये केश नागसेन हैं ?"

'नहीं महाराज !'

"ये रोयें नागसेन हैं ?'

"नहीं महाराज !"

"ये नख दांत, चमड़ा, मांस स्नायु, हड्डी, म[illegible]ा, [illegible], [illegible], [illegible],
क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस आंत पतली आंत पेट, [illegible], [illegible], [illegible]
पीव, लोहू, पसीना मेद, आंसू चर्बी राल [illegible], [illegible], [illegible]
नागसेन हैं ?'

'नहीं भन्ते !

क्या अक्ष रथ है ?'

नहीं भन्ते !'

क्या चक्के रथ है ?

नहीं भन्ते !"

क्या रथका पंजर रश्मियाँ लगाम चाबुक रथ है ?

नहीं भन्ते !

"महाराज ! क्या हरीस आदि सभी एक साथ रथ हैं ?'

नहीं भन्ते !'

"महाराज ! क्या हरीस आदिके परे कहीं रथ है ?'

नहीं भन्ते !'

महाराज ! मैं आपसे पूछते-पूछते थक गया किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है ? क्या रथ केवल एक शब्द मात्र है ? आखिर यह रथ है क्या ? आप झूठ बोलते हैं कि रथ नहीं है ! महाराज ! सारे जम्बूद्वीप (=भारत)के आप सबसे बड़े राजा हैं भला किससे डरकर आप झूठ बोलते हैं ?

'भन्ते नागसेन ! मैं झूठ नहीं बोलता। हरीस आदि रथके अवयवोंके आधारपर केवल व्यवहारकेलिए 'रथ' ऐसा एक नाम बोला जाता है।'

"महाराज ! बहुत ठीक आपने जान लिया कि रथ क्या है। इसी तरह मेरे केश आदिके आधारपर केवल व्यवहारकेलिए 'नागसेन' ऐसा एक नाम बोला जाता है। परन्तु परमार्थमें 'नागसेन' कोई एक पुरुष विद्यमान नहीं है। भिक्षुणी वज्राने भगवानके सामने इसीलिए कहा था—

'जैसे अवयवोंके आधारपर रथ संज्ञा होती है उसी तरह (रूप आदि) स्कंधोंके होनेसे एक सत्त्व (=जीव) समझा जाता है।' [1]

---

[1] संयुत्तनिकाय, ५।१०।६

लेकर अपने घरके उपरले छतपर जाय और भोजन करे। वह दीया जलता हुआ कुछ तिनकोंमें लग जाय। वे तिनके घरको (आग) लगा दें, और वह घर सारे गाँवको जला दे। गाँववाले उस आदमीको पकड़ कर कहें—'तुमने गाँवमें क्यों आग लगाई ?' इसपर वह कहे—'मैंने गाँवमें आग नहीं लगाई। उस दीयेकी आग दूसरी ही थी जिसकी रोशनीमें मैंने भोजन किया था, और वह आग दूसरी ही थी, जिसने गाँव जलाया। इस तरह आपसमें झगड़ा करते (यदि) वे आपके पास आवें, तो आप किधर फैसला देंगे ?'

"भन्ते ! गाँववालोंकी ओर ।"

"महाराज ! इसी तरह यद्यपि मृत्युके साथ एक नाम और रूपका लय होता है और उसके साथ दूसरा नाम और रूप उठ खड़ा होता है, किन्तु वह भी उसीसे होता है। इसलिए वह अपने कर्मोंसे मुक्त नहीं हुआ।'

"d *विवाहित कन्या*—महाराज ! कोई आदमी रुपया दे एक छोटीसी लड़कीसे विवाह कर, कहीं दूर चला जाये। कुछ दिनोंके बाद वह बढ़कर जवान हो जाय। तब कोई दूसरा आदमी रुपया देकर उससे विवाह कर ले। इसके बाद पहिला आदमी आकर कहे—'तुमने मेरी स्त्रीको क्यों निकाल लिया ?' इसपर वह ऐसा जवाब दे—'मैंने तुम्हारी स्त्रीको नहीं निकाला। वह छोटी लड़की दूसरी ही थी, जिसके साथ तुमने विवाह किया था और जिसके लिए रुपये दिये थे। यह सयानी, जवान औरत दूसरी ही है जिसके साथ कि मैंने विवाह किया है और जिसके लिए रुपये दिये हैं। अब यदि दोनों इस तरह झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे ?"

"—पहिले आदमीकी ओर। (क्योंकि) वही लड़की तो बढ़कर सयानी हुई।'

(घ)'—"भन्ते ! जो उत्पन्न है, वह वही व्यक्ति है या दूसरा ?"

चूंकि वह फिर भी जन्म ग्रहण करता है इसलिए (मुक्त) नहीं हुआ।"

उपमा देकर समझावें।'

a "आमकी चोरी'—कोई आदमी किसीका आम चुरा ले। उस आमका मालिक पकड़कर राजाके पास ले जाये—'राजन्! इसने मेरा आम चुराया है। इसपर वह (चोर) ऐसा कहे—'नहीं, मैंने इसके आमोंको नहीं चुराया है। इसने (जो आम लगाया था) वह दूसरा था और मैंने जो आम लिये वे दूसरे हैं। ' महाराज! अब बतावें कि उसे सजा मिलनी चाहिए या नहीं?

" सजा मिलनी चाहिए।

"सो क्यों?"

'भन्ते! वह ऐसा भले ही कहे, किन्तु पहिले आमको छोड़ दूसरे हीको चुरानेकेलिए उसे जरूर सजा मिलनी चाहिए।"

"महाराज! इसी तरह मनुष्य इस नाम और रूपसे पाप या पुण्य करता है। उन कर्मोंसे दूसरा नाम और रूप जन्मता है। इसलिए वह अपने कर्मोंसे मुक्त नहीं हुआ।

b "आगका प्रवास—महाराज! कोई आदमी जाड़ेमें आग जलाकर तापे और उसे बिना बुझाये छोड़कर चला जाये। वह आग किसी दूसरे आदमीके खेतको जला दे (पकड़कर राजाके पास ले जानेपर वह आदमी बोले—) मैंने इस खेतको नहीं जलाया। वह दूसरी ही आग थी जिसे मैंने जलाया था और वह दूसरी है जिससे खेत जला। मुझे सजा नहीं मिलनी चाहिए।' महाराज! उसे सजा मिलनी चाहिए या नहीं?'

' मिलनी चाहिए। उसीकी जलाई हुई आगने बढ़ते बढ़ते खेतको भी जला दिया। '

c "दीपकसे आग लगना—महाराज! कोई आदमी दीया

[1] वहीं, २।२।१४ (अनुवाद, पृष्ठ ५७-६०)

लेकर अपने घरके उपरले छतपर जाय और भोजन करे। वह दीया जलता हुआ कुछ तिनकोंमें लग जाय। वे तिनके घरको (आग) लगा दें, और वह घर सारे गांवको लगा दे। गांववाले उस आदमीको पकड़ कर कहें—'तुमने गाँवमें क्यों आग लगाई?' इसपर वह कहे—'मैंने गाँवमें आग नहीं लगाई। उस दीयेकी आग दूसरी ही थी जिसकी रोशनीमें मैंने भोजन किया था, और वह आग दूसरी ही थी जिसने गाँव जलाया। इस तरह आपसमें झगड़ा करते (यदि) वे आपके पास आवें, तो आप किधर फैसला देंगे?"

"भन्ते! गाँववालोंकी ओर।"

"महाराज! इसी तरह यद्यपि मृत्युके साथ एक नाम और रूपका लय होता है और जन्मके साथ दूसरा नाम और रूप उठ खड़ा होता है, किन्तु यह भी उसीसे होता है। इसलिए वह अपने कर्मोंसे मुक्त नहीं हुआ।"

'd विवाहित कन्या—महाराज! कोई आदमी रुपया दे एक छोटीसी लड़कीसे विवाह कर, कहीं दूर चला जाये। कुछ दिनोंके बाद वह बढ़कर जवान हो जाये। तब कोई दूसरा आदमी रुपया देकर उससे विवाह कर ले। इसके बाद पहिला आदमी आकर कहे—'तुमने मेरी स्त्रीको क्यों निकाल लिया?' इसपर वह ऐसा जवाब दे—'मैंने तुम्हारी स्त्रीको नहीं निकाला। वह छोटी लड़की दूसरी ही थी, जिसके साथ तुमने विवाह किया था और जिसके लिए रुपये दिये थे। यह सयानी, जवान औरत दूसरी ही है जिसके साथ मैंने विवाह किया है और जिसकेलिए रुपये दिये हैं। अब, यदि दोनों इस तरह झगड़ते हुए आपके पास आवें तो आप किधर फैसला देंगे?'

पहिले आदमीकी ओर। (क्योंकि) वही लड़की तो बढ़कर सयानी हुई।"

(घ)[1]—"भन्ते! जो उत्पन्न है, वह वही व्यक्ति है या दूसरा?"

---

[1]वहीं, २।२।६ (अनुवाद, पृ० ४६)

न वही और न दूसरा ही। (१) जब आप छोटा बच्चे थे और खाटपर चित्त ही लेट सकते थे, क्या आप अब इतने बड़े होकर भी वही हैं ?

नहीं भन्ते ! अब मैं दूसरा हो गया हूँ।

महाराज ! यदि आप वही बच्चा नहीं हैं, तो अब आपकी कोई माँ भी नहीं है, कोई पिता भी नहीं है, कोई गुरु भी नहीं। क्योंकि तब तो गर्भकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंकी भी भिन्न भिन्न माताएं होंगी। बड़े होनेपर माता भी भिन्न हो जायगी। शिल्प सीखनेवाला (विद्यार्थी) दूसरा और सीखकर तयार (हो जानेपर) दूसरा होगा। अपराध करनेवाला दूसरा होगा और (उसके लिए) हाथ-पैर किसी दूसरेका काटा जायगा।

भन्ते ! आप इससे क्या दिखाना चाहते हैं ?

महाराज ! मैं बचपनमें दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँ किन्तु यह सभी भिन्न भिन्न अवस्थाएं इस शरीरपर ही घटनेसे एक हीमें ले ली जाती हैं।

(२) यदि कोई आदमी दीया जलावे, तो वह रात भर जलता रहेगा न ?

' रातभर जलता रहेगा।

महाराज ! रातके पहिले पहरमें जो दीयेकी टेम थी। क्या वही दूसरे या तीसरे पहरमें भी बनी रहती है ?'

नहीं भन्ते !'

'महाराज ! तो क्या वह दीया पहिले पहरमें दूसरा, दूसरे और तीसरे पहरमें और हो जाता है ?'

'नहीं भन्ते ! वही दीया सारी रात जलता रहता है।

महाराज ! ठीक इसी तरह किसी वस्तुके अस्तित्वके सिलसिलेमें एक अवस्था उत्पन्न होती है एक लय होता है—और इस तरह प्रवाह जारी रहता है। एक प्रवाहकी दो अवस्थाओंमें एक क्षणका भी अन्तर

नहीं होता, क्योंकि एकके लय होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण न (वह) वही जीव है और न दूसरा ही हो जाता है। एक जन्मके **अन्तिम विज्ञान (=चेतना)के लय होते ही दूसरे जन्मका प्रथम विज्ञान** उठ खड़ा होता है।

(छ)[1]— "भन्ते! जब एक नाम रूपसे अच्छे या बुरे कर्म किये जाते हैं, तो वे कर्म कहाँ ठहरते हैं?"

"महाराज! कभी भी पीछा नहीं छोड़नेवाली छायाकी भाँति वे कर्म उसका पीछा करते हैं।"

"भन्ते! क्या वे कर्म दिखाये जा सकते हैं (कि) वह यहाँ ठहरे हैं?"

"महाराज! वे इस तरह नहीं दिखाये जा सकते। क्या कोई वृक्षके उन फलोंको दिखा सकता है जो अभी लगे ही नहीं?"

(३) नाम और रूप—बुद्धने विश्वके मूल तत्त्वोंको विज्ञान(=नाम) और भौतिक तत्त्व (=रूप)में बाँटा है, इनके बारेमें मिलिन्दने पूछा—

"भन्ते! नाम क्या चीज है और रूप क्या चीज?"

"महाराज! जितनी स्थूल चीजें हैं, सभी रूप हैं और जितने सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं, सभी नाम हैं। दोनों एक दूसरेके आश्रित हैं, एक दूसरेके बिना ठहर नहीं सकते। दोनों (सदा) साथ ही होते हैं। यदि मुर्गीके पेटमें (बीज रूपमें) बच्चा नहीं हो तो अंडा भी नहीं हो सकता, क्योंकि बच्चा और अंडा दोनों एक दूसरेपर आश्रित हैं। दोनों एक ही साथ होते हैं। यह (सदासे) होता चला आया है।"

(४) निर्वाण—मिलिन्दने निर्वाणके बारेमें पूछते हुए कहा[2]—

"भन्ते! क्या निरोध हो जाना ही निर्वाण है?"

"हाँ, महाराज! निरोध(=बन्द) हो जाना ही निर्वाण है। सभी अज्ञानी विषयोंके उपभोगमें लगे रहते हैं, उसीमें आनन्द लेते हैं, उसीमें डूबे रहते हैं। वे उसीकी धारामें पड़े रहते हैं, बार बार

[1] वहीं

[2] वहीं, ३।१।६ (अनुवाद, पृ० ८५)

जन्म ना बूढ़ा होने ... रोने पीटने शोक-क्रन्दन दुःख मनकी और परेशानीसे नहीं छूटते। (अज्ञ) दुःखसे नहीं छूटते हैं। महाराज! किन्तु ज्ञानी ... विषयों(=उपादान)में नहीं लगे रहते। इससे उनकी तृष्णाका निरोध हो जाता है। उपादानके निरोधसे भव(=आवागमन)का निरोध हो जाता है। भवके निरोधसे जन्मका रुक हो जाता है। (फिर) बूढ़ा होना, मरना, ... सभी दुःख रुक(=निरुद्ध)हो जाते हैं। महाराज! इस तरह निरोध हो जाना ही निर्वाण है।

[1] (बुद्ध) कहाँ?

"महाराज! भगवान् परम निर्वाणको प्राप्त हो गये हैं, जिससे कि उनके व्यक्तित्वको बताने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता ...।

"भन्ते! उपमा देकर समझायें।

'महाराज! क्या जलती हुई आगकी बुझी लपट, दिखाई जा सकती है ...?'

'नहीं भन्ते! वह लपट तो बुझ गई।'

नागसेनके अपने प्रश्नोत्तरोंमें बुद्धके दर्शनमें कोई नई बात नहीं जोड़ी, किन्तु उसको उस वक्तके भाषामें लिया यह उपरके उद्धरणसे स्पष्ट है। यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि नागसेनका अपना जन्म हिन्दी-यूनानी साम्राज्य और सभ्यताके केन्द्र स्यालकोट(=सागल)के पास हुआ था और भारतीय ज्ञानके साथ-साथ यूनानी ज्ञानका भी परिचय रखनेके कारण ही वह मिनान्दर जैसे तार्किकका समाधान कर सके थे। मिनान्दर और नागसेनका यह संवाद इतिहासकी उस विस्तृत घटनाका एक नमूना है जिसमें कि हिन्दू और यूनानी प्रतिभाएं मिलकर भारतमें नई विचार धाराओंको आरम्भ कर रही थीं।

---

[1] वहीं, ३।२।१८ (अनुवाद, पृ० ८१)

षोडश अध्याय

अनीश्वरवादी दर्शन

दर्शनका नया युग (२००-४००)

क बाह्य परिस्थिति

(सामाजिक स्थिति)—मौर्योके शासनके साथ कुमारी अन्तरीपसे हिमालय, सुवर्णभूमि (=बर्मा)की सीमासे हिंदूकुश तकका भारत एक शासनके सूत्रमें बँध गया, और इस विशाल साम्राज्यकी राजधानी पटना हुई। पटना नाम ही पत्तनसे बिगडकर बना है जिसका अर्थ होता है बन्दरगाह नावका घाट। पटना जिस तरह शासनकेन्द्र था, वैसेही वह व्यापारका केन्द्र था। यह भी हम बतला चुके है, कि किस तरह मगध की राजनीतिक प्रधानताके साथ वहाँके सब प्रिय धर्म—बौद्ध धर्म—ने भी अपने प्रभावका विस्तार किया। पाटलिपुत्र (=पटना) विद्वानोंकी परीक्षाका स्थान बन गया। यही पाणिनि (४०० ई० पू०) जैसे विद्वान सुपरीक्षित हो सारे भारतमें कीर्ति पाते थे। मिनान्दरके गुरु नागसेनका पटना (अशोकाराम)में आकर विद्याध्ययनकी बात हम कह चुके है। इतने बडे साम्राज्यमें एक राजकीय भाषा (=मागधी), एक तरहके सिक्के, एक तरहके नाप-तौल होनेसे भारतीय समाजमें एकता आने लगी थी। लेकिन यह एकता भीतर नही प्रवेश कर सकी, क्योंकि देशों, प्रदेशोंके छोटे-छोटे प्रजातत्रो और राजतंत्रोंके टूटते रहनेपर भी हर एक गाँव अपने स्वावलबी प्रजातत्र'के रूपको नही छोडना चाहता था।

मौर्य चन्द्रगुप्तने यूनानी शासनको भारतसे हटाया जरूर, किन्तु उससे यूनानी भारतसे नही हट सके। पजाबमें उनकी कितनी ही बस्तियाँ बसी हुई थी। हिन्दूकुश पारसे उनका विशाल राज्य शुरू होता था, जो कि मध्य-एसिया, ईरान, मसोपोतामिया क्षुद्र-एसिया होते मिश्र और

यूराप तक फैला हुआ था। सिकन्दरकी मृत्यु (३२३ ई० पू०)के साथ यद्यपि वह साम्राज्य टुकड़ोंमें बँटा जरूर, किन्तु तब भी उसकी शासनप्रणाली, सभ्यता आदि एकसी थी। मातृभूमि (यूनान) तथा एक दूसरेके साथ उनका व्यापारिक ही नहीं सामाजिक बौद्धिक घनिष्ट सम्बन्ध था। और मौर्य साम्राज्यके नष्ट होने ही यूनानी फिर हिन्दूकुश पार हो यमुना और नर्मदाके पश्चिमके भाग भारतपर स्थायी तौरसे अधिकार जमानेमें सफल हुए। इस वाक्का सम्पन्न करनेवाल यूनानी शासकोंमें मिनान्दर (१५० ई० पू०) प्रमुख और प्रथम था।[1] इन यूनानी शासकोंके मध्य एसियाई साम्राज्यमें शक, जट्ट, गुज्जर, आभीर आदि जातियाँ रहती थीं, इसलिए पश्चिमी भारतमें यूनानियोंके शासन स्थापित होनेपर यह जातियाँ भी आ आकर भारतमें बसने लगीं और आज भी उनकी सन्तानें पश्चिमी भारतकी आबादीमें काफी संख्या रखती हैं। इन जातियोंमें शक तो यूनानियोंके क्षत्रप (उपराज या वाइसराय) होकर मथुरा और उज्जैनमें रहते थे और यूनानियोंके शासनके उठ जानेपर स्वतन्त्र साम्राज्य कायम करनेमें समर्थ हुए। ईसाकी पहिली सदीमें शक सम्राट् कनिष्क प्राय सारे उत्तरी भारत और मध्य-एसिया तकका शासक था। शक तीसरी सदी तक गुजरात और उज्जैनपर शासन करते रहे। आभीर शकोंके प्रधान सेनापति तथा कभी-कभी स्वतन्त्र शासक भी बन थे। जायसवालके मतानुसार गुप्त राजवंश जाट या जट्ट था। अस्तु, यह तो साफ है कि जिस कालकी ओर हम आगे बढ़ रहे हैं, वह पश्चिमसे आनेवाली जातियोंके भारतमें भारी संख्यामें आकर भारतीय बन जानेका समय था। जातियोंके साथ नाना सभ्यताओं, नाना विचारोंका भारतमें सम्मिश्रण भी हो रहा था। इसी समय (१५० ई० पू०) भारतने यूनानी ज्योतिषसे—१२ राशियाँ होरा (=घंटा) फलित ज्योतिषका होडाचक्र[2] सीखा। गन्धार-मूर्तिकला

---

[1] राजधानी बाह्लीक (=बलख या बाख्तर)। [2] होडाचक्रकी वर्णमाला भारतीय (क-ख-ग) नहीं बल्कि यूनानी (अल्फा, बीता, गामा)है।

इसी कालकी देन है। इसी समय भारतीय कार्षापण चौकोरकी जगह यूनानी सिक्कोंकी तरह गोल और राजाके चित्रसे अंकित बनने लगे। यूनानी नाटकोंकी भाँति भारतीय नाटकोंका प्रथम प्रयास भी इसी समय शुरू हुआ,—उपलब्ध नाटक हम अश्वघोष (८० ई०)से पहिले नहीं ले जाते। दार्शनिक क्षेत्रमें भी इस कालकी देनमें प्राकृतिक परमाणुवाद विज्ञान-विशेष जातिवाद, उपादान-निमित्त-कारण द्रव्य-गुणपरिणाम-देश-काल वाद है जिनके बारेमें हम आगे कहेंगे।

इस राजनीतिक अन्तर्जातिक, सांस्कृतिक उथल-पुथलके जमाने (१ ई०)में यदि हम भारतीय समाजके आर्थिक वर्गोंकी ओर नजर दौड़ाते हैं, तो मालूम होता है—सबसे ऊपर एक छोटीसी संख्या देशीय या देशीय बन गये राजाओं उनके दरबारियोंकी है जो शारीरिक श्रम तथा उत्पादनके कामको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। जनताकी बड़ी संख्या इनकेलिए अच्छे-अच्छे खाने अच्छे अच्छे कपड़े देती है रहनेकेलिए बड़े-बड़े महल बनाती है, देश विदेशसे अधिकारपर संकट उपस्थित होनेपर सैनिक बन, हथियार उठा, उनके लिए अपना खून बहाने जाती है। और परिणाम ?—बाजकी भाँति शिकार मारकर फिर मालिकके हाथकी साँकलमें बँधना—फिर वही खून-पसीना एक करके मेहनत करके प्रभुओंके आगे—विलासकी सामग्री उपस्थित करना और खुद पेटके अन्न और तनके कपड़े बिना मरना।

इस शासक जमातके बाद दूसरी जमात थी धर्माचार्यों, भाँडों और धूर्तोंकी, जिनका काम था सामाजिक व्यवस्थाको विशृंखलित होनेसे रोकना, लोगोंको भ्रममें रखे रहना, अर्थात् "दुनिया ठगिए मक्करसे। रोटी खाइए घी शक्करसे।" इस जमातके आहार-विहारकेलिए भी उसी परिश्रमी भूखा मरती जनताको मेहनत करना पड़ता था।

तीसरी जमात व्यापारियोंकी थी जो कारीगरोंके मालको कम दामपर खरीद और ज्यादा दामपर बेंचते देश विदेशमें जल-स्थल मार्गसे व्यापार करते थे या सूदपर रुपया लगाते थे, और जिनकी करोड़ोंकी सम्पत्तिको देखकर राजा भी रश्क करते थे।

इन तीन कामचोर शोषक जमातके अतिरिक्त एक और जमात "ससार-त्यागियो की था जो अपनका वर्गोंसे ऊपर निष्पक्ष, निर्लोभ सत्यान्वेषी समभन थ। इनसे उस बहुसख्यक कर्मीवगको क्या मिलता था? ससार भूठा ह ससारकी वस्तुए भूठी ह, इसका समस्याए भूठी ह, इनकी ओरसे आख मून्ना हा अच्छा ह अथवा धनी गरीब भगवान्के बनाये ह, कमक सवार ह उनके भागकेलिए ईर्ष्या करनकी जरूरत नही, सन्तोष और धयस काम लो, जिन्दगा ही भर ता हु रह ह। गोया इस जमातका काम था श्रमिकका गालियापर गालियाँ खिलाकर धन उत्पादक निधन वगका बहाल रखना। साथ ही इस ससार त्यागी' वगको भी खाना, कपडा, मकान—और वाजोकेलिए वह राजाओमे कम खर्चीला नही—चाहिए जिसका भी बोझ उसी श्रमसे पिसे जाते वगपर था।

यह तो हुई कामचोर वगकी बात। कमकर वगका क्या काम था, इसका दिग्दशन कामचोर वगके साथ अभी कर चुके ह। लकिन, उनकी मुसीबतें वही खतम नहा होती थी। उनमें काफी सख्या एसे स्त्री-पुरुषोंकी थी जिनकी अवस्था पशुओंसे बहतर न था। दूसर सौदोंकी भाति उनकी खरीद फरोख्त हाती थी। य दास-दासी मनुष्यसे पशु होत तो ही वह तर था, क्योकि उस वक्त इनका अनुभव भी ता पशुओ जसा होता।

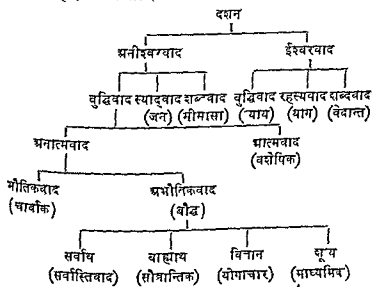
उस वक्तके दाशनिकोने ब्रह्म और निर्वाण तककी उडान लगाई, आत्मा परमात्मा तकका सक्ष्म विश्लेषण किया, किन्तु नब्बे सकडा जनताके पशुवत् जीवन, उसके उत्पीडन और शोषणके बारमें इमस अधिक नही बतलाया, कि यह अवश्य भव भोक्तव्य ह।

ख दर्शन-विभाग

विक्रम सवत (५७ ई० पू०), ईसवी सन् या शक सवत (७८ ई०)के शुरू हानेके साथ तीन शताब्दियोंके विचार-सघर्षोंसे धुध फटने लगती ह और उसके बीचमे नई धारा निकलती ह। पेशावरमें जो इस वक्त भारतके महान सम्राट कनिष्ककी राजधानी ही नही ह, बल्कि पूरब

(चीन), पश्चिम (ईरान और यूनान) तथा अपने (भारतके) विचारोंके सम्मिश्रणसे पैदा हुए नये प्रयोगकी नाप-तोल हो रही है। अश्वघोष संस्कृत काव्य-गगनमें एक महान् कवि और नाटककारके रूपमें आते हैं। इसी समयके आसपास गुणाढ्य अपनी बृहत्कथा लिखते हैं। चरक एक परिष्कृत आयुर्वेदका सम्पादन करते हैं। बौद्ध सभा बुला अपने त्रिपिटकपर नये भाष्य (=विभाषा) तैयार करवाते हैं।—उनके दर्शनमें विज्ञानवाद, शून्यवाद, बाह्यार्थवाद (=सौत्रान्तिक), और सर्वास्तिवादकी दार्शनिक धाराएँ स्पष्ट होने लगती हैं। लेकिन इस वक्तकी दुनिया इतनी ठोस न थी कि कालके थपेड़ोंसे बच रहता, न वह इतनी लोकोत्तर थी कि धार्मिक लोग बड़ी चेष्टाके साथ उन्हें सुरक्षित रखते।

दर्शनका नया युग नागार्जुनसे आरम्भ होता है, इस कालके दर्शनोंमें कितने ही ईश्वरवादी हैं और कितने ही अनीश्वरवादी, विश्लेषण करने पर हम उन्हें इस रूपमें पाते हैं—



अनीश्वरवादी दर्शन

§ १ अनात्म-भौतिकवादी चार्वाक दर्शन

चार्वाक दर्शनका हम पहिले जिक्र कर चुके हैं। बुद्धकालके बाद चार्वाक दर्शनके विकासका कोई क्रम हमें नहीं मिलता। साथ ही यह भी देखा जाता है कि उसकी तरफ सभी लज्जा और घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। अब पायासीकी तरह अपने भौतिकवादको छोड़नेमें भी शर्म महसूस करने की तो बात ही अलग, लोग चार्वाक शब्दको गाली समझते हैं। इसका यही अर्थ हो सकता है, कि जिनके हितके लिए परलोकवाद ईश्वरवाद आत्मवादका खंडन किया जाता था, वह भी विरोधियोंके बहकावेमें इतने आ गये थे कि अब उधर ध्यान ही देना पसन्द नहीं करते थे। तो भी इनके जिन विचारोंको खंडनके लिए विरोधी दार्शनिकोंने उद्धृत किया है, उससे मालूम होता है कि अन्तर्हित होते भी इस दर्शनने कुछ चेष्टा जरूर की थी। यहाँ संक्षेपमें हम इन भारतीय भौतिकवादियोंके विचारोंको रखते हैं—

१ चेतना (=जीव)—को चार्वाक भौतिक उपज मात्र मानते हैं—

"पृथिवी जल हवा, आग यह चार भूत हैं। (इन) चार भूतोंसे चेतना उत्पन्न होती है जैसे (उपयोगी सामग्री) से शराबकी शक्ति।"[1]

२ अन्-ईश्वरवाद—सृष्टिके निर्माताकी आवश्यकता नहीं, इसे बतलाते हुए कहा है—

"अग्नि गर्म पानी ठंडा, और हवा शीत-स्पर्शवाली।

यह सब किसने चित्रित किया? इसलिए (इसे) स्वभाव(से ही समझना चाहिए)।"[1] विश्वकी सृष्टि स्वभावसे ही होती है, इसके

---

[1] सर्वदर्शन-संग्रह, "कायादेव ततो ज्ञानं प्राणापानाद्यधिष्ठितात्।
युक्तं जायते इत्येतत् कम्बलाश्वतरोदितम्।"

लिए कर्त्ताको ढूँढना फजूल है—

"काँटोंमें तीखापन, मृगों या पक्षियोंमें विचित्रता कौन करता है ? यह (सब) स्वभावसे ही हो रहा है।"[1]

३ मिथ्याविश्वास-खंडन—मिथ्या विश्वासका खंडन करते हुए लिखा है—

"न स्वर्ग है, न अपवर्ग न परलोकमें जानेवाला आत्मा। वर्ण और आश्रम आदिकी (सारी) क्रियाएँ निष्फल हैं। अग्निहोत्र, तीनों वेद, बुद्धि और पौरुषसे जो हीन हैं, उन लोगोंकी जीविका है। "

'यदि ज्योतिष्टोम (यज्ञ)में मारा पशु स्वर्ग जायेगा तो उसके लिए यजमान अपने बापको क्यों नहीं मारता ? श्राद्ध यदि मृत प्राणियोंकी तृप्तिका कारण हो सकता है, तो यात्रापर जानेवाले व्यक्तिको पाथेयकी चिन्ता व्यर्थ है। यदि यह (जीव) देहसे निकलकर परलोक जाता है तो बन्धुओंके स्नेहसे व्याकुल हो क्यों नहीं फिर लौट आता ? मृतक श्राद्ध (आदि) ब्राह्मणोंने जीविकोपाय बनाया है।"[2]

४ नैराश्य वैराग्य-खंडन—'विषयके संसर्गसे होनेवाला सुख दुःखसे संयुक्त होनेके कारण त्याज्य है, यह मूर्खोंका विचार है। कौन हितार्थी है जो सफेद बढ़िया चावलवाले धानको तुष (=भूसी)से लिपटी होनेके कारण छोड़ देगा ?'[3]

§ २ अनात्म-अभौतिकवादी बौद्ध दर्शन

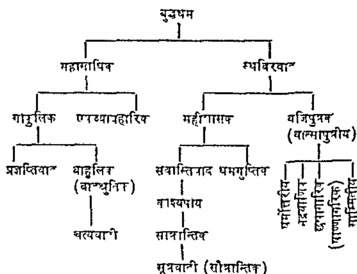
१ बौद्ध धार्मिक सम्प्रदाय—बुद्ध आत्मवादके सख्त विरोधी थे, फिर साथ ही वह भौतिकवादके भी खिलाफ थे, यह हम बतला चुके हैं। मौर्योंके शासनकालके अन्त तक मगध ही बौद्ध धर्मका केन्द्र था, किन्तु साम्राज्यके ध्वंसके साथ बौद्ध धर्मका केन्द्र भी कमसे कम उसकी

---

[1] सांख्यकारिकाकी माठरवृत्ति।

[2] सर्वदर्शनसंग्रह (चार्वाक-दर्शन)।

उनसे अधिक प्रभावशाली नागों (=शिवाय)—पूरबसे पश्चिमकी ओर को सतपर हुन्ने लगा। इसी स्थान-परिवर्तनमें सर्वास्तिवाद निकाय मगधसे उग्रमुंड पर्वत (=गोवर्धन मथुरा) पहुँचा, और यवन-शासन कालमें पंजाबमें जाकर [illegible] कनिष्कके समय ईसाकी पहिली सदीके मध्यमें गंधार-कश्मीर उसके प्रधान केन्द्र बन गये। यही जगह थी, जहाँ वह यूनानी विचार धारा घनिष्ठ संपर्कमें आया। अशोकके समय(२६९ ई० पू०)तक बौद्ध धर्म निम्न सम्प्रदायोंमें बँट चुका था[1]—



अर्थात्—बुद्धनिर्वाण (४८३ ई० पू०)के बादके सौ वर्षों (३८० ई० पू०)में स्थविरवाद (=बड़ोंके रास्ते वाले) और महासांघिक जो दो

[1] देखो मेरी "पुरातत्त्व निबंधावली", पृ० १२१ (और कथावत्थु अट्ठकथा भी)।

निकाय (=सम्प्रदाय) हुए थे, वह अगले सवा सौ वर्षोंमें बँटकर महासांघिकके छ और स्थविरवादके बारह कुल अठारह निकाय हो गए—सर्वास्तिवाद स्थविरवादियोंके अन्तर्गत था। इन अठारह निकायोंके पिटक (सूत्र, विनय अभिधर्म) भी थे, जो सूत्र और विनयमें बहुत कुछ समानता रखते थे किन्तु अभिधर्म पिटकमें मतभेद ही नहीं बल्कि उनकी पुस्तकें भी भिन्न थीं। स्थविरवादियोंने इन प्राचीन निकायोंमेंसे निम्न आठके कितने ही मतोंका अपने अभिधर्मकी पुस्तक 'कथावत्थु'में खंडन किया है—

महासांघिक, गोकुलिक काश्यपीय, भद्रयाणिक महीशासक वात्सीपुत्रीय, सर्वास्तिवाद, साम्मितीय।

कथावत्थुको अशोकके गुरु मोग्गलिपुत्त तिस्सकी कृति बतलाया जाता है, किन्तु उसमें वर्णित २१४ कथावस्तुओं (=वादके विषयों)में सिर्फ ७३ उन पुराने निकायोंसे संबंध रखते हैं[1] जो कि मोग्गलिपुत्त तिस्सके समय तक मौजूद थे—अर्थात् उसका इतना ही भाग मोग्गलिपुत्तका बनाया हो सकता है। बाकी "कथावस्तु" अशोकके बादके निम्न आठ निकायोंसे संबंध रखती है—

(१) अन्धक (२) अपरशैलीय, (३) पूर्वशैलीय, (४) राजगिरिक, (५) सिद्धार्थक (६) वैपुल्यवाद, (७) उत्तरापथक, (८) हेतुवाद।

२ बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय—इन पुराने निकायोंके दार्शनिक विचारोंमें जानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वह "दिग्दर्शन के कलेवरसे बाहर की बात है, किन्तु इतना स्मरण रखना चाहिए कि बौद्धोंके जो चार दार्शनिक सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं, उनमें (१) सर्वास्तिवाद और (२) सौत्रान्तिक दर्शन तो पुराने अठारह निकायोंसे संबंध रखते थे, बाकी (३) योगाचार और (४) माध्यमिक अठारह निकायोंसे बहुत पीछे ईसाकी पहिली सदीमें आदिम रूपमें आए। इनके विकासके क्रमके बारेमें हम 'महायान बौद्ध धर्मकी उत्पत्ति'"में लिख चुके हैं। महासांघिकोंमें

---

[1] देखो यहीं, पृ० १२६, टिप्पणी भी।

एक निकायका नाम था चैत्यवाद जिसका केन्द्र आन्ध्र साम्राज्यमें धान्यकटकका महाचैत्य (=महास्तूप) था, इसीसे इसका नाम ही चैत्यवाद पड़ा। आन्ध्र साम्राज्यके पश्चिमी भाग (वर्तमान महाराष्ट्र) में साम्मितीय निकायका जोर था। इन्हीं शाखा निकायोंसे आगे चलकर महायानका विकास किस प्रकार हुआ—[1]

ई० पू० ३ सदी साम्मितीय = [illegible] (महासांघिक)

|

अन्धक (=आन्ध्रवाद)

ई० पू० १ सदी चैत्यक | पूर्वशैलीय | अपरशैलीय | राजगिरिक | सिद्धार्थक

|

ईसवी १ सदी महायान

योगाचारका जबर्दस्त समर्थक लंकावतार-सूत्र वैपुल्यवादी पिटकसे संबंध रखता है। नागार्जुनके माध्यमिक (=शून्य) वादके समर्थनमें प्रज्ञापारमिता तथा दूसरे सूत्र रचे गये, किन्तु नागार्जुनका अपना दर्शन। पुष्टिके लिए इनकी जरूरत न था, उन्होंने तो अपने दर्शनको प्रतीत्य-समुत्पाद (विच्छिन्न=प्रवाहरूपेण उत्पत्ति) पर आधारित किया था।

कथावत्थुके अर्वाचीन निकायोंमें हमने उत्तरापथक और हेतुवादी का भी नाम पढ़ा है। उत्तरापथक कश्मीर-गंधारका निकाय था इसमें सन्देह नहीं। किन्तु हेतुवादके स्थानके बारेमें हमें मालूम नहीं। अपनानेके विज्ञानवादको प्रतीत्य-समुत्पादसे जोड़ देनेपर वह आसानीसे योगाचार विज्ञानवाद बन जाता है, किन्तु अभी हमारे पास इससे अधिक प्रमाण नहीं है कि उसके दार्शनिक असंगका जन्म और कर्म स्थान पेशावर (गंधार) था। नागार्जुनके बाद बौद्धदर्शनके विकासमें सबसे जबर्दस्त हाथ असंग और वसु

---

[1] वहीं, पृ० १२७

बधु इन दो पठान भाइयोंका था। नागार्जुनसे एक शताब्दी पहिलेके जबर्दस्त बौद्ध विचारक अश्वघोषको यदि हम लें, तो उनका भी जन्मस्थान पेशावर (गंधार) ही मालूम होता है। इससे भी बौद्ध दर्शनपर यूनानी प्रभावका पड़ना जरूरी मालूम होता है। अश्वघोषको महायानी अपने आचार्योंमें शामिल करते हैं, और इसके सबूतमें "महायानश्रद्धोत्पाद" ग्रंथको उनकी कृतिके तौरपर पेश करते हैं, किन्तु जिन्होंने 'बुद्धचरित', 'सौन्दरानंद', "सारिपुत्त प्रकरण" जैसे काव्य नाटकोंको पढ़ा है, तिब्बती भाषामें अनूदित उनके सर्वास्तिवादी सूत्रोंपर व्याख्याएँ देखी हैं, और जो सर्वास्तिवादी आचार्यों को चैत्य बनाकर अर्पित करनेवाले तथा त्रिपिटककी व्याख्या ("विभाषा")केलिए सर्वास्तिवादी आचार्योंकी परिषद् बुलानेवाले महाराज कनिष्कपर विचार करते हैं, वह अश्वघोषको सर्वास्तिवादी[1] स्थविर छोड़ दूसरा कह नहीं सकते।

अस्तु! यूनानी तथा शक कालके इन बौद्ध प्राचीन निकायोंपर यदि और रोशनी डाली जा सके, तो हम उन्हींके नहीं भारतीय दर्शनके एक भारी विकासके इतिहासके बारेमें बहुत कुछ मालूम हो सकेगा। किन्तु, चीनी तिब्बती अनुवाद तथा गोबीकी मरुभूमि हमारी इस विषयमें कितनी मदद कर सकती है, यह आगेके अनुसंधानका विषय है। अभी हम इससे ज्यादा नहीं कहना है कि भारतीय और यूनानी विचारधाराओंका जो समागम गंधारमें हो रहा था, उसमें अश्वघोष अपने आधुनिक ढंगके काव्यों और नाटकों ही नहीं बल्कि नवीन दर्शनको भी यूनानसे मिलानेवाली कड़ी थे। उनसे किसी तरह नागार्जुनका संबंध हुआ। फिर नागार्जुनने वह दर्शन चक्रप्रवर्त्तन किया, जिसने भारतीय दर्शनोंको एक अभिनव सुव्यवस्थित रूप दिया।

---

[1] पोइ-लड (तिब्बत)में सुरक्षित एक संस्कृत ताल पत्रकी पुस्तककी पुष्पिकामें अश्वघोषको सर्वास्तिवादी भिक्षु भी लिखा मिला है। (देखो J B O R S में मेरे प्रकाशित सूचीपत्रोंको)।

३ नागार्जुन (१७५ ई०)का शून्यवाद

(१) जीवनी—नागार्जुनका जन्म विदर्भ (=बरार)में एक ब्राह्मणके घर हुआ था। उनके बारेमें हम अनुमान कर सकते हैं, कि वह एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे, ब्राह्मणोंके ग्रंथोंका गम्भीर अध्ययन किया था। भिक्षु बननेपर उन्होंने बौद्ध ग्रंथोंका भी उसी गंभीरताके साथ अध्ययन किया। आगे चलकर उन्होंने श्रीपर्वत (=नागार्जुनी कोंडा गुंटूर)का अपना निवास स्थान बनाया, जो कि उनकी ख्याति, तथा समय बीतनेके साथ गढ़े जानेवाले पँवारोंके कारण सिद्ध-स्थान बन गया। नागार्जुन वैद्यक और रसायन शास्त्रके भी आचार्य बतलाये जाते हैं[1] उनका अष्टांगहृदय ग्रंथ भी तिब्बतके वैद्योंकी सबसे प्रामाणिक पुस्तक है। किन्तु नागार्जुनकी सिद्धाई तथा तंत्र मंत्रके बनाने बढ़ानेकी बातें जो हम पीछेके बौद्ध साहित्यमें मिलती हैं, उनसे हमारे दार्शनिक नागार्जुनका कोई संबंध नहीं।

नागार्जुन आंध्रराजा गौतमीपुत्र यज्ञश्री (१६६-१९६ ई०)के समकालीन थे विन्टरनिन्ज़का यह मत युक्तियुक्त मालूम होता है।

नागार्जुनके नामसे वैसे बहुतसे ग्रंथ प्रसिद्ध हैं किन्तु उनकी असली कृतियाँ हैं—

(१) माध्यमिककारिका, (२) युक्तिषष्ठिका, (३) प्रमाणविध्वंसन, (४) उपायकौशल्य, (५) विग्रहव्यावर्त्तनी[2]।

इनमें सिर्फ दो—पहिली और पाँचवीं ही मूल संस्कृतमें उपलब्ध हैं।

(२) दार्शनिक विचार—नागार्जुनने विग्रहव्यावर्त्तनीमें विरोधी तर्कोंका खंडन करके कान्टके वस्तु-सारमें उलटे वस्तु शून्यता—वस्तुओंके

---

[1] History of Indian literature, Vol II, pp 346-48

[2] Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Patna Vol XXIII में मेरे द्वारा संपादित।

भीतर कोई स्थिर तत्त्व नहीं वह विच्छिन्न प्रवाह मात्र है—सिद्धि की है।

(क) शून्यता—नागार्जुनको कारिका शैलीका प्रवर्तक कहा जाता है। कारिकामें पद्यकी-सी स्मरण करने तथा सूत्रकी भांति अधिक बातोंको थोडे शब्दोंमें कहनेकी सुविधा होती है। कमसे कम नागार्जुनके तीन ग्रंथ (१ २, ५) कारिकाओंमें ही हैं। "विग्रहव्यावर्तनी" में ७२ कारिकाएं हैं, जिनमें अन्तिम दो माहात्म्य और नमस्कार श्लोक है, इसलिए मूलग्रंथ सत्तर ही कारिकाओंका हुआ। वह शून्यतापर है, इसलिए जान पड़ता है विग्रह-व्यावर्तनका ही दूसरा नाम "शून्यता सप्तति" है। इन कारिकाओंपर आचार्यने स्वयं सरल व्याख्या की है।

नागार्जुनने ग्रंथके आदिमें नमस्कार श्लोक और ग्रंथ-प्रयोजन नहीं दिया है, जो कि पीछेके बौद्ध अबौद्ध ग्रंथोंमें सर्वमान्य परिपाटी सी बन गई देखी जाती है। नागार्जुनने ७१वीं कारिकामें शून्यताका माहात्म्य बतलाते हुए लिखा है—

> जो इस शून्यताको समझ सकता है, वह सभी अर्थोंको समझ सकता है।
> जो शून्यताको नहीं समझता वह कुछ भी नहीं समझ सकता॥"[1]

इसकी व्याख्यामें आचार्यने बतलाया है कि जो शून्यताको समझता है, वह प्रतीत्य-समुत्पाद (=विच्छिन्न प्रवाहके तौरपर उत्पत्ति)को समझ सकता है प्रतीत्य-समुत्पाद समझनेवाला चारों आर्यसत्योंको समझ सकता है। चारों सत्योंके समझनेपर उसे तृष्णा निरोध (=निर्वाण) आदि पदार्थोंकी प्राप्ति हो सकती है। प्रतीत्य-समुत्पाद जाननेवाला जान सकता है कि क्या धर्म है, क्या धर्मका हेतु और क्या धर्मका फल है। वह जान सकता है कि अधर्म, अधर्म-हेतु, अधर्म फल क्या है क्लेश (चित्तमल), क्लेश हेतु क्लेश वस्तु क्या है। जिसे यह सब मालूम है वह जान सकता है कि क्या है सुगति या दुर्गति, क्या है सुगति-दुर्गतिमें जाना क्या है सुगति-

---

[1] "प्रभवति च शून्यतेयं यस्य प्रभवन्ति तस्य सर्वार्थाः।
प्रभवति न तस्य किंचित् न भवति शून्यता यस्य॥"

दुर्गतिमें जानेका मार्ग क्या है ? सुगति-दुर्गतिसे निकलनेका क्या उपाय।

शून्यताके नागार्जुनके अर्थ हैं प्रतीत्यसमुत्पाद[1]—जिस और उससे सारी तरह नाना वस्तुएं निर्मित हैं, जिनके अपना तत्व (=आत्मा, द्रव्य आदि) से बिल्कुल शून्य है। अर्थात् जिन वस्तुओंके वस्तु सत्ता नहीं। माध्यमिक अपने सर्वोत्कृष्ट पहिली वीस कारिकाओंमें पूर्वपक्षके आक्षेपोंको लिया है, और अंतके उत्तरार्द्धमें उनका उत्तर देते हुए शून्यवादका समर्थन किया है। संक्षेप में उनका वाद-प्रणाली इस प्रकार है—

पूर्वपक्ष—(१) वस्तुओंका स्वभाव—अर्थात् शून्यवाद ठीक नहीं है क्योंकि (i) जिन शब्दोंका तुम युक्तिके तौरपर इस्तेमाल करते हो, वह भी शून्य—अभाव—होगा, (ii) यदि नहीं तो तुम्हारी पहिली बात—सभी वस्तुएं शून्य हैं—झूठी होगी (iii) शून्यताको सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं।

(२) सभी भाव (=वस्तुएं) वास्तविक हैं, क्योंकि, (i) सत्के द्वारा बदलता सभी स्वीकार करते हैं (ii) जो वस्तु है नहीं उसका नाम ही नहीं मिलता (iii) वास्तविकताका प्रतिषेध असिद्ध नहीं (iv) प्रतिषेधका भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

उत्तरपक्ष—(१) सभी भावों (=सत्ताओं) की शून्यता या प्रतीत्य समुत्पाद (=विच्छिन्न प्रवाहके रूपमें उत्पत्ति) सिद्ध है, क्योंकि, (i) किन्हीं भी वस्तुओंकी वास्तविकताका स्वीकार शून्यता सिद्धान्तके विरुद्ध नहीं है (ii) इसलिए यह हमारी प्रतिज्ञाके विरुद्ध नहीं (iii) जिन प्रमाणोंसे भावोंकी वास्तविकता सिद्ध की जा सकती है, उन्हींका सिद्ध नहीं किया जा सकता—(a) न प्रमाण दूसरे प्रमाणसे सिद्ध किया जा सकता क्योंकि ऐसी अवस्था

---

[1] विग्रहव्यावर्तनी २२—"इह हि य प्रतीत्य भावानां भाव सा शून्यता। कस्मात ? नि स्वभावत्वात्। ये हि प्रतीत्य समुत्पन्ना भावास्ते न सस्वभावा भवन्ति स्वभावाभावात्। कस्मात ? हेतुप्रत्ययापेक्षत्वात। यदि हि स्वभावतो भावा भवेयु। प्रत्याख्यायापि हेतुप्रत्ययं भवेयु।"

म वह प्रमाण न्ही प्रमेय (=जिसे अभी प्रमाणसे सिद्ध करना है) हो जायगा, (b) वह आगकी भाँति अपनको सिद्ध कर सकता है (c) न वह प्रमेयसे सिद्ध किया जा सकता ह क्योंकि प्रमेय तो स्वयं ही सिद्ध नहीं साध्य है, (d) न वह संयोग (=इत्तिफाक) से सिद्ध किया जा सकता है क्योंकि संयोग कोई प्रमाण नहीं है।

(२) भावों (=सत्ताओं) की शून्यता सत्य है, क्योंकि (i) यह अच्छे बुरेके भेदके खिलाफ नहीं है वह भेद तो स्वयं प्रतीत्य-समुत्पादके कारण ही है। यदि प्रतीत्य समुत्पादके आधारपर नहीं बल्कि स्वतः परमार्थरूपेण अच्छे बुरेका भेद हो, तो वह अचल एकरस है फिर ब्रह्मचर्य आदिके अनुष्ठान द्वारा इच्छानुकूल उसे बदला नहीं जा सकता, (ii) शून्यता होनेपर नाम नहीं हो सकता यह भी ख्याल गलत है, क्योंकि नामको हम सद्भूत नहीं असद्भूत मानते हैं। सत (=स्थिर अविकारी वस्तुसार) का ही नाम हो, असतका नहीं यह कोई नियम नहीं (iii) प्रतिषेध नहीं सिद्ध किया जा सकता यह कहना गलत है, क्योंकि अप्रतिषेधको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण आदिकी जरूरत पड़ेगी।

अक्षपादके न्यायसूत्रका प्रमाण सिद्धि प्रकरण तथा विग्रह-व्यावर्त्तिनी एक ही विषयके पक्ष प्रति-पक्ष हैं। हम अन्यत्र[1] बतला चुके हैं कि अक्षपादने अपने न्यायसूत्रमें नागार्जुनके उपरोक्त मतका खंडन किया है।

पुस्तकको समाप्त करते हुए नागार्जुनने कहा है—

"जिसने शून्यता प्रतीत्य समुत्पाद और अनेक अर्थोवाली मध्यमा प्रतिपद् (=बीचके मार्ग) को कहा उस अप्रतिम बुद्धको प्रणाम करता हूँ।"[2]

[1] विग्रहव्यावर्त्तनीकी भूमिका (Preface) में हम बतला आये हैं कि अक्षपादने नागार्जुनके इसी मतका खंडन किया है।

[2] वि० व्या० ७२—

"यः शून्यतां प्रतीत्यसमुत्पादं मध्यमां प्रतिपदमनेकार्थाम्।
निजगाद प्रणमामि तमप्रतिमसंबुद्धम्॥"

कभी भी कोई सत्ता न स्वतः है, न परतः, न स्वतः परतः दोनों, और न बिना हेतुके ही है।[1]

कार्य-कारण संबंधका खंडन करते हुए नागार्जुनने लिखा है—

यदि पदार्थ सत् है, तो उसके लिए प्रत्यय (=कारण)की जरूरत नहीं। यदि अ-सत् है तो भी उसके लिए प्रत्ययकी जरूरत नहीं।

(खरहेके सींगकी भाँति) अ-सत् पदार्थके लिए प्रत्ययकी क्या जरूरत? सत् पदार्थको (अपनी सत्ताके लिए) प्रत्ययकी क्या जरूरत?[2]

उत्पत्ति स्थिति और विनाशको सिद्ध करनेके लिए कार्य-कारण, सत्ता असत्ता आदिके विवेचनमें पड़कर आखिर हमें यही मालूम होता है कि वह परस्पराश्रित है, ऐसी अवस्थामें उन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता। बौद्ध-दर्शनमें पदार्थोंको संस्कृत (=कृत) और अ-संस्कृत (अ-कृत) दो भागोंमें बाँटकर सारी सत्ताओंको संस्कृत और निर्वाणको असंस्कृत कहा गया है। नागार्जुनने इस संस्कृत असंस्कृत विभागपर प्रहार करते हुए कहा है—

"उत्पत्ति स्थिति विनाशके सिद्ध होनेपर संस्कृत नहीं (सिद्ध) होगा। संस्कृतके सिद्ध हुए बिना अ-संस्कृत कैसे सिद्ध होगा?"[3]

जगत् और उसके पदार्थोंकी मरुमरीचिका बतलाते हुए नागार्जुनने लिखा है[4]—

"(रश्मिस्थानकी) लहरको पानी समझकर भी यदि वहाँ जाकर पुरुष 'यह जल नहीं है' समझे तो वह मूढ़ है। उसी तरह मरीचि समान (इस) लोकको 'है' समझनेवालेका 'नहीं है' यह मोह भी मोह होनेसे युक्त नहीं है।"

जिस तरह पराश्रित उत्पाद (=प्रतीत्य-समुत्पाद) होनेसे किसी वस्तुको सिद्ध, असिद्ध, सिद्ध-असिद्ध, न सिद्ध-न असिद्ध नहीं किया जा सकता, उसी तरह प्रतीत्य-समुत्पादका अर्थ विच्छिन्न प्रवाह रूपसे उत्पाद लेनेपर वहाँ

---

[1] मध्य० का० ४ [2] वहीं २२ [3] वहीं ५६ [4] वहीं ५६

भी कार्य, कारण, कर्म, कर्ता आदि व्यवस्था नहीं हो सकती, क्योंकि उनमेंसे एक वस्तु दूसरेके बिलकुल उच्छिन्न हो जानेपर अस्तित्वमें आती है।

(ग) शिक्षायें—आन्ध्रवंशी राजाओंकी पदवी शातवाहन (शालिवाहन[1] भी) होती थी। तत्कालीन शातवाहन राजा (यज्ञश्री गौतमी पुत्र) नागार्जुनका "सुहृद्" था। यह सुहृद् राजा साधारण नहीं भारी राजा था, यह नागार्जुनसे चार सदी बाद हुये बाणके हर्षचरितके इस वाक्यसे पता लगता है[2]—'नागार्जुन नामक भिक्षुने उस एकावली (हार)को नागराजसे माँगा और पाया भी। (फिर) उसे (अपने) सुहृद तीन समुद्रोंके स्वामी शातवाहन नामक नरेन्द्रको दिया।

यहाँ शातवाहनको तीनों समुद्रों (अरब सागर, दक्षिण भारत सागर, बंग-खाड़ी)का स्वामी तथा नागार्जुनका सुहृद् बतलाया गया है। नागार्जुन जैसा प्रतिभाशाली विद्वान् जिसके राज्य (=विदेश)में पैदा हुआ तथा रहता हो, वह उससे क्या नहीं सौहार्द प्रदर्शन करेगा? नागार्जुनने अपने सुहृद् शातवाहन राजाको एक शिक्षापूर्ण पत्र 'सुहृद्-लेख' लिखा था जिसका अनुवाद तिब्बती तथा चीनी दोनों भाषाओंमें अब भी सुरक्षित है। इस लेखमें नागार्जुनने जो शिक्षायें अपने सुहृद्को दी हैं, उनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

'६ धनको चचल और असार समझ धर्मानुसार उसे भिक्षुओं, ब्राह्मणों, गरीबों और मित्रोंको दो ... परलोकमें दानसे बढ़कर दूसरा मित्र नहीं है।'

---

[1] बस राजपूत अपनेको सालवाहन वंशज तथा पठन नगरसे आया बतलाते हैं। पठन या प्रतिष्ठान (हैदराबाद रियासत) नगर शातवाहन राजाओंकी राजधानी थी।

[2] "तामेकावलीं तस्मान्नागराजात् नागार्जुनो नाम भिक्षुरभिक्षत् लेभे च। त्रिसमुद्राधिपतये शातवाहननाम्ने नरेन्द्राय सुहृदे स ददौ ताम।'

—हर्षचरित ७

७ निर्वाण उत्तम, अनिमित्त, निरानन्द, शीत(=शान्ताकार)को (ज्ञानयान) प्राप्त करना गया अभूतपूर्व आधार नहीं है जो कि घराजरको आधार करती है।

२१ दूसरेकी स्त्रीको नजर न डालो। यदि ऐसा हो तो आयुके अनुसार उसे माँ, बहिन या बेटीकी तरह समझो।

२६ तुम अपने पालन हो, संसारकी आठ स्थितियाँ—लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा—में समान भाव रखो क्योंकि यह तुम्हारे चित्तके विषय नहीं हैं।

३७ किन्तु उस एक स्त्री (अपनी पत्नी)का परिवारकी अधिष्ठात्री देवीकी भाँति सम्मान करना जो कि बहिनकी भाँति मंजुल, मित्रकी भाँति विजयिनी, माताकी भाँति हितैषिणी, सेवककी भाँति आज्ञाकारिणी है।

'४६ यदि तुम मानते हो कि 'मैं रूप (=भौतिकतत्त्व) नहीं हूँ, तो इससे तुम समझ जाओगे कि रूप आत्मा नहीं है, आत्मा रूपमें नहीं है, रूप आत्मा (=मन)में नहीं बसता। इसी तरह दूसरे (वेदना आदि) चार स्कंधोंके बारेमें भी जानो।

"५० ये स्कंध न इच्छासे, न कालसे, न प्रकृतिसे, न स्वभावसे, न ईश्वरसे और न बिना हेतुके पैदा होते हैं; समझो कि वे अविद्या और तृष्णासे उत्पन्न होते हैं।

५२ जानो कि धार्मिक क्रिया-कर्म (=शीलव्रतपरामर्श), झूठा दर्शन (=सत्कायदृष्टि) और संदेह (विचिकित्सा)में आसक्ति तीन बेड़ियाँ (=संयोजन)[1] हैं।

नागार्जुनका दर्शन—शून्यवाद—वास्तविकताका अपलाप करता है। दुनियाको शून्य मानकर उसकी समस्याओंके अस्तित्वसे इनकार करनेके लिए इससे बढ़कर दर्शन नहीं मिलेगा? इसीलिए आश्चर्य

[1] देखो संगीति-परियायसुत्त (दी० नि०, ३।१०) "बुद्धचर्या", पृष्ठ ५१०

नहीं, यदि ऐसा दार्शनिक सम्राट यज्ञश्री गौतमीपुत्रका घनिष्ट मित्र (=सुहृद) था।

४–योगाचार और दूसरे बौद्ध-दर्शन

माध्यमिक और योगाचार महायानसे संबंध रखनेवाले दर्शन हैं, जब कि सर्वास्तिवाद और सौत्रान्तिक हीनयान (=स्थविरवाद)से संबंध रखते हैं। इन चारों बौद्ध दर्शनोंके यदि आचार्यों, दर्शनों और नाम दें तो वह इस प्रकार मालूम होंगे—

	वाद	नाम	आचार्य
१	शून्यवाद	माध्यमिक	नागार्जुन, आर्यदेव, चन्द्रकीर्ति, भव्य, बुद्धपालित
२	विज्ञानवाद	योगाचार	असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित
३	बाह्य अर्थवाद	सौत्रान्तिक	
४	बाह्य आभ्यन्तर अर्थवाद	सर्वास्तिवाद	संघभद्र, वसुबन्धु (का अभिधर्मकोश)

योगाचार दर्शनके मूल बीज वैपुल्यसूत्रोंमें मिलते हैं। उनके लंकावतार, संधिनिर्मोचन आदि सूत्र बाह्य जगतके अस्तित्वसे इन्कार करते हुए विज्ञान (=अभौतिक तत्त्व, मन)को एकमात्र पदार्थ मानते हैं। 'जो क्षणिक नहीं वह सत् ही नहीं' इस सूत्रका अपवाद बौद्धदर्शनमें हो नहीं सकता, इसलिए योगाचार विज्ञान भी क्षणिक है। दूसरी कितनीही विचार धाराओंकी भाँति योगाचारके प्रथम प्रवर्तकके बारेमें भी हम कुछ नहीं मालूम है। चौथी सदी तक यह दर्शन जिस किसी तरह चलता रहा, किन्तु चौथी सदीके उत्तरार्द्धमें असंग और वसुबन्धु दो दार्शनिक भाई पेशावरमें पैदा हुए, जिनके प्रौढ़ ग्रंथोंके कारण यह दर्शन अत्यन्त प्रबल और प्रसिद्ध हो गया।

योगाचार योगावचर (=योगी) शब्दसे निकला है, जो कि पुराने पिटकमें भी मिलता है, किन्तु यहाँ यह दार्शनिक सम्प्रदायके नामके तौर

पर प्रसंग आने। १। इस नामके पड़नेका एक कारण यह भी है कि योगाचार द्वारा प्रतिपादित आद्य असंगका मौलिक महान् ग्रंथ योगाचारभूमि है। असंगके बारेमें हम आगे कहेंगे। यहाँ नागार्जुन और उनसे पहिले जैसा विज्ञानवाद माना जाता था और जिसपर गंधार प्रवासी यूनानियों द्वारा अफलातूनी दर्शनका प्रभाव जरूर पड़ा था उसके बारेमें कुछ कहते हैं।

"आलय विज्ञान (समुद्र) से प्रवृत्तिविज्ञानकी तरंग उत्पन्न होती है।"[2]

चित्त मन तत्त्वको इस दर्शनकी परिभाषामें आलयविज्ञान कहा गया है। विज्ञान समुद्रसे जो पाँचो इन्द्रियों और मनके—ये छ विज्ञान उत्पन्न होते हैं उन्हें प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं।[3]—

जैसे पवन रूपी प्रत्यय (=हेतु) से प्रेरित हो समुद्रसे नाचती हुई तरंगें पैदा होती हैं और उनके (प्रवाहका) विच्छेद नहीं होता। उसी तरह विषय रूपी पवनसे प्रेरित चित्त विचित्र नाचता हुआ विज्ञान-तरंगोंके साथ आलय समुद्र सदा क्रियापरायण रहता है।

अर्थात् भीतरी सब पदार्थ (=अभौतिक विज्ञान) पदार्थ हैं, वही बाहरकी तरह दिखलाई पड़ता है। स्कंध प्रत्यय (=हेतु), अणु भौतिक तत्त्व सभी विज्ञान मात्र हैं। यह आलयविज्ञान भी प्रतीत्य-समुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाहके तौरपर उत्पन्न), क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। क्षणिकताके कारण उसे हर वक्त नया रूप धारण करते रहना पड़ता है, जिसके ही कारण यह जगत् वैचित्र्य है।

सर्वास्तिवादका वही सिद्धान्त है जिसे हम बुद्धके दर्शनमें बतला आये हैं, वह बाह्य रूप, आन्तरिक **विज्ञान** दोनोंकी प्रतीत्य-समुत्पन्न सत्ताको स्वीकार करता है।

सौत्रान्तिक अपनेको बुद्धके सूत्रों (सूत्रों या उपदेशों) का अनुयायी बतलाते हैं। वह बाह्य विज्ञानवादके उलटे बाह्यार्थवादी हैं अर्थात् क्षणिक रूप ही मौलिक तत्त्व है।

---

[1] देखो प्रमाण पृष्ठ ७०४-३७ [2] लंकावतारसूत्र ५१ [3] वहीं

§३–आत्मवादी दर्शन

अनीश्वरवादी स्थानोंमें चार्वाक और बौद्ध अनात्मवादी हैं, उनके बारेमें हम बतला चुके। दर्शनके इस नवीन युगमें कुछ ऐसे भी भारतीय दर्शन रहे हैं, जो कि ईश्वरपर तो जोर नहीं देते किन्तु आत्माको स्वीकार करते रहे हैं। वैशेषिक ऐसा ही आत्मवादी दर्शन है।

१–परमाणुवादी कणाद (१५० ई०)

क. कणादका काल—वैशेषिक दर्शनके कर्त्ता कणाद थे। ब्राह्मणोंके छ दर्शनोंके कर्त्ताओंकी जीवनी और समयके बारेमें जो घना अन्धकार देखा जाता है, वह कणादके बारेमें भी वैसा ही है। कणादके जीवनके बारेमें हम इतना ही जानते हैं कि वह गिरे हुए दाना (=कणा)को खाकर जीवन यात्रा करते थे इसीलिए उनका नाम कणाद (=कण खाद) पड़ा। लेकिन यह सूचना शायद ऐतिहासिक स्रोतसे नहीं बल्कि व्याकरणसे मिली व्याख्याके आधार पर है। वैशेषिकका दूसरा नाम औलूक्य दर्शन भी है। वैशेषिकके कर्ता या सृष्टिसे उलूक (=उल्लू) पक्षीका क्या संबंध था यह नहीं कहा जा सकता। कणादका दूसरा नाम उलूक होता यदि वे सरस्वती (=विद्या)के नहीं बल्कि लक्ष्मी (=धन)के स्वामी होते। उलूक कोई अच्छा पक्षी नहीं कि माता पिता या मित्र-सुहृद इस नामसे कणादको याद करते। उल्ल अथेन्स (यूनान)में पवित्र चिह्न था, क्या इस दर्शनका यूनानी दर्शनसे जो घनिष्ट संबंध है उसे ही तो उलूक शब्द सूचित नहीं करता?

ख. यूनानी दर्शन और वैशेषिक—देवलीकी इस मरुस्थली कारामें जितनी कम सामग्रीके साथ मुझे यह पंक्तियां लिखनी पड़ रही हैं, उसको विवक्ताको सहृदय पाठक जान सकते हैं। तो भी यूनानी दार्शनिकोंके मूल अनुवादोंको पढ़कर तुलना कर फिर कुछ विस्तृत तौरपर लिखनेके ख्यालपर इसे छोड़ देना अच्छा नहीं है, इसलिए यहाँ हम ऐसे कुछ हिन्दू-यवन सिद्धान्तोंके बारेमें लिखते हैं।

a परमाणुवाद—देमाक्रितु (४६० ३७० ई० पू०)का जन्म कणादसे पिताग (४८२ ई० पू०)के ?? बाद पैदा हुआ था। यह वह समय है जब हखामनी सम्राटों-आसमनी, बुद्ध, महावीर (जातिपुत्र) तथा बुद्ध-महावीर आदि ?? ?? ?? ?? ?? निर्भर थी। इस भारतीयों में ईरानके ?? ?? जानकारी ?? ?? ?? नहीं मिलती। देमाक्रितुने जिस तरह प्रतिभाका प्रकाश—परमाणु—का सिद्धान्त निकाला, उस तरह भारतमें उसका ?? ?? ?? ?? ?? है। देमाक्रितु परमाणुओंको मात्र सूक्ष्म तत्त्व मानता था, किन्तु साथ ही उनके परिमाणके इसने स्वीकार नहीं करता था। कणाद भी परमाणुको सूक्ष्म परिमाणवाला कहकर समान ?। ?? ही परमाणुओंको सृष्टिके निर्माणकी इकाई मानते हैं।

b सामान्य विशेष—विभाजन (१७० ४०० ई० पू०)में पाइथि का मतलब माना था ?? भिन्न भिन्न पदार्थोंके नाम भी हर चीजमें ?? ?? मौजूद रहती है। अफलातूं (४२७ ३४७ ई० पू०)ने भाग भाग बढ़कर बराबर ?? जानवरों आकृतियों को समानता=सामान्य है ?? और ?? लिया उसके स्थानमें विशेष मूलतत्त्व (=विज्ञान)में ?? हुआ है। यह सामान्य विशेषकी कल्पना अफलातूंने पश्चिम पहिले की थी। यवनोंके भारतमें शासन स्थापित करने (३२३ ई० पू०)में पहिले भारतीय साहित्यमें इस ख्याल का बिलकुल अभाव ?।

c द्रव्य, गुण आदि—कणादने अपने दर्शनमें विश्वके तत्त्वोंका—द्रव्य गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय इन छै पदार्थोंमें वर्गीकरण किया है। अफलातूंके शिष्य अरस्तू (३८४–३२२ ई० पू०)ने अपने तर्क शास्त्रमें आठ और दस पदार्थ माने हैं—द्रव्य गुण परिमाण संबंध, दिशा काल आसन स्थिति कर्म परिणाम। द्रव्य गुण कर्म, संबंध (समवाय) दोनोंके मतमें समान है। दिशा और कालको कणादने द्रव्योंमें गिना है और परिमाणको गुणोंमें। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि कणादने अरस्तूके पदार्थोंका वर्गीकरण फिरसे किया।

इन बातोंके साथ काल और भारतके यूनानसे घनिष्ट संबंध तथा सांस्कृतिक दानादानको देखते हुए यह आसानीसे समझमें आ सकता है कि ये सादृश्य आकस्मिक नहीं है।

कणादके वैशेषिक दर्शनको बुद्धसे पहिले ले जानेका प्रयास फजूल है, कणादका दर्शन यदि पहिलेसे मौजूद होता तो बुद्ध तथा दूसरे समकालीन दार्शनिकोंको त्रिपिटक और जैनागमोंकी भाषा-परिभाषाके द्वारा अपने दर्शनोंका न आरंभ करनेकी जरूरत थी और न वह कणादके दर्शनके प्रभावसे अछूते रह सकते थे।

कणादके दर्शनपर बौद्ध दर्शनका कोई प्रभाव नहीं है यह कहते हुए कितने ही विद्वान् वैशेषिकको बुद्धसे पहिले खींचना चाहते हैं। इसके उत्तरमें हम अभी कह चुके हैं कि (१) बुद्धके दर्शनमें उसकी गंध तक नहीं है। (२) कणादका दर्शन बौद्ध दर्शनसे अप्रभावित नहीं है। आत्मा और नित्यताकी सिद्धिपर इतना जोर आखिर किसके प्रहारके उत्तरमें दिया गया है? यह निश्चय ही बुद्धके अनित्य अनात्मके विरुद्ध कणादकी दार्शनिक जहाद है। यूनानी दर्शनमें भी हेराक्लितु (५३५-४२५ ई० पू०)के अनित्यतावादके उत्तरमें नित्य सामान्यकी कल्पना पेश की गई थी, कणाद और उनके अनुयायियोंका शताब्दियों तक उसी सामान्यको नित्यताके नमूनेके तौरपर पेश करना बौद्धोंके अनित्य (=क्षणिक)वादके उत्तरमें ही था और इस तरह वैशेषिक बौद्ध दर्शनसे परिचित नहीं यह बात गलत है।

नागार्जुनसे कणाद पहिले थे, यद्यपि इसके बारेमें अभी कोई पक्की बात नहीं कही जा सकती किन्तु जिस तरह हम कणादको नागार्जुनके प्रमाण विध्वंसनके बारेमें चुप देखते हैं उससे यही कहना पड़ता है कि शायद कणादको नागार्जुनके विचार नहीं मालूम थे।

ग. **वैशेषिकसूत्रोंका संक्षेप**—कणादने अपने ग्रंथ—वैशेषिक सूत्र—को दस अध्यायोंमें लिखा है, हर एक अध्यायमें दो-दो आह्निक हैं। अध्यायों और आह्निकोंके प्रतिपाद्य विषय निम्न प्रकार हैं—

गुण, कर्म—इन तीन पदार्थों तक दृष्ट हेतुओंका प्रवेश है, इनसे अन्यत्र अदृष्टका सहारा लेना पड़ता है।

एक बार जब अदृष्टकी मिल्कियत कायम हो गई, तो फिर उससे धर्म, रूढ़ि, वर्ग-स्वार्थ सभीको कितना पुष्ट किया जा सकता है, इसे हम कान्ट आदि पाश्चात्य दार्शनिकोंके प्रसंगमें देख चुके हैं। पाँचवें अध्यायके स्मार्त आह्निकमें उस समयके अज्ञात कारणवाली कितनी ही भौतिक घटनाओंकी व्याख्या अदृष्ट द्वारा करनेकी कोशिश की गई है। पुरोहितोंके विहित ही यज्ञ-याग, स्नान, ब्रह्मचर्य, गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान आदि क्रिया-कर्मोंका जो फल बतलाया जाता है, उसे बुद्धिसे नहीं साबित किया जा सकता, इनके लिए हमें अदृष्टपर बस ही विश्वास रखना चाहिए, जैसे कि अनुभव द्वारा नहीं, वचनपर हमें विश्वास करना पड़ता है।

आचार भी धर्मका अंग है। शुद्ध आहार वह है, जो कि यज्ञ करानेके बाद बच रहता है, जो आहार ऐसा नहीं है वह अशुद्ध है।

ङ. **दार्शनिक विचार**—इस तरह कणादने धर्मके पुष्ट करनेकी प्रतिज्ञा पूरा करनेकी चेष्टा जरूर की है, किन्तु सारे ग्रंथमें उसकी मात्रा इतनी कम और दलील इतनी निर्बल है, कि किसी ब्राह्मणको यह कहना भी पड़ा[1]—

'धर्मं व्याख्यातुकामस्य षट्पदार्थोपवर्णनम्।
हिमवद्गन्तुकामस्य सागरगमनोपमम्॥

[धर्मकी व्याख्याकी इच्छा रखनेवाले (कणाद)का छ पदार्थोंका वर्णन वैसा ही है जैसा हिमालय जानेकी इच्छावालेका समुद्रकी ओर जाना।]

(a) पदार्थ—अरस्तूने जिस तरह अपने तर्कशास्त्रमें पदार्थोंको

---

[1] कलाप व्याकरणकी कोई पुरानी टीका —History of Indian Philosophy, (by S N Das-Gupta)में उद्धृत।

गिनाया है, उसी तरह कणादने भी विश्वके तत्त्वोंको छ पदार्थोंमें विभाजित किया है। वे हैं—

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय।

(a) द्रव्य—चल विश्वकी तहमें जो अचल या बहुत कुछ अचल तत्त्व हैं उन्हें कणादने द्रव्य कहा है। जो आज ईंट, घड़े, सिकोरे हैं, वे कल टूटकर घिसते घिसते धूलि बन जाते हैं, फिर उन्हें हम ईंटों और बर्तनोंके रूपमें बदल सकते हैं। इन सब तब्दीलियोंमें जो वस्तु एकसी रहती है वही है पृथिवी द्रव्य। कणादने नौ द्रव्य माने हैं—

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा (=देश) आत्मा और मन।

इनमें पहिले चार भौतिक तत्त्व और अपने मूलरूपमें अत्यन्त सूक्ष्म अविभाज्य, अवध्य अनेक परमाणुओंमें विभक्त रहते हैं। आकाश, काल, दिशा और आत्मा अभौतिक तथा सर्वत्र व्यापी तत्त्व हैं। मन भी अतिसूक्ष्म अभौतिक कण (=अणुपरिमाणवाला) है।

(b) गुण—गुण सदा किसी द्रव्यमें रहता है। जैसे—

द्रव्य	विशेषगुण	सामान्य गुण		
१ पृथिवी	गंध	रस रूप स्पर्श	संयोग, विभाग	संख्या परिमाण पृथक्त्व
२ जल	रस	रस रूप स्पर्श तरलता स्निग्धता		
३ अग्नि	रूप	रूप स्पर्श		
४ वायु	स्पर्श	स्पर्श		
५ आकाश	शब्द	शब्द		
६ काल			परत्व, अपरत्व	
७ दिशा			परत्व, अपरत्व	
८ आत्मा				

[1] पीछेके न्याय वैशेषिकने अभावको और जोड़ सात पदार्थ माने हैं।

कणादने सिर्फ ग्यारह गुण माने थे—

(१) रूप (७) पृथक्त्व (=अलगापन)
(२) रस (८) संयोग (=जुड़ना)
(३) गंध (९) विभाग
(४) स्पर्श (=सर्दी गर्मी) (१०) परत्व (=पर होना)
(५) संख्या (११) अपरत्व (=उरे होना)
(६) परिमाण

किन्तु पीछेके आचार्योंने १३ और जोड़ गुणोंकी संख्या चौबीस कर दी है—

(१२) बुद्धि (=ज्ञान) (१८) गुरुत्व (=भारीपन)
(१३) सुख (१९) लघुत्व (हल्कापन)
(१४) दुःख (२०) द्रवत्व (=तरलता)
(१५) इच्छा (२१) स्नेह (=जोड़नेका गुण)
(१६) द्वेष (२२) संस्कार
(१७) प्रयत्न (२३) अदृष्ट (=अलौकिक शक्तिमत्ता)
(२४) शब्द

इनमें द्रवत्व, स्नेह और शब्दको कणादने जल और आकाशके गुणोंमें गिना है। गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द—विशेष गुण कहे गये हैं, क्योंकि ये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाशके क्रमशः अपने अपने विशेष गुण हैं।[1]

(c) कर्म—कर्म क्रिया(=गति)को कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं—

---

[1] "वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश।
दिक्-कालयोः पंच षडेव चाम्बरे महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च॥"

(१) उत्क्षेपण (=ऊपरकी ओर गति)
(२) अपक्षेपण (=नीचेकी ओर गति)
(३) आकुंचन (=सिकुड़ना)
(४) प्रसारण (=चारों ओर फैलना)
(५) गमन (=सामनेकी गति)

द्रव्य गुण, और कर्मपर दृष्ट वस्तुओंका प्रयोग होता है यह बतला चुके है। इन तीनोंको हम निम्न समान रूपमें पाते है—

(१) सत्ता(=अस्तित्व)वाले
(२) अनित्य
(३) द्रव्य
(४) कार्य
(५) कारण
(६) सामान्य
(७) विशेष

गुण और कर्म सदा किसी द्रव्यमें रहते है, इसलिए द्रव्यको गुण कर्मोंका समवायि (=नित्य) कारण कहते है। गुण की विशेषता यह है, कि वह किसी दूसरे गुण और कर्ममें नहीं होता।

(d) सामान्य—अनेक द्रव्योंमें रहनेवाला नित्य पदार्थ सामान्य है, जैसे पृथिवीत्व (=पृथिवीपन) अनेक पार्थिव द्रव्योंमें गोत्व (=गायपन)

अर्थात्—

द्रव्य	गुण-संख्या	द्रव्य	गुण-संख्या
(१) पृथिवी	१४	(६) काल	५
(२) जल	१४	(७) दिशा	५
(३) अग्नि	११	(८) आत्मा	१४
(४) वायु	९	(९) मन	८
(५) आकाश	६		

महेश्वर (=ईश्वर)को पीछेके ग्रंथकारोंने आठ गुणोंवाला माना है, किन्तु कणादके सूत्रोंमें ईश्वरके लिए कोई स्थान नहीं, वहाँ तो ईश्वर का काम अदृष्टसे लिया गया है।

है। सामान्य व्यक्तियोंसे भिन्न पदार्थ है। सारे मनुष्य मात्र, गाय में [illegible] सामान्य [illegible] गोत्व सामान्य [illegible]। यह सामान्य बातें सामान्य विशेष [illegible] , जैसे और धातुओं सामान्य भी [illegible] इस प्रकार गोत्व [illegible] है।

(८) विशेष—व्यक्तिरूप। पृथिवी, जल, वायु, आकाश सूक्ष्मतम (परमाणु) में [illegible] है उसे विशेष कहा है। विशेष [illegible] रहता और वह स्वयं भी नित्य है। इसी विशेषके प्रतिपादनके कारण कणादके शास्त्रका नाम वैशेषिक पड़ा।

(९) समवाय—वस्तुओंके भीतर नित्य संबंधको समवाय कहते हैं। द्रव्यके साथ उसके गुण कर्म समवाय संबंधसे संबद्ध हैं—जातिवाले [illegible] समवाय संबंध रहता है। सामान्य (=जाति आदि) भी [illegible] गुण कर्ममें समवाय (=नित्य) संबंध रहता है।

(ख) द्रव्य—[illegible] जिस उसके गुण हैं। बाकी द्रव्योंमें आकाश वायु और [illegible] है [illegible] हैं। क्योंकि [illegible] निष्क्रिय भी माना [illegible]। [illegible] और निष्क्रिय [illegible] इसका कैसे सिद्ध किया जा सकता है—इस प्रश्नका उत्तर आसान नहीं था। कणादका कहना है—शब्द एक गुण है जो प्रत्यक्ष सिद्ध है। गुण द्रव्यके बिना नहीं रह सकता [illegible] और [illegible] जाना नहीं जा सकता, इसलिए एक [illegible] द्रव्यकी [illegible] जो कि आकाश है। कणादको यह नहीं मालूम था कि [illegible] जगह में [illegible]।

(१) काल[1]—[illegible] एक साथ (=यौगपद्य), [illegible] सिद्ध बात है इसका कोई [illegible] होना चाहिए इसी आपेक्षाका काल कहा जाता है। कालका जबर्दस्त खण्डन बौद्धोंने किया है जो बहुत कुछ आधुनिक सापेक्षतावादकी तरहका है, इसे हम आगे कहेंगे[2]। कणादने समय व्यवहारकी आसानीके लिए जो कितनी ही युक्तिरहित धारणाएं

---

[1] सत्या [2] देखो, धर्मकीर्ति पृष्ठ ७४०

फली हुई थी उनसे भी उन्हें अपने वाल्का अग बनाया।

(b) दिशा—दूर और नजदीकका ख्याल जो देखा जाता है उसका भी कोई आश्रय होना चाहिए और वही दिशा (=देश) द्रव्य है। साप क्षता'में हम देख चुके हैं, और आगे धर्मकीर्तिके दर्शनमें भी देखेंगे कि देश या दिशा व्यवहार-सत्य हो सकती है किन्तु एस निष्क्रिय अदृष्ट तत्त्वका परमार्थ-सत्य सिर्फ श्रद्धावश ही माना जा सकता है।

(c) आत्मा—(१) इन्द्रिया और विषयोंके सपर्कसे हमें जो ज्ञान होता है, उसका आधार इन्द्रिय या विषय नहीं हो सकते क्योंकि वे दोनों ही भौतिक—जड़—हैं। ज्ञानका अधिकरण (=काश) आत्मा है। (२) जीवितावस्थामें शरीरमें गति और मृतावस्थामें गतिका बन्द होना भी बतलाता है कि गति देनेवाला कोई पदार्थ है जो आत्मा है। (३) श्वास प्रश्वास आँखका निमेष उन्मेष मनकी गति सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न शरीरके रहते भी जिसके अभावमें नहीं होते वह आत्मा है। दूसरे आत्मवादियोंकी भाँति कणाद शब्द (=वेद धार्मिक ग्रथ)के प्रमाणसे आत्माको सिद्ध कर सकते थे किन्तु शब्द प्रमाणपर जिस तरहका प्रहार उस वक्त पड रहा था उससे उन्होंने उसपर ज्यादा जोर नहीं दिया। उन्होंने यह भी कहा कि (४) आत्मा प्रत्यक्ष सिद्ध है, जिसे 'मै' (=अहं) कहा जाता है वह किसी पदार्थका वाचक है, और वही पदार्थ आत्मा है। इस प्रकार यद्यपि आत्मा प्रत्यक्ष सिद्ध है तो भी अनुमान उसकी और पुष्टि करता है। सुख दुःख, ज्ञानकी निष्पत्ति (=उत्पत्ति) सबके एकसी होनेसे (सभी आत्माओं)की एक आत्मता (=एक आत्माकी व्यापकता) है तो भी सबका सुख दुःख, न्यारा अलग अलग होता है जिससे सिद्ध है, कि आत्मा एक नहीं अनेक है। शास्त्र (=वेद आदि) भी इस मतकी पुष्टि करते हैं।

(d) मन—अणु(=सूक्ष्म) परिमाणवाला तथा प्रत्येक आत्माका

---

[1] देखो, "विश्वकी रूपरेखा"।

अलग अलग है। कई इन्द्रियों और विषयोंका सन्निकर्ष हो चुका है, आत्मा भी व्यापक होनेसे वहाँ मौजूद है, तो भी अनेक इन्द्रियाँ आत्माके साथ मिलकर अनेक विषयोंका ज्ञान नहीं करा सकतीं, एक बार एक विषयका ही ज्ञान होता है, इससे मालूम होता है कि इन तीनोंके रहते कोई एक चौथी चीज (आत्माकी शक्तिको सीमित करनेवाली) है, जो अणु होनेसे सिर्फ एक इन्द्रिय विषय-संपर्कपर ही पहुँच सकती है, यही मन है। मन प्रत्यक्षका विषय नहीं है, इसलिए एक बार एक ही विषयका ज्ञान होनेसे उसका हम अनुमान कर सकते हैं।

(ग) अन्य विषय—छ पदार्थोंके अतिरिक्त कुछ और बातोंपर कणादने प्रसंगवश विचार किये हैं। जैसे—

(क) अभाव—अभावको यद्यपि कणादने अपने पिछले अनुयायियोंकी भाँति पदार्थोंमें नहीं गिना है, तो भी उन्होंने उसका प्रतिपादन जरूर किया है। अभाव अ-सत् = अविद्यमानको कहते हैं। अभाव गुण और क्रियासे रहित है। सिर्फ क्रियासे रहित इसलिए नहीं कहा, क्योंकि वैसा करनेपर आकाश, काल और दिशा भी अभावमें शामिल हो जाते, इसलिए कणादने उन्हें कोई न कोई गुण देकर भाव पदार्थोंमें शामिल किया। अभाव चार प्रकारके होते हैं (१) **प्राग्-अभाव**—उत्पत्तिसे पहिले उस वस्तुका न होना प्राग्-अभाव है, जैसे बननेसे पहिले घड़ा। (२) **ध्वंस अभाव**—ध्वंस हो जानेपर जो अभाव होता है, जैसे टूट जानेके बाद घड़ेकी अवस्था। (३) **अन्योन्य अभाव**—भाववान् पदार्थ भी एक दूसरेके तौरपर अभाव रूप है, घड़ा कपड़ेके तौरपर अभाव रूप है, कपड़ा घड़ेके तौरपर अभाव रूप है। (४) **सामान्य अभाव** (=अत्यंताभाव)—किसी देश-कालमें वस्तुका न होना सामान्याभाव है, जैसे गदहेकी सींग, बाँझका बच्चा। अभाव कभी वस्तुकी स्मृतिकी सहायतासे अभावको प्रत्यक्ष किया जा सकता है। स्मृति अभावके प्रतियोगी (=जिसका कि वह अभाव है उस) वस्तुका चित्र सामने उपस्थित करती है, जिससे हम अभावका साक्षात्कार करते हैं।

(b) नित्यता—जो सत् (=भाव रूप) है और बिना कारणका है, वह नित्य है। जैसे कार्य (=धूए)से कारण (=आग)का अनुमान होता है, उसी अभावसे भावका अनुमान होता है, उसी तरह अनित्यसे नित्यका अनुमान होता है। कणाद, देमोक्रितुके मतानुसार बाहरसे निरन्तर परिवर्तन होती दुनियाकी तहमें अचल, अपरिवर्तन-शील, नित्य परमाणुओंको देखते हैं। पृथिवी जल, तेज वायु ये चारों भूत परमाणु रूपमें नित्य हैं। इन्हीं नेत्र अगोचर सूक्ष्मकणोंके मिलनेसे आँखसे दिखाई देनेवाले अथवा शरीरके स्पर्शसे मालूम होनेवाले स्थूल महाभूत पैदा होते हैं। मन भी अणु तथा नित्य है। आकाश, काल, दिक्, आत्मा सर्व-व्यापी (=विभु) होते नित्य हैं। इस प्रकार कणादके मतमें परिवर्तन अनित्यता या क्षणिकता बाहरी दिखावा मात्र है, नहीं, तो विश्व वस्तुतः नित्य है—अर्थात् अनित्यता अवास्तविक है और नित्यता वास्तविक। यह सीधे बौद्धदर्शनके अनित्यता (=क्षणिक)वादका जवाब नहीं तो और क्या है? कणादका मुख्य प्रयोजन ही मालूम होता है, बौद्ध क्षणिकवादको देमोक्रितुके परमाणुवाद अफलातूंके सामान्यवाद तथा अरस्तूके द्रव्य आदि पदार्थवादकी सहायतासे खंडित करना। कणादने यूनानियोंके दर्शनका प्रयोग पूरीतौरसे अपने मतलबके लिए किया, इसमें सन्देह नहीं।

(c) प्रमाण—वैशेषिक दर्शनकी पदार्थोंकी विवेचना मुख्यतः थी पदार्थोंके नित्य और अनित्य रूपों एवं दृष्ट और अदृष्ट (=शास्त्र) हेतुओंसे उन रूपोंकी सिद्धिके लिए। किन्तु किसी वस्तुकी सिद्धिके लिए प्रमाण-पर कुछ कहना जरूरी था, इसीलिए विशदतौरसे नहीं बल्कि प्रसंगवश प्रमाणोंपर भी वैशेषिकसूत्रोंमें कुछ कहा गया। यहाँ सभी प्रमाणोंका एक जगह क्रमबद्ध विवेचन नहीं है तो भी सब मिलानेपर प्रत्यक्ष, अनुमान ये दृष्ट प्रमाण वहाँ मिलते हैं। (१) साथ ही कणाद कितनी ही बातोंके लिए शास्त्र या शब्दप्रमाणको भी मानते हैं। (२) नवें अध्यायके प्रथम आह्निकमें वस्तुके साक्षात्कार करनेके लिए योगीकी विशेष शक्तिका भी जिक्र आता है जिससे मालूम होता है, कि यौगिक शक्तिको कणाद

अलग अलग । कई इन्द्रियों और विषयोंका सन्निकर्ष हो चुका है, आत्मा भी व्यापक होनेसे वहाँ मौजूद है तो भी एक साथ इन्द्रियाँ आत्माके साथ मिलकर अनेक विषयोंका ज्ञान नहीं करा सकतीं। एक बार एक विषयका ही ज्ञान होता है। इससे मालूम होता है कि इन तीनोंके अतिरिक्त कोई एक चौथी चीज (आत्माकी शक्तिको सीमित करनेवाली) है, जो अणु होनेसे एक समय एक इन्द्रिय विषय-संयोगपर ही पहुँच सकती है, वही मन है। मन अणु परिमाणवाला है, इसलिए एक बार एक ही विषयका ज्ञान होनेसे उसका हम अनुमान कर सकते हैं।

(ग) अन्य विषय—छै पदार्थोंके अतिरिक्त कुछ और बातोंपर कणादने प्रसंगवश विचार किये हैं। जैसे—

(१) अभाव—अभावको यद्यपि कणादने अपने द्रव्य आदियोंकी भाँति पदार्थोंमें नहीं गिना, तो भी उन्होंने उसका प्रतिपादन जरूर किया है। अभाव असत् या अविद्यमानको कहते हैं। अभाव गुण और क्रियासे रहित है। सिर्फ क्रियासे रहित इसलिए नहीं कहा, क्योंकि वैसा करनेपर आकाश, काल और दिशा भी अभावमें शामिल हो जाते, इसलिए कणादने उन्हें बाद न कोई गुण देकर भाव-पदार्थोंमें शामिल किया। अभाव चार प्रकारके होते हैं। (१) प्राग् अभाव—उत्पत्तिसे पहिले उस वस्तुका न होना प्राग् अभाव है, जैसे बनानेसे पहिले घड़ा। (२) ध्वंस अभाव—ध्वंस हो जानेपर जो अभाव होता है, जैसे टूट जानेके बाद घड़ेकी अवस्था। (३) अन्योन्य अभाव—भावमान पदार्थ भी एक दूसरेके तौरपर अभाव रूप हैं, घड़ा कपड़ेके तौरपर अभाव रूप है, कपड़ा घड़ेके तौरपर अभाव रूप है। (४) सामान्य अभाव (=अत्यन्ताभाव)—किसी देश-कालमें वस्तुका न होना सामान्याभाव है, जैसे गदहेकी सींग, बाँझका बेटा। अभाव उस वस्तुकी स्मृतिकी सहायतासे अभावका प्रत्यक्ष किया जा सकता है। स्मृति अभावके प्रतियोगी (=जिसका कि वह अभाव है उस) वस्तुका चित्र सामने उपस्थित करती है जिससे हम अभावका साक्षात्कार करते हैं।

(b) नित्यता—जो सत् (=भाव रूप) है, और बिना कारणके है वह नित्य है। जैसे कार्य (=धूम)से कारण (=आग)का अनुमान होता है, जैसे अभावसे भावका अनुमान होता है, उसी तरह अनित्यसे नित्यका अनुमान होता है। कणाद देमाक्रितुके मतानुसार बाहरसे निरन्तर परिवर्तन होती दुनियाकी तहमें अचल अपरिवर्तनशील, नित्य परमाणुओंको देखते हैं। पृथिवी जल तेज वायु ये चारों भूत परमाणु रूपमें नित्य हैं। यही नेत्र अगोचर सूक्ष्मकणोंके मिलनेसे आँखसे दिखाई देनेवाले अथवा शरीरके स्पर्शसे मालूम होनेवाले स्थूल महाभूत बनते हैं [illegible] है। मन भी अणु तथा नित्य है। आकाश काल, दिक्, आत्मा सर्वव्यापी (=विभु) होते नित्य हैं। इस प्रकार कणादके मतमें परिवर्तन अनित्यता या क्षणिकता बाहरी दिखावा मात्र है नहीं, तो भीतर द्रव्य नित्य हैं—अर्थात् अनित्यता अवास्तविक है और नित्यता वास्तविक। यह सीधे बौद्धदर्शनके अनित्यता (=क्षणिक)वादका जवाब नहीं तो और क्या है? कणादका मुख्य प्रयोजन ही मालूम होता है, बौद्ध अनित्यवादको देमाक्रितुके परमाणुवाद, अफलातूंके सामान्यवाद तथा अरस्तूके द्रव्य आदि पदार्थवादकी सहायतासे खंडित करना। कणादने यूनानी दर्शनका प्रयोग पूरी तौरसे अपने मतलबके लिए किया, इसमें सन्देह नहीं।

(c) प्रमाण—वैशेषिक दर्शनकी पदार्थोंकी विवेचना मुख्य थी पदार्थोंके नित्य और अनित्य रूपों एवं दृष्ट और अदृष्ट (=[illegible]) हेतुओंसे उन रूपोंकी सिद्धिके लिए। किन्तु किसी वस्तुकी सिद्धिके लिए प्रमाण पर कुछ कहना जरूरी था इसीलिए विशेषतौरसे नहीं बल्कि प्रसंगवश प्रमाणोंपर भी वैशेषिकसूत्रोंमें कुछ कहा गया। यद्यपि सभी प्रमाणोंका एक जगह क्रमबद्ध विवेचन नहीं है तो भी सब मिलाकर प्रत्यक्ष, अनुमान ये दृष्ट प्रमाण वहाँ मिलते हैं। (१) साथ ही कणाद कितनी ही बातोंके लिए शास्त्र या शब्दप्रमाणको भी मानते हैं। (२) नवें अध्यायके प्रथम आह्निक वस्तुके साक्षात्कार करनेके लिए योगकी विशेष शक्तिका भी जिक्र आता है जिससे मालूम होता है, कि यौगिक शक्तिका [illegible]

प्रमाणाम मानत ह । किस तरहके शब्द ग्रौर योगि प्रत्यक्षका प्रमाण माना जाय इसके बारेमें कणादने बहस नहीं की। (३) प्रत्यक्षपर एक जगह कोई विवेचना नहीं है ना भी ग्राभाव प्रकरणमें "इन्द्रिय ग्रौर विषयके सन्निकर्ष (=सबध)से ज्ञान का जिक्र प्रत्यक्षके ही लिए ग्राया है इसमे सन्देह नहीं। जो पदार्थ प्रत्यक्षके विषय है उनमेंसे गुण कर्म, सामान्यकी प्रत्यक्षता उनके ग्राश्रयभूत द्रव्यके सयोगसे बतलाया है—जैसे पृथिवीद्रव्यका (घ्राणसे) सयोग होनेपर गध गुणका प्रत्यक्ष होता जैसे ग्रग्नि वायुके सयोगसे रस वर्ण स्पर्श गुणोके प्रत्यक्ष होते ह। (४) वस्तुका अनुमान प्रसिद्धिके ग्राधारपर होता है। इसके तीन रूप है—(a) एकके ग्रभावका ग्रनुमान दूसरेके भाव (=विद्यमानता)से जैसे सीगके विद्यमान होनेसे ग्रनुमान किया जाता है कि वह घोडा नहीं है। (b) एकके भाव का ग्रनुमान दूसरेके ग्रभावसे जैसे सीगके न विद्यमान होनेसे ग्रनुमान होता है कि वह घोडा है। (c) एकके भावसे दूसरेके भावका ग्रनुमान जैसे सीगके विद्यमान होनेसे ग्रनुमान हो जाता है यह गाय है। ये सभी ग्रनुमान इन प्रसिद्धियोके ग्राधारपर किये जाते है कि घोडा सीग रहित होता है गाय सीग सहित होती है। प्रथम ग्रध्यायके प्रथमाह्निकमें यह भी बतलाया है कि कारण (ग्राग)के ग्रभावमें कार्य (धूम)का ग्रभाव होता है किन्तु कार्य (धूम)के ग्रभावमें कारण (ग्रग्नि)का ग्रभाव नहीं होता। ग्रनुमानके लिए हेतुकी जरूरत होती है। बिना देखे ही कोई कह उठता है पहाड़में ग्राग है किन्तु जब हम उसे देखते नहीं कहने मात्रसे ग्रागकी सत्ता नहीं मानी जा सकती। इसके लिए हेतु देनेकी जरूरत पड़ती है ग्रौर वह है—क्योंकि वहाँ धुग्रा दिखाई पड रहा है' इस प्रकार नवम ग्रध्यायके दूसरे ग्राह्निकमें हेतुका जिक्र किया गया है।

(d) ज्ञान ग्रौर मिथ्याज्ञान—ग्रविद्या या मिथ्याज्ञान इन्द्रियोंके विकार ग्रथवा गलत सस्कारोके साथ किये साक्षात्कार या ग्रसाक्षात्कारके कारण होता है। इससे उल्टा है विद्या या ज्ञान।

(e) ईश्वर—ईश्वरके लिए कणादके दर्शनमें गुजाइश नहीं।

उसके नौ द्रव्योंमें आत्मा आया है, किन्तु वह है इंद्रियों और मनकी सहायतासे ज्ञान प्राप्त करनेवाले अनेक जीव। उन्हें कर्मफल आदि अदृष्ट देता है। यह फल देनेवाला अदृष्ट सुकृत-दुष्कृतकी वासना या संस्कार है। इसे ईश्वर नहीं कहा जा सकता। सृष्टिके निर्माणके लिए परमाणुओंमें गतिकी आवश्यकता है जिससे कि उनमें संयोग होकर स्थूल पदार्थ बनें। सृष्टि-रचनाके लिए होनेवाली यह परमाणु-गति भी कणादके अनुसार अदृष्टके अनुसार होती है इस प्रकार अदृष्टवादी कणादको सृष्टि, कर्मफल कहीं भी ईश्वरकी जरूरत नहीं महसूस होती।

२—अनेकान्तवादी जैन-दर्शन

जैन तीर्थंकर महावीरके दर्शनके बारेमें हम पहिले कुछ बतला चुके हैं। महावीरके समय यह व्रत उपवास और तपस्याका पथ था, अभी इसपर दर्शनकी पुट नहीं लगी थी किन्तु जैसा कि हम बतला आये हैं संजय वेलट्ठिपुत्तके अनेकान्तवादसे प्रभावित हो जैनोंने अपना अनेकान्तवादी स्याद्वाद दर्शन तैयार किया। दार्शनिक विचार संघर्ष और यूनानियोंके संपर्कसे ईसवी सन्के आरम्भ होनेके साथ अपने-अपने दार्शनिक विचारोंको सुव्यवस्थित करनेका प्रयत्न जो भारतके भिन्न भिन्न संप्रदायोंने करना शुरू किया उसमें जैन भी पीछे नहीं रह सकते थे और इसीका परिणाम हम बतला और आगे कह चुके हैं इस संप्रदायमें स्याद्वाद दर्शनके रूपमें पाते हैं। नई व्यवस्थावाले जैन-दर्शनके पुराने ग्रंथकारोंमें उमास्वातिका नाम पहिले आता है। इनका समय ईसाकी पहिली सदी बतलाया जाता है किन्तु वह संदिग्ध है। जो कुछ भी हो उमास्वातिका तत्त्वार्थाधिगम नवीन दर्शनयुगमें जैनोंका सबसे पुराना दर्शन ग्रंथ है।

यद्यपि जैनोंके श्वेतांबर और दिगंबर दो मुख्य संप्रदाय ईसाकी पहिली सदीसे चले आते हैं तो भी जहाँ तक दर्शनका संबंध है, उनमें वैसा कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनोंके भेद आचार आदिके संबंधमें हैं जैसे—

श्वेतांबर	दिगंबर
१ अन्न भोजन करते हैं	नहीं

७ वर्धमान गर्भावस्थामें देवनन्दाके त्रिशलाके गर्भमें बदला गया था।	नहीं
साधु वस्त्र पहिन सकता है	नहीं
८ स्त्रीको मोक्ष मिल सकता है	नहीं

श्वेताम्बर जैन अधिकतर गुजरात, पश्चिमी राजपूताना, युक्तप्रान्त और मध्यभारतमें रहते हैं। दिगम्बर पश्चिमोत्तर पंजाब, पूर्वीय राजपूताना और दक्षिण भारतमें रहते हैं। श्वेताम्बरोंके मूलग्रंथ—अंग—प्राकृतमें मिलते हैं, किन्तु दिगम्बरोंके सारे ग्रंथ संस्कृतमें हैं। श्वेताम्बर प्राकृत अंगोंको जिनवाणी बतलाते हैं, यद्यपि पालि त्रिपिटकसे अर्वाचीन रचनापर भी वे उतने नवीन नहीं हैं जितना कि ये उन्हें बतलाते हैं।

जैन धर्म-दर्शनकी एक खास विशेषता है कि इसके प्रायः सारे अनुयायी व्यापारी महाजन और छोटे दुकानदार हैं। "लाभ-शुभ" और शान्तिके स्वाभाविक प्रेमी व्यापारी वर्गकी चरम अहिंसाके दर्शनमें इतनी श्रद्धा आकस्मिक नहीं हो सकती, यह हम अन्यत्र[1] बतला आये हैं।

हमने यहाँ २००-४०० ई० तकके भारतीय दर्शनोंको लिया है, किन्तु इसमें अगले प्रकरणमें दुहरानेसे बचनेके लिए हम यहीं आगेके विकासको भी लेते हुए इस विषयमें लिख रहे हैं।

(१) दर्शन और धर्म—जैनोंके स्याद्वादको जिसे पीछे कह चुके हैं, जिसके अनुसार वह सबमें सबके होनेकी संभावना मानते हैं। उपनिषद्के दर्शनमें नित्यतापर जोर दिया गया था, बौद्धोंका जोर अनित्यता पर था, जैन दोनोंको सम्भव बतलाते हुए बीचका रास्ता स्वीकार किया। उदाहरणार्थ—

उपनिषद्	बौद्ध	जैन
(ब्रह्म) सत् है	सब अनित्य है	कुछ नाशमान है और कुछ अनाशमान भी

[1] "मानव समाज" पृष्ठ १९३-४

जैन दोनोंकी आंशिक सत्यता और असत्यताको बतलाते हुए कहते हैं—पर्यायनयसे देखनेपर मिट्टीका पिंड नष्ट होता है, घड़ा उत्पन्न होता है वह भी नष्ट हो जाता है। किन्तु द्रव्यनयसे देखनेपर सारी अवस्थाओंमें मिट्टी (द्रव्य) मौजूद रहती है। द्रव्यको न वह सर्वथा परिवर्तनशील मानते हैं, नहीं सर्वथा अपरिवर्तनशील, बल्कि परिवर्तनशील अ-परिवर्तनशील दोनों तरहका मानते हैं—अर्थात् द्रव्य एक ही समयमें वह (=द्रव्य) है और नहीं भी है। सत्ता (=विद्यमानता)के बारेमें सात प्रकारके स्याद् (=हो सकता है)की बात हम पीछे बतला चुके हैं।

(२) तत्त्व—जैन-दर्शनमें तत्त्वोंके दो पाँच सात नौ भेद बतलाये गये हैं, जो कि बौद्धोंके स्कन्ध, आयतन धातुकी भाँति एक ही विश्व का भिन्न भिन्न दृष्टिसे विभाजन है।—

दो तत्त्व—जीव, अजीव

पाँच तत्त्व—जीव अजीव आकाश, धर्म, पुद्गल

सात तत्त्व—जीव अजीव, आस्रव, बंध संवर निर्जर, मोक्ष

नौ तत्त्व—जीव अजीव आस्रव बंध, संवर, निर्जर मोक्ष पुण्य, अपुण्य

दो और पाँच तत्त्वोंवाले विभाजनमें दार्शनिक पदार्थोंको ही रखा गया है पिछले दो विभाजनोंमें धर्म और आचारकी बातोंको भी शामिल कर लिया गया है।

(३) पाँच अस्तिकाय—जीव अजीवके दो भेदोंमें अजीवको ही आकाश, "धर्म", 'अधर्म' पुद्गल चार भेदोंमें बाँटकर पाँच तत्त्वमें बाँटा गया है, इन्हें ही पंच अस्तिकाय भी कहते हैं इनमें—

(क) जीव—जीव आत्माको कहना है जिसकी पहिचान ज्ञान है। तो भी सिर्फ ज्ञानवाला मान लेनेपर अनेकान्तवाद न हो सकता था, इस लिए कहा गया[1]—

---

[1] "ज्ञानाद् भिन्नो न चाभिन्नो भिन्नाभिन्नः कथञ्चन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं सोऽयमात्मेति कीर्तितः॥"

जो ज्ञानसे भिन्न है और न अभिन्न है, न सत् भी भिन्न और अभिन्न है (जो) ज्ञान पूर्वादिवाला है वह आत्मा है ॥

आत्मा भौतिक (=भूतपरिणाम) नहीं है, शरीर उसका अधिकरण है जीवोंकी संख्या असंख्य है। जीव नहीं सर्वव्यापी है न परमाणुकी भाँति अणु है बल्कि एक मध्यम परिमाणका है अर्थात् जितना बड़ा शरीर होता है उतना बड़ा ही आत्मा है—हाथीके शरीरमें हाथीके बराबर का आत्मा है और चींटीके शरीरमें चींटीके बराबरका। मुक्त होनेपर निकलकर जब यह चींटीके शरीरमें प्रवेश करता है तो उस समय ही क्षुद्र आकार धारण करना पड़ता है। दीपकके प्रकाशकी भाँति यह प्रसार और संकोच कर सकता है। इतनेपर भी आत्मा नित्य है। भिन्न-भिन्न जीवोंमें इन्द्रियोंकी संख्या कम-अधिक होती है। यह ख्याल जैनोंमें महावीरके समयसे चला आता है। इसीलिए वृक्षोंकी जो साधुओंने बौद्ध भिक्षुओंको एकेन्द्रिय जीवके वधका दोषी ठहराकर बदनाम करना शुरू किया था जिसपर बुद्धको भिक्षुओंके लिए वृक्ष काटना निषिद्ध ठहराना पड़ा।[1] भिन्न भिन्न जीवोंमें इन्द्रियोंकी संख्या इस प्रकार है—

जीव	इन्द्रिय संख्या
(१) वृक्ष	(१) स्पर्श
(२) पीलु (कृमि)	(२) स्पर्श, रस
(३) चींटी	(३) स्पर्श, रस, गंध
(४) मक्खी	(४) स्पर्श, रस, गंध, दृष्टि
(५) पशुधारी	(५) स्पर्श, रस, गंध, दृष्टि, शब्द
(६) नर, देव, नारकीय	(६) स्पर्श, रस, गंध, दृष्टि, शब्द, मन

स्पर्श आदिकी जगह त्वक्, रसना, नासिका, आँख, श्रोत्र और मन इंद्रिय समझ लीजिए।

जीवोंके फिर दो भेद हैं, कितने ही जीव संसारी हैं और कितने ही मुक्त।

[1] विनय पिटक (भिक्षु विभंग) ५।११

(a) ससारी—ससारी आवागमन (=पुनर्जन्म) के चक्कर (=ससार) म फिरते रहनेवाले ह। वे कर्मके आवरणसे ढँके हुए ह। मन-सहित (=समनस्क) और मन रहित (=अमनस्क) यह उनके दो भेद ह। शिक्षा, क्रिया आलापको ग्रहण करनेवाली सजा (=होश) जिनमें है वह मन-सहित जीव है। जिनमें सज्ञा (होश) नहीं ह, वह मन रहित (=अमनस्क) ह। अमनस्क भी फिर दो भेद ह। पृथिवी जल, अग्नि वायु और वृक्ष—ये एक इन्द्रियवाले जीव स्थावर जीव ह। पृथिवी आदि चारो महाभूत भी जैन-दर्शनके अनुसार किसी जीवके शरीर ह उपनिषद्के अन्तर्यामी ब्रह्मकी तरह नहीं बल्कि द्वीपी आत्मवादियोंके शरीर निवासी जीवकी तरह।

मन-सहित (=समनस्क) जीव छ इन्द्रियोवाले नर देव और नारकीय प्राणी ह।

(b) मुक्त—जीवोमें जिन्होंने त्याग-तपस्यासे कर्मके आवरणको हटाकर कैवल्य पद प्राप्त कर लिया ह वे मुक्त कहे जाते ह।

प्रश्न हो सकता ह कि अनन्तकालसे आजतक जिस प्रकार प्राणी मुक्त होते जा रहे ह उससे तो एक दिन दुनिया जीवोंसे खाली हो जायगी। इसके समाधानमें जैन-दर्शनका कहना है कि जीवोंकी सख्या घटने योग्य नहीं है विश्व तो निगोद—जीव-ग्रथियों—से भरा हुआ है। एक एक निगोदके भीतर सकोच विकास शील जीवोकी कितनी भारी सख्या ह यह इससे पता लग सकता है कि अनादिकालसे लेकर आजतक जितने जीव मुक्त हुए ह उनके लिए एक निगोद पर्याप्त ह। इस प्रकार ससारके उच्छिन्न होनेका डर नहीं।

(अजीव)—अजीवके धर्म अधर्म पुद्गल आकाश चार भेद बतला चुके ह धर्म अधर्म यहाँ खास अर्थम व्यवहृत होता ह।

(ख) धर्म—विश्वव्यापी एक चालक तत्त्व ह जिसका अनुमान गति—प्रवृत्ति—से होता ह।

(ग) अधर्म—एक विश्वव्यापी रोधक तत्त्व ह स्थिति—गतिहीन अवस्था—से इसका अनुमान होता ह।

विश्वका सचालन, सृष्टि स्थिति प्रलय इन्हीं दो तत्त्वों—धर्म अधर्म

—द्वारा होता है।

(घ) पुद्गल (=भौतिक तत्त्व)—बौद्ध-दर्शनमें पुद्गल जीवको कहते हैं और बौद्ध इस तरहके पुद्गलको नहीं मानते। जैनोंका पुद्गल उससे बिल्कुल उलटा अ-जीव पदार्थ अर्थात् भौतिक तत्त्व है। पुद्गल (=भौतिक तत्त्व)में स्पर्श, रस, वर्ण चारों गुण मिलते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) उनका तोड़ते पहुँचनेपर वह सूक्ष्म अणु रह जाते हैं, इन्हें अणु-पुद्गल कहते हैं, ये वैशेषिकके भौतिक परमाणु हैं, जिनकी स्थापनाको दूसरे भारतीय दार्शनिकोंकी भाँति जैन-दर्शनने भी बिना आभार स्वीकार किये वैशेषिकसे ले लिया है। (२) दूसरे हैं स्कंध-पुद्गल, जो अनेक परमाणुओंके संघात (=स्कंध) हैं। स्कंध पुद्गलोंकी उत्पत्ति परमाणुओंके संयोग वियोगसे होती है।

(ङ) आकाश—यह भी पाँच अस्तिकायोंमें एक है और उपनिषद्के समयसे चला आया है। यह आकाश संसारी जीवोंके स्थानसे परे जहाँ कि मुक्त जीव हैं, वहाँ तक फैला हुआ है। आकाश अभावात्मक नहीं भावात्मक वस्तु है, इसीलिए इसकी गणना पाँच अस्तिकायोंमें है।

(४) सात तत्त्व—(क, ख) सातमें जीव और अजीवको पाँच अस्तिकायोंके रूपमें अभी बतला चुके, बाकी पाँच निम्न प्रकार हैं।

(ग) आस्रव—आस्रव बहनेको कहते हैं, जैसे नदी आस्रवति (=नदी बहती है)। बौद्ध-दर्शनमें भी आस्रव (=आसव) आता है, किन्तु वह अन्तःकरणके चित्तमलके अर्थमें। जीव कषाय या चित्तमलोंसे लिपटा आवागमनमें आता है।

कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ और अशुभ चार कषाय हैं, अ-क्रोध, अ-मान, अ-माया, अ-लोभ शुभ (अच्छे) कषाय हैं।

(घ) बंध—यह सातवाँ तत्त्व है। कषायसे लिप्त होनेसे जीव विषयोंमें आसक्त होता है, यही बंध या बंधन है, जिसके कारण जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरमें दुःख सहते मारा मारा फिरता है।

कषायके चार हेतु होते हैं—(१) मिथ्या दर्शन—झूठा ज्ञान जो नैसर्गिक या पूर्वके मिथ्या कर्मोंसे उत्पन्न भी हो सकता है, या उपदेशज

यानी इसी जन्ममें झूठे दर्शनोंके सुनने पढ़नेसे हो सकता है। (२) अ-विरति या इन्द्रिय आदिपर संयम न करना। (३) प्रमाद है आस्रव रोकनेके उपाय गुप्ति समिति आदिमें आलसी होना।

(ङ) संवर—आस्रव प्रवाहके रास्तेको रोक देनेको संवर कहते हैं। जो कि गुप्ति और समिति द्वारा होता है।

(a) गुप्ति—काया, वचन, मनकी रक्षाको कहते हैं। गुप्तिका शब्दार्थ है रक्षा।

(b) समिति—समिति संयम है, इसके पाँच भेद हैं—(१) ईर्या समिति यानी प्राणियोंकी रक्षा करना, (२) भाषा समिति हित परि-मित और प्रिय भाषण, (३) ईषणा समिति—शुद्ध दोषरहित भिक्षा का ही लेना, (४) आदान समिति, यह देख भालकर आसन वस्त्र आदिका लेना कि उसमें प्राणिहिंसा आदि होनेकी तो संभावना नहीं है, (५) उत्सर्ग-समिति यानी वैराग्य, जगत मल गन्दगीसे पूर्ण है इसे उत्सर्ग (=त्याग) करना चाहिए।

जैसे बौद्धोंका आर्य सत्योंपर बहुत जोर है, वैसे ही जैन धर्ममें आस्रव और संवर मुमुक्षुके लिए त्याज्य और ग्राह्य हैं—

'आवागमन (=भव) का हेतु आस्रव है और संवर मोक्षका कारण। बस यह अर्हत (महावीर) की रहस्य शिक्षा है, दूसर तो इसीके विस्तार हैं।'[1]

इसी तरह बौद्धोंमें भी बुद्धकी शिक्षाका सार माना जाता है—

सारी बुराइयों (=पापों) का न करना, भलाइयोंका संपादन करना। अपने चित्तका संयम करना, यह बुद्धकी शिक्षा है।[2]

(च) निर्जर—जन्मान्तरमें जो कर्म—कषाय—संचित हो गया है

---

[1] "आस्रवो भवहेतुः स्यात् संवरो मोक्ष-कारणम्।
इतीयमार्हती मुष्टिरन्यदस्याः प्रपञ्चनम्॥"

[2] "सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्सुपसंपदा। सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानुसासनं॥"

उसका निरोध [illegible] [illegible] निरोध [illegible], गुप्ति, समिति
[illegible] [illegible] द्वारा होता है।

(४) [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]— [illegible] [illegible]— [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होता है। [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] है।

(५) नौ तत्त्व—ऊपर (१-४) सात तत्त्व पुण्य और पापको और जोड़ [illegible] नौ तत्त्व होते हैं—

(क) पुण्य—आस्रव [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] सुखका साधन होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की भाँति आत्मा लिप्त रहता है। मुक्तिके लिए इस पुण्यसे मुक्त होना जरूरी है।

(ख) पाप—पाप दुःख-साधन और पुण्यकी भाँति [illegible] है।

(६) मुक्तिके साधन—[illegible] त्याग और ध्यान [illegible] मुक्ति प्राप्तिके लिए मोक्षकी जरूरत है। इसकी प्राप्तिके लिए ज्ञान श्रद्धा चरित्र और भावना (=योग)की जरूरत है।

(क) ज्ञान—ज्ञानका मतलब आत्म-ज्ञान [illegible] [illegible] का यथार्थ निश्चय है।

(ख) श्रद्धा—तीर्थंकरके वचनोंपर श्रद्धा या विश्वास।

(ग) चारित्र—सदाचार या नीतिको जैन-धर्ममें चारित्र कहा गया है। पापसे विरत होना अर्थात् अहिंसा, सूनृत(=सत्य), अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (=अ-ममता) ये चारित्र हैं। गृहस्थोंके लिए चारित्र [illegible] [illegible] सच्चाईसे धन [illegible][1] सदाचारका पालन कुलीन सती

[1] खेती तथा दूसरे उत्पादक श्रममें हिंसा होनी जरूरी है, इसलिए वह सच्चाईसे धनार्जनके रास्ते नहीं हैं। सच्चाईसे धनार्जनके रास्ते हैं,

स्त्रीमें विवाह, स्नाचारता पात्र, पापधव्रत, अतिथि-सेवा करनी चाहिए।

(घ) भावना—मानसिक एकाग्रता है। मोक्षके लिए करणीय भाव नाओंकि कई प्रकार हैं जैसे—

(a) अनित्यता भावना—भोगोंको अनित्य समझ उनकी भावना करना।

(b) [1]अशरण भावना—कि मृत्यु दुःखके प्रहारसे बचनेके लिए संसारमें कोई शरण नहीं है।

(c) [1]अशुचि भावना—कि शरीर मल-दुर्गंध पूर्ण है।

(d) आस्रवा भावना—कि आस्रव बंधनके हेतु हैं।

(e) धर्मस्वभावाख्यातता भावना—संयम सत्य, शौच ब्रह्मचर्य अलाभ तप क्षमा मदुता सरलता आदि द्वारा भावना रत होना।

(f) लोक भावना—सृष्टिके स्वभावकी भावना।

(g) बोधि भावना—मनुष्यकी अवस्था कर्म निर्मित है।

(h) [1]मैत्री भावना—सर्वत्र मित्रताके भावसे देखना।

(i) [1]करुणा भावना—

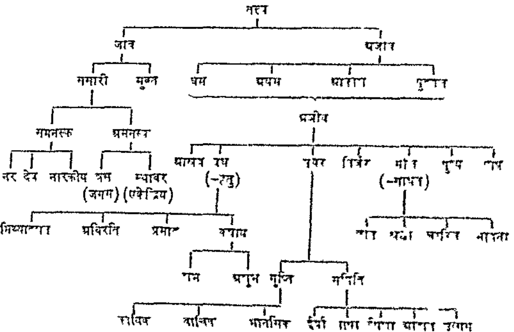
(j) [1]मुदिता भावना—आदि।

(६) अनीश्वरवाद—ईश्वरको न माननेमें जैन भी चार्वाक और बौद्ध दर्शनोंके साथ हैं। इनकी युक्तियाँ भी प्रायः वही हैं जिन्हें वे दोनों दर्शन देते हैं। वहाँ पिछले लोककी सृष्टिके लिए अदृष्टको ईश्वरके स्थानपर रखा है, और जैनोंने धर्म-अधर्मको उसके स्थानपर रखा। लोक ऊर्ध्व मध्य और अध तीनों लोकोंमें विभक्त है, जिनमें क्रमशः देव मानव और नारकीय लोग बसते हैं। लोकमें सर्वत्र आकाश है, जिसे लोकाकाश कहते हैं। लोकाकाशके परे तीन तह हवाकी है। मुक्त जीव तीनों लोकोंको पार कर लोकाकाशके ऊपर जाकर वास करता है।

व्यापार, दूकान, सूदका व्यवसाय।

[1] ये भावनाएं बौद्ध-ग्रंथोंमें भी पाई जाती हैं।

इन तत्त्वोंको वृक्ष रूपमें इस प्रकार अंकित कर सकते हैं—



वादि वेद-संहिताओंके बाद यज्ञ-कर्मकाण्डकी विधि और व्याख्याके लिए भिन्न भिन्न ऋषियों द्वारा कई पोथियाँ नए बनाए जाते रहे। गोपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय, पञ्चविंश, शतपथ आदि कितने ही ब्राह्मण ग्रंथ अब भी मिलते हैं। इन्हीं ब्राह्मणोंमेंसे कुछके अन्तिम भाग आरण्यक और उपनिषद् हैं, यह भी हम बतला चुके हैं। ब्राह्मणोंका मुख्य तात्पर्य भिन्न भिन्न यज्ञोंकी प्रक्रियाओं तथा वह कैसे किन किन मंत्रोंके साथ की जानी चाहिए इसे भी बतलाना है। ब्राह्मण ग्रंथोंमें वर्णित ये विधान जहाँ-तहाँ बिखरे तथा कहीं कहीं असंबद्ध भी थे, जिससे पुरोहितोंको दिक्कत होती थी, जिसके लिए बुद्धके पीछे कितने ही ग्रंथ बने, जिन्हें कल्प-सूत्र या प्रयोग शास्त्र कहते हैं। कल्प-सूत्र नाम श्रौत सूत्रोंका काम था यज्ञ करनेवाले पुरोहितोंकी आसानीके लिए सारी प्रक्रियाको व्यवस्थित रीतिसे जमा कर देना। यजुर्वेदके कात्यायन श्रौतसूत्रको देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

ब्राह्मण और श्रौतसूत्रोंने यज्ञ पद्धतियाँ बना रखनेका काम किया। अपने अपने वक्तके लिए वह पर्याप्त था, किन्तु ईसवी सन्के शुरू होनेके साथ सिर्फ पद्धतियोंसे काम नहीं चल सकता था, बल्कि वहाँ जरूरत थी उठती हुई शंकाओंको दूर कर यज्ञ और कर्मकाण्डके महत्त्वको समझानेकी। इसी कामको अप्रत्यक्ष रूपमें कणादने करना चाहा, किन्तु यूनानी दर्शनने दिमाग पर भारी असर किया था, जिससे धर्मके लौकिक व्याख्यान द्वारा अदृष्टकी पुष्टिकी जगह दृष्टपर जोर ज्यादा दिया, जिससे वह लक्ष्यसे बहक गए। जैमिनिने, जैसा कि अभी कहा जा चुका है, यज्ञ और कर्मकाण्डके लौकिक पारलौकिक लाभके रूपमें पुरोहितोंकी आमदनीके एक भारी व्यवसायकी रक्षा करनेके ख्यालसे पहिले तो यह सिद्ध करना चाहा कि सत्यकी प्राप्तिके लिए वेद ही एक मात्र अभ्रान्त प्रमाण है। इसके बाद फिर उसने भिन्न भिन्न यज्ञों, उनके अंगों तथा दूसरी कर्मकाण्डसंबंधी प्रक्रियाओंका विवेचन किया।

मीमांसा-सूत्रमें १२ अध्याय तथा प्रायः २५०० सूत्र हैं। इसके भाष्यकार शबर स्वामी (४०० ई०)ने योगाचार मतका जिस तरहसे खंडन

किया है उससे उनका समकालीन या पश्चात्कालीन होना चाहिए। मीमांसाके शब्द प्रामाण्यवाद तथा कर्मकांडका खंडन दिङ्नाग और दूसरे आचार्योंने किया, उसके उत्तरमें छठी सदीमें कुमारिल भट्ट (५५० ई०)ने कलम उठाई और जैमिनिका समर्थन करते हुए मीमांसाके भिन्न भिन्न भागोंपर श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक और टुपटीका तीन ग्रंथ लिखे जिनमें श्लोकवार्तिक विशेषकर तर्क निर्भर है। कुमारिलके शिष्य प्रभाकर (जिसकी प्रतिभाके कारण कहा जाता है उसके गुरु कुमारिलने उसे गुरुका नाम दे दिया और तबसे प्रभाकरका मत गुरुमत कहा जाने लगा)ने शबरभाष्यपर दूसरी टीका बृहती लिखी। मीमांसापर और भी ग्रंथ लिखे गए किन्तु शबर और कुमारिलके ही ग्रंथ ज्यादा महत्त्व रखते हैं। हम यहाँ जैमिनि ही के दर्शनपर कहेंगे, कुमारिलका दार्शनिक मत धर्मकीर्तिके प्रकरणमें पूर्वपक्षके रूपमें आ जायगा।

(२) मीमांसासूत्र संक्षेप—मीमांसाने अपने १२ अध्याय तथा ढाई हजार सूत्रोंमें निम्न विषयोंपर विवेचन किया है—

अध्याय	विषय
१	प्रमाण—विधि (=यज्ञका विधान) अर्थवाद मन्त्र स्मृति नामधेयकी प्रामाणिकता।
२	अर्थ—कर्मभेद उपोद्घात प्रमाण अपवाद प्रयोगभेद।
३	श्रुति लिंग वाक्य प्रकरण स्थान समाख्या (=नाम)का विरोध प्रधान(-यज्ञ)के उपकारक और कर्मोंका चिन्तन।
४	प्रधान (=मुख्य) यज्ञ तथा अप्रधान (=अंग यज्ञ)की प्रयोजकता, जूह (=पात्र)के पत्र आदिके बनेका फल राजसूय यज्ञके भीतर जूआ खेलना आदि कर्मोंपर विचार।
५	श्रुति लिंग आदिके क्रम उनके द्वारा विशेषका घटना बढ़ना और मजबूती तथा कमजोरी।
६	अधिकारी उसका धर्म द्रव्य प्रतिनिधि अर्थलोपनप्राय दक्षिणा सत्रदेय वह्निपर विचार।

अध्याय	विषय
७	प्रत्यक्ष (=श्रुतिमें) न कथन किये गए अतिदेशागमके नाम लिंग अतिदेशपर विचार।
८	स्पष्ट अस्पष्ट प्रबल लिंग वाले अतिदेशपर विचार।
९	ऊहपर विचारारम्भ—साम-ऊह मंत्र ऊह।
१०	निषेधके अर्थोंपर विचार।
११	तंत्रके उपोद्घात, अवाप प्रपंचन अवाय, प्रपंचन चिंतन।
१२	प्रसंग तंत्र निर्णय समुच्चय विकल्पपर विचार।

यह सूची पूर्ण नहीं है। यहाँ दिये विषयोंसे यह भी पता लग जाता है कि मीमांसाका दर्शनसे बहुत थोड़ा सा संबंध है, बाकी तो कर्मकांड-संबंधी प्रश्नों विरोधों, सन्देहोंको दूर करनेके लिए कोशिश मात्र है।—वस्तुतः जैमिनिने कल्पसूत्रों (=प्रयोगशास्त्रों)के लिए वही काम किया है जो कि वेदान्तने उपनिषदोंके लिए।

(३) दार्शनिक विचार—जैमिनिने पहिले सूत्रमें धर्म जिज्ञासाको मीमांसा शास्त्रका प्रयोजन बतलाया। धर्म क्या है। इसका उत्तर दिया—'चोदनालक्षणार्थो धर्मः'[1]—(वेदकी) प्रेरणा जिसके लिए हो वह बात धर्म है। कणादने धर्मकी व्याख्या करते हुए उसे अभ्युदय और निःश्रेयस (=पारलौकिक समृद्धि)का साधन बतलाया था। जैमिनिने यहाँ धर्मका स्वरूप बतलाना चाहा, और उसके लिए तर्क और बुद्धिपर जोर न देकर वेदके उन वाक्योंको मुख्य बतलाया जिनमें कर्मकी प्रेरणा (=चोदना या विधि) पाई जाती है। इस प्रेरणा (=चोदना) वाक्य ब्राह्मणोंमें सत्तरके करीब है। इन्हें ही जैमिनि कर्मकांडके लिए सबसे बड़ा प्रमाण तथा उसके साफल्यकी गारंटी बतलाता है।

मीमांसाने बुद्धिवादकी चर्वाकोंधर्म आये भारतमें किस मनलबसे पदार्पण किया इस आचार्य धर्मकीर्तिके वाक्य बहुत अच्छी तरह बत

---

[1] मीमांसा-सूत्र १।१।२

लाते हैं[1]—

'मीमांसक पुराने ब्राह्मणी यज्ञवाले धर्मके अत्यन्त कट्टर धर्मशास्त्री थे। यज्ञके सिवाय किसी दूसरे विषयके नव विचारके वह सख्त खिलाफ थे। शास्त्र—वेद—उन ७०के करीब उत्पत्ति विधियोंके समूहके अतिरिक्त और कुछ नहीं। ये विधियाँ यज्ञोंका विधान करती हैं और बतलाती हैं कि उनके करनेसे किस तरहका फल मिलेगा। (मीमांसाके) इस धर्ममें न कोई धार्मिक भावुकता है और न उच्च भावनाएँ। उसकी सारी बातें इस सिद्धान्तपर स्थापित हैं—ब्राह्मणोंको उनकी दक्षिणा दे दो और फल तुम्हारे पास आ मौजूद होगा। तर्कका इस धार्मिक क्रय विक्रय—व्यापार—पर जो प्रहार (बुद्धिवादियोंकी ओरसे) हो रहे थे उनसे अपनी रक्षा करना मीमांसकोंके लिए जरूरी था, और (सारे व्यापारकी भित्ति) वेदकी प्रामाणिकताको दृढ करनेके लिए 'शब्द नित्य है' इस सिद्धान्तकी कल्पना थी। जिन गकार आदि (वर्णों)से हमारी भाषा बनी है, वह उस तरहकी ध्वनियाँ या शब्द नहीं हैं जैसी कि दूसरी ध्वनियाँ और शब्द। वर्ण नित्य अविकारी द्रव्य हैं किन्तु सिवाय समय-समयपर अभिव्यक्त होनेके उन्हें साधारण आदमी (सदा) नहीं ग्रहण कर सकता। जिस तरह प्रकाश जिस वस्तुपर पड़ता है उसे पैदा नहीं करता बल्कि प्रकाशित (=अभिव्यक्त) करता है, इसी तरह हमारा उच्चारण वर्णके शब्दोंको पैदा नहीं बल्कि प्रकाशित करता है। सभी दूसरे आस्तिक नास्तिक दर्शन मीमांसकोंके इस उपहासास्पद विचारका खंडन करते थे, तो भी मीमांसक अपनी असाधारण सूक्ष्म तार्किक युक्तियोंसे उनका उत्तर देते थे। इस एक बातकी रक्षामें वह इतने व्यस्त थे कि उन्हें दूसरे दार्शनिक विषयोंपर ध्यान देनेकी फुर्सत न थी। वह कट्टर वस्तुवादी योग तथा अध्यात्मविद्याके विरोधी और निषेधात्मक सिद्धान्तोंके पक्षपाती थे। कोई सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं

---

[1] Buddhist Logic (by Dr Th Stcherbatsky, Leningrad 1932) Vol I, pp 23-24 (भावार्थ)

कोई सर्वज्ञ नहीं, कोई मुक्त पुरुष नहीं। विश्वके भीतर कोई रहस्यवाद नहीं; वह उससे अधिक कुछ नहीं है, जैसा कि हमारी (स्थूल) इन्द्रियोंको दिखलाई पड़ता है। इसलिए (यहाँ) कोई स्वयंभू (=स्वतःसिद्ध) विचार नहीं, कोई रचनात्मक साक्षात्कार नहीं, कोई (मानस) प्रतिबिंब नहीं, कोई अन्तर्दर्शन नहीं; एक केवल चेतना—चेतना सम्बन्धी कोरी तख्ती—है, जो कि सभी बाहरी अनुभवोंको अंकित करता और सुरक्षित रखता है। वेद जाननेवाले शब्दको नित्य माननेके लिए उन्होंने जिस प्रकारकी मनोवृत्ति दिखलाई, वही उनके (यज्ञके) फलोंके पाने-पानेके हिसाबवाले सिद्धान्तमें भी पाई जाती है। यज्ञकी क्रियायें बहुत पचीदा हैं, यज्ञ बहुतसे टुकड़ों(=अंगों)से मिलकर सम्पन्न होता है। प्रत्येक अंग क्रिया आंशिक फल(=भाग अपूर्व) उत्पन्न करती है, फिर ये आंशिक फल जुड़ जाते हैं, जिससे सम्पूर्ण फल(=समाहार अपूर्व) तैयार होता है—यही सम्पूर्ण याग(=प्रधान)का फल है। शब्द नित्य है, इस सिद्धान्त तथा इससे संबंध रखनेवाले विचारोंको छोड़ देनेपर मीमांसा और बुद्धिवादी न्याय-वैशेषिक दर्शनोंमें कोई भेद नहीं रहता। मीमांसकोंके सबसे जबर्दस्त विरोधी बौद्ध तार्किक थे। दोनोंके प्रायः सारे ही सिद्धान्त एक-दूसरेसे उलटे हैं।

(ख) वेद स्वतः प्रमाण है—जैसा कि ऊपरके उद्धरणसे मालूम हुआ मीमांसाका मुख्य प्रयोजन था पुरोहितोंकी आमदनीको सुरक्षित करना। दक्षिणा उन्हें तभी मिल सकती थी, यदि लोग वणिक कमाईको गारें नहीं, कमाई तब यजमानोंको प्रिय न लगता था, जब कि उन्हें विश्वास हो कि यज्ञका अच्छा फल—स्वर्ग जरूर मिलेगा। इस विश्वासके लिए कोई गहरा प्रमाण चाहिए, जिसके लिए मीमांसकोंने शब्दको पेश किया। उन्होंने कहा—वेद अनादि हैं, वह किसी देवता या मानुषका रचा नहीं—अपौरुषेय—है। पुरुषके बनाए वचनोंका कम मूल्य है, क्योंकि उसमें राग-द्वेष हैं, जिनके कारण वह गलत बात भी मुँहसे निकाल सकता है। और यदि ऐसा भारी है तो उसके वक्ताओंका नाम सुना जाता,

कर्त्ताकी याद तक न रहनी यही सिद्ध करती ह कि वद अकृत ह । वह अनादि ह क्योकि उन्हे हर एक वदपाठीन अपने गुरुसे पढा ह और इस प्रकार यह गुरु शिष्यकी परपरा कभी नही टूटती । जमदग्नि भरद्वाज वसिष्ठ कुशिक आदि ऋषियो दिवोदास सुदास आदि राजाओके नाम आते ह । जमिनि मत्र (-सहिता) और ब्राह्मण दानोको वद मानता है । उसन और सबन एतिहासिक नामोकी व्याख्याके फन्दम फँसनके डरस दयानदकी भाति ब्राह्मणको वदस खारिज नही किया । भरद्वाज-वसिष्ठ और दिवोदास-सुदास लकर आरुणि-याज्ञवल्क्य और पौत्रायण-जनक तक सबको एतिहासिक नामोका यह अनतिहासिक वस्तुओका नाम कहकर व्याकरणके धातु प्रत्ययोस व्याख्या कर दना चाहता ह । जमिनिके लिए प्रावाहणि किसी प्रवहणके पुत्र का नाम नही बहनवाली हवाका नाम ह । ऋषियोको मत्रकर्त्ता कहना गलत ह । वद के शब्द अर्थका सबध नित्य ह जस लौकिक भाषाम रेलगाडी शब्द और पहियोवाल लम्ब चौड घर पदार्थक सबध पिता माता-गुरु आदि द्वारा बतलाया और किसी समय वन मानुष-सकतक रूपम रखा जाता ह वदम एसा नहा ह । जमिनिन तो बल्कि यहाँ तक कहा ह कि लौकिक भाषाम भी 'गाय' शब्द और ग य अर्थका जो सबध है वह भी वदिक शब्दार्थ सबधकी नकलपर भ्रान्तिके कारण ह ।

वेद जिस कर्मको इष्टका साधक बतलाता ह, वही धर्म ह । वद जिस अनिष्टका साधक बतलाता ह वह अधर्म ह । स्मति (=ऋषियोके बनाए धर्म सबधी ग्रथ) और सदाचार भी धर्मम प्रमाण हो सकते ह यदि वह वेद अनुसारी ह । स्मति और सदाचारम पाय जानवाल कितने ही कर्म भी धर्म हो सकते ह यदि वदम उनका विरोध न मिल । किन्तु उन्ह वदसे अलगका समझकर धर्म नही माना जायगा बल्कि इसलिए माना जायगा कि वदका वसा कोई वाक्य पहिल कभी मौजूद था जिससे स्मति और सदाचारन उस लिया । अब वदकी कितनी ही शाखाओके लुप्त हो जानेसे वह प्राप्य नहा ह । 'प्राप्य नहा ह' का अर्थ इतना ही लना ह कि

उसका अभिव्यक्ति नहीं होता। इसलिये मिले होनेपर उसका [illegible] है। [illegible]।

(a) विधि—इन्हें भी तीन भागोंमें बाँटा जाता है। विधि-वाक्य जिनके द्वारा किसी यज्ञ आदि कर्मके करनेका विधान किया गया है[1]—"स्वर्गकी कामनावाला अग्निहोत्र करे", "सोमसे यजन करे", "पशुकी कामनावाला उद्भिद (यज्ञ)से यजन करे"। इस तरह सहायक गौण विधि-वाक्य हैं, जो यज्ञके कर्मोंके अंगोंका विधान करते हैं। और साथ ही यजमानको उसके शुभकारी फलको बतलाते हैं। इन्हें सहायकोंका अभिप्राय, इसके उपयोग बाद प्रयोगको नहीं बतलाता कि यज्ञका विनियोग—प्रयोग करनेके बाद अब बतलाते हैं किस क्रमसे होम करना आदि—[illegible] उनके प्रयोग (=विनियोग)की जरूरत होती है। ब्राह्मणमें भी इन भागोंके अनुसार इन विधायक वाक्योंके अतिरिक्त बाकी भाग—ब्राह्मण—आरण्यक उपनिषद्—सभी सिर्फ अर्थवाद हैं।

यद्यपि यज्ञ सारा एक प्रधान कर्म कहा जाता है, लेकिन सारा एक क्षणमें पूरा नहीं हो सकता। जैसे "गाय लाता है" यह सारा वाक्य एक अभिप्रायको व्यक्त करता है, किन्तु जब "गा" बोला जा रहा होता है उसी वक्त अभिप्राय नहीं मालूम होता। जब एक एक करके "है" तक हम पहुँचते हैं, तो सारे "गाय लाता है" वाक्यका अभिप्राय मालूम हो जाता है। उसी तरह एक यज्ञके अंगभूत कर्म पूरे होते जाते जब सारा यज्ञ कर्म पूरा हो जाता है तो उससे फलका अपूर्व—एक उत्पादक संस्कार—पैदा होता है। यही अपूर्व श्रुति प्रतिपादित फलको इस जन्म या परजन्ममें देगा।

(b) अर्थवाद—वेद (ब्राह्मण)के उन विधि-वाक्योंको छोड़ बाकी सभी अर्थवाद हैं, यह बतला चुके। अर्थवाद चार प्रकारके हैं—निन्दा, प्रशंसा, परकृति, पुराकल्प। निन्दा आदि द्वारा अर्थवाद विधिकी पुष्टि

---

[1] "अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः", "सोमेन यजेत"।

रखता है। जैमिनिके अनुसार आरुणि और याज्ञवल्क्यके सारे गंभीर दर्शन यज्ञ प्रतिपादक विधियोंके अर्थवादको छोड़ और कोई महत्त्व नहीं रखते।

(1) स्तुति[1]— उसका मुख शोभता है, जो इसे जानता है — यहाँ जाननेकी विधिकी स्तुति है।

(11) निन्दा—इस अर्थवादका उदाहरण है[2]— आँसुओंसे जन्मी (यह) चाँदी है जो इस यज्ञमें देता है वर्षसे पहिलेही उसके घरमें रोना है। यह यज्ञमें दक्षिणा रूपसे चाँदी देनेकी निंदा करके यज्ञमें चाँदी नहीं देनी चाहिए[3]—इस विधि-वाक्यकी पुष्टि करता है। (111) पर कृति—दूसरे किसी महान् पुरुषने किसी कामको किया उसको बतलाना परकृति है जैसे 'अग्निने कामना की[4]' (1V) पुराकल्प—पुराने कल्पकी बात जैसे पहिले (जमानेमें) ब्राह्मण डरे।[5] जैसे स्तुति और निंदासे विधिकी पुष्टि होती है, वैसे ही बड़ोंकी कृति तथा पुराने युगकी बातें भी उसकी पुष्टि करती है। यह समझानेकी कोशिश की गई है कि वेदमें विधि वाक्योंको कम करनेसे वेदका अधिकांश भाग निरर्थक नहीं है। जैमिनिने एक ओर तो वेदको अनादि अपौरुषेय सिद्ध करनेके लिए यह घोषित किया कि उसमें कोई इतिहास नहीं, दूसरी ओर अर्थवादोंमें परकृति और पुराकल्प जोड़कर इतिहासको मान सा लिया इसके उत्तरमें मीमांसकोंका कहना है यह इतिहास नित्य इतिहास है अर्थात् याज्ञवल्क्य और जनक अनित्य इतिहासकी एक बारकी घटना नहीं बल्कि रात दिनकी भाँति बराबर अनादिकालसे ऐसे याज्ञवल्क्य और जनक होते हैं जिनका जिक्र वेदके एक अंश शतपथ ब्राह्मणके अंतिम खंड बृहदारण्यकमें हमेशासे लिखा

---

[1] "शोभते वास्य मुखं"।
"अश्रुजं हि रजतं यो बर्हिषि ददाति पुरास्य संवत्सराद् गृहे रुदन्ति।"
[3] "बर्हिषि रजतं न देयम्"।　　　[4] "अग्निर्वा अकामयत"।
[5] "पुरा ब्राह्मणा अभैषुः।"

हुआ है। आज हम यह दलील उपहासास्पदसी जान पड़ेगी, किन्तु वह समय था जब कि कितने ही लोग ईमानदारीसे जैमिनिके इस तरहके अलौकिक तर्क सिद्धान्तको मानते थे।

(ख) प्रमाण प्रमाण—मीमांसाकी प्रमाणोंकी सूची बहुत लंबी है। वह शब्द प्रमाणके अतिरिक्त प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, संभव, अभाव छ और प्रमाणोंको मानता है, यद्यपि सबसे मजबूत प्रमाण उसका शब्द प्रमाण था वह है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान मीमांसकोंके भी वैसे ही हैं, जैसे कि उन्हें अक्षपाद गौतम जैमिनिसे पहिले कह गए थे। अर्थापत्तिका उदाहरण 'मोटा देवदत्त दिनको नहीं खाता' अर्थात् रातको खाता है। संभव—जैसे हजार कहनेपर सौ उसमें सम्मिलित समझा जाता है। अभाव या अनुपलब्धि भी एक प्रमाण है क्योंकि 'भूमिपर घड़ा नहीं है' इसके सच होनेके लिए यही प्रमाण दे सकते हैं कि वहाँ घड़ा अनुपलब्ध है।

(ग) तत्त्व—मीमांसाके अनुसार बाह्य विश्व सच है और वह जैसा दिखलाई पड़ता है वैसा ही है। आत्मा अनेक हैं। स्वर्गको भी वह मानता है किन्तु उसके भोगोंको विश्वके भोगोंसे इस बातमें समानता है कि दोनों भौतिक हैं। ईश्वरके लिए मीमांसामें गुंजाइश नहीं।[1] जैमिनि का वेदकी स्वतः प्रमाणता सिद्धकर यह कर्मकांडका रास्ता साफ करना था। उसने ईश्वर सिद्धिके खंडन करनेसे वेदको नित्य अनादि सिद्ध करना आसान समझा और दर्शनोंमें उसके सब धर्म उस वक्त जितना आसान था उसमें यह बात आसान न थी।

मीमांसासूत्र वैसे बाकी पाँचों ब्राह्मण दर्शनोंसे बहुत बड़ा है, किन्तु उसमें दर्शनका अंश बहुत कम है।

मीमांसा वैदिककालसे चले आते पुरोहित वर्णोंकी अपनी जीविका (=दक्षिणा आदि)को सुरक्षित रखनेके लिए अन्तिम प्रयत्न था। उपनिषद्

---

[1] द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमथार्थतः। निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्॥"—पद्मपुराण, उत्तरखंड २६३

मानव ग्रामपाम (७०० ६०० ई० पू०) धम ग्रौर स्वगव नामपर हान-वाला मुँहग्रीवर या दूमर त्याम की गई पशु हत्याग्रों तथा नाटक जमी क्रियाग्रोमें वृद्धि वगावत करा लगी था। उपनिषदन यागाका स्थान थाडा नीचाकर ब्राह्मणानका उँच स्थानपर रख ब्राह्मणाक। नय धम (=ब्रह्मवाद)का पुराहित नी। नी बनाया बल्कि पुरान यज्ञ-यागाका पिनयाणका नायन मान पुरानी पुरोहिताका मा हाथस नहा जान दिया। अब बुद्धका समय ग्राया। नात-पाना ग्रौर ग्राथिक विन्मताग्रोमे उत्पन्न हुए ग्रसन्तापान धार्मिक विद्रोहका रूप धारण किया। अजित कशकम्बली जम भौतिकवादी तथा बुद्ध जस प्रतीत्य-समुत्पाद प्रचारक बुद्धिवादीन पुरान धार्मिक विश्वासोपर जबदस्त प्रहार किय। कूपमडूकता भौगालिक ही नहीं बौद्धिक क्षत्रमें भा टूटन लगी। फिर यूनानियो शका तथा दूसरी ग्राकर बस जानवाली ग्रागन्तुक जातियान इस बौद्धिक यद्धका ग्रौर उग्र कर दिया। ग्रब याज्ञवल्क्य ग्रौर ग्रारुणिकी शिक्षाग्रोमे गार्गीका सिर गिरानका भय दिखाना प्रश्न ग्रौर सन्देहकी सीमाग्रोका रोका नहीं जा सकता था। नवागन्तुक जातियाँ जब यहाँ बसकर भारतीय बन गइ, ता फिर ग्रपन-ग्रपन धर्मोको बौद्धिक भित्तिपर तर्कसम्मत सिद्ध करनेकी कोशिश की गई। बुद्धक बाद भी मौर्योके उत्तराधिकारी ग्रौर प्रतिद्वद्वी शुगोन ग्रश्वमेध यज्ञ तथा दूसर यागाका पुनरुज्जीवित करना चाहा था। मथुरामें शककालके भी यज्ञ-यूप मिल ह। इस तरह जमिनिक समय यज्ञ-सस्था लुप्त नहा हो गइ थी। लकिन उसका ह्रास हुग्रा था ग्रौर भविष्यका सकट ग्रौर भा प्रबल था जिसको रोकनक लिए कणादन हलका ग्रौर जमिनिन भारी प्रयत्न किया। जमिनिके बाद गुप्तकालम लाक प्रसिद्धिके लिए यज्ञ राजाग्रो ग्रौर धनियाको बड साधक मालूम हुए, जिसम इनका प्रचार ग्रच्छा रहा। किन्तु इसी कालन वसुबधु (४०० ई०) दिग्नाग (४२५ ई०) जस स्वतत्रचता ताकिकाको पदा किया जिससे फिर ब्राह्मणाकी यज्ञ-जीविकापर एक भारी सकट ग्रान उपस्थित हुग्रा ग्रौर तब कुमारिलने जमिनिके पक्षमें तलवार उठाई।

कुमारिलने मीमांसा दर्शनमें कोई भारी-तत्त्व निर्माण नहीं किया बल्कि जैमिनिके सिद्धान्तोंको युक्ति और व्यापक और पुष्ट करना चाहा। कुमारिलके लड़ाका जीवनको हम उसके प्रतिद्वन्द्वी समकालीनके प्रकरणमें देखेंगे।

यद्यपि इस प्रकार मीमांसाने वैदिक कर्मकाण्डको जीवित रखनेका बहुत प्रयत्न किया किन्तु उसके ह्रासको नहीं रोका जा सका। उसमें एक कारण था—ब्राह्मणोंके अनुयायियोंमें भी मन्दिरों और मूर्तियोंकी अधिक सर्वप्रियता। बल्कि पुरोहित देवल या पुजारी बनकर दक्षिणा कम करनेके लिए तैयार न था दूसरी ओर यजमान भी अग्निष्टोम बिना पिला मामूली पत्थर या गूगलके धूपका मढ़ाकर अपनी कीर्तिको उतना चिरस्थायिनी नहीं होते देखता था जितना कि उनके सबसे बड़ा किया देवगर्भरिक या बैजनाथ (कांगड़ा)का मंदिर उसे कर सकता था।

सप्तदश अध्याय

ईश्वरवादी दर्शन

नये युगके अनीश्वरवादी दर्शनोंके बारेमें हम बतला चुके, अब हम इस युगके ईश्वरवादी दर्शनोंको लेते हैं। इन्हें हम बुद्धिवाद, रहस्यवाद और शब्दवाद—तीन श्रेणियोंमें बाँट सकते हैं। अक्षपाद गौतमका न्याय शास्त्र बुद्धिवादी है, पतंजलिका योग रहस्यवादी दर्शन है, बल्कि दर्शनकी अपेक्षा उसे योग-युक्तिकी गुटका समझना चाहिए। बादरायणका वेदान्त शब्दवादी है।

§१–बुद्धिवादी न्यायकार अक्षपाद (२५० ई०)

१–अक्षपादकी जीवनी

अक्षपादके जीवनके बारेमें भी हम अंधेरेमें हैं। डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण[1]ने मेधातिथि गौतमको आन्वीक्षिकी (=न्याय)का आचार्य बतलाते हुए उनका काल ५५० ई० पू० साबित करना चाहा है, और दर्भंगाके गौतम-स्थानको[2] उनका जन्मस्थान बतला, उन्होंने वहाँकी तीर्थयात्रा भी कर डाली। ऐसा गौतमस्थान सारन (छपरा जिला)में सरयूके दाहिने तटपर गोदना भी है, जहाँ कार्तिकके महीनेमें भारी मेला लगता है।[3]

---

[1] Indian Logic, p. 17 [2] दर्भंगासे २८ मील पूर्वोत्तर।
[3] गौतम-स्थानमें चैत्रमें मेला लगता है।

अक्षपाद ऋषि मेधातिथि गौतम और उपनिषद्के ऋषि नचिकेता गौतमको मिला करके उनका आश्वलायनके सूत्र ध्याता मेधातिथि गौतमका न्याय लिखा है। तर्कविद्याका आन्वीक्षिकी स्पष्टतया पहिले, कौटिल्य (३०० ई० पू०)के समय भी मुमकिन है कहा जाता है। तर्कवादियों (=तार्किक और मीमांसक) नामसे पाली ब्रह्मजाल-सुत्तमें[1] भी आता है किन्तु इनसे हम जैमिनिके मीमांसा का अस्तित्व उस समय स्वीकार नहीं कर सकते। जिस न्यायसूत्रको हम अक्षपादके न्यायसूत्रके रूपमें पाते हैं उससे पहिले भी क्या कोई व्यवस्थित शास्त्र था इसका कोई पता नहीं।

न्यायसूत्रके कर्त्ता अक्षपाद (आँखका काम पैरसे लेनेवाले पर) हैं। न्यायवार्तिक (उद्योतकर ५५० ई०) और न्यायभाष्यकार (वात्स्यायन ३०० ई०)में न्यायसूत्रकारको इसी नामसे पुकारा गया है।[2] किन्तु श्रीहर्ष (नैषधकार ११६० ई०)के समय न्यायसूत्रकारका नाम गोतम (? गौतम) भी प्रसिद्ध था।[3] दोनोंकी संगति गौतम गोत्री अक्षपादसे ही जाती है।

अक्षपादके समयके बारेमें हम इतना ही कह सकते हैं कि वह नागार्जुनसे पीछे हुए थे। माध्यमिकाचार्य नागार्जुनने अपनी विग्रहव्या-

---

[1] सुत्तपिटक, दीघनिकाय १।१

[2] "यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद ।"
—न्यायवार्तिक (आरम्भ),
"योऽक्षपादमृषिं न्याय प्रत्यभाद वदतां वरम् ।
तस्य वात्स्यायन इति भाष्यजातमवर्त्तयत ॥"

[3] "मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम् ।
गोतमं तमवेत्येव यथा वित्थ तथैव सः ॥"
—नैषध १७।७५

विग्रहव्यावर्त्तनी[1]में परमार्थ रूपसे प्रमाणकी सत्ता न माननेके लिए जो युक्तियाँ दी हैं अक्षपादने न्यायसूत्रमें उनका खंडन कर परमार्थ प्रमाणको साबित करनेकी चेष्टा की है जिसका अर्थ इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि न्यायसूत्र नागार्जुनके बाद बना।

२—न्यायसूत्रका विषय संक्षेप

न्यायसूत्रके वर्णनकी शैली ऐसी है कि पहले ग्रंथकार प्रतिपाद्य विषयोंके नामोंकी गिनती और लक्षण बतलाता है फिर पीछे युक्ति (=न्याय) से परीक्षा करके बतलाता है कि उसका मत ठीक है और विरोधीका मत गलत है। न्यायसूत्रमें पाँच अध्याय और प्रत्येक अध्यायमें दो-दो आह्निक हैं। इनमें सूत्रोंकी संख्या निम्न प्रकार है—

अध्याय	आह्निक	सूत्र संख्या	
१	१	४१	६१
	२	२०	
२	१	६९	१३८
	२	७[illegible]	
	१	७२	१४५
	२	७२	
४	१	६८	१२०
	२	५१	
५	१	४३	६८
	२	२५	
			५३३

अध्यायोंमें कही गई बातें निम्न प्रकार हैं—

१ प्रतिपाद्यका सामान्य कथन — अध्याय १

---

[1] "विग्रहव्यावर्त्तनी" J B O R S, Vol XXIII Preface, pp iv v

(१) प्रतिपाद्य विषयोंका सामान्य तौरसे वर्णन	अध्याय १
(२) प्रतिपादनके लिए युक्त और अयुक्त बातें	१
२ परीक्षा[1]	२-५
(१) प्रमाणोंकी परीक्षा	२
(२) प्रमेयों (=प्रमाणके विषयों)की परीक्षा	३-४
(क) न्यायसम्मत वस्तुओंकी परीक्षा	३
(ख) धार्मिक धारणाओंकी परीक्षा	४
(३) अयुक्त वाद-नीतियोंकी परीक्षा	५

---

[1] इस संक्षेपको और विस्तारसे जाननेके लिए निम्न पंक्तियोंको अवलोकन करें—

अध्याय	आह्निक	विषय	सूत्रांक
१		न्यायसूत्रके प्रतिपाद्योंकी नाम-गणना	१
१	१	अपवर्ग (=मुक्ति) प्राप्तिका क्रम	२
		(१) (चारों) प्रमाणोंकी नाम-गणना	३
		प्रमाणोंके लक्षण	४-८
		(२) प्रमेयों (=प्रमाणके विषयों)की नाम-गणना	९
		प्रमेयोंके लक्षण	१०-२२
		(३) संशयका लक्षण	२३
		(४) प्रयोजनका लक्षण	२४
		(५) दृष्टान्तका लक्षण	२५
		(६) सिद्धान्तका लक्षण	२६
		सिद्धान्तोंके भेद और उनके लक्षण	२७-३१
१	२	(७) साधक वाक्योंके अवयवोंकी नाम-गणना	३२
		उनके लक्षण	३३-३९
		(८) तर्कका लक्षण	४०
		(९) निर्णयका लक्षण	४१

न्यायसूत्रके प्रतिपाद्य विषय या पदार्थ सोलह है जो कि पहिले अध्याय-के दोनों आह्निकोंमें दिये हैं। इनमें चार प्रमाणों और ग्यारह प्रमेयोंपर

अध्याय	आह्निक	विषय	सूत्रांक
१	२	(१०) वाद (=ठीक बहस)का लक्षण	१
		(११) जल्पका लक्षण	२
		(१२) वितंडाका लक्षण	३
		(१३) गलत हेतुओं (=हेत्वाभासों)की नाम-गणना	४
		हेत्वाभासोंके लक्षण	५ ६
		(१४) छलका लक्षण	१०
		छलके भेद	११
		उनके लक्षण	१२ १७
		(१५) जाति (=एक तरहका गलत हेतु)का लक्षण	१८
		(१६) निग्रह-स्थान (=पराजयके स्थान)का लक्षण	१६
		जाति निग्रहस्थानकी बहुता	२०
२	१	संशयकी परीक्षा	१ ७
		(१) प्रमाण-परीक्षा (सामान्यतः)	८ १६
		(क) प्रत्यक्ष प्रमाणके लक्षणकी परीक्षा	२० २६
		प्रत्यक्ष अनुमान नहीं है	३० ३२
		[पूर्ण (=अवयवी) अपने अंशोंसे अलग है]	३३-३६
		(ख) अनुमानप्रमाण-परीक्षा	३७-३८
		(काल पदार्थ है)	३६ ४३
		(ग) उपमान प्रमाणकी परीक्षा	४४ ४८
		(घ) शब्द प्रमाणकी परीक्षा	४६ ६६
२	२	प्रमाण चार ही है	१ १२
		(बोले जानेवाले वर्ण नित्य नहीं है)	१३ ५६
		पद क्या है	६०

पर बहुत जोर दिया गया है यह इससे मालूम होता है कि पाँच अध्यायोंमें तीन अध्याय (२-४) तथा ५३३ सूत्रोंमें ४०४ सूत्र इन्हींके बारेमें लिखे गये हैं।

अध्याय	आह्निक	विषय	सूत्रांक
		पदार्थ (=गाय आदि पदोंके विषय) क्या है?	६१-७०
३	१	(१) आत्मा है	१-२७
		(आँखोंके दो होनेपर भी चक्षु इंद्रिय एक है)	(८-१५)
		(२) शरीर क्या है?	२८-२९
		(३) इंद्रियाँ भौतिक हैं	३०-५०
		(आँख आगसे बनी है)	(३०-३६)
		इंद्रियाँ भिन्न भिन्न हैं	५१-६०
		(४) अर्थों (=इंद्रियोंके विषयों) की परीक्षा	६१-७१
३	२	(५) बुद्धि (=ज्ञान) अनित्य है	१-५६
		(बौद्धोंके क्षणिकवादकी परीक्षा)	(१०-१७)
		(६) मन है	५७-६०
		[=अदृष्ट (देहान्तर और कालान्तरमें भोग पानेका कारण) है]	६१-७३
		(७) प्रवृत्ति (=कायिक, वाचिक, मानसिक कर्म, या धर्म-अधर्म) की परीक्षा	१
		(८) दोष क्या है?	२-९
		(दोषके तीन भेद—राग, द्वेष, मोह)	(३)
		(९) प्रेत्यभाव (=पुनर्जन्म) है	१०-१३
		(बिना हेतु कुछ नहीं उत्पन्न होता)	१४-१८
		(ईश्वर है)	१९-२१
		अ-हेतुवादका खंडन	२२-२४

३—अक्षपादके दार्शनिक विचार

न्यायसूत्रके प्रतिपाद्य विषयोंपर संक्षेपमें भी लिखना यहाँ संभव नहीं है तो भी दार्शनिक विचारोंके अनुशीलनके लिए हम यहाँ उसकी कुछ बातोंपर प्रकाश डालना चाहते हैं।

अध्याय	आह्निक		विषय	सूत्रांक
			(सभी अनित्य हैं ?)	२५-२८
			(सभी वस्तुएँ नित्य हैं ?)	२९-३३
			(सभी वस्तुएँ अपने भीतर भी अलग अलग हैं ?)	३४-३६
			(सभी शून्य हैं ?)	३७-४०
			(प्रतिज्ञा, हेतु आदि एक नहीं हैं)	४१-४३
		(१०)	(कर्म) फल होता है	४४-५४
		(११)	दुःख-परीक्षा	५५-५८
		(१२)	अपवर्ग (=मुक्ति) है	५९-६९
४	२		पूर्ण [=अवयवी] अंशोंसे अलग है	१-१५
			परमाणु	१६-२५
			विज्ञानवादियोंका बाहरी जगतसे इन्कार गलत है	२६-३७
			तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेका उपाय	३८-५१
			जल्प, वितंडा जैसी गलत बहसोंकी भी जरूरत है	५०-५१
५	१		जातिके भेद	१
			उनके लक्षण आदि	२-४३
	२		निग्रह-स्थानके भेद	१
			उनके लक्षण आदि	२-२५

क. प्रमाण

(१) प्रमाण—सच्चे ज्ञान तक पहुँचनेके तरीकेको प्रमाण कहा जाता है। अक्षपाद प्रमाणको सापेक्ष नहीं परमार्थ अर्थमें लेते हैं, जिस पर (नागार्जुन जैसे) विरोधियोंका पहिले ही से आक्षेप था—[1]

पूर्वपक्ष—प्रत्यक्ष आदि (परमार्थ रूपेण) प्रमाण नहीं हो सकते, क्योंकि तीनों कालों (=भूत भविष्यत् वर्तमान)में वह (किसी) बात (=प्रमेय—ज्ञेय बात)को नहीं सिद्ध कर सकते।—(क) यदि प्रमाण (प्रमेयसे) पहिलेहीसे सिद्ध है, (तो ज्ञान रूप प्रमाणके पहिले ही सिद्ध होनेसे) इन्द्रिय और विषय (=अर्थ)के संयोगसे प्रत्यक्ष (ज्ञान) उत्पन्न होता है यह बात गलत हो जाती है। (ख) यदि प्रमाण (प्रमेयके सिद्ध हो जानेके) बाद सिद्ध होता है तो प्रमाणसे प्रमेय (ज्ञातव्य सच्चा ज्ञान) सिद्ध होता है यह बात गलत है। (ग) एक ही साथ (प्रमाण और प्रमेय दोनों)की सिद्धि माननेपर (एक ही साथ दो ज्ञान (=बुद्धि) होता है यह मानना पड़ेगा फिर) ज्ञान (=बुद्धि) क्रमशः उत्पन्न होती है (अर्थात् एक समय मनमें सिर्फ एक ज्ञान पैदा होता है) यह (तुम्हारा सिद्धान्त) नहीं रहेगा।

इन चार सूत्रोंमें किये गए आक्षेपोंका उत्तर पाँच सूत्रोंमें[2] देते हुए कहते हैं—

उत्तरपक्ष—(क) तीनों कालोंमें (=प्रमाण) सिद्ध नहीं है, ऐसा माननेपर (तुम्हारा) निषेध भी ठीक नहीं होगा। (ख) सारे प्रमाणोंका निषेध करनेपर निषेध नहीं किया जा सकता (क्योंकि आखिर निषेध भी प्रमाणकी सहायतासे ही किया जाता है)। (ग) उस (=अपने मतलबवाले प्रमाण)को प्रमाण माननेपर सारे प्रमाणोंका निषेध नहीं हुआ। (घ) तीनों कालों (=पहिले पीछे और एक कालमें जो) निषेध (आपने

---

[1] न्यायसूत्र २।१।८-१२ [2] वहीं २।१।१२-१६

किया है, वह) नहीं किया जा सकता आखिर पीछे जिस शब्द (की सिद्धि सुनकर हम होती ह उस)से (पहिलमे स्थित) बाजा सिद्ध होता है। (इसी तरह एक साथ होनेवाले धुए और आगमे धुएँके देखनेसे आगकी सिद्धि होती है)। (ङ) प्रमेय (=ज्ञेय) होनेसे कोई किसी वस्तुके प्रमाण होनेमें बाधक नहीं होता, जसे तोला (का बटखरा मासा या रत्तीमे तोलते वक्त प्रमेय हो सकता ह किन्तु मापही वह स्वय माप=प्रमाण है इसमे सन्देह नहीं)।

इसपर फिर आक्षेप होता है—

पूर्वपक्ष[1]—(क) प्रमाणसे (दूसरे) प्रमाणकी सिद्धि माननेपर (फिर उस पहिले प्रमाणकी सिद्धिके लिए) किसी और प्रमाणकी सिद्धि करनी पड़ेगी। (ख) इस (बात)मे इन्कार करनेपर जसे (बिना प्रमाणके किसी बातको) प्रमाण मान लिया उसी तरह प्रमेयको भी (स्वत) सिद्ध मान लेना चाहिए।

उत्तर पक्ष[2]—(आपका आक्षेप ठीक) नहीं है दीपकके प्रकाशकी भाति (प्रमाण) स्वत अपनी सत्ताको सिद्ध करते हुए दूसरी वस्तुओंकी सत्ताको भी सिद्ध करता ह।

इस तरह अक्षपादने प्रमाणको परमार्थरूपेण प्रमाण सिद्ध करना चाहा है यद्यपि आजके सापेक्षतावादी युगमे परमार्थ नामधारी किसी सत्ताको साबित करना टेढ़ा और ऐसा सापेक्ष प्रमाण ऐसा सिक्का ह, जिसे प्रवृत्ति स्वीकार करती है इसलिए व्यवहार (=अर्थक्रिया)में बाधा नहीं होती।

(२) **प्रमाणकी संख्या**—अक्षपादने प्रमाण चार माने हैं[3]—प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द। दूसरे प्रमाणशास्त्री चारसे अधिक प्रमाणोंको भी मानते हैं—जसे इतिहास अर्थापत्ति (=अर्थसे ही जिसको सिद्ध समझा जाय जसे मोटा देवदत्त दिनको बिलकुल नहीं खाता

---

[1] वहीं १।१।१७ १८ [2] वहीं १।१।१९ [3] वहीं १।१।३

से विश्वास होता है। शब्द और अर्थके वाचक संबंध किसी दूसरे प्रमाणसे नहीं ज्ञान होता, अतः शब्द और उसके वाच्य अर्थका कोई स्वाभाविक संबंध नहीं है यदि संबंध होता तो लड्डू कहनेसे मुंहका लड्डूसे भर जाना, आग कहनेसे मुंहका जलना, असूला कहनेसे मुंहका चीरा जाना देखा जाता।

पूर्वपक्ष'—शब्द और अर्थके बीच संबंधकी व्यवस्था है, तभी तो गाय शब्द कहनेसे एक खास साकार गाय अर्थका भान होता है, इसलिए शब्द और अर्थके स्वाभाविक संबंधसे इन्कार नहीं किया जा सकता।

उत्तर'—स्वाभाविक संबंध नहीं है, किन्तु सामयिक (=मान लिया गया) संबंध जरूर है जिसके कारण वाच्य अर्थका ज्ञान होता है। यदि शब्द अर्थका संबंध स्वाभाविक होता, तो दुनियाकी सभी जातियों और देशोंमें उस शब्दका वही अर्थ पाया जाता जैसे आग पदार्थ और गर्मीके स्वाभाविक संबंध होनेसे वे सर्वत्र एकसे पाये जाते हैं।

शब्द प्रमाणको सिद्ध करनेमें अक्षपादका मुख्य मतलब है, वेद—ऋषि-वाक्यों—को प्रत्यक्ष अनुमानके दर्जेका एक स्वतंत्र प्रमाण मनवाना। इसीलिए उन्होंने जहाँ प्रत्यक्ष अनुमान उपमानकी परीक्षाओंमें क्रमशः १३, २ और ४ सूत्र लिखे हैं वहाँ शब्द प्रमाणकी परीक्षामें सबसे अधिक यानी २१ सूत्र' लिखे हैं जिनमें अंतिम १२ सूत्रोंका ढंग तो करीब करीब वही है जिसका अनुकरण पीछे जैमिनिने अपने मीमांसा-सूत्रोंमें बड़े पैमानेपर किया है।

वेदकी कितनी ही बातें (यज्ञ-कर्म) झूठ निकलती हैं कितनी ही परस्परविरोधी हैं वहाँ कितनी ही पुनरुक्तियाँ भरी पड़ी हैं। अक्षपादने इसका समाधान करना चाहा है।—झूठ नहीं निकलती ठीक फल न मिलना कर्म कर्त्ता और सामग्रीके दोषके कारण होता है। परस्परविरोधी बात नहीं है दो तरहकी बात दो तरहके आदमियोंके लिए हो सकती है। पुनरुक्ति अनुवादके लिए भी हो सकती है।'

' न्याय० २।१।५५ ' वहीं २।१।४६ ६६ ' वहीं २।१।५८ ६१

फिर अक्षपादने वेदके वाक्योंको विधि, अर्थवाद और अनुवाद तीन भागोंमें विभक्त किया है। विधिका काम है कर्त्तव्यका विधान करना। विधिमें श्रद्धा जमानेके लिए अच्छेकी प्रशंसा (=स्तुति) बुरेकी निन्दा, और दूसरे व्यक्तियोंकी कृतियों तथा पुरानी बातोंका उदाहरण वेदमें बहुत मिलता है, इसको अर्थवाद कहते हैं। अनुवाद विधिवाक्यमें बतलाये शब्द या अर्थको फिरसे दुहराना है जो कि जल्दी जल्दी जाओ की भाँति विधि (=आज्ञा)को और जोरदार बनाता है इसलिए वह व्यर्थकी चीज नहीं है। अन्तमें वेदके प्रमाणमें सबसे जबर्दस्त युक्ति है—वेद प्रमाण है क्योंकि उसके वक्ता ऋषि आप्त (=सत्यवादी) होनेसे प्रामाणिक है उसी तरह जैसे कि साँप बिच्छूके मंत्रों और आयुर्वेदकी प्रामाणिकता हमें माननी पड़ती है।—आखिर मंत्रों और आयुर्वेदके वक्ता जो ऋषि हैं वही तो वेदके भी हैं।[1]

यहाँ मैंने अक्षपादकी वर्णनशैलीको दिखलानेके लिए उसका अनुकरण किया है किन्तु साथ ही समझनेकी आसानीके लिए सूत्रोंको लेते हुए भी उनके अर्थको विशद करनेकी कोशिश की है।

ख. कुछ प्रमेय

आत्मा आदि ग्यारह प्रमेय न्यायने माने हैं, इनमें मन आत्मा और ईश्वरके बारेमें हम यहाँ न्यायके मतको देंगे और कुछको जिन न्यायके धार्मिक विचारोंको बतलाते समय करेंगे।

(१) मन—यद्यपि न्यायसूत्रके भाष्यकार वात्स्यायन स्मृति, अनुमान आगम संशय प्रतिभा, स्वप्न ऊह (=तर्क वितर्क)की शक्ति जिसमें हैं उसे मन बतलाया है किन्तु अक्षपाद स्वयं इस विवरणमें न जा एक समय (अनेक) ज्ञानोंका उत्पन्न न होना मन (के अनुमान)का लिंग बतलाते हैं।[2]—अर्थात् एक ही समय हमारी आँखका किसी रूपसे संबंध है, तथा

---

[1] न्याय० २।१।६२-६९   [2] वहीं १।१।१६

उसी समय नासिका गन्धको भी, किन्तु हम एक समयमें एकका ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जिससे मालूम पड़ता है, पाँच इन्द्रियोंके अतिरिक्त एक और भीतरी इन्द्रिय है, जिसका ज्ञानके प्राप्त करनेमें हाथ है और यही मन है। एक बार एक ही ज्ञान होनेसे यह भी पता लगता है, कि मन एक और अणु है।[1] कभी एक समय अनेक क्रिया होती जानी है, यह तीव्र गतिके कारण है, जैसे कि घूमती बनेठीका जलता छोर आगका वृत्त बनाते दीख पड़ते हैं।

(७) आत्मा—वाद-न्यायके बहुत प्रमाणोंका कम करना न्यायसूत्रके निर्माणमें खास लक्ष्य अभिप्रेत था। शब्द प्रमाणकी सिद्धिमें इतना प्रयत्न इसीलिए है कि जिससे आत्मा और ईश्वरको सिद्ध करनेपर जोर भी इसीलिए है। क्योंकि इन्हीं सिद्धान्तोंके खण्डनमें बौद्ध हम भाग देंगे। मनकी तरह आत्मा भी प्रत्यक्षसे नहीं सिद्ध किया जा सकता। अनुमानसे उसे सिद्ध करनेके लिए कोई लिंग (=चिह्न) चाहिए जो कि खुद प्रत्यक्ष सिद्ध हो, साथ ही आत्मासे संबंध रखता हो। गौतमके अनुसार[2] (१) आत्माके लिंग हैं— इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान। शरीर, इन्द्रिय और मनसे अलग आत्माकी सत्ताको सिद्ध[3] करते हुए गौतम कहते हैं—(२) आँखसे देखी वस्तुको स्पर्श इन्द्रियसे छूकर भी हम एकताका ज्ञान—जिसे मैंने देखा, उसीको छू रहा हूँ—प्राप्त करते हैं, यह भी आत्माकी सत्ताको साबित करता है। (३) एक एक इन्द्रियका एक एक विषय जो बाँटा गया है, उससे भी अनेक इन्द्रियोंके ज्ञानोंके एकत्रीकरणके लिए आत्माकी जरूरत है। (४) आत्माके नित्य न होनेपर मृत शरीरके जलानेमें अपराध नहीं लगता। आत्माके नित्य होनेसे उसके साथ भी शरीरके जलानेपर आत्माका कुछ नहीं होता, यह ठीक है, किन्तु शरीरको हानि पहुँचा कर हम उसके स्वामीको हानि पहुँचाते हैं, जिससे अपराध लगना जरूरी है। (५) बाएँ आँखसे देखी चीजको दूसरी बार

---

[1] न्याय ३।२।५७-६०　　[2] वहीं १।१।१०　　[3] वहीं ३।१।१-१४

सिर्फ दाहिनीसे देखकर स्मरण करते हैं, यह आत्माके ही कारण। (६) स्वादु भोजनको आँखसे देखते ही हमारे जीभमें पानी आने लगता है यह बात स्वादकी जिस स्मृतिके कारण होती है, वह आत्माका गुण है।

यहाँ जिन बातोंसे आत्माकी सत्ताका प्रतिपादन किया गया है वह मन-पर घटित होती है।[1] इस आक्षेपका उत्तर अक्षपादने ज्ञाता (आत्मा)को ज्ञानका एक साधन (मन) भी चाहिए कहकर देना चाहा है, किन्तु, यह कोई उत्तर नहीं है। चूँकि आत्मा सर्वव्यापी (=विभु) है जिससे पाँचों इन्द्रियाँ और उनके विषयोंका जिस समय संयोग हो रहा है उस वक्त आत्मा भी वहाँ मौजूद है तब भी चूँकि विषय ज्ञान नहीं होता इससे साबित होता है कि आत्मा और इन्द्रियोंके बीच एक और अणु (=अ-सर्वव्यापी) चीज है जो कि मन है—अक्षपादकी इन्द्रिय, मन और आत्माके विषयकी यह कल्पना बहुत उलझी हुई है। अनुमानसे वह मनको सिद्ध कर सकते हैं, जिसकी सिद्धिमें हो सारे लिंग समाप्त हो जाते हैं फिर उनमेंसे ही कुछको लेकर वह आत्माको सिद्ध करना चाहते हैं जिसमें आत्मा और मन एक ही वस्तुके दो नाम भले ही हो सकते हैं किन्तु उन्हें दो भिन्न वस्तु नहीं साबित किया जा सकता।

(३) **ईश्वर**—अक्षपादने ईश्वरको अपने ११ प्रमेयोंमें नहीं गिना है और न उन्होंने कहीं साफ कहा है कि ईश्वरको वा वह आत्माके अन्तर्गत मानते हैं। ऊपर जो मनको आत्माका साधन कहा है उसमें भी यही सा जान होता है कि आत्मासे उनका मतलब जीवसे है। अपने सारे दर्शनमें अक्षपादका ईश्वरपर कोई जोर नहीं है और न ईश्वर वाले प्रकरणको हटा देनेसे उनके दर्शनमें कोई कमी रह जाती है। ऐसी अवस्थामें न्याय-सूत्रोंमें यदि क्षेपक हुए हैं तो हम इन तीन सूत्रोंको ले सकते हैं जिनमें ईश्वरकी सत्ता सिद्ध की गई है।—डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणने जहाँ न्यायसूत्रके बहुतसे भागको पीछेका क्षेपक मान लिया है फिर इन तीन सूत्रोंको क्षेपक होना

---

[1] न्याय० ३।१।१६ १७ [2] वहीं ४।१।१६ २१

बहुत ज्यादा रखी है। इस सूत्रमें भी हम देखते हैं, मनुष्यके कर्मोंका दुनियाका कर्त्ता होना न माना सकता है। पर मनुष्यके कर्मोंके फल ईश्वरके हाथमें है, ईश्वरके न होनेपर पुरुषके शुभ अशुभ कर्मोंका फल न होगा। यह सही है कि पुरुषके कर्म न होनेपर भी फल नहीं होगा, किन्तु कर्म यदि फलका कर्त्ता है, तो ईश्वर उस फलका कारयिता (=करानेवाला) है।

४—अक्षपादके धार्मिक विचार

आत्मा और ईश्वरके बारेमें न्यायसूत्रके विचारोंको हम बतला चुके हैं। शब्द प्रमाणके प्रकरणमें यह भी बतला चुके हैं कि अक्षपादका वेदकी प्रामाणिकता ही नहीं उसके विधि विधान—कर्मकांड—पर बहुत जोर था, यद्यपि कणादकी भाँति इन्होंने धर्म जिज्ञासापर ज्यादा जोर न दे तत्त्व जिज्ञासाको अपना लक्ष्य बनाया।

(१) परलोक और पुनर्जन्म

एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें आत्मा जाता है, इसका अक्षपादने समर्थन किया है।[1] मरनेके बाद आत्मा लोकान्तरमें जाता है इसके लिए आत्माका नित्य होना भी जरूरी हेतु है। परलोकमें ही नहीं इस लोकमें भी पुनर्जन्म होता है, इसे सिद्ध करनेके लिए अक्षपादने निम्न युक्तियाँ दी हैं[2]—(१) पैदा होते ही बच्चेका हर्ष भय शोक होते देखा जाता है, यह पहिले (जन्म)के अभ्यासके कारण ही होता है। यह बात पद्मके खिलने और संकुचित होनेकी तरह स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि पाँचो महाभूतोंसे बने पद्म आदिकी यही अवस्था सर्दी गर्मी वर्षा आदिके कारण होती है। (२) पैदा होते ही बच्चेको स्तन-पानकी अभिलाषा होती है, यह भी पूर्वजन्मके आहारके अभ्याससे ही होती है।

[1] न्याय० १।१।१९, ३।१।१९-२७, ४।१।१० [2] वहीं ३।१।१९-२७

(२) कर्म-फल

कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मोंसे उनका फल उत्पन्न होता है।[1] अच्छे बुरे कर्मोंका फल तुरन्त नहीं कालान्तरमें आता है। चूँकि कर्म तब तक नष्ट हो गया रहता है, इसलिए उससे फल कैसे मिलेगा?— ऐसी शंकाकी गुंजाइश नहीं, जब कि हम गेहूँके पौधेके नष्ट हो जानेपर भी उसके बीजसे अगले साल नये वृक्षको उगते देखते हैं। उसी तरह किये कर्मोंसे धर्म-अधर्म उत्पन्न होते हैं, जिनसे आगे फल मिलता है। यह धर्म-अधर्म उसी आत्मामें रहते हैं, जिसने कि शरीरसे उस कामको किया है।[2]

पहिलेके कर्मसे पैदा हुआ फल शरीरकी उत्पत्तिका हेतु है।[3] महाभूतोंसे जैसे कंकड़-पत्थर आदि पैदा होते हैं, वैसे ही शरीर भी, यह कहना मान्य नहीं है; क्योंकि इसके बारेमें कुछ विचारकोंका मत है कि सारी दुनिया भले बुरे कर्मोंके कारण बनी है। माता पिताका रज-वीर्य तथा आहार भी शरीर उत्पत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि इनके होनेपर भी नियमसे शरीर (=बच्चे)का उत्पन्न होते नहीं देखा जाता। भला-बुरा कर्म शरीरकी उत्पत्तिका निमित्त (=कारण) है, उसी तरह यह किसी शरीरके साथ किसी खास आत्माके संयोगका भी निमित्त है।

(३) मुक्ति या अपवर्ग

यज्ञ आदि कर्मकांडका फल स्वर्ग होता है, यह वेद ब्राह्मण तथा श्रौत-सूत्र आदिका मंतव्य था। उपनिषदने स्वर्गके भी ऊपर मुक्ति या अपवर्गको माना। जैमिनिने अपने मीमांसा-दर्शनमें उपनिषद्की इस नई विचारधाराको छोड़ फिर पुराने वेद-ब्राह्मणकी ओर लौटनेका नारा बुलन्द किया, किन्तु अक्षपाद उपनिषद्से पीछे लौटनेकी सम्मति नहीं देते

[1] न्याय० १।१।२०
[2] वहीं ४।१।४४-४७, ५२
[3] वहीं ३।२।६१-६६
[4] वहीं ३।२।६७

बहुत ज्यादा नहीं है। इन सूत्रोंमें भी हम देखते हैं अक्षपाद ईश्वरको दुनियाका कर्त्ता होता नहीं बना सके हैं। कर्म-फलके भोगमें ईश्वर कारण है, उसके न होनेपर पुरुषके शुभ अशुभ कर्मोंका फल न होता। यह सही है कि पुरुषका कर्म न होनेपर भी फल नहीं होता किन्तु कर्म यदि फलदा करता है, तो ईश्वर उस फलका कारयिता (=करानेवाला) है।

४—अक्षपादके धार्मिक विचार

आत्मा और ईश्वरके बारेमें न्यायसूत्रके विचारको हम कह आये हैं। शब्द प्रमाणके प्रकरणमें यह भी बतला चुके हैं, कि अक्षपादको वेदकी प्रामाणिकता ही नहीं उसके विधि विधान—कर्मकांड—पर बहुत जोर था यद्यपि कणादकी भाँति उन्होंने धर्म जिज्ञासापर ज्यादा जोर न दे तत्त्व जिज्ञासाको अपना लक्ष्य बनाया।

(१) परलोक और पुनर्जन्म

एक शरीरको छोडकर दूसरे शरीरमें आत्मा जाता है इसका अक्षपादने समर्थन किया है।[1] मरनेके बाद आत्मा लोकान्तरमें जाता है, इसके लिए आत्माका नित्य होना ही काफी हेतु है। परलोकमें ही नहीं इस लोकमें भी पुनर्जन्म होता है इसे सिद्ध करनेके लिए अक्षपादने निम्न युक्तियाँ दी हैं[2]—(१) पैदा होते ही बच्चेका हर्ष भय, शोक होते देखा जाता है, यह पहिले (जन्म)के अभ्यासके कारण ही होता है। यह बात पद्मके खिलने और संकुचित होनेकी तरह स्वाभाविक नहीं है क्योंकि पाँचों महाभूतोंसे बने पद्म आदिकी वैसी अवस्था सर्दी गर्मी वर्षा आदिके कारण होती है। (२) पैदा होते ही बच्चेको स्तन-पानकी अभिलाषा होती है, यह भी पूर्वजन्मके आहारके अभ्यासमें ही होती है।

---

[1] न्याय० ३।१।१६, ३।१।१९ २७, ४।१।१० [2] वहीं ३।१।१९ २७

ब्रह्मको एक सत् चित् और आनन्द रूप माना गया। उपनिषद्में तथा सांसारिक या स्वर्गीय आनन्द (=सुख)का एक जगह लोप किया गया है और उस लोपमें ब्रह्मानंद या मुक्तिका भान माना गया। इसके ऊपर ध्यान गया। अक्षपाद भावात्मक (=सुखमय) मुक्तिके इस तत्त्वके स्वीकार मत ग्रहण करते न इसलिए उन्होंने मुक्तिको आनंदमय—सुखाकार—न कह दुःखाभाव रूप माना है[1]—(सहजानन्द) मिथ्याज्ञान (=झूठे ज्ञान)के नाश होनेपर दोष (=राग द्वेष मोह) नष्ट होते हैं, जिसके नष्ट होनेपर धर्म अधर्म (प्रवृत्ति)का नाश होता है, धर्म अधर्मके नाश होनेपर जन्म नहीं होता, जन्म नष्ट होनेपर दुःख समाप्त होता है[2] तदनन्तर (वह) अपवर्ग अथवा (=मुक्ति) होता है। अपवर्गके स्वरूपको और स्पष्ट करते हुए दूसरी जगह कहा है — "दस [शरीर, इंद्रिय अर्थ बुद्धि मन प्रवृत्ति (क्रिया) दोष पुनर्जन्म, फल और दुःख]से छूटनेके लिए मुक्त होना अपवर्ग है।" यहाँ मुक्तावस्थामें अक्षपाद गोतमने आत्माको बुद्धि (=ज्ञान) मन और क्रियासे भी अत्यन्त रहित कहा है इसीको लेकर श्रीहर्ष (११९० ई०) ने नैषधमें उपहास किया है[3]—'जिसने सचेतनोंको मुक्तिके लिए अचेतन पत्थर हो जाना रहने वाले शास्त्रकी रचना की, वह गोतम वस्तुतः गोतम (भारी बैल) ही होगा।

(४) मुक्तिके साधन

(क) तत्त्वज्ञान—निःश्रेयस् (=मुक्ति या अपवर्ग)की प्राप्तिके लिए अक्षपादने अपना ध्यान किया यह उनके प्रथम सूत्रसे ही स्पष्ट है। जन्म-मरण (=पुनर्जन्म) या संसारमें भटकनेका कारण मिथ्या (=झूठा)-ज्ञान है, जिसे तत्त्वज्ञान (=यथार्थ या वास्तविक ज्ञान)से दूर किया जा सकता है। तत्त्वज्ञान भी किसी वस्तुका होता है उपनिषद् जहाँ तत्त्वज्ञान (=ब्रह्मज्ञान) मुक्तिके लिए जरूरी समझती है।

---

[1] न्याय० १।१।२ [2] वहीं १।१।२२ [3] नैषधचरित १७।७५

अक्षपादने प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह न्यायशास्त्र द्वारा प्रतिपाद्य पदार्थोंके वास्तव ज्ञानको तत्त्वज्ञान कहा।

तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए विद्या और प्रतिभा पर्याप्त नहीं है वह खास प्रकारकी समाधिके अभ्याससे[1] होता है। यह (खास प्रकारकी समाधि) पूर्व (=जन्म)के किये फलके कारण उत्पन्न होती है।[2] इसीके लिए 'जंगल, गुहा, नदी-तट आदि' पर योगाभ्यासका उपदेश है।[3]

(ख) मुक्तिके दूसरे साधन—मुक्तिके लिए यम नियम (=मन और इंद्रियका संयम)के द्वारा योग तथा आध्यात्मिक विधियोंसे तरहकी आत्माका संस्कार करना होता है। ज्ञान ग्रहण करनेका अभ्यास तथा उस (विषय)के जानकारोंसे संवाद (=वाद या सत्संग) करना होता है।[4]

इस प्रकार न्यायसम्मत वाद—संवाद—का प्रयोजन तत्त्वज्ञान होता है किन्तु अपने मतकी सिद्धि तथा परमतके खंडनके लिए छल आदि अनुचित तरीकेवाले जल्प एवं केवल दूसरेके पक्षके खंडनके लिए की बहस—वितंडा—का भी तत्त्वज्ञानमें जरूरत है, इसे बतलाते हुए अक्षपादने कहा है[5]—"तत्त्व-ज्ञानकी रक्षाके लिए जल्प और वितंडाकी उसी तरह जरूरत है, जैसे बीजके अंकुरोंकी रक्षाके लिए काँटोंवाली शाखाओंकी बाड़की। हमें याद है यूनानके स्तोइक दार्शनिक जेनो ईसा पूर्व तीसरी सदीमें ही कहता था[6]—दर्शन एक खेत है जिसकी रक्षाके लिए तर्क एक बाड़ है।

५—न्यायपर यूनानी दर्शनका प्रभाव

भारतमें यूनानियोंका प्रभाव ईसा-पूर्व चौथी सदीमें सिकंदरकी विजय (३२३ ई० पू०)के साथ बढ़ा लगा। चन्द्रगुप्त मौर्यने भारतसे यूनानी शासनका खात्मा कर दिया, तो भी ईसापूर्व तीसरी शताब्दीमें यवन प्रभाव कम नहीं हुआ यह अशोकके शिलालेखोंसे भी मालूम होता है, जिनमें

---

[1] न्याय० ४।२।३८ [2] वहीं ४।२।४१ [3] वहीं ४।२।४२
[4] वहीं ४।२।४६ ४७ [5] वहीं ४।२।५० [6] देखो पृष्ठ ८

भारत और यूनानी राजाओंके शासित प्रदेशोंमें घनिष्ट संबंध स्थापित करनेका काम आता है। और मौर्य साम्राज्यकी समाप्तिके बाद उसके पश्चिमी भागका तो शासन ही हिन्दूकुशपारवाले यूनानियों (मीनान्दर)के हाथमें चला गया। ईसापूर्व दूसरी शताब्दीमें यूनानी और भारतीय मूर्तिकलाके मिश्रणसे गंधारकला उत्पन्न होती है और ईसाकी तीसरी सदी तक अटूट चला आता है। कलाके क्षेत्रमें दोनों जातियोंके आदानप्रदानका यह एक अच्छा नमूना है, और साथ ही यह यह भी बतलाता है कि भारतीय दूसरे देशोंसे किसी ज्ञानको सीखनेमें पिछड़े नहीं थे। पिछली सदियोंमें कुछ उलटी मनोवृत्ति ज्यादा बढ़ने लगी थी जरूर, और इसीलिए वराह मिहिरको[1] इस मनोवृत्तिके विरुद्ध कलम उठानेकी जरूरत पड़ी। कला ही नहीं, आजका हिन्दू ज्योतिष भी यूनानियोंका बहुत ऋणी है। यह हो नहीं सकता था कि भारतीय दार्शनिक यूनानके उन्नत दर्शनसे प्रभावित न होते। यूनानी प्रभावके कुछ उदाहरण हम वैशेषिक प्रकरणमें देख आए हैं। अक्षपादने न्यायशास्त्रके आरम्भ "अरस्तूकी रचनाके लिए (कोशिश) वाद का आधार। इस तरह उधार ले लिया इसे हमने अभी देखा। महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभूषणने अपने लेख[2] 'अरस्तूके तर्कशास्त्रीय सिद्धान्तोंका सिकन्दरिया (मिस्र)से भारतमें आना' में दिखलाया है कि १७५ ई० पूर्वसे ६०० ई० तक किस तरह अरस्तूके तर्कने भारतीय न्यायको प्रभावित किया। सिकन्दरियाके प्रसिद्ध पुस्तकालयके पुस्तकाध्यक्ष कलिमक्खुसने २८५-२४० ई० पूर्वमें अरस्तूके ग्रंथोंकी प्रतियाँ पुस्तकालयमें जमा कीं। दूसरी तरफ स्यालकोट(=सागल) यूनानी राजा मिनान्दरकी राजधानी था, और मिनान्दर स्वयं तर्क और शास्त्रका पंडित था यह हम बतला आए हैं। उस समय भारतके यूनानियोंमें अरस्तूके तर्कका

---

[1] बृहत्संहिता २।१४ "म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः॥"

[2] Indian Logic Appendix B, p 511-13

प्रचार होना बिलकुल स्वाभाविक बात है। यूनानी स्वयं बौद्ध धर्मसे प्रभावित हुए थे, इसलिए उनके नक्श यदि नागसेन, अश्वघोष नागार्जुन, वसुबंधु दिग्नाग प्रभावित हुए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। अक्षपादने भी उससे बहुत कुछ लिया है यहाँ इसके चंद उदाहरण हम दे जा रहे हैं।—

(१) अवयवी

अवयव (=अंग) मिलकर अवयवी (=पूर्ण)को बनाते हैं अर्थात् अवयवी अवयवोंका योग है। यूनानी दार्शनिक अवयवी[1]को एक स्वतंत्र वस्तु मानते थे। अक्षपादने भी उनके इस विचारको माना है। प्रमाणसे हम सापेक्ष नहीं परमार्थ ज्ञान पा सकते हैं यह अक्षपादका सिद्धान्त है। प्रत्यक्ष प्रमाणसे प्राप्त ज्ञानको भी वह इसी अर्थमें लेते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष जिस इंद्रिय और विषयके संयोगसे होता है वह संयोग विषयके सारे अवयव (वृक्षके भीतरी-बाहरी छोटेसे छोटे सभी अंगों—परमाणुओं)के साथ नहीं होता इसलिए जो प्रत्यक्ष ज्ञान होगा वह सारे विषय(=वृक्ष)का नहीं हो सकता। ऐसी अवस्थामें यह नहीं कहा जा सकता कि हमने सारे वृक्षका प्रत्यक्ष ज्ञान कर लिया हम तो सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि वृक्षके एक बहुत थोड़ेसे बाहरी भागका हमें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ है। लेकिन अक्षपाद इसको माननेके लिए तयार नहीं हैं। उनका कहना है,—(वृक्षके) एक देशका ज्ञान नहीं (सारे वृक्षका ज्ञान होता है) क्योंकि अवयवीके अस्तित्व होनेसे (हम अखंड वृक्षको देख लेते हैं)।[2] अवयवी (सिद्ध नहीं) साध्य है इसलिए उस (की सत्ता)में सन्देह है।[3] इस उचित सन्देहको दूर करनेके लिए अक्षपादने कहा—

---

[1] Whole [2] न्याय० २।१।३२ [3] वहीं २।१।३३
[4] वहीं २।१।३४ ३६

सभी (पदार्थों)का ग्रहण (=ज्ञान) नहीं होगा, यदि हम (अवयवोंसे) अवयवी (की अलग सत्ताको) न मानें। धारने तथा खींचनेसे भी सिद्ध होता है (कि अवयवोंसे अवयवी अलग है, क्योंकि धारने या खींचने वक्त हम वस्तुके एक अवयवको ही स्पर्श करते हैं किन्तु धारने या खींचनेमें सारी वस्तु)। (यह नहीं कहा जा सकता कि) जैसे सेना या वन (अलग अलग अवयवों—सिपाहियों या पेड़ों—का समुदाय मात्र होने पर भी उन)का ज्ञान होता है (वैसे ही यहाँ भी परमाणु-समूहका प्रत्यक्ष होता है), क्योंकि परमाणु अतीन्द्रिय (अत्यन्त सूक्ष्म) होनेसे इन्द्रियके विषय नहीं हैं।

अवयवीको सिद्ध करते हुए दूसरी जगह[1] भी अक्षपादने लिखा है—

पूर्वपक्ष— (सन्देह हो सकता है कि अवयवीमें अवयव) न (तो) सबमें है न एक देशमें भी रहते हैं इसलिए अवयवोंमें अवयवीका अभाव (मानना पड़ेगा)। अवयवोंमें न भी रहनेसे भी अवयवीका अभाव (सिद्ध होता है)। अवयवोंसे पृथक् अवयवी हो नहीं सकता, और न ही अवयव ही अवयवी है।'

उत्तर—एक (अखंड अवयवी वस्तु)में (एक देश और सबका) भेद नहीं होता इसलिए भेद शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता, अतएव (अवयवीमें सबमें या एक देशमें रहनेका जो) प्रश्न (उठाया गया है, वह) हो नहीं सकता। दूसरे अवयवमें (अवयवीके) न भी रहनेपर भी (एक देशमें) न रहनेसे (वह अवयवीके न होनेका) हेतु नहीं है।"

पूर्वपक्ष— (एक एक अवयवके देखनेपर भी समूहमें किसी वस्तुको देखा जा सकता है)। जैसे कि तिमिरान्ध (आदमी एक एक केशको नहीं देखता किन्तु केश-समूहको देखता है उसी तरह अवयव-समूहमें) उस वस्तुकी उपलब्धि (=प्राप्ति) हो सकती है (फिर अवयव-समूहसे अलग अवयवीके माननेकी क्या आवश्यकता ?)

---

[1] न्याय० ४।२।७ १७

उत्तर—'विषयके ग्रहणमें (किसी आन आदि) इन्द्रियका तेज मद्धिम होनेसे अपने विषयको बिना छोड़े वैसा (तेज मद्धिम जैसा) होता है, (उस अपने) विषयसे बाहर (इन्द्रियकी) प्रवृत्ति नहीं होती। (केश और केश-समूह एक तरहके विषय होनेसे वहाँ आँखकी तेजी या मद्धिमपन (=आवरण)का प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु परमाणु कभी आँखका विषय ही नहीं है इसलिए वहाँ तेजी मन्दीका सवाल नहीं हो सकता। अतएव अवयवीकी अलग ही सत्ता माननी पड़ेगी)।

(परमाणुवाद—)

पूर्वपक्ष—अवयवोंमें अवयवीका होना तभी तक रहेगा जब तक कि प्रलय नहीं हो जाता।

उत्तर—'प्रलय (तक) नहीं क्योंकि परमाणुकी सत्ता (अन्तिम इकाईकी भाँति उस वक्त भी रहती है)। (अवयव और अवयवीका विभाग) त्रुटि (=परमाणुसे बनी दूसरी इकाई) तक है। परमाणुमें अवयव नहीं होता अवयव तो तब शुरू होता है जब अनेक परमाणु मिलते हैं और अवयव उनके बाद अवयवी भी आन उपस्थित होता इसी त्रुटिसे अवयवोंका आरम्भ होता है।

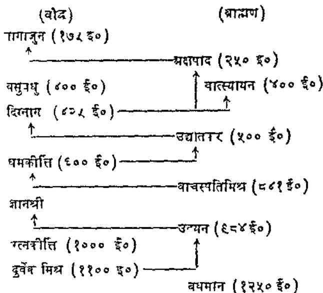
यहाँ हमने देखा परमार्थ-ज्ञानके फेरमें पड़कर अक्षपादको अवयवोंके भीतर अवयवोंसे परे एक पृथक् पदार्थ सिद्ध करनेकी कोशिश करनी पड़ी, यदि सापेक्ष-ज्ञानसे वह संतुष्ट होते—और वह अर्थक्रिया (=व्यवहार)के लिए पर्याप्त भी है—तो ऐसी क्लिष्ट कल्पनाकी जरूरत नहीं पड़ती।

(२) काल

अक्षपादने कालको एक स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं की, किन्तु उनके अनुयायी विशदकर उद्योतकर (६०० ई०)ने[1] कालको एक

---

[1] "न्यायवार्तिक" २।१।३८ (चौखम्बासिरीज, पृष्ठ २५३)



बौद्ध अनात्मवादी अनीश्वरवादी तथा दो प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान) वादी हैं, साथही वह प्रमाणको भी परमार्थ नहीं सापेक्ष तौरपर मानते हैं। अक्षपादके सिद्धान्त उनके विरुद्ध हैं यह हम बतला आए हैं। यहाँ बौद्धोंके दूसरे सिद्धान्तोंका अक्षपादने किस तरह खंडन किया है, इसके बारेमें लिखेंगे।

(१) क्षणिकवाद-खंडन[1]—सब कुछ क्षणिक है यह सिद्धान्त पक्का (=एकान्त) नहीं है, क्योंकि कितनी ही चीजें क्षणिक (=क्षण क्षण परिवर्तनशील) देखी जाती हैं, और कितनी ही नहीं, जैसे कि शरीरमें नया नया परिवर्तन होता है स्फटिक (=बिल्लौर) में वैसा नहीं देखा जाता। परिवर्तन भी (बौद्धोंके सिद्धान्तके अनुसार) बिना कारण (=हेतु) के नहीं

[1] न्याय० ३।२।१० १७ का भाव

होता, बल्कि कारणके रहते होता है, जैसे कि कारणरूप दूध मौजूद रहनेपर ही दही उत्पन्न होता है।

(२) **अभाव अहेतुक नहीं**—बौद्ध दर्शनका कार्य-कारणके संबंधमें अपना खास सिद्धांत है, जिसे प्रतीत्य-समुत्पाद[1] (=विच्छिन्न प्रवाह) कहते हैं, अर्थात् कार्य और कारणके भीतर कोई वस्तु या वस्तुसार नहीं है, जो कि कारण (दूध)की अवस्थामें भी हो कार्य (=दही)की अवस्थामें भी। प्रतीत्य समुत्पादके अनुसार पहिले एक वस्तु (=दूध) होकर आमूल नष्ट हो गई (इसे कारण कह लीजिए), फिर दूसरी वस्तु (दही) जो पहिले बिलकुल न थी सर्वथा नई पैदा हुई, इसे कार्य कह लीजिए। इस प्रकार कार्य अपने प्रादुर्भावसे पहिले बिलकुल अभाव रूप था। अक्षपादने इस 'अभावसे भाव उत्पत्ति' का खंडित किया, यद्यपि यहाँपर ख्याल रखना चाहिए कि बौद्ध-दर्शन अत्यन्त विनाश और सर्वथा नये उत्पादको मानते भी विनाश उत्पत्ति विनाश उत्पत्ति......—इस प्रवाह (=सन्तान) को स्वीकार करता है।

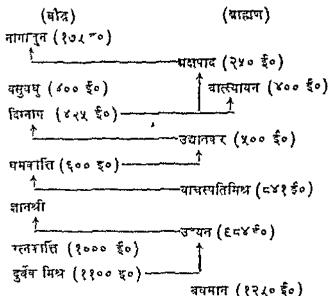
अभावसे भावकी उत्पत्ति होती है, क्योंकि बिना (बीजके) नष्ट हुए (अंकुरका) प्रादुर्भाव नहीं होता[2]—इन शब्दोंमें बौद्ध विचारको रखते अक्षपादने इसका खंडन इस प्रकार किया है[3]—

नष्ट और प्रादुर्भाव (में से एक) अभाव और (दूसरा) भावरूप होनेसे दो परस्पर विरोधी बातें हैं, जो कि एक ही वस्तु (=बीज)के लिए नहीं इस्तेमाल की जा सकती। जो बीज वस्तुतः नष्ट हो गया है, उससे अंकुर नहीं उत्पन्न होता, इसलिए अभावसे भावकी उत्पत्ति कहना गलत है। पहिले बीजका विनाश होता है पीछे अंकुर उत्पन्न होता है, यह जो क्रम देखा जाता है, वह बतलाता है, कि अभावसे भावकी उत्पत्ति नहीं होती, यदि वैसा होता तो बीज अंकुर क्रमकी जरूरत ही क्या थी?

प्रवाह स्वीकार करनेमें बौद्ध क्रमको भी स्वीकार करते हैं, इसलिए

---

[1] देखें पृष्ठ ५१२　　[2] वहीं ४।१।१४　　[3] वहीं ४।१।१५ १८



बौद्ध अनात्मवादी, अनीश्वरवादी तथा दो प्रमाण (प्रत्यक्ष अनुमान) वादी हैं, साथही वह प्रमाणको भी परमार्थ नहीं सापेक्ष तौरपर मानते हैं। अक्षपादके सिद्धान्त उनसे विरुद्ध हैं यह हम बतला आए हैं। यहाँ बौद्धोंके दूसरे सिद्धान्तोंका अक्षपादने किस तरह खंडन किया है, इसके बारेमें लिखेंगे।

(१) क्षणिकवाद-खंडन[1]—सब वस्तु क्षणिक हैं यह सिद्धान्त पक्का (=एकान्त) नहीं है क्योंकि कितनी ही चीजें क्षणिक (=क्षण क्षण परिवर्तनशील) देखी जाती हैं और कितनी ही नहीं, जैसे कि शरीरमें नया नया परिवर्तन होता है, स्फटिक (=बिल्लौर) में वैसा नहीं देखा जाता। परिवर्तन भी (बौद्धोंके सिद्धान्तके अनुसार) बिना कारण (=हेतु) के नहीं

---

[1] न्याय० ३।२।१०-१७ का भाव

यह हम बतला आए हैं,[1] इसलिए विज्ञानवादके खंडनसे अक्षपादका असंगसे पार्थक्य दिखलानेकी जरूरत नहीं।

'बुद्धिसे विवेचन करनेपर वास्तविकता (=याथात्म्य)का ज्ञान होता है; जैसे (मूल) सत्ताको (एक एक करके) खींचनेपर कपड़ेकी सत्ताका पता नहीं रहता, वैसे ही (बाहरी जगत्का भी परमाणु और उससे आगे भी विश्लेषण करनेपर) उसका पता नहीं मिलता।'—इस तरह विज्ञानवादी पक्षको रखकर अक्षपादने उसका खंडन किया है[2]—एक ओर बुद्धिसे बाहरी वस्तुओंके विवेचन करनेकी बात करना दूसरी ओर उनके अस्तित्वसे इन्कार करना यह परस्परविरोधी बातें हैं। कार्य (=कपड़ा) कारण (=सूत)के आश्रित होता है; इसलिए कार्यके कारणसे पृथक् न मिलनेमें कोई हर्ज नहीं है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे हमें बाहरी वस्तुओंका पता लगता है। स्वप्नकी वस्तुओं, जादूगरकी माया, गंधर्वनगर, मृगतृष्णाकी भाँति प्रमाण, प्रमेयकी कल्पना करनेके लिए कोई हेतु नहीं है; इसलिए बाह्य जगत् स्वप्न आदिकी भाँति है, यह सिद्ध नहीं होता। स्वप्नकी वस्तुओंका ख्याल भी उसी तरह वास्तविक बाह्य दुनिया पर निर्भर है, जैसे कि स्मृति या संकल्प, यदि बाहरी दुनिया न हो तो जैसे स्मृति और संकल्प नहीं होगा वैसे ही स्वप्न भी नहीं होगा। हाँ, बाह्य जगतका मिथ्या ज्ञान भी होता है, किंतु वह तत्त्व(=यथार्थ) ज्ञानसे वैसे ही नष्ट हो जाता है, जैसे जागनेपर स्वप्नकी वस्तुओंका ख्याल। इस तरह बाहरी वस्तुओंकी सत्तासे इन्कार नहीं किया जा सकता।

§२–योगवादी पतंजलि (४०० ई०)

जहाँ तक योगमें वर्णित प्राणायाम, समाधि, यौगिक क्रियाओंका संबंध है, इनका पता हमें सतिपट्ठान[3] जैसे प्राचीनतम बौद्ध सुत्तों तथा कठ

---

[1] देखो पृष्ठ ५२०　　[2] न्याय० ४।२।२६-३५ (का भावार्थ)।
[3] दीघनिकाय २।९

अक्षपादका आक्षेप ठीक नहीं, यह साफ है।

(३) शून्यवाद(=नागार्जुन-मत)का खंडन—नागार्जुनने क्षणिक-वाद और प्रतीत्य-समुत्पादके आधारपर अपने सापेक्षतावाद या शून्यवाद का विकास किया, यह हम बतला चुके हैं। विच्छिन्न प्रवाह रूपमें वस्तुओं के निरन्तर विनाश और उत्पत्ति होनेसे अपनी वस्तुकी स्थिरता सापेक्ष होती है, यह कहते हैं। गर्मीकी सत्ता हम सर्दीके अपेक्षा मालूम होती, गर्मीकी सर्दीकी अपेक्षा। इस तरह सत्ता सापेक्ष ही सिद्ध होती है। सापेक्ष सत्तामें (वस्तुओंका) सर्वथा अभाव सिद्ध करना मर्यादाको पार करना है, तो भी हम जानते हैं कि नागार्जुनका सापेक्षतावाद अन्तमें यहाँ तक जरूर पहुँचा और इसीलिए शून्यवादका अर्थ जहाँ क्षणिक जगत और उसका प्रत्येक अंग किसी भी स्थिर तत्त्वसे शून्य है—होना चाहिए था, वहाँ [illegible] भी उसका अर्थ शून्य—सर्वथा अभाव—मान लिया गया। "भावों (=उत्पन्न पदार्थों)में एकका दूसरेमें अभाव (=घड़ेमें कपड़ेका अभाव कपड़ेमें घड़ेका अभाव) देखा जाता है, इसलिए सारे (पदार्थ) अभाव (=शून्य) ही है"—इस तरह शून्यवादके पक्षको रखते हुए अक्षपादने उसके विरुद्ध अपने मतको स्थापित किया[1]—सब अभाव है यह बात गलत है क्योंकि भाव (=उत्पन्न पदार्थ) अपने भाव (=सत्ता)में विद्यमान देखे जाते हैं। एक ओर सब वस्तुओंके अभावकी घोषणा भी करना और दूसरी ओर उसी अभावको सिद्ध करनेके लिए उन्हीं अभावभूत वस्तुओंमेंसे कुछको सापेक्षताके लिए लेना क्या यह परस्पर विरोधी नहीं है?

(४) विज्ञानवाद-खंडन—यद्यपि बौद्ध (क्षणिक) विज्ञानवादके महान् आचार्य असंग ३५० ई०के आसपास हुए किन्तु विज्ञानवादका मूल (=अविकसित) रूप उनसे पहिलेके वैपुल्य-सूत्रोंमें पाया जाता है

[1] न्याय० ४।१।३७   वहीं ४।१।३८-४० (भावार्थ)।

वार पतजलि (१५० ई० पू०) और याग-सूत्रकार पतजलिका एक करके उनका समय ईसा-पूर्व दूसरी सनी माना ह। म समभता हूँ, किमी भी हमारे सूत्रबद्ध दशनको नागाजुनसे पहिले ल जाना मुश्किल ह। चाहे योगसूत्रमे नागाजुनके शून्यवादका खडन नही भी हो, किन्तु उसके अन्तिम (चतुथ) पादमें विज्ञानवादका खडन आया ह, जिसे डाक्टर दासगुप्तन क्षेपक मानकर छुट्टी ले ली ह, लकिन वसा माननके लिए उन्होने जो प्रमाण दिए है, व बिलकुल अपर्याप्त ह। हाँ उनक इस मतम म सहमत हूँ, कि पतजलिने जिस विज्ञानवादका खडन किया ह वह असगस पहिले भी मौजूद था।

दूसरे दशन-सूत्रकारोकी भाति पतजलिका जीवनीके बारम भी हम अधकारम हैं।

१—योगसूत्रोंका सक्षेप

योग-दशन छओ दशनोमें सबसे छोटा ह, इसके सार सूत्रोकी सख्या सिफ १९४ है, इसीलिए इस अध्यायोम न बाँटकर चार पादोमें बाटा गया ह, जिनके सूत्रोकी सख्या निम्न प्रकार ह—

पाद	नाम	सूत्र-सख्या
१	समाधिपाद	५१
२	साधनपाद	५५
३	विभूतिपाद	५४
४	कवल्यपाद	३४

पादोके नाम, मालूम हाता ह, पीछेसे दिये गय ह। कुल १९४ सूत्रोम से चौथाई (४६) यागसे मिलनवाली अद्भुत शक्तियोकी महिमा गानके लिए ह। इन सिद्धियो (=विभूतियों) म सार प्राणियाकी भाषाका ज्ञान[1] "अन्तर्धान"[2], "भुवन (=विश्व) ज्ञान"[3], क्षुधा-प्यासकी निवृत्ति"[4] दूसर

---

[1] योगसूत्र ३।१७ [2] वहीं ३।२१ [3] वहीं ३।२६ [4] वहीं ३।३०

दक्षिणाचारके अंग पुरानी उपनिषदोंमें मिलते हैं। बुद्धके समय तक योग क्रियायें काफी विकसित हो गई थीं। बुद्ध भी, अपने बौद्धिक मार्गमें योगको स्थान देनेपर भी, पूरा पक्ष नहीं लेते। फिर विकसित होते हुए योग—जो अनीश्वरवादी, महायानका बड़ा सहायक था—बौद्धोंके भीतर ध्यान तन्त्रका जन्म हुई। इस प्रकार योगको, ईसापूर्व चौथी सदीमें हम बहुत विकसित रूपमें पाते हैं। योगका प्रारंभ कब हुआ—इसका उत्तर देना आसान नहीं है। यद्यपि मार्शलने (ईसा पूर्व चौथा सन)से कुछ मूर्तियोंको समाधिस्थ साबित किया है, किन्तु यह इस पथमें हमें बहुत दूर नहीं ले जाता। पूर्व बौद्ध युगमें योग शब्द सम्मिलित है और उसका अर्थ भी समाधि नहीं बल्कि स्मृतिप्रस्थान (=अनिधान) आदि शब्दोंका स्थान प्रधान है। प्राचीन हिन्दी दर्शनोंमें भारतीय युगके साथका पद आता ही मिलता है योग नहीं।[1] बाद दूसरे नामसे देशोंमें प्रक्रियायें पैदा किया—जिसमें नामका नहीं भावका संबंध हो—सो से योगका प्रारंभ हुआ होगा। दूसरे देशोंमें भी योग क्रियाओंका प्रचार हुआ। नव-अफलातूनी दर्शनमें साफ साफ भी परिणाम पता और सब पीछे ईसाई साधकों और मुसलमान सूफियोंमें प्रचलित हुआ था किन्तु योगका उद्गम स्थान भारत ही मालूम होता है।

पतञ्जलि (२५० ई०)—पहिले प्रचलित योग क्रियाओंको पातञ्जलिने अपने १९४ सूत्रोंमें संगृहीत किया। पतञ्जलिके कालके बारेमें हम इतना कह सकते हैं कि उन्होंने वेदान्त-सूत्रोंके पहिले अपने सूत्र लिखे थे क्योंकि बादरायणने 'एतेन योगः प्रत्युक्तः'[2] में उसका जिक्र किया है। बादरायणका समय हमने ३०० ई० माना है। डाक्टर दासगुप्तने व्याकरण महाभाष्य

---

[1] जर्मन भाषामें Joch अंग्रेजीमें Yoke, लातिनमें Jugum, संस्कृतमें युग=जुआ, युग्य=जुएका बैल। [2] वेदान्तसूत्र २।१।३

[3] A History of Indian Philosophy by S N Dasgupta 1922, Vol I p 238

है, किन्तु इनसे यह मालूम होता है, कि चेतन (=पुरुष) चेतनाका आधार नहीं बल्कि चेतना-मात्र तथा निर्विकार है। उसको चेतनामें हम जो विकार होते देखते हैं, उसका समाधान पतंजलि बुद्धिकी वृत्तियोंसे मिश्रित होनेकी बात कहकर करते हैं। बुद्धिको सांख्यकी भाँति पतंजलि भी भोग्य विकारशील (प्रकृति)से बनी मानते हैं। बुद्धिसे प्रभावित हो पुरुष जो विकारी मालूम होता, उसीको हटाकर उसे अपने (चेतना मात्र) केवल स्वरूपमें स्थापित करना[1] योगका मुख्य ध्येय है इसी अवस्थाको कैवल्य कहते हैं।

(२) चित्त (=मन)

चित्तसे पतंजलिका क्या अभिप्राय है इसे बतलानेकी उन्होंने कोशिश नहीं की है, उनका ऐसा करनेका कारण यह भी हो सकता है कि सांख्यके प्रकृति-पुरुष-संबंधी दर्शनको मानते हुए उन्होंने योग-संबंधी पहलूपर ही लिखना चाहा। चित्तको वह भोक्ता (=चेतन)की भोग्य वस्तुग्राम मानते हैं—"यद्यपि चित्त (मल, कर्म विपाकवाली) असंख्य वासनाओंसे युक्त होनेसे (दर्शनमें भासता जैसा मालूम होता है) तथापि (वह) दूसरे (अर्थात् भोक्ता जीव)के लिए है क्योंकि वह संघातरूपसे होकर (अपना काम) करता है, (वैसे ही जैसे कि घर ईंट, काठ कोठरी द्वार आदिको) संघात बनकर जो अपनेको बसने योग्य बनाता है, वह किसी दूसरेके लिए ही ऐसा करता है।[2]

(३) चित्तकी वृत्तियाँ

पतंजलिके अनुसार[3] योग कहते ही हैं चित्तकी वृत्तियोंके निरोधको। जब तक चित्तकी वृत्तियोंका निरोध (=विनाश) नहीं होता, तब तक पुरुष (=जीव) अपने शुद्ध रूप (=कैवल्य)में नहीं स्थित होता

---

[1] योग० १।३ [2] वहीं ४।२४ मिलाइये "प्रयोजनवाद"से (ह्वाइटहेड पृ० ३६३) [3] वहीं १।२

के शरीरमें घुसना,'[1] "आकाशगमन,"[2] "सर्वज्ञता"[3] 'इष्ट देवताओंसे मिलन'[4] जैसी बातें हैं। सूर्यमें संयम करके न जाने कितने योगियोंने भुवन(=विश्व)ज्ञान प्राप्त किया होगा, किन्तु हमारा पुराना भुवन-ज्ञान कितना नगण्य सा है, यह हमसे छिपा नहीं है—जहाँ दूसरे देशोंने अपने पंचांगोंको आधुनिक उन्नत ज्योतिष शास्त्रके अनुसार सुधार लिया है, वहाँ अपने भुवन-ज्ञानके भरोसे हम अभी तालमेल पंचांगको ही लिए बैठे हैं।

२—दार्शनिक विचार

सिद्धियोंकी बात छोड़ देनेपर योग-सूत्रमें प्रतिपादित विषयोंको मोटे तौरसे दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—दार्शनिक विचार और योग साधना-संबंधी विचार। दार्शनिक विचारोंको (१) चित्त चेतन (२) बाह्य (=दृश्य) जगत और (३) तत्त्वज्ञान इन तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है, तो भी यह स्मरण रखना चाहिए कि योगसूत्रका प्रतिपाद्य विषय दर्शन नहीं यौगिक साधनायें हैं, इसलिए उसमें जो दार्शनिक विचार प्रकट किये हैं, वह सिर्फ प्रसंगवश ही किये हैं।

(१) जीव (=द्रष्टा)

द्रष्टा चेतनामात्र (=चिन्मात्र) शुद्ध निर्विकार होते भी बुद्धिकी वृत्तियोंके द्वारा देखता है (इसलिए वह बुद्धिकी वृत्तियोंसे मिश्रित मालूम होता है।) दृश्य (=जगत)का स्वरूप उसी (=द्रष्टा)के लिए है।"[5] पुरुष (=चेतन जीव)की निर्विकारिताको बतलाते हुए कहा है—'उस (=भोग्य बुद्धि)का प्रभु पुरुष अपरिणामी (=निर्विकार) है, इस लिए (क्षण क्षण बदलती भी) चित्तकी वृत्तियाँ उसे सदा ज्ञात रहती है।"[6]

यद्यपि इन सूत्रोंमें चेतनका स्वरूप पूरी तौरसे व्यक्त नहीं किया गया

---

[1] योग० ३।३८ [2] वहीं ३।४२ [3] वहीं ३।४९
[4] वहीं २।४४ [5] वहीं २।२०, २१ [6] वहीं ४।१८

(४) ईश्वर

पतजलिके योगशास्त्रको सश्वर (=ईश्वरवादी) साख्य भी कहते ह क्योंकि जहाँ कपिलके साख्यमें ईश्वरकी गुजाइश नहीं ह, वहा पतजलिने अपने दशनमें उसके लिए 'गुजाइश बनाई' ह। 'गुजाइश बनाई' इसलिए कहना पडता ह कि पतजलिने उसे उपनिषत्कारोकी भाँति सष्टिकर्ता नहीं बनाना चाहा और न अक्षपादकी भाँति कमफल दिलानेवाला हा। चित्तवृत्तियोंके निरोध (=बद) करनेके (योग-सबधी साधनाका) अभ्यास, और (विषयोंसे) वराग्य दो मुख्य उपाय बतलाये[1] ह, उसीमें "अथवा ईश्वरकी भक्तिसे"[2] कहकर ईश्वरको भी पीछेसे जोड दिया। ईश्वर भक्तिसे समाधिकी सिद्धि होती ह, यह भी आगे कहा ह।[3] पतजलिके अनुसार ईश्वर एक खास तरहका पुरुष ह, जो कि (अविद्या राग द्वेष आदि) मलों (धम अधम रूपी) कर्मों (कमके) विपाकों (=फलों) तथा सस्कारोंसे निर्लेप है।[4] इस परिभाषाके अनुसार जनों और बौद्धोंके अर्हत तथा कवल्यप्राप्त कोई भी (मुक्त) पुरुष ईश्वर ह। हाँ ईश्वर बननेवालोंकी सूची कम करनेके लिए आगे फिर शर्त रक्खी ह— 'उस (=ईश्वर)में बहुत अधिकताके साथ सवज्ञ बीज ह।'[5] लेकिन जन और उनकी देखादेखी पीछेवाले बौद्ध भी अपने मत प्रवत्तक गुरुको सवज्ञ (=सब कुछ जाननेवाला) मानते ह। इस खतरेसे बचनेके लिए पतजलिने फिर कहा[6]— वह पहिलेवाले (गुरुओ=ऋषियो)का भी गुरु ह क्योंकि जब वह न हो ऐसा काल नहीं ह। बुद्ध और महावीर एसे सनातन पुरुष नहीं ह यह सही है, तो भी पतजलिके कथनसे यही मालूम होता है, कि ईश्वर कवल्यप्राप्त दूसरे मुक्तो जसा ही एक पुरुष ह फक इतना ही ह, कि जहाँ मुक्त पुरुष पहिले बद्ध रह कर अपने प्रयत्नसे मुक्त हुए ह,

---

[1] योग० १।१२ [2] वहीं २।४५ [3] वहीं १।२३
[4] वहीं १।२४ [5] वहीं १।२५ [6] वहीं १।२६

चित्तकी वृत्तियाँ जैसी होती हैं, उसी रूपमें वह स्थित रहता है।[1] चित्तके बारेमें ज्यादा न कहकर भी चित्तकी वृत्तियोंको पतंजलिने साफ करके बतलाया है[2] और यह वृत्तियाँ चूँकि चित्तकी भिन्न भिन्न अवस्थायें हैं, इसलिए उनसे हम चित्तका भी परिचय पा सकते हैं। चित्त-वृत्तियाँ पाँच प्रकारकी हैं जो कि (राग आदिके कारण) मलिन और निर्मल दो भेद और रखती हैं। वह पाँच वृत्तियाँ निम्न हैं—

(क) प्रमाण—यथार्थज्ञानके साधन प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द इन तीन प्रमाणोंके रूपमें जब चित्त वृत्ति क्रियाशील होती है, उसे प्रमाण वृत्ति कहते हैं।

(ख) विपर्यय—(किसी वस्तुका ज्ञान) जो अपनेसे भिन्न रूपमें होता है वही मिथ्या ज्ञान विपर्यय वृत्ति है (जैसे रस्सीमें साँपका ज्ञान)।

(ग) विकल्प—वस्तुके अभावमें सिर्फ उसके नाम (=शब्द)के ज्ञानसे तैयार (जो चित्तकी अवस्था कल्पना होती है) वही विकल्प (=मनकी कल्पनाकी) वृत्ति है।

(घ) निद्रा—(दूसरी किसी तरहकी वृत्तिके) अभावको ही लिए हुए जो चित्तकी अवस्था होती है उसे निद्रावृत्ति कहते हैं।

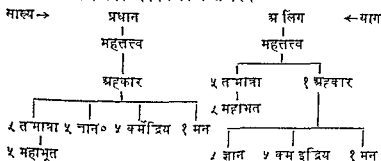
(ङ) स्मृति—प्रमाण आदि वृत्तियोंमें जिन विषयोंका अनुभव होता है, उनका चित्तसे लुप्त न होना स्मृति-वृत्ति है।

यहाँ पतंजलिने स्वप्नका जिक्र नहीं किया है, जिसे कि विकल्पवृत्तिके लक्षणको जरा व्यापक—वस्तुके अभावमें सिर्फ वासनाको लेकर जो चित्तकी अवस्था होती है—करके प्रकट किया जा सकता है, किन्तु सूत्रकार केवल चित्त द्वारा निर्मित वस्तुको उतना तुच्छ नहीं समझते, बल्कि चित्तकी ऐसी निर्माण करनेकी शक्तिको एक बड़ी सिद्धि मानते हैं[3] यह भी ध्यान रखना चाहिए।

---

[1] योग० १।४ [2] वहीं १।५-११ [3] वहीं ४।४-५

दोनोंके जय-जनक मथधमें निम्न मन्तर ह—



पाँच त मात्रायें है—गधत मात्रा, रस० रूप०, स्पश०, शब्द त मात्रा

पाँच भूत हैं—पृथिवी, जल, अग्नि वायु आकाश

पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं—नासिका जिह्वा चक्षु स्पश श्रोत्र

पाँच कम इन्द्रियाँ ह—वाणी हाथ पर मल इन्द्रय मूत्र इन्द्रिय

अनीश्वरवादी सारय २४ प्राकृतिक तत्वा तथा पुरुष (जीव)का लकर २५ तत्वाका मानता ह, और ईश्वरवादी याग उसमें पुरुषविशष (=ईश्वर)को जाड कर २६ तत्त्वाका।

"पुरुषके लिए ही दृश्य (जगत)का स्वरूप ह,"[1] इसका अथ है, कि पुरुषके कवल्य (=मुक्ति) प्राप्त हो जानपर ससारका अस्तित्व खतम हो जायगा, किन्तु अनादिकालसे आज तक जितन ही पुरुष कवल्यप्राप्त हो गए तो भी जगत् इसलिए जारी ह, कि कवल्यप्राप्तोंसे भिन्न—बद्ध पुरुषों—की भी वह साझकी भाग्य वस्तु ह।"[2]

(ख) परिवर्त्तन—पाचो महाभूतो, दशो इन्द्रियों और मन (=चित्त) में निरन्तर परिवत्तन (=नाश, उत्पत्ति) होता रहता ह, जिनमेंसे महाभूतो और इन्द्रियोंके परिवत्तन (=परिणाम) तीन प्रकारके होते ह—धम-परिणाम (=मिट्टीका पिंडरूपी धम छोड घटरूपी धमम परिणत

---

[1] योग० २।२१ [2] वहीं २।२२

यहाँ ईश्वर सगुण (=निरत) हुआ है। उसका प्रमाण यही है कि उसकी भक्ति या प्रणिधान, क्लेश-वृत्तियोंका निरोध होता है।[1] उसका वाचक प्रणव (=ओम्) है, जिसके जपकी भावना उस (=ओम्)का जप करनेवाले चित्त (=जप)में प्रत्यक् चेतना (=बुद्धिसे भिन्न जो जीव है उस)का साक्षात्कार होता है तथा (रोग, संशय, आलस्य आदि चित्त विक्षेपरूप) अन्तरायों (=बाधाओं)का नाश होता है।

(५) भौतिक जगत् (=दृश्य)

पतंजलिने जो पुरुषको द्रष्टा (=देखनेवाला) कहा है, वहाँ भौतिक जगत् या सांख्यके प्रधानके लिए दृश्य शब्दका प्रयोग किया है। दृश्यका स्वरूप बतलाते हुए कहा है[2]— (सत्त्व, रज, तम, तीनों गुणोंके कारण) प्रकाश, गति और गति राहित्य (स्थिति) स्वभाववाला, भूत (पाँच महाभूत और पाँच तन्मात्रा) तथा इन्द्रिय (पाँच ज्ञान, पाँच कर्म-इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार, मन तीन अन्तःकरण) स्वरूपी दृश्य (=जगत्) है जो कि (पुरुषके) भोग, और मुक्ति (=अपवर्ग)के लिए है।

(क) प्रधान—सांख्यने पुरुषके अतिरिक्त प्रकृति(=प्रधान) के २४ तत्त्वोंको प्रकृति, प्रकृति विकृति और विकृति इन तीन कोटियोंमें बाँटा है, जिन्हें ही पतंजलिने चार प्रकारसे बाँटा है।[3]—

सांख्य	तत्त्व	योग
प्रकृति १	प्रधान (त्रिगुणात्मक)	अलिंग १
प्रकृति विकृति ७	१ महत्तत्त्व (=बुद्धि)	लिंग १
	+ ५ तन्मात्रा + १ अहंकार	अविशेष ६
विकृति १६	५ महाभूत + ५ कर्मेन्द्रिय + ५ ज्ञानेन्द्रिय + १ मन	विशेष १६

[1] योग० १।२७-३० [2] वहीं २।१८, २१, २२ [3] वहीं २।१९

क्योंकि विज्ञानवादी एक ही विज्ञानसे जगतकी असख्य विचित्रताओंको उत्पन्न मानते है। इसका खडन करते हुए पतजलि कहते है कि 'व (चित=विज्ञान=मन और भौतिक तत्त्व) दोनो भिन्न भिन्न है, क्योकि एक (स्त्री) वस्तुके होनेपर भी (जिस चित्तसे उसकी उत्पत्ति विज्ञानवादी बतलाते है, वह) चित्त (एक नही) अनेक है।[1] विज्ञानवादके अनुसार वहाँ जो स्त्री शरीर है वह विज्ञान (=चित्त)का ही बाहरी क्षेपण (=फेंकना) है, किंतु जिस चित्तके क्षेपणका परिणाम वह स्त्री है, वह एक नहीं है—किसीके चित्तके लिए वह सुखदा प्रिया पत्नी है किसीके चित्तके लिए वह दु खदा सौत है। फिर इस परस्परविरोधी अनेक विज्ञानो (=चित्तो)से निर्मित स्त्री एक विज्ञानसे बनी नही कही जा सकती इसकी जगह यही मानना चाहिए कि विज्ञान और भौतिक तत्त्व भिन्न भिन्न है, और वही मिलकर एक वस्तुको बनाते है। और भी[2] यदि वस्तुको एक चित्त (=विज्ञान)से बनी माना जाय तो (उस चित्तके किसी दूसरे कपड आदिके निर्माणमें) व्यस्त होनेपर उस वस्तुका क्या होगा (—निर्माण कर्ता चित्तके अभावमें उसका अभाव होना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए वस्तु चित्तसे बनी) नही है, बल्कि उसकी स्वतन्त्र सत्ता है। अकेला चित्त सारी वस्तुओ (=भौतिक पदार्थों)का कारण होनेसे आपके तर्कानुसार उसे सर्वज्ञ होना चाहिए किन्तु वैसा नही देखा जाता, इसलिए विज्ञान सबका मूलकारण है, यह मत गलत है। हमारे मतमें तो 'वस्तुके ज्ञान होनेके लिए (इंद्रिय-द्वारा) चित्तका उस (वस्तु)से 'रँगा जाना' (=मनपर सस्कार पडना) जरूरी है, (जब वह वस्तुसे रँगा नहीं होता तो वस्तु) अज्ञात होती है। चित्त परिवर्तनशील है, किन्तु चित्तकी वृत्तियाँ लगातार (=सदा) ज्ञात रहती है यह इसीलिए कि उस (=भोग्य-वस्तु)का स्वामी (=पुरुष) अ-परिवर्तनशील है। 'दृश्य (=जगतका एक भाग होनेसे चित्त स्वप्रकाश (=स्वयचेता) नहीं है बल्कि उसे प्रकाश

---

[1] योग० ४।१५ [2] वहीं ४।१६ १९

होना) लक्षण-परिणाम (=घड़का अतीत वर्तमान, भविष्यके संबंध=लक्षणसे अतीत घड़ा वर्तमान घड़ा भविष्य घड़ा बनना), अवस्था परिणाम (=वर्तमान घटका नयापन पुरानापन आदि अवस्थामें बदलना)। मिट्टीमें चूर्ण और पिंड पिंड और घड़ा, घड़ा और कपाल (=खपड़ा) यह जो पहिले पीछेका क्रम देखा जाता है, वह एक ही मिट्टीके भिन्न भिन्न धर्म-परिवर्तनोंको बतलाता है, इसी अतीत वर्तमान और भविष्यकालके भिन्न भिन्न क्रमसे भिन्न भिन्न लक्षण तथा दृश्य सूक्ष्म, स्थूलके भिन्न भिन्न क्रमसे भिन्न भिन्न अवस्थाका परिवर्तन मालूम पड़ता है।[1]

इस तरह पतंजलि परिवर्तन होता है इसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि वह स्वयं इस बातको स्पष्ट नहीं करते, तो भी सांख्यकी दूसरी कितनी ही बातोंकी भाँति उनके मनमें भी परिवर्तन होता है भावसे भाव रूपमें (=सत्कार्यवाद)में ही।

'(सत्त्व रज तम ये तीन) गुण स्वरूपवाले (प्रधानसे नीचेके २३ तत्त्व) व्यक्त होते हैं (जब कि वे वर्तमानकालमें हमारे सामने होते हैं), और सूक्ष्म होते हैं (जब कि वे आँखसे ओझल भूत या भविष्यमें रहते हैं)। (गुणोंके तीन होनेपर भी उनके धर्म लक्षण, या अवस्था) परिणाम (=परिवर्तन) चूँकि एक होते हैं इसलिए (परिणामसे उत्पन्न बुद्धि, अहंकार आदि वस्तुओंका) एक होना देखा जाता है।[2] इस प्रकार नाना कारणों (=गुणों) से एक कार्यकी उत्पत्ति पतंजलिने सिद्ध की। सांख्य और योगके तीनों गुण प्रकृतिकी तीन स्थितियोंको बतलाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए, वह स्थितियाँ हैं—सत्त्व=प्रकाशमय अवस्था रज=गतिमय अवस्था तम=गतिशून्यतामय अवस्था।

(६) क्षणिक विज्ञानवाद खंडन

नाना कारणोंसे एक कार्यका उत्पन्न होना विज्ञानवादके विरुद्ध है,

---

[1] योग० ३।१३ १५ [2] वहीं ४।१३ १४

क्योकि विज्ञानवादी एक ही विज्ञानमे जगतकी असख्य विचित्रताओको उत्पन्न मानते है। इसका खडन करते हुए पतजलि कहते है कि 'वे (चित्त=विज्ञान=मन और भौतिक तत्त्व) दोनो भिन्न भिन्न है, क्योकि एक (स्त्री) वस्तुके होनेपर भी (जिस चित्तसे उसकी उत्पत्ति विज्ञानवादी बतलाते है, वह) चित्त (एक नही) अनेक है।[1] विज्ञानवादके अनुसार वहाँ जो स्त्री शरीर है वह विज्ञान (=चित्त)का ही बाहरी क्षेपण (=फेंकना) है, किंतु जिस चित्तके क्षेपणका परिणाम वह स्त्री है वह एक नही है—किसीके चित्तके लिए वह मुखदा प्रिया पत्नी है, किसीके चित्तके लिए वह दु खदा सौत है। फिर ऐसे परस्परविरोधी अनेक विज्ञानो (=चित्तो)से निर्मित स्त्री एक विज्ञानमय कैसे कही जा सकती, इसकी जगह यही मानना चाहिए कि विज्ञान और भौतिक तत्त्व भिन्न भिन्न है, और वही मिलकर एक वस्तुको बनाते है। और भी[2] 'यदि वस्तुको एक चित्त (=विज्ञान)से बनी माना जाय, तो (उस चित्तके किसी दूसरे कपड आदिके निर्माणमें) व्यस्त होनेपर, उस वस्तुका क्या होगा (—निर्माण कर्ता चित्तके अभावमे उसका अभाव होना चाहिए किन्तु ऐसा नही होता इसलिए वस्तु चित्तसे बनी) नही है, बल्कि उसकी स्वतन्त्र सत्ता है। अकेला चित्त सारी वस्तुओ (=भौतिक पदार्थो)का कारण होनेसे आपके तर्कानुसार उसे सर्वज्ञ होना चाहिए, किन्तु वैसा नही देखा जाता इसलिए विज्ञान सबका मूलकारण है, यह मत गलत है। हमारे मतसे तो वस्तुके ज्ञात होनेके लिए (इन्द्रिय द्वारा) चित्तका उस (वस्तु)से 'रँगा जाना' (=मनपर सस्कार पडना) जरूरी है, (जब वह वस्तुसे रँगा नही होता, तो वस्तु) अज्ञात होती है।' चित्त परिवर्तनशील है किन्तु 'चित्तकी वृत्तियाँ लगातार (=सदा) ज्ञात रहती है, यह इसीलिए कि उस (=भोग्य वस्तु)का स्वामी (=पुरुष) अ-परिवर्तनशील है।' 'दृश्य (=जगतका एक भाग होनेसे चित्त स्वप्रकाश (=स्वयचेतन) नही है' बल्कि उसे प्रकाश

[1] योग० ४।१५ [2] वहीं ४।१६-१९

किंतु यह समाधि युक्त प्रज्ञा (=ज्ञा) फिर उत्पन्न हो जाती है ? ... जाती उसे पार्तिभज्ञ है— (पुरुष और प्रकृति) विवेक (=भिन्न भिन्न होने) का निर्भ्रान्त ज्ञान हो जाता है।"

योगके द्वारा अभ्यास (निरोध) संस्कारका नाश होता है, जिसे ज्ञान उत्पन्न होता जाता है, यहाँ तक कि विवेक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

३–योगकी साधनायें

योगसूत्रका मुख्य प्रयोजन ... उन साधनों या अंगोंके बारेमें बतलाना जिनसे पुरुष कैवल्य प्राप्त कर सकता है। ये साधन अंग आठ हैं, इसीलिए पतंजलिके योगको भी अष्टांग-योग कहते हैं। ये आठ अंग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि जिनमें पहिले पाँच बहिरंग कहे जाते हैं, और अन्तिम तीन चित्तकी वृत्तियोंसे विशेष संबंध रखनेके कारण अन्तरंग कहे जाते हैं। योगसूत्र दूसरे और तीसरे पादमें इन आठों योग-अंगोंका वर्णन है।

(१) यम[1]—अहिंसा, सत्य, चोरी-त्याग (=अस्तेय) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (=भोगोंका अधिक संग्रह न करना)।

(२) नियम[2]—शौच (=शारीरिक शुद्धता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान (=ईश्वरभक्ति)।

(३) आसन[3]—सुखपूर्वक शरीरको निश्चल रखना (जिसमें निः प्राणायाम ध्यानमें आसानी हो)।

(४) प्राणायाम[4]—आसनसे बैठ श्वास-प्रश्वासकी गतिका विच्छेद करना।

(५) प्रत्याहर[5]—इन्द्रियोंका उनके विषयोंके साथ योग न होने दे चित्त (=मन)का अपने रूप जमा रहना।

---

[1] योग० २।२६ [2] वहीं २।२८ [3] वहीं २।३० [4] वहीं २।३२
[5] योग० २।४ [6] वहीं २।४६ [7] वहीं २।५४

(६) **धारणा**[1]—(किसी खास) देश (=नासाग्र आदि) में चित्तको रोकना।

(७) **ध्यान**[2]—उस (धारणाकी स्थिति) में (चित्तकी) वृत्तियोंकी एकरूपता।

(८) **समाधि**[3]—वही (ध्यान) जब (ध्यानके) स्वरूप (के ज्ञानसे) रहित, सिर्फ (ध्येय) अर्थ (के स्वरूप) में प्रकाशमान होता है (तो उसे समाधि कहते हैं)। —अर्थात् ध्येय, ध्याता और ध्यानके नानीमें जहाँ ध्येय मात्रका ज्ञान प्रकट होता है उसे समाधि कहते है।

धारणा, ध्यान समाधि इन तीन अन्तरंग योगांगोंको संयम भी कहते है।

§३–शब्दप्रमाणक ब्रह्मवादी वादरायण (३०० ई०)

१–वादरायणका काल

यूनानियों और शकोंके चार शताब्दियोंके शासन और संस्कृति-संबंधी प्रभाव तथा बौद्धोंके तीक्ष्ण तर्क-प्रहारसे ब्राह्मणोंके कर्मकांडकी ही नहीं उनके उपनिषदीय अध्यात्म दर्शनका प्रभाव भी क्षीण होने लगा। जहाँ तक युक्ति-संगत सिद्धान्तोंके संबंधमें उत्तर हो सकता था वह उन्होंने न्याय वैशेषिक योग और सांख्य द्वारा दिया, किन्तु वह काफी नहीं था। यदि वेद-मूलक ज्ञान और कर्मकांडके संबंधमें उत्पन्न हुई शंकाओंका वह उत्तर नहीं दे सकते थे, तो ब्राह्मणधर्मकी जड खुद चुरी थी इसीलिए उनकी रक्षाके लिए वादरायण और जैमिनिने कलम उठाई। जैमिनिकी कर्म-मीमांसाके बारेमें हम लिख चुके है। वहाँ हमने यह भी बतलाया था, कि एक दूसरेकी राय उद्धृत करनेवाले जैमिनि और वादरायण समकालीन थे जिसका अर्थ हुआ, वादरायण भी ३०० ई० में मौजूद थे। पौराणिक परंपरा वादरायण

---

[1] योग० ३।१　　[2] वहीं ३।२　　[3] वहीं ३।३

गया था। गुप्त माना है और पीछे द्वारा कुछ काल पश्चिम महा भारत वालोंमें उनका होना माना है, किन्तु इसका खंडन स्वयं वर्तमान सूत्रकार व मूल ग्रन्थ है, जिनमें सिर्फ बौद्धोंके दर्शनका ही नहीं, बल्कि उनके मत्रु (८८३ ई० पू०)से बुद्धके मन्दिरोंकी भी पीछे अस्तित्वमें आनेवाले बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदायों—अभावित योगाचार माध्यमिक—का खंडन है। असत्कार्यवाद प्रभावसे प्रभावित हो बौद्धोंने सबसे पहले विज्ञान वादका विकास नागार्जुन (१७५ ई०)से पहिले भी किया था जरूर किन्तु उसका पूर्ण विकास दो पेशावरी पठान भाइयों—असंग और वसुबन्धु (३५० ई०)—ने किया। यद्यपि विज्ञानवाद (=योगाचार)का जिस प्रकार खंडन सूत्रोंमें किया गया है उससे कोई सन्देह गुंजाइश है कि वेदान्तसूत्र असंग (३८० ई०)से पीछे बने, तो भी और निश्चयात्मक प्रमाणोंके अभावमें अभी हम यही कह सकते हैं कि बादरायण कणाद (१५० ई०) नागार्जुन (१७५ ई०), योगसूत्रकार पतंजलि (२५० ई०) के पीछे और जैमिनि (३०० ई०)के समकालीन थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि ३५० ई० से पहिले के दर्शन-समालोचक बौद्ध-दार्शनिक ग्रंथोंसे पता नहीं लगता कि उनके समयमें वेदान्तसूत्र या मीमांसासूत्र मौजूद थे।

२–वेदान्त-साहित्य

वेदान्तसूत्रोंपर बौधायन और उपवर्ष वृत्तियाँ (=छोटी टीकायें) लिखी थीं, जिनमें बौधायन वृत्तिके कुछ उद्धरण रामानुज (जन्म १०२७ ई०)ने दिये हैं, किन्तु ये दोनों वृत्तियाँ आज उपलब्ध नहीं हैं। परम्परासे यही पता लगता है कि बौधायन रामानुजवाले द्वैतवादके समर्थक थे जो ही वेदान्त सूत्रोंका भी भाव मालूम होता है जैसा कि आगे प्रकट होगा, और उपवर्ष अद्वैतवादके। वेदान्तसूत्रोंपर सबसे पुराना ग्रंथ शंकर (७८८-८२० ई०)का भाष्य है। हर्षवर्धन (६४० ई०)के शासन और धर्मकीर्ति (६०० ई०)के देहान्तके बाद सदियोंसे भारतपर रहा छोटी

गई सामाजिक और आर्थिक समस्याओंकी उलझनों उनके कारण पैदा हुई विषमताओं बहुसंख्यक जनताकी पीड़ा प्रताड़नाओं तथा अल्पसंख्यक शासक शोषकोंकी मानसिक विलासिताओं, अनिश्चित भविष्य संबंधी आशंकाओंसे भारतीय मस्तिष्क वस्तुस्थितिको देखते हुए किसी हलके ढूँढनेमें इतना असमर्थ था कि उसे विज्ञानवाद परमात्मवाद मायावादकी हवामें उड़कर आत्मसन्तोष या आत्मसम्मोह—आँख मूँदना—एक मात्र रास्ता सूझता था। असंग, वसुबंधुके विज्ञानवाद द्वारा बौद्धोंको शिक्षित शासक शोषक वर्गमें प्रिय और सम्मानित बननेका मौका मिला था तो भी बौद्ध विज्ञानवाद उस समय अति तक न पहुँच सका यह तो इसीसे मालूम होता है, कि दिङ्नाग (४५० ई०) और धर्मकीर्त्ति (६०० ई०) विज्ञानवादी सम्प्रदायके होते भी उनपर वस्तुवादका जितना प्रभाव था, उतना विज्ञानवादका नहीं—धर्मकीर्तिको तो बल्कि स्वातंत्रिक (=वस्तुवादी) विज्ञानवादी साफ तौरसे कहा गया है। बौद्धोंकी सफलताको देखकर शंकरने भी उपनिषदके दर्शनको शुद्ध विज्ञानवादके रूपमें परिणत करनेकी इच्छासे अपने वेदान्तभाष्यको लिखा। उन्हें इसमें आशातीत सफलता हुई यह तो इसीसे मालूम है, कि आजके शिक्षित हिंदुओंमें—जिन्हें दर्शनकी ओर कुछ भी शौक है—सबसे अधिक संख्या शंकर-वेदान्तके अनुयायियों—वेदान्तियों की है। शंकर वेदान्तसे संबंध रखनेवाली तथा खुद शंकरभाष्य पर लिखी गई पुस्तकोंकी संख्या हजारों है। शंकरभाष्यके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ वाचस्पति मिश्र (८४१ ई०) की भामती (शंकरभाष्यकी टीका) तथा कन्नौज राज जयचन्दके दर्बारी कवि और दार्शनिक श्रीहर्ष (११९० ई०)का खंडनखंडखाद्य है।

शंकरकी सफलताने बतला दिया, कि ब्राह्मण (=हिंदू) धर्मी किसी सम्प्रदायको यदि सफलता प्राप्त करनी है तो उसे शंकरके रास्तेका अनुकरण करना चाहिए। इस अनुकरणका परिणाम यह हुआ है, कि आज सभी प्रधान प्रधान हिन्दू सम्प्रदायोंके पास अपनी दार्शनिक नींव

मजबूत करनेके लिए अपने अपने वेदान्त भाष्य हैं[1]—

सम्प्रदाय	भाष्यकार	काल
शंकर (शैव)	शंकर (मलबार)	७८८-८२० ई०
रामानुजीय (वैष्णव)	रामानुज (तामिल)	१०२७ (जन्म)
निम्बार्क (वैष्णव)	निम्बार्क (तेलगू)	११ वीं सदी
माध्व (वैष्णव)	आनन्दतीर्थ (कर्नाट)	११९८ (जन्म)
राधावल्लभी (वैष्णव)	वल्लभ (तैलगू)	१४०१ (जन्म)

३—वेदान्तसूत्र

वेदान्तसूत्रको शारीरकसूत्र भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें जगत् और ब्रह्मको शरीर और शरीरधारी=शारीरकके तौरपर वर्णित किया है—जो कि शंकरके मतके खिलाफ जाता है। दूसरा नाम ब्रह्ममीमांसा है, जो कि कर्ममीमांसा (=मीमांसा)की तुलनासे रखा गया है। वेदान्त सूत्रमें चार अध्याय और हर अध्यायमें चार चार पाद हैं, जिनमें सूत्रों की संख्या इस प्रकार है—

अध्याय	पाद	सूत्र-संख्या	अधिकरण (प्रकरण)	विषय
१	१	३२	११	उपनिषद् सिर्फ ब्रह्म का जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयका कारण मानना है।
	२	३३	६	
	३	४४	१०	
	४	२९	८	युक्तिसे भी जगत् कारण ब्रह्म है, प्रधान आदि नहीं।
		१३८		

[1] इनके अतिरिक्त श्रीकंठ, बलदेव और भास्करके भी भाष्य हैं, यद्यपि उनका आज कोई धार्मिक सम्प्रदाय मौजूद नहीं है। हालमें जब रामा

अध्याय	पाद	सूत्र संख्या	अधिकरण (प्रकरण)	विषय
२	१	३६	१०	दूसरे दर्शनोंका खंडन
	२	४२	८	
	३	५२	७	ज्ञान और जड़
	४	१६	३	प्राण और इंद्रियाँ
		१४६		
३	१	२७	६	पुनर्जन्म
	२	४०	८	स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थायें।
	३	६४	२६	उपनिषद्के सभी उपदेशों (विद्याओं) का प्रयोजन ब्रह्मज्ञानसे ही मुक्ति,
	४	५१	१५	किन्तु कर्म भी सहकारी।
		१८२		
४	१	१९	११	ब्रह्मज्ञानका फल शरीरान्तके बाद मुक्तकी यात्रा।
	२	२०	११	
	३	१५	५	अन्तिम यात्राका मार्ग
	४	२२	६	मरनेके बाद मुक्तकी अवस्था और अधिकार।
	१६	७६	१५१	
		५४५		

४ वेदान्तका प्रयोजन उपनिषदोंका समन्वय—जिस तरह जैमिनिने ब्राह्मण और उसके कर्मकांडका अंधाधुंध समर्थन किया है, वही

नन्दी वैष्णवोंने अपनेको रामानुजी वैष्णवोंसे स्वतंत्र संप्रदाय साबित करनेका प्रयास किया, तो किसी विद्वानके वेदान्तभाष्यको रामानन्द भाष्यके नामसे प्रकाशित करना जरूरी समझा।

और फिर ब्रह्म (आत्मा) के भीतर उस (आनन्द) का इस (जीव)[1] साथ योग (=मिलना) भी कहा गया है।

इस प्रकार आत्मा शब्द यहाँ न जीवको लेकर न उस मूलकारण माना जा सकता है और न उसे अव्यक्त प्रकृति अथवा सांख्यवाले प्रधानको लिया जा सकता। इस तरह उपनिषद् ब्रह्मको ही विषय कर आनन्दमय मानते हैं यह बात साफ है।

अन्तर आकाश प्राण ज्योति शब्दोंको भी छान्दोग्य उपनिषद्में[2] ब्रह्मके अर्थमें ही स्वीकार किया गया है। उनके कारण भी प्रकृति (=प्रधान) या प्राकृतिक पदार्थोंका भ्रम हो सकता है जिसको सूत्रकारने इस पादके आठ सूत्रोंमें यहाँ कहकर दूर किया है, कि इनमें शब्दोंके साथ जो विशेषण आदि आए हैं, वह ब्रह्मपर ही घट सकते हैं जीव या प्रकृति पर नहीं।

(३) **जगत् और जीव ब्रह्मके शरीर**—उपनिषदके कुछ ऋषि ऐसे भी थे जिनसे मालूम होता है कि वह जीव और ब्रह्मको एकमें समझते हैं; रामानुजीय शारीरकवाद (=जीव और जगत शरीर हैं, और ब्रह्म शरीरवाला=आत्मा; शरीर और शरीरवालेको अभिन्न समझना आम तौरसे प्रचलित है अथवा सारा विश्व एक पूर्ण ब्रह्म है) को मानते जरूर थे किन्तु वह जीवको ब्रह्म है इस माननेके लिए तैयार न थे इसलिए जहाँ कहाँ ऐसे भ्रमकी संभावना हुई है उसे उन्होंने बार बार हटानेकी कोशिश की है, इसे हम आगे बतलायेंगे। कौषीतकि उपनिषद्[3]में इसी तरहका एक प्रकरण आया है जिसमें प्राण को लेकर ऐसे भ्रमकी गुंजाइश है—दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन (देवासुर-संग्राममें) युद्ध (विजय) तथा

[1] तै० २।७ 'वह (ब्रह्म) रस है, इसको ही पाकर यह (जीव) आनन्दी होता है।"

[2] क्रमशः निम्नस्थलोंमें—छा० १।३।६, छा० १।६।१, छा० १।११।५ छां० १।११।४ [3] कौ० उ० ३।१,६

पराक्रमसे इन्द्रके प्रिय धाम (इन्द्रलोक)में पहुँचा। उसे इन्द्रने कहा—तुझे वर देता हूँ। उसने उत्तर दिया—'मनुष्योंके लिए जो हिततम वर हो उसे वरको तुम ही चुन दो।' इन्द्रने कहा—मेरा ही ज्ञान प्राप्त कर; मैं प्रज्ञात्मा (=प्रज्ञास्वरूप) प्राण हूँ, मुझे आयु अमृत समझ उपासना कर।' यहाँ प्राणकी उपासना कहनेसे जान पड़ता है कि वह ब्रह्मकी भाँति उपास्य है तथा इन्द्र (एक जीव)के कहनेसे वह जीवात्माका वाचक भी माना जाता है। सूत्रकारने इस सन्देहको दूर करते हुए कहा[1]—

(यहाँ) प्राण (पहिले) जैसा ही (ब्रह्मवाचक) है क्योंकि (आगे वहाँ सारे विशेषण तभी) संभव हैं।

वक्ता (इन्द्र) अपने (जीवात्माकी उपासना)का उपदेश करता है यह (माननेकी जरूरत) नहीं क्योंकि (वक्ता इन्द्र)में आत्माका आन्तरिक संबंध बहुत अधिक (ब्रह्मसे व्याप्त है इसलिए ब्रह्मभूतके तौरपर वहाँ इन्द्रने अपने भीतर प्राण ब्रह्मकी उपासना करनेका उपदेश दिया न कि अपने जीवको ब्रह्म सिद्ध करनेके लिए)।

"शास्त्रकी दृष्टिसे भी (ऐसा) उपदेश होता है जैसे कि वामदेव (ने कहा है)। बृहदारण्यकमें[2] कहा है—इसीको देखते हुए ऋषि वामदेवने कहा[3]—मैं मनु हुआ था और मैं सूर्य हुआ था। सो आज भी जिसे ज्ञान हो गया है—मैं ब्रह्म हूँ, वह यह सब (=विश्व) होता है। इन सबका वह आत्मा होता है। वामदेवने जैसे ब्रह्मको अपने आत्माके तौरपर समझकर उसके नाते मनु और सूर्यको अपना रूप (=शरीर) बतलाया वैसे ही इन्द्रका प्राण और अपनी उपासनाके [illegible] कहना भी है।

(४) उपनिषद्में अस्पष्ट और स्पष्ट जीववाची शब्द भी ब्रह्मके लिए प्रयुक्त—कितने ही जीव-वाचक शब्द हैं जिन्हें [illegible]

[1] वे० सू० १।१।२९-३२ [2] बृ० उ० १।४।१० [3] ऋग्० ४।२६।१५

अधिपति ब्रह्मके लिए प्रयुक्त किया है, इसलिए उन शब्दोंके कारण इस भ्रममें न पड़ना चाहिए कि उपनिषद् जीवको भी जगत्कारण तथा उपास्य मानता है। इस अध्यायमें स्पष्ट साफ साफ जीव वाचक नहीं है, ऐसे अस्पष्ट जीववाचक शब्दोंके बारेमें सूत्रकारने दूसरे पादमें कहा है, स्पष्ट जीववाचक शब्द भी ब्रह्मके अर्थमें प्रयुक्त हुए—यह तीसरे पादमें बतलाया है।

मनोमय, अत्ता (=भक्षक) अन्तर (=भिन्न) अन्तर्यामी अदृश्य (=आँखसे न दिखाई देनेवाला) वैश्वानर ऐसे शब्द हैं जो कि कितनी ही बार जीवके लिए भी प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु ऐसे स्थल[1] भी हैं जहाँ उन्हें ब्रह्मके लिए प्रयुक्त किया गया है, इसलिए विरोधका भ्रम नहीं होना चाहिए। पहिले अध्यायके दूसरे पादमें[2] इन्हीं शब्दोंको ब्रह्मवाची साबित किया गया है।

द्यौ और पृथिवीमें रहनेवाला, भूमा (=बहुत), अक्षर, ईक्षण (=देखना) करनेवाला, दहर (=छोटासा), अंगुष्ठमात्र, देवताओंका मधु, अंगुष्ठ आकाश जैसे जीववाची शब्द कितने ही उपनिषदोंमें आए हैं,[3] इनमें भी जगत्के कर्त्ता जैसे विशेषण आए हैं। तीसरे पादमें[4] इन्हें ब्रह्मवाची सिद्ध कर विरोध परिहार किया गया है।

इस प्रकार पहिले अध्यायके प्रथम तीन पादोंमें ब्रह्म ही जिज्ञास्य

---

[1] देखो क्रमशः छां० ३।१४।१, कठ० १।२।२, छां० ४।१५।१, बृह० ३।७।३, मुंडक १।१।५ ६, छां० ५।११।६

[2] क्रमशः निम्न सूत्र १–८ ९ १२, १३ १८ १९ २१, २२ २४,२५ ३३

[3] क्रमशः मुंडक २।२।५, छां० ७।२४।१, बृह० ५।८।८, प्रश्न ५।५, छां० ८।१।१, कठ २।४।१२ छां० ३।१।१ कठ २।४।१२ २।६।१७, छां० ८।१४।१

[4] क्रमशः १ ६, ७ ८, ९ ११, १२ १३ २२, २३ २४, ३० ३२, ४० ४१, ४२ ४४

(=ज्ञानका विषय) तथा जगत्का जन्म स्थिति प्रलय-कर्त्ता उपनिषदमें बतलाया गया है इस प्रकार सूत्रकारने समन्वय तथा पारस्परिक विरोधका परिहार किया है। वेदान्त-सूत्रोंमें जिन उपनिषदोंके वचनोंपर ज्यादा बहस की गई है वह ये हैं—कठ प्रश्न, मुंडक तैत्तिरीय एतरेय छान्दोग्य वृहदारण्यक, कौषीतकि, जिनमें छान्दोग्यके वाक्य एवं दर्शनमें अधिक सूत्रोंमें बहसके विषय बनाए गए हैं।

५ बादरायणके दार्शनिक विचार—बादरायणने उपनिषदोंके सिद्धान्तोंकी व्याख्या करनी चाही किन्तु बादरायणके सूत्रोंको लेकर आजकल द्वैत, अद्वैत द्वैताद्वैत शुद्ध अद्वैत विशिष्ट अद्वैत, भेद आदि कितने ही वाद चल रहे हैं और सभी दावा करते हैं, कि वही भगवान बादरायणके एकमात्र उत्तराधिकारी हैं। बादरायणने स्वयं उपनिषद्के भिन्न भिन्न ऋषियोंके मतभेदोंको हटाकर मत-समन्वय करना चाहा था किन्तु उपनिषदमें मतभेदके काफी बीज थे जिसके कारण अनुयायियोंने गुरुकी सर्वसमन्वय नीतिको ठुकरा दिया, और आज वेदान्तके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंमें उससे कहीं जबदस्त मतभेद है जितना कि रैक्व आरुणि या याज्ञवल्क्यमें हमने देखा है। यहाँ ब्रह्म, जगत जीव आदिके बारेमें हम बादरायणके अपने विचार देते हैं जिससे पता लगेगा कि उनके सिद्धान्तोंके सबसे समीप यदि किसीका वेदान्त है, तो वह रामानुजका।

(१) ब्रह्म उपादान कारण—'जगतका जन्म आदि जिससे है'[1] इस सूत्रसे ब्रह्मके कर्म—सृष्टिका उत्पादन धारण और विनाशन—को बतलाया है, साथही अगले सूत्रोंमें उपनिषदके वाक्योंकी सहायतासे सूत्रकारने यह भी बतलाना चाहा कि जैसे मिट्टी घट आदिका उपादान कारण है वैसे ही विश्वका (निमित्त ही नहीं उपादान) कारण भी ब्रह्म है। यहाँ प्रश्न हो सकता है—ब्रह्म चेतन, शुद्ध ईश्वर स्वभाववाला है जब कि जगत् अचेतन अशुद्ध अनीश्वर (=पराधीन) है फिर कारणसे

[1] वे० सू० १।१।२

कार्य इतना विलक्षण (=अ-समान) स्वभाववाला क्यों? इसका समाधान करते हुए बादरायण कहते हैं—(कारणसे कार्यका विलक्षण होना) देखा जाता है। मक्खियाँ या तितलियाँ अपने अंडोंसे जिन बच्चोंको पैदा करती हैं, वह अपनी मातृव्यक्तिसे बिलकुल ही विलक्षण होते हैं, और इन बच्चोंसे जो फिर मक्खी या तितली पैदा होती है, वह अपने मातृस्थानीय बच्चोंसे विलक्षण होती है। (द्वन्द्वात्मक भौतिकवादियोंका गुणात्मक-परिवर्तन क्यों स्वीकारा जा रहा है।) सृष्टिसे पहिले उसका 'असत्' होना जो कहा है, वह सर्वथा अभावके अर्थमें नहीं है, बल्कि जिस रूपमें कार्य रूप जगत् है, उसका प्रतिषेध करके कार्यसे कारणकी विलक्षणताको भी यह पुष्ट करता है। उपादान-कारण माननेपर कार्य (जगत्)की अशुद्धता परवशता आदिके ब्रह्मपर लागू होनेका भय नहीं है, क्योंकि उसका दृष्टान्त यह हमारा शरीर मौजूद है—यहाँ शरीरके दोषसे आत्मा लिप्त नहीं है, इसी तरह जगत्के दोषसे उसका शारीरक (=आत्मा) लिप्त नहीं होगा। ब्रह्मसे भिन्न प्रधानको कारण माननेमें और भी दोष उठ खड़े होंगे।—प्रधान जड़ है, स्वयं बिलकुल निष्क्रिय है, फिर प्रधान पुरुषका न योग हो सकता है, और न उससे सृष्टि ही उत्पन्न हो सकती है। तर्कसे हम किसी एक निश्चयपर नहीं पहुँच सकते, तर्क एक दूसरेका खंडित करते रहते हैं, इसलिए उपनिषद्के वचनको स्वीकार कर ब्रह्मको जगत्का उपादान कारण मान लेना ही ठीक है।[1]

ब्रह्मसे जगत् भिन्न नहीं है, यह उद्दालक आरुणिके "मिट्टी ही सच है (घड़ा आदि तो) बात कहनेके लिए नाम है"[2] इस वचनसे स्पष्ट है, क्योंकि (जिस तरह मिट्टीके होनेपर ही घड़ा मिलता है, वैसे ही ब्रह्मके) होनेपर ही (जगत्) प्राप्त होता है, और कार्यके कारण होनेसे भी ब्रह्मसे जगत् भिन्न नहीं। जैसे (सूत) पटसे (भिन्न नहीं) वैसे ही ब्रह्म जगत्से

---

[1] वे० सू० २।१।६, ७, ९, १२ भावार्थ।

[3] वे० सू० २।१।१५, २० भावार्थ। [2] छां० ६।१।४

भिन्न नहीं। जैसे (वही वायु) प्राण अपान आदि कितने ही रूपोंमें देखा जाता है, वैसे ही ब्रह्म भी जगत्के नाना रूपोंमें दिखाई पड़ता है।

जगत्को ब्रह्मसे अभिन्न कहते हुए जीवको भी वैसा ही कहना पड़ेगा, फिर यदि जीव ब्रह्म है तो अपनेको बंधनमें डालकर वह स्वयं क्यों अपने हितको न करनेवाला हो गया? यह प्रश्न नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्म जीव भर ही नहीं उससे अधिक भी है, यह भेद करके बतलाया[1] गया है।— जो आत्मामें रहते भी आत्मासे भिन्न है, जिसे आत्मा नहीं जानता, जिसका कि आत्मा शरीर है।[2] पत्थर आदि (भौतिक पदार्थों)में उस (=ब्रह्म)के विशेष गुण संभव नहीं, वैसे ही जीवमें भी वह सम्भव नहीं है। इसलिए जहाँ जीव जगत्में ब्रह्मके अनन्य होनेकी बात कही गई है, वहाँ आत्मा और आत्मीय (=शरीर) भावको लेकर ही समझना चाहिए। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ब्रह्म जगत्की सृष्टि करनेमें साधनोंका मुहताज नहीं है, बल्कि जैसे दूध स्वयं दही रूपमें बदल सकता है, वैसे ही ब्रह्म भी अपने संकल्प (=कामना) मात्रसे जगत्की सृष्टि कर सकता है। देव आदि अपने अपने लोकोंमें ऐसा करते हैं, यह शास्त्रसे मालूम है।

प्रश्न हो सकता है, ब्रह्म तो एक अखंड पदार्थ है, यदि वह जगत्के रूपमें परिणत होता है, तो संपूर्ण शरीरसे परिणत होगा, अन्यथा उसे अखंड नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसका उत्तर यह है कि उस परमात्मामें ऐसी बहुत सी विचित्र शक्तियाँ हैं, जिन्हें कि श्रुति हमें बतलाती है। उसी विचित्र शक्तिसे यह सब संभव है और इतना होनेपर भी वह निर्विकार रहता है।

(ग) सृष्टिकर्त्ता[3]—ब्रह्म स्रष्टा (=जन्मादि कर्त्ता) कहा गया है, किन्तु सवाल होता है, उस नित्य मुक्त तृप्त ब्रह्मको सृष्टि करनेका प्रयोजन क्या है? उत्तर है—लोकमें जैसे अपर्याप्त 'नित्य मुक्त तृप्त'

[1] वे० सू० २।१।२१ ३१ [2] वृह० ५।७।२२ ३१ भावार्थ।
[3] वे० सू० २।१।३२ ३६ भावार्थ।

महाराजा भी दाता (=फल) भोगके लिए गन्ध आदि सजाते हैं वैसे ही ब्रह्म भी सृष्टिको जीवोंके लिए करता है। जगत्की विषमता या क्रूरताको देखकर ब्रह्मपर आक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म तो जीवोंके कर्मोंकी अपेक्षासे वैसा जगत् बनाता है और यह क्रम अनादि कालसे चला आया है इसलिए जगत्की सृष्टि भी अनादिकालसे जारी है। प्रधान या परमाणुको जगत्का कारण माननेपर जो बात देखी जाती है वह अधिक पूरे निर्दोष रूपमें सिद्ध हो सकती है, यदि ब्रह्मको ही एकमात्र निमित्त उपादानकारण माना जाय।

इस तरह बादरायण जगत्, जीव, ब्रह्मको एक ऐसा शरीर मानते हैं, जो तीनोंको मिलकर पूर्ण होता है और जो सारा मिलकर सजीव सशरीर ब्रह्म ही नहीं है बल्कि जिसमें एक अवयवके दोष उस अखंड ब्रह्मपर लागू नहीं होते। कैसे? इसका जो उत्तर बादरायणने दिया है वह बिलकुल असन्तोषजनक है, तथा उसका आधार शब्द छोड़ दूसरा प्रमाण नहीं है।

(३) जगत्—जगत् ब्रह्मका शरीर है, जगत्का उपादानकारण ब्रह्म है, दोनोंमें विलक्षणता है किन्तु कार्य कारणकी यह विलक्षणता बादरायण स्वीकार करते हैं, यह बतला चुके हैं। बादरायणने कहीं भी जगत्को माया या काल्पनिक नहीं माना है और न उनके दर्शनसे इसकी गंध भी मिलती है कि 'ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है।'[1]

किन्तु जगत् उत्पत्तिमान् है पृथिवी, जल, तेज वायु ही नहीं आकाश भी उत्पत्तिमान् है। बादरायण दूसरे दर्शनोंकी भाँति आकाशको उत्पत्तिरहित नहीं मानते, इसे उन्होंने 'उसी आत्मासे आकाश पैदा हुआ'[2] आदि उपनिषद् वाक्योंसे सिद्ध किया है। आकाशकी भाँति दूसरे महाभूत—पृथिवी, जल[3] तेज वायु तथा इन्द्रियाँ और मन भी उत्पन्न हैं, और उनका कारण ब्रह्म है।

---

[1] "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।" [2] तैत्तिरीय २।१

[3] वे० सू० २।३।१ १७

गया है। इसलिए कि ज्ञान आत्माका सारभूत गुण है और इसलिए भी कि जहाँ कहीं आत्मा है वहाँ विज्ञान (=ज्ञान) जरूर रहता है। यदि कभी विज्ञान न भी मालूम होता तो भी मौजूद ज्ञान भी बाल्यावस्थामें जैसे (निगूढ़?) पुरुषत्व नहीं प्रकट होता वैसे समझना चाहिए। ज्ञान शरीरके भीतर तक रहता है, इससे भी आत्मा अणु (=छोटा?) सिद्ध होता है।

(घ) कर्त्ता आत्मा[1]—आत्मा कर्त्ता है, इसके प्रमाण श्रुतिमें भरे पड़े हैं। और उसके कर्त्ता न माननेपर शास्त्रका मानना भी गलत होगा फिर (शास्त्र प्रमाण-सम्मत) समाधि। कहा जा सकता है कि आत्माको कर्त्ता माननेपर उसे किसी वक्त क्रिया करते न रहनेका कोई कारण नहीं, बल्कि सदा अपने काम करनेकी (=प्रवृत्त) शक्ति है, किन्तु यह किसी वक्त उसका इस्तेमाल करता है किसी वक्त न इस्तेमाल कर चुप बैठा रहता है। जीवकी यह कर्तृत्व शक्ति परमात्मासे मिली है, यह श्रुतिसे[2] सिद्ध है। शक्तिके ब्रह्मसे मिलनेपर भी चूँकि जीवके किये प्रयत्नकी अपेक्षासे वह न्यायपरायण होती है इसलिए पुण्य-पापके विधि निषेध बेकार नहीं और न जीवको बेकार दंड भोगनेका सवाल उठ सकता है।

(ङ) ब्रह्मका अंश जीव है—जीवात्मा ब्रह्मका अंश है, यह उपनिषद्-सम्मत विचार बादरायणको भी स्वीकृत है। प्रश्न हो सकता है, शुद्ध ब्रह्मका अंश होनेसे जीव भी शुद्ध हुआ फिर उसके पुण्य-पापके सम्बन्धमें विधि निषेधकी क्या आवश्यकता? (बादरायण छुआछूत जात पाँतके कट्टर पक्षपाती हैं, इस बारेमें उन्हें बच्चोंसे कुछ भी सीखना असम्भव है) इसीलिए वह समाधान करते हैं कि देह-सम्बन्धसे विधि निषेधकी जरूरत होती है, जैसे आग एक होनेपर भी अग्निहोत्री ब्राह्मणके घरकी आग ग्राह्य है और श्मशानकी त्याज्य। जीव ब्रह्मका अंश है साथ ही अणु भी है इसलिए एक जीवके भोगके दूसरेमें मिल जानेका डर

---

[1] वे० सू० २।३।३३-४१
[2] बृह० ४।१।१८, तैत्ति० २।५।१
[3] बृह० ३।७।२२
[4] वे० सू० २।३।४२-४८

नहीं है क्योंकि प्रत्येक जीव एक दूसरेसे भिन्न है।

(च) जीव ब्रह्म नहीं है—यद्यपि शरीर शरीरी भावसे बादरायण जीवको ब्रह्मके अन्तर्गत उसका अभिन्न अंश मानते हैं, किन्तु जीव और ब्रह्मके स्वरूपमें भेदको साफ करना चाहते हैं।[1] और (जीव तथा ब्रह्म के) भेदको (उपनिषद्के) वचनसे (दोनो एक नहीं हैं)। इस मन्त्रको बादरायणने पहिले अध्यायमें ही तीन बार दुहराया है। भेदके कहनेसे (ब्रह्म जीवसे) अधिक है[2] भी कहा है और अन्तमें[3] मुक्त होनेपर भी जगत बनाने आदिकी बात छोड़ जीव और ब्रह्ममें सिर्फ भोग भरकी समानता होती है, यह कह कर वह ब्रह्म और जीवकी एकताको किसी अवस्थामें संभव नहीं मानते।

(छ) जीवके साधन—अणु-परिमाणवाले जीवके क्रिया और ज्ञानके साधन ग्यारह इंद्रियां हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, त्वक्—पाँच ज्ञान इंद्रिय; वाणी, हाथ, पैर, मल इंद्रिय, मूत्र इंद्रिय—पाच कर्म इंद्रिय और ग्यारहवां मन। ये सभी इंद्रिय उत्पत्तिमान (=अनित्य) और अणु (=एकदेशी) हैं।[4]

इन ग्यारह इंद्रियोंके अतिरिक्त प्राण (=श्रेष्ठ) भी जीवके साधनोंमें है, और वह भी अनित्य तथा अणु है।[5]

(ज) जीवकी अवस्थायें[6]—स्वप्न, सुषुप्ति, जागृत, मूर्छा जीवकी भिन्न भिन्न अवस्थायें हैं। स्वप्नकी वस्तुयें माया मात्र हैं। स्वप्न ब्रह्मके सकल्पसे होता है, तभी तो स्वप्नसे अच्छी बुरी घटनाओंकी पूर्व-सूचना मिलती है। स्वप्नका अभाव सुषुप्तिमें होता है। ज्ञाताकी अनुस्मृतिसे सिद्ध है कि सुषुप्तिके बाद जागनेवाला पहिला ही आत्मा होता है। मूर्छा आधा मरण है।

---

[1] वे० सू० १।१।८, १।१।२२, १।३।४ [2] वे० सू० २।१।२२
[3] वे० सू० ४।४।१७, २१ [4] वहीं २।४।४ ५ [5] वहीं २।४।१, २।४।६
[6] वहीं २।४।७ वे० सू० ३।२।१-१०

(क) कर्म—पहिले बतला चुके हैं[1], कि जगत् बनानेमें ब्रह्मको भी जीवके कर्मकी अपेक्षा पड़ती है। वस्तुतः जगतमें—मानव समाजमें—जो विषमता देखी जा रही जिस तरह हजार में ९९० मनुष्य श्रम करते करते भूखे मरते हैं और १० बिना काम किये दूसरकी कमाईसे मौज करते हैं जिनकी ही स्वर्गर पुरोहितोंने देवलोककी कल्पना की। फिर प्राणि-जगत—मनुष्यसे लेकर सूक्ष्मतम कीटों तक—में जिस तरहका भीषण संहार मचा हुआ है वह जगतके रचयिता ब्रह्मको भारी हृदयहीन क्रूर हो साबित करेगा इससे बचनेके लिए उपनिषदने (पूर्वजन्मके) कर्मवाले सिद्धान्तको निकाला। समाजकी तत्कालीन अवस्था—शोषक और शोषित, दास और स्वामी प्रथा—के जबर्दस्त पोषक बादरायणने उसे दुहरा दिया। कर्म तो एक समयमें किए जाते हैं फिर उससे पहिले जगत कैसे? इसके उत्तरमें कह दिया[2] कर्म अनादि है।

(ख) पुनर्जन्म—पुनर्जन्मके बारेमें भी बादरायणने उपनिषदके विचारोंको सुव्यवस्थित रूपसे एकत्रित किया है।[3] प्रवाहण जैवलिके पानीके पुरुष रूप धारण करने के उपदेशको सामने रख बादरायण कहते हैं—जब जीव शरीर छोड़ता है तो सूक्ष्म भूतों (=सूक्ष्म शरीर) के साथ जाता है। इन कर्मोंके भोगके समाप्त हो जानेपर, वह कुछ बचे अनुशय (कर्म) के साथ लौटता है।—बादरायणके पिता बादरिके मतसे उपनिषद्में आये चरण[4] शब्दसे सुकृत दुष्कृत अभिप्रेत हैं जिसके साथ कि परलोकसे लौटा पुरुष इस लोकमें फिरसे जीवन आरम्भ करता है। चन्द्रलोक वही जाते हैं जिन्होंने कि पुण्य किया है। नये शरीरमें आनेके लिए चन्द्रमासे मेघ जल अन्न आदि[5] जो रास्ता उपनिषद्ने बतलाया है उसमें देरी नहीं होती। जिन धान आदि अनाजोंके साथ हो जीव मातृगर्भ तक पहुँचता है उनमें वह स्वयं नहीं दूसरे जीवके अधिष्ठाता होते समय ऐसा

---

[1] वहीं २।१।३४ [2] वे० सू० २।१।३४, ३५ [3] वहीं ३।१।१-२७
[4] छान्दोग्य ५।१०।७ [5] छा० ५।१०।६ [6] छां० ५।१०।६

करता है। उस अनाजके खानेके बाद फिर रज-वीर्यका योनिमें संयोग होता है, जिसके बाद शरीर बनता है।

(५) **मुक्ति**[1]—ब्रह्मको प्राप्त हो जीवके अपने रूपमें प्रकट होनेको मुक्ति कहते हैं। जीवका अपना स्वरूप अविद्यासे ढँका रहता है जिसके खोलनेके लिए उपनिषद् विद्याकी जरूरत पड़ती है।

(क) **मुक्तिके साधन**—बादरायण विद्या (=ब्रह्मज्ञान)को मुक्तिका खास साधन मानते हैं जिसमें कर्म भी सहायक है।

(a) **ब्रह्म-विद्या**—उपनिषदके भिन्न भिन्न ऋषियोंने ब्रह्मका सत, उदगीथ, प्राण भूमा पुरुष दहर वैश्वानर, आनन्दमय, अक्षर मधु, आदिके तौरपर ज्ञान द्वारा उपासना करनेकी बात कही है इन्हींके नामपर इनके बारेमें किए गए उपदेश मधु विद्या उद्गीथ विद्या प्राण विद्या आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। बादरायण इसी (=विद्या)से **पुरुषार्थ** (=मोक्ष) की प्राप्ति मानते हैं।[2] जैमिनि पुरुषार्थ (=स्वर्ग)में कर्मकी प्रधानता मानते हैं और विद्याको **अर्थवाद**,[3] इसके लिए वह अश्वपति कैकय जैसे ब्रह्मवेत्ताका उदाहरण देते हुए कहते हैं कि ब्रह्मवेत्ताओंका यज्ञ करनेका आचार भी देखा जाता है। बादरायण जैमिनिसे मतभेद प्रकट करते हुए कहते हैं[4]—(स्वर्गमें वही) अधिक (ब्रह्मके) उपदेशसे (=विद्यासे ही) वैसा (मोक्ष मिलता है)। ब्रह्मवेत्ताके लिए यागादि कर्म करना सर्वत्र नहीं देखा जाता। कोई कोई उपनिषदके ऋषि गृहस्थ आदिके कर्मकांडको ऐच्छिक भी बतलाते हैं।[5] और कुछ तो कर्मके क्षयको भी बतलाते हैं।[6] संन्यास (=ऊर्ध्वरेता) आश्रम भी है, जिसमें कर्मकांड नहीं है, तो भी विद्या (=ब्रह्मज्ञान) प्रयुक्त होती है। जैमिनि जरूर ऐसे आश्रमोंको

---

[1] वे० सू० ४।४।१ [2] वे० सू० ३।४।१
[3] वे० सू० ३।४।२-७ और मीमांसा-सूत्र ४।३।१
[4] छां० ५।११।५ [5] वे० सू० ३।४।८-२० [6] वृह० ६।४।१२ मुंडक २।२।८

माननेसे इन्कार करते हैं, किन्तु बादरायण इन आश्रमोंको भी श्रुतिपादित होनेसे अनुष्ठेय स्वीकार करते हैं।

विद्या—ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्म साक्षात्कार रूपी ब्रह्म उपासनासे जीवको अपने स्वरूपमें अवस्थित रूपी मुक्ति होती है, यह कह चुके। लेकिन सत्, उद्गीथ, प्राण आदि विद्यायें अनेक हैं, इसलिए भ्रम हो सकता है, कि इनके उपासनाके विषय (=उपास्य) भी भिन्न भिन्न हो सकते हैं। बादरायण इसका समाधान करते हुए सभी विद्याओंको एक ब्रह्मपरक मानते हैं।[1]

(b) **कर्म**—विद्या (=ब्रह्मज्ञान)की प्रधानताको मानते हुए भी बादरायण यज्ञ आदि कर्मकांडको कितने ही उपनिषदके ऋषियोंकी भाँति तुच्छ नहीं समझते, बल्कि कर्मवाले गृहस्थ आदि आश्रमोंमें वह अग्निहोत्र आदि सारे कर्मोंकी विद्या (=ब्रह्मज्ञान)में जरूरत समझते हैं,[2] ज्ञानीको शम-दम आदिसे युक्त भी होना चाहिए। कर्म ठीक है, किन्तु ब्रह्मविद्याके साथ वह बलवत्तर होता है।[3]

यज्ञ-याग आदि स्पष्ट कर्म ही नहीं खानपान सबंधी छूतछातके नियमोंसे भी बादरायण ब्रह्मवादीको मुक्त करनेके लिए तैयार नहीं हैं। हाँ, प्राणका भय हो, तो उषस्ति चाक्रायणकी भाँति सबके (हाथके) अन्नको खानेकी अनुमति देते हैं, किन्तु जानबूझकर करनेकी नहीं। आश्रम (=गृहस्थ आदि)के कर्तव्य (=धर्म)को ब्रह्मज्ञानीके लिए भी ब्रह्मविद्याके सहकारीके तौरपर कर्तव्य मानते हैं।[5] हाँ, वह आपत्कालमें नियमोंको शिथिल करनेके लिए तैयार हैं, किन्तु आश्रमहीन रहनेसे आश्रममें रहनेको बेहतर बतलाते हैं।[6]

---

[1] वे० सू० ३।३।१-४ [2] वे० सू० ३।४।२६-२७, बृह० ६।४।२२ "तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन।"
[3] वे० सू० ४।१।१८ [4] वे० सू० ३।४।२८-३१
[5] वहीं ३।४।३२-३५ [6] वहीं ३।४।३६

(c) उपासनाके ढग—भिन्न भिन्न विद्याओंसे ब्रह्मकी उपासना किस तरह की जाय, यह उपनिषदके प्रकरणमे हम बतला चुके है। आत्मासे ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिए ब्रह्मसे भिन्न पदार्थों (=प्रतीको—मूर्ति आदि)में ब्रह्मकी उपासना नही करना चाहिए क्योंकि वह (=प्रतीक) ब्रह्म नही है।

आसनसे बैठकर शरीरको अचल रख ध्यानके साथ जहाँ चित्तकी एकाग्रता हो वहा ब्रह्मोपासना करनी चाहिए।[1]

विद्या (=ब्रह्मोपासना) की आवृत्ति यावज्जीवन करते रहना चाहिए।[2]

(ख) मुक्तकी अन्तिम यात्रा—ब्रह्मविद्याके प्राप्त हो जानेपर भोगो भुगे न हुए पहिले और पीछेके पाप-पुण्य विनष्ट हो जाते है और वह ब्रह्मवेत्ताको नही लगते।[3] किन्तु जो पुण्य पाप भोगाभिमुख (=प्रारब्ध) हो गए है उन्हें भोगकर मोक्षको प्राप्त करना होता है। इस तरह सपूर्ण कर्मराशिको नष्ट कर मुक्त जीव निम्न क्रमसे शरीर छोडता है[4]—वाणी मनमें लीन होती है मन प्राणमे प्राण जीवमे और वह महाभूतोमे। इस साधारण गतिसे मुक्तिकी गतिमें विशेषता यह है—ब्रह्मविद्याके सामर्थ्यसे सौसे ऊपर मस्तकाकी नाडियोमेसे मूर्धन्यानी नाडी द्वारा जीव अपने आसन हृदयको छोड निकलता है फिर सूर्य किरणका अनुसरण करते हुए आगे प्रस्थान करता है। चाहे रात हो या दक्षिणायन किसी वक्त मरनेपर मुक्त पुरुषकी मुक्तिमे बाधा नही।

मुक्त पुरुषको मरनेके बाद एक दूरदराजकी यात्रा करनी पडती है यह उपनिषदमे हम देख आए है। उपनिषदकी बिखरी सामग्रीको जमाकरके बादरायणने खगोलकी कल्पना की है। क्रमसे अर्चि (=किरण) दिन-शुक्लपक्ष उत्तरायण-सवत्सर-सूर्य-चन्द्र विद्युत (=बिजली) तक मुक्त पुरुष

---

[1] वे० सू० ४।१।७ ११   [2] वही ४।१।१,१२
[3] वहीं ४।१।१३ १५   [4] वहीं ४।१।१६
वहीं ४।२।१ ५, १४   [6] वहीं ४।२।१६ १९

जाता है। वहाँ अमानव पुरुष आ उस मुक्त पुरुषको ब्रह्मके पास भेजता है।[1] बृहदारण्यकमें[2] कहा है — जब पुरुष इस लोकसे प्रयाण करता है तो वायुको प्राप्त करता है। उसे वह वहाँ छोड़ ऊपर चढ़ता है और सूर्यमें पहुँचता है। दोनों तरहके पाठोंको ठीकसे लगाते बादरायणने संवत्सरसे वायुमें जाना बतलाया।[3] इसी तरह कौषीतकिके पाठको जोड़ते हुए विद्युत्लोकसे ऊपर वरुण लोकमें जानेकी बात कही। इस प्रकार उत्तरका रास्ता हुआ—अर्चि दिन शुक्लपक्ष-उत्तरायण-संवत्सर वायु-सूर्य चन्द्र-वरुण (अमानव पुरुष) ब्रह्मलोक। गोया बादरायण अपनेसे हजार वर्ष पहिलेके ज्योतिषियोंके ज्ञानको करीब करीब अक्षुण्ण मानते हुए खगोलमें वायुलोकसे ऊपर सूर्य, उससे ऊपर चन्द्र, उससे ऊपर वरुण, उससे ऊपर ब्रह्मलोकको मानते हैं। ब्रह्म और ब्रह्मलोक तकका ज्ञान इन ऋषियोंके बाँये हाथका खेल था, मगर वास्तविक विश्वके ज्ञानमें सितारोंकी सच्चाई छिड़ जाती थी।

(ग) **मुक्तका वैभव**—मुक्त जीव ब्रह्मको जब प्राप्त होता है, तो उससे जुदा हुए बिना रहता है। उस दशाके उस जीवके रूपके बारेमें जैमिनिका कहना है कि वह ब्रह्मवाले रूपके साथ होता है, औडुलोमि आचार्य कहते हैं कि वह चैतन्यमात्र स्वरूपवाला होता है। बादरायण इन दोनों मतोंमें विरोध नहीं पाते।

मुक्तकी भोग-सामग्री उसके संकल्पमात्रसे आन उपस्थित होती है, इसलिए वह अपना स्वामी आप है।[5]

[6]ब्रह्मके पास रहते मुक्तका शरीर होता है या नहीं?—इसके बारेमें बादरि नहीं कहते हैं, जैमिनि उसका सद्भाव मानते हैं, बादरायण कहते हैं—शरीर नहीं होता और संकल्प करते ही वह आ मौजूद भी होता है। शरीरके अभावमें स्वप्नकी भाँति वह ईश्वर-प्रदत्त भोगोंको भोगता है और

---

[1] छा० ४।१५।३ [2] बृह० ७।१०।१
[3] वे० सू० ४।३।२ कौषी० १।३ [4] वे० सू० ४।४।४-७
[5] वे० सू० ४।४।८-९ [6] वहीं ४।४।१०-१४

शरीरके मौजूद होनेपर जाग्रत अवस्थाका तरह।

मुक्त जीव फिर जन्म आदिमें नहीं पडता ब्रह्मके पाससे फिर उसका लौटना नहीं होता।[1]

मुक्त ब्रह्मकी भाँति सृष्टि नहीं बना सकता, उसकी ब्रह्मसे सिर्फ भोगकी समानता होती है, यह बतला चुके है।

(६) वेद नित्य हैं—यद्यपि बादरायण जैमिनिकी भाँति वेदको अपौरुषेय (किसी भी पुरुष—जीव या ब्रह्म—द्वारा न बनाया) नहीं मानते, किन्तु वेदको नित्य मनवानेकी उनको भी बहुत फिक्र है। वह समझते है, कि यदि वेद भी दूसरे शास्त्रोंकी भाँति अनित्य साबित हो गए, तो युक्ति-तर्कके बलपर सांख्य वैशेषिक न्याय बौद्ध जैन तार्किकोंके सामने अपने पक्षको नहीं साबित कर सकेंगे। ब्रह्मकी उपासना करनेके लिए मनुष्यके वास्ते अपने हृदयमें अगुष्ठ मात्र ब्रह्मको उपनिषदमें बतलाया गया।[2] इसी प्रकरणमें देवताओंकी भी चर्चा चल गई और बादरायणने कहा—मनुष्यके ऊपरवाले देवता भी ब्रह्मकी उपासना करते है क्योंकि यह (बिलकुल) संभव है। इस प्रकार तो देवता साकार साबित होंगे फिर एक ही इन्द्र एक ही समय अनेक यज्ञोंमें कैसे उपस्थित हो सकता है? उत्तर है—वह अनेक रूप धारण कर सकता है। इन्द्र जैसे शरीरधारी अनित्य देवताका नाम वेदमें आनेसे वेद भी अनित्य होगा यह शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इन्द्रसे वेदने इस शब्दको नहीं लिया, बल्कि वेदके शब्दसे इन्द्रको यह नाम मिला, इसीलिए वेद नित्य है। इन्द्र आदिके एक ही नाम और रूपवाला होनेसे उनकी बार-बार आवृत्ति होते रहनेसे भी वेदकी नित्यतामें कोई क्षति नहीं।

(७) शूद्रोंपर अत्याचार—बादरायणके छुआछूतके पक्षपातकी बात अभी हम बतला आए है। वर्णाश्रम धर्मपर उनका बहुत जोर था।

---

[1] वे० सू० ४।४।१६, २२ [2] वे० सू० १।३।२४

[3] वहीं १।३।२५-२६ [4] वहीं ३।४।२८-३१

जिस प्रकार संयम उदार विचारका रूप पाया नहीं जा सकते थे। ब्राह्मणोंके प्रतिद्वन्द्वी इतने साम रूप रह थे। वह धार्मिक-आर्थिक ध्या यामा वहाँ तक भी उदार धार्मिक विचारोंका प्रचार करना चाहते थे। तभी अशोकके भारतीय साम्राज्यमें सभी जातियोंके प्रति धार्मिक सहिष्णुता आशा की जा सकती थी। किन्तु वहीं ब्राह्मण अपने धार्मिक प्रभुत्वके लिए सदा सतर्क रहे थे।

(क) ब्राह्मणोंकी दुनिया—ब्राह्मण साथ आए, उन्होंने पहिले निवासियोंको पराजित किया। फिर रक्त और धर्मसम्बन्धमें ब्राह्मण उन्होंने आर्य और समाजमें नाना प्रकार व्यवहार करनेके लिए मजबूर किया। उस समय तक रह जानेपर रक्त-मिश्रण (=वर्णसंकरता) होने लगा; आर्योंके भीतर ढूँढ़न अनार्योंके स्त्रियाँ पत्नी बिए। बुद्ध जैसे धार्मिक और धार्मिक नेताओंने इसका खूब समर्थन किया। जब इतने वर्णभेद पर प्रहार हुआ—प्रथम कम प्रभुता और सर्वोत्तम मालिक बना जाने वालोंके लिए वह बहुत तेजीसे दूर होने लगा। ई० पू० चौथी सदीसे यवन, शक, जट्ट, गुर्जर, आभीर जैसी कितनी ही विदेशी जातियाँ भारतमें आकर बस गईं। उन सबको भारतीय सामाजिक व्यवस्थामें उनके क्या स्थान दिया जाय—यह भारी प्रश्न था। वर्ण-व्यवस्था विरोधिया—बौद्धों—ने अपना नुसखा न उन्हें अपना वर्ग (=शासक शासित)-पक्ष किन्तु वर्णहीन समाजकी कल्पनाको पूरा करनेके लिए इन आगन्तुकोंपर प्रभाव डालना चाहा और उसमें कुछ सीमा तक उन्हें सिर्फ इसी बातमें सफलता हुई कि उनमेंसे कितने ही अपनेको बौद्ध कहने लगे, बौद्ध और धार्मिक गुहा विहाराराम दान करने लगे। किन्तु ब्राह्मण भी अपने आसपासकी इन घटनाओंको देख बिना शंकित हुए नहीं रह सकते थे। उन्होंने वर्ण संहारकोंके विरोधमें अपने वर्णप्रस्थापक हथियारोंका इस्तेमाल शुरू किया — बौद्ध तो सारे सुन्दर और शासक लोगोंको वर्णहीन बना चाण्डालों की श्रेणीमें रखना चाहते हैं, हम तो उनके उच्च वर्ण होनेको स्वीकार करते हैं। ये आगन्तुक क्षत्रिय जातियाँ हैं जो कि ब्राह्मणोंके दर्शन न करनेसे

म्लेच्छ हो गई थी अब ब्राह्मण श्रेष्ठ हुआ इस श्रेष्ठ संस्कार द्वारा फिर क्षत्रिय बनाते हैं इन्हें चाण्डालोंके बराबर करना ठीक नहीं। जाद् अन्तम ब्राह्मणोंका भी जबदस्त निकला। एक ओर इन आगन्तुकोंको क्षत्रिय, कुछको ब्राह्मण भी बनाया गया दूसरी ओर अपनी उच्चवर्ण भक्तिको और पक्का साबित करनेके लिए शूद्रोंके लिए अत्याचार और अपमानकी मात्रा और बढ़ा दी। एम समयके ऋषियोंमें = य प्रातः स्मरणीय वेदान्त सूत्रकार भगवान् बादरायण।

(ख) प्रतिक्रियावादी वर्गका समर्थन— रैक्वके पास भारी भेंटके साथ ब्रह्मविद्या सीखनेके लिए आनेपर जानश्रुति पौत्रायणको गाड़ीवाले रैक्वने पहिले हटा रे शूद्र[1] इन शब्दोंसे कहा फिर पौत्रायणको ब्रह्मविद्या भी बतलाई जिससे जान पड़ता है शूद्रको भी ब्रह्मविद्याका अधिकार है। बादरायण ब्रह्मविद्यामें शूद्रका अधिकार न मानते हुए सिद्ध करते हैं कि पौत्रायण शूद्र नहीं था, हंसोंसे इतना दाना जानकर भी अपने लिए अनादर, रैक्वके लिए प्रशंसाके शब्द सुनकर तथा रैक्वके पास एकसे अधिक बार दौड़नेसे पौत्रायणको शोक हुआ था इसीलिए शोकसे दौड़नेवाला (=शुक्द्र) इस अर्थमें रैक्वने उसे शूद्र कहा था। छान्दोग्यके उस प्रकरणमें पौत्रायणके क्षत्रिय होनेका पता लगता है। उसी प्रकरणमें रैक्वके वायु ही संवर्ग (=मिलानेवाला) है इस संवर्ग विद्याके सीखनेवालोंमें शौनक कापेय, अभिप्रतारी काक्षसेनि तथा एक ब्रह्मचारीकी बात आती है जिनमें शौनक और ब्रह्मचारी ब्राह्मण थे और अभिप्रतारीके क्षत्रिय सिद्ध होनेमें दूसरा प्रमाण है।—कापेय (=कपि-गोत्री) पुरोहित चैत्ररथका यज्ञ कराते थे[2] और चैत्ररथ नामक एक क्षत्रपति (=क्षत्रिय) था[3]

---

[1] वे० सू० १।३।३३ ३९ भावार्थ।

[2] छां० ४।२।५, देखो पृष्ठ ४८० भी।

[3] "एतेन वै चैत्ररथं कापेया अयाजयन्"—ताण्ड्य ब्राह्मण २०।१२।५

हुआ था[1]। चूँकि जानश्रुति रथ-सरथा अश्वरथ क्षत्रिय था और यहाँ शौनक कापेय अभिप्रतारी काक्षसेनि साथ ब्रह्मविद्या सीख रहा है, इसलिए यहाँ भी पुरोहित यजमान-जोड़ा शौनक और अभिप्रतारी क्रमशः ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं। इस तरह गाड़ीवाले रैक्वकी ब्रह्मविद्याको मानकर दो ब्राह्मणोंके अतिरिक्त तीसरा क्षत्रिय हो जाता है, फिर पौत्रायण शूद्र होगा यह संभव नहीं। सत्यकाम जाबालके बापका ठिकाना न था, उसको कैसे हारिद्रुमत गौतमने ब्रह्मविद्या सिखाई?[2] इसका उत्तर बादरायणकी ओरसे है 'वहाँ समिधा ला, तेरा उपनयन करूँगा' कहनेसे साफ है कि हारिद्रुमतने उसे ब्राह्मण समझा, क्योंकि शूद्रको उपनयनका 'अभाव (मनुने) बतलाया है — शूद्रका पातक नहीं, उसे (उपनयन आदि) संस्कारका अधिकार नहीं।'[3] यहाँ नहीं सत्यकामके अब्राह्मण (=शूद्र) न होनेके निर्धारणकी भी हारिद्रुमत गौतम घोषणा करते हैं—'अब्राह्मण ऐसे (साफ साफ अपने अनिश्चित पितृत्वको) नहीं कह सकता।' इससे भी साफ है कि ब्रह्मविद्यामें शूद्र ('अब्राह्मण')का अधिकार नहीं। शूद्रको वेदके सुनने पढ़नेका निषेध श्रुतिमें मिलता है— शूद्र श्मशान सा है इसलिए उसके समीप (वेद) नहीं पढ़ना चाहिए। शूद्र बहुत पशु और (धन) वाला भी हो तो भी यज्ञ करनेका अधिकारी नहीं।[5] यही नहीं स्मृति भी इसका निषेध करती है— 'उस (=शूद्र)के पाससे वेद सुनते पर (पिघले) सीसे और लाखसे उसके कानको भरना चाहिए (वेदका) पाठ करनेपर उसकी जिह्वाको काटना चाहिए, याद (=धारण) करनेपर (उसके) शरीरका

---

[1] "चैत्ररथो नामैक: क्षत्रपतिरजायत।'—शतपथ-ब्राह्मण ११।५।३।१३

[2] छां० ४।४।१ ५, देखो पृष्ठ ३७७ [3] मनुस्मृति १०।१२६

"पद्यु ह वा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्'।

[5] 'तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञीय।'

बाट देना चाहिए।"[1]

(ग) बादरायणीयोंका भी वही मत—ब्रह्मज्ञानका फिलासफीन भी वर्ग-स्वार्थपर आधारित वर्ण-व्यवस्थाके नामसे शूद्रों (किसी समय स्वतन्त्र फिर आर्य-समाज-बहिष्कृत पराजित दास और तब कितने ही बादरायणोंकी नसोंमें अपना खून तक दौड़ानेवालों)के ऊपर होते क्षुद्र सामाजिक अत्याचारको नरम करनेकी तो बात ही क्या उसे और पुष्ट किया। बादरायणके ब्रह्मज्ञानने धर्मसूत्रवक्ता गौतमकी कठोर आज्ञाको—नरम करना तो अलग उसे—आदर्शवाक्य बनाया। शंकरके सारे अद्वैतवादने गौतमकी इन क्रूर पंक्तियोंके एक भी वज्राक्षरको विचलित करनेकी हिम्मत न की। रामानुजके गुरु तथा परदादा-नगड़दादा गुरु स्वयं अतिशूद्र थे, तो भी वेदान्त भाष्य करते वक्त वह धर्मसूत्रकार गौतम बादरायण और शंकरसे भी आगे रहनेकी कोशिश करते हैं। "शूद्रको अधिकार नहीं" इस प्रकरणके अन्तिम सूत्र[2]पर उनका भाष्य तीन सवातीन पंक्तियोंमें समाप्त होता है, किंतु उसके बाद ४२ पंक्तियोंके एक लच्छेदार व्याख्यानमें रामानुजने उसे वर्ण-व्यवस्था विरोधी आदि बतला शंकरके दर्शन (मायावाद)पर आक्षेप करते हुए अपने (विशिष्टाद्वैत) दर्शनके द्वारा वास्तविक शूद्र अनधिकार सिद्ध किया है जो (शंकर आदि)—(सब विशेषण रहित अद्वैत) चेतनामात्र (स्वरूपवाले) ब्रह्मको ही परमार्थ (=वास्तविक तत्त्व), और सब (=जीव जगत)को मिथ्या और (जीवके) बंधको अवास्तविक कहते हैं", वह 'ब्रह्मज्ञानमें शूद्र आदिका अधिकार नहीं'—यह नहीं कह सकते। तर्ककी सहायतासे प्रत्यक्ष और अनुमान (प्रमाण)से भी (उस तरहके ब्रह्मज्ञानको प्राप्तकर) शूद्र आदि भी मुक्ति पा जायेंगे। इसी तरह ब्राह्मण आदिका भी ब्रह्मविद्या मिल जायगी

---

[1] "अथ हास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः।"—गौतम धर्मसूत्र ३।१२।३

[2] "स्मृतेश्च"—वे० सू० १।३।३६

६ दूसरे दर्शनोंका खण्डन

शाङ्करायणने उपनिषद् सिद्धान्त (गण्डअय) तथा त्रिदि पारि पाणार्थि उत्तम भी ध्यान दिया । किन्तु साथ ही उन्होंने दूसरे मतोंकी सद्धान्तिक निर्बलताओंका भी दिग्दर्शन कराया है । इस समय सांख्य और योग का एक जिनका मत बहा—अनीश—वा उस बड़ा तथ ऋषि माना जा चुका था इसलिए कपिलोक्त दान उनके मतमें ईश्वरी शक्ति गिन जाते थे । पाशुपत और पांचरात्र सम्भवतः आर्योंके माने वैदिक भागवत धर्मों और परम्पराओंसे उपजे थे इसलिए ईश्वरवादी होनेपर भी अन कपि प्राप्त होनेसे उन्हें बल्कि आर्यगणमें समान रक्षित नहीं रखा जाता था । यद्यपि बौद्ध और जैन मत कपि प्राप्त तथा अनीश्वरवादी होनेसे शाङ्करायण जग ग्राम्भिकर लिए और भी घृणाके पात्र थे

क. ऋषिप्रोक्त विरोधी दर्शनोंका खंडन

(१) सांख्य-खंडन—कपिलके सांख्य दर्शन और उसके प्रकृति (=प्रधान) तथा पुरुषके सिद्धान्तके बारेमें हम कह चुके हैं। उपनिषदके ब्रह्मकारणवादसे सांख्यका प्रधानकारणवाद कई बातोंमें उलटा था। बादरायण कारणसे कार्यको विलक्षण मानते थे जब कि सत्कार्यवादी सांख्य कार्य कारणको स-लक्षण=अभिन्न मानता था। सांख्यका पुरुष निष्क्रिय था जब कि वेदान्तका पुरुष सक्रिय। सांख्यके संस्थापक कपिलको श्वेताश्वतर उपनिषद तकने ऋषि मान लिया था, इसलिए शब्द प्रमाणको अंधाधुंध माननेवाले बादरायण जैसोंके लिए भारी दिक्कत थी, ऊपरसे सांख्यवाले—यदि सब नहीं तो उनकी एक शाखा अपनेको वेद माननेवाला—अतएव उपनिषद्के वाक्योंसे पुष्ट करानेके लिए तत्पर दीख पड़ते थे। बादरायणने यह बतलानेकी कोशिश की[1] है कि उपनिषद न सांख्यके प्रधान (=प्रकृति)को मानती हैं और नहीं उसके निष्क्रिय पुरुषको। साथ ही सांख्य अपने दर्शनको सिर्फ शब्द प्रमाणपर ही आधारित नहीं मानता था यह उसके लिए युक्ति तर्क भी देता था जिसका उत्तर देते हुए बादरायण कहते हैं[2]—

अनुमान (-सिद्ध प्रधानका मानना युक्तिसंगत) नहीं है क्योंकि (जड़ होनेसे विश्वकी विचित्र वस्तुओं)की रचना (उससे) संभव नहीं है, और (न उसमें प्रधानकी) प्रवृत्ति (ही हो सकती है)। (जड़) दूध जैसे (दही बन जाता), पानी जैसे (बर्फ बन जाता है वैसे ही बिना चेतन ब्रह्मकी सहायताके भी प्रधान विश्वका बना सकता है, यह कहना ठीक नहीं) क्योंकि वहाँ भी (बिना ब्रह्मके हम दही, हिमकी रचना सिर्फ दूध और जलसे नहीं मानते)। तृण आदि जैसे (गायके पेटमें जा दूध बन जाते हैं वैसे ही प्रधानसे भी विचित्र विश्व बन जाता है, यह भी कहना

[1] द० सू० १।४।१ २२　　[2] वहीं २।२।१ ६ भावार्थ।

होते नहीं हैं) क्योंकि (गायका) अचेतन (तृण आदिका दूध बनना) नहीं (देखा जाता)। यदि (कहो—जैसे अंधा और पंगु) पुरुष (अंधे और, पंगु होते भी एक दूसरेकी सहायतासे देखने और चलनेकी क्रियाको कर सकते हैं अथवा जैसे लोहा तथा चुम्बक पत्थर दोनों स्वतः निष्क्रिय होते भी एक दूसरे की समीपतासे चल सकते हैं, उसी तरह प्रकृति और पुरुष स्वतन्त्र रूपसे निष्क्रिय होते हुए भी एक दूसरेकी समीपतासे विश्व वैचित्र्य पैदा करनेवाली क्रियाको कर सकते हैं)। (उत्तर है—) तब भी (गति संभव नहीं क्योंकि प्रकृति और पुरुषकी समीपता आकस्मिक नहीं नित्य है; फिर तो सिर्फ गति ही निरन्तर होती रहेगी, किन्तु वस्तुके निर्माणके लिए गति और गति रोध दोनों चाहिए)। (सत्व, रज, तम, गुणोंके अंग तथा) अंगीपन (को कभी कभी मानने) से भी (काम नहीं) चल सकता (क्योंकि स्वयं पुरुषके द्वारा उपस्थित प्रकृतिके इन तीन गुणोंमें कमा-बेशी करनेवाला कौन है? जिससे कि कभी सत्वकी अधिकतासे हल्कापन और प्रकाश प्रकट होगा, कभी रजकी अधिकतासे चलन और स्तम्भन होगा और कभी तमकी अधिकतासे भारीपन तथा निष्क्रियता मौजूद होगी?)।

यदि प्रधानको मान भी लिया जाय तो भी उससे कोई मतलब नहीं (क्योंकि पुरुष—जीव—तो स्वतः निष्क्रिय निर्विकार चेतन है प्रधानके कार्यके कारण उसमें कोई खास बात नहीं होगी।) फिर सांख्य सिद्धान्त परस्पर विरोधी भी है—कहीं एक ओर पुरुषके मोक्षके लिए प्रकृतिका रचना परायण होना बतलाया जाता है[1] और दूसरी जगह यह भी कहा जाता है,[2]—न कोई बद्ध होता न मुक्त होता है न आवागमनमें पड़ता है।

(७) योग-खंडन—सांख्यके प्रकृति, पुरुषमें पुरुष विशेष ईश्वरके जोड़ देनेसे वह ईश्वरवादी (सेश्वर) सांख्य-दर्शन हो जाता है यह बतला

[1] सांख्यकारिका ५७ [2] वहीं ६२

ग्राए है। बादरायणको योगके खंडनके लिए ज्यादा परिश्रमकी जरूरत न थी क्योंकि सांख्य-सम्मत प्रधान, तथा पुरुषके विरुद्ध दी गई युक्तियां यहाँ काम आ सकती थीं। योग ईश्वरको विश्वका उपादान कारण (=प्रकृति) नहीं मानता था बादरायणने[1] उपनिषदके प्रमाणसे उसे निमित्त उपादान कारण सिद्ध कर दिया। ईश्वर (=ब्रह्म) जगतके रूपमें परिणत होता है, यह उसकी विचित्र शक्तिको बतलाता है और वह योग-सम्मत निर्विकार ईश्वर नहीं है।

प्रश्न उठता है उपनिषदने[2] जिस कपिलको ऋषि कहा है उसके प्रतिपादित सांख्यका खंडन करके हम स्मृति (=ऋषि-वचन)की अवहेलना करते हैं। उत्तर है[3]—यदि हम उसे मानते हैं, तो दूसरी स्मृतियों (=ऋषिवाक्यों)की अवहेलना होती है। इसी उत्तरसे बादरायणने योग दर्शनकी ओरसे उठनेवाली शंकाका भी उत्तर दे दिया है।[4]

ख अन्-ऋषिप्रोक्त दर्शन-खंडन

पाशुपत और पांचरात्र ऐसे दर्शन हैं यह बतला चुके हैं।

(क) ईश्वरवादी दर्शन—

(१) पाशुपत-खंडन—शिवका नाम पशुपति है। यद्यपि शिव वैदिक (आर्य) शब्द है किन्तु शिव-पूजा जिस लिंग (=पुरुष जननेंद्रिय चिह्न)को सामने रखकर होती है, वह मोहन्-जो-डरो काल (आजसे ५००० वर्ष पूर्व)के अन् आर्योंके वक्तसे चली आती है, और एक समय था जब कि इसी लिंग (=शिश्न) पूजाके कारण अन् आर्योंको शिश्नदेव कहकर अपमानित भी किया जाता था, किन्तु इतिहासमें एक वक्त

---

[1] वे० सू० १।४।२३-२७
[2] श्वेताश्वतर ५।२—"ऋषिं प्रसूतं कपिलम्"।
[3] वे० सू० २।१।१
[4] "एतेन योगः प्रत्युक्तः"—वे० सू० २।१।३

अपना समझा जानेवाला वाले दूसरे बार सम्मानसे हो जाने पर दूसरन नहीं है। इसी लिंग पूजा धर्म कालान्तरमें पाशुपत (=शैव) मतके रूपमें विकसित हुआ और उसने अपने दार्शनिक सिद्धान्त भी तैयार किए। आजके शैव यद्यपि पूजामें पाशुपतोंके उत्तराधिकारी हैं, किन्तु दर्शनमें वह शंकरके मायावादी ब्रह्मवादका अनुसरण करते हैं। बादरायणके समय उनका अपना एक दर्शन था जिसके खंडनमें उन्हें चार सूत्रोंकी रचना करनी पड़ी।[1]

पाशुपत आजकलके आर्यसमाजियोंकी भाँति त्रैतवाद—जीव (=पशु) जगत् और ईश्वर (=पशुपति)—को मानते थे। वह कहते थे—जिनमें पशुपति जगत्‌का निमित्त कारण है, फिर वह वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्मकी भाँति निमित्त और उपादान दोनों कारण नहीं है।

बादरायणने पाशुपत दर्शनपर पहिला आक्षेप यह किया कि वह '(वेद) संगत नहीं है' (=असामंजस्य)। (घड़ा या घर रूपी कार्यका जैसे कोई देहधारी अधिष्ठाता होता है वैसे ही जगत्‌का भी कोई अधिष्ठाता है, इस तरह अनुमानसे ईश्वरकी सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती। क्योंकि (निराकार ईश्वरका) अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं हो सकता। (निराकार जीव) जैसे (इन्द्रिय, शरीर आदि) साधनों (का अधिष्ठाता है) वैसे ही पशुपति भी है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि जीवको अधिष्ठाता होना पड़ता है (कर्म-फल) भोगादिके कारण (कर्म-बंधन मुक्त पशुपतिके लिए न फल भोग है न उसके कारण शरीर धारणकी जरूरत पड़ सकती है)। और (यदि पशुपतिको भोगादिका मान लिया जाये, तो उसे) अन्तवान् और अ-सर्वज्ञ (मानना पड़ेगा)।

(२) **पाँचरात्र खंडन**—पाशुपत मतकी भाँति पाँचरात्र मतका भी स्रोत अन आर्य भारतका पुराना काल है। पाशुपतने शिव और शिवलिंगको अपना इष्ट देव माना, पाँचरात्रोंने विष्णु—भगवान्—वासुदेवको अपना

[1] वहीं २।२।३५-३८

इष्ट बनाया, और इसीलिए इन्हें वैष्णव और भागवत भी कहते हैं। शिवकी लिंग-मूर्ति मोहन जो डंरो काल तक जरूर जाती है किन्तु शिवकी मूर्ति उतनी पुरानी नहीं मिलती। वासुदेवकी मूर्तियोंकी कथा ईसा पूर्व चौथी सदी तक तथा मूर्तियोंके प्रस्तरखंड ईसा-पूर्व तीसरी सदी तकके मिलते हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदीमें भगवान वासुदेवके सम्मानमें एक यूनानी (हेलियोडोर) भागवत द्वारा खड़ा किया पाषाण-स्तम्भ आज भी भिलसा (ग्वालियर राज्य)में खड़ा है।

भागवत धर्मके मूल ग्रंथको ही पंचरात्र कहते हैं जो कि एक पुस्तक न हो कई पुस्तकोंका संग्रह है। इनमें अहिर्बुध्न्य पौष्कर सात्वत परम-संहिता जैसे कुछ ग्रंथ अब भी प्राप्य हैं। जिस तरह पाशुपतोंकी पूजा और धर्म आज शैवोंकी पूजा और धर्मके रूपमें परिणत मिलते हैं यद्यपि दर्शन बिलकुल नया है उसी तरह पांचरात्र भागवत धर्म आजके विष्णु पूजक वैष्णव धर्मके रूपमें मौजूद है यद्यपि यह गुप्तकाल—अपने वैभवके समय—में जितना बदला था उससे आज वहीं ज्यादा बदला हुआ है। तो भी आजके अनेक वैष्णव मतोंमें रामानुजका वैष्णव मत अभी पंच रात्र आगमको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता है, और एक तरहसे उसका उत्तराधिकारी भी है। कैसी विडंबना है? उसी सम्प्रदायके एक महान् सारथी रामानुज वादरायणके द्वारा पांचरात्र मतपर किए गए प्रहारका अनुमोदन करते हैं और पांचरात्र दर्शनकी जगह वादरायणके दर्शनको स्वीकार करते हैं!

पाँचरात्र दर्शनके अनुसार[1] वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध क्रमशः ब्रह्म, जीव, मन और अहंकारके नाम हैं।—ब्रह्म (=वासुदेव)से जीव (=संकर्षण) उत्पन्न होता है, उससे मन और उससे अहंकार। इस

---

[1] 'परमकारणात् परब्रह्मभूतात् वासुदेवात् संकर्षणो नाम जीवो जायते, संकर्षणात् प्रद्युम्नसंज्ञं मनो जायते, तस्माद् अनिरुद्धसंज्ञोऽहंकारो जायते"—परमसंहिता।

सिद्धान्तका खंडन करते हुए बादरायण कहते हैं[1]—

(जीव आदिके किसीसे उत्पन्न होनेसे) उत्पत्ति संभव नहीं। (कर्ता जीवसे करण मन उत्पन्न होता है) और प्रधान कारण नहीं बनता (इसलिए जीव-प्रधानका बनाने वाला नहीं कहा जाता है)। हाँ, यदि (वासुदेवको) शक्ति विज्ञान पर्यन्त (लिया जाय) तो (पाँचरात्र) उस (मत)का निषेध नहीं। परस्पर विरोधी (बातें) होनेसे भी (पाँचरात्र मत त्याज्य है)।

(ग) अनीश्वरवादी दर्शन खंडन—

कणादको ज्यादि बात करिताकी भाँति छूटि मान लिया गया किन्तु बादरायणके समय (३०० ई०) अभी कणादका इतना प्रबल नहीं हुआ था कि वह अति प्रधान शामिल हो गया था। ब्राह्मणवादके सामने वास्तविक बौद्ध और जैन दर्शनोंकी सम्प्रदायका विरोध है, चार्वाक दर्शनका विरोध उस वक्त क्षीण पड़ गया था इसलिए उसकी ओर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं पड़ी।

(१) वैशेषिक दर्शनका खंडन—कणाद परमाणुओंके, गोलकवाला परिमंडल—गोलाई—रूप मानते हैं और कहते हैं कि यही दो परमाणु मिलकर ह्रस्व (=छोटे) परिमाणवाले द्व्यणुकको बनाते हैं। इन्हीं ह्रस्व-परिमंडलोंके योगसे महत् (=बड़े) और दीर्घ परिमाणवाली वस्तुओंकी उत्पत्ति होती तथा जगत् बनता है। बादरायण कहते हैं[2]—

(यद्यपि कारणके गुणके अनुसार कार्यके गुणकी उत्पत्ति मानता है फिर अवयव रहित परमाणुसे सावयव ह्रस्व द्व्यणुककी उत्पत्ति संभव नहीं) और (महत् दीर्घ परिमाणसे रहित) ह्रस्व तथा परिमंडल (द्व्यणुक कण)से (भाग) महत् दीर्घ (परिमाण) वाले (पदार्थोंकी उत्पत्ति संभव नहीं)।

---

[1] वे० सू० २।२।३९-४२ [2] वे० सू० २।२।१०

जड परमाणु वस्तुओंका उत्पादन तभी कर सकते हैं जब कि उनमें क्रिया (=गति) हो। कणादके मतसे जगतकी उत्पत्तिके लिए अदृष्ट[1] (=अज्ञात नियम)की प्रेरणासे परमाणुमें कर्म (=क्रिया) उत्पन्न होता है, जिससे दो परमाणु एक दूसरेसे संयोग कर द्वयणुकका निर्माण करते हैं और साथ ही अपने कर्म (=क्रिया) को भी उसमें देते हैं। यही सिलसिला आगे चलता जगतको निर्माण करता है। प्रश्न उठता है—परमाणुमें जो आदिम क्रिया (=कर्म) उत्पन्न होती है क्या वह परमाणु (=जड) के अपने भीतरके अदृष्टसे उत्पन्न होती है या आत्मा (=चेतन) के भीतरसे? बादरायण कहते हैं[2]—दोनों तरहसे भी कर्म (संभव) नहीं। क्योंकि अदृष्ट पूर्व-जन्मके कर्मसे उत्पन्न होता है, आत्माके किए कर्मका अदृष्ट परमाणुमें कैसे जायगा? और परमाणुओंमें क्रियाके बिना जगत भी नहीं उत्पन्न होगा, फिर आत्मा कर्म कैसे करेगा? इसलिए (अणुमें) कर्म नहीं हो सकता। यदि कहा जाय कि सदा एक साथ रहनेवाले पदार्थोंमें जो **समवाय** (नित्य) संबंध होता है, उससे अदृष्टका परमाणुमें होना मानेंगे, तो[3] समवायके स्वीकारसे भी वही बात है (समवाय संबंध क्या वहीं है? उसके लिए दूसरा कारण फिर उसके लिए भी दूसरा कारण इस प्रकार) अनवस्था (=अन्तिम उत्तरका अभाव) होगी। यही नहीं समवाय-संबंध नित्य होता है, इसलिए परमाणु और उसका अदृष्ट दोनों नित्य ही मौजूद रहेंगे फिर जगतका नित्य रहना भी साबित होगा और यह जगतकी सृष्टि और प्रलय माननेवालोंके लिए ठीक नहीं है।

परमाणुको एक ओर वैशेषिक नित्य सूक्ष्म अवयव रहित मानता है, दूसरी ओर उसीमें तथा कारणके गुणके अनुसार कार्यमें गुण उत्पन्न होता है इस नियमके अनुसार उत्पन्न घडेमें रूप आदिके[4] देखनेसे और पृथ्वी

[1] "अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यग्गमनं अणुमनसोश्चाद्यं कर्मेति अदृष्ट-कारितानि।" [2] वहीं २।२।११

[3] वे० सू० २।१।१२ वहीं २।१।१३ [4] वहीं २।१।१४

न रहा होनेसे परमाणुओंमें रूप आदि (रस गंध, स्पर्श गुणों)के होने (को गलत स्वीकार करने)से भी परस्पर विरोधी (बात होती है)। परमाणुओंको यदि रूप आदिवाला मानें चाहे रूपादिरहित[1], दोनों हालतमें दोष मौजूद रहता है। पहिली अवस्थामें अवयव रहित होनेकी बात नहीं रहती दूसरी अवस्थामें कारणके गुणके अनुसार कार्यमें गुण उत्पन्न होता है, यह बात गलत हो जायेगी।

इस तरह यूरोपके आधुनिक भौतिकवादियोंकी भाँति कारणमें गुणोंके परिवर्तन होते कार्यके बननेको न माननेसे परमाणुवादमें जो कमजोरियाँ थीं उनको बादरायणने पकड़ा लिया। निर्विकार ब्रह्म उपादान-कारण बन जगत्को अपनेमेंसे बनाकर सविकार हो जायेगा, और अपनेमेंसे जगत्की उत्पत्ति नहीं करेगा तो वह उपादानकारण नहीं निमित्तकारण मात्र रह जायेगा फिर उपनिषद्के 'एक (मिट्टी)के विज्ञानसे सारे (मिट्टीसे बने पदार्थों)के विज्ञान' की बात क्या होगी—आदि प्रश्नोंका उत्तर बादरायण (और उनके अनुयायी रामानुज भी) कैसे देते हैं इसे हम देख चुके हैं और वह लीपापोतीसे बढ़कर कुछ नहीं है।[2]

तर्क-युक्तिसे परमाणुवादपर प्रहार करना काफी न समझ अन्तमें बादरायण अपने असली रंगमें उतर आते हैं[3]— चूँकि (आस्तिक वैदिक लोग उस सिद्धान्तको) नहीं स्वीकार करते, इसलिए (उसका) अत्यन्त त्याग ही ठीक है।

(२) जैनदर्शन-खंडन—जैनोंके अपने दो मुख्य सिद्धान्त—स्याद्वाद और आत्माका शरीरके अनुसार घटना-बढ़ना (मध्यमपरिमाणी होना)—हैं जिनके ही ऊपर बादरायणने प्रहार किया है। स्याद्वादमें है भी नहीं भी आदि सात तरहकी परस्पर विरोधी बातें मानी गई हैं बादरायण कहते हैं[4]— एक (ही वस्तुमें इस तरहकी परस्पर-

[1] वहीं २।२।१५
[2] देखो पृष्ठ ४६६-६७
[3] वे० सू० २।२।१६
[4] वे० सू० २।२।३१

सिद्धान्त अनित्यता=क्षणिकवादके साथ माने थे। बादरायणने मुख्यतः उनके इस क्षणिकवादका खंडन किया है। यद्यपि बुद्धके वक्त परमाणुवाद अपनी जन्मभूमि यूनानमें पैदा हुआ था, उसके प्रवर्तक देमोक्रितु [illegible] बुद्धके मरण (४८३ ई० पू०)के पास और [illegible] उत्पन्न था। यूनानियोंके साथ यह भारत आया जरूर [illegible] परमाणुवादको [illegible] उसके मिलनेवाले [illegible] (=अनात्मवादी) बौद्ध [illegible] थे। यूनानमें देमोक्रितु (४६०—३७० ई० पू०) परमाणुवाद स्थिरवादका समर्थक था, और वह हेराक्लितु (५३५—४७५ ई० पू०)के क्षणिकवादका समन्वय नहीं कर सका था, किन्तु भारतमें परमाणुवादका प्रथम स्वागत करनेवाले बौद्ध स्वयं उस समयतक हेराक्लितुकी भाँति क्षणिकवादी थे। यह भी सम्भव है, बुद्धके वक्तसे चले आते हुए अनित्यवादका नया नामकरण, क्षणिकवाद इसी समय हुआ हो। बौद्धोंने परमाणुवादको क्षणिकवादसे गँठजोड़ करा दिया। सभी भौतिक तत्त्वों (=रूप)की मूल इकाई अविभाज्य (=अ-भाग) परमाणु है, किन्तु वह स्वयं एक क्षणसे अधिककी सत्ता नहीं रखता—उनका प्रवाह (=सन्तान) जारी रहता है, किन्तु प्रवाहके तौरपर इस क्षणिकताके कारण हर क्षण विच्छिन्न होते हुए। अणुओंके संयोग—अणु समुदाय—से पृथिवी आदि भूतोंका समुदाय पैदा होता है और पृथिवी आदिके कारणोंसे शरीर इन्द्रिय विषय-समुदाय पैदा होता है। बादरायण इसका खंडन करते हुए कहते हैं[1]—

(परमाणु,हेतु या पृथिवी आदि हेतु) दोनों हेतुओंके (मानने) पर भी जगत् (का अस्तित्वमें आना) नहीं हो सकता (क्योंकि परमाणुओंके क्षणिक होनेसे उनका संयोग हो नहीं हो सकता फिर समुदाय कैसे?)। (प्रतीत्य समुत्पाद[2] के अविद्या आदि १२ अंगोंके) एक दूसरेके

---

[1] ब्र० सू० २।२।१७-२४ [2] देखो पृष्ठ ५१२-१५

प्रत्यय से (समुदाय) हो सकता है वह [illegible] ब्रह्मसूत्रे (वे अविद्या आदि पृथिवी आदिके) [illegible] (चाहे वह दिमागमें मल ही [illegible]) (क्षणिकवादके अनुसार) पीछे (का [illegible]) नष्ट हो गई रहती है (फिर [illegible]) गई—वस्तु कैसे हो सकती है क्योंकि [illegible] अभाव हो चुका है।) यदि ([illegible]) है यह मानते हो तो प्रत्ययके बिना [illegible] (आपकी) छूटता है और ([illegible] फूटे) या (कार्य और कारण दोनोंके) एक समय मौजूद [illegible]।

धर्मों (=वस्तुओं या घटनाओं)को [illegible] (=कृत) और असंस्कृत (=अकृत) [illegible]। [illegible] वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान—ये पाँचों स्कन्ध (१२ आयतन या १८ धातु) संस्कृत धर्म हैं, और निरोध (=अभाव) [illegible] असंस्कृत। निरोध (=अभाव, विनाश) भी दो प्रकारका है, एक प्रतिसंख्या-निरोध या स्थूल निरोध, दूसरा अप्रतिसंख्या-निरोध [illegible] निरोध। दोनोंमें वह मानते हैं कि विनाश [illegible] (=निरन्वय) होता है। बादरायणका कहना है कि [illegible] प्रतिसंख्या अप्रतिसंख्या निरोध (तुम मानते हो [illegible]) [illegible] सिद्ध हो सकता क्योंकि विच्छेद (होता) ही नहीं, घट वस्तुके नाश होनेपर भी [illegible] उपादान मिट्टी घटके टुकड़ोंमें भी [illegible] मौजूद रहता है। (कारणके बिलकुल अभाव—शून्य—हो जानेपर कार्यकी उत्पत्ति तथा कार्यका नाश हो बिलकुल अभाव—शून्य—हो जाना) दोनों ही तरहसे दोष है (शून्यसे उत्पत्ति तथा अन्तमें शून्य हो जानेवाला शून्य ही रहेगा)

---

[1] जिसके होनेके बाद दूसरी चीज होती है, वह इस होनेवाली चीजका प्रत्यय है।

अष्टादश अध्याय

भारतीय दर्शनका चरम विकास (६०० ई०)

§१—असंग (३५० ई०)

भारतीय दर्शनको अपने अन्तिम विकासपर पहुँचानेके लिए पहिला उल्लेखनीय प्रयत्न असंग और वसुबन्धु दो पेशावरी पठान भाइयोंने किया। बड़े भाई असंगने योगाचार भूमि[1] उत्तरतंत्र[1] जैसे ग्रन्थोंको लिखकर विज्ञानवादका समर्थन किया। छोटे भाई वसुबन्धुकी प्रतिभा और भी बहुमुखी थी। उन्होंने एक ओर वैभाषिक-सम्मत तथा बुद्धके दर्शनसे बहुसम्मत अपना सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ अभिधर्मकोश तथा उसपर एक बड़ा भाष्य[1] लिखा, दूसरी ओर विज्ञानवादके समर्थनमें विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि विंशिका (बीस कारिकायें) और त्रिंशिका (तीस कारिकायें) लिख अपने बड़े भाईके कामको और सुव्यवस्थित रूपमें दार्शनिकोंके सामने पेश किया। तीसरा काम उनका सबसे महत्त्वपूर्ण था वादविधान नामक न्याय-ग्रन्थ लिख भारतीय न्यायशास्त्रको नागार्जुनकी पैनी दृष्टिसे मिली प्रेरणाको और नियमबद्ध करना, और सबसे बड़ी बात थी भारती मध्ययुगीन न्यायके पिता दिग्नाग जैसे शिष्यको पैदाकर अब तकके किये गये प्रयत्नको एक नए प्रवाहके रूपमें ले जानेके लिए तैयार करना।

बौद्धोंके विज्ञानवाद—क्षणिक विज्ञानवाद—के शंकराचार्य और उनके दादा गुरु गौड़पाद कितने ऋणी हैं, यह हम बतलानेवाले हैं। वस्तुतः गौड़

---

[1] ये दोनों ग्रंथ चीनी और तिब्बती अनुवादके रूपमें पहिले भी मौजूद थे, किन्तु उनके संस्कृत मूल मुझे तिब्बतमें मिले, उनकी फोटो और लिखित प्रतियाँ भारत आ चुकी हैं। अभिधर्मकोशको अपनी वृत्तिके साथ मैं पहिले संपादित कर चुका हूँ।

पादवी माडूक्य कारिका अनात शान्ति प्रवरण प्रच्छन्न नही प्रकट रूपसे एव बौद्ध विज्ञानवादी ग्रथ ह। बौद्ध विज्ञानवाद और असगका एक दूसरे के साथ कितना सबध ह यह इसीसे मालूम हो सकता ह कि विज्ञानवाद अपने नामकी अपेक्षा योगाचार दर्शन के नामसे ज्यादा प्रसिद्ध ह और योगाचार शब्द असगके सबसे बड ग्रथ योगाचार भूमि से लिया गया ह।

१—जीवनी

असगका जन्म पेशावरके एक ब्राह्मण (पठान) कुलमे हुआ था। उनके छोटे भाई वसुबन्धु बौद्ध जगत्के प्रमुख दार्शनिकोमे थे। वसुबन्धुके कितने ही मौलिक ग्रथ कालकवलित हो गये। उनका अभिधर्मकोश बहुत प्रौढ ग्रथ ह, मगर वह सर्वास्तिवाद दर्शनका एक सुश्रृखलित विवेचन मात्र है इसलिए हमने उसके बारेमे विशेष नही लिखा। वसुबन्धुने अभिधर्मकोश पर विस्तृत भाष्य लिखा ह, जो सौभाग्यसे तिब्बतकी यात्राओमे मुझे सस्कृतमे मिल गया और प्रकाशित होनेकी प्रतीक्षामे फोटो रूपमे पडा ह। अपने बड भाई असगके विज्ञानवादपर विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि नामके विंशिका' और त्रिंशिका" नामसे बीस और तीस कारिकाओवाले दो प्रकरण भी मिल कर प्रकाशित हो चुके ह। वसुबन्धु मध्यकालीन न्याय शास्त्र"के पिता दिग्नागके गुरु थ और उन्होने स्वय भी वादविधान' नामसे न्यायपर एक ग्रथ लिखा था किन्तु शिष्यकी प्रतिभाके सामने गुरुकी कृतियाँ ढँक गइ। वसुबन्धु समुद्रगुप्तके पुत्र चद्रगुप्त (विक्रमादित्यके) अध्यापक रह चुके थे, और इस प्रकार वह ईसवी चौथी शताब्दीके उत्तरार्धमे मौजूद थ।[1]

असगकी जीवनीके बारेमे हम इससे अधिक नही जानते कि वह योगाचार दर्शनके प्रथम आचार्य थ वह गधारके लेखक वसुबन्धुके बडे भाई और पेशावरके रहनेवाले थे। वह ३५०में जरूर मौजूद रहे होग। यह समय नागार्जुनसे पौने सदी पीछे पडता ह। नागार्जुनके ग्रथ भारतीय न्यायशास्त्रके प्राचीनतम ग्रथ ह—जहाँ तक अभी हमारा ज्ञान जाता ह—लेकिन

---

[1] देखो मेरी "वादन्याय" और "अभिधर्मकोश"की भूमिकाएँ।

नागार्जुनका प्रमाण-समुच्चय मिलानेवाला भी उसी तरह हम मालूम नहीं है कि किस तरह उसका प्रभाव कितने ही दूसरे भारतीय दर्शनों तक भी पहुँचने वाली रश्मियाँ अभी उपलब्ध नहीं हुई हैं। असंगको आत्माराम (=न्याय) का काफी परिचय था, यह हम योगाचार भूमि से पता लगता है।

२—असंगके ग्रंथ

महायानोत्तर तंत्र, महायानसूत्रालंकार, योगाचार भूमि-वस्तुसंग्रहणी, बोधिसत्त्व पिटकाववाद—ये पाँच ग्रंथ अभी तक हमें असंगकी दार्शनिक कृतियोंमें मालूम हैं। इनमें विशेष दार्शनिक पता तो 'योगाचार भूमि' से ही लगता है। पहिले बाकी ग्रंथोंके तिब्बती या चीनी अनुवादोंका ही पता था।

योगाचार भूमि—असंगका यह विशाल ग्रंथ निम्न सत्रह भूमियोंमें विभक्त है—

१ विज्ञान भूमि	१० श्रुतमयी भूमि
२ मन भूमि	११ चिन्तामयी भूमि
३ सवितर्क-सविचारा भूमि	१२ भावनामयी भूमि
४ अवितर्क विचारमात्रा भूमि	१३ श्रावक भूमि[1]
५ अवितर्क अविचारा भूमि	१४ प्रत्येकबुद्ध भूमि
६ समाहिता भूमि	१५ बोधिसत्त्व भूमि[1]
७ असमाहिता भूमि	१६ सोपधिका भूमि
८ सचित्तका भूमि	१७ निरुपधिका भूमि[1]
९ अचित्तका भूमि	

[1] श्रावक भूमि और बोधिसत्त्व भूमि तिब्बतमें मिला। 'योगाचारभूमि'' का तालपत्र पोथी (दसवीं सदी) में नहीं है। बोधिसत्त्वभूमिको प्रो० उ० वोगीहारा (जापान १९३०) प्रकाशित कर चुके हैं। अलग भी मिल चुकी है।

[2] ''योगाचारभूमि' में ग्रन्थकारने किन किन विषयोंपर विस्तृत विवेचन किया है। यह निम्न विषयसूचीसे मालूम हो जायगा।

भूमि १

§ १ (पाँच इन्द्रियोंके) विज्ञानोंकी भूमियाँ।

§ २ पाँच इन्द्रियोंके विज्ञान (=ज्ञान)

१ आँखका विज्ञान

(१) विज्ञानोंके स्वभाव

(२) उनके आश्रय (सहभू, समनंतर, बीज)

(३) उनके आलंबन (Objects) वर्ण, संस्थान, विज्ञप्ति (=क्रिया)

(४) उनके सहाय (=सहयोगी)

(५) कर्म

(क) अपने विषयके आलंबनकी क्रिया (=विज्ञप्ति)

(ख) अपने स्वरूप (=स्वलक्षण)की विज्ञप्ति

(ग) वर्तमान कालकी विज्ञप्ति

(घ) एक क्षणकी विज्ञप्ति

(ङ) मनवाले विज्ञानकी अनुवृत्ति (=पीछे आना)

(च) भलाई बुराईकी अनुवृत्ति

२ कानका विज्ञान (स्वभाव आदिके साथ)

३ घ्राणका विज्ञान (,,)

४ जिह्वाका विज्ञान (,,)

५ काया (=त्वक् इंद्रिय)का विज्ञान (स्वभाव आदिके साथ)

§ ३ पाँचों विज्ञानोंका उत्पन्न होना

§ ४ पाँचों विज्ञानोंके साथ संबद्ध चित्त

§ ५ पाँचों विज्ञानोंके सहाय आदिकी 'एक काफिलेवाला' आदि होनेकी उपमा।

भूमि २

मनकी भूमि

§ १ मनके स्वभाव आदि

१ मनका स्वभाव

२ मनका आश्रय

३ मनका आलंबन (=विषय)

४ मनका सहाय (=सहयोगी)

५ मनके विशेष कर्म

(१) आलंबन विज्ञप्ति

(२) विशेष कर्म

(क) विषयकी विकल्पना

(ख) उपनिध्यान
(ग) मत्त होना
(घ) उन्मत्त होना
(ङ) सोना
(च) जागना
(छ) मूर्छित होना
(ज) मूर्छासे उठना
(झ) कायिक, वाचिक काम कराना
(ञ) विरक्त होना
(ट) विरागका हटना
(ठ) भली अवस्थाकी जड़का कटना
(ड) भली अवस्थाकी जड़का जुड़ना

२ मनका शरीरसे च्युति और उत्पत्ति
(१) शरीरसे च्युति (= छूटना मृत्यु)
(२) एक शरीरसे दूसरे शरीरके बीचकी अवस्थाका सूक्ष्मकायिक मन (=अन्तराभव)

३ दूसरे शरीरमें उत्पत्ति
(१) उत्पत्तिवाले स्थानमें जानेकी अभिलाषा
(२) गर्भमें प्रवेश करना
(क) गर्भाधानमें सहायक
(ख) गर्भाधानमें बाधक
(a) योनिका दोष
(b) बीजका दोष
(c) पुराविले कर्मका दोष
(ग) अन्तराभवकी दृष्टिमें परिवर्तन
(घ) पापी और पुण्यात्माके जन्मकृत
(ङ) गर्भाशयमें आलय विज्ञान (प्रवाह) जुड़नेका ढंग
(च) गर्भकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ
(a) कलल अवस्था
(b) अर्बुद अवस्था
(c) पेशी ,,
(d) घन ,,
(e) प्रशाख ,,
(f) केश - रोम - नखकी अवस्था
(g) इन्द्रियोंका प्रकट होना
(h) स्त्री - पुरुष - लिंग प्रकट होना
(छ) शरीरमें विकार

भूमि ३, ४, ५

(सवितर्क-सविचारा भूमि,
अवितर्क विचारमात्रा भूमि,
अवितर्क-अविचारा भूमि)
(सवितर्क-सविचारा भूमि)

§ ३ योनिशोमनस्कारकी प्रज्ञप्तिसे
- १ अधिष्ठान
- २ वस्तु
- ३ एषणा
- ४ परिभोग
- ५ प्रतिपत्ति

§ ४ अयोनिशोमनस्कार प्रज्ञप्तिसे
- १ दूसरोंके वाद (=मत)
  - (१) सद्वाद (सांख्य)
  - (२) अनभिव्यक्ति-वाद (सांख्य और व्याकरण)
  - (३) द्रव्यसद्वाद (सर्वास्तिवादी)
  - (४) आत्मवाद (उपनिषद)
  - (५) शाश्वतवाद (कात्यायन)
  - (६) पूर्वकृत हेतुवाद (जैन)
  - (७) ईश्वरादि-कर्त्तावाद (नैयायिक)
  - (८) हिंसाधर्मवाद (याज्ञिक और मीमांसक)
  - (९) अन्तानन्तिकवाद
  - (१०) अमराविक्षेपवाद (बेलट्ठिपुत्त)
  - (११) अहेतुकवाद (गोसाल)
  - (१२) उच्छेदवाद (लोकायत)
  - (१३) नास्तिकवाद (केशकम्बल)
  - (१४) अग्रवाद (ब्राह्मण)
  - (१५) शुद्धिवाद (,,)
  - (१६) ज्योतिषशकुन(=कौतुक-मंगल)वाद

§ ५ संक्लेश प्रज्ञप्तिसे
- १ क्लेश (=चित्तके मल)
  - (१) क्लेशोंके स्वभाव
  - (२) क्लेशोंके भेद
  - (३) क्लेशोंके हेतु
  - (४) क्लेशोंकी अवस्था
  - (५) क्लेशोंके मूल
  - (६) क्लेशोंकी अतिगमता
  - (७) क्लेशोंके विपर्यास
  - (८) क्लेशोंके पर्याय
  - (९) क्लेशोंके आदीनव
- २ कर्म
- ३ जन्म
  - (१) कर्मोंके भेद
  - (२) कर्मोंकी प्रवृत्ति

§ ६ प्रतीत्यसमुत्पाद

भूमि ६

(समाहिता भूमि)

§ १ ध्यान
- १ नाम गिनाई

(१) ध्यान
(२) विमोक्ष
(३) समाधि
(४) समापत्ति
२ व्यवस्थान
§ २ विमोक्ष
§ ३ समाधि
§ ४ समापत्ति

भूमि ७

(असमाहिता भूमि)

भूमि ८, ९

अचित्तका भूमि

भूमि १०

सचित्तका भूमि
(श्रुतमयी भूमि)
पाँच विद्याएं

§ १ अध्यात्मविद्या
१ वस्तुप्रज्ञप्ति
(१) सूत्र वस्तु
(२) विनय वस्तु
(३) मातृका वस्तु
२ संज्ञाभेद प्रज्ञप्ति
(१) पद
(२) भ्रान्ति
(३) प्रपंच
(४) स्थिति
(५) तत्त्व
(६) शुभ
(७) वर
(८) प्रगम
(९) प्रकृति
(१०) युक्ति
(११) संकेत
(१२) अभिसमय
३ बुद्ध-शासनके अर्थमें प्रज्ञप्ति
४ बुद्ध-वचनके ज्ञेयोंका अधिष्ठान
§ २ चिकित्सा विद्या
§ ३ हेतु (=वाद) विद्या
१ वाद
(१) वाद
(२) प्रतिवाद
(३) विवाद
(४) अपवाद
(५) अनुवाद
(६) अववाद
२ वादके अधिकरण
३ वादके अधिष्ठान (दस)
(१) दो प्रकारके साध्य
(२) आठ प्रकारके साधन
(क) प्रतिज्ञा
(ख) हेतु

(ग) उदाहरण
(घ) सादृश्य
(a) लिंगमें सादृश्य
(b) स्वभावमें सादृश्य
(c) कर्ममें सादृश्य
(d) धर्ममें सादृश्य
(e) हेतुफल (=कार्य कारण) में सादृश्य
(ङ) वैरूप्य
(च) प्रत्यक्ष
(a) अ-परोक्ष
(b) अनभ्यूहित अनभ्यूह्य
(c) अभ्रान्त
(भ्रान्तियाँ—संज्ञा संख्या, संस्थान, वर्ण, कर्म, चित्त दृष्टिसे संभ्रम रखनेवाली)
(प्रत्यक्षके भेद—इन्द्रिय प्रत्यक्ष, मन प्रत्यक्ष, लोक-प्रत्यक्ष, शुद्ध (=योगि) प्रत्यक्ष
(छ) अनुमान
(a) लिंगसे
(b) स्वभावसे
(c) कर्मसे
(d) धर्मसे
(e) हेतु फल (=कार्य-कारण) से
(ज) आप्तागम (=शब्द)

४ वादका अलंकार
(१) अपने और पराये वाद की अभिज्ञता
(२) वाक्-कर्म सम्पन्नता (=भाषण-पटुता)
(क) अग्राम्य भाषण
(ख) लघु (=मित) भाषण
(ग) ओजस्वी भाषण
(घ) पूर्वापरसंबद्ध भाषण
(ङ) स्वच्छ अर्थोंवाला भाषण
(३) विशारद होना
(४) स्थिरता
(५) दाक्षिण्य (=उदारता)

५ वादका निग्रह
(१) कथात्याग
(२) कथासाद
(३) कथादोष
(क) बुरा वचन
(ख) संरब्ध (=कुपित) वचन
(ग) अ-गमक वचन

२ सद्धर्मश्रवण-संपद्
(१) ठीक उपदेश करना
(२) ठीक सुनना
(३) निर्वाण प्रमुखता
(४) चित्त-मुक्तिको परिपक्व बनानेवाली प्रज्ञाका परिपाक
(५) प्रतिपत्ति भावना

भूमि १३

(श्रावक भूमि)

भूमि १४

(प्रत्येकबुद्ध भूमि)

§ १ गोत्र
१ मन्द रजवाला गोत्र
२ मन्द-करुणावाला गोत्र
३ मध्य-इन्द्रियवाला गोत्र
§ २ मार्ग
§ ३ समुदागम
१ गड्ढेकी सींग जैसा अकेला विहरनेवाला
२ जमातके साथ विहरनेवाला
§ ४ चार

भूमि १५

(बोधिसत्त्व भूमि)

भूमि १६

(उपधि-सहिता भूमि)
तीन प्रज्ञप्तियोंसे
१ भूमि प्रज्ञप्ति
२ उपशम प्रज्ञप्ति
३ उपधि प्रज्ञप्ति
(१) प्रज्ञप्ति उपधि
(२) परिग्रह उपधि
(३) स्थिति प्राप्ति
(४) प्रवृत्ति प्रज्ञप्ति
(५) अन्तराय प्रज्ञप्ति
(६) दुःख प्रज्ञप्ति
(७) रति प्रज्ञप्ति
(८) अन्य प्रज्ञप्ति

भूमि १७

(उपधि रहिता भूमि)
१ भूमि प्रज्ञप्तिसे
२ निवृति प्रज्ञप्तिसे
(१) व्यपशमा निवृति
(२) अव्याबाध निवृति
३ निवृति-पर्यायविज्ञप्तिसे

"योगाचार भूमि" (संस्कृत) को महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य सम्पादित कर रहे हैं।

३–दाशनिक विचार

असग क्षणिक विज्ञानवादी थ। यह विज्ञानवाद असगके पहिले भी "लकावतार सूत्र", 'सधिनिर्मोचन सूत्र' जस महायान सूत्राम मौजूद था। इन सूत्रोको बुद्धवचन कहा जाता ह मगर अधिकाश महायान-सूत्रोकी भाति यह बुद्धके नामपर बन पीछके सूत्र ह लकावतार सूत्रका बुद्धने दक्षिणमें लका (=सीलोन) द्वीपके पवत (समन्तकूट?)पर उपदेश दिया था। वस्तुत उसे दक्षिण न ल जा उत्तरमे गधारकी पवतावलीमें ले जाना अधिक युक्तियुक्त ह। बौद्धाका विज्ञानवाद बुद्धके 'सब्ब अनिच्च' (=सब अनित्य ह) या क्षणिकवादका अफलातूके (स्थिर) विज्ञान वादके साथ मिश्रण मात्र ह, और यह मिश्रण उसी गधारमें किया गया जहाँ यूनानियोकी कलाके मिश्रण द्वारा गधार मूर्तिकलान अवतार लिया। विज्ञानवाद विज्ञानका ही परमाथतत्त्व मानता ह, यह बतला आय ह और यह भी कि वह पाच इद्रियोके पाँच विज्ञानो तथा छठ मन विज्ञानके अति रिक्त एक सातवें आलयविज्ञानको मानता ह। यही आलयविज्ञान वह तरगित समुद्र ह जिससे तरगोकी भाति विश्वकी सारी जड चतन वस्तुए प्रकट और विलीन होती रहती ह।

यहाँ हम असगके दाशनिक विचारोको उनकी योगाचार भूमिके आधार पर देते ह। स्मरण रह 'योगाचार भूमि' कोई सुसबद्ध दाशनिक ग्रथ नही ह, वह बुद्धघोषके विसुद्धिमग्ग (=विशुद्धिमार्ग)की भाँति ज्यादा तर बौद्ध सदाचार योग तथा धमतत्त्वका विस्तृत विवचन ह। असगन अपन इस तरुण समकालीनकी भाँति बुद्धकी किसी एक गाथाको आधार बनाकर अपन ग्रथको नही लिखा ह। 'गाथाथ प्रविचय'[1] म जरूर १७८ गाथाए— हीनयान महायान दोनो पिटकोकी—एकत्रित कर दी ह। बुद्धघोषकी भाँति असगन भी सूत्रोकी भाषा-शैलीका इतना अधिक अनुकरण किया ह कि

---

[1] योगाचारभूमि (श्रुतमयीभूमि १०)

आज बहुत भ्रम होने लगता है कि हम अभिसंस्कृत संस्कृतके कालमें न हो पिटक-कालकी किसी पुस्तकको संस्कृत शब्दावलीके रूपमें पढ़ रहे हैं। बुद्धघोष असंग असंगसे पीछे लिख रहे थे, जिसे वसुबन्धु-कालिदास कालीन संस्कृतकी भाँति संस्कृत जाननेका अभी मौका नहीं मिला था, इसलिए बुद्धघोष पालिकी भाषा शैलीका अनुकरण करनेके लिए मजबूर थे, मगर असंगको ऐसी कोई मजबूरी न थी, न वह अपनी कृतिको बुद्धके नामसे प्रकट करनेके लिए ही इच्छुक थे। फिर, उन्होंने क्यों ऐसी शैलीको स्वीकार किया, जिसमें किसी बातको संक्षेपमें कहा ही नहीं जा सकता? संभव है सूत्रोंकी शैलीमें परिचित अपने पाठकोंके लिए आसान करनेके ख्यालसे उन्होंने ऐसा किया हो।

हम यहाँ 'योगाचार भूमि'[1] का पूरा संक्षेप नहीं देना चाहते, इसलिए उसमें आये असंगके ज्ञेय (=प्रमेय), विज्ञानवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, हेतु (=वाद)विद्या, परवाद खंडन और द्रव्य-परमाणु-संबंधी विचारोंके देने ही पर सन्तोष करते हैं।

(१) ज्ञेय (=प्रमेय) विषय

'ज्ञेय' कहते हैं परीक्षणीय पदार्थको। ये चार प्रकारके होते हैं, सत् या भाव रूप, दूसरा असत् या अभाव रूप—अस्तित्व और नास्तित्व।

(क) **सत्**—यह पाँच प्रकारका होता है: (१) स्वलक्षण (=अपने स्वरूपमें) सत्, (२) सामान्यलक्षण (=जाति आदिके रूपमें) सत्, (३) संकेतलक्षण (=संकेत किये रूपमें) सत्, (४) हेतु लक्षण (=इष्ट अनिष्ट आदिके हेतुके रूपमें) सत्, (५) फल लक्षण (=परिणामके रूपमें) सत्।

(ख) **असत्**—यह भी पाँच प्रकारका है। (१) अनुत्पन्न (=जो पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ अतएव) असत्, (२) निरुद्ध (=जो उत्पन्न

---

[1] योगाचारभूमि (चिन्तामयी भूमि ११)

हो कर निरुद्ध या नष्ट हो गया, अतएव) असत (३) अन्योन्य (= गाय घोडा नहीं घोडा गाय नहीं इस तरह एक दूसरेके रूपमें) असत (४) परमार्थ (=सत्यमें जानपर) असत और (५) (=बन्ध्या पुत्र की भाँति) अत्यन्त असत।

(ग) अस्तित्व—यह भी पाँच प्रकारका माना है—(१) परिनिष्पन्नलक्षण—जो अस्तित्व कि परमार्थतः है (जैसे कि असंगके मतमें विज्ञान भौतिकवादियोंके मतमें भौतिकतत्त्व), (२) परतन्त्रलक्षण अस्तित्व प्रतीत्यसमुत्पाद (अमुकके होनेसे अमुक अस्तित्वमें आता है) अस्तित्वको कहते हैं (३) परिकल्पितलक्षण अस्तित्व है सकेत (Convention) करके जिसको माना जाय (४) विशेषलक्षण है काल, जन्म, मृत्यु आदिके सबधमें माना जानेवाला अस्तित्व और (५) अवक्तव्यलक्षण अस्तित्व वह है जिसे है या नहीं भी दोनों नहीं कहा जा सके (जैसे बौद्ध दर्शनमें पुद्गल=चेतनाको स्कन्धोंसे न अलग कहा जा सकता, न एक ही कहा जा सकता)।

(घ) नास्तित्व—यह पाँच प्रकारका होता है—(१) परमार्थरूपेण नास्तित्व, (२) स्वतन्त्ररूपेण नास्तित्व (३) सर्वसत्तारूपसे नास्तित्व (४) अविशेष रूपसे नास्तित्व और (५) अवक्तव्य रूपसे नास्तित्व।

परमार्थतः सत असत अस्तित्व या नास्तित्वको बतलानेके लिए असंगने परमार्थ-गाथाके नामसे महायान मतकी कितनी ही गाथाएँ उद्धृत की है। इनमें (१) वस्तुओंके अपने भीतर किसी प्रकारके स्थिर तत्त्वकी सत्ताको इन्कार करते हुए उन्हें शून्य (=सार-शून्य) कहा गया है बाह्य और मानस तत्त्वोंको सार-शून्य कहते हुए उन्हें क्षणिक (=क्षण क्षण विनाशी) बतलाया गया है, और यह भी कि (३) कोई (ईश्वर आदि) जनक और नाशक नहीं है बल्कि जगतके सारे पदार्थ स्वरस (=स्वभावतः) भगुर है। रूप (=Matter) वेदना सज्ञा संस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कन्धोंमें स्थिरताका भास सिर्फ भ्रममात्र है वस्तुतः वे फेन बुलबुले मृगमरीचिका कदली गर्भ तथा मायाकी भाँति निस्सार

कहा है[1]—

आध्यात्मिक (=मानसजगत्) शून्य है, बाह्य भी शून्य है।
ऐसा कोई (आत्मा) नहीं है, जो शून्यताका अनुभव करता ॥३॥
अपना (कोई) आत्मा ही नहीं है (यह आत्माकी कल्पना) उसकी कल्पना है। यहाँ कोई सत्त्व या आत्मा नहीं है ये (सारे) धर्म (=पदार्थ) अपने ही अपने कारण हैं ॥४॥
सारे संस्कार (=उत्पन्न पदार्थ) क्षणिक हैं। ॥५॥

उसे कोई दूसरा नहीं जनाता और न वह स्वयं उत्पन्न होता है। प्रत्ययके होनेपर पदार्थ (=भाव) पुराने नहीं बिल्कुल नये-नये जनमते हैं ॥८॥ न दूसरा इसे नाश करता है और न स्वयं नष्ट होता है। प्रत्यय (=पूर्वकारण)के होनेपर (ये पदार्थ) उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न हो स्वरस ही क्षणभंगुर हैं ॥९॥ रूप (=भौतिकतत्त्व) फेनके पिंड समान है, वेदना (स्कन्ध) बुद्बुद जैसी ॥१७॥ संज्ञा (मृग)-मरीचिका सदृशी है संस्कार कदली जैसे और विज्ञानको माया-समान सूर्यवंशज (=बुद्ध)ने बतलाया है ॥१८॥'

(२) विज्ञानवाद

(क) आलयविज्ञान—बाह्य-आभ्यन्तर जड़ चेतन—जो कुछ जगत् है सब विज्ञानका परिणाम है। विज्ञान-समष्टिको आलयविज्ञान, कहते हैं इसीसे वीचि-तरंगकी भाँति जगत् तथा उसकी सारी वस्तुएँ उत्पन्न हुई है। इस विश्व विज्ञान[2] या आलय विज्ञानसे जैसे जड़-जगत् उत्पन्न हुआ उसी तरह, वर्यक्ति विज्ञान (=प्रवृत्ति विज्ञान)—पाँचों इन्द्रियोंके विज्ञान और छठाँ मन पैदा हुआ।

(ख) पाँच इन्द्रिय विज्ञान—इन्द्रियोंके आश्रयसे जो विज्ञान (=चेतना) पैदा होता है, वह इन्द्रिय विज्ञान है। अपने आश्रयों चक्षु

---

[1] योगाचार भूमि (चिन्तामयी भूमि ११) [2] देखो, रोम्द, पृष्ठ २४०

(=आँख) आदि पाँचो इद्रियोंके अनुसार इद्रिय विज्ञान भी पाच प्रकारके होते है।—

(a) **चक्षु विज्ञान'** (i) स्वभाव—चक्षु (=आँख)के आश्रय (=सहारे)से जो विज्ञान प्राप्त होता है वह चक्षु विज्ञान है। यह है चक्षु विज्ञानका स्वभाव (=स्वरूप)।

(ii) **आश्रय**—चक्षु विज्ञानके आश्रय तीन है चक्षु जो कि साथ साथ अस्तित्वमें आता तथा विलीन होता है अतएव **सहभू** आश्रय है मन जो इस विज्ञान (की सतति)का वाह्य आश्रय होता है अतएव **समनन्तर** आश्रय है रूप इद्रिय मन तथा सारे जगत्का बीज जिसमे मौजूद रहता है, वह **सवबीजक** आश्रय है आलय विज्ञान। इन तीनो आश्रयोमे चक्षु रूप (=भौतिक) होनेसे रूपी आश्रय है और बाकी अरूपी।

(iii) **आलबन** या विषय है—वर्ण (=रग) सस्थान (=आकृति) और विज्ञप्ति (=क्रिया)। (a) वर्ण है—नील, पीत लाल सफेद छाया, धूप प्रकाश, अधकार मद्र, धूम रज महिका और नभ। (b) सस्थान है—लम्बा, छोटा, वत्त, परिमडल अणु स्थूल सात विसात उन्नत और अवनत। (c) विज्ञप्ति है—लेना फेकना सिकोडना फैलाना, ठहरना बढना हटना दौडना इत्यादि।

(iv) **सहाय**—चक्षु विज्ञानके साथ पैदा होनेवाले एक ही आलबन के चैतसिक धर्म है।

(v) **कर्म**—छ है (१) स्वविषय अवलबी (२) स्वलक्षण, (३) वर्तमान काल, (४) एक क्षण (५) शुद्ध (=कुशल) अशुद्ध मनके विज्ञान वमके उत्थान, इन दो आकारोंसे अनुवर्ति, (६) इष्ट या अनिष्ट फलका ग्रहण।

(b-e) **श्रोत्र आदि विज्ञान**—इसी तरह श्रोत्र घ्राण जिह्वा और काया (=त्वग) इद्रियोंके इद्रिय विज्ञान है।

' योगाचार भूमि (१)

(ग) मन विज्ञान—[illegible] हो [illegible] है। इसके [illegible] भाग [illegible]—

(a) स्वभाव—[illegible] [illegible] और विज्ञान [illegible] (=स्वभाव) है। [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] प्रत्यय विज्ञान [illegible] ( ) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है इस [illegible] [illegible] और [illegible] (=[illegible]) इस [illegible] [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] है। ([illegible]) विज्ञान का [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] है।

(b) आश्रय—[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और आश्रय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आश्रय विज्ञान है।

(c) आलम्बन—[illegible] [illegible] (=विषय) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] भी कहा जाता है—।

(d) सहाय—[illegible] सहाय(=साथी) [illegible] [illegible] [illegible] है—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

(e) कर्म—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—(१) [illegible] प्रथम [illegible] [illegible] विषयकी [illegible] [illegible] [illegible] (२) फिर उसके [illegible] [illegible] [illegible], (३) फिर [illegible] [illegible] [illegible] (४) फिर प्रवृत्ति या अनुवृत्ति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विज्ञप्ति, (५) फिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (६) [illegible] [illegible] [illegible] उत्पादन। दूसरी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (=[illegible]) कर्म [illegible] है—(१) विषयकी [illegible], (२) [illegible] [illegible] (=[illegible]) (३) [illegible] [illegible] (४)

[1] Contact

उन्मादमें होना, (५) निद्रामें जाना (६) जागना (७) मूर्च्छा खाना, (८) मूर्च्छासे उठना, (९) कायिक-वाचिक कर्मोंका करना (१०) वैराग्य करना (११) वैराग्य छोड़ना (१२) भलाईकी जड़ोंका काटना, (१३) भलाईकी जड़ोंका जोड़ना (१४) शरीर छोड़ना (=च्युति) और (१५) शरीरमें आना (=उत्पत्ति)।

इन कर्मोंमेंसे कुछके उनके बारेमें प्रसंग कहते हैं[1]—

पुरविले कर्मोंसे अथवा शरीरधातुकी विषमता भय मर्म-स्थानमें चोट, और भूत प्रेतके आवेशसे उन्माद (=पागलपन) होता है।

शरीरकी दुर्बलता परिश्रमकी थकावट भोजनके भारीपन आदि कारणोंसे निद्रा आती है।

वात पित्तके बिगाड़ अधिक पाखाना और खूनके निकलनेसे मूर्च्छा होती है।

(मनकी च्युति तथा उत्पत्ति)

बौद्ध-दर्शन क्षण-क्षण परिवर्तनशील मनसे पर किसी भी नित्य जीवात्माको नहीं मानता। मरनेका मतलब है, एक शरीर प्रवाह (=शरीर भी क्षण-क्षण परिवर्तनशील होनेसे वस्तु नहीं बल्कि प्रवाह है) से एक मन प्रवाह (=मन-सन्तति) का च्युत होना। उसी तरह उत्पत्तिका मतलब है, एक मन प्रवाहका दूसरे शरीर प्रवाहमें उत्पन्न होना।

(a) च्युति (=मृत्यु)—मृत्यु तीन कारणोंसे होती है—आयुका खतम हो जाना, पुण्यका खतम हो जाना और शरीरकी विषम क्रिया यानी भोजनमें न मात्राका ख्याल न पथ्यका ख्याल दवा सेवन न करना अकालचारी अब्रह्मचारी होना।

मृत्युके वक्त पापियोंके शरीरका हृदयसे ऊपरी भाग पहिले ठंडा पड़ता है और पुण्यात्माओंका निचला भाग फिर सारा शरीर।

---

[1] योगाचार भूमि (मन भूमि १)

(अन्तराभव)—एक शरीरके छोड़ने और दूसरे शरीरमें उत्पन्न होने तक का बीचका अवस्थावाला मन (=जीव) रहता है, उसको अन्तराभव या गंधर्व कहते हैं। अन्तराभवको जब शरीरमें उत्पन्न होना होता है तभी से उसकी आकृति होती है। वह अपने रूपमें सप्ताह भर तक रह सकता है।

(b) उत्पत्ति (=जन्म)—अन्तराभव मन अपने पूर्व कर्मोंके आधार पर होता और ऐसा ही अन्तराभवीय रूप धारण करता है। मैथुन क्रिया करनेमें उत्पन्न होनेके लिए तीन बातोंकी जरूरत है—माता ऋतुमती हो, पिताका बीज मौजूद हो और गंधर्व (=अन्तराभव) उपस्थित हो, साथ ही योनि बीज और गर्भके लिए बाधक न हो।

(गर्भमें लिंगभेद)—अन्तराभव माता पिताकी मैथुन क्रियाको देखता है, उस समय यदि स्त्री बननेवाला होता है तो उसकी पुरुषमें आसक्ति हो जाती है और यदि पुरुष बननेवाला होता है, तो स्त्रीमें।

(i) गर्भाधान—मैथुनके पश्चात् पिताका बीज छूटता है और रक्तका बिंदु भी। बीज और शोणित बिंदु दोनों माँकी योनि ही में मिश्रित हो, एक पिंड बनकर उत्तरकर ठंडे हो गए दूधकी भाँति स्थिर होते हैं। इसी पिंडमें सारे बीजोंको अपने भीतर रखनेवाला आलय विज्ञान समा जाता है, अन्तराभव उसमें आकर जुड़ जाता है। इस गर्भकी कलल अवस्था कहते हैं। कललके जिस स्थानमें विज्ञान जुड़ता है, वही उसका हृदय स्थान होता है। (१) कललसे आगे बढ़ते हुए गर्भ और सात अवस्थाएँ धारण करता है—(२) अर्बुद (३) पेशी, (४) घन (५) प्रशाख, (६) केश रोम-नखवाली अवस्था (७) इन्द्रिय-अवस्था और (८) व्यंजन (=लिंगभेद) अवस्था। इनमें अर्बुद अवस्थामें गर्भ दही जमा होता है, वही मांसावस्था तक न पहुँचा अर्बुद होता है, पेशी शिथिल मांसकी होती है। कुछ और घना हो जानेपर घन, शाखाओंकी भाँति हाथ-पैर आदिका फूटना प्रशाख होता है।

(ii) रोग आदि—पूर्व कर्मोंके कारण अथवा माताके अधिक

क्षार लवण रसवाले अन्न पानके सेवनसे बालकके केशोंमें नाना रंग होते हैं। बालकके केश कान-नाक इनमें पूर्व जन्मके अतिरिक्त निम्न कारण हैं—यदि माँ बहुत गर्मी तथा धूप आदिका सेवन करती है तो बच्चा काला होगा। यदि माँ बहुत ठंढे कमरेमें रहती है तो लड़का गोरा। बहुत गर्म खाना खानेपर लड़का लाल होगा। इसके बाद कुष्ट आदि विकार माताके अत्यन्त मैथुन-सेवनसे होता है। माताके बहुत दौड़ने-कूदने तैरनेसे बच्चेके अंग विकृत होते हैं।

कन्या होनेपर गर्भ माताकी कोखमें बाईं ओर होता है, और पुत्र होनेपर दाहिनी ओर। प्रसवके वक्त माताके उदरमें असह्य कष्ट देनेवाली हवा पैदा होती है जो गर्भके सिरको नीचे और पैरको ऊपर कर देती है।

(३) अनित्यवाद और प्रतीत्यसमुत्पाद

इसे कोई दूसरा नहीं जनमाता और न वह स्वयं उत्पन्न होता है प्रत्ययके होनेपर भाव (=वस्तुएँ) पुराने नहीं बिल्कुल नये नये जनमते हैं। प्रत्ययके होनेपर भाव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हो स्वरस (=स्वतः) ही क्षणभंगुर हैं।[1]

महायानसूत्रकी इन गाथाओं द्वारा असंगने बौद्ध-दर्शनके मूल सिद्धान्त अनित्यवाद या क्षणिकवादको बतलाया है। क्षणिकके अर्थको लेकर प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हुए उन्होंने क्षणिकवाद शब्दसे प्रतीत्य-समुत्पादको स्वीकार किया है।

प्रतीत्यसमुत्पाद—प्रतीत्य समुत्पादका अर्थ करते हुए असंग कहते हैं[2]—प्रतिगमन करके (=खतम करके एक चीजकी दूसरीकी उत्पत्ति प्रतीत्य-समुत्पाद है।) प्रत्यय अर्थात् गतिशील अत्यय (=विनाश)के साथ उत्पत्ति प्रतीत्य-समुत्पाद है जो क्षणिकके अर्थको लेकर होता है

[1] देखो पृष्ठ १६   [2] यो० भू० (भूमि ३,४,५) "प्रत्ययत इत्व रात्ययसंगत उत्पादः प्रतीत्य-समुत्पादः क्षणिकार्थमधिकृत्य।'   [3] वहीं।

अथवा [illegible] प्रकार अर्थात् (=[illegible] द्वारा) [illegible] प्रकारमें उत्पन्न। इनसे [illegible] गया है। इसके उपरान्त [illegible] उत्पन्न होता है, इसी [illegible] उत्पन्न हुआ धर्म। अथवा अर्थात् [illegible] (=स्रोत) [illegible] तथा प्रवाहमें उत्पत्ति प्रवाह-अनुसार है।

और भी[1]—

[illegible] अनुसार [illegible] निरोध (=[illegible])के [illegible]। [illegible] धर्म। [illegible] धर्म। [illegible] धर्म। [illegible] धर्म। [illegible] (=[illegible]) [illegible] धर्म। ([illegible]) [illegible] धर्म। [illegible] धर्म। [illegible] धर्म।

अतिरिक्त [illegible] और [illegible] (=[illegible])के [illegible] भगवान् (बुद्ध)ने प्रतीत्य-समुत्पाद [illegible] कहा है[2] 'प्रतीत्य-समुत्पाद गम्भीर है'।

(वस्तुएँ) प्रतिक्षण [illegible] (=प्रवृत्ति) [illegible] है। प्रतीत्य-समुत्पाद क्षणभंगुर है।[3]

(४) हेतु विद्या

धर्मगत विद्या (=ज्ञान)का पाँच प्रकारकी [illegible] है—(१) अध्यात्म-विद्या जिसमें बुद्धोक्त सूत्र, विनय और मातृका (=अभिधर्म) अर्थात् त्रिपिटक तथा उनमें वर्णित विषय सम्मिलित हैं, (२) चिकित्सा

---

[1] यहाँ कुछ पहिले।   [2] संयुत्तनिकाय २।९२, दीघनिकाय २।५५

[3] प्रतिक्षण च नव [illegible]प्रवर्तन्ते। क्षणभंगुरञ्च प्रतीत्य समुत्पाद"।

[4] यो० भू० (श्रुतमयी भूमि १०)

विद्या या चिकित्साशास्त्र (३) हेतुविद्या या तर्कशास्त्र (४) शब्दविद्या जिससे धर्म अर्थ पुद्गल (=जीव) काल संख्या और सन्निकाधिकरण (=व्याकरणशास्त्र)का ज्ञान होता है और शिल्पकर्मस्थानविद्या (=शिल्पशास्त्र)।

हेतुविद्याको कुछ विस्तारपूर्वक समझाते हुए असंग उसे छ भागोंमें बाँटते हैं—(१) वाद (२) वाद अधिकरण (३) वाद अधिष्ठान (४) वाद अलंकार (५) वाद निग्रह और (६) वादबहुकर (=वाद उपयोगी) बात।

(क) **वाद**—वाद कहने या संलाप छ प्रकारके होते हैं।

(a) **वाद**—जो कुछ मुँहसे बोला जाय वह वाद है।

(b) **प्रवाद**—लोकश्रुति या जनश्रुति प्रवाद है।

(c) **विवाद**—भोगोंके छीनने-छीननेके सम्बन्धमें अथवा दृष्टि (=दर्शन) *या विचारके संबंधमें परस्पर विरोधी वाद (=वाग्युद्ध)* विवाद है।[1]

(d) **अपवाद**—निन्दा।

(e) **अनुवाद**—धर्मके बारेमें उठे संदेहोंको दूर करनेके लिए जो बात की जाय।

(f) **अववाद**—तत्त्वज्ञान करानेके लिए किया गया वाद।

इनमें विवाद और अपवाद त्याज्य हैं और अनुवाद तथा अववाद सेवनीय।

(ख) **वाद-अधिकरण**—वादके उपयुक्त अधिकरण या स्थान दो

---

[1] "कामेषु तद्यथा नट-नर्तक-लासक-हासकाद्युपसंहितेषु वा वेश्याजनोपसंहितेषु वा पुनः संदर्शनाय वा उपभोगाय वा विगृहीतानां नानावादः। दृष्टौ वा पुनः आरभ्य तद्यथा सत्कायदृष्टिः, उच्छेददृष्टिः, विषमहेतुदृष्टिः, शाश्वतदृष्टिः, यावद्गण्यदृष्टिः, मिथ्यादृष्टिरिति वा नानावादः।"

है राजा या धार्मिकोंकी परिषद् और धर्म अर्थमें निपुण ब्राह्मणों या श्रमणोंकी सभा।

(ग) **वाद अधिष्ठान**—वादका अधिष्ठान (=मुख्य विषय) है वादी प्रतिवादीके साध्य और साध्यको सिद्ध करनेके लिए उपयुक्त होनेवाले आठ प्रकारके साधन। इसमें साध्यके सत् असत्के स्वभाव (=स्वरूप), तथा नित्य अनित्य भौतिक अभौतिक आदि विषयोंके तौरपर साध्यके स्वभाव और विषय ये दो भेद होते हैं।

(**आठ साधन**)—साध्य वस्तुके सिद्ध करनेवाले साधन निम्न आठ प्रकारके हैं—

(a) **प्रतिज्ञा**—स्वभाव या विशेषवाले दोनों प्रकारके साध्योंको लेकर (वादी प्रतिवादीका) जो अपने पक्षका परिग्रह (=ग्रहण) है। वही प्रतिज्ञा है। यह पक्ष-परिग्रह शास्त्र(-मत)को स्वीकारनेसे हो सकता है या अपनी प्रतिभासे या दूसरेके तिरस्कारसे या दूसरेके शास्त्रीय मत (=अनुभव)से या तत्त्व-साक्षात्कारसे, या अपने पक्षकी स्थापनासे, या पर-पक्षके दूषणसे या दूसरेके पराजयसे, या दूसरेपर अनुकंपासे भी हो सकता है।

(b) **हेतु**—उसी प्रतिज्ञावाली बातकी सिद्धिके लिए सारूप्य (=सादृश्य) या वैरूप्य उदाहरणकी सहायतासे, अथवा प्रत्यक्ष अनुमान या आप्त आगम (=शब्दप्रमाण ग्रंथ प्रमाण)से युक्तिका कहना हेतु है।

(c) **उदाहरण**—उसी प्रतिज्ञावाली बातकी सिद्धिके लिए हेतुपर आश्रित दुनियामें उचित प्रसिद्ध वस्तुको लेकर बात करना उदाहरण है।

(d) **सारूप्य**—किसी चीजका किसीके साथ सादृश्य सारूप्य कहा जाता है। यह पांच प्रकारका होता है।—(१) वर्तमान या पूर्वमें देखे हेतुसे चिह्नको लेकर एक दूसरेका सादृश्य लिंग सादृश्य है, (२) परस्पर स्वरूप (=लक्षण) सादृश्य स्वभाव-सादृश्य कहा जाता है (३) परस्पर क्रिया-सादृश्यको कर्म-सादृश्य कहते हैं (४) धर्मता (=गुण)

सा॰दृश्य धर्म-सादृश्य कहा जाता है, जैसे अनित्यमें दु:ख धर्मताका सादृश्य दु:खमें अनात्म्यधर्मताका निरात्मकोंमें जैसे धर्मताका इत्यादि (५) हेतुफल-सादृश्य, परस्पर कार्य कारण बननेका सादृश्य है।

(e) **वैरूप्य**—किसी वस्तुका किसी वस्तुके साथ अ-सदृश होना वैरूप्य है। यह भी लिंग– स्वभाव– कर्म– धर्म– और हेतुफल–वैसादृश्यके तौरपर पाँच प्रकारका होता है।

(f) **प्रत्यक्ष**—प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो कि अ-परोक्ष (=इंद्रियसे परेका नहीं) अनभ्यूहितअनभ्यूह्य और अ भ्रान्त है।[1] यहाँ जो कल्पना नहीं सिर्फ (इंद्रियके) ग्रहण मानस सिद्ध है और जो वस्तु (=विषय) पर आधारित है उसे अनभ्यूहित अनभ्यूह्य कहते हैं। अभ्रान्त उसे कहते हैं जो कि पाँच भ्रान्तियोंसे मुक्त है। यह पाँच भ्रांतियाँ हैं—

(i) **संज्ञा भ्रान्ति**—जैसे मृगतृष्णावाला (मरु) मरीचिकामें पानी की संज्ञा (=ज्ञान)।

(ii) **संख्या भ्रान्ति**—जैसे धुंधवालेका एक चन्द्रमें दो चन्द्रका देखना।

(iii) **संस्थान-भ्रान्ति**—जैसे बनेठा (=अलात)में (प्रकाश) चक्रकी भ्रान्ति संस्थान(=आकार)-संबंधी भ्रान्ति है।

(iv) **वर्ण-भ्रान्ति**—जैसे कामला रोगवाले आदमीको न पीली चीज भी पीली दिखलाई पड़ती है।

(v) **कर्म भ्रान्ति**—जैसे बड़ी मुट्ठी बाँधकर दौड़नेवालेको वृक्ष पीछे चल जान दीख पड़ते हैं।

---

[1] "प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तं"—धर्मकीर्ति, पृ० ७६५ (असगानुज वसुबन्धुके शिष्य दिग्नागका भी यही मत)।

[2] "यो ग्रहणमात्रप्रसिद्धोपलब्ध्याश्रयो विषय यश्च विषयप्रतिष्ठोपलब्ध्याश्रयो विषय।" यो० भू०

चित्त-भ्रान्ति—उक्त पाँचो भ्रान्तियोंमें भ्रमपूर्ण विषयमें चित्तकी रति चित्त भ्रान्ति है।

दृष्टि-भ्रान्ति—उक्त पाँचों भ्रान्तियोंमें भ्रमपूर्ण विषयमें जो रुचि, स्थिति मगन मानना आसक्ति है उसे दृष्टिभ्रान्ति कहते हैं।

प्रत्यक्ष चार प्रकारका माना है—रूपी (=भौतिक), इन्द्रिय प्रत्यक्ष, मन अनुभव प्रत्यक्ष योग प्रत्यक्ष और शुद्ध प्रत्यक्ष।[1] इन्द्रिय प्रत्यक्ष और मन अनुभव प्रत्यक्षका ही नाम लोक प्रत्यक्ष, है, यह असंग स्पष्ट मानते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष तीन ही है जिन्हें धर्मकीर्ति (दिग्नाग और शायद उनके गुरु वसुबन्धु भी) इन्द्रिय प्रत्यक्ष मानस प्रत्यक्ष और योगि प्रत्यक्ष कहते हैं। हाँ वह लोक-प्रत्यक्षकी जगह स्वसंवेदन प्रत्यक्षसे चारकी संख्या पूरी कर देते हैं इस तरह प्रत्यक्षके अपरोक्ष कल्पना रहित (=कल्पनापोढ) अभ्रान्त इस प्रत्यक्ष लक्षण और इन्द्रिय मानस योगि प्रत्यक्ष इन तीन भेदोंकी परम्पराको हम बौद्ध न्यायके सबसे पीछेके ग्रंथकार ज्ञानश्री शान्ति रक्षित असंग तक पाते हैं। असंगसे पार शताब्दी पहिले नागार्जुनसे और नागार्जुनसे शताब्दी पहिले अश्वघोष तक उसे ढूँढनेका हमारे पास साधन नहीं है।

(g) अनुमान—ऊहा (=तर्क)से अभ्यूहित (=तर्कित) और तर्कणीय जिसका विषय है वह अनुमान है। इसके पाँच भेद होते हैं—(१) लिंगसे किया गया अनुमान जैसे ध्वजसे रथका अनुमान धूमसे अग्नि राजासे राष्ट्र पतिसे स्त्री ककुद (=डडढा)-सींगसे बैलका अनुमान, (२) स्वभावसे अनुमान यह एक देश (=अंश)से सारका अनुमान है, जैसे एक चावलके पकनेसे सारी हाँडीके पकनेका अनुमान (३) कर्मसे अनुमान, जैसे हिलना अंग-चालनसे पुरुषका अनुमान पैरको चालसे हाथी शरीरकी गतिसे साँप हिनहिनानेसे घोड़ा हाकड़ासे साँडका अनुमान, देखनेसे आँख, सुननेसे

[1] शुद्ध प्रत्यक्ष योगि प्रत्यक्ष ही है "यो लोकोत्तरस्य ज्ञानस्य विषय ।"

[2] 'तदुभयमेकध्यमभिसंक्षिप्य लोक प्रत्यक्षमित्युच्यते ।' यो० भू०

वान, सूघनसे घ्राण, चखनेमे जिह्वा छूनेस त्वक्, जाननेम मनका अनुमान पानीमें देखनेकी रगावटस पक्षिवा चिवने हर होनस जल दाह भस्म देखनेमे आग, वनस्पतिके हिलनेस हवा। (४) धर्म (=गुण)से अनुमान जैसा अग्निमे होनेसे दुग्ध होनेका अनुमान दु न होनेसे शून्य और अनात्मक होनेका अनुमान। (५) कार्य-कारण (=हेतु फल)से अनुमान अर्थात् कार्यसे कारणका अनुमान तथा कारणसे कार्यका अनुमान, जैसे राजाकी सेवासे महाऐश्वर्य (=महाभिसार)के लाभका अनुमान महाऐश्वर्यके लाभसे राज-सेवाका अनुमान, बहुत भोजनसे तृप्ति, तृप्तिसे बहुत भोजन विषम भोजनसे व्याधि व्याधिसे विषम भोजनका अनुमान।

धर्मकीर्तिने तादात्म्य और तदुत्पत्तिसे अनुमानके जिन भेदोंको बतलाया है, वे असगके इन भेदोंमें भी मौजूद हैं।

(h) आप्तागम—यही शब्द प्रमाण है।

(घ) वाद-अलकार—वादमें भूषण रूप हैं वक्ताकी निम्न पांच योग्यताएं—(१) स्व-पर-समयज्ञता—अपने और पराये मतोंकी अभिज्ञता। (२) वाक्कर्म-सपन्नता—बोलनेमें निपुणता जोकि अग्राम्य, लघु (=सुबोध) ओजस्वी सबद्ध (=परस्पर अविरोधी और अशिथिल) और सु अर्थ शब्दोंके प्रयोगको कहते हैं। (३) वैशारद्य—सभामें अदीनता निर्भीकता, लज्जीला मुख न होना गद्गद स्वर न होने अदीन वचन होनेको कहते हैं। (४) स्थैर्य—काल लेकर जल्दी किये बिना बोलना। (५) दाक्षिण्य—मित्रकी भांति पर चित्तके अनुकूल बात करनेका ढग।

(ङ) वाद-निग्रह—वादमें पकड़ा जाना जिससे कि वादी पराजित हो जाता है। ये तीन हैं—कथा-त्याग कथा-साद (=इधर उधरकी बातें करने लगना) और कथा-दोष। वठोर बोलना, अ-परिमित बोलना, अनर्थवाली बात बोलना, बेसमय बोलना, अ स्थिर, अ-दीप्त और अ-सबद्ध बोलना ये कथा-दोष हैं।

(च) वाद-नि सरण—गुण-दोष कौशल्य (=निपुणता) और सभाकी परीक्षा करके वादको न करना वाद नि सरण हैं।

(छ) वादनहुकर बातें—ये हैं वादकी उपयोगी बातें स्व-पर-मत अभिज्ञता, वैशारद्य और प्रतिभानिता।

(५) परमत खंडन

असंगने योगाचार भूमिमें सोलह पर-वादों (=दूसरोंके मतों)को लेकर उनका खंडन किया है। ये पर-वाद हैं—

(क) हेतु फल-सद्वाद—हेतु (=कारण)में फल (=कार्य) सदा मौजूद रहता है जैसा कि वार्षगण्य (सांख्य) मानते हैं। वे अपने इस सद्वाद (पीछे यही सत्कार्यवाद)को आगम (=ग्रंथ)पर आधारित तथा युक्ति-सम्मत मानते हैं। वे कहते हैं जो फल (=कार्य) जिससे उत्पन्न होता वह उसका हेतु (=कारण) होता है इसीलिए आदमी जिस फलको चाहता है वह उसीके हेतुका उपयोग करता है दूसरेका नहीं। यदि ऐसा न होता तो जिस किसी वस्तु (तेलके लिए तिल नहीं रेत आदि किसी भी चीज)का भी उपयोग करता।

खंडन—मगर उनका यह वाद गलत है। आप हेतु (=कारण)को फल(=कार्य)-स्वरूप मानते हैं या भिन्न स्वरूप? यदि हेतु फल स्वरूप ही है अर्थात् दोनों अभिन्न हैं, तो हेतु और फल हेतुसे फल यह कहना गलत है। यदि भिन्न स्वरूप है तो सवाल होगा—वह भिन्न स्वरूप उत्पन्न हुआ है या अनुत्पन्न? उत्पन्न माननेपर हेतुमें फल है कहना ठीक नहीं। यदि उत्पन्न मानते हैं तो जो अनुत्पन्न है वह हेतुमें है कैसे कहा जायगा? इसलिए हेतुमें फलका सद्भाव नहीं होता। हेतुके होनेपर फल उत्पन्न होता है। अतएव नित्य काल सनातनसे हेतुमें फल विद्यमान है यह कहना ठीक नहीं है। यह वाद प्रयोग विहीन (=युक्ति रहित) है।

(ख) अभिव्यक्तिवाद—अभिव्यक्ति या अभिव्यंजनावादके अनुसार पदार्थ उत्पन्न नहीं होते बल्कि अभिव्यक्त (=प्रकाशित) होते हैं। हेतु फल सद्वादके माननेवाले सांख्य और शब्द लक्षणवादी वैयाकरणोंका

यही मत है। हेतु-फल सद्वादके अनुसार फल(=कार्य) यदि पहिलेहीसे मौजूद है, तो प्रयत्न करनेकी क्या जरूरत? अभिव्यक्तिके लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

खंडन—क्या आप अनभिव्यक्तिमें आवरण करनेवाले कारणके होने को मानते हैं या न होनेको? 'आवरण-कारणके न होनेपर' यह कह नहीं सकते। 'होनेपर' भी नहीं कह सकते, क्योंकि जब वह हेतुको नहीं ढाँक सकता जो कि सदा फल-संयुक्त है, तो फलको कैसे ढाँक सकता है? हेतु-फल-सद्वाद वस्तुतः गलत है। वस्तुओंके अभिव्यक्त न होनेके छ कारण हैं[1]—(१) दूर होनेसे, (२) नाना प्रकारके आवरणोंसे ढँके होनेसे, (३) सूक्ष्म होनेसे, (४) चित्तके विक्षेपसे, (५) इंद्रियके उपघातसे, (६) इंद्रिय संबंधी ज्ञानोंके न पानेसे।

जिस तरह सांख्योंका हेतु-फल अभिव्यक्तिवाद गलत है, वैसे ही वैयाकरणों (और मीमांसकोंका भी) शब्द अभिव्यक्तिवाद भी गलत है। 'शब्द नित्य है' यह युक्तिहीन वाद है।

(ग) भूत-भविष्यके द्रव्योंका सद्वाद—यह बौद्ध सर्वास्तिवादियोंका मत है। अश्वघोष(५० ई०)से असंगके वक्त तक गंधार(असंगकी जन्मभूमि) सर्वास्तिवादियोंका गढ़ चला आया था। असंगके अनुज वसुबंधुका महान ग्रंथ अभिधर्मकोश तथा उसपर स्वरचित भाष्य सर्वास्तिवाद(=वैभाषिक)के ही ग्रंथ हैं। लेकिन अब गंधार तथा सारे भारतमें इन प्राचीन (=स्थविर) बौद्ध संप्रदायोंका ह्रास होनेवाला था और उनका स्थान महायान लेने जा रहा था। सर्वास्तिवादी कहते—अतीत (=भूत) है, अनागत (=भविष्य) है, दोनों उसी तरह लक्षण-संपन्न हैं जैसे कि वर्तमान द्रव्य।

---

[1] ईश्वरकृष्णने भी सांख्य-कारिकामें इन हेतुओंको गिनाया है। ईश्वरकृष्णका दूसरा नाम विंध्यवासी भी था, और उनका प्रतिद्वंद्विता असंगानुज वसुबंधुसे थी, यह हमें चीनी लेखोंसे मालूम है।

उच्छेद—[illegible] — इस (क्षणिक [illegible]) [illegible] (=धर्मों) [illegible] है, वा अनित्य? [illegible] [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] है।

(घ) आत्मवाद—[illegible] (दार्शनिकों [illegible]) [illegible] यह आत्मा [illegible] युक्ति-युक्त [illegible] आत्मा [illegible] [illegible] पदार्थमें होता है, [illegible] (=[illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आत्मा [illegible] [illegible]

वस्तुतः धर्मों (=भौतिक वस्तु घटनाओं)में आत्मा एवं [illegible] [illegible] अध्रुव [illegible] विकार जन्म जरा-व्याधि [illegible] उनका स्वभाव है। इसीलिए भगवान्‌ने—'भिक्षुओ! [illegible] धर्म(=वस्तुएँ) [illegible] आत्मा [illegible]। भिक्षु! [illegible] [illegible] आत्मा [illegible] ध्रुव, [illegible], [illegible] (=विकारी) है।' [illegible] (=[illegible] वस्तुओं, घटनाओं)में ही समझनी चाहिए दुनियामें व्यवहारके भाषाओं[1] के लिए [illegible] किया जाता है। वस्तुतः सत्त्व या आत्मा नामकी वस्तु [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] है।

(ङ) शाश्वतवाद[2]—आत्मा और लोकको शाश्वत अकृत [illegible] [illegible] अनिर्मित [illegible] [illegible] [illegible] मानना शाश्वतवाद है। [illegible] (यूनानी [illegible]) परमाणु नित्यताको माननेवाले भी शाश्वतवादी [illegible]। परमाणु नित्यवादके बारेमें आगे कहेंगे।

---

[1] "[illegible]-संव्यवहारायम।"   [2] प्रकुध कात्यायन पृष्ठ ५६०

सृष्टि है तब ईश्वर और यह ठीक नहीं, (क्योंकि दोनों तब अनादि होंगे)। ईश्वरके अनुग्रह कारण सृष्टि है इसमें भी कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार सामग्री जगतके अन्तर्भूत अनन्तर्भूत होने, सप्रयोजन निष्प्रयोजन और हेतु होनेका बात पर विचार करनेपर पता लगा कि सृष्टिकर्ता ईश्वर मानना बिल्कुल अयुक्त है।

(ज) हिंसाधर्मवाद—यज्ञ दान मन्त्रविधिके अनुसार हिंसा (= प्राणातिपात) करनेवाले हवन करता है या जो हवन होता है (पशु) और जो इसमें सहायक होता है सभी स्वर्ग जाते हैं—यह याज्ञिकों (और मीमांसकों)का मत हिंसाधर्मवाद है। कलियुगके आनेपर ब्राह्मणोंने पुराने ब्राह्मण धर्मको छोड़ मांस खानेकी इच्छासे इस (हिंसाधर्म)का विधान किया।

वस्तु दृष्टान्त व्यभिचार फलाफलिक अभाव मन्त्रप्रणतिके सबधसे विचार करनेपर यह वाद अयुक्त ठहरता है।

(झ) अन्तानन्तिकवाद—लोक अन्तवान् और अनन्तवान् है इस वादको अन्तानन्तिकवाद कहते हैं। बुद्धके उपदेशोंमें भी इस वादका जिक्र आया है।[1]

(ञ) अमराविक्षेपवाद—यह वाद भी बुद्ध-वचनोंमें मिलता है और पहिले इसके बारेमें कहा जा चुका है।[2]

(ट) अहेतुकवाद—आत्मा और लोक अहेतुक (=बिना हेतुके) हैं यह अहेतुकवाद है, यह भी पीछे आ चुका है।[3] अभावके अनुस्मरण आत्माके अनुस्मरण बाह्य आभ्यन्तर जगतमें निर्हेतुक वैचित्र्यपर विचार करनेसे यह वाद अयुक्त जान पड़ता है।

(ठ) उच्छेदवाद—आत्मा रूपी स्थूल चार महाभूतोंसे बना है, वह रोग गण्ड शल्य-सहित है। मरनेके बाद वह उच्छिन्न हो जाता है

---

[1]देखो दीघनिकाय १।१ [2]देखो पीछे, पृष्ठ ४६१
[3]देखो पीछे पृष्ठ ४८७ [4]देखो पीछे पृष्ठ ४८५-६

अकेला पार्थिव द्रव्य, जैसा सार-तडाग-नदी प्रपात आदिमें सिर्फ अकेला जल, दीपक उल्का आदिमें अकेला अग्नि पुरवा-पछवाँ आदिमें अकेला वायु। कहीं दो-दो द्रव्य इकट्ठा मिलते हैं जैसे वर्फ-पत्ता फल फूल आदिमें और मणि आदिमें भी। कहीं कहीं वृक्षादिके तप्त होनेपर तीन भी। और कहीं कहीं चार भी जैसे शरीरके भीतरके केशसे लेकर मल मूत्र तकमें। खक्खट (=खटखट) होना पार्थिवका सूचक है बहना जलका ऊपरकी ओर जलना अग्निका और ऊपरकी ओर जाना वायुका। जहाँ जो जो मिले, वहाँ उस महाभूतको मानना चाहिए। सभी रूप समुदायमें चार महाभूत रहते हैं इसीलिए तो सूखे काठ (=पार्थिव)की मथनेमें आग पैदा होती है अतिसंतप्त लोहा रूपा सुवर्ण पिघल जाते हैं।

(ख) वेदना—वेदना अनुभव करनेको कहते हैं।

(ग) संज्ञा—संज्ञा सजानने जाननेको कहते हैं।

(घ) संस्कार—भिक्षुमें संस्कारको कहते हैं।

(ङ) विज्ञान—विज्ञानके बारेमें पहिले कहा जा चुका है।

(२) परमाणु—वैशेषिकी भाँति परमाणु चार रूपी स्थूल द्रव्योंका निर्माण करते हैं वह सूक्ष्म और नित्य होते हैं। असंग इन परमाणुओंकी सत्ताका खंडन करते हैं।—

परमाणुके संचयसे रूपसमुदाय नहीं तैयार हो सकता क्योंकि परमाणुके परिमाण अन्त परिच्छेदका ज्ञान बुद्धि (=कल्पना)पर निर्भर है (प्रत्यक्षपर नहीं)। परमाणु अवयवरहित है फिर वह सावयव द्रव्योंका निर्माण कैसे कर सकता है ? परमाणु अवयवसहित है यह नहीं कह सकते, क्योंकि परमाणु ही अवयव है और अवयव द्रव्यका होता है, परमाणुका नहीं।

परमाणु नित्य है यह कहना ठीक नहीं क्योंकि इस नित्यताकी परीक्षा करके किसीने सिद्ध नहीं किया। सूक्ष्म होनेसे परमाणु नित्य है यह भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि सूक्ष्म होनेसे तो वह अधिक दुर्बल (अतएव भंगुर) होगा।

दुग्ध)। कोई उदक-स्नानसे शुद्धि मानते हैं। कोई कुक्कुर-व्रत (=कुत्तेकी तरह हाथ बिना लगाये मुँहसे खाना, बैल की भाँति घास चरना आदि) गोव्रत, नागपति-व्रत, इन्द्र-व्रत, भस्म-व्रत, काष्ठ-व्रत, दिशा-व्रत जैसे व्रतोंसे शुद्धि होती है, ऐसा शुद्धिवादी कहते हैं।

खंडन—शुद्धि आध्यात्मिक बात है, किसी व्रत या तीर्थ माननेसे शुद्ध न होता है।

(ख) कौतुकमंगलवाद—सूर्य-ग्रहण, चन्द्र-ग्रहण, ग्रहों-नक्षत्रों विषय स्थित आकाशीय व्यापारोंसे सिद्धि या असिद्धि होती है। इस लिए ऐसा विश्वास रखनेवाले (=कौतुकमंगलवादी) नाग सूर्य आदिकी पूजा करते हैं; होम जप तर्पण, कुम्भ, बेल (=बिल्व) शंख आदि पदार्थ हैं जैसे कि ज्योतिषी (=मांगलिक) कहते हैं।

खंडन—सूर्य चन्द्र-ग्रहण आदि कारण पुरुषकी सम्पत्ति विपत्तिका कारण है या उससे अपने शुभ अशुभ समझे? यदि ग्रहण आदि ना शुभ अशुभ कर्म फल हैं यदि शुभ अशुभ समझ तो ग्रहणको कहना ठीक नहीं।

४—अन्य विचार

अगले स्कंध, द्रव्य, परमाणुके बारेमें भी अपने विचार प्रकट किए हैं।

(१) स्कंध—

(क) रूप-स्कंध या द्रव्य—रूप-समुदाय (=रूपस्कंध)में चौदह द्रव्य हैं—पृथिवी-जल अग्नि-वायु चार महाभूत; रूप शब्द-गन्ध रस स्प्रष्टव्य पाँच इन्द्रिय विषय और चक्षु श्रोत्र घ्राण जिह्वा-काय (=त्वक) पाँच इन्द्रियाँ।

ये द्रव्य कहीं कहीं अकेले मिलते हैं, जैसे हीरा, शंख, शिला-मूँगा आदिमें

अकेला पृथिवी-द्रव्य, चश्मा सागर-तरंग-नदी प्रपात आदिमें सिर्फ अकेला जल, दीपक-उल्का आदिमें अकेला अग्नि, पुरवा-पछवा आदिमें अकेला वायु। कहीं दो दो द्रव्य इकट्ठा मिलते हैं, जैसे रूप पत्ता फल फूल आदिमें और मणि आदिमें भी। कहीं-कहीं वृक्षादिके नष्ट होनेपर तीन भी। और कहीं कहीं चारों भी, जैसे गर्भके भीतरके केशसे लेकर मल-मूत्र तकमें। खक्खट (=खटखट) होना पृथिवीका सूचक है, बहना जलका, ऊपरकी ओर जलना अग्निका और ऊपरकी ओर जाना वायुका। जहाँ जो मिले, वहाँ उस महाभूतको मानना चाहिए। सभी रूप-समुदायमें सारे महाभूत रहते हैं, इसीलिए तो सूखे काठ (=पृथिवी)के मथनेसे आग पैदा होती है, अतिसंतप्त होनेसे रूपा-सुवर्ण पिघल जाते हैं।

(ख) वेदना—वस्तुका अनुभव करनेको कहते हैं।

(ग) संज्ञा—संज्ञा संजानन, जाननेको कहते हैं।

(घ) संस्कार—चित्तमें संस्कारको कहते हैं।

(ङ) विज्ञान—विज्ञानके बारेमें पहिले कहा जा चुका है।

(२) परमाणु—वैशेषिककी भाँति परमाणु सारे रूपी स्थूल द्रव्योंका निर्माण करते हैं, वह सूक्ष्म और नित्य होते हैं। असंग ऐसे परमाणुओंकी सत्ताका खंडन करते हैं।—

परमाणुके संचयसे रूपसमुदाय नहीं तैयार हो सकता, क्योंकि परमाणुके परिमाण, अन्त, परिच्छेदका नाम बुद्धि (=कल्पना)पर निर्भर है, (प्रत्यक्षपर नहीं)। परमाणु अवयव रहित है, फिर वह सावयव द्रव्योंका निर्माण कैसे कर सकता है? परमाणु अवयव सहित है, यह नहीं कह सकते, क्योंकि परमाणु ही अवयव है, और अवयव द्रव्यका होता है, परमाणुका नहीं।

परमाणु नित्य है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि इस नित्यताकी परीक्षा करके किसीने सिद्ध नहीं किया। सूक्ष्म होनेसे परमाणु नित्य है, यह भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि सूक्ष्म होनेसे तो वह अधिक दुर्बल (अतएव भंगुर) होगा।

§२–दिग्नाग (४२५ ई०)

न्यायमुखके कर्ता दिग्नागको भी छोड़कर आगे बढ़ना नहीं चाहिए, यद्यपि मैं मानता हूँ कि मैं धर्मकीर्तिके दर्शनके बारेमें उनके प्रमाणवार्त्तिकके आधारपर सविस्तर लिखने जा रहा हूँ। प्रमाणवार्त्तिक वस्तुतः आचार्य दिग्नागके प्रधान ग्रंथ प्रमाणसमुच्चयकी व्याख्या (वार्त्तिक) है—जिसमें धर्मकीर्तिने अपनी मौलिक दृष्टिसे लिखनेकी जगह दिग्नागके मतको ही प्रकट किया—इसलिए दिग्नाग और दिग्नागके मतका पुनरुक्ति और ग्रंथविस्तार होगा। दिग्नागके बारेमें मैंने अन्यत्र[1] लिखा है—

दिग्नाग (४२५ ई०) वसुबन्धुके शिष्य थे, यह तिब्बती परंपरासे मालूम होता है। और तिब्बतमें बौद्धधर्म और यह परंपरा आठवीं शताब्दीमें भारतसे गई थी इसलिए उसे भारतीय-परंपरा ही कहना चाहिए। यद्यपि चीनी परंपरामें दिग्नागके वसुबन्धुका शिष्य होनेका उल्लेख नहीं है, तो भी वहाँ उसके विरुद्ध भी कुछ नहीं पाया जाता। दिग्नागका काल वसुबन्धु और कालिदासके बीचमें हो सकता है और इस प्रकार उसे ४२५ ई० के आसपास माना जा सकता है। न्यायमुखके अतिरिक्त दिग्नागका मुख्य ग्रंथ प्रमाणसमुच्चय है जो सिर्फ तिब्बती भाषामें ही मिलता है। उसी भाषामें प्रमाण समुच्चयपर महावैयाकरण काशिकाविवरणपंजिका (=न्यास)के कर्ता जिनेन्द्रबुद्धि (७०० ई०)की टीका भी मिलती है। "

दिग्नागका जन्म तमिल प्रदेशके काञ्ची (=कंजीवरम्)के पास 'सिंहवक्त्र' नामके गाँवमें एक ब्राह्मण घरमें हुआ था। सयाना होनेपर वह वात्सीपुत्रीय[2] बौद्धसम्प्रदायके एक भिक्षु नागदत्तके संपर्कमें आ भिक्षु बने। कुछ समय पढ़नेके बाद अपने गुरुसे उनका पुद्गल (=आत्मा)के बारेमें

---

[1] पुरातत्त्व निबंधावली पृष्ठ २१४-१५

[2] वात्सीपुत्रीय बौद्धोंके पुराने सम्प्रदायोंमें वह सम्प्रदाय है, जो अनात्मवादसे साफ इन्कार न करते भी, छिपे तौरसे एक तरहके आत्मवादका समर्थन करना चाहता था।

मतभेद हो गया, जिसके कारण उन्होंने मठको छोड़ दिया, और वह उत्तर भारतमें आ आचार्य वसुबंधुके शिष्योंमें दाखिल हो गए, और न्यायशास्त्रका विशेषतौरसे अध्ययन किया। अध्ययनके बाद उन्होंने शास्त्रार्थोंमें प्रतिद्वंदियोंपर विजय (दिग्विजय) पाने और न्यायके थोड़ेसे किंतु गंभीर ग्रंथोंके लिखनेमें समय बिताया।

दिग्नागके प्रधान ग्रंथ प्रमाणसमुच्चयके परिच्छेदों और श्लोकों (=कारिकाओं)की संख्या निम्न प्रकार है—

परिच्छेद	विषय	श्लोक संख्या
१	प्रत्यक्ष-परीक्षा	४८
२	स्वार्थानुमान-परीक्षा	५१
३	परार्थानुमान-परीक्षा	५०
४	दृष्टान्त-परीक्षा	२१
५	अपोह-परीक्षा	५२
६	जाति-परीक्षा	२५
		२४७

प्रमाण-समुच्चयका मूल संस्कृत अभी तक नहीं मिल सका है, मैंने अपनी चार तिब्बत यात्राओंमें इस ग्रंथके ढूंढनेमें बहुत परिश्रम किया, किन्तु इसमें सफलता नहीं मिली, किन्तु मुझे अब भी आशा है, कि वह तिब्बतके किसी मठ, स्तूप या मूर्तिके भीतरसे जरूर कभी मिलेगा।

प्रमाणसमुच्चयके प्रथम श्लोकमें दिग्नागने ग्रंथ लिखनेका प्रयोजन इस प्रकार लिखा है[1]—

"जगत्के हितैषी प्रमाणभूत उपदेष्टा　　बुद्धको नमस्कार कर, जहाँ-तहाँ फैले हुए अपने मतोंका यहाँ एक जगह प्रमाणसिद्धिके लिए जमा किया जायगा।

---

[1] "प्रमाणभूताय जगद्धितैषिणे प्रणम्य शास्त्रे सुगताय तायिने।
प्रमाणसिद्ध्यै स्वमतात् समुच्चयः करिष्यते विप्रसितादिहैकतः।"

दिग्नागने अपने प्रमाण-समुच्चयमें अक्षपाद और वात्स्यायनके 'न्यायभाष्य'की जो कड़ी आलोचना की है, कि वात्स्यायनके भाष्यपर पाशुपताचार्य उद्योतकर भारद्वाजको लिए उसका उत्तर देनेके लिए न्यायवार्तिक लिखना पड़ा।¹

§ ३–धर्मकीर्ति (६०० ई०)

डाक्टर इचेर्वात्स्कीके शब्दोंमें धर्मकीर्ति भारतीय कान्ट थे। धर्मकीर्तिकी प्रतिभाका लोहा उनके प्रबल प्रतिद्वंद्वी भी मानते थे। उद्योतकर (५५० ई०)के न्यायवार्तिकको धर्मकीर्तिने अपने तर्कबाणसे छिन्न भिन्न कर दिया था, जिसे वाचस्पति (८४१)ने उसपर टीका² करके (धर्मकीर्तिके) तर्कपंकमें मग्न उद्योतकरकी अति जीर्ण गायोंके उद्धार करनेका पुण्य प्राप्त करना चाहा। जयन्त भट्ट (१००० ई०)ने धर्मकीर्तिके प्रबल आलोचक होते हुए भी उनको 'सुनिपुणबुद्धि' माना, तथा उनके प्रयत्नको 'जगदभिभवधीर' माना।³ अपने समयके अद्वितीय कवि और दार्शनिक श्रीहर्ष (११९२ ई०)ने धर्मकीर्तिके तर्कपथको 'दुराबाध' कहकर उनकी प्रतिभाका समर्थन किया। वस्तुतः धर्म-

---

¹ यदक्षपादः प्रवरो मुनीनां शमाय शास्त्रं जगतो जगाद।
कुतार्किकाज्ञाननिवृत्तिहेतुः करिष्यते तस्य मया निबन्धः॥
—न्यायवार्तिक १।१।१

² न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका १।१।१

³ इति सुनिपुणबुद्धिर्लक्षणं वक्तुकामः पदयुगलमपाठ निर्ममे नानवद्यम्।
भवतु मतिमहिम्नश्चेष्टितं दृष्टमेतज्जगदभिभवधीरं धीमतो धर्मकीर्तेः॥
—न्यायमंजरी, पृ० १००

दुराबाध इव चाय धर्मकीर्तेः पन्था इत्यवहितेन भाव्यमिहेति॥
—खण्डनखण्डखाद्य १

कीर्तिकी प्रतिभाका लोहा उतना ज्यादा आजकी विद्वन्मंडली मान सकती है क्योंकि आजकी दार्शनिक और तार्किक प्रगतिमें उसके मूल्यको वह ज्यादा समझ सकते हैं।

१ जीवनी—धर्मकीर्तिका जन्म चोल (=उत्तर तमिल) प्रान्तके तिरुमल नामक ग्राममें एक ब्राह्मणके घरमें हुआ था। उनके पिताका नाम तिब्बती परंपरामें कोरुनन्द (?) मिलता है और किसी किसीमें यह भी कहा गया है कि वह कुमारिलभट्टके भांजे थे। यदि यह ठीक है—जिसकी बहुत कम संभावना है—तो मामाके तर्कोंका भाजन जिस तरह प्रमाण वार्तिकमें खंडन करते हुए मार्मिक परिहास किया है वह उनके सजीव हास्य-प्रिय व्यक्तिके रूपमें हमारे सामने ला रखता है। धर्मकीर्ति बचपनसे ही बड़े प्रतिभाशाली थे। पहिले उन्होंने ब्राह्मणोंके शास्त्रों और वेद-वेदांगोंका अध्ययन किया। उस समय बौद्धधर्मकी ध्वजा भारतके कोने कोनेमें फहरा रही थी, और नागार्जुन वसुबंधु दिग्नागका बौद्धदर्शन विरोधियोंमें प्रतिष्ठा पा चुका था। धर्मकीर्तिको उसके बारेमें जाननेका मौका मिला और वह उससे इतने प्रभावित हुए कि तिब्बती परंपराके अनुसार उन्होंने बौद्ध गृहस्थोंके वेषमें बाहर आना जाना शुरू किया (?) जिसके कारण ब्राह्मणोंने उनका बहिष्कार किया। उस वक्त नालन्दाकी ख्याति भारतसे दूर-दूर तक फैली हुई थी। धर्मकीर्ति नालन्दा चले आये और अपने समयके महान् विज्ञानवादी दार्शनिक तथा नालन्दाके संघ-स्थविर (=प्रधान) धर्मपालके शिष्य बन भिक्षुसंघमें सम्मिलित हुए।

धर्मकीर्तिकी न्यायशास्त्रके अध्ययनमें ज्यादा रुचि थी और उसे उन्होंने दिग्नागकी शिष्य-परंपराके आचार्य ईश्वरसेनसे पढ़ा।

विद्या समाप्त करनेके बाद उन्होंने अपना जीवन ग्रंथ लिखने, शास्त्रार्थ करने और पढ़ानेमें बिताया।

(धर्मकीर्तिका काल ६०० ई०)[1]—चीनी पर्यटक इ-चिङ्ने धर्म

---

[1] मेरी "पुरातत्त्वनिबंधावली", पृष्ठ २१५ १७

कीर्तिका वर्णन अपने ग्रंथमें किया है, इसलिए धर्मकीर्ति ६७९ ई०से पहिले हुए (इसमें सन्देह नहीं)। धर्मकीर्ति नालन्दाके प्रधान आचार्य धर्मपालके शिष्य थे। युन्-च्वेङ्के समय (६३३ ई०) धर्मपालके शिष्य शीलभद्र नालन्दाके प्रधान आचार्य थे जिनकी आयु उस समय १०६ वर्षकी थी। इसी अवस्थामें धर्मपालके शिष्य धर्मकीर्ति ६२५ ई०में बच्चे नहीं हो सकते थे। (धर्मकीर्तिके बारेमें) युन्-च्वेङ्की चुप्पीका कारण हो सकता युन्-च्वेङ्के नालन्दा निवासके समयसे पूर्व धर्मकीर्तिका देहान्त हो चुका होना है।

यह और दूसरा आधार विचारते हुए धर्मकीर्तिका समय ६०० ई० ठीक मालूम होता है।

२ धर्मकीर्तिके ग्रंथ—धर्मकीर्तिने अपने ग्रंथ सिर्फ प्रमाण-शास्त्र बौद्धन्याय या बौद्ध प्रमाणशास्त्रपर लिखे हैं। इनकी संख्या नौ है, जिनमें सात मूल ग्रंथ और दो अपने ही ग्रंथोंपर टीकाएं हैं।

	ग्रंथनाम	ग्रंथपरिमाण (श्लोक)	गद्य या पद्य
१	प्रमाणवार्त्तिक	१४८४½	पद्य
२	प्रमाणविनिश्चय	१३४०	गद्य-पद्य
३	न्यायबिन्दु	१७७	गद्य
४	हेतुबिन्दु	४४४	गद्य
५	सम्बन्ध-परीक्षा	२९	पद्य
६	वाद-न्याय	७६८	गद्य-पद्य
७	सन्तानान्तर सिद्धि	७२	पद्य
		४३१४½	

टीकाएं—

१	(८) वृत्ति	३५००	गद्य	प्रमाणवार्त्तिक १ परिच्छेदपर।
२	(९) वृत्ति	१४७	गद्य	सम्बन्धपरीक्षापर
		३६४७		

गोया धर्मकीर्त्तिने मूल और टीका मिलाकर (४३१४½+३६४७) ७९६१½ श्लोकोंके बराबर ग्रंथ लिखे हैं। धर्मकीर्तिके ग्रंथ कितने महत्त्वपूर्ण समझे जाते थे, यह इसीसे पता लगता है कि तिब्बती भाषामें अनुवादित बौद्ध न्यायके कुल संस्कृत ग्रंथोंके १७५००० श्लोकोंमें १३७००० धर्मकीर्तिके ग्रंथोंकी टीका अनुटीकायें हैं।[2]

---

[1] श्लोकसे ३२ अक्षर समझना चाहिए।

[2] टीकाएँ इस प्रकार हैं—

मूल ग्रंथ	टीकाकार	किस परिच्छेदपर	ग्रंथ-परिमाण
१ प्रमाण वार्त्तिक	१ देवेन्द्रबुद्धि (पंजिका) T	२ ४	८,७४८
	२ शाक्यबुद्धि (पंजिका-टीका) T	२ ४	१७,०४६
	३ प्रज्ञाकरगुप्त (भाष्य) TS	२ ४	१६,२७६
	४ जयानन्त (भाष्यटीका) T	२ ४	१८,१४८
	५ यमारि (भाष्यटीका) T	२ ४	२६,५५२
	६ रविगुप्त (भाष्यटीका) T	२ ४	७,५५२
	७ मनोरथनंदी (वृत्ति) S	१ ४	८,०००
	८ धर्मकीर्त्ति (स्ववृत्ति) TS	१	३,५००
	९ शंकरानंद (स्ववृत्ति-टीका) T (अपूर्ण)	१	७,५७८
	१० कर्णकगोमी (स्ववृत्ति-टीका) S	१	१०,०००
	११ शाक्यबुद्धि (स्ववृत्तिटीका) T	१	
२ प्रमाण विनिश्चय	१ धर्मोत्तर (टीका) T	१ ३	१२,४६३
	१ ज्ञानश्री (टीका) T		३,२७१
३ न्याय बिन्दु	१ विनीतदेव (टीका) T	१ ३	१,०३०
	२ धर्मोत्तर (टीका) TS	१-३	१,४७७
	३ दुर्वेकमिश्र (अनु-टीका) S	१ ३	
	४ कमलशील (टीका) T		२२१

वार्त्तिका वर्णन अपने ग्रंथमें किया है, इसलिए धर्मकीर्त्ति ६७९ ई०से पहिले हुए (इसमें संदेह नहीं)। धर्मकीर्ति नालंदाके प्रधान आचार्य धर्मपालके शिष्य थे। युन्-च्वेंङके समय (६३३ ई०) धर्मपालके शिष्य शीलभद्र नालन्दाके प्रधान आचार्य थे जिनकी आयु उस समय १०६ वर्षकी थी। ऐसी अवस्थामें धर्मपालके शिष्य धर्मकीर्त्ति ६३५ ई०में बच्चे नहीं हो सकते थे। (धर्मकीर्तिके बारेमें) युन्-च्वङकी चुप्पीका कारण हो सकता है युन्-च्वङके नालन्दा निवासके समयसे पहले ही धर्मकीर्तिका देहान्त हो चुका होना हो।

यह और दूसरी बातोंपर विचारते हुए धर्मकीर्त्तिका समय ६०० ई० ठीक मालूम होता है।

२ धर्मकीर्त्तिके ग्रंथ—धर्मकीर्तिने अपने ग्रंथ सिर्फ प्रमाण-संबद्ध बौद्धदर्शन या बौद्ध प्रमाणशास्त्रपर लिखे हैं। इनकी संख्या नौ है, जिनमें सात मूल ग्रंथ और दो अपने ही ग्रंथोंपर टीकाएँ हैं।

	ग्रंथनाम	ग्रंथपरिमाण (श्लोकोंमें)	गद्य या पद्य
१	प्रमाणवार्त्तिक	१४५४$\frac{1}{2}$	पद्य
२	प्रमाणविनिश्चय	१३४०	गद्य पद्य
३	न्यायबिन्दु	१७७	गद्य
४	हेतुबिन्दु	४४४	गद्य
५	संबंध-परीक्षा	२६	पद्य
६	वादन्याय	७६८	गद्य-पद्य
७	सन्तानान्तर सिद्धि	७२	पद्य
		४३१४$\frac{1}{2}$	

टीकाएँ—

१ (८) वृत्ति	३५००	गद्य	प्रमाणवार्त्तिक १ परिच्छेदपर।
२ (९) वृत्ति	१४७	गद्य	संबंधपरीक्षापर
	३६४७		

गाया धमकीत्तिने मूल और टीका मिलाकर (४३१४½+३६४७) ७६६१½ श्लोकाके बराबर ग्रथ लिखह । धमकीत्तिके ग्रथ कितने महत्त्वपूण समभ्ह जाते थ, यह इसीसे पता लगता हैं कि तिब्बती भाषामे अनुवादित बौद्ध न्यायके कुल सस्कृत ग्रथोंके १७५००० श्लोकोंमे १३७००० धमकीत्तिके ग्रथोकी टीका अनुटीकाओंके ह ।[2]

---

[1] श्लोकसे ३२ अक्षर समझना चाहिए ।

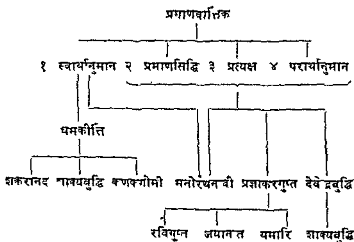
[2] टीकाए इस प्रकार ह—

मूल ग्रथ		टीकाकार	किस परिच्छेदपर	ग्रथ-परिमाण
१ प्रमाण-वार्त्तिक	१	देवेन्द्रबुद्धि (पजिका) T	२ ४	८,७४८
	२	शाक्यबुद्धि (पजिका-टीका) T	२ ४	१७,०४६
	३	प्रज्ञाकरगुप्त (भाष्य) TS	२-४	१६,२७६
	४	जयानन्त (भाष्यटीका) T	२ ४	१८,१४८
	५	यमारि (भाष्यटीका) T	२-४	२६,५५२
	६	रविगुप्त (भाष्यटीका) T	२ ४	७,५५२
	७	मनोरथनन्दी (वृत्ति) S	१ ४	८,०००
	८	धमकीत्ति (स्ववृत्ति) TS	१	३,५००
	९	शकरानद (स्ववृत्ति-टीका) T (अपूण)	१	७,५७८
	१०	कर्णकगोमी (स्ववृत्ति-टीका) S	१	१०,०००
	११	शाक्यबुद्धि (स्ववृत्तिटीका) T	१	
२ प्रमाण विनिश्चय	१	धर्मोत्तर (टीका) T	१ ३	१२,४६३
	१	ज्ञानश्री (टीका) T		३,२७१
३ न्याय-बिन्दु	१	विनीतदेव (टीका) T	१ ३	१,०३०
	२	धर्मोत्तर (टीका) TS	१-३	१,४७७
	३	दुर्वेकमिश्र (अनु-टीका) S	१ ३	
	४	कमलशील (टीका) T		२२१

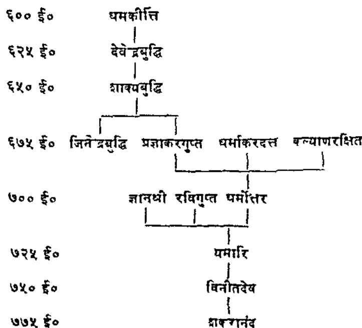
	५ जिनमित्र (टीका) T		३१
४ हेतुबिन्दु	१ विनीतदेव (टीका) T	१४	२,२६८
	२ अर्चट (विवरण) TS	१४	१,७६८
	३ दुर्वेकमिश्र (अनु-टीका) T	१४	,,
५ सम्बन्ध परीक्षा	१ धर्मकीर्ति (वृत्ति) T		१४७
	२ विनीतदेव (टीका) T		५४८
	३ शंकरानंद (टीका) T		३८४
६ वादन्याय	१ विनीतदेव (टीका) T		६०६
	२ शान्तरक्षित (टीका) TS		२,६००
७ सन्तानान्तर सिद्धि	१ विनीतदेव (टीका) T		४७४

I T तिब्बती भाषानुवाद उपलब्ध, S=संस्कृत मूल, मौजूद।

II प्रमाणवार्त्तिकके टीकाकारोंका क्रम इस प्रकार है—



(प्रमाणवार्त्तिक)—यह कह चुके हैं कि धर्मकीर्त्तिका प्रमाणवार्त्तिक दिग्नागके प्रमाणसमुच्चयकी एक स्वतंत्र व्याख्या है। प्रमाणसमुच्चयके छ परिच्छेदोंको हम बतला चुके हैं। प्रमाणवार्त्तिकके चार परिच्छेदोंके विषय प्रमाणसिद्धि, प्रत्यक्ष, स्वार्थानुमान प्रमाण और परार्थानुमान प्रमाण हैं, किंतु आमतौरसे पुस्तकोंमें यह क्रम पाया जाता है—स्वार्थानुमान, प्रमाणसिद्धि, प्रत्यक्ष और परार्थानुमान। यह क्रम गलत है, यह समझनेमें दिक्कत नहीं होती, जब हम देखते हैं कि प्रमाणसमुच्चयके जिस भागपर प्रमाणवार्त्तिक लिखा गया है, वह किस क्रमसे है। इसके लिए देखिए, प्रमाणसमुच्चयके भाग और उसपरके प्रमाण वार्त्तिकका—



प्रमाणसमुच्चय	परिच्छेद	प्रमाणवार्त्तिक	परिच्छेद (होना चाहिए)
मंगलाचरण[1]	(१)	प्रमाणसिद्धि	(१)
प्रत्यक्ष	१	प्रत्यक्ष	(२)
स्वार्थानुमान	२	स्वार्थानुमान	(३)
परार्थानुमान	३	परार्थानुमान	(४)

प्रमाणसमुच्चयके बाकी परिच्छेदों—दृष्टान्त[2], अपोह[3], जाति[4] (=सामान्य)-परीक्षा—के बारेमें अलग परिच्छेदोंमें न लिखकर धर्मकीर्तिने उन्हें प्रमाणवार्त्तिकके इन्हीं चार परिच्छेदोंमें प्रकरणके अनुकूल बाँट दिया है।

न्यायबिन्दु तथा धर्मकीर्तिके दूसरे ग्रंथोंमें भी प्रत्यक्ष स्वार्थानुमान परार्थानुमानके इसी क्रमको ही माना गया है और मनोरथनन्दीने प्रमाणवार्त्तिकवृत्तिमें भी यही क्रम स्वीकार किया है, इसलिए भाष्यों पंजिकाओं टीकाओं या मूलपाठोंमें सर्वत्र स्वार्थानुमान प्रमाणसिद्धि प्रत्यक्ष परार्थानुमानके क्रमको देखनेपर भी ग्रंथकारका क्रम यह नहीं बल्कि मनोरथनन्दी द्वारा स्वीकृत क्रम ही ठीक सिद्ध होता है। क्रममें उलटफेर होनेका कारण धर्मकीर्तिकी स्वार्थानुमानपर स्वरचित वृत्ति है। उनके शिष्य देवेन्द्रबुद्धिने ग्रंथकारकी वृत्तिवाले स्वार्थानुमान परिच्छेदको छोड़कर अपनी पंजिका लिखी जिससे आगे वृत्ति और पंजिकाको अलग अलग रखनेके लिए प्रमाणवार्त्तिकको दो भागोंमें कर दिया गया। इस विभागको और स्थायी रूप देनेमें प्रज्ञाकरगुप्तके भाष्य तथा देवेन्द्रबुद्धिकी पंजिकावाले तीनों परिच्छेदोंके चुनावने सहायता की। इस क्रमको सर्वत्र प्रचलित देखकर मूल कारिकाओंकी प्रतियोंमें भी लेखकोंको वही क्रम अपना लेना पड़ा।

---

[1] देखो पृ० ६६० फुटनोट ६   [2] प्र० वा० ३।३७ ३।१३६
[3] वहीं २।१६३ ७३   [4] वहीं २।५ ५५, २।१४५ ६२ ३।५५ १६१ ४।१३३ ४८, ४।१७६ ८८

यद्यपि मनोरथनंदी द्वारा स्वीकृत क्रमके अनुसार उनकी वृत्तिको मैंने सम्पादित किया है, और वह उपलभ्य है, तो भी मूल प्रमाणवार्त्तिकको मैंने सर्वस्वीकृत तथा तिब्बती अनुवाद और तालपत्रमें मिले क्रमसे सम्पादित किया है, और प्रज्ञाकर गुप्तका प्रमाणवार्त्तिक भाष्य (वार्त्तिकालंकार) उसी क्रमसे संस्कृतमें मिला प्रकाशित होनेके लिए तैयार है इसलिए मैंने भी यहाँ परिच्छेद और कारिका देनेमें उसी सर्वस्वीकृत क्रमको स्वीकार किया है।

धर्मकीर्त्तिके दार्शनिक विचारोंपर लिखते हुए प्रमाणवार्त्तिकमें आए मुख्य मुख्य विषयोंपर हम आगे कहने ही वाले हैं, तो भी यहाँ परिच्छेदके क्रमसे मुख्य विषयोंको देते हैं—

विषय	परिच्छेद कारिका	विषय	परिच्छेद कारिका
पहिला परिच्छेद (स्वार्थानुमान)		**तीसरा परिच्छेद** (प्रत्यक्षप्रमाण)	
१ ग्रंथका प्रयोजन	१।१	१ प्रमाण दो ही— प्रत्यक्ष अनुमान	३।१
२ हेतुपर विचार	१।३	२ परमार्थ सत्य और व्यवहार सत्य	३।३
३ अभावपर विचार	१।५ (+४।१२६)	३ सामान्य कोई वस्तु नहीं	३।३ (+४।१३१)
४ शब्दपर विचार	१।१८६	४ अनुमान प्रमाण	३।५५
५ शब्द प्रमाण नहीं	१।२१८	५ प्रत्यक्ष प्रमाण	३।१२३
६ अपौरुषेय वेद प्रमाण नहीं	१।२२८	६ प्रत्यक्षके भेद	३।१६१
दूसरा परिच्छेद (प्रमाणसिद्धि)			
१ प्रमाणका लक्षण	२।१		
२ बुद्धके वचन क्या माननीय है।	२।२६	७ प्रत्यक्षाभास कौन है?	३।२८८
		८ प्रमाणका फल	३।३००

चौथा परिच्छेद

(परार्थानुमान)

३—धर्मकीर्त्तिका दर्शन

धर्मकीर्त्तिने सिर्फ प्रमाण (न्याय) शास्त्र हीपर सात ग्रंथ लिखे हैं, और उन दर्शनके बारेमें जो कुछ कहना था उसे इन्होंने प्रमाणशास्त्रीय ग्रंथोंमें कह दिया। इन सात ग्रंथोंमें प्रमाणवार्त्तिक (१४५४½ श्लोक) प्रमाण विनिश्चय (१३४० श्लोक) हेतुबिन्दु (४४४ श्लोक) न्यायबिन्दु (१७७ श्लोक) के प्रतिपाद्य विषय एक ही हैं और उनमें सबसे बड़ा और संक्षेपमें अधिक बातोंपर प्रकाश डालनेवाला ग्रंथ प्रमाणवार्त्तिक है। वादन्यायमें आचार्यने अक्षपादके अठारह निग्रहस्थानोंकी भारी भरकम मशीनको फजूल बतलाकर उसे आध श्लोकमें कह दिया है[1]—

'निग्रह (=पराजय) स्थान है (वादीके लिए) अ-साधन, बातका कथन और (प्रतिवादीके) दोषका न पकड़ना।

सम्बन्ध-परीक्षाकी २६ कारिकाओंमें धर्मकीर्त्तिने क्षणिकवादके अनुसार कार्य-कारण संबंध कैसे माना जा सकता है इसे बतलाया है, यह विषय प्रमाणवार्त्तिकमें भी आया है।

---

[1] "असाधनांगवचनं अदोषोद्भावनं द्वयोः।"—वादन्याय पृष्ठ १

सन्तानान्तरसिद्धिके ७२ सूत्रोंमें धर्मकीर्तिने पहिले तो इस मन सन्तान (मन एक वस्तु नहीं बल्कि प्रतिक्षण नष्ट और नए उत्पन्न होती सन्तान=घटना है)में परे भी दूसरी-दूसरी मन-सन्तान (सन्तानान्तर) है इसे सिद्ध किया है और अन्तमें बतलाया है कि ये सब मन (=विज्ञान) सन्तान किस प्रकार मिलकर दृश्य जगत्को (विज्ञानवादके अनुसार) बाहर रूप करती हैं। विज्ञानवादकी चर्चा प्रमाणवार्त्तिकमें भी धर्मकीर्तिने की है।

धर्मकीर्तिके दर्शनको जाननेके लिए प्रमाणवार्त्तिक पर्याप्त है।

(१) तत्कालीन दार्शनिक परिस्थिति—धर्मकीर्ति दिग्नागकी भाँति श्रमण योगाचार (विज्ञानवाद) दार्शनिक सम्प्रदायके माननेवाले थे। वसुबंधु दिग्नाग, धर्मकीर्ति जैसे महान तार्किकोंका योगाचार छोड़ विज्ञानवादमें सबध होना यह भी बतलाता है कि इनके तरह इन भी अपने तर्कसम्मत दार्शनिक विचारोंके लिए विज्ञानवादकी बड़ी जरूरत था। किन्तु धर्मकीर्ति शुद्ध योगाचार नहीं सौत्रान्तिक (या स्वातन्त्रिक) योगाचार माने जाते हैं। सौत्रान्तिक बाहरी जगत्की सत्ताको ही मूलतत्त्व मानता है और योगाचारी सिर्फ विज्ञान (=चित्त मन)को। सौत्रान्तिक (या स्वातन्त्रिक) योगाचारका मतलब है, बाह्य जगत्का प्रवाह रूपी (क्षणिक) वास्तविकताको स्वीकार करते हुए विज्ञानको मूलतत्त्व मानना—ठीक हेगलकी भाँति—जिसका अर्थ आजकी भाषामें होगा जड़ (=भौतिक)-तत्त्व विज्ञानका ही वास्तविक गुणात्मक परिवर्तन है। पुराने योगाचार दर्शनमें मूलतत्त्व विज्ञान (चित्त) को विश्लेषण करके उसे दो भागोंमें बाँटा गया था—आलयविज्ञान और प्रवृत्तिविज्ञान। प्रवृत्ति विज्ञान छ हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, स्पर्श—पाँचो ज्ञान इंद्रियोंके पाँच विज्ञान (=ज्ञान), जो कि विषय तथा इंद्रियके सम्पर्क होते वक्त रंग आकार आदिकी कल्पना उठनेसे पहिले भान होते हैं और छठा है मनका विज्ञान। आलय विज्ञान उक्त छओं विज्ञानोंके साथ जन्मता मरता भी अपने प्रवाह (=सन्तान)में सारे प्रवृत्ति विज्ञानोंका आलय (=घर) है। उसीमें पहिलेके संस्कारोंकी वासना और आगे उत्पन्न होनेवाले विज्ञानोंकी वासना

रहता है। यद्यपि क्षणिकवादके साथ साथ उसमें आलय विज्ञान ब्रह्म या आत्माका भ्रम नहीं हो सकता था, तो भी यह एक तरहका रहस्यपूर्ण तत्त्व बन जाता था जिससे दिङ्नागके शिष्य धर्मकीर्ति जैसे विज्ञानवादी विचारक इतना अधिक सावधान रहते थे कि उन्होंने आलय विज्ञानका प्रथम बार बतानेकी जगह अनावश्यक समझते थे।[1] धर्मकीर्ति आलय (विज्ञान) शब्दका प्रयोग प्रमाणवार्तिकमें किया है किन्तु वह है विज्ञान साधारण—के अर्थमें, उसके पीछे यहाँ किसी अद्भुत रहस्यमयी शक्तिका ख्याल नहीं है।

सन्तान रूपेण (क्षणिक या विच्छिन्नप्रवाहरूपेण) भौतिक जगतकी वास्तविकताका साफ तौरसे इन्कार तो नहीं करना चाहते थे, जैसा कि आगे मालूम होगा किन्तु बचाव भी था कुछ धर्मसंकट भी, यदि अपने तर्कोंमें जगह-जगह प्रयुक्त भौतिक तत्त्वोंकी वास्तविकताको साफ स्वीकार करते हैं, तो धर्मका किला गिर जाता है और वह साथ भौतिकवादी बन जाते हैं, इसीलिए स्वाभाविक ही नहीं किंतु उन्हें विज्ञानवादी रहना जरूरी था। युरोपमें भौतिकवादको फूलने-फलनेका मौका तब मिला जब कि सामन्तवादके गर्भमें एक होनहार जमात—व्यापारी और पूँजीपति—बाहर निकल साइंसके आविष्कारोंकी सहायतासे अपना प्रभाव

---

[1] तिब्बती न्यायिक जम-यङ्-शद-पा (मञ्जुघोषपाद १६४८-१७२२ ई०) अपने ग्रंथ "सप्तनिबंध-व्याख्यानकार सिद्धि" (अलंकार सिद्धि)में लिखते हैं—"जो लोग कहते हैं कि (धर्मकीर्तिके) सात निबंधों (=ग्रंथों)में मन्तव्योंमें "आलय विज्ञान" भी है, वह अंधे हैं अपने ही अज्ञानान्धकार में रहनेवाले हैं।"—डाक्टर श्चेर्वात्स्कीकी Buddhist Logic Vol II p 329 के फुटनोटमें उद्धृत। [2] ३।५२२

[2] "आलय" शब्द पुराने पाली सूत्रोंमें भी मिलता है। किंतु वहाँ वह रुचि, अनुनय, या अध्यवसायके अर्थमें आता है। देखो "महाहत्थिपदोपम सुत्त" (मज्झिम निकाय १।३।८), बुद्धचर्या, पृष्ठ १७६

बढ़ा रही थी, और इस क्रममें पुराने विचारोंको दकियानूसी कह भौतिक जगतकी वास्तविकतापर आधारित विचारोंको प्रोत्साहन दे रही थी। छठी सदी ईसवीके भारतमें अभी यह अवस्था आनेमें १४ सदियोंकी जरूरत थी, किंतु इसीको कम न समझिए कि भारतीय हेगल (धर्मकीर्ति) जर्मनीके हेगल् (१७७०-१८३१ ई०)से बारह सदियाँ पहिले हुआ था।

(२) तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति—यहाँ जरा इस दर्शनके पीछेकी सामाजिक भित्तिको देखना चाहिए, क्योंकि दर्शन चाहे कितना ही हाड़-मांससे नफरत करते हुए अपनेको उससे ऊपर समझे, किन्तु है वह भी हाड़-मांसकी ही उपज। वसुबंधुसे धर्मकीर्ति तकका समय (४०० ६०० ई०) भारतीय दर्शनके (और काव्य, ज्योतिष, चित्र-मूर्ति वास्तुकलाके भी)[1] परम विकासका समय है। इस दर्शनके पीछे आप गुप्त—मौखरी—हर्ष-वर्द्धनके महान् तथा दृढ़ शासित साम्राज्यका हाथ भी कहना चाहेंगे, किन्तु महान साम्राज्य कहकर हम मूल भित्तिको प्रकाशमें नहीं लाते, बल्कि उसे अंधकारमें छिपा देते हैं। उस कालका वह महान साम्राज्य क्या था? किसी एक सामन्त-परिवार एक बड़े सामन्त—समुद्रगुप्त, ईशानवर्मा या हर्षवर्द्धन—को अपने ऊपर मान, नये प्रदेशों नये लोगोंको अपने अधीन करने या अपने आधीन जनताको दूसरेके हाथमें न जाने देनेके लिए सैनिक शासन—युद्ध—या युद्धकी तैयारी—करते और अपने शासनमें पहिलेसे मौजूद या नवागत जनतामें 'शान्ति और व्यवस्था' कायम रखनेके लिए नागरिक शासन करते थे। किन्तु यह दोनों प्रकारका शासन 'पटपर पत्थर बाँधकर' सिर्फ परोपकार बुद्धिसे नहीं होता था। साधारण जनतामें आया मानव—जिसकी संख्या लड़नेवालोंमें ही नहीं मरनेवालोंमें भी सबसे ज्यादा थी—को

[1] काव्य—कालिदास, दंडी, बाण, ज्योतिष—आर्यभट्ट, वराह-मिहिर, ब्रह्मगुप्त, चित्रकला—अजंता और बाग, मूर्तिकला—गुप्त कालिक पाषाण और पीतलमूर्त्तियाँ, वास्तुकला—अजंता, एलौराकी गुहा, देव बर्नारकके मंदिर।

[illegible] बहुत हुए तब [illegible] बाँधना पड़ता था, किन्तु सेनानायक [illegible] शासन-[illegible] [illegible] कारण पहिले [illegible] बड़ी अपरिमित [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उड़ जाता, लूटकी अपार धनराशि [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] थे—[illegible] समुद्रगुप्त मुगलसम्राट [illegible] थे। और नागरिक [illegible] बड़े-बड़े अधिकारी—उपरिक (प्रान्तका शासक या गवर्नर) कुमारामात्य (जिलेका शासक या [illegible])—[illegible] दाम [illegible] थे, या प्रजाके भेंट (तोहफे) सम्मानमें ग्राम और जागीर पाते थे।

यह निश्चित है कि आदमी जितना भारी आहार विहार, वस्त्र आभूषण तथा दूसरे [illegible] सामानपर खर्च करता है, उससे बहुत कम उसके [illegible] [illegible] होता है जो कि कुछ सदियों तक कायम रह सकता है। और उसमें भी अधिकांश सदियोंमें गुजरते [illegible] [illegible] [illegible] नहीं बल्कि मानवके [illegible] हाथोंसे नष्ट हो जाता है। तो भी [illegible], [illegible] मन्दिर अथवा अजन्ता, एलोराके गुहाप्रासाद जो अब भी बच रहे हैं अथवा [illegible] बनियों और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] राजप्रासादोंका वर्णन मिलता है उससे इतना पता लगता है कि इनके उस समयके सम्पत्तिशाली वर्ग कितना धन खर्च करता था और सब मिलाकर अपने ऊपर उसका कितना खर्च था। आज भी धनिकोंको विलासकी चीज महँगी मिलती है, किन्तु इस मशीनयुगमें यह चीज सस्ती बननेके कारण बहुत सस्ती है—अर्थात् उनके आज जितने मानव हाथोंका काम करना पड़ता है, गुप्तकालमें उससे कई गुना अधिक हाथोंकी जरूरत पड़ती।

सारांश यह कि इस शासक सामन्तवर्गकी शारीरिक आवश्यकताओंके लिए ही नहीं बल्कि उनकी विलास सामग्रीके पैदा करनेके लिए भी जनताके एक भारी संख्याको अपना सारा श्रम देना पड़ता था। कितनी संख्या इसका अन्दाज इसीसे लग सकता है कि आजसे सौ वर्ष पहिले कम्पनीके शासनमें भारत जितना धन अपने अंग्रेज शासकोंके लिए सालाना उनके

घर भजता था, उसके उपाजनके लिए छ करोड़ आदमियों—या सारी जनसंख्याके चौथाईसे अधिक—के श्रमकी आवश्यकता होती थी। इसके अतिरिक्त वह खर्च अलग था जिसे अंग्रेज कर्मचारी भारतमें रहते खर्च करते थे।

यही नहीं कि जनताको आधे तिहाई भागको शासकोंके लिए इस तरहकी वस्तुओंको अपने श्रमसे जुटाना पड़ता था बल्कि उनकी काम-वासनाकी तृप्तिके लिए लाखों स्त्रियोंको बध या अर्धपशु अपना शरीर बेचना पड़ता था, उनकी एक बड़ी संख्याको दासी बनकर बिकना पड़ता था। मनुष्यका दास-दासीके रूपमें सरेबाजार बिकना उस वक्तका एक आम नजारा था।

अर्थात् इस दर्शन—कला—साहित्यके महान् युगकी सारी सभ्यता मनुष्यकी पशुवत् परतंत्रता और हृदयहीन गुलामीपर आधारित थी—यह हमें नहीं भूलना चाहिए। फिर दार्शनिक दृष्टिसे क्रान्तिकारीसे क्रान्तिकारी विचारकको भी अपनी विचार-संबंधी क्रान्तिको उस सीमाके अन्दर रखना जरूरी था, जिसके बाहर जाते ही शासक वर्गके कोपका भाजन—चाहे साथ राजदंडके रूपमें उसकी कृपासे वंचित होनेके रूपमें चाहे उनके स्थापित धर्म मठ मन्दिरमें स्थान न पानेके रूपमें—होना पड़ता। उस वक्त 'शान्ति और व्यवस्था' की राह आजसे बहुत नवी थी जिससे बचनेमें धार्मिक सहानुभूति ही थोड़ा बहुत सहायक हो सकती थी, जिससे उसकी माया उसके जीवनका मूल्य एक घोषित डाकूके जीवनसे अधिक नहीं था।

धर्मकीर्ति जिस नालन्दाके रत्न थे उसको गावों और नगरके रूपमें बड़े-बड़े दान देनेवाले यही सामन्त थे, जिनके ताम्रपत्रपर लिखे दानपत्र आज भी हमें काफी मिले हैं। युन्-च्वेङके समय (६४० ई०)में वहाँके दस हजार विद्यार्थियों और पंडितोंपर जिस तरह खुले हाथों धन खर्च किया जाता था यह हो नहीं सकता था कि प्रमाणवार्त्तिककी पंक्तियाँ उन हाथोंको भुलाकर उन्हें काटनेपर तुल जातीं, इसीलिए स्वातंत्र्य (वस्तुवादी) धर्मकीर्ति भी इसकी व्याख्या आध्यात्मिक तलसे ही करके छुट्टी ले लेते

है। विश्वके कारणको ईश्वर आदि छोड़ विश्वधर्म, उसके क्षुद्रतम तथा महत्तम अवयवोंकी क्षणिक परिवर्तनशीलता तथा गुणात्मक परिवर्तनके रूपमें ढूँढ़नेवाले धर्मकीर्त्ति दुःखके कारणको अलौकिक रूपमें—पुनर्जन्म—निहित करनेकी साकार और वास्तविक दुःखके लिए साकार और वास्तविक कारणके पता लगानेसे यह मानते हैं। यदि जनताके एक तिहाई उन दासों तथा सेवकों कम-से-कम उनके बराबरके उन आदमियोंको—जो विमद और व्यापारके नफेके रूपमें अपने श्रमको मुफ्त देते थे—शोषणसे मुक्त कर उनके श्रमको सारी जनता—जिसमें वह खुद भी शामिल थे—के हितमें लगाया जाता, यदि सामन्त परिवारों और वणिक्-श्रेष्ठी-परिवारोंके निठल्लेपन कामचोरपनको हटाकर उन्हें भी समाजके लिए लाभदायक काम करनेके लिए मजबूर किया जाता तो निश्चय ही उस समयके साकार दुःखकी मात्रा बहुत हद तक कम होती। हाँ, यह ठीक है, कामचोरपनके हटानेका अभी समय नहीं था, यह स्वप्नचारिणी योजना उस वक्त असफल होती, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु यही बात तो उस वक्तकी सभी दार्शनिक उड़ानोंमें सभी धार्मिक मनोहर कल्पनाओंके बारेमें था। सफल न होनेपर भी दार्शनिककी गलती एक अच्छे कामकी ओर होती है, उसकी सहृदयता और निर्भीकताकी दाद दी जाती, यदि उपेक्षा और शत्रुप्रहारसे उसकी कृतियाँ नष्ट हो जातीं तो भी खंडनके लिए उद्धृत उसकी प्रतिभाके प्रखर तीर सदियोंको चीरकर मानवताके पास पहुँचते और उसे नया संदेश देते।

(३) विज्ञानवाद—सहृदय मस्तिष्कसे वास्तविक दुनिया (भौतिकवाद)को भुलाने भुलवानेमें दार्शनिक विज्ञानवाद बड़ी काम देता है, जो कि शराब ताड़ी तोड़ने कामसे चूर मजदूरको अपने कष्टोंको भुलवानेमें। चाहे पर दासताकी सहायतासे ही सही, मनुष्यका मस्तिष्क और हृदय तब तक बहुत अधिक विकसित हो चुका था, उसमें अपने साथी प्राणियोंके लिए संवेदना आना स्वाभाविक सी बात थी। आसपासके लोगोंकी दयनीय दशासे इन्कार हो नहीं सकता था, कि वह उसे महसूस न करता, विकल न होता। जगतको झूठा कह इस विकलताको दूर करनेमें दार्शनिक

विज्ञानवाद कुछ सहायता जरूर करता था—आखिर अभी दार्शनिकोंका काम जगत्की व्याख्या करना था उसे बदलना नहीं।"

धर्मकीर्ति बाह्यजगत्—भौतिक तत्वों—को अवास्तविक बतलाते हुए विज्ञान (=चित्त)को असली तत्व साबित करते हैं—

(क) विज्ञान ही एक मात्र तत्त्व—हम किसी वस्तु (=कपड़े)को देखते हैं तो वहाँ हमें नीला पीला रंग तथा लंबाई, चौड़ाई मुटाई भारीपन-चिकनापन आदिको छोड़ केवल रूप (=भौतिक-तत्त्व) नहीं दिखाई पड़ता।[1] दर्शन नील आदिके तौरपर होता है, उससे रहित (वस्तु)का (प्रत्यक्ष या अनुमानसे) ग्रहण ही नहीं हो सकता और नीलादिके ग्रहणपर ही (उसका) ग्रहण होता है। इसलिए जो कुछ दर्शन है वह नील आदिके तौरपर है, केवल बाह्यार्थ (=भौतिक तत्व)के तौरपर नहीं है।[2] जिसको हम भौतिक तत्त्व या बाह्यार्थ कहते हैं वह क्या है इसका विश्लेषण करें तो वहाँ आँखमें दखे रंग आकार, हाथसे छुए सख्त-नरम चिकनापन, आदि ही मिलता है, फिर यह इंद्रियाँ इनके इस स्थूल रूपमें अपने निजी ज्ञान (चक्षु विज्ञान, स्पर्श विज्ञान　　) द्वारा मनको कल्पना करनेके लिए नहीं प्रदान करतीं। मनका निर्णय इंद्रिय चर्वित ज्ञानके पुनः चर्वणपर निर्भर है इस तरह जहाँसे अन्तिम निर्णय होता है, उस मनमें तथा जिनकी दी हुई सामग्रीके आधारपर मन निर्णय करता है, उन इंद्रियके विज्ञानोंमें भी, बाह्य अर्थ (=भौतिक तत्त्व)का पता नहीं निर्णायक स्थानपर हम सिर्फ विज्ञान (=चेतना) ही विज्ञान मिलता है, इसलिए "वस्तुओं द्वारा वही (विज्ञान) सिद्ध है, जिससे कि विचारक कहते हैं—जैसे-जैसे अर्थों (=पदार्थों)पर चिन्तन किया जाता है वैसे ही वैसे वह छिन्न भिन्न हो लुप्त हो जाते हैं (—उनका भौतिक रूप नहीं सिद्ध होता)।"[3]

(ख) चेतना और भौतिक तत्त्व विज्ञान हीके दो रूप—विज्ञान-का भीतरी आकार चित्त—सुख आदिका ग्राहक—है, यह तो स्पष्ट है, किन्तु

---

[1] प्रमाण-वार्त्तिक ३।२०२　[2] प्र० वा० ३।३३५　[3] प्र० वा० ३।२०९

जो बाहरी पदार्थ (=भौतिक तत्त्व घड़ा या कपड़ा) है, वह भी विज्ञानका अन्तर्गत तथा बाहर विज्ञानका ही एक दूसरा भाग है, और बाहरमें अवस्थित सा ज्ञान पड़ता है—यह अभी बतला आये हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ही विज्ञान भीतर (चित्तके तौरपर) ग्राहक, और बाहर (विषयके तौरपर) ग्राह्य भी है। विज्ञान जब अभिन्न है तो उसका (भीतर और बाहरके विज्ञान तथा भौतिक तत्त्वके रूपमें) भिन्न प्रतिभासित होना सत्य न (भ्रम) है।[1] ग्राह्य (बाह्य पदार्थके रूपमें मालूम पड़नेवाला विज्ञान) और ग्राहक (=भीतरी चित्तके रूपमें विज्ञान) में एकके भी अभावमें दोनों ही नहीं रहते (ग्राहक नहीं रहता तो ग्राह्य है इसका कैसे पता लगेगा? और फिर ग्राह्यके न रहनेपर अपनी ग्राहकताको किसके आधार ग्राहक चित्त अपनी सत्ताको कैसे सिद्ध करेगा? इस तरह किसी एकके अभावमें दोनों नहीं रहते) इसलिए मानना ही तत्त्व है (ग्राह्य-ग्राहक) दोनोंका अभाव (=अभिन्नता)।[2] जो आकार प्रकार (बाहरी पदार्थोंमें मौजूद है वह) ग्राह्य और ग्राहकके आकारको छोड़ (और किसी आकारमें) नहीं मिलते (और ग्राह्य ग्राहक एक ही निराकार विज्ञानके दो रूप हैं), इसलिए आकार प्रकारसे शून्य होनेसे (सारे पदार्थ) निराकार हो गए हैं।[3]

प्रश्न हो सकता है यदि बाह्य पदार्थोंकी वस्तुसत्ताको अस्वीकार करते हैं तो उनकी भिन्नताको भी अस्वीकार करना पड़ेगा फिर बाहरी अर्थोंके बिना 'यह घड़ा है' 'यह कपड़ा' इस तरह ज्ञानोंका भेद कैसे होगा? उत्तर है—

किसी (घट आदि आकारवाले ज्ञान) का पाक (एक ज्ञान) है जो कि (चित्तके) भीतरवाली वासना (=पूर्व संस्कार) को जगाता है, उसी (वासनाके जगने)से ज्ञानों (की भिन्नता) का नियम देखा जाता है न कि बाहरी पदार्थकी अपेक्षासे।[4]

---

[1] प्र० वा० ३।२१२ [2] प्र० वा० ३।२१३
[3] प्र० वा० ३।२१५ [4] प्र० वा० ३।३३६

"चूंकि बाहरी पदार्थका अनुभव हमें नहीं होता इसलिए एक ही (विज्ञान) दो (=भीतरी ज्ञान बाहरी विषय) रूपोंवाला (देखा जाता) है, और दोनों रूपोंमें स्मरण भी किया जाता है। इस (एक ही विज्ञानके ग्राह्य अंतर दोनों आकारोंके होने)का परिणाम है स्व संवेदन (अपने भीतर ज्ञानका साक्षात्कार)।"[1]

फिर प्रश्न होता है—"(वह जो बाह्य पदार्थके रूपमें) अवभासित होनेवाला (ज्ञान है), उसका जैसे कैसे भी जो (बाहरी) पदार्थवाला रूप (भासित हो रहा है), उसे छोड़ देनेपर पदार्थ (=घड़)का ग्रहण (=इंद्रिय प्रत्यक्ष आदि) कैसे होगा? (आखिर अपने स्वरूपके ज्ञानके साक्षात्कारमें ही तो पदार्थोंका अपना अपना ग्रहण है?)—(प्रश्न) ठीक है, मैं भी नहीं जानता कैसे यह होता है। जैसे मंत्र (हिप्नाटिज्म) आदिसे जिनकी (आँख आदि) इंद्रियोंको बाँध दिया गया है, उन्हें मिट्टीके ठीकरे (रुपया आदि) दूसरे ही रूपमें दीखते हैं, यद्यपि वह (वस्तुत:) उस (रुपये)के रूपसे रहित है।"[2]

इस तरह यद्यपि अन्तर, बाहर सभी एक ही विज्ञान तत्त्व है किन्तु "तत्त्व अर्थ (=वास्तविकता)की ओर न ध्यान दे हाथीकी तरह आँख मूंदकर सिर्फ लोक व्यवहारका अनुसरण करने तत्त्वज्ञानियोंको (कितनी ही बार) बाहरी (पदार्थों)का चिंतन (=वर्णन) करना पड़ता है।[3]

(४) क्षणिकवाद—बुद्धके दर्शनमें 'सब अनित्य है' इस सिद्धांतपर बहुत जोर दिया गया है, यह हम बतला आए हैं। इसी अनित्यवादको पीछेके बौद्ध दार्शनिकोंने क्षणिकवाद कहकर उसे अभावात्मकसे भावात्मक रूप दिया। धर्मकीर्त्तिने इसपर और जोर देते हुए कहा— 'सत्ता मात्रमें नाश (=धर्म) पाया जाता है।' इस भावको पीछे नालंदाथी (७००

---

[1] प्र० वा० ३।३३७

[2] प्र० वा० ३।३५३-५५ [3] वही ३।२१९

प्र० वा० १।२७२—"सत्तामात्रानुबन्धित्वात् नाशस्य"

३०)———जो (जो) सत् (=भाव रूप) है, वह क्षणिक है।"[1] सभी संस्कार (=किये हुए पदार्थ) अनित्य हैं। इस बुद्धवचनको स्पष्ट करते हुए धर्मकीर्तिने कहा है[2]—जो वस्तु उत्पन्न स्वभाववाली है वह नाश स्वभाववाली है। अनित्य क्या है, इसे बतलाते हुए लिखा है—"उत्पत्ति होकर जो भाव (=पदार्थ) बाद नहीं रहता वह अनित्य है।[3]

इस प्रकार बिना किसी अपवादके क्षणिकताको सिद्ध कर भाव (=सत्ता) रखनेवाले पदार्थोंमें है।

(५) परमार्थ सत्की व्याख्या—शङ्कर और उपनिषद्के व्याख्याकार क्षण-क्षण परिवर्तनशील जगत् और उसके पदार्थोंके पीछे एक अपरिवर्तनशील तत्त्वको परमार्थ सत् मानते हैं, किन्तु बौद्ध दर्शनको ऐसे इन्द्रिय और बुद्धिकी पहुँचसे परे किसी तत्त्वको माननेकी जरूरत न थी, इसलिए धर्मकीर्तिने परमार्थ सत्की व्याख्या करते हुए कहा—

अर्थवाली क्रियामें जो समर्थ है वही परमार्थ सत् है, इससे विरुद्ध जो (अर्थक्रियामें असमर्थ) है वह संवृति (=फर्जी) सत् है। घड़ा, कपड़ा, परमार्थ सत् है, क्योंकि वह अर्थक्रिया समर्थ है, उनसे जल लाया जा सकता या सर्दी गर्मीका निवारण हो सकता है, किन्तु घड़ापन कपड़ापन जो सामान्य (=जाति) माने जाते हैं वह संवृति (=कल्पित या फर्जी) सत् है। क्योंकि उनसे अर्थक्रिया नहीं हो सकती। इस तरह व्यक्ति और उनका नानापन ही परमार्थसत् है। (वस्तुतः सारे) भाव (=पदार्थ) स्वयं भेद (=भिन्नता) रखनेवाले हैं, किन्तु उसी संवृति (=कल्पना)से जब उनके नानापन (=अलग-अलग घड़ों)को ढाँक दिया जाता है तो वह किसी (घड़ापन) रूपसे अभिन्न मालूम होने लगते हैं।[4]

---

[1] "यत् सत् तत् क्षणिकं"—क्षण भंग ११ (ज्ञान श्री)
[2] प्र० वा० २।२८४ ५ [3] वहीं ३।११० वहीं ३।३
[4] प्र० वा० १।७१

(६) नाश अहेतुक होता है—क्षणिकता सारे भावों (=पदार्थों)मे स्वभावसे ही है, इसलिए नाश भी स्वाभाविक है, फिर नाशके लिए किसी हेतु या हेतुओंकी जरूरत नहीं—अर्थात् नाश अहेतुक है, वस्तु की उत्पत्तिके लिए हेतु या बहुतसे हेतु (=हेतु सामग्री) चाहिए, जिसमे कि पहिले न मौजूद पदार्थ भावमे आवे। चूँकि एक मौजूद वस्तुका नाश और दूसरी ना-मौजूद वस्तुकी उत्पत्ति पास पास होता है, इसलिए हमारी भाषामे कहनेकी यह गलत परिपाटी पड़ गई है कि हम हेतुको उत्पन्न वस्तुसे न जोड़ नष्टसे जोड़ देते है। इसी तथ्यको साबित करते हुए धर्मकीर्ति कहते है—

(क) अभाव रूपी नाशको हेतु नहीं चाहिए— यदि कोई कार्य (=कारणीय पदार्थ) हो, तो उसके लिए किसी (=कारण)की जरूरत हो सकती है, (नाश) जो कि (अभाव रूप होनेसे) कोई वस्तु हो नहीं है, उसके लिए कारणकी क्या जरूरत ?"[1]

"जो कार्य (=कारणसे उत्पन्न) है वह अनित्य है जो अ-कार्य (=कारणसे नहीं उत्पन्न) है वह अ-विनाशी (=नित्य) है। (वस्तुका विनाश नित्य अर्थात् हमेशाके लिए होना है, इसलिए वह अ-कार्य= अ-हेतुक है, फिर इस प्रकार) अहेतुक होनेसे वह (=नाश) स्वभावत (वस्तुमात्रका) अनुसरण करता है।"[2] और इस प्रकार विनाशके लिए हेतुकी जरूरत नहीं।

(ख) नश्वर या अनश्वर दोनो अवस्थाओंमें भावके नाशके लिए हेतु नहीं चाहिए— 'यदि (हम उस अनश्वर मान ले, तब) दूसरे किसी (हेतु)से भावका नाश न मानेंगे फिर उस (अनश्वर भाव)की स्थिति के लिए हेतुकी क्या जरूरत ? (—अर्थात भावका नाश अहेतुक हो जायगा)। (यदि हम भावको नश्वर मान ले, तो) वह दूसरे (हेतुओं=कारणों) के बिना भी नष्ट होगा, (फिर उसकी) स्थितिके लिए हेतु असमर्थ होगा।[3]

---

[1] प्र० वा० १।२८२ [2] वहीं १।१६५ [3] वहीं २।७०

जो स्वयं नश्वर स्वभाववाला है उसके लिए दूसरे हेतुकी जरूरत नहीं। जो स्वयं अनश्वर स्वभाववाला है उसके लिए भी दूसरा हेतु बेकार है। इस तरह विनाशको नश्वर स्वभाववाला मानें या अनश्वर स्वभाववाला, दोनों हालतमें उसके लिए दूसरे हेतुकी जरूरत नहीं।

(२) भाव स्वरूपसे नाश भिन्न हो या अभिन्न, दोनों अवस्थाओंमें नाश अहेतुक—आग और लकड़ीका दृष्टान्त लें। फिर हम लकड़ीका नाश आग द्वारा मानते हैं, उत्पत्ति नहीं। इसीलिए हम कहते हैं कि आगने लकड़ीका नाश किया—आग ने लिया नहीं। किन्तु वस्तुतः देखा जाये तो आगने लकड़ीसे कोयला उत्पन्न किया। चूंकि लकड़ी हमारे लिए अधिक उपयोगी (= अर्थवान्) है, इसीलिए यहाँ आग द्वारा हम अपने लिए एक उपयोगी वस्तुका नाश समझते हैं। यदि कोयला भी लकड़ीसे अधिक उपयोगी होता, तो हम 'आगने लकड़ीका नाश कर दिया' न कहकर 'आगने कोयला पैदा किया' कहते। वस्तुतः आगने जहाँ लकड़ीकी जगह कोयला बनाकर हमारे उपयोगी लाभ करता है, वहाँ क्या काम करता है? 'कुम्हार घड़ा नहीं' कहता कि हम मिट्टीका नाश करते हैं, बल्कि कहते हैं हम घड़ा बनाते हैं। लोहार हथौड़ेसे (लोहेका) भी नाश करता या फौलाद का उत्पादन करता, किन्तु यहाँ लोहेको नाशका अवस्तुक (=अवस्तु) समझकर उसकी बात न कहके यही कहा जाता है, कि लोहार हथौड़ेसे लोहा और आग लगा कर फौलाद बनाता है। इस भावको हमारे नासमझीसे समझानेकी कोशिश की है।

प्रश्न है—आग (=कारण हेतु) क्या करती है, लकड़ीका विनाश या कोयलेकी उत्पत्ति? आप कहते हैं लकड़ीका विनाश करती है। फिर सवाल होता है विनाश लकड़ीसे भिन्न वस्तु है या अभिन्न? अभिन्न माननेपर

¹ वहीं २।७२

आग जिस विनाशको उत्पन्न करती है, वह काष्ठ ही हुआ फिर तो 'विनाश' होनेका मतलब काष्ठका होना हुआ, अर्थात् काष्ठका विनाश नहीं हुआ फिर काष्ठके अविनाशमें काष्ठका दर्शन होना चाहिए। यदि (कहो) वही (आगमें उत्पन्न वस्तु काष्ठका) विनाश है (इसलिए काष्ठका दर्शन नहीं होता, तो फिर प्रश्न होगा—)"कैसे (विनाशरूपी) एक पदार्थ (काष्ठ रूपी) दूसरे (पदार्थ) का विनाश होगा? (और यदि नाश एक भाव पदार्थ है, तो) काष्ठ क्या नहीं दिखाई देता?"[1]

(b) विनाश एक भिन्न ही भावरूपी वस्तु है यह माननेसे भी काम नहीं चलता—यदि कहो विनाश (सिर्फ काष्ठका अभाव नहीं बल्कि) एक दूसरा ही भावरूपी पदार्थ है, और उस (भाव रूपी विनाश नामवाले दूसरे पदार्थ) के द्वारा ढँका होनेसे (काष्ठ हमें नहीं दिखलाई देता), (तो यह भी ठीक नहीं) उस (एक दूसरे भाव=नाश) से (काष्ठका) आवरण (=आच्छादन) नहीं हो सकता क्योंकि (ऐसा माननेपर नाशको वस्तुका आवरण मानना पड़ेगा फिर तो वह) विनाश ही नहीं रह जायेगा (=विनष्ट हो जायगा)'[2] और इस प्रकार आग काष्ठके विनाशको उत्पन्न करती है उसके अभावमें यह कहना भी गलत है।

और यदि आग द्वारा नाशकी उत्पत्ति मानें तो 'उत्पन्न होनेके कारण' उसे नाशमान मानना पड़ेगा, क्योंकि जितने उत्पत्तिमान भाव (=पदार्थ) हैं, सभी नाशमान होते हैं। 'और फिर (नाशमान होनेसे जब नष्ट हो जाता है) तो (आवरण-मुक्त होनेसे) काष्ठका दर्शन होना चाहिए।

यदि कहो—नाश रूपी भाव पदार्थ काष्ठका हन्ता है। रामने श्यामको मार डाला (=नष्ट कर दिया), फिर न्यायाधीश रामको फाँसी चढ़ा देता है, किंतु रामके फाँसी चढ़ा देने—हन्ताके नाश हो जाने—पर भी मृत (=नष्ट श्याम) का फिरसे अस्तित्वमें आना नहीं होता उसी तरह यहाँ

[1] प्र० वा० १।२७३　　[2] वहीं १।२७४

भी [1] (जैसे दण्डाभिघात द्वारा घड़ेका नाश या आगसे भी काष्ठ
किसी प्रकार नष्ट नहीं होता)।

किन्तु यह दृष्टान्त गलत है, क्योंकि अग्निके द्वारा (=काष्ठ)
=(कोयला) नष्ट नहीं [2] बल्कि कोयला रूपमें बदले जाने
के कारण ध्वस्त माना जाता। यदि कोयलेमें आगके द्वारा ध्वस्त नाश
होता हुआ लिया जाय तो कोयला उत्तर अग्नि तक ही जायगा। किन्तु
यहाँ काष्ठ नाश पदार्थ=कोयला माना जाता। इसलिए नाश पदार्थ
को मानकर काष्ठका किसी प्रकार नष्ट होना चाहिए।

(८) 'नाश—एक अभिन्न भावरूपी वस्तु' यह माननेमें भी
काम नहीं चलेगा— यदि (मान लें) विनाश (भावरूपी वस्तु
काष्ठसे) अभिन्न है तो नाश=काष्ठ है। या (काष्ठ)—(नाश=)
अभाव अतएव (नाश भाव) उसका हेतु नहीं हो सकेगी।

नाशका (काष्ठसे) भिन्न या अभिन्न रूप होना स्वीकार नहीं माना जा
सकता और हमने ऊपर दिखा दिया कि नाश जो अकारणक नाशके लिए
हेतु (=कारण)का अस्तित्व नहीं अतएव नाश अहेतुक होता है।

यदि कहो— नाशको अहेतुक माननेपर (वह) नित्य होगा, फिर
(काष्ठका) भाव और नाश दोनों एक साथ रहनेवाले मानने पड़ेंगे।
तो यह कहना भी गलत बुनियाद पर है, क्योंकि (नाश तो) असत्
(=अभाव) है उसका नित्य होना कैसा? नित्य अनित्य होना
सवाल भाव पदार्थके लिए होता है असत्का नाश—अर्थात् पदार्थ—के
लिए नहीं।

(७) कारण-समूहवाद—कार्य एकसे नहीं बल्कि अनेक कारणोंके
इकट्ठा होने—कारण सामग्री—से उत्पन्न होता है, अर्थात् अनेक कारण
मिलकर एक कार्यको उत्पन्न करते हैं। इस सिद्धान्त द्वारा बौद्ध दार्शनिक
जहाँ जगत्‌में प्रयोगतः सिद्ध वस्तुस्थितिकी व्याख्या करते हैं वहाँ किसी एक

---

[1] प्र० वा० १।२७४ २७५ [2] प्र० वा० १।२७५ २७७

ईश्वरके कर्त्तापनका भी खंडन करते हैं। साथ ही यह भी बतलाते हैं कि स्थिरवाद—चाहे वह परमाणुओंका हो या ईश्वरका—कारणोंकी सामग्री (=इकट्ठा होनेका) अस्तित्वमें नहीं ला सकता, यह क्षणिकवाद ही है, जो कि भावोंकी क्षणिकता—देश और कालमें गति—की वजहसे कारणोंकी सामग्री (=इकट्ठा होना) करा सकता है।

"कोई भी एक (वस्तु) एक (कारण)से नहीं उत्पन्न होती, बल्कि सामग्री (=बहुतसे कारणोंके इकट्ठा होने)से (एक या अनेक) सभी कार्योंकी उत्पत्ति होती है।"[1]

"कार्योंके स्वभावों (=स्वरूपों)में जो भेद है, वह आकस्मिक नहीं, बल्कि कारणों (=कारण-सामग्री)से उत्पन्न होता है। उनके बिना (=कारणोंके बिना, किसी दूसरेसे) उत्पन्न होना (मानें तो कार्यके) रूप (=कार्यत्व)को उस (आग)से उत्पन्न कैसे कहा जायगा?"[2]

"(चूँकि) सामग्री (=कारण-समुदाय)की शक्तियाँ भिन्न भिन्न होती हैं, (अतः) उन्हींकी वजहसे वस्तुओं (=कार्यों)में भिन्न रूपता दिखलाई पड़ती है। यदि वह (अनेक कारणोंकी सामग्री) भेद करनेवाली न होती, तो यह जगत (विश्व रूप नहीं) एक रूप होता।"[3]

"मिट्टी, चक्का, कुम्हार अलग अलग (किसी घड़े जैसे भिन्न रूपवाले) कार्यके करनेमें असमर्थ हैं, किन्तु उनके (एकत्र) होनेपर कार्य होता है इससे मालूम होता है, कि संहत (=एकत्रित) हुई उन (=क्षणिक वस्तुओं)में हेतुपन (=कारणपन) है, ईश्वर आदिमें नहीं क्योंकि (ईश्वर आदिमें क्षणिकता न होनेसे) अभेद (=एक रसता) है।"[4]

(८) प्रमाणपर विचार—मानवका ज्ञान जितना ही बढ़ता गया, उतना ही उसने उसके महत्त्वको समझा, और अपने जीवनके हर क्षेत्रमें मस्तिष्कको अधिक इस्तेमाल किया। यही मानकी महिमा आगे प्रयोगसिद्ध

---

[1] प्र० वा० ३।५३६ [2] वहीं ४।२४८ [3] वहीं ४।२४९
[4] वहीं २।२८

सामान्यमें सकता सिर्फ स्वलक्षण मात्र है इसलिए उन)में शब्दोंका प्रयोग नहीं हो सकता।[1] 'इस (=घट वस्तु)का यह (वाचक, घट शब्द) है इस तरह (वाच्य-वाचकका जो) संबंध (है उस)में जो दो पदार्थ प्रतिभासित हो रहे हैं उन्हीं (वाच्य वाचक पदार्थों)का (यह) संबंध है (और जिस वक्त उस वाच्य-वाचक संबंधकी ओर मन कल्पना दौड़ाता है) उस वक्त (वस्तु) इन्द्रियके सामनेसे हट गई रहती है (और मन अपने संस्कारके भीतर अवस्थित नाम और पुराने दो कल्पना चित्रोंको मिलाकर नाम देनेकी कोशिशमें रहता है)।[2]

(शबर स्वामी जैसे कुछ बौद्ध प्रमाणशास्त्री प्रत्यक्ष-ज्ञानको) इन्द्रिय-जन्य ज्ञानमें (शब्द मानस वंचित) छोटे बच्चेके ज्ञानकी भाँति कल्पना रहित (ज्ञान) बतलाते हैं, और बच्चेके (ज्ञानको इस तरह) कल्पना रहित मानते (वाच्य-वाचक रूपसे शब्द अर्थ संबंधके) संकेतका कारण कहते हैं। ऐसोंके (मतमें) कल्पनाके (सर्वथा) अभावके कारण बच्चोंका (सारा ज्ञान) सिर्फ प्रत्यक्ष ही होगा, और (बच्चोंको) संकेत (जानने)के लिए कोई उपाय न होनेसे पीछे (बड़े होनेपर) भी वह (=संकेत ज्ञान) नहीं हो सकेगा।[1]

(b) **मानस-प्रत्यक्ष**—दिग्नागने प्रमाणसमुच्चयमें मानस प्रत्यक्षकी व्याख्या करते हुए कहा[4]— 'पदार्थके प्रति राग आदिका जो (ज्ञान) है वही (कल्पनारहित होता) मानस (प्रत्यक्ष) है।' मानस प्रत्यक्ष स्वतंत्र प्रत्यक्ष नहीं रहेगा यदि पहिलेके इन्द्रिय द्वारा ज्ञात (अर्थ)का ही ग्रहण करे, क्योंकि ऐसी दशामें (पहिलेसे ज्ञात अथवा प्रकाशक होनेसे अज्ञात अर्थ प्रकाशक नहीं अतएव वह) प्रमाण नहीं होगा। यदि (इन्द्रिय ज्ञान द्वारा) अदृष्टको (मानस प्रत्यक्ष) माना जाय तो अंधे आदिको भी

[1] प्र० वा० ३।१२५, १२७   [2] वहीं ३।१२६
[3] वहीं ३।१४१, १४२   [4] 'मानसं चार्थरागादि।'

(रूप आदि) अर्थका दर्शन (होना है यह) मानना लागा। [1] इस सबका ख्याल कर धर्मकीर्ति मानस प्रत्यक्षकी व्याख्या करते हैं—

"(चक्षु आदि) इन्द्रियमे जो (विषयका) विज्ञान हुआ है उसका अनन्तर प्रत्यय (=तुरन्त पहिले गुजरा कारण) बना जो मन (=चेतना) उत्पन्न हुआ है वही (मानस प्रत्यक्ष है)। चूंकि (चक्षु आदि इन्द्रियोंमे ज्ञात रूप आदि जानसे) भिन्नको (मन प्रत्यक्ष) ग्रहण करता है (इस लिए वह ज्ञात अर्थका प्रकाशन नहीं, साथ ही मन द्वारा प्रत्यक्ष होनेवाले रूप आदिके विज्ञान इन्द्रियसे ज्ञात उन रूप आदिकोंमे सबद्ध है जिन्हे वि प्रय आदि नहीं देख सकते इसलिए) आखके अर्थकी (रूप) देखनेकी बात नहीं आती।'[2]

(c) **स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष**—दिग्नाग इसका लक्षण करते हुए कहा—'(चक्षु-इन्द्रियसे गहीत रूपका ज्ञान मनसे गहीत रूप विज्ञानका ज्ञान होनेके बाद रूप आदि) अर्थके प्रति अपने भीतर जो राग (द्वेष) आदिका सवेदन (=अनुभव) होता है, (वही) कल्पना-रहित (ज्ञान) स्वसवेदन (प्रत्यक्ष) है।'[3] इसके अर्थको अपने वार्तिकमे स्पष्ट करते हुए धर्मकीर्तिने कहा—

राग (सुख) आदिके जिस स्वरूपको (हम अनुभव करते है वह) किसी दूसरे (इन्द्रिय आदिसे) सबध नहीं रखता, अत उसके स्वरूपके प्रति (वाच्य-वाचक) सकेतका प्रयोग नहीं हो सकता (और इसीलिए) उसका जो अपने भीतर सवेदन होता है वह (वाचक शब्दसे) प्रकट होने लायक नहीं है।'[4] इस तरह अज्ञात अर्थका प्रकाशक कल्पनारहित तथा अवि सवादी होनेसे राग-सुख आदिका जो अनुभव हम करते है, वह स्वसवेदन-प्रत्यक्ष भी इन्द्रिय और मानस प्रत्यक्षसे भिन्न एक प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय प्रत्यक्ष

---

[1] प्र० वा० ३।२३६ [2] वही ३।२४३

[3] "अर्थरागादि स्वसंवित्तिरकल्पिका"—प्रमाण-समुच्चय।

[4] प्र० वा० ३।२४६

म इम [illegible] इन्द्रिय [illegible] विषय (=रूप गंध) का ज्ञान प्राप्त करते [illegible] मानस [illegible] इन्द्रिय [illegible] जो यह ज्ञान [illegible] उसका प्रकार [illegible] प्रकार प्रश्न [illegible] विषय [illegible]। किन्तु [illegible] प्रत्यक्षमें [illegible] (रूप-) ज्ञान और उस इन्द्रिय [illegible] भिन्न [illegible] [illegible] ।

(४) योगि-प्रत्यक्ष—[illegible] प्रत्यक्ष [illegible] अतिरिक्त [illegible] योगि-प्रत्यक्ष माना है। [illegible] —[illegible] विज्ञान [illegible] (भाविता) [illegible] ज्ञान भावनासे उत्पन्न [illegible] योगि [illegible] माना है। ([illegible]) [illegible] ज्ञान [illegible] (अस्थिर) [illegible] (—[illegible]) [illegible] भांति [illegible]। [illegible] (=[illegible]) [illegible] (स्पष्ट, [illegible]) भी [illegible] (=[illegible]) [illegible] [2]

समाधि (=[illegible] एकाग्रता) आदि भावनासे प्राप्त [illegible] ज्ञान [illegible] योगि-प्रत्यक्ष प्रमाणसम [illegible] उनमें [illegible] भावनासे उत्पन्न (ज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाणसे अभिन्न है [illegible] (अभाव [illegible] आदि) की भांति [illegible] (=[illegible] असम्यक् [illegible]) [illegible], [illegible] (दूसरे, भावना उत्पन्न [illegible]) भ्रम है। [3]

प्रत्यक्ष ज्ञान [illegible] उस कल्पना रहित [illegible] इन्द्रिय-प्रत्यक्ष [illegible] कल्पना रहित [illegible] जा सकता है [illegible] वहां हम [illegible] सामने घड़ा [illegible] घट

---

[1] Intuition [2] प्र० वा० ३।२८१ २८३ [3] प्र० वा० ३।२८६

धर्म प्रतिबिंबका जो पहिला दबाव ज्ञानतंतुओं द्वारा हमारे मस्तिष्कपर पडता है, वह कल्पना-रहित होता है। पहिले दबावके बाद एक छाप (=प्रतिबिंब) मस्तिष्कपर पडता है फिर मस्तिष्कमें संस्काररूपमें पहिलेके देखे घड़ोंके जो प्रतिबिंब (या प्रतिबिंब-संतान) मौजूद है, उनसे इस नए प्रतिबिंब (या लगातार पड रहे प्रतिबिंब-संतान)का मिलाया जाता है—अब यहाँ कल्पनाका आरम्भ हो गया। फिर जिस प्रतिबिंबसे यह नया प्रतिबिंब मिल जाता है, उसके वाचक नामका स्मरण होता है फिर इस नए प्रतिबिंबवाले पदार्थका नामकरण किया जाता है। यहाँ कहाँ तक कल्पनारहित ज्ञान रहा, और कहाँसे कल्पना शुरू हुई यह समझना उस प्रथम दबावके द्वारा आसान है किंतु जहाँ बाहरी वस्तुके दबावकी बात नहीं रहती, वहाँ कल्पनाके आरंभकी सीमा निर्धारित करना—खासकर योगिप्रत्यक्ष जैसे ज्ञानमें—बहुत कठिन है। इसीलिए कल्पनाकी व्याख्या करते हुए धर्मकीर्तिने लिखा—

"जिस (विषय, वस्तु)में जो (ज्ञान, दूसरसे पृथक करनेवाले) शब्द अर्थ (के संबंध)को ग्रहण करनेवाला है वह ज्ञान उस (विषय)में कल्पना है। (वस्तुका) अपना रूप शब्दार्थ (=शब्दका विषय) नहीं होता इसलिए वहाँका सारा (ज्ञान) प्रत्यक्ष है।[1]

इस तरह चाहे ज्ञानका विषय बाहरी वस्तु हो अथवा भीतरी विज्ञान, जब तक समानता असमानताको लेकर प्रयुक्त होनेवाले शब्दोंको अवकाश नहीं मिल रहा है, तब तक वह प्रत्यक्षकी सीमाके भीतर रहता है।

(प्रत्यक्षाभास)—चार प्रकारके प्रत्यक्षज्ञानको बतला चुके। किन्तु ज्ञान ऐसे भी हैं, जो प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है और देखनेमें प्रत्यक्षसे लगते हैं, ऐसे प्रत्यक्षाभासोंका भी परिचय होना जरूरी है जिसमें कि हम गलत रास्ते पर न चले जायें। दिग्नागने ऐसे प्रत्यक्षाभासोंकी संख्या चार बतलाई

[1] ० वा० ३।२८७

है'—भ्रान्तिज्ञान, संवृतिसत् ज्ञान, अनुमान-आनुमानिक-स्मार्ताभिलापिक और तैमिर ज्ञान। (१) भ्रान्तिका मृगमरीचिकामें जलका ज्ञान है। (२) संवृतिसत्का ज्ञान पर्यायों द्रव्यके गुण आदिका ज्ञान—'यह अमुक द्रव्य है, अमुक गुण है'। (३) अनुमान (=लिंग धूम) आनुमानिक (=लिंग आग) के अतिरिक्त स्मृति अभिलाप (=वचनके विषय) वाला ज्ञान—यह घड़ा है। (४) तैमिरिक ज्ञान वह ज्ञान है जो कि इन्द्रिय किसी तरहके विकारके कारण होता, जैसे कामला रोगवालेको सभी चीज पीली मालूम होती है। इनमें पहिले 'तीन प्रकारके प्रत्यक्षाभास कल्पना युक्त होनेसे (जो कल्पनायुक्त होनेके कारण ही प्रत्यक्षके भीतर नहीं गिने जा सकते) और चौथा (=तैमिरिक) कल्पना रहित है किन्तु आश्रय (=इन्द्रिय)में विकार होनेके कारण उत्पन्न होता है (इसलिए प्रत्यक्ष नहीं माना जाता)—ये हैं चार प्रकारके प्रत्यक्षाभास।[1]

(ख) अनुमान प्रमाण—अग्निका ज्ञान दो प्रकारसे हो सकता है, एक अपने स्वरूपसे जैसा कि प्रत्यक्षमें देखनेपर होता है, दूसरा दूसरेके रूपसे जब धुआँ देखनेपर उस दाहक (=रसोईघरकी) आगका रूप याद आता है और इस प्रकार दूसरेके रूपसे इस धुएँके लिंग (=चिह्न) वाली आगका ज्ञान होता है—यह अनुमान है। चूँकि पदार्थका "स्वरूप और पर रूप दो ही तरहका ज्ञान होता है, अतः प्रमाणके विषय (भेद) दो ही प्रकारके होते हैं"[2]—एक प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय और दूसरा अनुमानका विषय।

किन्तु "(जो पररूपसे, अनुमान ज्ञान होता) है वह जैसी (वस्तुस्थिति) है उसके अनुसार नहीं लिया जाता इसलिए (यह) दूसरे तरहका (ज्ञान) भ्रान्ति है। (फिर प्रश्न होता है) यदि (वस्तुतः अपने-नहीं) पर-रूपसे

---

[1] "भ्रान्तिसंवृत्तिसज्ज्ञानं अनुमानानुमानिकम्। स्मार्ताभिलापिकं चेति प्रत्यक्षाभं सतैमिरम्।"—प्रमाण-समुच्चय।

[2] प्र० वा० ३।२८८ [3] प्र० वा० ३।५४

ज्ञान होता है, तो (वह भ्रान्ति है) और भ्रान्तिको प्रमाण नहीं कह सकते (क्योंकि वह अविसवादी नही होगी)। (उत्तर है—) भ्रान्तिको भी प्रमाण माना जा सकता है यदि (उस ज्ञानका) अभिप्राय (जिस अर्थमें है, उस अर्थ)से अ विसवाद न हो (=उसके विरुद्ध न जाय, क्योंकि) दूसरे रूपसे पाया जान भी (अभिन्न अर्थका सवादी) देखा जाता है।"[1] यही पहाडमे देखे धुएँवाला आगके ज्ञानको हम अपने रूपसे नहीं पा रसोईघर वाली आगके रूपके द्वारा पाते हैं परन्तु हमारे इस अनुमान ज्ञानसे जो अभिप्रेत अर्थ (पहाडकी आग) है, उससे उसका विरोध नहीं है।

(a) **अनुमानकी आवश्यकता**— वस्तुका जो अपना स्वरूप (=स्वलक्षण) है, उसमे कल्पना रहित प्रत्यक्ष प्रमाणकी जरूरत होती है (यह बतला चुके है) किन्तु (अनेक वस्तुओके भीतर जो) **सामान्य** है उसे कल्पनाके बिना नही ग्रहण किया जा सकता इसलिए इस (सामान्यके ज्ञान)मे अनुमानकी जरूरत पडती है।[2]

(b) **अनुमानका लक्षण**—किसी 'सबधी (पदार्थ, धूमसे सबध रखनेवाली आग)के **धर्म** (=लिंग धूम)से धर्मी (=धर्मवाली आग)के विषयमें (जो परोक्ष) ज्ञान होता है वह अनुमान है।"[3]

पहाडमे हम दूरसे धुआँ देखते है हम रसोईघर या दूसरी जगह देखी आग याद आती है और यह भी कि 'जहाँ जहा धुआ होता है वहा-वहाँ आग होती है" फिर धुएँको हेतु बनाकर हम जान जाते है कि पर्वतमे आग है। यहाँ आग परोक्ष है इसलिए उसका ज्ञान उसके अपने स्वरूपसे हम नहा होता, जैसा कि प्रत्यक्ष आगमें होता है, दूसरी बात है कि हमे यह ज्ञान सद्य नही होता, बल्कि उसमे स्मृति, शब्द-अर्थ-सबध—अर्थात् कल्पना—का आश्रय

---

[1] वहीं ३।५५, ५६ [2] प्र० वा० ३।७५

[3] वहीं ३।६२ "अटूट सबधवाले (दो) पदार्थों (मेंसे एक)का दर्शन उस (=सबध)के जानकारके लिए अनुमान होता है" (अनन्तरीयकार्थ दर्शन तद्विदोऽनुमानम्"—वसुबन्धुकी वादविधि)।

लेना पड़ता है।

(प्रमाण दो ही)—प्रमाण द्वारा ज्ञेय (=प्रमेय) पदार्थ स्वरूप और पररूप (=कल्पना रहित कल्पना युक्त) दो ही प्रकारसे जाने जाते हैं। इनमें पहिला प्रत्यक्ष रूपसे जाना जाता है, दूसरा परोक्ष (अप्रत्यक्ष) रूपसे। प्रत्यक्ष और परोक्ष छोड़ और कोई (तीसरा) प्रमेय संभव नहीं है, इसलिए प्रमेयके (सिर्फ) दो होनेके कारण प्रमाण भी दो ही होते हैं। दो तरहके प्रमेयोंके दर्शनसे (प्रमाणोंकी) संख्याको (बढ़ाकर) तीन या (घटाकर) एक करना भी गलत है।[1]

(c) अनुमानके भेद—कणाद और अक्षपादने अनुमानको एक ही माना था, इसलिए उनके पश्चवर्ती ऋषियोंके पदपर चलते हुए प्रशस्तपाद जैसे वात्स्यायन आचार्योंके साथ आज तक ब्राह्मण नैयायिक उसे एक ही मानते आ रहे हैं। अनुमानके स्वार्थ अनुमान, परार्थ अनुमान ये दो भेद पहिले पहिल आचार्य दिग्नागने किया।[2] दो प्रकारके अनुमानोंमें स्वार्थ अनुमान वह अनुमान है, जिसमें तीन प्रकारके हेतुओं (=लिंगों, चिह्नों, धूम आदि) से किसी प्रमेयका ज्ञान अपने लिए (=स्वार्थ) किया जाता है।[3] परार्थानुमानमें उन्हीं तीन प्रकारके हेतुओं द्वारा दूसरेके लिए (=परार्थ) प्रमेयका ज्ञान कराया जाता है।

(d) हेतु (=लिंग) धर्म—पदार्थ (=प्रमेय) के जिस धर्मको हम देखकर कल्पना द्वारा उसके अस्तित्वका अनुमान करते हैं, वह हेतु है। अथवा पक्ष (=आग) का धर्म हेतु है, जो कि पक्ष (=आग) के अंश (=धूम धर्म) से व्याप्त है।[4]

हेतु सिर्फ तीन तरहके होते हैं[5]—कार्य हेतु, स्वभाव हेतु और अनुपलब्धि-हेतु। हम किसी पदार्थका अनुमान करते हैं उसके कार्यसे—'पहाड़में आग है, धुआँ होनेसे'। यहाँ धुआँ आगका कार्य है, इस तरह

---

[1] प्र० वा० ३।६३, ६४ [2] धर्मोत्तर (न्यायबिन्दु पृ० ८२)
[3] देखो न्यायबिन्दु २।३ [4] प्र० वा० १।३ [5] वहीं

न ... इन्द्रियों या बुद्धिके बिना ... इस तरह दोनों (=इन्द्रियाँ और बुद्धि) परस्पराश्रय (=एक दूसरेपर निर्भर हैं), और ... (=न आत्मा) का अभाव ... (सिद्ध है)।[1]

(ख) मन शरीर नहीं—मन और शरीरका इस तरह एक दूसरेपर आश्रित होना—उपादान उपादेय संबंध होना—एक परिणामका ... कि ... शरीरसे सर्वथा भिन्न ... है, वह ... का ... और ... भौतिक तत्त्वोंके ... हैं—भौतिक ही ... है जो ... । ... भौतिकवाद (भौतिकवाद या जड़वाद)का खंडन करते हुए कहते हैं—"प्राण=अपान (=श्वास प्रश्वास) इन्द्रियों और बुद्धि (=मन)की उत्पत्ति अपनी समानता स्वभाव (=सजातीय) पूर्व कारणके बिना केवल शरीरसे नहीं होती। यदि ऐसा उत्पत्ति (=जन्मग्रहण) होती, तो (प्राण अपान इन्द्रिय बुद्धिवाले शरीरसे उत्पन्न होनेका) नियम न रहता (और बिना किसी भेदके जीवन=प्राण अपान इन्द्रिय-बुद्धि वाला शरीर उत्पन्न होता)।[1]

जीवनवाले बीजसे ही दूसरे जीवकी उत्पत्ति होती है यह भी इस बातको दिखलाता है कि मन (=चेतना) केवल भूतोंकी उपज नहीं है। कहीं कहीं जीवन बीजके बिना भी जीव उत्पन्न होता दिखाई देता है, जैसे कि पसीने क्षुद्रकीट—इसका उत्तर देते हुए धर्मकीर्ति कहते हैं—

पृथिवी आदिका ऐसा कोई भाग नहीं है जहाँ स्वेदज आदि जन्तु न पैदा होते हों; इससे मालूम होता है कि सब (भूतों उत्पन्न होता दिखाई देनेवाली वस्तुएँ) बीजात्मक हैं।[2]

'यदि अपने सजातीय (जीवनयुक्त कारण)के बिना इन्द्रिय आदिकी उत्पत्ति मानी जाय तो जग ... (जगत्के भूत जीवनके रूपमें) परिणत

[1] प्र० वा० २।३५ [2] वहीं २।३७

४ दूसरे दार्शनिकोंका खंडन

धर्मकीर्त्तिने अपने ग्रंथ प्रमाण वार्त्तिकमें अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंका समर्थन और प्रतिपादन ही नहीं किया है, बल्कि उन्होंने अपने समय तककी हिन्दू दार्शनिक प्रगतिकी आलोचना भी की है। जिन दार्शनिकोंके ग्रंथोंको सामने रखकर उन्होंने यह आलोचना की है, उनमें उद्योतकर और कुमारिल जैसे प्रमुख ब्राह्मण दार्शनिक भी हैं। हमने पुनरुक्ति और ग्रंथ विस्तारके डरसे उनके बारेमें अलग नहीं लिखा, किन्तु यहाँ धर्मकीर्त्तिकी आलोचनामें उनके विचारोंको हम जान सकते हैं।

(१) नित्यवादियोंका सामान्यरूपसे खंडन—पहिले हम उन सिद्धान्तोंको ले रहे हैं, जिन्हें एकसे अधिक दार्शनिक सम्प्रदाय मानते हैं।

(क) नित्यवादका खंडन—अनित्यवाद (=क्षणिकवाद)का घोर पक्षपाती होनेसे बौद्धदर्शन नित्यवादका जबर्दस्त विरोधी है। भारतके बाकी सारे ही दार्शनिक किसी-न किसी रूपमें नित्यवादको मानते हैं, जैन और मीमांसक जैसे आत्मवादी ही नहीं चार्वाक जैसे भौतिकवादी भी भूतके सूक्ष्मतम अवयवको क्षणिक (=अनित्य) कहनेके लिए तैयार नहीं थे, जैसे कि पिछली सदी तकके यूरोपके यांत्रिक भौतिकवादी विश्वकी मूल ईंटों—परमाणुओं—को क्षणिक कहनेके लिए तैयार न थे।

दिग्नाग कहते हैं[1]—'कारण (स्वयं) विकारको प्राप्त होकर ही दूसरी (चीज)का कारण हो सकता है।' धर्मकीर्त्तिने कहा—"जिसके होनेके बाद जिस (वस्तु)का जन्म होता है, अथवा (जिसके) विकारयुक्त होनेपर (दूसरी वस्तु)में विकार होता है, उसे उस (पीछेवाली वस्तु)का कारण कहते हैं।"[2]

इस प्रकार कारण वही हो सकता है जिसमें विकार हो सकता है। 'नित्य (वस्तु) में यह (बात) नहीं हो सकती, अतः ईश्वर आदि (जो नित्य

---

[1] "कारणं विकृतिं गच्छज्जायतेऽस्य कारणम्"।

[2] प्र० वा० २।१८१ ८२

भ्रमकी वजहसे (कहा जाता है)। यदि (भौतिकवादियोंके मतानुसार) केवल (भौतिक भाग ही सबका कारण था) तो (इस दोषका हटाना) असाध्य नहीं हो सकता।

(माना जाता है कि साँप काटनेपर जब तक जीवन रहता है तब तक विष सारे शरीरमें फैलता जाता है किन्तु शरीरके निर्जीव हो जानेपर विष काटे स्थानपर जमा हो जाता है। इस तरह तो यदि भूत ही चेतना होती तो (शरीरके) मर जानेपर विष आदिके (शरीरके अन्य स्थानोंसे हटकर एक स्थानपर) जमा होने (शरीरके बाकी स्थानों) अथवा कटे (स्थान)के काट डालनेसे (बाकी शरीरमें निर्जीवतारूपी) विकारके हेतु (=विष)के हट जानेसे वह (शरीर) क्या नहीं साँस लेने लगता? (इससे पता लगता है कि चेतना भूत ही नहीं है बल्कि उससे भिन्न वस्तु है यद्यपि दोनों एक दूसरेके आश्रित होनेसे अलग अलग नहीं रह सकते)।

'(भूतसे चेतनाकी उत्पत्ति माननेपर भूत उपादान और चेतना उपादेय हुए फिर) उपादान (=शरीर)के विकारके बिना उपादेय (=चेतना)में विकार नहीं किया जा सकता जैसे कि मिट्टीमें विकार किए (मिट्टीके बने) कसोरे आदिमें (विकार नहीं किया जा सकता)। किसी वस्तुके विकार-युक्त हुए बिना जो पदार्थ विकारवान होता है, वह वस्तु उस (पदार्थ)का उपादान नहीं (हो सकती), जैसे कि (एकके विकारके बिना दूसरी विकार-युक्त होनेवाली) गाय और नीलगाय (एक दूसरेका उपादान नहीं हो सकती), इसी तरह मन और शरीरकी भी (बात है दोनोंमेंसे एकके विकार युक्त हुए बिना भी दूसरेमें विकार देखा जाता है)।'[1]

(ग) मनका स्वरूप— स्वभावसे मन प्रभास्वर (=निर्विकार) है, (उसमें पाए जानेवाले) मल आगन्तुक (आकाशमें अंधकार कुहरा आदिकी भाँति अपनेसे भिन्न) हैं।'[2]

---

[1] प्र० वा० २।५४ ६२ [2] वही २।२०८

४ दूसरे दार्शनिकोंका खंडन

धर्मकीर्तिने अपने ग्रंथ प्रमाण-वार्त्तिकमें अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंका समर्थन और प्रतिपादन ही नहीं किया है, बल्कि उन्होंने अपने समय तककी हिन्दू दार्शनिक प्रगतिकी आलोचना भी की है। जिन दार्शनिकोंके ग्रंथोंको सामने रखकर उन्होंने यह आलोचना की है उनमें उद्योतकर और कुमारिल जैसे प्रमुख ब्राह्मण दार्शनिक भी हैं। हमने पुनरुक्ति और ग्रंथ विस्तारके डरसे उनके बारेमें अलग नहीं लिखा, किन्तु यहाँ धर्मकीर्तिकी आलोचनामें उनके विचारोंको हम जान सकते हैं।

(१) नित्यवादियोंका सामान्यरूपसे खंडन—पहिले हम उन सिद्धान्तोंको ले रहे हैं, जिन्हें एकसे अधिक दार्शनिक सम्प्रदाय मानते हैं।

(क) नित्यवादका खंडन—अनित्यवाद (=क्षणिकवाद)का घोर पक्षपाती होनेसे बौद्धदर्शन नित्यवादका जबर्दस्त विरोधी है। भारतके बाकी सारे ही दार्शनिक किसी-न किसी रूपमें नित्यवादको मानते हैं, जैन और मीमांसक जैसे आत्मवादी ही नहीं चार्वाक तक भौतिकवादी भी भूतके सूक्ष्मतम अवयवको क्षणिक (=अनित्य) कहनेके लिए तैयार नहीं थे, जैसे कि पिछली सदी तकके यूरोपके यांत्रिक भौतिकवादी विश्वकी मूल ईंटों—परमाणुओं—को क्षणिक कहनेके लिए तैयार न थे।

दिग्नाग कहते हैं[1]—"कारण (स्वयं) विकारको प्राप्त होकर ही दूसरा (चीज)का कारण हो सकता है। धर्मकीर्तिने कहा—'जिसके होनेके बाद जिस (वस्तु)का जन्म होता है अथवा (जिसके) विकारयुक्त होनेपर (दूसरी वस्तु)में विकार होता है उसे उस (पीछेवाली वस्तु)का कारण कहते हैं।'"[2]

इस प्रकार कारण वही हो सकता है, जिसमें विकार हो सकता है। नित्य (वस्तु) में यह (बात) नहीं हो सकती, अतः ईश्वर आदि (जो नित्य

---

[1] "कारणं विकृतिं गच्छज्जायतेऽन्यस्य कारणम्"।
[2] प्र० वा० २।१८१-८२

पदार्थ) हैं उनसे (कोई वस्तु) उत्पन्न नहीं हो सकता।[1]

जिसे अनित्य नहीं कहा जा सकता, वह किसी (चीज)का हेतु नहीं हो सकता। (नित्यवादी) विद्वान् उसी (स्वरूप)को नित्य कहते हैं, जो स्वभाव (=स्वरूप) विनष्ट नहीं होता।[2]

यह भी बतला चुके हैं कि धर्मकीर्ति परमार्थ-सत् उसी वस्तुको मानते हैं, जो कि अर्थवाली (=सार्थक) क्रिया (करने) में समर्थ हो। नित्यमें विकारका सर्वथा अभाव होनेसे क्रिया हो ही नहीं सकती। आत्मा ईश्वर, इन्द्रिय आदिसे अगोचर हैं, साथ ही वह नित्य होनेके कारण निष्क्रिय भी हैं, इसलिए भी उनके अस्तित्वकी घोषणा करना यह साहस मात्र है।

(ख) आत्मवादका खंडन—चार्वाक और बौद्ध दर्शनको छोड़ बाकी सारे भारतीय दर्शन आत्माको एक नित्य चेतन पदार्थ मानते हैं। बौद्ध अनात्मवादी हैं, अर्थात् आत्माको नहीं मानते। आत्माको न माननेपर भी क्षण-क्षण परिवर्तनशील चेतना प्रवाह (=विज्ञान-संतति) एकसे दूसरे शरीरसे जुड़ता (=प्रतिसंधि ग्रहण करता) रहता है, इसे हम पहिले बतला चुके हैं। चेतना (=मन या विज्ञान) सदा कायाश्रित रहता है। जब कि एक शरीरका दूसरे शरीरसे एकदम सन्निकटका संबंध नहीं है, मरनेवालेके शरीर भूलोकपर है और उसके बादका सजीव बननेवाला शरीर मंगललोकमें, ऐसी अवस्थामें एक शरीरको छोड़ दूसरे शरीर तक पहुँचनेमें बीचकी एक अवस्था होगी, जिसमें विज्ञानको कायासे बिल्कुल स्वतंत्र मानना पड़ेगा, फिर 'मन कायाश्रित है'—कहना गलत होगा। इसका उत्तर बौद्ध कह सकते हैं कि हम मनको एक नहीं बल्कि प्रवाह मानते हैं, प्रवाहका अर्थ निरन्तर—अविच्छिन्न चली आती एक वस्तु नहीं बल्कि, हर क्षण अपने रूपमें विच्छिन्न—सर्वथा नष्ट—होती तथा उसके बाद उसी तरहकी किन्तु बिल्कुल नई चीजका उत्पन्न होना और इस नष्ट उत्पत्ति-नष्ट उत्पत्ति से एक विच्छिन्न प्रवाहका

[1] वहीं २।१८३ [2] वहीं २।२०४

जारी रहना। चेतन प्रवाह इसी तरहका विच्छिन्न प्रवाह है, वह जीवन रखा मालूम होता है, किन्तु है जीवन बिन्दुओंकी पाती। फिर प्रवाहका विच्छिन्न मान लेनेपर "मन कायाश्रित"का मतलब मनके हर एक "बिन्दु"को बिना कायाके नहीं रहना चाहिए। क शरीर—जो कि स्वयं क्षण-क्षण परिवर्तनशील शरीर निर्मापक मूल बिंदुओं (=कणों)का विच्छिन्न प्रवाह है—का अन्तिम चित्त बिन्दु नष्ट होता है उसका उत्तराधिकारी ख शरीरके साथ होता है। क शरीर (प्रवाह)के अन्तिम और ख शरीर (प्रवाह)के आदिम चित्त बिन्दुओं (क चित्त, ख चित्त)के बीच यदि किसी ग चित्त-बिंदुका मान तब न आश्रय किया जा सकता है, कि ग चित्त बिन्दु कायाके बिना है। इस तरह स्थिर (=नित्य या चिरस्थायी) नहीं बल्कि बिजलीकी चमकसे भी बहुत तेज गतिसे 'आंख मिचौनी' करनेवाले चित्त-प्रवाहके (अनात्म तत्त्व)को मानते हुए भी वह एकसे अधिक शरीरों (=शरीर प्रवाहों)से उसका जाना सिद्ध करते हैं।

(a) **नित्य आत्मा नहीं**—आत्माको नित्य माननेवाले वैसा मानना सबसे जरूरी इस बातके लिए समझते हैं कि उसके बिना बंध—जन्म मरणमें पड़कर दुख भोगना और मोक्ष—दुखोंसे छूटकर परम सुखी' हो विचरण करना—दोनों संभव नहीं। इसपर धर्मकीर्त्ति कहते हैं—

दुखकी उत्पत्तिमें कारण (=कर्म) बंध है (किन्तु) जो नित्य है (वह निष्क्रिय है इसलिए) वह ऐसा (कारण) कैसे हो सकता है? दुखकी उत्पत्ति न होनेमें कारण (कर्मसे उत्पन्न बंधसे) मोक्ष (मुक्त होना) है जो नित्य है, वह ऐसा (कारण) कैसे हो सकता है? (वस्तुतः) जिसे अनित्य (=क्षणिक) नहीं कहा जा सकता वह किसी (चीज)का कारण नहीं हो सकता। नित्य उस स्वरूपको कहते हैं जो कि नष्ट नहीं होता। इस लज्जाजनक दृष्टि (=नित्यताके सिद्धान्त)को छोड़कर उसे (=आत्माको) (अतः) अनित्य कहो।"[1]

---

[1] प्र० वा० २।२०२-२०५

(b) नित्य आत्माका विचार (=सत्काय दृष्टि) सारी बुराइयोंकी जड़— "मैं सुखी होऊँ या दुःखी नहीं होऊँ—यह तृष्णा करते (पुरुष)को जो 'मैं' ऐसा ख्याल (=बुद्धि) होता है, वही सहज आत्मवाद (=सत्त्व-ज्ञान) है। 'मैं' ऐसी धारणाके बिना कोई आत्मामें स्नेह नहीं कर सकता, और आत्मामें (इस तरहके) स्नेहके बिना सुखकी कामना करनेवाला बन (कोई गर्भस्थानकी ओर) दौड़ नहीं सकता है।"[1]

जब तक आत्मा-सम्बन्धी प्रेम नहीं छूटता, तब तक (पुरुष अपनेको) दुःखी मानता रहेगा, और स्वस्थ (=चिंता रहित) नहीं हो सकेगा। यद्यपि कोई (अपनेको) मुक्त करनेवाला नहीं है, तो भी ('मैं, मेरा', जैसे) झूठे ख्याल (=आरोप)को हटानेके लिए यत्न करना पड़ता है।[2]

यह (क्षणिक मन शरीर प्रवाहसे) भिन्न आत्माका ख्याल है, जिससे उससे उलटे स्वभाव (=वस्तुओं स्थिरता आदि)में राग (=स्नेह) उत्पन्न होता है।[3]

आत्माका ख्याल (केवल) मोह और वही सारी बुराइयोंकी जड़ (=पापोंका मूल) है।

(यह) मोह सत्काय दृष्टि (=नित्य आत्माकी धारणा) है, मोह मूलक ही सारे मल (=चित्त विकार) हैं।

धर्मके माननेवालोंके लिए भी आत्मवाद (=सत्काय-दृष्टि) बुरी चीज है, इसे बतलाते हुए कहा है—

जो (नित्य) आत्माको मानता है, उसको 'मैं' इस तरहका स्नेह (=राग) सदा बना रहता है, स्नेहसे सुखकी तृष्णा करता है, और तृष्णा दोषोंको ढाँक देता है। (दोषके ढँक जानेसे वहाँ वह गुणोंको देखता है और) गुणदर्शी तृष्णा करते हुए 'मेरा (सुख)' ऐसी (चाह करते) उस(की प्राप्ति)के लिए साधनों (=पुनर्जन्म आदि)को ग्रहण करता है।

---

[1] प्र० वा० २।२०१ २ [2] वहीं २।१९१ ९२
[3] प्र० वा० १।१९५ [4] वहीं २।१९६ [5] वहीं २।२१३

इस सत्काय-दृष्टिसे जब तक आत्माकी धारणा है, तब तक वह संसार (=भवसागर)में है। आत्मा (=मेरा) जब है, तभी पराए (=पर)-का ख्याल होता है। मेरा-परायाका भेद जब (पुरुषमें) आता है तो लेना, छोड़ना (=राग, द्वेष) होता है, इन्हीं (लेन छोड़ने)से बँध सारे दोष (=ईर्ष्या आदि) पैदा होते हैं। जो नियमसे आत्मामें स्नेह करता है, वह आत्मीय (=सुख साधना)से रागरहित नहीं हो सकता।[1]

आत्माकी धारणा सर्वथा अपने (व्यक्तित्वमें) स्नेहको दृढ़ करती है। आत्मीयोंके प्रति स्नेहका बीज (जब मौजूद है तो वह दोषोंको) वैसा ही कायम रखेगा।[2]

'(वस्तुतः आत्मा नहीं नैरात्म्य ही है,) किन्तु नैरात्म्यमें जब (गलतीसे) आत्म-स्नेह हो गया, तो उससे (=आत्मस्नेहसे कि जिसे वह आत्मीय सुख आदिकी चीज समझता है उसमें) जितना भी लाभ हो, उसके अनुसार क्रिया-परायण होता है। (—बड़ा लाभ न होनेपर छोटे लाभको भी हासिल करनेसे बाज नहीं आता जैसे) मत्तकासिनी (=मत्त गजगामिनी सुन्दरी)के न मिलनेपर (कामुक पुरुष) पशुमें भी कामतृप्ति करता है।''[3]

इस प्रकार नित्य आत्मा युक्तिसे सिद्ध नहीं हो सकता है, और धर्म, परलोक, मुक्तिमें भी उसके माननेसे बाधा ही होती है।

(ग) ईश्वर-खंडन—ईश्वरवादी ईश्वरको नित्य और जगतका कर्त्ता मानते हैं। धर्मकीर्ति ईश्वरके अस्तित्वका खंडन करते हुए कहते हैं—

'जैसे (स्वरूपसे) वह (ईश्वर जगत्‌की सृष्टिके वक्त) कारण वस्तु है वैसे ही (स्वभावसे सृष्टि करनेसे पहिले) वह अकारण भी था। (आखिर स्वरूपसे एकरस होनेसे दोनों अवस्थामें उसमें भेद नहीं हो सकता, फिर) जब वह कारण (माना गया, उसी वक्त) किस (वजह)से (वैसा) माना गया (और) अकारण नहीं माना गया ?

---

[1] प्र० वा० २।२१७-२२० [2] वहीं २।२३५, २३६ [3] वहीं २।२३३

(कार्य और आकार रूपी अवस्थाओंमें परिवर्तन करनेवाला ईश्वर जब कारण कहा जाता है, तो प्रश्न होता है—) नाम (के शरीर)में शस्त्र लगनेसे घाव और औषधके लगानेसे घाव भरना (देखा जाता है)। शस्त्र और औषध क्षणिक होनेसे विकार कर सकते हैं इसलिए उनके लिए यह सम्भव है, किन्तु यदि (नित्य आनन्द निष्क्रिय ईश्वरको कारण माना जाय, तो दिशा आदि) सबसे रहित शून्य ही क्या न किसीकी कारणता मान लेते ?

(यदि कहो कि ईश्वरके सृष्टिके कारक होनेकी अवस्थासे अकारक अवस्थामें विशेषता होती है तो प्रश्न होगा—ऐसा होनेमें उसके स्वरूपमें परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि) स्वरूपमें परिवर्तन हुए बिना (वह कारक नहीं हो सकता और नित्य होनेसे) वह कोई व्यापार (=क्रिया) नहीं कर सकता। और (साथ ही) जो नित्य है, वह तो अलग नहीं (सदा वहाँ मौजूद) है (फिर उसकी सृष्टि रचना-संबंधी) सामर्थ्यको आरम्भ यह समझना मुश्किल है (कि सदा अपनी उसी सामर्थ्यके रहते भी वह उस एक समय ही उत्पत्ति कर सकता है दूसरे समय नहीं)।

जिन (कारणों)के होनेपर जो (कार्य) होता है, उन (कारणों) से अन्यको उस (कार्य)का कारण माननेपर (कारण ढूँढ़ते वक्त ईश्वर तक ही जाकर थम जाना नहीं पड़ेगा बल्कि) सर्वत्र कारणोंका खातमा ही नहीं होगा (ईश्वरके आगे भी और तथा उसके आगे और कारण ढूँढ़ने पड़ेंगे।)

(कारण वही होता है जिसके स्वरूपमें कार्यके उत्पादनके समय परिवर्तन होता है) भूमि आदि अंकुर पैदा करनेमें कारण अपने स्वरूप परिवर्तन करते हुए होते हैं क्योंकि उन (=भूमि आदि)के संस्कारसे अंकुरमें विशेषता देखते हैं। (ईश्वर अपने स्वरूपमें परिवर्तन किए बिना कारण नहीं बन सकता और स्वरूप-परिवर्तन करनेपर वह नित्य नहीं रह सकता)।[1]

---

[1] प्र० वा० २।२१ २५

ईश्वरवादी ईश्वर सिद्ध करनेके लिए इस एक जबदस्त युक्ति समझते है—संनिवेश (=खास आकार प्रकार)की वस्तुको देखनेपर कर्त्ताका अनुमान होता है जैसे संनिवेशवाले घडेको देखकर उसके कर्त्ता कुम्हारका अनुमान होता है। इसका उत्तर देते हुए धर्मकीर्ति कहते है—

'किसी वस्तु (=घट)के बारेमें (पुरुषकी उपस्थितिमें संनिवेशका होना यदि) प्रसिद्ध है तो उसके ऐसे शब्द (=संनिवेश पुरुषपूर्वक होता है)की समानतामें (कुम्हारकी तरह ईश्वरका) अनुमान करना ठीक नहीं जैसे कि (एक जगह कहीं) पीले रगवाले धुएँको देखकर आपने आगका अनुमान किया और फिर सभी जगह पीले रगको देखकर आगका अनुमान करते चले। यदि ऐसा न माने तब तो चूँकि कुम्हारने मिट्टीके किसी घडे आदिको बनाया इसलिए दीमकोंके टीलेको कुम्हारकी ही कृति सिद्ध करना होगा।'[1]

पहिले सामग्रीकारणवादके बारेमें कहते वक्त धर्मकीर्त्ति बतला चुके है, कि कोई एक वस्तु कार्यको नहीं उत्पन्न करती अनेक वस्तु मिलकर अर्थात् कारण-सामग्री कार्य करनेमें समर्थ होती है।

(२) न्याय-वैशेषिक खंडन—वैशेषिक और न्याय-दर्शनमें जगत्को बाहरसे परिवर्तनशील मानते हुए यूनानी दार्शनिकों—खासकर अरस्तूके दर्शन—का अनुसरण करते हुए बाहरी परिवर्तनके भीतर नित्य एकरस तत्त्वों—चेतन और जड मूल तत्त्वों को सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है। बौद्धदर्शन अपवादरहित क्षणिकताके अटल सर्वव्यापी नियमको स्वीकार करते हुए किसी स्थिरता-साधक सिद्धान्तको माननेके लिए तैयार नहीं था इसीलिए हम प्रमाणवार्तिकमें धर्मकीर्तिको मुख्यतः ऐसे सिद्धान्तोंका जबर्दस्त खंडन करते देखते है। वैशेषिकने स्थिरवादी सिद्धान्तके अनुसार अपने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय—छ पदार्थोंको स्वीकृत किया है इनमें कर्म और विशेष ही है जिनके माननेमें बौद्धोंको आनाकानी

[1] वहीं २।१२, १३

नहीं हो सकता था। यद्यपि कर्ता या क्रिया शक्तिमात्रका ही आकार——परमाणुसमूह——स्कन्ध——और हेतु-सामग्री तथा प्रवाह (जिनके बारेमें भाग शब्दप्रमाणपर बहस करते वक्त लिखा)के सिद्धान्तोंको मानते हुए उनको क्षणिकता भी वह स्वीकार करते थे। आत्मा, द्रव्य, गुण आदिको वह शब्दोंके रूपमें नामपर निर्भर व्यवहारमात्रके तौरपर ही मानते थे।

(क) द्रव्य गुण आदिका खंडन——बौद्धोंके परमाणुवाद और क्षणिकवादके परिभाषावाले शब्दोंको ऊपर लिख चुके हैं। उसमें परमार्थ सत्की कसौटी है अर्थ——अर्थक्रिया——का होना है। जिसमें जो कुछ वस्तु सत् है वह अर्थक्रियाके लायक है, जो अर्थक्रियाकारी नहीं है वह वस्तु सत् (=परमार्थसत्) नहीं हो सकता। चित्र और उसके वस्तुओंके बारेमें ऐसा विचार करते हुए वह वस्तुओंको वस्तु नहीं मानते थे, यद्यपि वस्तु से साधारण जनके मनमें स्थिर पदार्थका ख्याल आता है, इसलिए बौद्ध दार्शनिक वस्तुके स्थानमें धर्म या "भाव" शब्दका अधिक प्रयोग करना चाहते हैं। 'धर्म' का मतलब था ... स्थिर सत्यके अर्थमें नहीं, बल्कि विच्छिन्न प्रवाहके उन बिन्दुओंके अर्थमें लिया है जो क्षण-क्षण नष्ट और उत्पन्न होते वस्तुके आकारमें हमें दिखलाई पड़ते हैं। भाव (=होना) का वह इसलिए प्रयोग करते हैं, क्योंकि वस्तु स्थिति हमें यह बात नहीं बल्कि भान का पता देती है——किन्तु स्थिर तत्त्वोंका समूह नहीं है कि हम उसका प्रयोग करें, बल्कि यह उन घटनाओंका समूह है जो प्रतिक्षण घटित हो रही हैं। बौद्धोंकी द्रव्य, गुणकी कल्पना भावके पीछे छिपे विच्छिन्न प्रवाहवाले विचारके विरुद्ध है।

वैशेषिकका कहना है——द्रव्य और गुण दो चीजें (पदार्थ) हैं। जिनमें गुण वह है जो सदा किसी आधारपर रहता है, गंधको हमेशा हम पृथिवी (तत्त्व)के आधारपर पाते हैं, रसको जल (तत्त्व)के आधारपर। उसी तरह जहाँ-जहाँ हम द्रव्य पाते हैं, वहाँ वहाँ उसके आश्रय——गुण——भी पाए जाते हैं, जहाँ जहाँ पृथ्वी (तत्त्व) मिलता है, वहाँ-वहाँ उसका आश्रय गुण गंध भी मिलता है। इस तरह गुणके लिए कोई आधार होना चाहिए यह

ख्याल हमें द्रव्यकी सत्ता स्वीकार करनेके लिए मजबूर करता है, और द्रव्य सदा अपने आश्रय गुणोंके साथ रहता है, यह ख्याल हमें गुणकी सत्ताको स्वीकार करनेके लिए मजबूर करता है। बौद्धोंका कहना है—प्रकृति इस द्रव्य गुणके भेदको नहीं जानती, यह तो हम समझनेकी आसानीके लिए अलग करके कहते हैं, जिस तरह प्रकृति दस आमोंमें एकको पहिला, एकको दूसरा—इस तरह नंबर देकर हमारे सामने उपस्थित नहीं करती, हर एक आम एक दूसरेसे भिन्न है—बस वह इतना ही जानती है। **भाव** प्रतिक्षण विनष्ट हो रहे हैं, **भावोंके** प्रवाहकी उस तरह की (प्रतिक्षण विनाशसे युक्त) उत्पत्तिसे (सिद्ध होता है कि यह उत्पत्ति सदा) से हेतुसे (=कारण या पूर्ववर्ती भावके होनेपर) होती है, इससे आश्रय (=आधार है, सिर्फ इसी अर्थमें लेना चाहिए कि हर एक भावकी उत्पत्तिके पहिले भाव प्रवाह मौजूद रहता) । इससे भिन्न अर्थमें (आश्रय, आधार या द्रव्यका मानना) अयुक्त है।'[1]

जैसे जलका आधार घड़ेको मानते हैं, उसी तरह गंधका आधार पृथिवी (-तत्त्व) है, यह कहना गलत है, जल आदिके लिए आधार (की जरूरत) हो सकती है, क्योंकि (गतिशील जलके) गमनका (घड़ेसे) प्रतिबंध होता है। **गुण सामान्य** (=जाति) और कर्म (तो तुम्हारे मतमें गतिरहित हो द्रव्यके भीतर रहते हैं, फिर उस) गतिहीनोंका आधार लेकर क्या करना है?'[2]

इस तरह आधारकी कल्पना गलत साबित होनेपर आश्रय गुण आदिका पृथक् पदार्थ होना भी गलत ख्याल है। गुण सदा द्रव्यमें रहता है, अर्थात् दोनोंके बीच **समवाय** (=नित्य) संबंध है, तथा द्रव्य गुणका समवायी (=नित्य संबंध रखनेवाला) कारण है, यह समवाय और समवायी कारणका ख्याल भी पूर्व-खंडित द्रव्य-गुणकी कल्पनापर आधारित होनेसे गलत है।

---

[1] प्र० वा० २।१६७   [2] प्र० वा० २।१६८

(ख) सामान्यका खंडन—गाय कहनेसे जब हम उनका भेद, मान भविष्यकी व्यक्तियोंका विचार करते हैं तो वह अनगिनत मालूम होती हैं। इन अनगिनत गाय-व्यक्तियोंमें एक बात हम सभी पाते हैं, वह है गाय पन (=गोत्व) जो गाय व्यक्तियोंके मरने पैदा होनेपर भी हर नई उत्पन्न गायमें पाया जाता है। अनेक व्यक्तियोंमें एकसा पाया जानेवाला यह धर्म सामान्य या जाति है जो नित्य—सर्वकालीन—है। यह है सामान्यकी सिद्ध करनेमें वादियोंकी युक्ति जिसके बारेमें पहिले लिख चुकनेपर भी प्रकरणके समझनेमें आसानीके लिए हम यहाँ फिर कहना पड़ा है।

अनात्मवादके प्रकरणमें हम कह चुके हैं कि सामान्य अनुमानकी विषयके साथ ही सामान्य वस्तु-सत् नहीं बल्कि कल्पनापर निर्भर है। इस तरह जहाँ तक व्यवहारका संबंध है उसके माननेसे वह इंकार नहीं करते इसीलिए वह कहते हैं—

बाहरी अर्थ (=पदार्थ)की अपेक्षाके बिना जैसे (अर्थ पदार्थमें) उसे वाचक मान वक्ता जिस शब्दको नियत करते हैं वह शब्द वैसा (ही) वाचक होता है।

(एक स्त्रीके लिए भी संस्कृतमें बहुवचन) दारा (छ नगरोंके एक वचनवाले अर्थके लिए संस्कृतमें एक वचन) षण्णगरी (छ नगर) कहा जाता है जैसे (शब्द-रूपों)में एक वचन और बहुवचनकी व्यवस्थाका क्या कारण है? अथवा (सामान्य अनेक व्यक्तियोंमें एक होता है आकाश तो सिर्फ एक है फिर) उसका स्वभाव नभपन (=आकाशपन) यह सामान्य क्यों माना जाता है?

इसका अर्थ यही है शब्दोंके प्रयोगमें वस्तुकी पर्वाह नहीं करके वक्ता बहुत जगह स्वतंत्रता दिखलाते हैं गायपन आदि इसी तरहकी उनकी स्वतंत्र कल्पनायें हैं जिनके ऊपर वस्तुस्थितिका फैसला करना गलत होगा। (सर्वथा एक दूसरेसे) भिन्नता रखनेवाले भावों (=वस्तुओं)का

---

¹ प्र० वा० १।६८ ६९

गायका एक अर्थ (=गायपन) जतलानेवाली (बुद्धि=ज्ञान पैदा होती है, जिस)के द्वारा उन (भावों)का (वास्तविक) रूप ढँक (=संवृत हो) जाता है (इसलिए ऐसे ज्ञानको) संवृति (=वास्तविकताको ढाँकनेवाली) कहते हैं।

ऐसा संवृतिसे (भावों=गायों)का नानापन ढँक गया है, (इसीलिए) भाव (=गाय आपसमें) स्वयं भिन्नता रखते हुए (भी) किसी (कल्पित) रूपमें अभिन्नता रखनेवाले से जान पड़ते हैं।

'उस (संवृति या कल्पनावाली बुद्धि)के अभिप्रायको लेकर सामान्यको सत् कहा जाता है, क्योंकि परमार्थमें वह अ-सत् (और) उस (संवृति बुद्धि)के द्वारा कल्पित है।[1]

गायपन एक वस्तु सत् है जो सभी गाय व्यक्तियोंमें है, यह ख्याल गलत है, क्योंकि—

"व्यक्तियाँ (भिन्न भिन्न गाय एक दूसरेमें) अनुगत नहीं हैं (और) न उन (भिन्न गाय व्यक्तियों)में (कोई) अनुगत होनेवाला (पदार्थ) दीख पड़ता है (जो दीखती है वह भिन्न भिन्न गाय-व्यक्तियाँ हैं)। ज्ञानसे अभिन्न (यह सामान्य) कैसे (एकसे) दूसरे पदार्थको प्राप्त हो सकता है ?

इसलिए (अनेक) पदार्थोंमें एकरूपता (=सामान्य)का ग्रहण झूठी कल्पना है, इस (झूठी कल्पना)का मूल (व्यक्तियोंका) पारस्परिक भेद है जिसके लिए (गोत्व आदि) संज्ञा (=शब्दका प्रयोग होता) है।[2]

'यदि (संज्ञा शब्दों द्वारा पदार्थोंका) भेद (मालूम होता है तो इतना ही तो शब्दोंका प्रयोजन है, फिर) वहाँ सामान्य या किसी दूसरी (चीजकी कल्पनासे) तुम्हें क्या (लाभ) है ?"[3]

वस्तुतः गायपन आदि सामान्यवाची शब्द विद्वानोंने व्यवहारके सुभीतेके लिए बनाए हैं।

---

[1] प्र० वा० १।७० ७२　[2] प्र० वा० १।७३ ७४　[3] वहीं १।६६

एक (तरहके) कार्य (पानेवाले) भावों (=वस्तुओं)में उनके कार्योंके जतलानेके लिए संकेत करनेवाला शब्द (का इस्तेमाल होता है और) दूध तथा श्रम आदि क्रियाओंको करानेवाली गायोंके उनके कार्योंके जतलानेके लिए संकेत करनेवाली सम्मति, किन्तु गाय-व्यक्तियोंमें भासित होनेसे हर व्यक्तिकी अलग अलग संज्ञा (=नाम) बहुत बढ़ जाता, (वह) याद भी नहीं किया जा सकता था और (प्रयोग) कठिन भी होता इसलिए (व्यवहार करने) वालोंने उन (गायों)के आम पर समान विचारसे एक शब्द (=गाय नाम) प्रयुक्त किया।[1]

फिर प्रश्न होता है, सामान्य (=जाति) जिसे नित्य कहते हैं, वह एक [illegible] गमनशील ' यदि है। यह एकदेशी सर्वत्र [illegible] रखनेवाला सामान्य-जातिमें भी रहता है तो—

(एक गायमें स्थित सामान्य उस व्यक्तिके मरने तथा दूसरे गायके उत्पन्न होनेपर पहिलेसे दूसरेमें) न जाता, और न उस (व्यक्तिकी उत्पत्ति वाले देश)में (पहिलेसे) था (क्योंकि वह सिर्फ व्यक्तिमें ही रहता है) और (व्यक्तिकी उत्पत्तिके)बाद (वहाँ जाता) (क्योंकि सामान्यके बिना व्यक्ति हो नहीं सकता), यदि (सामान्यको) अंशवाला (मानते हो, जिसमें कि उसका एक अंश=भाग पहिली व्यक्तिमें और दूसरा पीछे उत्पन्न होनेवाली व्यक्तिमें संबद्ध हो)। और (अंशरहित माननेपर यह नहीं कह सकते कि वह) पहिलेवाले (उत्पन्न होकर नष्ट होते) आधारको छोड़ता है (क्योंकि ऐसा माननेपर स्थानके अन्तरको नित्य सामान्य जब पार करेगा उस वक्त उसे व्यक्तिसे अलग भी मानना पड़ेगा इस प्रकार बेचारे सामान्यवादीके लिए) मुसीबतोंका अन्त नहीं।

दूसरी जगह वर्तमान (सामान्य)का अपने स्थानसे बिना हिले उस (पहिले स्थान)में दूसरे स्थानमें जन्मनेवाले (पिंड)में मौजूद होना युक्तियुक्त बात नहीं है।

---

[1] प्र० वा० १।१३६-१४०

'जिस (देश) में वह भाव (=सारा गाय) वर्तमान है उस (देश=स्थान) में (सामान्य गायपन) संबद्ध भी नहीं होता (क्योंकि तुम मानते हो कि सामान्य देशमें नहीं व्यक्तिमें रहता है), और (फिर कहते हो देशमें रहनेपर भी उस) देशवाले (पदार्थ—गाय-व्यक्ति) में व्याप्त होता है यह तो कोई भारी चमत्कार सा है।[1]

"यदि सामान्यको (एक देशी नहीं) सर्वव्यापी (सर्वज्ञ) मानते हो, तो एक जगह एक गाय-व्यक्ति द्वारा व्यक्त कर दिए जानेपर उसे सर्वत्र दिखाई देना चाहिए (क्योंकि सर्वव्यापी सामान्यमें) भेद न होने (=एक होने) से व्यक्तिकी अपेक्षा नहीं।

' (और ऊपरकी बातसे यह भी सिद्ध होता है कि गायपन सामान्य सर्वत्र है। फिर वह दिखलाई देता क्यों नहीं यह पूछनेपर आप कहते हैं—क्योंकि उसके लिए व्यंजक (=प्रकट करनेवाली) व्यक्ति—गाय—की जरूरत है। इसका अर्थ हुआ—) (पहिले) व्यंजकके ज्ञान हुए बिना व्यंग्य (=सामान्य) ठीकसे नहीं प्रतीत होता। तब फिर सामान्य (=गायपन) और सामान्यवान् (=गायपनवाली गाय-व्यक्ति) के संबंधमें उलटा क्यों मानते हो।—अर्थात् गायपन सामान्य गाय व्यक्तिकी उत्पत्तिसे पहिले भी मौजूद था?"[2]

अतएव सामान्य है ही नहीं—

"क्योंकि (व्यक्तिमें भिन्न) केवल जातिका ज्ञान नहीं होता, और (गाय) व्यक्तिके ग्रहणके वक्त भी उसके (नामवाची) शब्दरूप ('गाय') से भिन्न (कुछ) नहीं दिखाई देता।"

इसलिए सामान्य अ-रूप (=अ-वस्तु) है, (और वह) रूपों (=गाय व्यक्तियों) के आधारपर नहीं कल्पित किया गया है बल्कि (वह व्यक्तियोंकी क्रिया-संबंधी) उन उन विशेषताओंके जतलानेके लिए शब्दों द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

---

[1] प्र० वा० ३।१५४-५८　　[2] प्र० वा० ३।४६

एक (सामान्य)में भासित होना (=रूप)का दर्शन अथवा भासमान रूपमें भेद (=पृथक् व्यक्ति)का ग्रहण भ्रान्ति (ज्ञान) है (और यह भ्रान्ति) [illegible] (=[illegible]) [illegible] उत्पन्न हुई है।

चार पदार्थों (=विषयों या व्यक्तियों)का रूप (अलग भिन्न व्यक्ति) है, किन्तु वह भी उसी समान सा (=सामान्य) और जिस (सामान्य)के विषयमें ये (नाना-व्यक्ति-व्यापी अपने स्वभावको) कहते हैं, उनका कोई भी रूप (=वास्तविक रूप) नहीं। (वस्तुतः व्यवहारके सुभीतेके लिए वह किए गए हैं)।[1]

(ग) अवयवीका खंडन—हम देखते आए हैं कि इस प्रकार अवयवों (=अंगों)के भीतर किन्तु उनसे अलग एक स्वतंत्र पदार्थ—अवयवी (=अंगी)—को माना है। धर्मकीर्ति सामान्यकी भाँति अवयवीका व्यवहार (=बर्ताव)-मात्र माननेके लिए तैयार हैं किन्तु अवयवोंसे पर अवयवी एक परमार्थ सत् है, इसे वह नहीं स्वीकार करते। बुद्धि (=ज्ञान) जिस आकारकी होती है, वही उस (=बुद्धि)का ग्राह्य कहा जाता है।[2] इस बुद्धि (=ज्ञान)से अवयवोंके स्वरूपका ही दर्शन है, उससे हम अवयवीका पता नहीं लगता। भिन्न भिन्न अवयवोंके प्रत्यक्ष ज्ञानोंको एकत्रित कर कल्पनाके सहारे हम अवयवीकी मानसिक सृष्टि करते हैं, जो कि कल्पना छोड़ वास्तविक वस्तु नहीं हो सकता। यदि कहो कि अवयवीका भी ग्रहण होता है तो सवाल होगा—

"एक ही बार अपने अवयवोंके साथ उस अवयवीका ग्रहण क्यों नहीं होता? [illegible] (सींग) आदि (अवयवों)के न देखनेपर गाय (=अवयवी) नहीं देखी जा सकती।"[3]

जिस तरह वाक्य पढ़ते वक्त पहिले एक एक अक्षरके पढ़नेके साथ वाक्यका अर्थ हमें नहीं मालूम होता जाता बल्कि एक एक अक्षर हमारे

---

[1] प्र० वा० २।३१-३२ [2] प्र० वा० ३।२२८ [3] प्र० वा० ३।२२५

ण अनेक (=बीज, पानी मिट्टी आदि) एव (प्रधान=प्रकृति) मे एक काय (अकुर) को करते ह तो (वही) स्वरूप (=प्रधान) ")मे (उसे ही " जसे कि वह दूसरी जगह), इसलिए(दूसरे) (कारण पानी मिट्टी आदि) फजूल ह ।

"ी, मिट्टी आदि सहकारी कारणोंके न होनेपर बीजके रहनेसे) न—मौलिक भौतिक तत्व नो) अ-भिन्न—(ह) और (वह आदि बन जानपर भी अपन पहिर) स्वरूपका नहीं छोडता " नित्य ह, और) विशेष (=पानी मिट्टी आदि) नाशमान " , "ात ह) एव (सहकारी जल या मिट्टी)के न होनेपर (भा) र) नहीं होना इससे (पता लगता ह कि) वह (अकुर, नहि विशेषो (=पानी मिट्टी आदि)से उत्पन्न होता ह ।

वाला भाव (=पदार्थ) वही ह जो कि अर्थक्रियाका कर (उसे अर्थक्रिया करनेवाले ह मिट्टी, पानी आदि विशेष) और भिन्न होनसे काय=अकुरसे) एक रूप नहीं होते, और जिसे " होना (कहते ह) उस (प्रधान)से (अकुर) कायका , क्योंकि सत्कार्यवादके अनुसार वह तो जसा अपन स्वरूपमे (=) आदि बननेपर भी ह) ।

६ ।ानकी हर हालतमे एक रूप माननेपर बीज मिट्टी, पानी और एक रूप ह फिर एक बीजके रहनेसे मिट्टी पानी " भी अकुरकी उत्पत्तिमे कोई हज नहीं होना चाहिए, "भाव (देखते ह कि) उस (कारण) स्वरूपसे (बीज, "ते आपसमे) भिन्न होनेपर कोई (=बीज मिट्टी, आदि "ाता ह, दूसरे (आग, सुवर्ण आदि) नहीं, यदि (बीज आदि विशेषोंका) अभेद होता, तो (अकुरका आगमे) ६ आदिसे) उत्पत्ति (होना) एक साथ होती।"

एक मासा भर सोना अलग तौलनेपर भले ही एक मासा हो, किन्तु जब १५ मासा सोनेको गलाकर एक डला तयार किया गया तो उसमें १६ मासेसे १६ टकडोंसे अतिरिक्त उत्पन्न बना अवयवी भी आ मौजूद हुआ है इसलिए सब वजन १६ मासासे ज्यादा होना चाहिए।

(संख्या आदिका खंडन)—नैयायिकने संख्या, संयोग, कर्म, विभाग, आदि गुणोंको वस्तुसत्के तौरपर माना है जिन्हें कि धर्मकीर्ति व्यवहार (=संवृति) मात्र भर माननेके लिए तैयार है और कहते हैं—

संख्या संयोग कर्म आदिका भी स्वरूप उनके रखनेवाले (द्रव्य)के स्वरूपसे (या) भिन्न साथ रहनेसे बुद्धि (=ज्ञान)में नहीं भासित होता। (इसलिए भासित न होनेपर भी उन्हें वस्तुसत् मानना गलत है)।

शब्द ज्ञानमें (एक घट इस) कल्पित प्रथम वस्तुओंके (पारस्परिक) भेदका अनुसरण करनेवाले विकल्पके द्वारा (संख्या आदिका प्रयोग उसी तरह किया जाता है) जैसे गुण आदिमें (=चौबीस 'एक' कही जाती है' यहाँ एक भी गुण और २४ भी गुण किन्तु गुणमें गुण नहीं हो सकनेसे एक संख्याके साथ वहाँ परिमाणका प्रयोग नहीं होना चाहिए) अथवा नष्ट या अनुत्पन्न न पैदा हुओंमें (एक, दो, बहुत मर गए) या पैदा होंगे का कहना। निश्चय ही जो एक, दो संख्या मर या न पैदा-हुए-जैसे शास्त्रोंके आधारको आधेय—गुण—है, वह कल्पित छोड़ वास्तविक नहीं हो सकता।[1]

(३) सांख्य दर्शनका खंडन—सांख्य-दर्शन चेतन और जड़ दो प्रकारके तत्त्वोंको मानता है। जिनमें चेतन—पुरुष—तो निष्क्रिय साक्षी मात्र है हाँ उसके संपर्कसे जड़तत्त्व—प्रधान—सारे जगत्को अपने स्वरूप परिवर्तन द्वारा बनाता है। सांख्य प्रधानमें भिन्नता नहीं मानता और साथही सत्कार्यवाद—अर्थात् कार्यमें पहिलेसे ही पूर्वरूपेण कारणके मौजूद होने—को स्वीकार करता है। धर्मकीर्ति कहते हैं—

---

[1] प्र० वा० २।१९२

'अगर अनन्य (=बीज पानी मिट्टी आदि) एक (प्रधान=प्रकृति) स्वरूप होते एक साथ (अंकुर)को करते हैं तो (वही) स्वरूप (=प्रधान) एक (बीज)में (वैसे ही है, जैसे कि वह दूसरी जगह), इसलिए(दूसरे) सहकारी (कारण पानी मिट्टी आदि) फजूल है।

"(पानी मिट्टी आदि सहकारी कारणोंके न होनेपर बीजके रहनेसे) वह (प्रधान—मौलिक भौतिक तत्व तो) अभिन्न—(है) और (वह पानी, मिट्टी आदि बन जानेपर भी अपने पहिले) स्वरूपको नहीं छोड़ता (क्योंकि वह नित्य है, और) विशेष (=पानी मिट्टी आदि) नाशमान हैं (किन्तु हम देखते हैं) एक (सहकारी जल या मिट्टी)के न होनेपर (भी) कार्य (=अंकुर) नहीं होता इससे (पता लगता है कि) वह (अंकुर, प्रधानसे नहीं बल्कि विशेषों (=पानी मिट्टी आदि)से उत्पन्न होता है।

'परमार्थवाला भाव (=पदार्थ) वही है, जो कि अर्थक्रियामें कर सकता है। (ऐसे अर्थक्रिया करनेवाले हैं मिट्टी पानी आदि विशेष) और वह (परस्पर भिन्न होनेसे कार्य=अंकुरमें) एक रूप नहीं होते, और जिस (तुम) एक रूप मानते (कहते हो) उस (प्रधान)से (अंकुर) कार्यका सम्भव नहीं (क्योंकि सत्कार्यवादके अनुसार वह तो, जैसा अपने स्वरूपमें है वैसा ही मिट्टी आदि बननेपर भी है)।

'(और प्रधानको हर हालतमें एक रूप माननेपर बीज मिट्टी पानी सभी प्रधान मय और एक रूप हैं फिर एक बीजके रहनेसे मिट्टी पानी आदिके न होनेपर भी अंकुरकी उत्पत्तिमें कोई हर्ज नहीं होना चाहिए किन्तु हम) यह स्वभाव (देखते हैं कि) उस (कारण) स्वरूपसे (बीज, मिट्टी पानी आदिके आपसमें) भिन्न होनेपर कोई (=बीज, मिट्टी, आदि अंकुरका) कारण होता है दूसरे (आग सुवर्ण आदि) नहीं, यदि (बीज मिट्टी, आग, पानी आदि विशेषोंका) अभेद होता, तो (अंकुरका आगम) नाश (और बीज आदिसे) उत्पत्ति (दोनों) एक साथ होती।"[1]

---

[1] प्र० वा० ३।१६६ १७०

(जो अर्थक्रिया करनेवाला[1] है) उसीको कार्य और कारण कहते हैं, जो स्व-लक्षण (=वस्तुसत्) है (और) उसीके त्याग और प्राप्तिके लिए पुरुषोंकी (सारी कोशिशों) प्रवृत्ति होती है।

जब (सांख्य-सम्मत अव्यक्त प्रकृति तत्त्व प्रधानको सभी व्यक्ति तत्त्वों—मिट्टी, बीज, पानी आदिमें) अभिन्नताके एक होनेपर भी सभी (बीज पानी आदि प्रधानमय तत्त्व) सभी (कार्यों—अंकुर, घड़ा आदि)के (उत्पादनमें) साधन हैं। तो इस तरह पूर्वपक्ष कारण (शक्ति प्रधानरूप या भौतिक तत्त्वों) सभी उत्तर कार्यों (मिट्टी, बीज पानी आदि आदि)में भिन्नताके एक होनेपर भी सभी (कारण) सभी (कार्यों)के (उत्पादनमें) साधन न हों। क्यों?

(यदि तुम्हें सत्कार्यवादके विरुद्ध कारणसे कार्यको) भिन्न माननेपर (सब दोष हैं) तो कोई भी (वस्तु) अपना विनाश (=धर्म)की वजहसे (किसी एक कार्यको) कारण हो सकती है। किन्तु (सत्कार्यवादके अनुसार कारणसे कार्यको) अभिन्न माननेपर (सभी वस्तुएँ अभिन्न हैं, फिर उनमेंसे) एकका (कर्ता) क्रिया (=कार्य)का करना और (दूसरा) न कर सकना (यह तो परस्पर) विरोधी (बात) है।[2]

इस प्रकार सांख्यका सत्कार्यवाद—मूलतः भिन्न और भिन्नकी वस्तुएँ कारणसे कार्य अवस्थामें कुछ भेद नहीं रखता (प्रधान=पानी, प्रधान=आग, प्रधान=पानी, प्रधान=मिट्टी)—गलत है और बौद्धोंका असत् कार्यवाद ही ठीक है जिसके अनुसार कि—कारण एक नया अनव... और हर कार्य अपने कारणसे बिलकुल भिन्न चीज, यद्यपि हर नया उत्पन्न होनेवाला कार्य अपने कारणसे सादृश्य रखता है जिसमें 'यह वही है' का

---

[1] अर्थक्रियाकारी=अर्थक्रिया-समर्थ-कार्यके उत्पादनमें समर्थ, क्रियाके उत्पादनमें समर्थ, सार्थक क्रिया करनेमें समर्थ, सफल क्रिया करनेमें समर्थ, क्रिया करनेमें योग्य, क्रिया कर सकनेवाला—आदि इसके अर्थ हैं।

[2] प्र० वा० १।१७५-१७७

भ्रम होता है।

(४) मीमांसाका खंडन—मीमांसाके सिद्धान्तोंके बारेमें हम पहिले लिख चुके हैं। मीमांसाका कहना है कि प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाण सामने उपस्थित पदार्थ भी वस्तुतः क्या है इसे नहीं बतला सकते और परलोक, स्वर्ग, नर्क, आत्मा आदि जो पदार्थ इन्द्रिय अगोचर हैं उनका ज्ञान करानेमें तो वे बिल्कुल असमर्थ हैं इसीलिए उनका सबसे ज्यादा जोर शब्द-प्रमाण—वेद—पर है, जिसे कि वह अपौरुषेय किसी पुरुष (=मनुष्य देवता या ईश्वर) द्वारा नहीं बनाया अर्थात् अकृत सनातन मानते हैं। बौद्ध प्रत्यक्ष, तथा अगत प्रत्यक्ष अर्थात् अनुमानके सिवा किसी तीसरे प्रमाणको नहीं मानते, और प्रत्यक्ष अनुमानकी कसौटीपर कसनेसे वेद उसके हिंसामय यज्ञ—कर्मकांड आदि ही नहीं बल्कि सभी दूसरी गप्प और पुरोहितोंकी दक्षिणाके लोभसे बनाई बातें गलत साबित होतीं, ऐसी अवस्थामें सभी धर्मानुयायियोंकी भाँति वैदिक पुरोहितोंके लिए मीमांसा जैसे शास्त्रकी रचना करके शब्दप्रमाणको ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण सिद्ध करना जरूरी था। बुद्धसे लेकर नागार्जुन तक ब्राह्मण-पुरोहितोंके जबर्दस्त हथियार बने कर्मकांड और ज्ञानकांडपर भारी प्रहार हो रहा था। युक्तिके सहारे ज्ञानकांडके बचानेकी कोशिश अक्षपाद और उनके भाष्यकार वात्स्यायनने की, जिनपर दिग्नागके कर्कश तर्कोंका प्रहार हुआ, जिससे बचानेकी कोशिश पाशुपताचार्य उद्योतकर भारद्वाज (६०० ई०)ने की, किन्तु धर्मकीर्तिने उद्योतकरकी ऐसी गति बनाई कि वाचस्पति मिश्रको उद्योतकरकी बूढ़ी गायके उद्धारके लिए कमर बाँधनी पड़ी।

किन्तु युक्तिवादियों (=तार्किकों)की सहायतासे वैदिक ज्ञान—और कर्म-कांडके ठीकेदारोंका काम नहीं चल सकता था इसलिए बादरायणको ज्ञानकांड (=ब्रह्मवाद) और जैमिनिको कर्मकांडपर कलम उठानी पड़ी। उनके भाष्यकार शबर असंगके विज्ञानवादसे परिचित थे। दिग्नागने अक्षपाद और वात्स्यायनकी भाँति शबर और जैमिनिपर भी जबर्दस्त चोटें कीं, जिसपर नैयायिक उद्योतकरकी भाँति मीमांसक कुमारिल भट्ट मैदानमें आए।

धर्मकीर्ति उद्योतकरपर जिस तरह प्रहार करते हैं, उससे भी निष्ठुर प्रहार उनका कुमारिलपर है। वेद प्रमाणके अतिरिक्त मीमांसक प्रत्यभिज्ञाको भी एक जबर्दस्त प्रमाण मानते हैं, हम इन्हीं दोनोंके बारेमें धर्मकीर्तिके विचारोंको लिखेंगे।

(क) प्रत्यभिज्ञा-खंडन—दाशरथ (=राम)को सामने देखकर 'यह वही (राम) है' ऐसी प्रत्यभिज्ञा (=प्रामाणिक स्मृति) स्पष्ट मालूम होनेवाला (=स्पष्टावभास) प्रत्यक्ष प्रमाण है—मीमांसकोंकी यह प्रत्यभिज्ञा है। बौद्ध इस प्रत्यभिज्ञाको 'यह वही' की कल्पनापर आश्रित होनेसे प्रत्यक्ष नहीं मानते और 'स्पष्ट मालूम होनेवाली' के बारेमें धर्मकीर्ति कहते हैं—

'(काटनेपर फिरसे जमे) केशों (मदारीके नये नये निकाले) गोलों, तथा (क्षण-क्षण नष्ट हो नये उत्पन्न होनेवाले) दीपोंमें भी (यह वही है यह) स्पष्ट भासित होता है (किंतु क्या इससे यह कहना सही होगा कि केश—गोला—दीप वही है?')।

जब भेद (प्रत्यक्ष) होते (भी) वैसा (=एक होनेके भ्रमवाला अभेद) ज्ञान कैसे प्रत्यक्ष हो सकता है? इसलिए प्रत्यभिज्ञाके ज्ञानसे (केश आदिकी) एकताका निश्चय ठीक नहीं है।[1]

(ख) शब्दप्रमाण-खंडन—यथार्थ ज्ञानको प्रमाण कहा जाता है, शब्दप्रमाणको माननेवाले कपिल कणाद अक्षपाद प्रत्यक्ष अनुमानके अतिरिक्त यथार्थवक्ता (=आप्त) पुरुषके वचन (=शब्द) भी प्रमाण मानते हैं। मीमांसक 'कौन पुरुष यथार्थवक्ता है' इसे जानना असंभव समझते हुए कहते हैं—

(a) अपौरुषेयता फजूल— यह (पुरुष) ऐसा (=यथार्थवक्ता) है या नहीं है, इस प्रकार (निश्चय करानेवाले) प्रमाणके दुर्लभ होनेसे (किसी) दूसरे (पुरुष)के दोषयुक्त (=झूठ) या निर्दोष (=सच्चा यथार्थवक्ता)

[1] प्र० वा० ३।५०३-५०५

होनेका जानना अतिकठिन है।[1]

और फिर—

"(किन्हीं) वचनोंके झूठ होनेके हेतु (ये अज्ञान [illegible] दोष पुरुषमें रहनेवाले हैं, (इसलिए पुरुषवाले=पौरुषेय [illegible] हैं और) अपौरुषेय सत्यार्थ [illegible]।

इसके उत्तरमें धर्मकीर्ति कहते हैं—

"(किन्हीं) वचनोंके सत्य होनेके हेतु (ज्ञान [illegible] गुण पुरुषमें रहनेवाले हैं (इसलिए जो वचन पुरुषके [illegible] हो सकते हैं और जो) पौरुषेय (हैं वही) सत्यार्थ [illegible]।

'(साथ ही शब्दके) अर्थको समझानेका [illegible] अर्थ 'सींग पूंछ-गलकम्बलवाला पिंड' ऐसा) [illegible] पुरुषके ही आश्रयसे रहता (पौरुषेय) है। [illegible] से वचनोंके अपौरुषेय होनेपर भी उनके [illegible]।

"यदि (वही शब्द और अर्थका) संबंध [illegible] आचके संबंधकी भांति उसके स्वाभाविक [illegible] का भी (सारे वक्ताओंको) ज्ञान होना चाहिए। [illegible] वह (संबंध) प्रकट होता है तो (संकेत [illegible] (संबंधको व्यवस्थापित) नहीं कर सकता।

'यदि (वस्तुतः) वचनोंका एक [illegible] होना तो (एक वचनोंको एक छोड़) [illegible]।

"यदि (कहो—एक वचनका) [illegible] वाचक) संबंध (स्वाभाविक) है, तो [illegible] को) सूचना होगी (फिर अग्निष्टोम [illegible] अर्थ 'अग्निष्टोम याग नरकका [illegible]।

अन्य भी तो रचना पुरुषकृत ही मानकर ना भि नाम कृता यथार्थ (शब्द अर्थके सम्बन्ध) पुरुष (-कृत) द्वारा न-स्वीकार (=न प्रकट होनेवाला मानकर रहनेवाले हों) बिल्कुल निरर्थकता होगी (क्योंकि शब्दार्थ सम्बन्धके संकेतको सभी लोग गुरु शिष्य सम्बन्धसे ही जानते हैं, उसमें स्वीकार नहीं किया जा सकता)। यदि (पुरुष द्वारा) स्वीकार (ज्ञान) को स्वीकार करते हो तो यह ठीक गजस्नान हुआ (—वेद वचन और उसके शब्दार्थ सम्बन्धको तो अपौरुषेय माना किंतु शब्दार्थ सम्बन्धके संकेतको पुरुष द्वारा ही स्वीकार मानकर फिर वचनमें मिलनेवाले दोषके सब झंझट होनेमें सन्देह पैदा कर लिया)।[1]

और वस्तुतः जैसा जैमिनि जिस तरह अपौरुषेय सिद्ध करना चाहते हैं, वह बिलकुल गलत है।—

(चूँकि वेद वचनोंके) कर्ता (पुरुष) याद नहीं इसलिए (वह) अपौरुषेय हैं—ऐसा भी (ढीठ) बोलनेवाले हैं। धिक्कार है (जगतमें) व्याप्त (इस जड़ताके) अन्धकारको!!"[2]

अपौरुषेयता सिद्ध करनेके लिए "कोई (कहता है—) 'जैसे यह (आज का विद्यार्थी) दूसरे (पुरुष—अपने गुरु—से) बिना सुने इस वर्ण (=अक्षर) और पद (के) क्रम (वाले वेद)को नहीं बोल सकता, उसी तरह कोई दूसरा पुरुष (=गुरु) भी (अपने गुरु और वह अपने गुरुसे) सुने बिना नहीं बोल सकता और इस प्रकार गुरुओंकी परम्पराका अन्त न होनेसे वेद अनादि, अपौरुषेय सिद्ध होता है।)'[3]

(किंतु ऐसा कहनेवाला भूल जाता है—'(वेदसे भिन्न) दूसरे (पुरुषके) रचित (रघुवंश आदि) ग्रंथ भी (गुरु शिष्यके) सम्प्रदायके बिना (पढ़ा) जाता नहीं देखा गया, फिर इससे तो वह (=रघुवंश) (वेदकी) तरह (अनादि) अनुमान किया जायगा।

[1] प्र० वा० १।२३३ [3] वहीं १।२४२, २४३
[2] वहीं १।२४२, २४३ [4] वहीं १।२४३, २४४

गुरु-शिष्य, पिता-पुत्रके संबंधसे हर एक तरहकी बात मनुष्य सीखता है, और इसीसे मीमांसक वेदको अनादि सिद्ध करते हैं फिर 'ऐसा तो म्लेच्छ आदि (अ-भारतीय जातियों) के व्यवहार (अपनी माँ और बेटीसे ब्याह आदि) तथा नास्तिकोंके वचन (ग्रंथ) भी अनादि (मानने पड़ेंगे। और) अनादि होनेसे (उन्हें भी वेद) जैसे ही स्वतःप्रमाण मानना होगा।'[1]

"फिर इस तरहके अपौरुषेयत्वके सिद्ध होनेपर भी (जैमिनि और कुमारिलको) कौनसा फायदा होगा (क्योंकि इसमें तो सब धान बाईस-पसेरी हो जायगा)।[2]

(b) **अपौरुषेयताकी आड़में कुछ पुरुषोंका महत्त्व बढ़ाना**—वस्तुतः एक दूसरे ही भावसे प्रेरित होकर जैमिनि-कुमारिल एंड-कंपनीने अपौरुषेयताका नारा बुलंद किया है—

'(इस वेद वचनका) यह अर्थ है, यह अर्थ नहीं है यह (वेदके) शब्द (खुद) नहीं कहते। (शब्दका) यह अर्थ तो पुरुष कल्पित करते हैं, और वे रागादि युक्त होते हैं। (उन्हीं रागादिमान पुरुषोंके बीच जैमिनि वेदार्थका तत्त्ववेत्ता है। फिर प्रश्न होता है—) वह एक (जैमिनि ही) तत्त्ववेत्ता है दूसरा नहीं यह भेद क्यों? उस (=जैमिनि)की भाँति पुरुषत्व होते भी किसी तरह किसी (दूसरेको) ज्ञानी तुम क्यों नहीं मानते?'[3]

(c) **अपौरुषेयतासे वेदके अर्थका अनर्थ**—आप कहते हैं चूँकि '(पुरुष) स्वयं रागादिवाला (है इसलिए) वेदके अर्थको नहीं जानता और (उसी कारण वह) दूसरे (पुरुष)से भी नहीं (जाना जा सकता, बेचारा) वेद (स्वयं तो अपने अर्थको) जतलाता नहीं (फिर) वेदार्थकी क्या गति होगी? इस (गड़बड़ी)से तो 'स्वर्ग चाहनेवाला अग्निहोत्र होम करे' इस श्रुतिका अर्थ 'कुत्तेका मांस भक्षण करे' नहीं है इसमें क्या प्रमाण है?

---

[1] प्र० वा० १।२४८, २४९ [2] वहीं १।२४९ [3] वहीं १।३१६

मान [illegible] [illegible] करता है।[1]

(५) अन्तुवाद खंडन—[illegible] की [illegible] और [illegible] दार्शनिक [illegible] इनमें [illegible] विषय का [illegible] मानते। [illegible] [illegible] [illegible] प्रमाण [illegible] [illegible] [illegible] म भी [illegible] [illegible] आदि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि [illegible] देश [illegible] कोई [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मिर्च [illegible] बिल्कुल नहीं—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सर्वास्तिवादी [illegible] पाया, दार्शनिक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कार्य-कारण [illegible] [illegible] [illegible] किसी कारण [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] स्वभाव [illegible] [illegible] उत्पत्ति [illegible] किसी [illegible] अनुसरण करता है। यह कहना है—

(जैसे) [illegible] [illegible] (कार) कारण नहीं उसी तरह (ताराम) [illegible] [illegible] बुद्ध [illegible] कारण ([illegible]) ।[2]

धर्मकीर्ति उत्तर [illegible]—

[illegible] (पहिले) [illegible] (आरम्भ) [illegible], अथवा (जिसमें) [illegible] (जिसमें) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कारण [illegible] जाता है और यह [illegible] (काँटा) [illegible] भी है।[3]

हर उत्पन्न होनेवाली चीजको बिल्कुल नई बौद्ध दार्शनिक भी मानते हैं किन्तु वह उ[illegible] क्षण विनाशी [illegible] प्रवाहको एक [illegible] मानने हैं और इस प्रकार [illegible] वस्तु [illegible] ऐसा [illegible] जिसका पूर्व और पश्चात्-गामी विन्दु

[1]प्रमाणवार्तिक-स्ववृत्ति १।३३७ 'सा स्वामिना 'परेण सगता त्व मि'त्युपालम्भाऽह— पश्यत पुसो विपरीत्य धर्मपत्या प्रत्ययमङ्ग्त्वा स्वनेत्र बुद्बुद्या प्रत्यति ।'

[2]प्र० वा० २।१८० १८१ [3]वहीं २।१८१ १८२

न हो। यही पूर्वगामी विन्दु कारण है और पश्चाद्गामी अपने पूर्वगामी विन्दुके स्वभावसे सादृश्य रखता है। यदि यह नियम न होता तो आम-खानेवाला आमकी गुठली रोपनेके लिए ज्यादा ध्यान न देता। एक भाव (=वस्तु)के होनेपर ही दूसरे भावका होना तथा हर एक वस्तुकी अपने पूर्वगामीके सदृश उत्पत्ति यह हेतुवादको साबित करता है। जबतक विश्वमें सर्वत्र देखा जानेवाला यह उत्पत्ति प्रवाह और सदृश-उत्पत्तिका नियम विद्यमान है, तबतक अहेतुवाद बिलकुल गलत माना जायगा।

(६) जैन अनेकान्तवादका खंडन—जैन-दर्शनके स्याद्वाद या अनेकान्तवादका जिक्र हम कर चुके हैं। इस वादके अनुसार घड़ा घड़ा भी है और कपड़ा भी, उसी तरह कपड़ा कपड़ा भी है और घड़ा भी। इसपर धर्मकीर्तिका आक्षेप है—

'यदि सब वस्तु (अपना और अन्य) दोनों रूप है, तो (दही दही ही है, ऊँट नहीं, अथवा ऊँट ऊँट ही है दही नहीं इस तरह दहीमें) उसकी विशेषताका इन्कार करनेसे (किसीको) 'दही खा' कहनेपर (वह) क्या ऊँटपर नहीं दौड़ता ? (—आखिर ऊँटमें भी दही धर्म ही मौजूद है, जैसे दहीमें)।

"यदि (कहो, दहीमें) कुछ विशेषता है जिस विशेषताके साथ (दही वर्तमान है ऊँट नहीं, तब तो) वही विशेषता अन्यत्र भी है, यह (बात) नहीं रही, और इसीलिए (सब वस्तु) दोनों रूप नहीं (बल्कि अपना ही अपना है, और) पर ही (पर है)।'[1]

धर्मकीर्तिने दर्शनके इस संक्षिप्त विवरणको उनकेही एक पद्यके साथ हम समाप्त करते हैं—

'वेद (=ग्रंथ)की प्रमाणता किसी (ईश्वर)का (सृष्टि)कर्तापन (=कर्तृवाद), स्नान (करने)में धर्म(होने)की इच्छा रखना, जातिवाद (=छोटी बड़ी जाति-पांत)का घमंड, और पाप दूर करनेके लिए

---

[1] प्र० वा० ३।१८०-१८२

(पापनाश) सन्तापना (=उपवास तथा शारीरिक तपस्याएँ करना)— ये पाँच हैं अकल-मारे (लोगों)की मूर्खता (=जड़ता)की निशानियाँ।[1]

---

[1] प्रमाणवार्त्तिक-स्ववृत्ति १।३४२—
"वेदप्रामाण्य कस्यचित कर्तृवाद स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेप।
संतापारभ पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञाना पञ्च लिंगानि जाड्ये॥"

एकोनविंश अध्याय

गौडपाद और शंकर

(सामाजिक परिस्थिति)—धर्मकीर्त्तिके बाद हम शान्तरक्षित, कमलशील, शाक्यश्री जैसे महान् बौद्ध दार्शनिकोंको पाते हैं। वैसे ही ब्राह्मणोंमें भी शंकरके अतिरिक्त और कई नाम उनसे बढ़चढ़कर उदयन, गंगेश जैसे नैयायिक तथा पार्थसारथी जैसे मीमांसक और वाचस्पति श्रीहर्ष एवं रामानुज जैसे वेदान्ती दार्शनिक हुए हैं। इनसे भी महत्त्वपूर्ण स्थान काश्मीरके शैव दार्शनिक वसुगुप्तका है जिन्होंने बौद्धोंके विज्ञानवादको तोड़-मरोड़ बिना, उसे स्पंद करनेवाले (=लहरानेवाले) क्षणिक विज्ञानके रूप ही में ले लिया और बौद्धोंके **आलय विज्ञान** (=समष्टिरूपेण विज्ञान)को शिव नाम देकर अपने दर्शनकी नींव रखी। इन दार्शनिकोंके बारेमें लिखकर हम ग्रंथको और नहीं बढ़ाना चाहते क्योंकि अभी ही इसके पूर्वनियत आकारको हम बढ़ा चुके हैं और एकाध जगह ग्रंथको आरम्भसे ज्यादा विस्तार करनेमें हम इसलिए भी मजबूर थे कि वह विषय हिंदीमें अभी आया नहीं है। अंतमें हम अद्वैत वेदान्तके संस्थापक दार्शनिकोंके बारेमें लिखे बिना भारतीय दर्शनसे विदाई नहीं ले सकते॥

उपनिषद्के दार्शनिकों और बादरायणका क्या मत था इसके बारेमें हम पहिले काफी लिख चुके हैं, वहाँ यह भी जिक्र आ चुका है कि इन दार्शनिकोंके विचारोंको विशिष्टाद्वैती (भूत-चेतन सहित ब्रह्म-वादी) रामानुज अपेक्षाकृत अधिक ईमानदारीसे प्रकट करते हैं, हाँ बादरायणके दोषोंको कुछ बढ़ाचढ़ाकर लेते हुए। बादरायणने खुद दूसरे दर्शनों और विशेषकर बौद्धोंके प्रहारसे उपनिषद्-दर्शनको बचानेके लिए अपना

प्रश्न किया था। न्याय-वैशेषिक 'वाद'[1] बन रहे थे, उनके खिलाफ बौद्धोंका प्रतिवाद[2] जारी हुआ, उपनिषद्-वेदान्तका वाद बन रहा था और उसका प्रतिवाद बौद्ध कर रहे थे। शताब्दियों तक वाद प्रतिवाद चलते रहे, और होता रहा संवाद[3]। एक नगण्य वाद—संवाद—न बना हो, यह भी नहीं कहता था। पुराने न्याय वैशेषिक वादों तथा दिङ्नाग धर्मकीर्तिके प्रतिवादोंसे मिलाकर गंगेश (१२०० ई०) का हम एक नये न्यायशास्त्र (=नव्य-न्याय, तत्त्वचिन्तामणि) के रूपमें संवाद उपस्थित करते देखते हैं, जिसमें पुराने न्याय-वैशेषिकके न केवल प्रमाण वादको दृढ़तर प्रकट किया गया है। वसु-बन्धुके ... ब्राह्मणोंके ईश्वर (=शिव) और बौद्धोंके क्षणिक विज्ञानको लेकर एक अलग संवाद तैयार किया। उपनिषद् और बादरायणकी परम्परामें भी वाद प्रतिवाद किसी अपना प्रभाव जमाए नहीं रह सकते थे, और इसीका फल था गौडपादका बुद्धके अनुचर-ज्ञानियों नागार्जुन और असंगकी शरणमें जाना। गौडपाद असंगको न छोड़ते हुए भी नागार्जुनके शून्यवादके बड़े नजदीक हैं और 'द्विपदांवर' (मनुष्योंमें श्रेष्ठ) बुद्धके प्रति अपनी भक्ति खुले शब्दोंमें प्रकट करते हैं। इनके अनुयायी (प्रशिष्य?) शंकर असंगके नजदीक हैं और साथ ही इस बातकी पूरी कोशिश करते हैं कि कोई उन्हें बौद्ध न कह दे।

शंकर उस युगके बाद पैदा हुए जिसमें कालिदास भवभूति बाण जैसे कवि दिङ्नाग उद्योतकर-कुमारिल धर्मकीर्ति जैसे दार्शनिक हुए। राजनीतिक तौरसे यह उस युगका आरंभ था, जब कि भारत पतन और चिर-दासताको स्वीकार करनेकी जोरसे तैयारी कर रहा था। हर्षवर्धनका केन्द्रीकृत महान साम्राज्य छिन्न भिन्न हो चुका था और पुराने ग्रामीण प्रजातन्त्र और ... (=...) रूपी जातिवादी प्रतिद्वंद्वितामें पलनी सामन्तशाही आन्तरिक विग्रहको प्रोत्साहन तथा बाहरी आक्रमणको निमन्त्रण दे रही थी। हम इस्लामिक दर्शनके प्रकरणमें बतला चुके हैं,

---

[1] Thesis [2] Antithesis [3] Synthesis

कि जब सातवीं सदीके दूसरे पादमें दो पशुपालक जातियाँ—तिब्बती और अरब—अपने निर्भीक, निष्ठुर तथा बहादुर योद्धाओंको संगठित कर एक मजबूत सैनिक शक्ति बन सभ्य किन्तु पुरुषत्वहीन देशोंको परास्त कर उनके मनस्वपर अधिकार जमानेके लिए दौड़ पड़े। गौडपाद और शंकरका समय वह था जब कि अरब और तिब्बतका पहिला जोश खतम हो गया था और स्रोङ-चन-गम्बो (६३० ६९८ ई०) तथा खलीफा उमर (६३४-४४ ई०)की विजयी तलवारें अपने म्यानोंमें चिर विश्राम कर रही थीं और उनके सिंहासनोंको ठि-स्रोङ्-दे-चन् (८०२-४५ ई०) तथा खलीफा मामून (८१३-३३ ई०) जैसे कामके रसिक और दर्शनके प्रेमी अलंकृत कर रहे थे। मामूनके समय अरबी भाषाको जिस तरह समृद्ध बनाया जा रहा था ठि-स्रोङ्-देचनके समय उसी तरह भारतीय बौद्ध साहित्य और दर्शनके अनुवादोंसे तिब्बती भाषा मालामाल की जा रही थी। यही समय था जब कि नालन्दाके दार्शनिक शान्तरक्षित—जो कि वस्तुतः अपने समयके भारतके अद्वितीय दार्शनिक थे—आखिरी उम्रमें तिब्बतमें जा उस बर्बर जातिको दुःखवादी दर्शनके साथ सभ्यताकी मीठी घूँट देकर सुलाना चाहते थे। एक इतना था जरूर कि अरबोंकी तलवारको बगदादमें ठंडी पड़ते देख, उसे उठानेवाले (मराको वासी) बर्बर तथा मध्य-एसियाके तुर्क, मुगल जैसी जातियाँ मिल जाती हैं, क्योंकि वहाँ इस्लामकी व्यवहारवादी शिक्षा तथा एक खास उद्देश्यके लिए जगत् विजय-आकांक्षा थी लेकिन बेचारे स्रोङ-चन्की तलवारके साथ वैसा "खास उद्देश्य" न होनेसे वह किसी दूसरेको अपना भार वहन करनेके लिए तैयार नहीं कर सकी।

बगदादमें अरबी तलवारको जो शान्ति प्रदान किया जा रहा था उसके पुरोहितोंमें कुछ भारतीय भी थे जिन्होंने अरबोंको योग, गणित, ज्योतिष वैद्यकके कितने ही पाठ पढ़ाये किन्तु जैसा कि हमने अभी कहा वह शान्त नहीं हुई उसने सिर्फ हाथ बदला और किसी अरबकी जगह महमूद गज़नवी और मुहम्मद गोरी जैसे तुर्कोंके हाथमें पड़कर भारतको भी अपने पंजेमें ले दबोचा।

यह वह समय था जब कि भारतमें तंत्र-मंत्रका जबर्दस्त प्रचार हो रहा था और राजा धर्मपाल (७६८-८०९)के समकालीन सरहपाद (८०० ई०) जैसे तांत्रिक सिद्ध अपनी सिद्धियों और उनसे बढ़कर अपनी मोहक हिन्दी कविताओंसे जनता और शासकवर्गका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। शताब्दियोंसे धर्म सदाचारके नामपर "मानव"की अपनी सभी प्राकृतिक भूखों—विशेषकर यौन सुखों—के तृप्त करनेमें बाधा-पर-बाधा पहुँचाई जाती रही। ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय निग्रहके यशोगान, दिखावा तथा कीर्ति प्रलोभन द्वारा भारी जन-संख्याको इस तरहके अप्राकृतिक जीवनको स्वीकार करनेके लिए मजबूर किया जा रहा था। इसीका नतीजा था, यह तंत्र-मार्ग जिसने मद्य मांस मत्स्य मैथुन मुद्रा (शराबके प्याला रखने आदिके लिए हाथ द्वारा बनाए जानेवाले खास चिह्न)—इन पाँच मकारोंको मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाना शुरू किया। लोग बाहरी सदाचारके डरसे इधर आनमें हिचकिचाते थे इसलिए उसने डबल (=दुहरे) सदाचारका प्रचार किया—भीतरी चक्रमें पंच मकार ही सच्चा सदाचार है और उससे बाहर वह आचार जिसे लोग मानते आ रहे हैं। एक दूसरेसे बिलकुल उलट इस डबल सदाचारके युगमें यदि शंकराचार्य जैसे डबल-ज्ञान सिद्धान्ती पैदा हुए तो कोई आश्चर्य नहीं।

आर्थिक तौरपर देशमें यह सामन्त-महन्तों और दास-कम्मियोंका समाज था। इनके बीचमें बनिया और साहूकार भी थे, जिनका स्वार्थ शासक—सामन्त महन्त—से अलग न था और उन्हींकी भाँति यह भी डबल सदाचारके शिकार थे। शासक और सम्पत्तिमान वर्ग विलासके नये-नये साधनोंके आविष्कारोंमें तथा दास-कम्मी वर्गके अपने खून पसीने एक कर उसे जुटानेमें लगा था।—एक खाते-खाते मरा जा रहा था, दूसरा भूखसे तड़फते-तड़फते। एक ओर अपार ऐश्वर्य-लक्ष्मी हँस रही थी, दूसरी ओर नंगी भूखी जनता कराह रही थी। यह नाटक दिल रखनेवाले व्यक्तिपर चोट पहुँचाए बिना नहीं रह सकता था और चोट खाया दिल दिमागको क्रुद्ध करनेके लिए मजबूर कर सकता था। इसलिए दिल दिमागको बेकाबू न होने देनेके

लिए एक भूल भुलैयाकी जरूरत थी, जिसे कि इस तरहके और समयोंमें पहिले भी पैदा किया जाता रहा और अब भी पैदा किया जा रहा है। गौडपाद तथा शंकर भी उसी भूल भुलैयाके वाहन बने।

§ १—गौडपाद (५०० ई०)

१ जीवनी—शंकरके दर्शनके मूलको ढूँढ़नेके लिए हमें उनके पूर्वगामी गौडपादके पास जाना होगा। शंकरका जन्म ७८८ ई० और मृत्यु ८२० ई० है। म० म० विधुशेखर भट्टाचार्यने (The Āgamasāstra of Gaudapada)में गौडपादका समय ईसाकी पाँचवीं सदी ठीक ही निश्चित किया है। गौडपादके जीवनके बारेमें हम इससे ज्यादा कुछ नहीं मालूम है, कि वह नर्मदाके किनारे रहते थे। नर्मदा मध्यप्रान्त, मालवा और गुजरात तक बहती चली गई है, इसलिए यह भी कहना आसान नहीं है, कि गौडपादका निवास कहाँपर था।

२ कृतियाँ—गौडपादकी कृतियोंमें सबसे बड़े शंकर ही हैं, जिनके दीक्षा-गुरु यद्यपि गोविंद थे, किन्तु शिक्षाता निस्सन्देह गौडपाद थे, किन्तु उनके अतिरिक्त गौडपादका एक दर्शन-ग्रंथ आगम शास्त्र या माण्डूक्य-कारिका है। ईश्वरकृष्णकी सांख्यकारिकापर भी गौडपादकी एक छोटीसी टीका (वृत्ति) है, किन्तु वह मामूली तथा बहुत कुछ माठर वृत्तिसे ली गई है। माण्डूक्य-कारिकामें चार अध्याय हैं, जिनमें पहिला अध्याय ही माण्डूक्य उपनिषद्से संबंध रखता है, बाकी तीन अध्यायोंमें गौडपादने अपने दार्शनिक विचारोंको प्रकट किया है।

गौडपादका माण्डूक्य उपनिषद्पर कारिका लिखना बतलाता है, कि वह उपनिषद्को अपने दर्शनसे सम्बद्ध मानते हैं, लेकिन साथ ही वह छिपाना नहीं चाहते, कि बुद्ध भी उनके लिए उतने ही श्रद्धा और सम्मानके भाजन हैं। चौथे अध्याय ('अलातशान्ति प्रकरण' जो कि वस्तुतः बौद्ध विज्ञानवादका एक स्वतंत्र प्रकरण ग्रंथ है) की प्रारंभिक

धारित्वाम [illegible] —'मैं द्विपदवर'¹ (=मनुष्य-श्रेष्ठ)को प्रणाम करता हूँ जिसने धर्म आकाशके [illegible] शान्त आत्मा (=गद्गु [illegible]) [illegible] धर्म (=आत्म वस्तु) [illegible] (=[illegible]) [illegible]। इसी प्रकरणकी १९वीं कारिकामें फिर बुद्धका नाम लिया गया है। [illegible] [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] (४।२)में भी [illegible] (४।८०) कारिकामें [illegible] और [illegible] शाम [illegible] (=[illegible])का नाम लेते हैं। ९०वीं और ९९वीं बुद्धका नाम [illegible] (तायी आदि) [illegible] कि सभी वस्तुएँ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। अन्तिम कारिका (४।१००) में फिर [illegible] बुद्धको [illegible] प्रणाम [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] कारिकाकार [illegible] हुए भी स्पष्ट बौद्ध प्रभावों का [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] कारिका लिखनेके लिए चुनना [illegible] [illegible] मालूम होता है। (१) [illegible] एक बहुत छोटा सिर्फ पचास [illegible] [illegible] [illegible] जिसमें [illegible] उन्हें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करना आसान था (२) [illegible] सिर्फ [illegible] और उसके [illegible] [illegible] (=[illegible])का। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिया गया है [illegible] [illegible] था जिसमें उनके माध्यमिक-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सम्भावना न था, (३) इसमें [illegible] लिए अ-दृष्ट अ-व्यवहार्य अ-ग्राह्य अ-लक्षण अ-चिन्त्य [illegible] [illegible] विशेषण आते हैं [illegible] नागार्जुनके माध्यमिक-तत्त्वपर भी लागू होते हैं। गौडपादकी चेष्टा थी बौद्ध [illegible] [illegible] [illegible] रखते हुए उपनिषद्से उसका संबंध जोड़ना। शून्यवादके [illegible] उन्हें [illegible]

---

¹ बौद्धोंके संस्कृत और पालि-साहित्यमें द्विपदोत्तम, या द्विपदुत्तम शब्द बुद्धके लिए आता है। देखो "आगमशास्त्र" (म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य-संपादित कलकत्ता १९४३) ² "सर्वथा बुद्धैरजाति परिदीपिता।"

अ-क्षणिकके झगडेमें पडनेकी जरूरत न थी। शंकरने भी बौद्ध दार्शनिक विचारोंसे पूरा फायदा उठाया किन्तु वह उसे सोलहो आने उपनिषदकी चीज बनाकर वैसा करना चाहते थे। हाँ साथ ही वह उसे बुद्धिवादके पास रखना चाहते थे, इसलिए उन्हें योगाचारके विज्ञानवादको अपनाना पडा, किन्तु, विज्ञान (=चित्त)-तत्त्व की घोषणा करते हुए उन्हें क्षणिक अक्षणिकमेंसे एक चुनना था शंकरने अ-क्षणिक (=नित्य) चित्त-तत्त्व स्वीकार कर अपनेको शुद्ध ब्राह्मण दार्शनिक साबित करनेका प्रयत्न किया।

३ दार्शनिक विचार—यहाँ हम गौडपादके उन विचारोंमेंसे कुछके बारेमें कहना है जिनको आधार बनाकर शंकरने अपने दर्शनकी इमारत खडी की।

जगत नहीं—"कोई वस्तु न अपने से जनमती न दूसरेसे है। (जो) कोई वस्तु विद्यमान, अविद्यमान या विद्यमान अविद्यमान है वह (भी) नहीं उत्पन्न होती।[1] जो (वस्तु) न आदिमें है न अन्तमें, वह वर्तमान कालमें भी वैसी ही है, भूठेकी तरह होती वह भूठा ही दिखाई पडती है।"[2]

सब माया—"वस्तुयें जो जनमती कही जाती है वह भ्रमसे ही न कि वस्तुतः। उनका जन्म मायारूपी है और मायाकी कोई सत्ता नहीं।"[3] "जैसे स्वप्नमें चित्त मायासे (द्रष्टा और दृश्य) दो रूपोंमें गति करता है, वैसे ही जाग्रतमें भी चित्त मायासे दो रूपोंमें गति करता है।

जीव नहीं—"जैसे स्वप्नवाला या मायावाला जीव जनमता और मरता (सा दीखता है) उसी तरह ये सारे जीव है भी और 'नहीं भी' है।"

परमतत्त्व—"बाल बुद्धि (पुरुष) 'है' 'नहीं है' 'है-नहीं' और 'न है-न-नहीं' है इन (चारो कोटियो) से चल स्थिर, चल स्थिर, नचल-नस्थिर-के तौरपर (वास्तविकताको) छिपाते हैं। इन चारो कोटियोंकी पकडमें

---

[1] आगमशास्त्र ४।२२　　[2] वहीं ४।३१　　[3] वहीं ४।५८
[4] वहीं ४।६१　　[5] वहीं ४।६८ ६९

भगवान (=परमतत्त्व) सदा इनसे ढँके हुए नहीं दिखाई देते। जिसने उसे देख लिया वही सर्वद्रष्टा है।[1]

शंकरके सारे मायावादकी मौलिक सामग्री यहाँ मौजूद है। और विज्ञानवाद—[2]

जैसे किसी जलती लकड़ीका सीधा या गोल आदि दीखना है, वैसे ही विज्ञान द्रष्टा और दृश्य जैसा दीखता है।"

गौडपाद मानते हैं कि (१) एक अद्वय (विज्ञान) तत्त्व है जो शंकरके ब्रह्मकी अपेक्षा नागार्जुनके शून्यके ज्यादा नजदीक है (२) जगत् माया और भ्रम मात्र है (३) जीव नहीं है, जन्म, मरण, और बंध मोक्ष किसीका नहीं होता। ये विचार 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या जीव ब्रह्म ही'[3]से काफी अन्तर रखता है और वह अन्तर बौद्ध शून्यवादके पक्षमें है।

§२–शंकराचार्य (७८८–८२० ई०)

१ जीवनी—शंकरका जन्म ७८८ ई०में मलाबार (केरल) में एक ब्राह्मण कुलमें हुआ था। अभी शंकर शिशु ही थे कि उनके पिताका देहान्त हो गया और उनके पालन पोषण तथा बाल्य शिक्षाका भार माताके ऊपर पड़ा। यह वह समय था जब कि बौद्ध ब्राह्मण जैन सभी धर्म अधिकसे अधिक लोगोंको साधु बनानेकी होड़ लगाए हुए थे। आठ वर्षके बालक शंकरके ऊपर किसी महात्मा गोविन्दकी नजर पड़ी और उन्होंने उसे चेला बनाया। जैसा कि पहिले कह चुके हैं गोविन्दके दीक्षागुरु होनेपर भी शंकरके 'दादागुरु' गौडपाद बतलाये जाते हैं। इससे अधिक शंकर दिग्विजयोंमें शंकरके भारी भारी शास्त्रार्थों उनकी दिव्य प्रतिभा और

---

[1] वहीं ४।८३, ८४, तुलना करो "न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका जगुः।"—सर्वदर्शनसंग्रह (बौद्ध-दर्शन)। [2] आगम० ४।४७

[3] "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"।

भगवान (=परमतत्त्व) सदा ढँके रहते हैं। छुवाई नहीं। जिसने उसे देख लिया वह सर्वद्रष्टा है।[1]

शंकरके मत मायावादकी मौलिक सामग्री यहाँ मौजूद है। और बिना संशय—[2]

जैसे फिरती जलती मशाल सीधा या गोल आदि दीखता है, वैसे ही विज्ञान द्रष्टा और दृश्य जैसा दीखता है।

गौडपाद मानते हैं कि (१) एक अद्वय (विज्ञान) तत्त्व है जो शंकरके ब्रह्मकी अपेक्षा नागार्जुनके शून्यसे ज्यादा नजदीक है (२) जगत माया और भ्रम मात्र है (३) जीव नहीं है, जन्म मरण, और बंध मोक्ष किसीका नहीं होता। ये विचार "ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या जीव ब्रह्म ही है"[3] से काफी अन्तर रखता है और वह अन्तर बौद्ध शून्यवादके पक्षमें है।

§२—शंकराचार्य (७८८–८२० ई०)

१ जीवनी—शंकरका जन्म ७८८ ई०में मलाबार (केरल) में एक ब्राह्मण कुलमें हुआ था। अभी शंकर गर्भमें ही थे कि उनके पिता शिवगुरुका देहान्त हो गया, और उनके लालन-पालन तथा बाल्य शिक्षाका भार माताके ऊपर पड़ा। यह वह समय था जब कि बौद्ध ब्राह्मण जैन सभी धर्म अधिकसे अधिक लोगोंको साधु संन्यासी होनेपर लगाए हुए थे। आठ वर्षके बालक शंकरके ऊपर किसी संन्यासी गोविन्दकी नजर पड़ी और उन्होंने उसे चेला बनाया। जैसा कि पहिले कह चुके हैं गोविन्द दीक्षागुरु होनेपर भी शंकरके 'शिक्षागुरु' गौडपाद बतलाये जाते हैं। एकसे अधिक शंकर-दिग्विजयोंमें शंकरके भारी भारी शास्त्रार्थों उनकी दिव्य प्रतिभा और

---

[1]वहीं ४।८३, ८४, तुलना करो "न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्। चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका जगुः।"—सर्वदर्शनसंग्रह (बौद्ध-दर्शन)। [2]आगम० ४।४७

[3]"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"।

चमत्कारोंका जिक्र है, किन्तु हर एक धर्ममें अपने आचार्यके बारेमें ऐसी कथाएँ मिलती हैं। हम निश्चित तौरसे इतना ही कह सकते हैं कि शंकर एक मेधावी तरुण थे, बत्तीस वर्षकी कम आयुमें मृत्युके पहिले वेदान्त और दस प्रधान उपनिषदोंपर सुन्दर और विचारपूर्ण भाष्य उनकी प्रतिभाके पक्के प्रमाण हैं। शास्त्रार्थके बारेमें हम इतनाही कह सकते हैं कि शंकरके समकालीन शान्तरक्षित ही नहीं उनके बादके भी कमलशील (८५० ई०), जितारि (१००० ई०) जैसे महान दार्शनिक उनके बारेमें कुछ नहीं जानते। जान पड़ता है बौद्धोंके तर्कसे कुछ बाणोंको लेकर शंकरने अपना एक छोटा सा शस्त्रागार तैयार किया था, जिसका महत्त्व शायद सबसे पहिले वाचस्पति मिश्र[1] (८४१ ई०)को मालूम हुआ, किन्तु वह तब तक गुमनाम ही पड़ा रहा जब तक कि तुर्कोंके आक्रमणसे प्राण पानेके लिए बौद्ध-दर्शनके नेताओंने भारतको छोड़ हिमालय और समुद्रपारके देशोंमें भाग जाना नहीं पसन्द किया। हाँ, इतना कह सकते हैं कि बौद्ध भारतके अन्तिम प्रधान आचार्य या संघराज शाक्यश्रीभद्र (११२७-१२२५ ई०)के भारत छोड़ने (१२०६ ई०)से पहिले शंकरको श्रीहर्ष[2] (११९८ ई०) जैसा एक और जबर्दस्त वकील मिल चुका था।

२. शंकरके दार्शनिक विचार—शंकरने वैसे तो अपने विचारोंकी छाप अपने सभी ग्रंथोंपर छोड़ी है, किन्तु वेदान्तसूत्रके पहिले चार सूत्रों (चतुःसूत्री)के भाष्यमें उन्होंने अधिक स्वतंत्रताके साथ काम लिया है। बौद्धोंके संवृति-सत्य और परमार्थ-सत्यको अपना मुख्य हथियार बनाकर ब्रह्मको ही एकमात्र (=अद्वैत) सत् पदार्थ मानते हुए उन्होंने व्यवहार-सत्यके तौरपर सभी बुद्धि और अ-बुद्धि-गम्य ब्राह्मण सिद्धान्तोंको स्वीकार किया।

---

[1] शंकरके वेदान्त भाष्यकी टीका (भामती)के रचयिता।

[2] शंकरके सिद्धान्तपर, किन्तु गौडपादकी भाँति नागार्जुनके शून्यवादसे अत्यन्त प्रभावित-ग्रंथ "खंडन-खंड-खाद्य"के रचयिता तथा कन्नौज अधिपति जयचंदके सभा-पंडित।

(१) शब्द सबसे प्रमाण—शब्द ही सबसे प्रमाण है। दूसरे प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाण शब्द (=वेद)के अधीन हैं। प्रमाण वह माना है—मीमांसकोंकी इस बातको शंकराचार्य मानते थे, उसी तरह मानते हैं, तर्क शक्तिहीन है। आज जिस बातको एक तर्क सिद्ध करता है, दूसरा अधिक तार्किक उसे गलत साबित कर दूसरी ही बातको सिद्ध कर देता है, इसी तरह तर्क अनवस्थित है। इसलिए तर्कसे सत्यको नहीं पाया जा सकता। वेदोंके सार। सम्पूर्ण प्राप्ति इसलिए उपनिषद्‌का ही सहारा लेना है। वह वेदोंका सिर उपनिषदोंके अभिप्रायको ठीक समझना तर्कका काम है, इसलिए तर्क भी काम करता है। शंकरके मतमें वेदान्त सिद्धान्तोंका मानना तर्क या युक्ति (=बुद्धि)पर नहीं निर्भर करता, बल्कि वह ईश्वरपर निर्भर है कि वह उपनिषद् प्रतिपादित है। इस प्रकार प्रमाणके बारेमें शंकरके क्या विचार थे, इसे कि श्रुति और स्मृति के और जिनके मतमें धर्मकी निरी युक्तियोंका हम उद्धार कर चुके हैं।

(२) ब्रह्म ही एक सत्य—अनादि कालसे चली आती अविद्या (=अज्ञान)के कारण यह नाना प्रकारका भेद दिखलाई पड़ता है, जिससे ही यह जन्म जरा मरण आदि सांसारिक दुःख होते हैं। इन सारे दुःखोंको नष्ट करनेके लिए सिर्फ 'एक आत्मा ही सत्' यह ज्ञान जरूरी है। इसी आत्माकी एकता या ब्रह्म अद्वैतके ज्ञानके प्रतिपादनके लिए सारे वेदान्त ग्रंथोंका प्रयोजन रखा गया है।[1] यह ब्रह्म सत (=अस्तित्व) सत्य चित् (=चेतना) और आनन्द-स्वरूप है। सत चित, आनन्द-स्वरूपता उसके गुण हैं और वह उनका गुणी। यह बात ठीक नहीं, क्योंकि गुण-गुणीकी कल्पना भेद—द्वैत—को लाती है, इसलिए वह किसी विशेषण—गुण—से रहित निर्विशेष चिन्मात्र है। सभी मानसिक और शारीरिक वस्तुएं बिलकुल परिवर्तित होती जाती हैं और उनके भीतर एक अपरिवर्तनीय परम-सत् बना रहता है। दूसरे सारे दर्शन प्रमाणोंकी खोजमें हैं जिसमें कि वे बाहरी वस्तुओंकी सत्यताका पता लगा सकें, किन्तु वेदान्त बाहरी दृश्यों (=वस्तुओं)की तहमें जो चरम

[1] शंकर वेदान्त भाष्य १।३।१७

परम-सत्य है उसकी खोज करता है, इसलिए वेदान्तके सामने दूसरे शास्त्र तुच्छ हैं।[1]

(३) जीव और अविद्या—ब्रह्म ही सिर्फ एक तत्त्व है भेद—नानापन—का ख्याल गलत है, इसे मान लेनेपर उससे भिन्न कोई ज्ञाता—जीव—का विचार ठीक नहीं रहता। 'मैं जानता हूँ'—यहाँ जाननेवाला मैं का जो अनुभव हमें होता है, उससे जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है यह कहना ठीक नहीं है। इस तरहका अनुभव तथा उससे होनेवाला जीवका ज्ञान केवल भ्रान्तिमात्र है, उसी तरह जैसे सीपमें चाँदी रस्सीमें साँप मृगतृष्णावाले बालूमें जलका प्रत्यक्ष-अनुभव तथा ज्ञान भ्रान्तिके सिवा कुछ नहीं। ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेयके भेदको छोड़ सिर्फ अनुभवमात्र हम ले सकते हैं क्योंकि भेदके आदि और अन्त भी न होनेसे, वर्तमानमें भी अस्तित्व न रखनेके कारण अनुभव मात्र ही तीनों कालोंमें एकसा रहता है फिर अनुभवमात्र—सत्तामात्र—ब्रह्म ही है। अतएव ब्रह्मके अतिरिक्त भेद प्रतिपादक मैं मनुष्य हूँ इस तरहका मनुष्यता आदिसे युक्त पिंडमें ज्ञाताका ख्याल केवल अध्यास (=भ्रम) मात्र है। ज्ञाता उसे कहते हैं जो कि ज्ञानकी क्रिया करता है। क्रिया करनेवाला निर्विकार नहीं रह सकता, फिर ऐसे विकारी जीवको सारे विकारोंके बीच एकरस, साक्षी, चित-मात्र तत्त्व यहाँ गुंजाइश हो सकती है? फिर ज्ञेय (=बाहरी पदार्थों)के बिना किसीका ज्ञाता नहीं कह सकते। आगे बतायेंगे कि ज्ञेय दृश्य जगत् सिर्फ भ्रममात्र है। मैं जानता हूँ यह अनुभव सब अवस्थाओंमें नहीं होता सुषुप्ति (=गाढ़ निद्रा) और मूर्च्छामें उसका कहीं पता नहीं रहता, किन्तु आत्माका अहं रहित अनुभव उस वक्त भी होता है, इसलिए अहंका ख्याल तथा उससे

---

[1] "तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद् वेदान्तकेसरी।"
(तब तक ही दूसरे शास्त्र जंगलमें स्यारकी तरह गर्जते हैं, जब तक कि महाबली वेदान्त सिंह नहीं गर्जता।)

जीवकी कल्पना गलत है। दर्पणमें मुख या चन्द्रमाका प्रतिबिंब भिन्न मालूम पड़ता है, किन्तु सभी जानते हैं कि वहाँ मुख या चन्द्रमा नहीं है वह भ्रम मात्र है; इसी तरह निर्मल निर्विकार ब्रह्ममें भेद या नानाका ख्याल सिर्फ भ्रम अविद्या है। वस्तुतः ब्रह्ममें नाना—जीव—के ख्यालकी जननी यही अविद्या है—ब्रह्मपर पड़ा अविद्याका पर्दा जीवको उत्पन्न करता है।

शंकरको यह समझ है—ब्रह्मभिन्न किसी दूसरे तत्त्वको न स्वीकार करनेवाले शंकरका अद्वैतवाद इसी अविद्या पहाड़ आ गई। अविद्या क्या है—स्वरूप है? ब्रह्म जब स्वयं ज्ञान-प्रकाश और अन्धकारकी भाँति एक दूसरेके अत्यन्त विरोधी एक एक दूसरेके साथ न रह सकनेवाले हैं, फिर ब्रह्मपर अविद्याका पर्दा डालना कैसे हुआ, जैसे प्रकाशपर अन्धकारका पर्दा डाला जाय। वस्तुतः जगत्के सर्वथा अपलापमें इन और ऐसे दूसरे प्रश्नोंका उत्तर अद्वैत सिर्फ यही दे सकता है, कि सत्य वही है, जिसे कि उपनिषद् बतलाते हैं। इसपर धर्मकीर्तिकी आवाजें दो बुद्ध बुद्धमान्का मत याद आ जाता है।

(४) जगत् मिथ्या—प्रमाणशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करनेपर मालूम होता है कि दृश्य जगत् है किन्तु वर्तमानमें ही। उसकी परिवर्तनशीलता बतलाती है कि वह पहिले न था न आगे रहेगा। इस तरह उसका अस्तित्व सब कालमें है, यह तो स्वयं गलत हो जाता है—"आदौ अन्ते च यत् नास्ति वर्तमानेऽपि तत् तथा।" वस्तुतः जगत् तीनों कालमें नहीं है। 'जगत् है' में जगत्की कल्पना भ्रान्तिमूलक है और 'है' (=सत्) ब्रह्मका अपना स्वरूप है। 'है' (=सत्) न होता, तो जगत्का भान न होता, इसलिए जगत्की भ्रान्तिका अधिष्ठान (=भ्रम स्थान) ब्रह्म है उसी तरह जैसे साँपकी भ्रान्तिका अधिष्ठान रस्सा, चाँदीकी भ्रान्तिका अधिष्ठान सीप।

(५) माया—'आदि अन्तमें नदारद वर्तमानमें भी वैसा' के अनुसार, यह जगत् वस्तुतः कुछ भी नहीं। फिर यह प्रतीत (=प्रत्यक्ष अनुमानमें

ज्ञात) क्या हो रहा है ?—यही तो माया है। मदारी ढर-के-ढर रुपए बनाता है, किन्तु क्या वह वास्तविक रुपए हैं, यदि ऐसा होता तो उसे तमाशा दिखलाकर एक एक पैसा मांगनेकी जरूरत न पड़ती। वह रुपए क्या हैं ?—माया, मायाके अलावा कुछ नहीं। जगत् भी माया है। माँ भी माया, बाप भी माया, पत्नी भी माया पति भी माया उपकार भी माया, अपकार भी माया, गरीबकी कामसे पिसती भूखसे तिलमिलाती अँतड़ियाँ भी माया, निकम्मे अमीरकी फूली तोंद और ऐंठी मूंछ भी माया, कोड़ासे लो -लोहान तड़फता दास भी माया और तख्तपर कोड़े चलानेवाला जालिम मालिक भी माया, चोर भी माया साहू भी माया गुलाम हिन्दुस्तान भी माया, स्वतंत्र भारत भी माया हिटलरकी हिंसा भी माया, गांधीकी अहिंसा भी माया, स्वर्ग भी माया नर्क भी माया, धर्म भी माया, अधर्म भी माया बंधन भी माया, मुक्ति भी माया, । जगत जादू है, माया है और कुछ नहीं।

यह है शंकरका मायावाद, जो कि समाजकी हर विषमता हर अत्याचारको अक्षुण्ण, अछूता रखनेके लिए जबर्दस्त हथियार है।

माया ब्रह्ममें कैसे लिपटती है ?—शंकर इस प्रश्नहीको गलत बतलाते हैं। लिपटना वस्तुतः है ही नहीं, कूटस्थ एक रस ब्रह्मपर जब उसका कोई असर हो, तब तो उसे लिपटना कहेंगे। मायामें कोई वास्तविकता नहीं यह तो अविद्याके सिवाय और कुछ नहीं, और जैसे ही सत्य (=अद्वैत ब्रह्म)का साक्षात्कार होता है वैसे ही वह विलीन हो जाती है। माया क्या है ?—इसका उत्तर सिर्फ यह दे सकते हैं कि वह अनिर्वचनीय (=अ-कथ्य) है। वस्तु न होनेसे उसे सत नहीं कह सकते, जगत् जीव, आदिके भेदोंकी प्रतीति होती है, इससे उसे बिलकुल असत भी नहीं कह सकते, इस तरह उसे सत् और असत् दोनोंसे अनिर्वचनीय (=अ-कथनीय) कह सकते हैं।

(६) मुक्ति—परमार्थतः पूछनेपर शंकर बंधन और मुक्तिके अस्तित्वसे इन्कार करते हैं, किन्तु उस हालके तानिवके जबर्दस्त इतर

समाचारक। भारी तर्क अपने दर्शनके स्वतंत्र सिद्धान्तका प्रभुत्व सर्वत्र स्थापित कर चुके थे, इसीलिए व्यवहार सत्यके रूपमें उन्हें बंधन और मुक्तिको माननेमें इन्कार नहीं। अविद्या ही बंधन है, जिसके ही कारण जीवको भ्रम होता है, यह पहिले कह आए हैं। निर्विशेष नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव चिन्मात्र ब्रह्म ही मैं हूँ, जब यह ज्ञान हो जाता है तो अविद्या दूर हो जाती है, और बद्ध होनेका भ्रम हट जाता है, जिसे ही मुक्ति कहते हैं। 'ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या जीव ब्रह्म ही है दूसरा नहीं'[1]—यही ज्ञान है, जिससे अपनेको बद्ध समझनेवाला जीव मुक्त हो जाता है। आखिर बद्ध समझना एक भ्रमात्मक ज्ञान था, जो कि वास्तविक ज्ञान होनेपर नहीं रह सकता। "मैं ब्रह्म हूँ" उपनिषद्का यह महावाक्य ही सबसे महान् सत्य है।

व्यवहारमें जब बंधनको मान लिया तो उससे छूटनेकी इच्छा रखने वाले (=मुमुक्षु)का साधन भी बतलाने पड़ेंगे। शंकरने यहाँ एक सच्चे द्वैतवादीके तौरपर बतलाया कि वह साधन चार हैं—(१) नित्य और अनित्य वस्तुओंमें फर्क करना (=नित्यानित्य-वस्तुविवेक) (२) इस लोक परलोकके फल भोगमें विराग (३) मनका शमन, इंद्रियोंका दमन, त्याग भावना, कष्ट-सहिष्णुता, श्रद्धा, चित्तकी एकाग्रता (शम-दम-उपरति तितिक्षा-श्रद्धा-समाधि), और (४) मुक्ति पानेकी बलावी (=मुमुक्षुत्व)।

(७) "प्रच्छन्न बौद्ध"—शंकरके दर्शनको सरसरी नजरसे देखने पर मालूम होता कि वह ब्रह्मवादको मानता है और उपनिषद्के अध्यात्म ज्ञानको सबसे अधिक प्रधानता देता है, किन्तु जब उसके भीतर घुसते हैं तो वह नागार्जुनके शून्यवादका मायावादके नामसे नामान्तर मात्र है। यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि उसकी आधार शिला रखनेवाले गौड़पाद साफ तौरसे बुद्ध और नागार्जुनके दर्शनके अनुयायी थे और शंकरके अनुयायियोंमें सबसे बड़े अनुयायी श्रीहर्षको 'खंडनखंडखाद्य' सिर्फ माना

---

[1] "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"।

रामने मंगलाचरण तथा दो चार मामूली बातोंके ही कारण शुद्ध माध्यमिक दर्शन (=शून्यवाद)का ग्रंथ कहे जानेसे बचाया जा सकता है। इसी लिए कोई ताज्जुब नहीं यदि पराङ्कुशदास 'व्यास'ने कहा—

'वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृतः
प्रामाण्यमेतस्य च तस्य चाऽनृतम्।
बोद्धाऽनृतो बुद्धिफले तथाऽनृते,
यूयं च बौद्धाश्च समानसंसदः ॥"

"(शंकरानुयायियो! तुम्हारे लिए) वेद (परमार्थतः) अनृत (=असत) है (वैसे ही शून्यवादी बौद्धोंके लिए) बुद्धके किए उपदेश अनृत हैं, (तुम्हारे लिए) इस (=वेद)का और (उनके लिए) उस (=बुद्ध आगम) का प्रमाण होना गलत है। (तुम दोनोंके लिए) बोद्धा (=ज्ञाता जीव) अनृत है, (उसी तरह) बुद्धि (=ज्ञान) और (उसका) फल (=मुक्ति) भी अनृत हैं, इस प्रकार तुम और बौद्ध एक ही भाई बिरादर हो।'

इसीलिए शंकर "प्रच्छन्न बौद्ध" कहे जाते हैं।

परिशिष्ट

१–ग्रंथ-सूची

Dasgupta (S N)	History of Indian Philosophy, 2 Vols
Radhakrishnan (S)	Indian Philosophy, 2 Vols
Vidyabhushana (S C)	History of Indian Logic
Stcherbatsky (T H)	Buddhist Logic 2 Vols
Winternitz	History of Indian Literature, Vol II
Lewis (G E)	History of Philosophy
Lewis (John)	Introduction to Philosophy, 1937
De Boer (T J)	Philosophy in Islam
Thilly	History of Philosophy
Macdougell	Modern Materialism and Emergent Evolutions 1929
Stapledon	Philosophy and Living, 1939
Feuerbach (L)	Atheism
	Essence of Christianity
Engels (F)	Feuerbach (Anti-Duhring)
Marx (Karl)	Capital
	Communist Manifesto
	Thesis on Feuerbach
Marx and Engels	German Ideology

	(इस्लामिक दर्शन)
गजाली	अह्याउ'ल उलूम
	ताहाफतु ल् फिलासफा
इब्न रश्द	ताहाफतु त्-तोहाफतु ल् फिलासफा
इब्न-खल्दून	मुकद्दमये-तवारीख
शिब्ली नेमानी	अल-गजाली
	अल् कलाम
मुहम्मद यूनस् अन्सारी	इब्न रश्द
(भारतीय दर्शन)	
	ऋग्वेद
	शतपथ-ब्राह्मण
	उपनिषद (ईश केन कठ प्रश्न मुंड, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय छांदोग्य बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर कौषीतकि मैत्री)
	महाभारत
	भगवद्गीता
	परमसंहिता (पंचरात्र)
गौतम	गौतम धर्मसूत्र
बुद्ध (गौतम)	सुत्तपिटक (दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय अंगुत्तरनिकाय, उदान)
	विनयपिटक (पातिमोक्ख महावग्ग चुल्लवग्ग)
	लंकावतार-सूत्र
नागसेन	मिलिन्दप्रश्न
नागार्जुन	विग्रह-व्यावर्तनी
	माध्यमिक-कारिका
वसुबंधु	विज्ञप्तिमात्रता सिद्धि (त्रिंशिका)
दिग्नाग	प्रमाणसमुच्चय

धर्मकीर्ति	न्यायबिन्दु
	प्रमाणवार्त्तिक
	वादन्याय
अक्षपाद (गौतम)	न्यायसूत्र
कणाद	वैशेषिक-सूत्र
पतञ्जलि	योग-सूत्र
बादरायण	वेदान्त-सूत्र
जैमिनि	मीमांसा-सूत्र
ईश्वरकृष्ण	सांख्य कारिका
प्रशस्तपाद	वैशेषिक भाष्य
उद्योतकर	न्यायवार्त्तिक
जयन्त भट्ट	न्यायमंजरी
गौडपाद	माण्डूक्य कारिका
शंकर	वेदान्त भाष्य
रामानुज	
परांकुशदास (व्यास)	टीका (श्रुतप्रकाशिका)
श्रीहर्ष	खण्डन-खण्ड-खाद्य
	नैषधीयचरित
माधवाचार्य	सर्वदर्शनसंग्रह
बाण	हर्षचरित
भर्तृहरि	वैराग्यशतक
वराहमिहिर	बृहत्संहिता
राहुल सांकृत्यायन	बुद्धचर्या
	विश्व की रूपरेखा
	मानव-समाज
	वैज्ञानिक भौतिकवाद
	ईरान
	कुरानसार
	पुरातत्त्व निबंधावली

२—पारिभाषिक-शब्द-सूची

अकल—Nous (विज्ञान)
असवानुस्सफा—पवित्र-संघ
अज्ञयवाद—Agnosticism
अतिभौतिकशास्त्र—Metaphysics
अतिमानुष आत्माएं—अजराम गलूइया
अद्वैत—तौहीद
अद्वैतवाद—Monism
अध्यात्मदर्शन—Metaphysics
अनीश्वरवाद—Atheism
अनुभयवाद—Neutrism
अन्तर्व्यापन—Interpenetration
अन्तर्हित शक्ति—दस्तगाद कूवत
अफलातूनवाद। नवीन—neo Platonism
अभावप्राप्त—Negated
अरूपवाद—Nominalism
अफ्रीना—Fregena
अवयवी—Whole
अश्बीलिया—Seville
आकृति—Form (सूरत)
आचारशास्त्र—Ethics
आत्मकण—Monad
आत्मकणवाद—Monadism
आत्मसम्मोहन—Self-hypnotisation
आत्मा—Self soul, spirit, (नफ्स)
आत्मा। नातिक— रूह अक्ली
आत्मानुभूति—Intuition
आत्मिक जीवन—Spiritual life
आधार। काय— इन्फआल
आसमानाकी दुनिया—आलम अफलाक।
ईश्वरमें समाना—हलूल्
ईसाई जहाद—Crusade
उटोपिया—Utopia
उपलब्धि—Perception
एकाकरण—Concentration
कर्तबा—Cardova(in Spain)
कर्त्ता विज्ञान—Creative spirit
कल्पनामय—Abstract
कारण—Cause
कार्य—Effect
कार्यकारणवाद—Causality
कार्यकारण सबंध—Causality

काय रमना—प्राप्त
काव्यशास्त्र—Poetics
किरणप्रसारण—Radiation
क्वतम सिद्धान्त—Quantum
खगोलीय यन्त्रशास्त्र—Celestial mechanics
गरनाता—Gra ada (in Spain)
गुण—Quality
गुणात्मक परिवर्तन—Qualitative change
घटना—Event
चिन्तन—Contemplation
जनवाद—Idealism
जगजावा—नफस-आत्म्
जालीनूस—Galen
जीव—Soul रूह फलज मनल
जावन—Life
नाता—मुक्ति
ज्ञानकी प्रामाणिकता—Validity of knowledge
तत्त्व—Element
तर्कशास्त्र—Logic
तलेनता—Tolado (in Spain)
तुफल । इब्न— Abubacer
तृष्णा—Will
दर्शन—Philosophy
दिव्य नमस्कार—माज्जा
दिशा—Space
दर—अफलाक्
द्यगत्—आत्म अफलाक
दवता—अफ्लाक आस्मान परिश्ता
दवतार—आत्म-अफ्लाक
दवात्मा—अजराम् अफ्लाक जरम् अफलाक
देश—Space
द्रव्य—Substance
द्वन्द्ववाद—Dialectics
द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—Dialectical materialism
द्वन्द्वात्मक विकास—Dialectical evolution
द्वन्द्वात्मक विज्ञानवाद—Dialectical idealism
द्वैतवाद—Dualism
धर्ममीमांसा—फ़िक्र
धातुत्रय—मवालीद-सलासा (= धातु वनस्पति प्राणी)
नफ्स—nous अकल आत्मा ब्रह्म विज्ञान
नातिक बुद्धि—Nautic nous
नातिक विज्ञान—Nautic nous
नाम—Mind

भोगवाद—Hedonism
भौतिकतत्त्व—Matter (माद्दा)
भौतिक पिण्ड—जिस्म-तबई
भौतिकवाद—Materialism
भौतिकवाद। यांत्रिक—Mechanical materialism
भौतिकवाद। वैज्ञानिक—Scientific materialism
भौतिकशास्त्र—Physics
मन—Mind
मनुष्यमापवाद—Pragmatism
मनोमय—Rational
मात्रा—Quantity
माद्दा—प्रकृति Hyla, matter
मानवजीव—नफस इन्सान
मानवता—नफस आलम
मूलतत्त्व—Element
मूल स्वरूप—Arche type
यथार्थवाद—Realism
योगिप्रत्यक्ष—Intuition
रहस्यवाद—Mysticism
रूप—Matter
रोश्द। इब्न—Averroe
वरुण—Uranus
वस्तु अपने भीतर—Thing in itself
वस्तुवाद—Realism
वस्तुसार—Objective reality, Nomena, thing-in itself
वस्तुसारवाद—Noumenalism
वाद—Theory Thesis, मनाम
वाग्शास्त्र—इल्म-कलाम
वाग्शास्त्री—मुतकल्लमान
विकास—Evolution
विकास। सर्जनात्मक—Creative evolution
विचार—Idea
विच्छिन्न प्रवाह—Discontinuous continuity
विच्छिन्न सन्तति—Discontinuous continuity
विच्छिन्नपूर्वा प्रवाह—Discontinuous continuity
विज्ञान—Idea, intelligence mind, nous (नफस) science
विज्ञान। अधिकरण—अक्ल इन्फ-आल नफस इन्फआल
विज्ञान। अभ्यस्त—अक्ल मुस्तफाद
विज्ञान। एक—वहदत अक्ल्
विज्ञान। कर्त्ता—अक्ल फआल

नफस-फग्राल
विज्ञान । क्रिया—, नफ्से-फग्रली
विज्ञान । जगदात्मा,—ग्रक्ल-ग्रव्वल्
विज्ञान । ज्ञाता—,ग्रक्ल-मुद्रिक
विज्ञान । देव— ग्रक्ल-मानी
विज्ञान । दवात्मा—,ग्रक्लसानी
विज्ञान । नातिव्—, Nautic nous, नफस-नातिव्
विज्ञान । परम—,ग्रक्ल-मुत्लक
विज्ञान । प्राकृतिक— ग्रक्लमाद्दी ग्रक्ल हयलानी
विज्ञान । मानव नफ्स इन्सानी
विज्ञानकण—Monad
विज्ञानवाद—Idealism
विज्ञानीय शक्ति—ग्रक्ली कूवत
विभाजन—Differentiation
विरस—Virus
विरोधि समागम—Unity of opposites
विशय—Particular
विश्लेषण—Analysis
विश्वात्मा—Logo
वेदना—Sensation
वैज्ञानिक भौतिकवाद—Scientific materialism, Dialectical materialism
व्यक्ति—Particular
शक्ति । अन्तर्हित,—इस्तदाद-कूवत
शारीरक (ब्रह्म) वाद—Organism, pantheism
शिवता—सग्रादत
शविली—Seville (in Spain)
सक्षय—नल्वीम
सन्तति—Continuity
सन्तान—Continuity
सन्देहवाद—Scepticism
सपूर्ण—Whole, अवयवी
समन्वय—Harmony
सलबीजग—Crusade
सवाद—Synthesis
साइन्स—Science
साकार—Objective concrete
सापेक्ष—Relative
सापेक्षतावाद—Relativity
सामर्थ्य—मलाहियत
सामान्य—Universal जाति
सिद्धान्त—Theory
सिद्धि—मारजजा
सीमापारी—Transcendental
सूरत—ग्राकृति
सोफा—Sophist
सोफीवाद—Sophism

स्कोलास्तिक आचार्य—Scholastic doctor
स्तनधारी—Mammal
स्थिति—Duration
स्पर्श—Impression
स्मृति—इल्म हिफ्ज
स्मृति। उच्च परिचयात्मी—हिफ्ज मयानी
स्मृति। सामूहिक—हिफ्ज मजमुई
स्वतः उत्पन्न—*A priori*
स्वतः सिद्ध—*A priori* innate
स्वभाव—Character
स्वयम्भू—*A priori*, innate
स्वरूप—Character
स्वलक्षण—Character
हलूल—ईश्वरमें समाना ब्रह्मलय
हेतु—Cause
हेतुता—Causality
हेतुवाद—Causality
हयूला—Hyla प्रकृति
हयूलानी—प्राकृतिक माद्दा

३—दार्शनिकोंका कालक्रम

पश्चिमी	ई० पू०	ई० पू०	भारतीय
यूनानी—			
		१०००	वामदेव
		७००	प्रवाहण जैवलि उद्दालक आरुणि
		६५०	याज्ञवल्क्य
		६००	चार्वाक
थलू	६४० ५५०		
अनक्सिमन्दर	६१० ५४५	६००	कृश सांकृत्य
अनक्सिमन	५६० ५२०	५००	वर्धमान महावीर
पिथागोर	५७० ५००		पूर्ण काश्यप

पश्चिमी	ई० पू०	ई० पू०	भारतीय
क्सेनोफन	५७० ४८०	५६३ ४८३	बुद्ध
पर्मेनिद	५४० ४८३	५००	अजित[1] केसकम्बल
			संजय
			गोतम
ल्युकिप्पु[1]	— ५२८ ४५५		
एम्पेदोकल	४९० ४३०		
सुकरात	४६९ ३९९	४००	कपिल
देमाक्रितु[1]	४६० ३७०		
अफलातूं	४२७ ३४७		पाणिनि
देवजेन	४१२ ३२३		
अरस्तू	३८४ ३२२		
(सिकन्दर)	३५६ ३२३	(३२१-२९७ (२६९	चन्द्रगुप्त मौर्य) अशोक मौर्य)
पिर्हो	३६५ २७०		
एपीकुरु[1]	३४१ २७०		
जेनो	३३६ २६४		
ध्यामान्तु	२८३		
नलुस्	१३३	१५० (१५०	शासन पतंजलि वैयाकरण)
अन्द्रानिकुस्	८६		

सन् ईस्वी

(नव अफलातूनी दर्शन)—			
फिलो यूदिया	२५ ५०		
अन्तियाक	६८	१५०	अ
			(विज्ञानवाद)

---

[1] भौतिकवादी।

पश्चिमा	ई	ई	भारतीय
		१००	(प्रभाविद)
		१५०	नागार्जुन
अगस्तिन्	१६०	१३१	तारानुज
प्लातिन्	२०५ ७१	२५०	प्रमाद
	७६	२५	पतञ्जलि (याग)
पार्फिरी	२२		
माना (मैगाल)	७५५		
		३ ०	वात्स्यायन
			जैमिनि
		,,	गौतम्निय
		(३४० ७५	समुद्रगुप्त, राजा)
अगस्तिन सन्त—	३५२ ४३०	(३८० ४१५	चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य)
		४००	बौधायन
		४००	उपवर्ष
		४००	वात्स्यायन
		३५	असंग
		४००	वसुबंधु
		४००	शबर
हिपाशिया (वध)	४१५	४००	प्रशस्तपाद
		४००	कालिदास
		४२५	दिग्नाग
		(४७६	आर्यभट्ट ज्योतिषी)
मज्दक (ईरान)	४८० ५३१	५००	उद्योतकर
(ईसाइयोंद्वारा	५००		गौडपाद
दर्शन पढ़ना निषिद्ध)	५२९	५५०	कुमारिल

पश्चिमी	ई०	ई०	भारतीय
दमास्किउस्	५२९	(६००	हर्षवर्धन राजा)
इस्लामिक—			
(मुहम्मद पैगम्बर)	५६ ६३२	६५०	धर्मकीर्ति
		७००	सिद्धसेन (जैन)
(मुआविया, खलीफा दमश्क)	६६१ ८०		
		७०	प्रज्ञाकर-गुप्त
		७२५	धर्मोत्तर
		७२५	ज्ञानश्री
(अब्दुल अब्बास खलीफा, बगदाद)	७४९-५४		
(मन्सूर-खलीफा बगदाद)	७५४ ७५		
		७५०	अकलंक (जैन)
		८००	गोविन्दपाद
मुतज़्ला	७५८		
(हारून खलीफा बगदाद)	७८६ ८०९	८००	वसुगुप्त (कश्मीर-शैव)
		७४० ८४०	शान्तरक्षित
(मामून खलीफा बगदाद)	८११-३३	७८८ ८२०	शंकराचार्य
अल्लाफ	८३०		
किन्दी	८३५	८४१	वाचस्पति मिश्र
नज्ज़ाम	८४५		
इब्न-समन	८५०		

पश्चिमी	ई०	ई०	भारतीय
गरिाना	८१० ७१		
जकीज	८६६		
धसवानस्सफा	९००		
अशूअरी	८७३ ९५४		
किन्दी	८७०		
राजी	९२३		
फाराबी	८७० ९५०		
(फिर्दौसी कवि)	८४० १०२०	९८४	उदयनाचार्य
मस्कविया	१०३०	१०००	श्रीधर
(अल-बरूनी)	९७३ १०४८	१०००	रत्नकीर्ति
सीना	९८० १०३७	१०००	जयन्त भट्ट
जिब्राल	१०२१ ७०	१०२५	रत्नाकरशान्ति
गज्ज़ाली	१०५९ ११११		
बाजा	११३८		
(तामरत)	११४७		
तुफल	११८५	१०८८ ११७२	हेमचन्द्र सूरि
रोश्द	११२६ ११९८,	(११९४	जयचंद राजा)
		११९०	श्रीहर्ष
इब्न ममून	११३५ १२०८	१२००	गंगेश

यूरोपीय दार्शनिक— ११२० १२२५ गायत्रीभद्र

[मध्यकाल—

राजर बकन	१२१४ ९२
तामस् अक्विना	१२२५ ७४
(फडरिक राजा	१२५०)
रमोन लिली	१२३४ १३१५
पित्ररस	१३०४ ७४

पश्चिमी	ई०	ई० भारतीय
(इब्न-खल्दून)	१३३२-१४०६	
(न्युनार्नो-द विन्ची)	१४५२ १५१८	
(वस्तुन्तुनिया तुर्कि हाथम)	१४५३	
आधुनिक काल—		
वेकन	१५६१ १६२६	
हाब्स	१५८८ १६७६	
द-कार्त	१५९६ १६५०	
(जमूतल्)	१५९९ १६५८	(१६२७ १६५८ शाहजहाँ)
स्पिनोजा	१६३२ ७७	(१६२७ ८० शिवाजी)
लाक	१६३२-१७०४	(१६५८ १७०७ औरंगजेब)
लाइब्निट्ज	१६४६-१७१६	
(चाल्स शिरच्छेद)	१६४९	
टालैंड	१६७०-१७२१	
बर्कले	१६८५-१७५३	
वाल्तेर	१६९४ १७७८	(१७५७ ६० क्लाइव)
हार्टले	१७०५-५७	
ला मत्री*	१७०९-५१	
ह्यूम*	१७११-७६	
रूसो	१७१२ ७८	
हेलवेशियस*	१७१५-७१	(१७७२ ८५ वारन हेस्टिंग्स)
		(१७८६ ९३ कार्नवालिस्)
(नेपोलियन)		
काट	१७२४-१८०४	
(जनर, चेचक टीका)	१७४९ १८२३	
दा लम्बार्*	१७८९	

पश्चिमी	ई०	ई०	भारतीय
कयानिस*	१५७३ १८०८		
फिरते	१७६२ १८१४		
ग्गल	१७७० १८३१	(१७७४ १८२६	गममाहन राय)
शलिट	१७७५ १८८४		
शापनहार	१७८८ १८६०		
पवरबाख	१८०४ ७२		
माक्स	१८१८ ८३	(१८२४ ८३	दयानन्द)
स्पेसर (हर्बट)	१८२० १९०३		
एगल्स	१८२१ ९५		
(मडल)	१८२२ ८४		
(पास्तार)	१८२२ ९७		
वुण्ट्नेर*	१८२४ ९९		
माग्	जन्म १८३८		
जम्स, (विलियम)	१८४२ १९१०		
निटजश	१८४४ १९००		
ब्राडल	जन्म १८४६		
डवी	जन्म १८५९		
बेगर्सां	१८५९ १९४१		
ह्वाइटहेड	जन्म १८६१		
लनिन*	१८७० १९२४		
रसल (बटरड)	जन्म १८७२		

———

परिशिष्ट

४—नाम-सूची

परिशिष्ट

४—शब्द-सूची
